UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186671

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H301 I13I   Accession No. H.G. 2971

Author इब्नु खल्दून, अब्दुर्रहमान

Title इब्ने खल्दून का मुक़द्दमा 1961

This book should be returned on or before the date last marked below

इब्ने ख़लदून का मुक़द्दमा

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—४८

इब्ने ख़लदून का मुक़द्दमा

[विश्व-इतिहास की प्रस्तावना]

लेखक

अब्दुर्रहमान इब्ने ख़लदून

(१३३२–१४०६ ई०)

अनुवादक

सैयिद अतहर अब्बास रिजवी

एम० ए०, पी-एच० डी०, यू० पी० एजुकेशनल सर्विस,

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य

१० रुपये

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

यह पुस्तक अरबों के विस्तृत साम्राज्य के इतिहास की भूमिका (मुक़द्दमा) के रूप मे लिखी गयी थी। हज़रत मुहम्मद के निधन के बाद एक शताब्दी बीतते-बीतते उनके अनुयायियों का राज्य बिस्के से मिन्ध तक फैल गया और इसके परिणामस्वरूप सभ्यता एवं संस्कृति का जो दौर आरभ हुआ, उसी का विश्लेषण इब्ने खलदून ने अपने 'विश्व-इतिहास' मे किया है। उसने स्वय कई स्थानों की यात्रा की थी, पुराने अवशेष खुद अपनी आँखों से देखे थे। बीस वर्ष तक उसने राजनीति मे सक्रिय भाग लिया था और इस अवधि मे अनेक पदाधिकारियों, राजदूतों एव विद्वानों से बातचीत करने का अवसर उसे मिला। जीवन के अतिम २३ वर्ष उसने मिस्र मे व्यतीत किये, जिसमें उसने गहन अध्ययन-मनन का प्रयत्न किया और अपने पुराने विचारों में भी संशोधन किया।

ऐतिहासिक तथ्यों से उसने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं और उनका समावेश अपनी पुस्तक मे किया है। १४वी से १८वी शताब्दी तक अनेक विद्वानों ने उसके विचारों से प्रभावित होकर लाभ उठाने का प्रयत्न किया। १९वी शताब्दी में यूरोपवालों का ध्यान भी "मुक़द्दमा" की ओर गया और उन्होंने उसका महत्त्व समझा। फ्रेञ्च, जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं में ही नहीं, उर्दू में भी इसका अनुवाद हो चुका है। हिन्दी के पाठक भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में अभिव्यक्त विचारों और तथ्यों से लाभान्वित हो सकें, इस दृष्टि से इसका यह हिन्दी अनुवाद हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

यह ग्रन्थ हिन्दी समिति ग्रन्थमाला का ४८ वाँ पुष्प है। इसके अनुवादक डा० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी अरबी-फारसी के अच्छे ज्ञाता और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। पी-एच० डी० की उपाधि आपने आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी और आपके शोध-प्रबन्ध का विषय था, "अबुल फज़्ल ऐण्ड हिज़ टाइम्ज़"। आपने फारसी तथा अरबी के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में किया है। आपकी भाषा सरल और मुहावरेदार होती है। आशा है, आपकी यह रचना भी, अपने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व के कारण, हिन्दी में समादृत होगी।

अपराजिता प्रसाद सिंह

सचिव, हिन्दी समिति

दो शब्द

इब्ने खलदून के मुक़द्दमे के महत्त्व, हस्तलिखित पोथियों, संस्करण तथा फ़ांसीसी, अंग्रेज़ी एवं उर्दू भाषान्तर के विषय में भूमिका में विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में मुक़द्दमे के केवल उन्हीं अंशों का अनुवाद किया गया है जो सभ्यता के विकास तथा समाज-शास्त्र एवं इतिहास के दर्शन से सम्बन्धित हैं। इब्ने खलदून ने इसी क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान किया है। भूगोल तथा इस्लाम के धार्मिक सिद्धान्तों एवं अरबी साहित्य से सम्बन्धित अंशों का अनुवाद नही किया गया है। यह अनुवाद बूलाक़ तथा क्वातरमेर के संस्करण पर आधारित है और मिस्र के बाद के संस्करणों, विशेप रूप से डा० अली अब्दुल वाहिद वाफ़ी के संस्करण (१९५८–५९ ई०) से भी लाभ उठाया गया है। अनुवाद करते समय फ़ांसीसी, अंग्रेज़ी तथा उर्दू के अनुवादों से भी सहायता ली गयी है। शब्दार्थ की अपेक्षा भावार्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है। फ़ांसीसी अनुवाद में अधिकांशतः तथा अंग्रेज़ी अनुवाद में कही-कहीं १४वीं शती के पारिभापिक शब्दों के लिए २०वी शती ई० के ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनसे अनेक प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि इन शब्दों का मूल रूप में ही प्रयोग किया जाय और ऐसे शब्दों का प्रयोग न किया जाय जो उस समय प्रचलित न थे।

मैं डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष हिन्दी समिति का विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के अनुवाद करने का मुझे आदेश दिया और समय-समय पर मेरी कठिनाइयों का समाधान करते रहे। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अरबी विभाग के अध्यक्ष डा० अब्दुल हलीम, रीडर डा० मक़बूल अहमद, इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० नूरुल हसन तथा पुस्तकालयाध्यक्ष प्रोफ़ेसर बशीरुद्दीन का भी मैं आभारी हूँ, जिनकी कृपा द्वारा मुझको सभी सहायक ग्रंथ मिलते रहे और जो अनुवाद की कठिनाइयों में भी मेरा हाथ बटाते रहे।

अन्त में मैं अपने उन सब हितैषियों एवं मित्रों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप यह ग्रंथ इस रूप में प्रकाशित हो रहा है और जिनके नाम कुछ कारणों से मैं नहीं लिख सका हूँ।

सैयिद अतहर अब्बास रिज़वी

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

भूमिका (अनुवादक द्वारा) —१—से—७७—

मुक़द्दमा ७९

प्राक्कथन १

इतिहास की व्याख्या १

कुछ इतिहासकार २

इतिहास का विभाजन ३

प्रस्तावना

मुक़द्दमा ९

इतिहास के ज्ञान की श्रेष्ठता, उसके विभिन्न दृष्टिकोणों की खोज, इतिहासकारों की भूलें एवं त्रुटियाँ तथा उनके कारणों का संक्षिप्त वर्णन।

किताबुल इब्र

प्रथम भाग २१

सभ्यता की विशेषताएँ, बदवी और स्थिर जीवन-क्रम, एक-दूसरे का पारस्परिक प्रभुत्व, जीविकोपार्जन के साधन, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान तथा सभ्यता को प्रभावित करनेवाली अन्य बातें एवं उनके कारण।

प्रस्तावना

इतिहास एवं सत्य २३

अध्याय १

... ३५

पहली प्रस्तावना—मानव सभ्यता का संक्षिप्त उल्लेख ... ३७

दूसरी प्रस्तावना—आबाद भूमि का विभाजन, समुद्रों, नदियों तथा इकलीमों का वर्णन ४१

तीसरी प्रस्तावना—समशीतोष्ण तथा असमशीतोष्ण इकलीमें, वहाँ के मनुष्यों एवं रंग-रूप पर जलवायु का प्रभाव ... ४१

चौथी प्रस्तावना—जलवायु का मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव ४१

पाँचवीं प्रस्तावना—अकाल एवं अल्पमूल्यता से देश में क्या परिवर्तन होते हैं और इनका प्रभाव मनुष्यों के शरीर एव चरित्र पर किस प्रकार पड़ता है ४२

छठी प्रस्तावना—मनुष्यों की विभिन्न किस्मे, जिन्हे प्रकृति अथवा अभ्यास से परोक्ष की बातों का ज्ञान हो जाता है और इस विषय की प्रस्तावना के रूप में वही एवं स्वप्न का उल्लेख ... ४७

अध्याय २

बदवी सभ्यता, वहशी कौमें एवं कबीलों का रहन-सहन, उनकी दशा एवं उनसे सम्बन्धित अन्य बातें ... ४९

१—बदवी एवं हजरी प्राकृतिक समूह हैं ५१

२—संसार में अरब प्राकृतिक समूह हैं ५२

३—बदवियत को हजरियत पर प्राथमिकता प्राप्त है और बड़े रेगिस्तान ही सभ्यताओं एवं नगरों के स्रोत हैं ५४

४—नगर-निवासियों की अपेक्षा बदवी अधिक सदाचारी होते हैं ... ५५

५—नगर-निवासियों से बदवी अधिक वीर एवं योद्धा होते हैं ... ५६

६—कानून पर भरोसा करने के कारण नगर-निवासियों की वीरता समाप्त हो जाती है और वे प्रतिरोध नही कर पाते ५७

७—असबियत वाले ही बदवी रेगिस्तान में जीवन निर्वाह कर सकते है ... ६०

८—असबियत की उत्पत्ति एक कुल एवं निकटवर्ती सम्बन्ध के कारण ही होती है ६३

९—कुल की शुद्धता वास्तव मे वहशी अरबों अथवा उन्ही के समान कौमों में पायी जाती है ६४

१०—कुल किस प्रकार परस्पर मिल-जुल जाते हैं ... ६६

११—कबीले मे जिस वश अथवा घराने में अत्यधिक असबियत पायी जाती है, वही राज्य का स्वामी होता है ६७

१२—असबियत वाली कौम पर अन्य कौम का आदमी शासन नहीं कर सकता ६८

१३–वंश एवं पद की प्रतिष्ठा वास्तव में "असबियत" वालों को प्राप्त है, दूसरों के लिए यह प्रतिष्ठा मिथ्या एवं निराधार है ... ७०

१४–दासों एवं पाले हुए लोगों की प्रतिष्ठा एवं सम्मान उनके स्वामियों तथा आश्रयदाताओं के कारण होता है, न कि कुल की प्राचीनता द्वारा ७२

१५–किसी घराने की प्रतिष्ठा चार पीढ़ियों तक चलती है ... ७४

१६–वहशी क़ौमें दूसरी कौमों की अपेक्षा प्रभुत्व शीघ्र प्राप्त कर लेती हैं ७६

१७–"असबियत" राज्य प्राप्ति के लक्ष्य की ओर ले जाती है ... ७७

१८–भोग-विलास एवं समृद्धि का आदी हो जाना कबीलों को राज्य प्राप्त करने से वंचित रखता है ... ७९

१९–अपमान एव तिरस्कार सहने की आदत तथा अन्य लोगों की आज्ञाकारिता भी कबीले के लिए राज्य एवं सल्तनत की प्राप्ति में बाधक होती है ... ८१

२०–नैतिकता मे दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न कौम मे राज्य प्राप्त करने का चिह्न है और यदि इसके विरुद्ध हो तो यह राज्य मे वचित होने का द्योतक है ... ८३

२१–वहशी कौमों का राज्य बड़ा विस्तृत होता है ... ८७

२२–किसी सल्तनत एवं "असबियत" की स्वामी कौम से सल्तनत नही निकलती, यदि एक वंश से निकल जाती है तो दूसरे वश मे पहुँच जाती है ... ८८

२३–पराजित क़ौमे विजयी क़ौमों के आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, धर्म-विश्वास, चरित्र, स्वभाव एव अन्य बातों का बड़ी रुचि से अनुकरण करती हैं ... ९०

२४–जब कोई कौम पराजित होकर दूसरी कौम के चंगुल में फँसती है तो शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ... ९१

२५–अरब का प्रभुत्व एव अधिकार प्रायः खुले एवं बेरोक देशों पर होता है ... ९३

२६–अरब जिस राज्य पर अधिकार प्राप्त करते हैं वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ... ९४

२७–अरबों को राजनीतिक प्रभुत्व, नबूअत, विलायत अथवा अन्य किसी बहुत बड़े धार्मिक प्रभाव के अधीन ही प्राप्त हुआ है ... ९६

२८–राजनीति के विषय मे अरब समस्त कौमों से दूर एवं अपरिचित होते है ... ९७

२९–नगर-वासी रेगिस्तानी कबीलों तथा समूहों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते है। ... ९९

अध्याय ३

वहशी वंश, शाही अधिकार, खिलाफ़त, शाही पद और तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ, आधारभूत एवं गौण सिद्धान्त ... १०१

१–शाही अधिकार और बड़े-बड़े शाही वंशों का ऐश्वर्य "असबियत" द्वारा प्राप्त होता है ... १०३

२–जब किसी शाही वंश की जड़े दृढ हो जाती हैं तो उसे "असबियत" की चिन्ता नही रहती ... १०४

३–कुछ शासक वंश असबियत की उपेक्षा करके भी राज्य स्थापित करते है ... १०७

४–बड़े-बड़े राज्यों तथा शाही अधिकारों का अभ्युदय किसी धर्म अथवा धार्मिक प्रचार (दावत) के आधार पर होता है ... १०९

५–धार्मिक प्रचार (दावत) असबियत की शक्ति बढ़ा देता है ... १०९

६–धार्मिक प्रचार "असबियत" के बिना पूर्ण नही होता ... १११

७–प्रत्येक राज्य अपने विशेष क्षेत्र मे सीमित रहता है, उसके बाहर नही बढ सकता ... ११५

८–सल्तनत का गौरव उसके राज्य-विस्तार तथा स्थायित्व पर एवं जीवन उसके सहायकों की संख्या की अधिकता एवं न्यूनता पर निर्भर होता है ... ११७

९–जिस राज्य मे कबीलों की संख्या अधिक तथा असबियत वालों की बहुतायत होती है, वहाँ राज्य बड़ी कठिनाई से बन पाता है ... ११[illegible]

१०–बादशाह स्वाभाविक रूप मे अपने आपको श्रेष्ठता का एकमात्र स्रोत समझता है ... १२३

११–जब किसी कौम के हाथ राज्य आ जाता है तो उसके साथ-साथ भोग-विलास का आविर्भाव भी स्वाभाविक होता है ... १२४

१२–युद्धविजय के उपरान्त आराम, चैन, शान्ति तथा समृद्धि के युग में प्रवेश करना राज्यों के लिए एक स्वाभाविक बात है ... १२५
१३–जब सल्तनत श्रेष्ठता, भोग-विलास, चैन और आराम की चरम सीमा तक पहुँच जाती है तो वह पतन की ओर बढ़ने लगती है और उसकी युवावस्था समाप्त होकर वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टि-गत होने लगते हैं ... १२५
१४–मनुष्यों के समान राज्यों की भी स्वभाविक अवस्थाएँ होती हैं ... १२९
१५–राज्य शनैः-शनैः बदवियत से निकलकर नागरिक जीवन तक पहुँचता है ... १३२
१६–प्रारम्भ में भोग-विलास से सल्तनत की शक्ति की उन्नति होती है ... १३६
१७–सल्तनत की विभिन्न परिस्थितियाँ और विभिन्न प्रकार के बदवी जीवन ... १३७
१८–राज्य के अवशेष उसकी मूल शक्ति के अनुसार होते हैं ... १४०
१९–सुल्तान अपनी क़ौम तथा अपनी "अमबियत" वालों के विरुद्ध दासो एवं आश्रितों से सहायता लेता है ... १५०
२०–सल्तनतों में दासों एवं आश्रितों का हाल ... १५३
२१–(अन्य लोगों द्वारा) सल्तनतों मे बादशाह पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है तथा उसे वश मे रखा जा सकता है ... १५६
२२–जो लोग सल्तनत एव सुल्तान पर प्रभुत्व प्राप्त करते है वे शाही उपाधि मे उसके साझीदार नही बनते ... १५८
२३–सल्तनत के वास्तविक गुण एव उसकी किस्मे ... १५९
२४–शासन-प्रबन्ध में बादशाह का सयम से आगे बढ जाना राज्य के लिए प्रायः हानिकारक होता है और उसरो राज्य का विनाश हो जाता है ... १६१
२५–ख़िलाफ़त तथा इमामत ... १६४
२६–खिलाफ़त एवं उसकी शर्तो के सम्बन्ध मे मुसलमानों का मतभेद ... १६६
२७–इमामत के विषय मे शीओं के विभिन्न मत ... १७७
२८–खिलाफत ने किस प्रकार सल्तनत का रूप धारण किया ... १८८
२९–बैअत ... २०१
३०–वली अहदी ... २०२

३१—धार्मिक खिलाफत के पद एवं सेवाएँ ... २१९
३२—अमीरुल मोमिनी की उपाधि खिलाफत के युग की एक प्राचीन यादगार है और इस उपाधि का खिलाफत के युग में ही सर्वप्रथम प्रयोग हुआ ... २३२
३३—ईसाई धर्म मे पापा एवं बतरक शब्द की व्याख्या और यहूदी धर्म मे काहन शब्द की व्याख्या ... २३९
३४—बादशाहों एवं सुल्तानों की श्रेणियाँ तथा उनकी उपाधियाँ ... २३९
३५—सल्तनतों में तलवारवालों एवं कलमवालों के पदों का पारस्परिक महत्त्व ... २७६
३६—सल्तनत एवं सुल्तान के विशेष चिह्न ... २७७
३७—युद्ध एवं विभिन्न कौमों के युद्ध के ढंग, पंक्तियों की सुव्यवस्था के नियम ... २९८
३८—खराज एवं उसकी कमी-बेशी के कारण ... ३१०
३९—सल्तनत के अन्तिम युग मे चुंगी एव मार्ग के करों की प्रथा प्रारम्भ होती है ... ३१२
४०—सल्तनत का व्यापार प्रजा को हानि पहुँचाता है और देश के कर को नष्ट कर देता है ... ३१३
४१—बादशाह एवं उसके विश्वासपात्रों की धन-सम्पत्ति सल्तनत के मध्य युग मे बढ़ती है ... ३१६
४२—बादशाह के दान-पुण्य मे कमी खराज की कमी की द्योतक है ... ३२०
४३—अत्याचार सभ्यता के विनाश का द्योतक है ... ३२१
४४—सल्तनतों मे बादशाह के पास पहुँचने पर किस कारण प्रतिबंध लगता है और यह प्रथा सल्तनत के पतनशील होने पर किस प्रकार जोर पकड़ती है ... ३२८
४५—एक सल्तनत का दो सल्तनतों में विभाजित हो जाना ... ३३०
४६—सल्तनत में कमज़ोरी पैदा होने के उपरान्त अटल हो जाती है ... ३३३
४७—सल्तनत के विभाजित होने के कारण ... ३३४
४८—नयी सल्तनतों की स्थापना ... ३४०
४९—नयी सल्तनत प्राचीन जमी-जमायी सल्तनत पर निरन्तर उद्योग द्वारा अधिकार प्राप्त करती है, न कि अचानक आक्रमण द्वारा ... ३४१

५०–सल्तनत के अन्तिम काल में देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है, संक्रामक रोग फैलते हैं और अकाल पड़ते हैं ... ३४५
५१–मानव सभ्यता के लिए राजनीतिक नेतृत्व का होना परमावश्यक है, ताकि उसके अधीन उसके कार्य सुव्यवस्थित हो सकें ... ३४७
५२–इमाम महदी, उनके विषय में लोगों के विचार एवं महदवियत की वास्तविकता ... ३६१
५३–सल्तनत एवं कौमों का अभ्युदय तथा भविष्य वाणियाँ एवं जफर ... ३६३

अध्याय ४

देश एवं नगर, नगर-सम्बन्धी सभ्यता की विभिन्न किस्में, वहाँ की दशा, उसका विवेचन ... ३६५

१–सल्तनत का अभ्युदय नगर एवं आबादियों के पूर्व होता है ... ३६७
२–सल्तनत की स्थापना के पश्चात् सल्तनतें नगरों में पाँव जमाना चाहती हैं ... ३६९
३–बड़े-बड़े नगरों एवं भव्य भवनों का निर्माण शक्तिशाली सल्तनते ही करती हैं ... ३७०
४–बड़े-बड़े भवन एक ही सल्तनत नहीं बना सकती .. ३७१
५–नगर बसाने में किन बातों पर ध्यान देना परमावश्यक है तथा उनकी उपेक्षा के दुष्परिणाम ... ३७४
६–ससार के सर्वोत्कृष्ट पूजा-गृह एवं मस्जिदें ... ३७८
७–इफरीकिया एवं मग़रिब मे नगरों की संख्या कम है ... ३७९
८–प्राचीन सल्तनतों की अपेक्षा, इस्लामी ऐश्वर्य एवं गौरव की तुलना में इस्लामी सल्तनत के भव्य भवनों की संख्या कम हैं ... ३८०
९–एक आध को छोड़कर, अरबों के बनवाये हुए भवन, शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ... ३८१
१०–नगरों के विनाश का प्रारंभ ... ३८२
११–नगरों में खाद्य सामग्री की बहुतायत और बाजारों की चहल-पहल तथा रौनक नगर की सांस्कृतिक अवस्था पर निर्भर है ... ३८३
१२–शहरों में चीजों के भाव ... ३८७
१३–बदवी लोग अधिक आबाद सभ्य नगरों में नहीं बस सकते ... ३८९

१४—देशों और नगरों की दीनता, दरिद्रता एवं समृद्धि का अन्तर ... ३९०
१५—नगरों में भूमि एवं गृहों की प्राप्ति मे कठिनाई, महार्घता और लाभ ३९३
१६—नगरों मे पूंजीपतियों को हानि से बचने के लिए प्रभुत्व एवं संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है ... ३९५
१७—नगरों की संस्कृति सल्तनतों द्वारा आती है और जब तक सल्तनते अपने पाँव जमाये रखती है तब तक ही उनकी सभ्यता भी रहती है ... ३९५
१८—नगर की संस्कृति उसकी सभ्यता का मूल उसकी प्रौढ़ अवस्था की समाप्ति का चिह्न है और उसके पतन का भी द्योतक है ... ३९८
१९—जब राज्य का पतन तथा अन्त होता है तो राजधानी उसके साथ-साथ नष्ट हो जाती है ... ४०३
२०—कुछ कलाएँ विशेष रूप से नगरों मे पायी जाती है .. ४०७
२१—नगरों मे असबियत एवं एक-दूसरे पर प्रभुत्व ... ४०८
२२—नगरवालों की भापा .. ४१०

अध्याय ५

जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन, (लाभकर कार्य, कला-कौशल तथा तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ) ... ४१३

१—जीविकोपार्जन तथा लाभ के वास्तविक अर्थ, लाभ ही मनुष्य के परिश्रम का मूल्य है ... ४१५
२—जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन तथा उसकी किस्में ... ४१८
३—नौकरी जीविकोपार्जन का प्राकृतिक साधन नही ... ४२०
४—भूमिष्ठ निधि एवं धन-सम्पत्ति की खोज जीविकोपार्जन का स्वाभाविक साधन नही .. ४२१
५—पद एवं श्रेणी धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए लाभदायक है ... ४२५
६—दीनता प्रकट करनेवालों और चाटुकारी करनेवालों को अधिकांश लाभ एवं सम्पन्नता प्राप्त होती रहती है ... ४२६
७—काजी, मुफती, मर्दरिस, इमाम, खतीब एवं मुअज्जिन इत्यादि धार्मिक लोग प्राय: धनी नही होते .. ४३१
८—कृपि शक्तिहीन शान्तिप्रिय लोगों का व्यवसाय है ... ४३२

९–व्यापार की व्याख्या, उसकी किस्में एवं विधियाँ ... ४३३

१०–किस प्रकार के लोगों को व्यापार करना चाहिए और किन लोगों को नहीं ... ४३३

११–व्यापारियों के चरित्र सम्मानित व्यक्तियों एवं उच्च पदाधिकारियों के चरित्र की अपेक्षा गिरे हुए होते हैं ... ४३५

१२–व्यापारियो का एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाना ... ४३५

१३–माल को महँगाई के लोभ मे भरे रखना ... ४३६

१४–चीजो का मूल्य सस्ता होना व्यापारियो के लिए हानिकारक है ... ४३७

१५–व्यापारियो के चरित्र सामान्यत: अन्य लोगो से घटिया होते हैं और वे मुरव्वत नही करते ... ४३८

१६–कला के लिए शिक्षा परमावश्यक है ... ४३९

१७–नगर के जीवन एव सस्कृति के बढ़ने पर ही कला-कौशल की उन्नति होती है ... ४४०

१८–नगरों मे संस्कृति जितनी दृढ़, स्थायी एवं पुरानी होती है उतनी ही वहाँ कलाएँ भी दृढ़ एव स्थायी होती हैं ... ४४१

१९–कला-कौशल की जब देश मे माँग होती है तो उनकी उन्नति भी होती है और उनमे नये-नये आविष्कार भी होते रहते हैं ... ४४३

२०–नगर जब उजड़ने लगते हैं तो वहाँ की कलाएँ भी कम होने लगती हैं ... ४४४

२१–अरब लोग कलाओं से सबसे अधिक दूर रहते हैं ... ४४४

२२–जिसको एक कला मे कुशलता प्राप्त हो जाती है वह बड़ी कठिनाई से दूसरी कला में कुशलता प्राप्त कर पाता है ... ४४६

२३–मुख्य कलाएँ ... ४४६

२४*–कृषि ... ४४७

२५*–भवन-निर्माण ... ,,

२६*–बढ़ई का काम ... ,,

२७*–बुनाई तथा सिलाई ... ,,

२८*–दाई का कार्य ... ,,

२९*–चिकित्सा-शास्त्र ... ,,

३०*–मानवी कलाओं में लिखने की कला का महत्त्व ... ४४८

३१*—वर्राक़ी (पुस्तको की तैयारी) का व्यवसाय ... ४४८
३२*—संगीत ... ४४८
३३*—प्रत्येक कला के अभ्यास से, विशेष रूप से लिखने तथा गणित से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है ... ४४८

अध्याय ६

ज्ञान की विभिन्न किस्में, शिक्षा-विधि, तत्सम्बन्धी शर्तें ... ४४९

१—शिक्षा मानव सभ्यता की एक प्रकृत आवश्यकता ... ४५१
२—वैज्ञानिक शिक्षा भी एक प्रकार की कला है ... ४५१
३—सभ्यता की जितनी ही उन्नति होती है और नगर की संस्कृति का जितना ज़ोर होता है, ज्ञान-विज्ञान की चर्चा उतनी ही अधिक होती है ... ४५८
४—समकालीन सभ्यता के विभिन्न विज्ञान ... ४५९
५*—क़ुरान की टीका तथा उसका शुद्ध रूप से पाठ ... ४६२
६*—हदीस ... ४६२
७*—फ़िक़ह, उसकी शाखाएँ ... ४६२
८*—तरके के क़ानून ... ४६२
९*—फ़िक़ह के सिद्धान्त तथा तत्संबंधी वाद-विवाद ... ४६३
१०*—कलाम ... ४६३
११*—क़ुरान तथा सुन्नत में अस्पष्ट वर्णन तथा उनके कारण मुसलमानों में विभिन्न मतों का पैदा होना ... ४६३
१२*—तसव्वुफ ... ४६३
१३*—स्वप्नफल प्रकाशन विद्या ... ,,
१४*—अक़ली ज्ञान तथा उसकी क़िस्में ... ,,
१५*—संख्या का ज्ञान, गणित, अंकगणित तथा तरका ... ,,
१६*—रेखागणित, भूमापन ... ,,
१७*—ज्योतिष-विद्या ... ,,
१८*—तर्कशास्त्र ... ,,
१९*—भौतिक-शास्त्र ... ,,
२०*—चिकित्सा-शास्त्र ... ,,

२१*–कृषि-शास्त्र ... ४६३
२२*–आत्म-विद्या ... ,,
२३*–जादू-टोने ... ,,
२४*–अक्षरों के रहस्य का ज्ञान ... ,,
२५*–कीमिया ... ,,
२६*–दर्शन शास्त्र एवं उसके दोष तथा उसका खंडन ... ,,
२७*–फलित ज्योतिष से हानियाँ, उसके दोष एवं उसका खंडन ... ,,
२८*–कीमिया का अस्तित्व असम्भव है तथा उसके द्वारा जो हानियाँ होती हैं ... ,,
२९*–रचनाओं का मूल उद्देश्य जो हमेशा सामने रखना चाहिए ... ,,
३०–ग्रन्थों की अधिकता ज्ञानोपार्जन मे बाधक होती है ... ,,
३१–शिक्षा के लिए विभिन्न विद्याओं के सारग्रंथ भी हानिकारक होते हैं ... ४६५
३२–ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की उचित एवं लाभदायक विधि ... ४६६
३३–सहायक विद्याओं को शिक्षा देते समय अधिक न पढ़ाना चाहिए और उनकी विभिन्न क़िस्में विस्तार से न पढ़ानी चाहिए ... ४७१
३४–बच्चों की शिक्षा एवं इस्लामी देशों में शिक्षा की विभिन्न विधियाँ ... ४७३
३५–विद्यार्थियों के प्रति कठोरता उनके लिए हानिकारक होती है ... ४७६
३६–ज्ञान हेतु स्वदेश के त्याग एवं समकालीन विद्वानों के साक्षात्कार से ज्ञान में वृद्धि होती है ... ४७८
३७–विद्वान् लोग राजनीति से अपरिचित एवं अनभिज्ञ होते हैं ... ,,
३८–इस्लाम के अधिकांश विद्वान् अजमी हैं ... ४७९
३९*–अरबी भाषा सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान ... ४८१
४०*–भाषा एक वैज्ञानिक अभ्यास है ... ४८१
४१*–समकालीन अरबी भाषा एक पृथक् भाषा है और मुजर तथा हिमयार की भाषा से भिन्न है ... ४८२
*–नगरवासियों तथा एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास करनेवालों की भाषा मुजर की भाषा से पृथक् है ... ,,
४३*–मुजर की भाषा की शिक्षा ... ,,
४४*–मुजर की भाषा के अभ्यास का अरबी भाषाशास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं ... ,,

४५*—साहित्यिक समालोचकों के अनुसार "रुचि" का विवेचन और इसका प्रमाण कि जो अजमी अरबों की नकल कर लेते हैं, वे "रुचि" नही उत्पन्न कर पाते ... ४८:

४६—जब स्वयं नगरवासी ही साधारण शिक्षा द्वारा अरबी भाषाशास्त्र मे वास्तविक अभ्यास नही पैदा कर पाते, तब ऐसे लोगों के लिए, जिनकी मातृभाषा अरबी नही, यह दक्षता पैदा करना कठिन होता है ... "

४७*—भाषा के दो भाग—गद्य तथा पद्य ... ४८५

४८*—गद्य तथा पद्य दोनों मे एक साथ कुशलता बिरले ही किसी व्यक्ति को प्राप्त होती है ... "

४९*—पद्य एवं उसकी शिक्षा-विधि ... "

५०*—गद्य तथा पद्य शब्दों पर आधारित है, न कि विचारों पर ... "

५१*—भाषा का अभ्यास अरबी की रचनाओं को अधिक से अधिक संख्या मे याद करने से प्राप्त होता है ... "

५२*—उच्च श्रेणी के लोगों की रुचि कविता में नही होती ... "

५३—समकालीन अरबों एवं नगरवासियों की कविताएँ ... "

परिशिष्ट

१—कुरैश की वंशावली ... ४८७

२—बनी उमय्या की वंशावली ... ४८८

३—बनी अब्बास की वंशावली ... ४८९

४—बुवहिद प्रभुत्व काल के अब्बासी खलीफ़ा ... ४९०

५—सलजूक प्रभुत्व काल के अब्बासी खलीफा ... ४९१

६—अन्तिम अब्बासी खलीफा ... "

७—हजरत अली के वशज एव १२ इमाम ... ४९२

८—करतेबा (कारडोवा) के उमय्या अमीर ... ४९३

९—कारडोवा के उमय्या खलीफ़ा ... ४९४

१०—मिस्र के फातेमी खलीफा ... ४९५

नोट—तारांकित खंडों का अनुवाद नहीं किया गया है।

११–मिस्र के बहरी ममलूक ... ४९६
१२–मिस्र के बुर्जी ममलूक ... ४९७
१३–सहायक ग्रंथों की सूची ... ४९९
१४–नामानुक्रमणिका ... ५०७

चित्रों तथा मानचित्रों की सूची

१–इब्ने खलदून का चित्र (एक मिस्री कलाकार द्वारा) (भूमिका के पहले)
२–सातवीं शती ईसवी* ... –१०–
३–आठवीं शती ईसवी* ... –१६–
४–चौदहवीं शती ईसवी* ... –४६–
५–इब्ने खलदून का चित्र (एक अन्य मिस्री कलाकार द्वारा)* ... –२०–

*** ये चित्र अलग से छपे हैं**

इब्ने खलदून का चित्र

(एक मिस्री कलाकार द्वारा)

भूमिका

"मुक़द्दमे" की पृष्ठ-भूमि

इब्ने ख़लदून ने "मुक़द्दमे" की रचना अरबों के विशाल साम्राज्य के इतिहास की प्रस्तावना के रूप में की है। १४वीं शती ईसवी के पश्चिम एवं पूर्व की राजनीतिक उथल-पुथल तथा संसार की अनेक सभ्यताओं के अभ्युदय एवं ह्रास के आलोचनात्मक अध्ययन ने उसके समक्ष मानव-सभ्यता एवं संस्कृति से सम्बन्धित कुछ विशेष समस्याएँ प्रस्तुत कर दीं, जिनका उसने इतिहास की पृष्ठ-भूमि में समाधान करने का प्रयत्न किया है। सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीन केन्द्रों, अरबों, अजमियों एवं उत्तरी अफ़्रीक़ा के बरबरों के इतिहास तथा उनकी संस्कृति का उसने बड़ा गहन अध्ययन किया था। इन देशों की सभ्यता के अवशेषों का उसने घूम-घूमकर निरीक्षण भी किया और वहाँ के विद्वानों से भेंट करके उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अतः "मुक़द्दमे" को भली-भाँति समझने के लिए विश्व-सभ्यता के इतिहास के साथ-साथ अरबों के साम्राज्य की उस रूप-रेखा को भली-भाँति समझ लेना परमावश्यक है जिसकी पृष्ठ-भूमि में "मुक़द्दमे" की रचना हुई। इस स्थान पर अरबों के साम्राज्य एवं संस्कृति का सविस्तर इतिहास देना तो सम्भव नहीं, अतः केवल उन्हीं घटनाओं की ओर संकेत किया जाता है जिनका "मुक़द्दमे" में बार-बार उल्लेख हुआ है और जिनसे इब्ने ख़लदून ने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।[1]

अरब

यद्यपि अरब को इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व विश्व-इतिहास में अधिक महत्त्व न प्राप्त हो सका था, किन्तु अरब के आस-पास के देश प्राचीन काल से ही सभ्यता की क्रीड़ा-

१. विशेष समस्याओं की संक्षिप्त जानकारी के लिए, "*Encyclopaedia of Islam* (इंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम) तथा J. P. Hughes, "*A Dictionary of Islam*" London 1935 (टी. पी. ह्यूग्स : ए डिक्शनरी आफ़ इस्लाम, लन्दन १९३५ ई०) देखिए।

भूमि रह चुके थे। उत्तर में सीरिया (शाम) तथा इराक़ (मेसोपोटामिया), पश्चिम में मिस्र, पूर्व से कुछ दूरी पर ईरान और उत्तर-पश्चिम में कुछ दूर हटकर एशिया माइनर (कोचक अथवा लघु) तथा क़ुस्तुन्तुनिया है। समुद्र के उस पार दूसरी ओर हिन्दुस्तान है और ग्रीस (यूनान) का फ़ासिला भी अधिक नही।

वैसे तो अरब का बहुत बड़ा भाग रेगिस्तान है और पहाड़ों का जाल सारे देश में फैला हुआ है, किन्तु यहाँ की भौगोलिक दशा, जल-वायु, रहन-सहन एवं इतिहास को देखते हुए इसे दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—उत्तरी अरब तथा दक्षिणी अरब। उत्तरी अरब का प्रमुख भाग हिजाज है जहाँ कभी-कभी तीन-तीन वर्ष तक सूखा पड़ा रहता है और कभी तूफान के साथ थोड़े समय के लिए इतने जोर की वर्षा हो जाती है कि सैलाब तक आ जाते हैं। इसी से यहाँ कुछ बाग़ लग जाते हैं और कही-कही उपजाऊ भूमि की छोटी-छोटी पट्टियाँ भी दिखाई देने लगती हैं। अतः यहाँ के निवासी प्रायः यायावरों के समान जीवन व्यतीत करते हैं। वे अपने बालों के खेमे तथा डेरे लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगाया करते हैं। दक्षिणी अरब के कुछ भागों में नियमित रूप से वर्षा भी हो जाती है और कृषि भी होती रहती है। इस भूभाग का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एव उपजाऊ स्थान यमन है। यहाँ के निवासी तथा हज़रमौत एव समुद्रीय तट के अन्य नगरों एवं क़स्बों में बसनेवाले घर बनाकर निवास करते हैं। उत्तरी अरब के निवासी शुद्ध अरबी तथा क़ुरान की भाषा बोलते हैं और दक्षिणी अरब के निवासी अपनी प्राचीन सामी भाषा में बातचीत करते हैं, जो सबाई अथवा हमीरी कही जा सकती है और अफ़्रीक़ा के "इथियोपिक" से मिलती-जुलती है। दक्षिणी अरबवालों ने सभ्यता के क्षेत्र मे प्राचीन काल से ही कुछ-न-कुछ उन्नति करना प्रारम्भ कर दिया था और तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपना स्थान बना लिया था। सुमेरिया, बेबिलोनिया, असीरिया, ईरानी यहूदियों तथा ईसाइयों की सभ्यता की भी गहरी छाप इन पर पड़ती रही। लोबान और मसालों के अतिरिक्त मिदियान से यमन तक की खानों में निकलनेवाला शुद्ध सोना भी इनके गर्व का बहुत बड़ा विषय था।

दक्षिणी अरब के राज्य

दक्षिणी अरब में कुछ महत्त्वपूर्ण राज्य भी हुए हैं। इनका प्राचीनतम राज्य, जिसका पता चल सका है, "मईनी" अथवा "मीनियन" राज्य था जो १२०० से ६५० ईसा-पूर्व तक चलता रहा। "सबाई" अथवा "सैबियन" राज्य ६५० से ११५

ईसा-पूर्व तक बताया जाता है। मारिब के प्रसिद्ध बाँध का इसी राज्यकाल में निर्माण हुआ। इनके राज्य में कुछ समय तक बड़ी सुख-शान्ति रही और वाणिज्य तथा व्यापार की भी उन्नति होती रही। ११५ ईसा-पूर्व में "हमीरी" राज्य ने "सबाई" राज्य पर अधिकार जमा लिया। इस राज्यकाल मे बदवियों अथवा बद्दुओं से रक्षा के लिए ग़ुमदान के प्रसिद्ध क़िले का निर्माण हुआ, जिसकी अरब भूगोलवेत्ताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कहा जाता है कि इसमें २० मजिलें थीं जिनमें से प्रत्येक १०–१० हाथ ऊँची थी। ३४०–३७८ ई० तक अबीसीनियावालों ने आक्रमण करके इनके राज्य पर अधिकार जमा लिया, किन्तु ३७८ ई० में हमीरी राज्य पुनः स्थापित हो गया और ५२५ ई० तक चलता रहा। इनके राज्य में ७० ई० से यहूदी और ३५६ ई० से ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हो गया, अतः दोनो धर्मों में धीरे-धीरे संघर्ष रहने लगा, जिसने बाद में उग्र रूप धारण कर लिया। ५२३ ई० में अबीसीनिया के बादशाह नेगस ने दक्षिणी अरब के ईसाइयों की सहायता के बहाने से यमन की विजय करके ५२५ ई० मे अपना राज्य स्थापित कर लिया। वे लोग ५७५ ई० तक दक्षिणी अरब में राज्य करते रहे। उनके एक बादशाह अबरहा ने अपने राज्यकाल में सना में एक भव्य गिरजाघर का निर्माण कराया। उसने मक्के पर भी अधिकार जमाने का प्रयत्न किया और ५७० अथवा ५७१ ई० में वह हाथी पर बैठकर मक्के पर आक्रमण हेतु पहुँचा। हिजाज़वालों ने हाथी काहे को देखा था। वे इस सेना से बड़े प्रभावित हुए। किन्तु अबीसीनिया की सेनावालों में चेचक की महामारी फैल गयी और यह सेना नष्ट हो गयी।[1]

उत्तरी अरब के राज्य

व्यापार के कारण उत्तरी अरब में भी कही-कही छोटे-छोटे राज्य स्थापित होते रहे, जिनमें प्राचीनतम "नब्तियो" अर्थात् "नबातियंस" का राज्य है। "ये लोग एक ख़ानाबदोश क़बीले से सम्बन्धित थे और ईसा-पूर्व छठी शती मे उत्तरी अरब के किन्हीं-किन्हीं भागों में अपने राज्य स्थापित करने लगे। १०५ ई० के लगभग इनके प्रभुत्व का अन्त हो गया।

१. देखिए, नबेह एँ फ़ेरिस, द ऐन्टीक्वीटीज़ आफ़ साउथ अरेबिया (Nabih A Faris *The Antiquities of South Arabia*, Princeton 1938) तथा अरबी में "सिफ़त जज़ीरतुल अरब" (लाइडेन १८८४), मसूदी, "मुरूजुज़्-ज़हब"। अबरहा के आक्रमण का क़ुरान शरीफ़ में भी उल्लेख हुआ है।

उत्तर-पश्चिमी अरब में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग़स्सानियों का राज्य हुआ है जो अपने आपको दक्षिणी अरब के एक क़बीले से सम्बन्धित बताते थे। इन्हें अधिक प्रसिद्धि छठी शती ईसवी में प्राप्त हुई। इस शती में हारिस द्वितीय (५२९–५६९ ई०) को बड़ी उन्नति प्राप्त हो गयी। वह बज़ंटाइन राज्य (रोमन साम्राज्य का पूर्वी भाग) का बहुत बड़ा समर्थक था। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी मुंज़िर के राज्यकाल में भी बैज़ंटाइन वालों से इन लोगों का बड़ा मेल-जोल रहा।

अरब के उत्तर-पूर्वी भाग के लाख़मीद[1] का राज्य तीसरी शती ईसवी के अन्त में स्थापित हुआ। इनकी राजधानी हीरह में थी और ईरानियों के राज्य से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। ४१८ से ४६२ ई० के मध्य में हीरहवालों ने ईरान के राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। मुंज़िर तृतीय (५०५–५५४ ई०) के राज्यकाल में हीरह उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। बाद में लाख़मीद के शासकों ने भी ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इनका अन्तिम बादशाह नोमान तृतीय अबू क़ाबूस (५८०–६०२ ई०) हुआ है। ६०२ ई० के बाद ईरानियों ने अरब के राज्य पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु ६३३ ई० में ख़ालिद बिन वलीद ने हीरह को विजय करके मुसलमानों के राज्यों में सम्मिलित कर लिया।

४८० ई० के लगभग मध्य अरब के किन्दह क़बीले को भी बड़ी उन्नति प्राप्त हुई, किन्तु वे लोग अधिकांश दक्षिणी अरब के प्रभाव-क्षेत्र के अधीन रहे। इस्लाम के प्रारम्भ में किन्दह क़बीले के बहुत-से लोगों को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था। अशस बिन क़ैस, हज़रमौत के सरदार ने शाम तथा इराक़ की विजय में उल्लेखनीय भाग लिया।[2]

हिजाज़

इस्लाम की जन्म-भूमि हिजाज़ भी छठी शती ईसवी के कुछ पूर्व सबाई तथा हमीरी राज्य के प्रभुत्व के अधीन थी, किन्तु इस्लाम के अभ्युदय तथा इन राज्यों के पतन के बीच का समय "जाहीलिया" युग के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका यह अर्थ नहीं कि उस युग में अरब असभ्य थे, अपितु उनमें उस उच्च स्तर की सभ्यता न पायी जाती थी जो

१. बनी लख़म अथवा बनू लख़म।

२. देखिए, अरबी में इब्ने अब्द रब्बीही, "इक़्द" भाग १, तबरी भाग २ तथा अंग्रेज़ी में हित्ती, "हिस्ट्री आफ़ द अरब्ज़"।

दक्षिणी अरब के नगरों में वर्तमान थी। हिजाज़ तथा नज्द के निवासी, जैसा पहले कहा जा चुका है, बदवी जीवन व्यतीत करते थे। "अय्यामुल अरब" अथवा अरबों का युग इसी बदवी जीवन के युग का दूसरा नाम है। इस युग में मवेशियों, चरागाहों तथा झरनों के लिए विभिन्न क़बीले इधर-उधर मारे-मारे फिरा करते थे। स्वाधीनता, स्वाभिमानिता, आत्म-विश्वास, वीरता, पौरुष तथा इनके साथ-साथ कविता एवं वाक्पटुता उनके जीवन की मुख्य विशेषताएँ थीं। वे अतिथि-सत्कार के उच्च उदाहरण भी प्रस्तुत करते रहते थे। ६०५ ई० के लगभग तय क़बीले के प्रसिद्ध सरदार हातिम ने बदवियों के अतिथि-सत्कार को अमर बना दिया। बदवी अपने क़बीले के सरदार अथवा शेख़ के आदेशानुसार हर बलिदान के लिए तैयार रहते थे। उनका धर्म तथा अध्यात्मवाद प्रकृति पर आधारित था और प्रकृति के महान् तत्वों का मुक़ाबिला करने में जब वे असमर्थ हो जाते तो उन्हीं के आगे शीश नवा देते और उन्हें अपना इष्ट-देव मान लेते थे। बदवियों के जीवन में बहुत थोड़ी-सी ही चीज़ों को महत्व प्राप्त हो सका है। उनमें खजूर, घोड़े तथा ऊँट प्रमुख हैं। हज़रत मुहम्मद का यह आदेश बड़ा प्रसिद्ध है कि "तुम अपनी चाची खजूर का सम्मान करो जो कि उसी मिट्टी से बनी है जिस मिट्टी से आदम बने थे।"[१] ऊँट के बिना तो उनका जीवन सम्भव ही न था। बदवियों की सारी सम्पत्ति का मूल्यांकन ऊँटों की संख्या से ही किया जाता था। बदवी ऊँट का मांस खाते, जल के स्थान पर उसका दूध पीते, उसकी खाल के ख़ेमे-डेरे बनवाते तथा बालों के कपड़े पहनते थे। हजरत उमर का यह कथन कि "अरब वहीं उन्नति कर सकता है जहाँ उसका ऊँट" बड़ा सारगर्भित है। घोड़ा यद्यपि अरब की विशेष सम्पत्ति समझा जाता था, किन्तु वह केवल गण्यमान्य व्यक्तियों एवं धनी लोगों के पास ही होता था।

बदवी अपने शेख़ के आदेशों का आँख बन्द करके पालन करते थे और अपने क़बीले के लिए प्रत्येक बलिदान करने को उद्यत रहते थे। वे अपने अतिरिक्त किसी अन्य को उन्नति के पथ पर नहीं देख सकते थे। अरब क़बीलों को उनकी आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के कारण निरन्तर एक-दूसरे पर छापा मारना पड़ता था। उमय्या राज्यकाल का एक कवि कहता है—"हमारा तो काम ही अपने शत्रुओं पर, अपने पड़ोसियों पर तथा अपने भाइयों पर, यदि भाई के अतिरिक्त कोई अन्य छापा मारने के लिए न मिले, आक्रमण करना है।"[२] "ग़ज़्व" ने, जो उनके

१. सुयूती, "हुस्न अल-मुहाज़रह" (क़ाहेरा १३२१ हि०) भाग २ पृ० ५५
२. अबू तम्माम "अशआर अल-हमासह" (बोन १८२८ ई०) पृ० १७१

क़ौमी खेल-कूद थे, इसी वजह से अत्यधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था। मुहम्मद साहब के युद्धों को भी ग़ज्व के नाम से पुकारा जाता है और उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

क़बीलों के अलग-अलग रहने तथा सभी आदमियों के एक-दूसरे पर निर्भर होने के कारण इन लोगों मे एक प्रकार का प्रेम-भाव पैदा हो जाता था, जिसकी वजह से क़बीलों तथा क़ौमों के सगठन में अत्यधिक सहायता मिलती थी। यह भावना "असबियह" अथवा "असबियत" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के कारण एक क़बीला अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु दूसरे क़बीले से युद्ध करते समय अपने प्राणों की बलि देना बड़ी साधारण बात समझता था। बदवी भाट का यह गीत सर्वदा उसके क़बीले में गूंजता रहता था कि "अपने कबीले के प्रति निष्ठावान् रहो। कबीले का हक़ इतना अधिक है कि पति अपनी पत्नी को त्याग सकता है।"[१] क़बीले के नाम पर ही अरबों के नाम रखे जाते थे और एक क़बीले के सभी प्राणी उसके "बनू" अथवा सतान कहे जाते थे।

इस्लाम ने इन भावनाओं से पूर्ण रूप से लाभ उठाया और जब इस्लामी सेनाओं का संगठन हुआ तो सेना के विभिन्न दस्तों को क़बीलों के विभाजन के आधार पर बाँटकर उन्हे एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की प्रेरणा दी जाने लगी। किन्तु जब विजय तथा आगे बढ़ने का मार्ग धीरे-धीरे बन्द होने लगा तो इसी भावना के कारण अरबों का राज्य टुकड़े-टुकड़े भी हो गया।[२]

हिजाज़ का रेगिस्तानी भू-भाग भी अपने तीन नगरों, ताएफ़, मक्के तथा मदीने पर गर्व कर सकता है। ताएफ, मक्के की अपेक्षा अधिक उपजाऊ एवं आकर्षक नगर है।

१. **अल-मुबर्रद, "अल-कामिल" (लाइपज़िग १८६४ ई०) पृ० २२९**

२. **देखिए अरबी में फ़ुतूहुल बुल्दान (अंग्रेज़ी अनुवाद : हित्ती; द ओरिजिंस आफ़ द इस्लामिक स्टेट**—*The Origins of the Islamic State*, New York 1916; **अंग्रेज़ी में टी. ई. लारेंस "सेविन पिलर्स आफ़ विज़डम** (T. E. Lawrence : *Seven Pillars of Wisdom*); William R. Brown, *The Horse of the Desert* (New York 1929); *The Manners and Customs of the Rawala Bedouins* (New York 1928); Hamidullah *"Place of Islam in the History of Modern International Law"*; *"The City States of Mecca* (Islamic Culture, Hyderabad, July 1938 : *"The Muslim Conduct of State"*.

लाल सागर से ४० मील पर एक उजाड़, पथरीली घाटी में स्थित मक्का, इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। वहाँ के प्रसिद्ध पूजागृह "काबा" के कारण, जो क़ुरैश क़बीले की देख-रेख में था और जहाँ दूर-दूर से यात्री आया करते थे, नगर बड़ा समृद्ध हो गया था। उक़ाज़ का मेला केवल व्यापार का ही साधन न था, अपितु बड़े-बड़े विद्वान् भी उस समय वहाँ एकत्र होते थे। यसरिब अथवा मदीना, मक्के से लगभग तीन सौ मील उत्तर में स्थित है और उस समय भी यमन तथा शाम (सीरिया) के व्यापारियों द्वारा लाभान्वित हुआ करता था। यहाँ की भूमि भी उपजाऊ है। बनू नज़र तथा बनू क़ुरैज़ह नामक यहूदी क़बीलों ने यहाँ की कृषि का विशेष रूप से उत्कर्ष किया था। इस प्रकार हिजाजवाले भी सभ्यता के कुछ केन्द्रों से प्रभावित होते रहते थे। दक्षिणी अरब के प्रभाव के अतिरिक्त अबीसीनिया, ईरान तथा शामवालों की छाप भी यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति पर थी।

काबे की मूर्तिपूजा के साथ-साथ इस्लाम के अभ्युदय के समय हिजाज़ में यहूदी तथा ईसाई धर्म का भी काफ़ी जोर हो गया था, यद्यपि यह धर्म अपने मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा के कारण पतनशील थे। एकेश्वरवाद की आवाजें उठानेवाले भी कहीं-कहीं मिल जाते थे जो "हनीफ़ी" धर्म के अनुयायी कहलाते थे। अन्य मूर्तियों के साथ-साथ "हलह" अथवा क़ुरान शरीफ़ के शब्दो में "अल्लाह" को भी अरबवाले बड़ा महत्त्व देते थे।[1] "और यदि इन लोगों (काफिरो) से पूछो कि आकाश तथा भूमि को किसने पैदा किया और चद्रमा तथा सूर्य को किसने अपने वश में रखा, तो बोल उठेंगे कि अल्लाह ने, फिर किधर बहके जा रहे है।[2]"

हज़रत मुहम्मद

इसी वातावरण में २० अप्रैल ५७१ ई० को मुहम्मद साहब का मक्के के क़ुरैश क़बीले मे जन्म हुआ। इनके पूर्वजो मे क़ुसैय को मक्के के इतिहास मे बड़ा महत्त्व

१. देखिए, ताहा हुसेन, "अल अदबल जाहिली" (क़ाहेरा १९२७ ई०), इब्ने क़ुतैबह, "अल-शेर वल शुअरा" (लाइडेन १९०४), अल-अज़रक़ी, "अख़्बार मक्का" (लाइपज़िंग १८५८ ई०), इब्ने बतूता, Anne and Wilfred S. Blunt, "*The Seven Golden Odes of Pagan Arabia*" (London 1903); John L. Burckhardt, "*Travels in Arabia*(London 1829)

२. क़ुरान शरीफ़, सूरा अन्कबूत ६

प्राप्त है। क़ुरैश को संगठित करके उन्होंने काबे के यात्रियों के लिए भोजन और विशेष रूप से जल का प्रबन्ध किया। क़ुसैय के छः पुत्रों में अब्दे मनाफ़ उनके उत्तराधिकारी बने। अब्दे मनाफ़ के भी छः ही बेटे थे जिनमें हाशिम को उनके पिता के जीवन-काल में ही बड़ा महत्त्व प्राप्त हो गया। काबे के हाजियों के पीने के जल की इन्होंने बड़ी अच्छी व्यवस्था की। बैज़ंटाइन के शाहंशाह ने उन्हीं के प्रयत्न से क़ुरैश को व्यापारिक कर से मुक्त कर दिया। अबीसीनिया के बादशाह से भी उन्होंने इसी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त कीं। हाशिम के पुत्र, अब्दुल मुत्तलिब ने जमजम के कुंवे का पता लगवाकर उसे साफ़ कराया। हज़रत मुहम्मद के पिता अब्दुल्लाह इन्हीं के पुत्र थे, किन्तु अब्दुल मुत्तलिब के जीवनकाल में ही वे युवावस्था मे मृत्यु को प्राप्त हो गये। हजरत मुहम्मद का पालन-पोषण प्रारम्भ मे उनके दादा और उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके चाचा अबू तालिब ने किया, किन्तु अब्दुल मुत्तलिब की मृत्यु से हाशिम की संतान को बड़ा धक्का पहुँचा और अब्दुल मुत्तलिब का उत्तराधिकारी उमय्या का पुत्र हरब हो गया।

मुहम्मद साहब बाल्यावस्था से ही चिंतनशील व्यक्ति थे। अतः मक्के की विभिन्न विचारधाराओं का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। बाल्यावस्था से ही उन्होंने अपने चाचा अबू तालिब के साथ व्यापार के संबध में विभिन्न स्थानों की यात्रा प्रारम्भ कर दी और आस-पास के देश घूम-घूमकर देखे। २५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने ख़दीजा नामक एक धनी विधवा से विवाह कर लिया और उनके व्यापार के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों की यात्रा करने लगे। जो समय उनका अन्य कार्यों से बचता उसे वे मक्के के बाहर हिरा नामक गुफा में ध्यान-मग्न रहने में व्यतीत किया करते थे। इसी बीच में मुसलमानों के विश्वास के अनुसार ६१० ई० में उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरणा प्राप्त हुई कि ईश्वर एक है और वे उसके रसूल हैं और उन्हें इस्लाम धर्म का प्रचार करना चाहिए। वे अपने कार्य हेतु कटिबद्ध हो गये। इस्लाम की शिक्षा के अनुसार वे मक्केवालों की मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। इस कारण मक्केवालों ने उन्हें नाना प्रकार से तंग करना प्रारम्भ कर दिया। ६२० ई० में यस्रिब के ख़जरज क़बीले के कुछ लोग उक़ाज़ के मेले में मक्के पहुँचे और हज़रत मुहम्मद के प्रवचन से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें मदीने आमंत्रित कर लिया। हज़रत मुहम्मद अपने लगभग २०० अनुयायियों को गुप्त रूप से मदीने भेजकर स्वयं २४ सितम्बर ६२२ ई० को मक्के से मदीने चले गये। यह प्रसिद्ध प्रवास "हिजरत" कहलाता है और मक्के से मदीने जानेवाले हज़रत मुहम्मद के मित्र तथा सहायक "महाजिर" अथवा "हिजरत करनेवाले" कहलाते हैं। १७ वर्ष उपरान्त ख़लीफ़ा उमर ने १६ जुलाई से प्रारम्भ करके हिजरत

की महत्त्वपूर्ण घटना के आधार पर एक नये संवत् का प्रचलन कर दिया। मदीने में पहुँचकर हज़रत मुहम्मद के जीवन ने एक नयी करवट ली और वहाँवालों की सहायता से इस्लाम को बड़ी उन्नति प्राप्त हुई।

हज़रत मुहम्मद के मदीने के सहायक "अंसार" के नाम से प्रसिद्ध हुए। मदीने पहुँचते ही हज़रत मुहम्मद ने एक मस्जिद तथा अपनी पत्नियों के लिए छोटे-छोटे घरों का निर्माण कराया। "महाजिरों" ने छोटे-छोटे व्यापार प्रारम्भ कर दिये और मुहम्मद साहब के आदेशानुसार "महाजिर" तथा "अंसार" लोग भ्रातृ-भाव में बँध गये। किन्तु मक्केवालो के विरोध की भावनाएँ दब न सकीं और उन्होंने मदीने के यहूदियों को मुसलमानों के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ कर दिया और स्वयं भी आक्रमण की तैयारियाँ करने लगे। ६२४ ई० में मदीने से दक्षिण-पश्चिम में २० मील पर स्थित बद्र नामक स्थान पर हजरत मुहम्मद का मक्केवालों से युद्ध हुआ जिसमें मक्केवाले पराजित हो गये। ६२५ ई० में मक्केवालों ने उहुद के युद्ध में अपनी पराजय का बदला ले लिया। ६२७ ई० में मक्केवालों, बदवियों तथा अबीसीनिया के व्यापारियों ने मदीनेवालों पर पुनः चढ़ाई की, किन्तु हजरत मुहम्मद ने अपने एक ईरानी सहायक सलमान के कहने पर खाई खुदवाकर इस प्रकार अपनी रक्षा की कि मक्केवाले तंग आकर भाग गये। ६२८ ई० मे हज़रत मुहम्मद १४०० मुसलमानों सहित मक्के पहुँचे और "हुदैबिया" की सन्धि द्वारा प्राचीन शत्रुता को कुछ हद तक कम कर दिया। ६३०–३१ ई० में हज़रत मुहम्मद ने तबूक नामक ग़स्सानियों के राज्य के सीमांत पर पहुँचकर ईसाइयों से सन्धि कर ली और इसी वर्ष मक्के को भी पूर्ण रूप से विजय कर लिया और इस प्रकार काबे पर मुसलमानों का अधिकार स्थापित हो गया।

६३०–३१ ई० से ही दक्षिणी अरब एवं विभिन्न क़बीलों के दूत हज़रत मुहम्मद की सेवा मे पहुँचने लगे और उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे बहुत-से बदवी क़बीले मुसलमान हो गये। ६३१–३२ ई० में हजरत मुहम्मद ने अपने साथियों सहित बड़ी शान से मक्के का हज किया। किन्तु वे इसके उपरान्त अधिक दिन जीवित न रह सके और ८ जून ६३२ ई० को उनका निधन हो गया।[1]

१. देखिए, अरबी में इब्ने हिशाम, "सीरत"; अल-बुख़ारी, "सहीह"; तबरी, वाक़िदी, "मग़ाज़ी"; इब्ने साद, "तबक़ात"; शहरस्तानी, "मिलल वलनिहल" (लन्दन १८४२–६ ई०), Hitti, *"History of the Arabs"*; C, Brockelmann, *"History of the Islamic People,"* Pringle Kenne-

इस्लाम

मुसलमानों के विश्वास के अनुसार हज़रत मुहम्मद को समय-समय पर ईश्वर के आदेश 'जिबरील'' फ़िरिश्ते द्वारा प्राप्त होते रहते थे। यह आदेश हज़रत मुहम्मद के जीवनकाल में तो लोग कठस्थ कर लेते थे, किन्तु बाद में इन्हें खजूर की पत्तियों एवं सफेद पत्थर की तख्तियों पर लिखवाकर सुरक्षित किया जाने लगा। जब हजरत उस्मान (६४४–६५६ ई०) ख़लीफा हुए तो ६५१ ई० मे उन्होंने इन्हीं आदेशों अथवा 'क़ुरान'' को बड़े सु-व्यवस्थित ढंग से संकलित करा दिया। हजरत मुहम्मद के आचार-व्यवहार एवं उनकी वाणी भी बाद में धीरे-धीरे संकलित हुई और यह संकलन "हदीस" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस्लाम का धर्मविधान अथवा "शरीअत" या "शरा" कुरान तथा हदीस पर ही आधारित है। कुरान के अध्याय अथवा सूरे दो विभिन्न भागों में विभाजित हैं। एक तो वे सूरे जो 'हजरत' के मक्के के जीवन काल से सम्वन्धित है, और दूसरे वे जो उनके मदीने के जीवनवृत्त पर आधारित हैं। इन दोनों मे स्पष्ट अन्तर है। मक्के के सूरों में ईश्वर तथा मनुष्य के पारस्परिक सम्वन्धों एव ईश्वर के प्रति प्रेम भावनाओं का समावेश है। यह सूरे छोटे-छोटे है और इनकी सख्या लगभग ९० है, किन्तु मदीने के जीवन काल के सूरे संख्या में २४ है और क़ुरान के लगभग एक तिहाई भाग के बराबर हैं। वे नमाज, रोजे, हज, ज़कात, जेहाद सम्बन्धी आदेशों एवं अन्य धार्मिक नियमों पर प्रकाश डालते है। चोरी, सूद, व्यभिचार एव चरित्र सम्बन्धी अन्य समस्याओं तथा दासों के प्रति व्यवहार एवं अन्य कानूनों का इन्ही सूरो से पता चलता है। इनके अतिरिक्त प्राचीन काल के इतिहास से सम्बन्धित आद, समूद, लुकमान, अबरहा, सात सोनेवालों, आदम, नूह, इबराहीम, इस्माईल, मूसा, याकूब, यूसुफ, दाऊद, सुलेमान इत्यादि पैगम्बरों की कहानियाँ, जिनमें अधिकांश इंजील (बाइबिल) की ही कहानियों के समान हैं, कुरान में दी हुई है।

हज़रत मुहम्मद के बाद के प्रथम चार ख़लीफ़ा

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त सबसे बड़ा प्रश्न उनके उत्तराधिकारी की नियुक्ति का था। उत्तराधिकारी के प्रश्न पर मतभेद हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी और प्रारम्भ में इस मतभेद ने कोई उग्र रूप धारण नहीं किया। हजरत मुहम्मद

dy, *Arabian Society at the time of Muhammad*" (उर्दू) **शिबली नोमानी, "सीरतुन्नबी"**

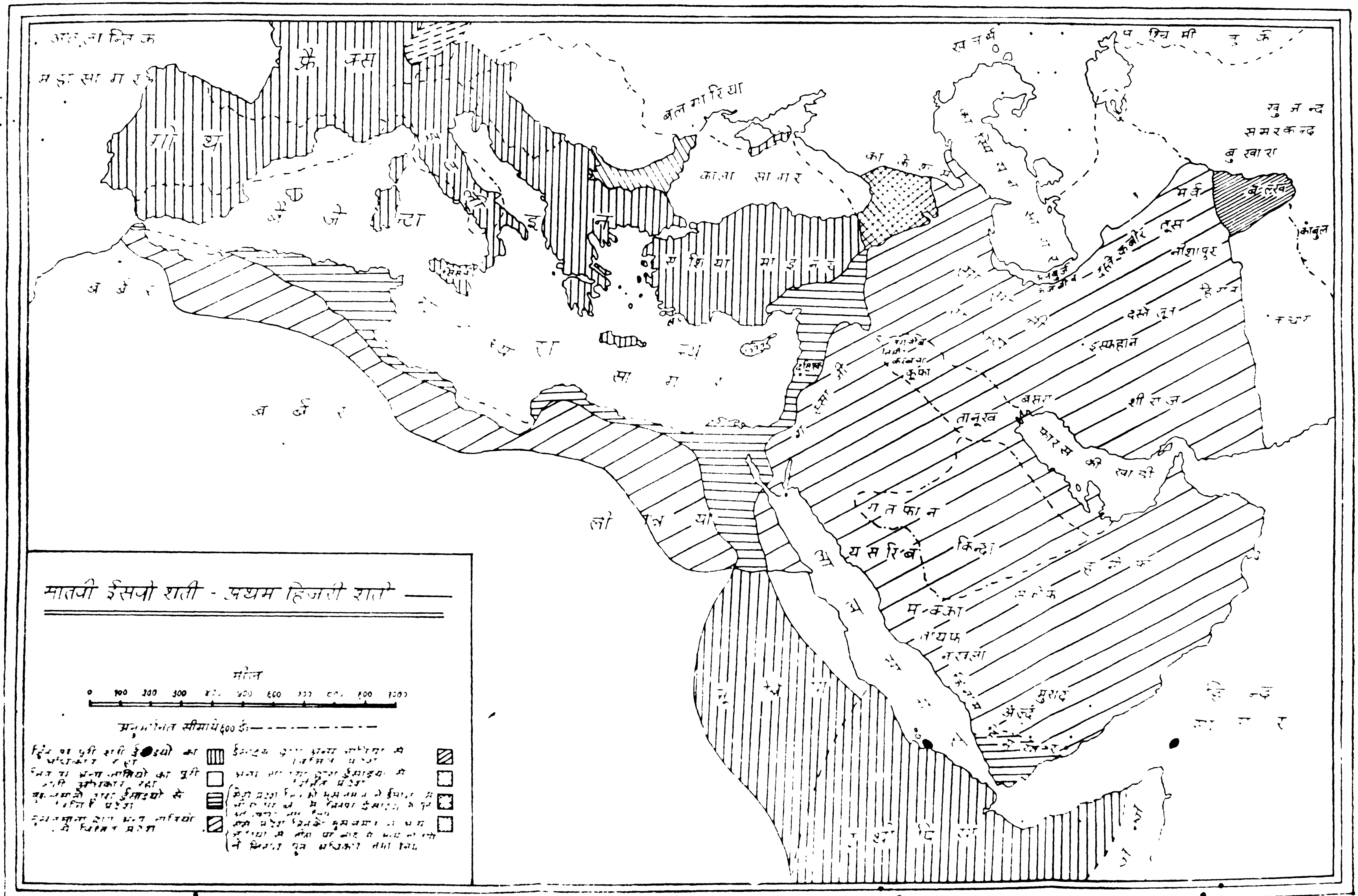
सातवीं ईसवी शती - प्रथम हिजरी शती
मील
0 100 200 300
600
1000
बलगारिया
काला सागर
खुजन्द
समरकन्द
बुखारा
मर्व
तूस
नीशापुर
काबुल
इस्फहान
कूफा
बसरा
शीराज
तानूख
फारस की खाड़ी
गतफान
यसरिब
किन्दा
मक्का
ताइफ
नजरान
मुराद

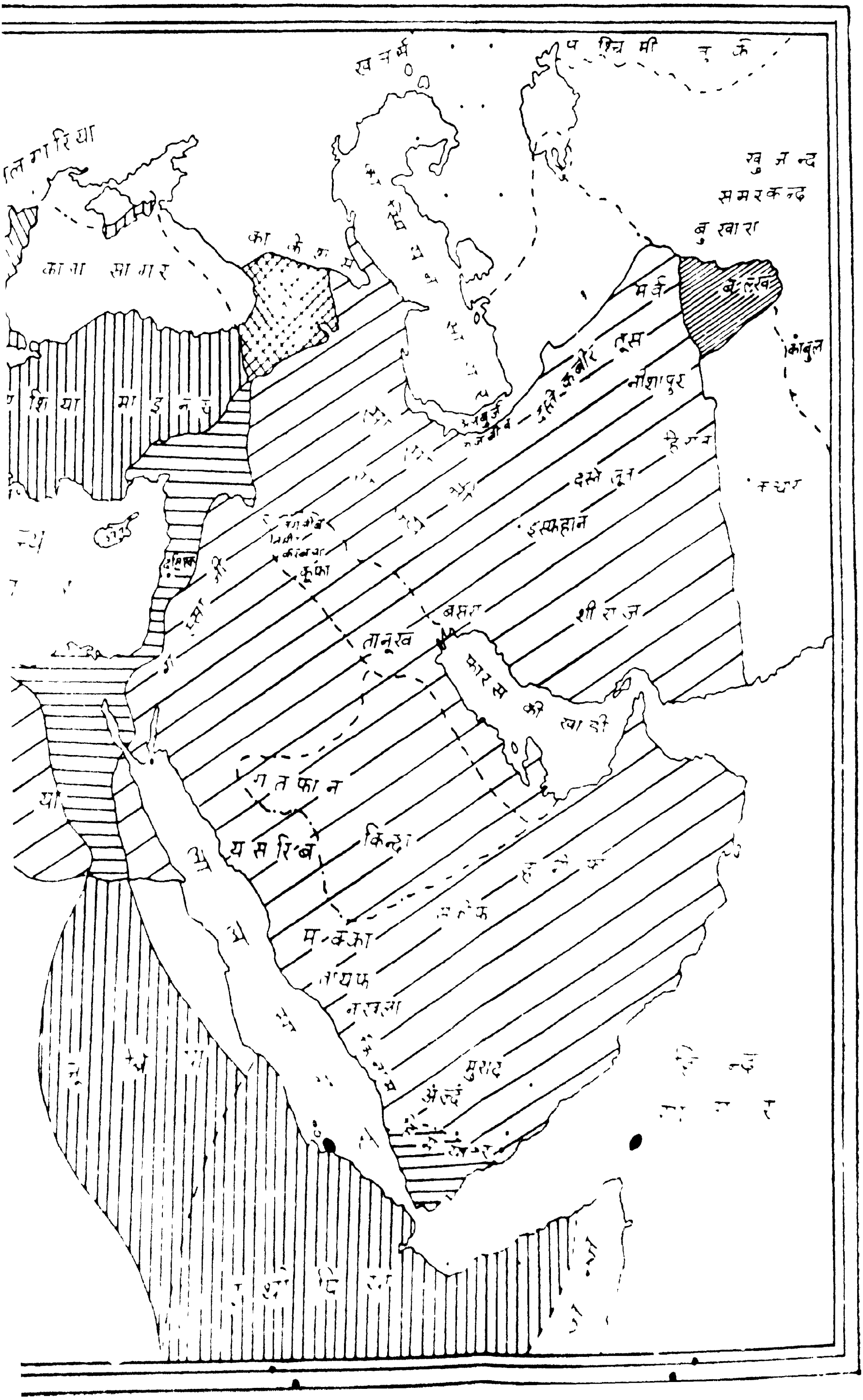

समरकन्द
बुखारा
मर्व
काबुल
नीशापुर
इस्फहान
शीराज
कूफा
बसरा
तानूख
फारस की खाड़ी
गतफान
यसरिब
किन्दा
मक्का
काला सागर

के ससुर वृद्ध अबू बक्र प्रथम खलीफ़ा नियुक्त हो गये। वे केवल दो वर्ष (६३२–६३४ ई०) तक ही खलीफ़ा रह सके। इसी बीच अरब के बहुत से क़बीलो ने विरोध प्रारम्भ कर दिया। खालिद बिन वलीद ने छ: मास मे इस विरोध का दमन करके मध्य अरब में एक प्रकार की शान्ति स्थापित कर दी, किन्तु अब अरबवालों को अन्य ऐसे स्थानों की खोज करना अनिवार्य था जहाँ वे इस्लाम के प्रचार के नाम पर अपने संगठन तथा युद्ध के नये नियमों की परीक्षा कर सकते। इसमे सन्देह नही कि उस समय के बदवी समाज मे कुरान की शिक्षा के कारण महान् क्रान्ति आ गयी थी और इस्लाम ने बदवियों के जीवन मे एक नव-चेतना तथा नव-स्फूर्ति का सचार कर दिया था। वे सब जब एक धर्म के सूत्र मे बँधकर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रेगिस्तानी क्षेत्र से निकलकर समृद्ध स्थानों की ओर बढ़े तो प्रत्येक स्थान पर विजय ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। ईरान के प्रसिद्ध सेनापति रुस्तम ने तो खुल्लमखुल्ला अरब आक्रमणकारियों से कह दिया कि "तुम्हारी आवश्यकताओं एवं दरिद्रता ने, जो कुछ तुम कर रहे हो उसके लिए तुम्हे विवश कर दिया है।"[1] प्रारम्भ मे तो अरबों के इन छापों का उद्देश्य केवल अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त करना ही रहा होगा, किन्तु धीरे-धीरे एक दृढ़ साम्राज्य की नीव भी पड गयी। जो स्थान विजित हुए वहाँ के सब निवासियो ने तुरन्त हो न तो स्वय इस्लाम धर्म स्वीकार किया न उन सबको मुसलमान बनाया ही जा सका, वे १००–२०० वर्ष बाद तक विभिन्न परिस्थितियो मे शनैः-शनैः मुसलमान होते गये। अत: इन विजयों को अरबी सगठन की विजय ही कहना चाहिए, किन्तु इस तथ्य की भी उपेक्षा सम्भव नही कि इस्लाम ही इस सगठन का एक मात्र स्रोत था और अरबवाले शाम, मेसोपोटामिया, ईरान तथा अन्य देशों की ओर बढते चले गये। उस समय के निरकुश साम्राज्यो एवं जालिम पुजारियों तथा पादरियों के कारण वहाँ के निवासियो को नित्य घोर कष्टों का सामना करना पडता था, अत: वे कोई न कोई परिवर्तन चाहते ही थे। इस्लाम ने इस कमी को पूरा किया।[2]

१. फ़ुतूहुल बुल्दान पृ० २५६–५७, हित्ती द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद पृ० ४११–१२.

२. प्रारम्भिक विजयों के विषय में देखिए, तबरी, वाक़ेदी, याक़ूबी, इब्न अल-असीर तथा मसऊदी के इतिहास एवं अल बसरी की फ़ुतूह-अल-शाम, इब्ने असाकिर की "तारीख़ अल-कबीर", "फ़ुतूहुल बुल्दान", इब्न अल-तिक़्तक़ा, "अल फ़ख़री", दीनावरी, "अल-अख़बार अल-तिवाल," इब्न अब्द अल हकम, "फ़ुतूह मिस्र" तथा अंग्रेजी में Olmstead, "*History of Palestine*", A. S.Butler,

सितम्बर ६३५ ई० में ६ मास के अवरोध के उपरान्त ख़ालिद ने दमिश्क़ को विजय कर लिया। ७४० ई० तक उत्तर से दक्षिण तक पूरा सीरिया अथवा शाम मुसलमानों के अधीन हो गया। सीरिया से अरब आक्रमणकारी सुगमतापूर्वक मिस्र और तदुपरान्त उत्तरी अफ़ीक़ा में पहुँच गये। वहीं से अरमीनिया, उत्तरी मेसोपोटामिया, जॉर्जिया, अज़रबाईजान भी शनैः-शनैः विजय कर लिये गये।

ईरान की विजय के लिए ख़लीफ़ा उमर (६३४–६४४ ई०) ने साद इब्ने अबी वक़्क़ास को चुना। उसने अपने ६ हज़ार सैनिकों को लेकर ३१ मई ६३७ ई० अथवा प्रथम जून को ईरान के सेनापति रुस्तम को हीरह् के समीप क़ादिसिया के रणक्षेत्र में घोर युद्ध के उपरान्त पराजित कर दिया। रुस्तम मारा गया। जून में ही साद ने फ़ारसवालों की राजधानी मदायन पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। ऐवाने किसरा अथवा किसरा के भव्य भवनों को देखकर अरबों का चकित हो जाना स्वाभाविक ही था। यदि इस अवसर पर उन लोगों ने काफ़ूर का प्रयोग नमक के स्थान पर करना प्रारम्भ कर दिया तो कोई आश्चर्य न होना चाहिए। इब्ने ख़लदून ने अपने मुक़द्दमे में इन ऐतिहासिक तथ्यों से बड़े महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।

ईरान की विजय के उपरान्त अरबों ने बसरा को अपनी छावनी बनाकर अपने आक्रमणकारियों को विभिन्न दिशाओं में भेजना प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन नैनवा के स्थान पर स्थित मोसल नामक नगर ६४१ ई० मे अरबों के अधिकार में आ गया। ६४९–५० ई० में इसतख़ पर भी विजय प्राप्त हो गयी। इससे पूर्व ही अरब आक्रमणकारी ख़ुरासान तथा आक्सस तक पहुँचने लगे। ६४३ ई० मे बिलोचिस्तान के समुद्र के किनारे के मकरान नामक भाग पर अरबों का अधिकार स्थापित हो गया। ६४२ ई० में बैज़ंटाइन अथवा रूम के पूर्वी साम्राज्य के अरमीनिया पर आक्रमण हेतु हबीब इब्न मसलमह् को भेजा गया और ६५२ ई० में उसने पूर्णरूप से विजय प्राप्त कर ली। कूफ़े की छावनी अरबों के इस नये साम्राज्य की राजधानी बन गयी और हज़रत उमर के आदेश के विरुद्ध मदायन के राजप्रासादों के नमूने के महल बनवाने के प्रयत्न किये गये।

"The Arab Conquest of Egypt", Hitti *"History of the Arabs"*, C. Brockelmann, *"History of the Islamic People"*, Lane Poole, *"The First Mohammedan Treaties with Christians"* (Proceedings of the Royal Irish Academy. Vol. 24, 1904)

सभ्यता का प्राचीन केन्द्र मिस्र, शाम तथा हिजाज़ दोनों से ही अत्यधिक निकट है। यहीं से उत्तरी अफ़्रीक़ा पर आक्रमण करने के द्वार खुल जाते हैं। सिकन्दरिया उस समय बैज़ंटाइन के समुद्री बेड़े का मुख्य केन्द्र था। इसके अतिरिक्त यहाँ की धन-संम्पत्ति एवं उपजाऊ भूमि की प्रशंसा से अरबी साहित्य भरा हुआ था। यद्यपि ख़लीफ़ा उमर तथा उस्मान दोनों मिस्र पर आक्रमण करने के पक्ष में न थे, किन्तु ४५ वर्षीय योद्धा अमर बिन आस, जो जाहिलिया के युग से मिस्र से परिचित था, दिसम्बर, ६३९ ई० में उत्तरी मिस्र के प्रसिद्ध नगर फ़रमा (पेलूसियम) की ओर पहुँच गया और एक मास के युद्ध के उपरान्त उसे विजय कर लिया। जुलाई, ६४० ई० में अरब सेनाओं को मिस्र के विरुद्ध एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त हो गयी। इसी बीच में अमर इब्ने आस के पास २० हज़ार अरब सैनिक और पहुँच गये जिनकी सहायता से वह सिकन्दरिया तक बढ़ता चला गया और ८ नवम्बर ६४१ ई० को वहाँ के मुख्य पादरी से सन्धि कर ली। सितम्बर ६४२ ई० मे सिकन्दरिया की सेनाओं ने नगर खाली कर दिया और अमर इब्ने आस को पूर्णरूप से उस पर अधिकार प्राप्त हो गया। हेलियोपोलिस नामक छाँवनी पर फ़ुज्तात नामक एक अन्य नगर बसाया गया जो कि शाम की जाबियह् तथा बसरा और कूफा के समान अरब सेना की छावनी बन गया।

६४९ ई० मे मुआविया ने क़ुबरुस (सिपरस) पर, जो कि बैज़ंटाइन राज्य का समद्रीय केन्द्र था, अधिकार जमा लिया। इस प्रकार अरब समुद्री युद्ध में भी धीरे-धीरे भाग लेने लगे। ६५५ ई० में मुआविया के शामी-मिस्री बेड़े ने बैज़टाइन के ५०० जहाजी बेड़े फिनिक्स के समीप अपने अधिकार मे कर लिये। ६६८ अथवा ६६९ ई० में एक जहाज़ी बेड़ा सिक़िल्लिया (सिसली) तक पहुँच गया और उसने वहाँ पर भी लूट-मार की।

मेसोपोटामिया, ईरान तथा मिस्र की विजय के उपरान्त अरब न केवल एक बहुत बड़े साम्राज्य के ही स्वामी हुए अपितु उन्होने विश्व की सभ्यता के प्राचीनतम केन्द्रों पर भी अधिकार जमा लिया। कला, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति तथा सभ्यता एवं सस्कृति के अन्य क्षेत्रों में बदवियों ने किसी प्रकार कोई उन्नति न की थी, अतः वे इन स्थानों को केवल "ईश्वर की वाणी" तथा हज़रत मुहम्मद के चरित्र के उच्च उदाहरणो के अतिरिक्त कोई अन्य बात सिखा ही क्या सकते थे। अतः इन देशों की सभ्यताओं ने अरब वालों पर अपनी पूरी-पूरी छाप डाली। जिस प्रकार विजयी रोमनों के राज्य में पराजित यूनानी सभ्यता की ज्योति सदा ही जलती रही, उसी प्रकार अरब के बदवियों की सभ्यता ने भी मिस्री, इराक़ी, ईरानी तथा यूनानी सभ्यता से प्रभावित होकर अरबी भाषा

द्वारा एक नया रूप धारण कर लिया। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि अरब सभ्यता मेसोपोटामिया की प्राचीन सैमिटिक सभ्यता का ही ऐसा रूप बन गयी जो असीरिया, बेबीलोनिया, फिनीशिया, अरमीनिया तथा हेब्रू सभ्यता पर आधारित था।

हज़रत अबू बक्र के समय मे विजयो का जो क्रम प्रारम्भ हुआ वह हजरत उमर के ज़माने में उन्नति के शिखर पर पहुँच गया, पर हजरत अली (६५६–६६१ ई०) के समय तक पहुँचते-पहुँचते यह धारा रुक गयी। इस प्रकार हजरत मुहम्मद के निधन के उपरान्त एक ही पीढ़ी मे अरब राज्य आक्सस से उत्तरी अफ़ीक़ा तक पहुँच गया। अब सभ्यता एवं संस्कृति के उस चक्र का चलना स्वाभाविक ही था जिसका विश्लेषण इब्ने ख़लदून ने अपने मुकद्दमे में विस्तार से किया है।

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त ही कुछ लोग उनके भाई एवं उनकी प्रिय पुत्री फ़ातेमा के पति हजरत अली को अपना इमाम अथवा नेता मानने लगे थे और उनका विचार था कि हजरत अबू बक्र का ख़लीफा होना घोर अन्याय था। इस प्रकार मुसलमानों के बहुत से दल बन गये जिनमे शीओं का दल खुल्लमखुल्ला सुन्नियो का विरोधी हो गया। ६५६ ई० मे हजरत अली, हजरत उस्मान के स्थान पर खलीफा हुए, किन्तु उन्हें मुहम्मद साहब की पत्नी एव हजरत अबू बक्र की पुत्री हजरत आयशा के घोर विरोध का सामना करना पड़ा। हज़रत आयशा ऊँट पर सवार होकर अपने सहायकों सहित हज़रत अली से युद्ध करने निकली। ९ दिसम्बर ६५६ ई० को बसरा के बाहर हज़रत आयशा की पराजय हुई। हजरत आयशा के ऊँट पर सवार होने के कारण यह युद्ध जमल (ऊँट) का युद्ध कहलाता है। हजरत अली ने अपनी राजधानी कूफे में बनायी, किन्तु शाम के गवर्नर मुआविया इब्ने अबी सुफयान ने आपका विरोध प्रारम्भ कर दिया। फुरात नदी के पश्चिम मे रक्का के समीप सिफ्फीन के रण-क्षेत्र में हज़रत अली की इराकी तथा मुआविया की शाम की सेनाओं में युद्ध हुआ जो कई सप्ताह तक चलता रहा, किन्तु २६ जुलाई ६५७ ई० को जब हजरत अली को विजय प्राप्त होनेवाली थी, अमर इब्ने आस की युक्ति से विवाद का निर्णय मध्यस्थों को सौप दिया गया। मुआविया की ओर से अमर इब्ने आस तथा हजरत अली की ओर से मूसा अल-अशअरी मध्यस्थ नियुक्त हुए। अमर इब्ने आस ने मूसा से अपनी युक्ति द्वारा हज़रत अली को पदच्युत करा दिया। इससे हज़रत अली की शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा। उनके सहायकों का एक बहुत बड़ा समूह मध्यस्थों की नियुक्ति पर हज़रत अली का विरोधी बन गया। ये लोग ख़ारजी कहलाये और ६५९ ई० में हजरत अली को नहरवान नामक नहर के किनारे उन लोगों से युद्ध करना पड़ा। यद्यपि वे पराजित

हो गये, किन्तु उनकी शक्ति किसी प्रकार कम न हुई और वे अब्बासियों के राज्य-काल तक विभिन्न प्रकार के आदोलन चलाते रहे । जनवरी ६६१ ई० में हज़रत अली की हत्या करा दी गयी और उनके स्थान पर मुआविया (६६१–६८० ई०) ईलिया में (यरोशलम के समीप) खलीफ़ा हो गये । मुआविया ने दमिश्क़ को ही राजधानी बनाये रखा । उनके खलीफ़ा हो जाने के उपरान्त हज़रत मुहम्मद के बाद के प्रथम चार खलीफाओं का युग समाप्त हो गया और बनी उमय्या की खिलाफत प्रारम्भ हुई।

मुआविया ने अपने पुत्र यज़ीद (६८०–६८३ ई०) को अपने स्थान पर खलीफ़ा नियुक्त किया । यजीद के राज्यकाल मे १० मुहर्रम ६१ हि० (१० अक्टूबर ६८० ई०) को अमर इब्ने साद ने लगभग ४००० अश्वारोहियो सहित कूफे से २५ मील उत्तर-पश्चिम मे करबला मे हजरत अली के पुत्र इमाम हुसेन एव उनके १०० से कम सहायकों को घेरकर शहीद कर दिया । इमाम हुसेन के वध के कारण शीओं का विरोध और भी बढ गया । बनी उमय्या के विरोधी इस करुणाजनक घटना को बहाना बनाकर उनके विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यन्त्र करने मे सफल होने लगे ।

उमय्या खलीफाओं मे अब्दुल मलिक (६८५–७०५ ई०) तथा वलीद (७०५–७१४ ई०) बड़े प्रसिद्ध हुए है । उनके समय मे नये देशों की विजय का दूसरा क्रम प्रारम्भ हुआ । हज्जाज इब्ने यूसुफ जो हिजाज मे स्थित तायफ़ नामक स्थान का एक अध्यापक था, ६९२ ई० मे अरब का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया । दो वर्ष में उसने हिजाज के विद्रोहियों को बुरी तरह कुचल दिया । ६९४ ई० मे वह इराक के विभिन्न राजनीतिक एव धार्मिक दलो के विद्रोह के दमन हेतु नियुक्त किया गया । उसने कुछ ही वर्षों मे इराक तथा ईरान के बहुत बड़े भाग की अशान्ति का कुछ समय के लिए अन्त कर दिया । उसके एक सेनापति कुतैबह इब्ने मुस्लिम ने ७०५ ई० में बल्ख़, ७०६–९ ई० में बुखारा तथा आसपास के स्थान (७१०–१२ ई०) एवं समरक़न्द, ख्वारिज़्म तथा पश्चिम की ओर के अन्य देश विजय कर लिये । ७१३–१५ ई० में उसने फरग़ाना पर भी आक्रमण किया । बुखारा, बल्ख तथा समरक़न्द बौद्ध धर्म के केन्द्र थे । इस प्रकार अरबों को एक नयी सस्कृति के सम्पर्क में आने का अवसर मिल गया । खलीफा हिशाम (७२४–४३ ई०) द्वारा नियुक्त ट्रांसाक्ज़ियाना का गवर्नर नस्र ७३८–४० ई० के बीच चीन तक पहुँच गया । ७५१ ई० मे अरबो ने समरक़न्द के उत्तर-पूर्व मे स्थित शाश (ताशकन्द) को भी विजय कर लिया । इस प्रकार मध्य एशिया मे मुसलमानों का प्रभुत्व पूर्णरूप से स्थापित हो गया । बौद्ध धर्म के उपरान्त अरबों का सम्पर्क चीनियों से भी हुआ और मंगोलों ने इस्लाम के इतिहास में महत्त्वपूर्ण

भाग लिया। ७१० ई० में मुहम्मद बिन क़ासिम मुकराम को पूर्णरूप से अपने अधिकार में करता हुआ ७११–१२ ई० में सिन्ध पहुँचा और सिन्ध विजय करते हुए ७१३ ई० में मुल्तान तक पहुँच गया।

मिस्र की विजय के बाद ही पश्चिम दिशा में इफ़रीक़िया पर भी आक्रमण प्रारम्भ कर दिये गये थे। ६७० ई० में मुआविया के एक सेनापति उक़बा इब्ने नाफ़े ने क़ैरवान नगर की स्थापना करके बरबर क़बीलों पर छापे मारना प्रारम्भ कर दिये। ६७८ ई० में हस्सान इब्ने नोमान ग़स्सानी ने बैज़नटाइन शक्ति का अन्त करके कारथेज पर अधिकार जमा लिया और बरबर क़बीलों को अच्छी तरह कुचल दिया। हसन लगभग ६९९ ई० तक इफ़रीक़िया का गवर्नर रहा। उसके उपरान्त मूसा इब्ने नुसैर को उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया और क़ैरवान की राजधानी को मिस्र से पृथक् करके दमिश्क़ के ख़लीफ़ा के अधीन कर दिया गया। उसने अपने राज्य को तनजा (तांजीर) तक बढ़ा लिया। जब मूसा ने उत्तरी अफ़्रीक़ा के समुद्रीय तट को अटलांटिक तक विजय कर लिया तो दक्षिण-पश्चिमी यूरोप की विजय के द्वार भी खुल गये। ७११ ई० में मूसा का एक बरबर सहायक तारिक़ स्पेन तक पहुँच गया और शीघ्र ही उन्दलुस (आईबेरियन पेनिंसुला) पर भी अधिकार जमा लिया गया। वे निरन्तर बढ़ते ही गये और फ्रांस में प्रविष्ट होकर दक्षिणी यूरोप में फैल गये, किन्तु फ्रैंक एवं अन्य जातियों ने चार्ल्स मोर्टल के नेतृत्व में फ़्रांस में पाइतिये के पास तूर के युद्ध में अरबों को पराजित करके (७३२ ई०) उनके क़दम रोक दिये।

इस प्रकार हज़रत मुहम्मद के निधन से ७३२ ई० तक अर्थात् १०० वर्ष के भीतर उनके अनुयायियों ने बिसके की खाड़ी से लेकर सिन्ध नदी तथा चीन तक और अरब सागर से लेकर नील नदी तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। अरबों की राजधानी दमिश्क़ के नव-निर्मित गगनचुम्बी राजप्रासाद, उद्यान एवं भोग-विलास के साधन साधारण बदवियों को उस समय भी आश्चर्यचकित करते रहते थे।

बनी उमय्या की राज्यव्यवस्था

बनी उमय्या तथा बनी अब्बास के राज्यकाल में भी प्रान्तों का विभाजन बैजनटाइन तथा ईरानी साम्राज्य के विभाजन के आधार पर रहा।[1] मुख्य प्रान्त इस प्रकार थे—

१. पृ० १२ पर जिन ग्रंथों का उल्लेख हुआ है उनके अतिरिक्त देखिए "अल-मावरदी" "अल-अहकाम-अल-सुल्तानियह" इब्ने ख़लदून, "मुक़द्दमा" अंग्रेजी में, J. B.

१—सीरिया, फ़िलिस्तीन ।

२—कूफ़ा इराक़ सहित ।

३—बसरा, ईरान, सिजिस्तान, ख़ुरासान, बहरैन, उमान तथा नज्द एवं यमाम सहित ।

४—अरमीनिया ।

५—हिजाज़ ।

६—करमान तथा भारत के सीमान्त प्रान्त ।

७—मिस्र ।

८—इफ़रीक़िया ।

९—यमन तथा शेष दक्षिणी अरब ।

कुछ समय उपरान्त थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके समस्त अरब राज्य पाँच मुख्य अधिकारियों के अधीन कर दिया गया । मुआविया ने बसरे तथा कूफ़े के राज्य को मिला दिया और कूफ़े को राजधानी बना दिया । बाद में इराक़ के गवर्नर को अपना नायब ख़ुरासान तथा ट्रांसाक्जियाना के लिए अलग से नियुक्त करने की अनुमति दे दी गयी जो कि साधारणतः मर्व में रहता था । इसी प्रकार सिन्ध तथा पंजाब के हाकिम अलग हो गये । हिजाज़, यमन तथा मध्य अरब को एक हाकिम के अधीन कर दिया गया । अल जज़ीरह, दजला तथा फ़ुरात के बीच का भाग, अरमीनिया में मिला दिया गया और अजरबाईजान तथा एशिया माइनर (कोचक, लघु) के कुछ भागों को मिलाकर तीसरा प्रान्त बन गया । मिस्र के ऊपर तथा नीचे के भाग को मिलाकर चौथा प्रान्त और इफ़रीक़िया को, जिसमें उत्तरी अफ़्रीक़ा तथा सिसली और आस-पास के द्वीप सम्मिलित थे, पाँचवाँ प्रान्त बनाया गया । यहाँ की राजधानी क़ैरवान थी । हाकिम (गवर्नर) राज्यकर वसूल करने के लिए अपने आमिल (अधिकारी) नियुक्त करता था । स्थानीय व्यय वहीं की आय से पूरा किया जाता था और जो कुछ बचता था वह ख़लीफ़ा के ख़जाने मे भेज दिया जाता था । क़ज़ा (न्याय) विभाग केवल मुसलमानों

Bury, "*The Imperial Administrative System in the Ninth Century*", Morris Jastrow Jr., "*The Civilization of Babylonia and Assyria*", K. A. C. Creswell, "*Early Muslim Architecture*", A.S.Wensinck, "*A Hand book of early Muhammedan Tradition*, Nicholson, "*A Literary History of the Arabs*"

के लिए सीमित था। अन्य लोग अपनी प्राचीन प्रथाओं का ही पालन करते थे। सेना का प्रबन्ध बैज़नटाइन नियमो पर आधारित था। सेना पाँच भागों मे विभाजित थी। मध्य भाग, दायाँ और बायाँ भाग तथा आगे और पीछे के भाग।. दमिश्क़ में जो सेना भरती की जाती थी उसमें सीरिया निवासी अथवा शामी अरब होते थे।. जहाज़ी बेड़ा बैजंटाइन नियमों पर तैयार किया गया।

सामाजिक दशा

राज्य में प्रमुख स्थान मुसलमानों को प्राप्त था। उन बदवी अरबों तथा लोगो को, जो ख़लीफ़ाओं के निकटवर्ती अथवा विश्वासपात्र होते थे, विशेष अधिकार प्राप्त होते थे। उनसे नीचे के ऐसे मुसलमान, जो बाद में इस्लाम स्वीकार करते थे, मवाली कहलाते थे। वे निम्नवर्ग के समझे जाते थे। यद्यपि कहने को तो इस्लाम ने सभी मुसलमानों को भाई-भाई बना दिया था, किन्तु वास्तव मे ऊंच-नीच का अन्तर अरब राज्य में भी समाप्त न हो पाया था। मवालियो ने धीरे-धीरे उच्च वश के अरबो से सम्पर्क स्थापित करके तथा शादी-ब्याह द्वारा ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया और बहुत-से राजनीतिक आन्दोलन चलाकर अपने लिए उच्च स्थान प्राप्त करने की कोशिश की, किन्तु समस्त भेद-भाव पूर्णरूप से कभी न मिट सके। उस समय के अरब राज्य में तीसरा वर्ग ज़िम्मियों अथवा उन ईसाइयों, यहूदियों आदि का था जिन्होंने इस्लाम स्वीकार न किया था, अपितु जिजिया अदा किया करते थे, जिसके कारण उनकी हर प्रकार की रक्षा करना मुसलमानो का कर्त्तव्य समझा जाता था। सर्वप्रथम यह अधिकार कुरान के अनुसार केवल यहूदियों तथा ईसाइयों को ही प्राप्त था, किन्तु धीरे-धीरे यह अधिकार अग्निपूजकों और बरबर काफ़िरों तथा अन्य जातिवालों को भी प्राप्त हो गया। सबसे निम्नवर्ग दासों का था। यद्यपि इस्लामी शरीअत के अनुसार कोई मुसलमान दास न बनाया जा सकता था, किन्तु अन्य धर्मवाले इस्लाम स्वीकार कर लेने के उपरान्त भी वास्तव मे समाज में बहुत अधिक न उठ पाते थे। पूर्व तथा मध्य अफ़्रीक़ा के काले दास, फ़रग़ाना, चीन तथा तुर्किस्तान के पीले ग़ुलाम और निकट पूर्व एवं दक्षिणी यूरोप के सफ़ेद दास बाज़ारों में बिकते थे और उनका मूल्य उनकी योग्यता तथा रूप-रंग के अनुसार निश्चित होता था। दासियों अथवा कनीजों के साथ विवाह तो नहीं हो सकता था, किन्तु वे रखैल स्त्रियों के समान होती थी। उनसे जो संतान उत्पन्न होती वह स्वामी की होती थी और दासी को "उम्मे वलद" अथवा बच्चों की

माता का सम्मान प्राप्त हो जाता था। वह अपने पति-स्वामी द्वारा बेची नहीं जा सकती थी, अपितु मृत्यु के उपरान्त मुक्त कर दी जाती थी।

उमय्या काल का सांस्कृतिक जीवन

उमय्या राज्य में जाहीलिया युग के निकट होने के कारण साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान की उतनी उन्नति तो न हो सकी, जितनी कि अब्बासियों के राज्यकाल में हुई, किन्तु फिर भी संस्कृति के क्षेत्र में उमय्या वंशवालों ने थोड़ा-बहुत योगदान अवश्य किया। कूफा और बसरा दोनों नगर उमय्या राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँच गये। क़ुरान शरीफ के अध्ययन तथा इस्लाम के धर्मविधान को नियमित रूप देने की आवश्यकता के कारण अरबी भाषाविज्ञान की बड़ी उन्नति हुई और साथ ही साथ हज़रत मुहम्मद की हदीसें जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए ढूंढ़ी जाने लगीं और कुछ लोगों ने तो विशेष रूप से हदीसें गढ़ना अपना व्यवसाय बना लिया। इस्लामी धर्म-विधान अथवा फिकह, जिसका स्रोत क़ुरान शरीफ़ तथा हदीस है, रोमन कानून के समान निश्चित रूप मे तैयार होने लगा। अरब इतिहास-रचना के काल का भी उसी युग से अभ्युदय हुआ। हदीस अर्थात् हजरत मुहम्मद की सीरत (जीवनी) तथा विजयों (मगाजी) के विवरणों के संकलन की आवश्यकता ने इतिहास के ज्ञान को उन्नति प्रदान की।

उमय्या काल से ही अनेक धर्मों पर आधारित दार्शनिक आन्दोलन प्रारम्भ हो गये थे। ८वी शती ई० के प्रथम आधे भाग मे वासिल इब्ने अता ने मोतजेला (हेतुवादी) विचारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। वह हसन बसरी (जन्म ६४२ ई०, मृत्यु ७२८ ई०) का शिष्य था जो कदर[1] के सिद्धान्तों को मानता था। इसी सिद्धांत से मोतजेला दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। उनका मुख्य सिद्धान्त था कि "जो गुनाहे कबीरा[2]

१. क़दर अथवा तक़दीर, मुसलमानों के धार्मिक विश्वासों का एक मुख्य सिद्धान्त है। इसके अनुसार जो कुछ अच्छा या बुरा हो गया, अथवा हो रहा है या होगा, सबका सब ईश्वर की इच्छा से होता है, जो कि भाग्य की लेखनी द्वारा "लोहे महफ़ूज" (सुरक्षित तख़्ती) पर लिख दिया गया है।

२. गुनाह अथवा पाप मुसलमानों के अनुसार दो भागों में विभाजित किये जाते हैं, सग़ीरह (साधारण) और कबीरा अथवा घोर पाप, जिनका कड़े शब्दों में निषेध हुआ है और जिनके लिए बड़े-बड़े दंड निश्चित हुए हैं।

करता है वह धर्मनिष्ठ मुसलमानों की श्रेणी से गिर जाता है, किन्तु क़ाफ़िर नहीं हो जाता अपितु मध्य की श्रेणी का स्वामी होता है। मनुष्य जो कुछ करता है वह स्वयं करता है।"

कला के क्षेत्र मे उमय्या काल में मस्जिदों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। मस्जिदों में अधिक संख्या में लोगों के नमाज़ पढ़ने का प्रबन्ध करना पड़ता है, अतः इस आवश्यकता की दृष्टि से स्थानीय शैलियों के आधार पर मेहराब, मक़-सूरा एवं गुम्बद के निर्माण की कला को उन्नत किया गया। जिस दिशा में नमाज़ पढ़ी जाती है उसका पता मेहराब से चलता है। मक़सूरा की आवश्यकता ख़लीफ़ाओं की प्रतिरक्षा के विचार से हुई, जहाँ वे सबसे अलग भी रह सकते थे और एकान्त मे ईश्वर का ध्यान भी कर सकते थे। इसी प्रकार बनी उमय्या युग में मीनारों की भी आवश्यकता हुई और उन्हे भी मस्जिद का विशेष अग बना लिया गया। उमय्या काल में कुछ विशाल भवन बनवाये गये, किन्तु महलों के निर्माण मे कोई अधिक प्रगति न हुई।

यद्यपि इस्लाम ने सगीत पर विशेष प्रतिबन्ध लगा रखा था, किन्तु उमय्या काल में यह बधन धीरे-धीरे टूटता गया और सगीत के बिना राजप्रासाद की महफिलें सूनी ही समझी जाने लगीं। इस्लाम के अनुशासन का पालन कुछ थोडे-से ही लोगों तक सीमित था, अन्यथा अरबों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में बहुत बड़ी क्रान्ति आ गयी। भोगविलास के साधन, जिनके लिए हज़रत उमर भी कभी-कभी अपने सेनापतियों को फटकारा करते थे, बढ़ते गये। मुआविया के पुत्र यजीद के राज्यकाल में तो खुल्लमखुल्ला मदिरा का प्रयोग होने लगा। संगीत तथा नृत्य के बिना ख़लीफ़ा को किसी समय चैन न आता था। यजीद के बाद भी मदिरापान, संगीत तथा नृत्य दरबार की विशेषता बने रहे। महल को सजाने के लिए चित्रकला, जिसका निषेध भी इस्लाम द्वारा हुआ है, खुल्लम-खुल्ला प्रचलित हुई।

अब्बासियों का प्रचार

इस प्रकार उमय्या राज्यकाल मे ही इस्लाम के बहुत से कट्टर नियमों की या तो खुल्लम-खुल्ला अवहेलना होने लगी और या उनके लिए इस्लामी धर्मशास्त्रों से ढूंढ़-ढूंढ़कर कोई-न-कोई बहाने तराशे जाने लगे और जैसा कि इब्ने ख़लदून ने सिद्ध किया है, सभ्यता एव संस्कृति की आवश्यकताओ को इस्लाम के सारे नियमों पर प्राथ-मिकता प्राप्त हो गयी। अब्बासी राज्यकाल में तो यह धारा उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गयी। किन्तु अब्बासियों ने भी प्रारम्भ में उमय्या राज्य को समाप्त करने

के लिए उनकी इन धर्म-विरोधी बातों का प्रचार करके लोगों को बुरी तरह उभारा। हज़रत अली के अनुयायी, जो इमाम हुसेन के वध को कभी न भूल सके थे, उमय्या राज्यकाल के अन्त में उनका खुल्लम-खुल्ला विरोध करने लगे। इराक़वाले, जिनकी अधिक जनसंख्या शीआ हो चुकी थी, राष्ट्रीयता की भावनाओं के आधार पर भी शामियों के प्रभुत्व को अच्छी दृष्टि से न देखते थे। अब्बासी, जो मुहम्मद साहब के चाचा अब्बास इब्ने अब्दुल मुतल्लिब इब्ने हाशिम की संतान थे, हज़रत अली के सहायकों को मिलाकर बनी उमय्या के विरोधी दलों के नेता बन गये। उन्होंने डेड-सी के दक्षिण में स्थित हुमेयमह नामक स्थान को जो एक प्रकार से अलग-थलग भी था और दूसरी ओर से विभिन्न कारवानों के मार्ग पर पड़ता था, अपने प्रचार का केन्द्र बना लिया। ईरानी, जो अपनी सभ्यता के स्वर्णयुग को न भुला सके थे, मुसलमान हो जाने पर भी अरब बदवियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। शीओं पर जो अत्याचार उमय्या काल में हुए उनके कारण ईरानवालों की सहानुभूति उनसे हो गयी थी। इस प्रकार शीओं, खुरासानियों तथा अब्बासियों ने हज़रत मुहम्मद के चाचा अब्बास की संतान के एक व्यक्ति, अबुल अब्बास अस्सफ़्फ़ाह की पताका के नीचे इस्लाम के प्राचीन शुद्ध रूप के पुनरुत्थान का दावा करके अपना संगठन अलग बना लिया। अबू मुस्लिम खुरासानी नामक एक ईरानी ने इस आन्दोलन का बड़ी योग्यता से नेतृत्व किया और ९ जून ७४७ ई० को इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। सन् ७५० ई० में उमय्या राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करके अबुल अब्बास अस्सफ़्फ़ाह ने अब्बासी राज्य की स्थापना कर दी।

बनी अब्बास का राज्य[1]

क्योंकि इस्लाम के पुनरुत्थान की आड़ में इस आन्दोलन का संचालन किया गया था, अतः अब अब्बासी खलीफ़ा हज़रत मुहम्मद के बुरदे (चुग़े) को पहनकर शुक्रवार

१. पृ० ११, १२, १७ पर जिन ग्रंथों की चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त निम्नांकित ग्रंथ देखिए, क़ुदामह, "किताब अल-ख़राज", "अल, मिलल वन्नहल", अल इदरीसी, "सिफ़त अल मग़रिब," "फ़िहरिस्त," अल-बेरूनी, "तहक़ीक़ मा ले अल-हिन्द", दमीरी "हयात अल हैवान"; हाज्जी खलीफ़ा तथा इब्ने ख़ल्लिकान के ग्रंथ, इख़वान, "रसाएल", ग़ज़ाली "अह्या अल-उलूम", अल-नवबख़्ती, "फ़िरक़ अल-शीअह" तथा अंग्रेज़ी में, Le Strange, *"Eastern Caliphate"*, William Willcocks, *"Irrigation of Mesopotamia"*, E.G. Browne, *"A Literary History of Persia"*, *"Arabian Medicine"*, W.A. Green-

की सामूहिक नमाज़ों में उपस्थित होने लगे और शरीअत के विद्वानों का मजमा अपने चारों ओर एकत्र रखने लगे। इन लोगों ने ऐसी हदीसें गढ़नी प्रारम्भ कर दी जिनके आधार पर अब्बासी राज्य को एक पवित्र धार्मिक रूप देकर अत्यन्त दृढ बना दिया गया। यद्यपि इस्लामी राज्य के बहुत बड़े भाग पर अब्बासियों का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु स्पेन, उत्तरी अफ़्रीका, उमान, सिन्ध, यहाँ तक कि खुरासान में भी उनकी कुछ न चल पायी। मिस्र ने तो केवल नाम मात्र को उनकी अधीनता स्वीकार की। शाम में सर्वदा झगड़े होते ही रहे। अब्बासी तथा हज़रत अली के समर्थक भी संगठित न रह सके। उनमें से जो लोग यह समझ रहे थे कि अब्बासी लोग उनके लिए युद्ध

hill, "*A Treatise On Small-Pox and Measles*" (Translation); O. Cameron Gruner, "*A Treatise on the Canon of Medicine of Avicenna*", Chaucer, "*A Treatise on the Astrolobe*" Daoud S. Kasir, "*The Algebra of Omar Khayyam*", "*Introduction to the History of Science*", Alfred Guillaume, "*The Traditions of Islam*", Khalil A Totah, "*The Contribution of the Arabs to Education*", Reubern Levy, "*A Baghdad Chronicle*", W. Barthold, "*Turkestan down to the Mongol Invasion*", Thomas W. Arnold and Adolf Grohmann, "*The Islamic Book*", B. Moritz, "*Arabic Paldeography*", "Farmer, "*Arabian Music*", Thomas Arnold and Alfred Guillaume, "*The Legacy of Islam*", Reynold A. Nicholson, "*The Mystics of Islam*", "*Kashf-al-Mahjub*" of Hujwiri, Margaret Smith, "*Rabia the Mystic and Her Fellow Saints in Islam*", "*Al Ghazzali*", W. Ivanow, "*A Guide to Ismaili Literature*', Henry Yule, "*The book of Senor Marco Polo, the Venetian*", relevant topics in, "*Encyclopaedia of Islam*", A. S. Tritton, "*The Caliphs and their Non-Muslim Subjects*", S. Khuda Bakhsh, "*A History of Islamic People*", "*The Orient under the Caliphs*", "*Islamic Civilization*", Vols. I, II; Margaret Graham Weir, "*The Arab Kingdom and its fall* by J. Wellhausen"

कर रहे हैं, उन्हें शीघ्र ही निराश होना पडा। इस प्रकार पूरी इस्लामी आबादी एक खलीफा के अधीन न रह सकी और मावरदी इत्यादि इस्लामी राजनीति के विद्वानों को इन घटनाओं की दृष्टि में खिलाफ़त के बड़े विचित्र सिद्धान्त बनाने पड़े। इब्ने खलदून ने सभ्यता के विकास की पृष्ठ-भूमि के सिलसिले मे इन नियमों पर प्रकाश डाला है।

सफ़्फ़ाह ने अपने राज्य को दृढ़ रूप से स्थापित करने के लिए कूफा तथा बसरा दोनों को त्याग कर फ़ुरात नदी के बायें तट पर तथा इराक़ के उत्तर मे स्थित अम्बर नामक स्थान पर हाशिमिया नगर बसाया। वह अधिक दिन जीवित न रह सका और ७५४ ई० मे उसका देहान्त हो गया। उसका भाई अबू जाफ़र मसूर (७५५–७७५ ई०) उसके स्थान पर खलीफा हुआ। उसने समस्त विरोधी दलो एव अन्य राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलनों को बुरी तरह कुचल दिया और ७६२ ई० में अलिफ़ लैला के प्रसिद्ध नगर बगदाद का निर्माण करवाया। बग़दाद, जिसका नाम मंसूर ने दारुस्स-लाम रखा था, दजला (टिगरिस) नदी के पश्चिमी तट पर, जहाँ इससे पूर्व कई बड़ी-बडी राजधानियाँ बनकर मिट चुकी थीं, बसाया गया। इसके निर्माण मे ४८,८३,००० दिरहम व्यय हुए और लगभग एक लाख मेमार तथा कारीगर चार वर्ष तक इसका निर्माण करते रहे।

उसके राज्यकाल मे प्रधान मन्त्री का पद खालिद इब्ने बरमक को, जो बरमक वजीरो के प्रसिद्ध वश का संस्थापक था, प्राप्त हुआ। उसका पिता बरमक बल्ख़ के बौद्ध-विहार का एक प्रभावशाली नेता था। मसूर के उत्तराधिकारी महदी (७७५-७८५ ई०) ने अपने पुत्र हारून की शिक्षा-दीक्षा खालिद बरमकी के पुत्र यहया को सौप दी थी। हारून उसे पिता कहता था। जब हारून खलीफ़ा हुआ तो उसने यहया को अपना प्रधान मत्री बनाकर उसे असीमित अधिकार सौप दिये। ८०५ ई० मे यहया की मृत्यु हो गयी और उसके पुत्र फजल तथा जाफर ७८६–८०३ ई० तक बड़ी शान से शासन-प्रबन्ध करते रहे। बगदाद के उत्तर में इनके महल दान-पुण्य एवं कलाकारो तथा साहित्यकारों के आश्रय के केन्द्र बन गये। उनकी धन-सम्पत्ति की विशालता एवं उदारता की कहानियों को अरबी तथा फारसी साहित्य ने अमर बना दिया है।

अब्बासी वश को हारूनुर्रशीद (७८६–८०९ ई०) तथा मामूनुर्रशीद (८१३–८३३ ई०) के राज्यकाल मे विशेष उन्नति प्राप्त हुई। कहा जाता है कि अब्बासी खलीफ़ाओं का राज्य वास्तव मे मंसूर के समय से प्रारम्भ हुआ, मामून के राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँचा और मोतज़िद (८९२–९०२ ई०) के राज्यकाल में

पतन के गर्त में पहुँच गया, यहाँ तक कि १२५८ ई० में मंगोलों ने उसे हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

हारून की उदारता एवं दानशीलता के कारण शीघ्र ही राजधानी में कवियों, गायकों, नर्तकियों तथा अन्य कलाकारों का एक बहुत बड़ा समूह एकत्र हो गया। हारून के मित्र अबूनुवास नामक कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा उसके दरबार की शान व शौकत को अमर बना दिया। अब्बासी खलीफाओ के समान उनके वज़ीर तथा बेग़में भी साहित्य एवं सस्कृति की उन्नति करने का प्रयत्न किया करती थी। हारून की पत्नी जुबैदह ने अनेक नये-नये फ़ैशन निकाले। खलीफ़ा महदी (७७५–७८५ ई०) की पुत्री तथा हारून की सौतेली बहिन उलय्यह भी इस मामले में किसी से पीछे न थीं। शादी-ब्याह के अवसरों पर तो व्यय की कोई सीमा ही न रहती थी। खलीफ़ा मामून के विवाह मे, जो उसके वज़ीर हसन इब्ने सहल की १८ वर्षीय पुत्री बूरान से हुआ, इतना अधिक धन व्यय किया गया कि उसकी कहानियों ने अरबी साहित्य की रोचकता में चार चाँद लगा दिये। ससार के विभिन्न भागों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये थे और दूर-दूर से विचित्र एव अद्‌भुत वस्तुएँ राजधानी मे पहुँचने लगी थीं। अन्य व्यवसायवालों की भी उन्नति होना स्वाभाविक ही था।

खलीफ़ा महदी के ज़माने से जो बौद्धिक जागृति प्रारम्भ हुई वह हारून तथा मामून के समय में उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी। सस्कृत, ईरानी, शामी तथा यूनानी ग्रन्थों के अनुवाद के कारण अरबी भाषा समृद्ध हो गयी। ७७१ ई० मे ही एक भारतीय यात्री ने बग़दाद मे सिद्धांत (सिन्द हिन्द) नामक ज्योतिष के ग्रन्थ को प्रचलित करा दिया। मंसूर के आदेशानुसार मुहम्मद बिन इब्राहीम अल फ़ज़ारी ने ७९६–८०६ ई० के मध्य में इसका अरबी भाषान्तर तैयार किया। उसी यात्री द्वारा गणित के एक ग्रन्थ को भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और 'सख्या' का ज्ञान, जिसे यूरोपवाले अरबी, और अरबवाले हिन्दी कहते हैं, इस्लामी ससार मे प्रचलित हो गया। कुछ समय-उपरान्त अरब की गणित विद्या मे दशमलव प्रणाली भी प्रचलित हो गयी। यह भी भारत की ही देन थी। ईरानियों ने पचतत्र (कलीला व दिमना) नामक राजनीतिक कहानियों के ग्रन्थ को, जो नोशीरवाँ के युग में ईरान पहुँचा था, अरबी में प्रचलित करा दिया। अल-अग़ानी, अल-इक़्द, अल-फ़रीद तथा तुरतूशी के "सिराजुल-मुलूक" में इन कहानियों के हवाले भरे पड़े हैं।

यूनानी ग्रन्थों के प्रारम्भिक अनुवादकों में यह्या इब्न-अल-बतरीक़ (७९६ ई० अथवा ८०६ ई० के लगभग) हुआ है, किन्तु अनुवादकों का नेता, अथवा अरबी के शब्दों

में "शेख," हुनियन इब्ने इसहाक़ (८०९–७३ ई०) था। अरस्तू के कई ग्रन्थों के अनुवाद उसी ने किये। साबित इब्ने क़ुरा (८३६–९०१) ने दूसरे क्षेत्र में अधिक योगदान किया। उसने हुनियन के अनेक ग्रन्थों में संशोधन करके कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद किये।

कुछ अनुवादकों ने कई मौलिक ग्रन्थों की भी रचनाएँ कीं। ७५० से ८५० ई० तक के लगभग १०० वर्ष के अनुवादों के युग के उपरान्त मौलिक ग्रन्थों की रचना का युग प्रारम्भ हुआ। इस क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति चिकित्सा शास्त्र में हुई। अबू बक्र मुहम्मद इब्ने ज़करिया राज़ी (८६५–९२५ ई०) जिसका जन्मस्थान तेहरान के समीप रैय था, चिकित्सा शास्त्र के लेखकों में सर्वोच्च माना जाता है। उसके ग्रन्थों की सख्या भी बहुत अधिक है और वे मौलिक भी कहे जाते हैं। शल्य-चिकित्सा मे भी उसने कुछ आविष्कार किये। फ़ेहरिस्त नामक ग्रन्थ के अनुसार उसने ११३ बड़े तथा २८ छोटे ग्रन्थों की रचना की। "किताबुल असरार" अथवा "रहस्यों की पुस्तक" नामक उसकी रचना को बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उसने चेचक के उपचार के विषय में "अल-जुदरी वलहसबा" नामक ग्रन्थ की रचना की। "हावी" नामक उसका ग्रन्थ तो एक प्रकार से चिकित्सा शास्त्र का कोश है। राज़ी के बाद इब्ने सीना (९८०–१०३७ ई०) जिसे अरब लोग शैखुर्रईस कहते है, चिकित्सा शास्त्र के अतिरिक्त दर्शन, भाषा एव काव्य के सम्बन्ध में भी कई ग्रन्थो का रचयिता हुआ है। उसके ग्रन्थों में "किताब-अल-शिफ़ा" जो एक प्रकार से दर्शन शास्त्र का कोश है तथा "क़ानून फ़ी-अल-तिब" जिसमे यूनानी तथा अरबी चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है, बड़े प्रसिद्ध हैं।

दर्शन शास्त्र मे अरबों ने कोई मौलिक योगदान तो नही किया, किन्तु यूनानी दर्शन शास्त्र को अपने ढग से इस्लामी रंग में रंगकर अरबी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उनके दर्शन में, दर्शन तथा धर्म दोनों की सीमाएँ एक दूसरे से मिलती-जुलती देख पड़ती है। धीरे-धीरे अरबों में दार्शनिकों के दो समूह बन गये, जो फ़िलासफ़ह अथवा हुकमा एवं मुतकल्लेमून अथवा अहल-अल-कलाम के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुतकल्लेमून ने अपने तर्क के लिए धर्म का सहारा लिया, किन्तु दार्शनिक अथवा फ़िलासफ़ह या हुकमा वे लोग थे जो धर्म की चिन्ता किये बिना दार्शनिक सिद्धान्तों पर अपने विचार आधारित करते थे। अबू यूसुफ़ याक़ूब इब्ने इसहाक़ अलकिन्दी ९वीं शती ई० मे कूफ़े में पैदा हुआ और बग़दाद मे उसे उन्नति प्राप्त हुई। अरब-वंशीय होने के कारण वह अरबों का दार्शनिक कहा जाता है। नव-अफ़लातून-वादी सिद्धान्तों के आधार

पर उसने अफ़लातून तथा अरस्तू के विचारों को अपने दर्शन में मिलाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वह नव-पायथागोरस-वादी गणित को सभी विज्ञानों का आधार मानता था। उसने इस्लामी सिद्धान्तो का यूनानी दर्शन के साथ समन्वय करने का बड़ा प्रयत्न किया। उसकी यह कोशिश 'अल-फ़ाराब' ने भी जारी रखी। मुहम्मद इब्ने तरखान अबू नसर अल-फ़ाराबी मावराउन्नहर में पैदा हुआ। उसने अफलातून, अरस्तू तथा सूफ़ियो के सिद्धान्तों को मिलाकर अपने दर्शन का आधार बनाया। इब्ने सीना ने भी, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, दर्शन शास्त्र मे काफ़ी योगदान किया। ९७० ई० के समीप बसरा मे कुछ ऐसे दार्शनिको का समूह एकत्र हो गया जो पायथागोरस-वादी सिद्धान्तो की ओर आकृष्ट थे और इख्वानुस्सफ़ा (निष्ठा पर आधारित विचारो के माननेवाले भाई) कहलाते थे। उन्होने अपने ग्रन्थों द्वारा बाद के लेखकों एव दार्शनिकों को बड़ा प्रभावित किया।

यद्यपि अरबों का ज्योतिष हिन्दुस्तानी, ईरानी तथा यूनानी सिद्धान्तों पर आधारित था और ९वी शती ई० के प्रारम्भ मे उन लोगों ने वेधशालाएँ तैयार करानी प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु मामून के समय मे इस ज्ञान को विशेष उन्नति प्राप्त हुई। ज्योतिष के साथ-साथ भूगोल को भी अरबो के व्यापारिक जीवन के कारण अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। टालोमी के "अलमगेस्ट" के अनुवाद का प्रयत्न यह्या इब्ने खालिद इब्ने बरमक के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। इसके बाद कई अन्य विद्वानो ने इस ग्रन्थ के अरबी भाषान्तर तैयार किये, जिनमे हज्जाज इब्ने मतर (८२७–८२८ ई०), हुनयन इब्ने इस्हाक़ एवं साबित इब्ने क़ुर्रा (९०१ ई०) के अनुवाद विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। इसी बीच मे अरबवालों को भारत की प्रसिद्ध वेधशाला का, जो उज्जैन में थी, ज्ञान प्राप्त हो गया और उज्जैन नगर उनके ग्रन्थों में अरीन के नाम से स्थान पा गया। इब्ने खुराज़बेह (लगभग ९१२ ई०), इस्तखारी इब्ने हौक़ल, मक़दिसी, इब्ने वाजेह अल-याकूबी तथा हसन इब्ने अहमद अल-हमदानी ९वी तथा १०वी शती ई० के विख्यात भूगोलवेत्ता हुए है। याकूत इब्ने अब्दुल्लाह अल-हमवी (११७९-१२२९ ई०) के "मोजमुल बुल्दान" को भूगोल का कोश समझा जाता है।

इतिहास की रचना में तो अब्बासी राज्यकाल उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। कूफ़े के हिशाम अल कलबी (८१९ ई०) ने इस्लाम से पूर्वकाल के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला है, किन्तु प्रारम्भिक इतिहासकार केवल हज़रत मुहम्मद की जीवनी एवं चरित्र अथवा "सीरते रसूल अल्लाह" विषयक ग्रन्थों की रचना करते थे। इब्ने इस्हाक़ (मृत्यु लगभग ७६७ ई०) ने सर्वप्रथम मुहम्मद साहब के जीवन से सम्बद्ध-

एक बृहत् ग्रंथ की रचना की, किन्तु वह ग्रन्थ अब प्राप्य नही है। इब्ने हिशाम ने, जिसकी मृत्यु ८३४ ई० मे क़ाहेरा मे हुई, इब्ने इस्हाक़ के ग्रन्थ का सक्षिप्त सस्करण प्रस्तुत किया। हजरत मुहम्मद की जीवनी के साथ-साथ उनके प्रारम्भिक युद्धों पर भी ग्रन्थ लिखे गये। मूसा इब्ने उक़बह (७५८ ई०) तथा वाक़ेदी (८२३ ई०) ने, जो मदीने के निवासी थे, इस क्षेत्र मे बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इब्ने अब्दुल हकम (८७०–७१ ई०) ने जो मिस्र निवासी था, "फ़ुतूह मिस्र व अख़बारोहा" में मिस्र तथा उत्तरी अफ़्रीका एव स्पेन की विजयो के विपय मे एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखा। अहमद इब्ने यहया अल बलाजुरी (८९२) ने "फ़ुतूहल बुल्दान" एवं "अन्साबुल अशराफ़" नामक ग्रन्थ लिखकर ऐतिहासिक रचनाओं के द्वार खोल दिये।

प्रारम्भिक इतिहासकारों में मुहम्मद इब्ने-मुस्लिम अल-दीनावरी अथवा इब्ने क़ुतैबह (मृत्यु ८८९ ई० बगदाद) ने "किताबुल मआरिफ़" नामक ग्रन्थ की रचना की। उसके समकालीन अबूहनीफा अहमद इब्ने दाऊद अल दीनावरी (८९५ ई०) ने "अल-अखबार अल-तिवाल" नामक ग्रन्थ की रचना की। उसी युग का एक महत्त्वपूर्ण भूगोलवेत्ता तथा इतिहासकार इब्ने वाजेह अल याक़ूबी था।

प्रमुख इतिहासकारों में अबू जाफ़र मुहम्मद इब्ने जरीर अल-तबरी (८३८–९२३ ई०) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह अपने बृहत् ग्रथ ("अख़बार अल-रूसुल वल-मुलूक" के लिए बडा प्रसिद्ध है। बाद के इतिहासकारों ने उसके लिखे इतिहास को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। उसने हजरत आदम से लेकर अपने काल तक की विभिन्न तिथियों की अनेक मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए ९१५ ई० तक का इतिहास लिखा है। तबरी को अपने कार्य में इतनी रुचि थी कि वह ४० वर्ष तक ४० पृष्ठ प्रति दिन के हिसाब से लिखता रहा। सामग्री की खोज में उसने ईरान, इराक़, शाम तथा मिस्र की यात्राएँ की। इसी सिद्धान्त पर वाक़ेदी अपने ग्रन्थ की रचना कर चुका था और उसी का अनुसरण मिसकवये, इबनुल असीर, अबुल फ़िदा (१२७३–१३३१ ई०) तथा अलजहबी (१२७४–१३४८ ई०) ने किया।

अबुल हसन अली अल-मसऊदी (मृत्यु ९५६ ई०) ने, जो अरबों का हेरोडोटस कहलाता है, अपने इतिहास को विभिन्न विषयों के क्रमानुसार विभाजित किया। उसने प्रत्येक वर्ष का अलग-अलग इतिहास लिखने के स्थान पर विभिन्न शाही वंशों, अमीरों तथा अन्य लोगों का इतिहास लिखा। इब्ने खलदून तथा बाद के अन्य इतिहासकारो ने उसी का अनुसरण किया। उसके बहुत-से ग्रन्थ नष्ट हो गये किन्तु "मुरुजुज़्ज़हब

व मादन अल जवाहर" नामक उसका ग्रन्थ, जिसमें ९४७ ई० तक का इतिहास दिया हुआ है, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक ज्ञान का कोश है।

मुसलमानों की धार्मिक आवश्यकताओं के अनुसार हदीस के ज्ञान की उन्नति होना स्वाभाविक ही था। क़ुरान के पश्चात्, सुन्नत अथवा मुहम्मद साहब के कारनामे तथा वाणी इस्लामी विधान के मूल आधार हैं। वास्तव में हदीस हज़रत मुहम्मद के ही कारनामों एवं वाणी का संग्रह है, किन्तु इसमें मुहम्मद साहब के सहायकों, साथियों, मित्रों एवं संतान का भी उल्लेख आ जाता है। हजरत मुहम्मद की मृत्यु के ढाई सौ वर्ष के भीतर हदीसों का एक बहुत बड़ा संग्रह एकत्र हो गया। प्रत्येक राजनीतिक तथा धार्मिक कठिनाई के समय वास्तविक अथवा गढ़ी हुई हदीसों से काम लिया जाता था। प्रामाणिक हदीसों के लिए दो चीज़ें परमावश्यक हैं—"इस्नाद" अथवा जिन लोगों द्वारा वह हदीस सुनी गयी उनका क्रम तथा "मत्न" अथवा हदीस के शब्द। क्रम इस प्रकार होता है—"क" ने मुझे यह हदीस बताया जिसे उसने "ख" मे सुना और "ख" ने "ग" से और "ग" ने "घ" से। इस प्रकार के क्रम में हदीस सुनानेवालों की प्रसिद्धि एवं चरित्र पर बड़ा ज़ोर दिया जाता था। इसी आधार पर हदीसों का विभाजन तीन भागों में होता था—'सहीह' (प्रामाणिक), 'हसन' (ठीक) तथा 'ज़ईफ' (कमज़ोर)। हदीस के ग्रंथों में मुहम्मद इब्ने इस्माईल अल-बुख़ारी (८१०–७० ई०) के ग्रन्थ को बड़ा सम्मान प्राप्त है। मुस्लिम इब्ने अल हज्जाज (८७५ ई०) ने भी हदीसों को संकलित करके एक बृहत् ग्रन्थ तैयार किया और बुख़ारी के ग्रन्थ के समान अपने ग्रन्थ का नाम "सहीह" रखा। हदीस के इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त बसरे के अबू दाऊद (८८८ ई०) की "सुनन", तिरमिज़ी (८९२ ई०) के "जामे", इब्ने माजा क़ज़वीनी (८८६ ई०) के "सुनन" तथा नसाई (मृत्यु ९१५ ई०) के "सुनन" को भी महत्त्व प्राप्त है।

हदीस के साथ-साथ फिक़ह का ज्ञान भी अरबों का ही आविष्कार है और रोमनों के बाद मध्ययुगीन अरब ही इस क्षेत्र में सबसे आगे दृष्टिगत होते हैं। फ़िक़ह, साधारणतः क़ुरान तथा सुन्नत एवं मुहम्मद साहब की हदीसों पर आधारित है। इनके अतिरिक्त 'क़यास' (सादृश्य, व्यापक से व्याप्य का तर्क) तथा 'इजमा' (मुसलमानों की सर्वसम्मति) को भी फ़िक़ह में विशेष स्थान प्राप्त है। इन्हीं के आधार पर इस्लाम के धर्मविधान अथवा शरीअत का निर्माण हुआ। फ़िक़ह के क्षेत्र में चार विद्वानों ने विशेष रूप से योगदान किया। नोमान इब्ने साबित अबू हनीफ़ा, जिन्होंने अपना अधिकांश जीवन कूफ़े तथा बग़दाद में व्यतीत किया और ७६७ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए,

इस्लाम के धर्म-विधान के निर्माताओं में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनके एक शिष्य अबू यूसुफ़ (७९८ ई०) ने उनकी शिक्षाओं एवं उनके सिद्धांतों को "किताबुल ख़राज" नामक ग्रन्थ में संकलित किया। समस्त सुन्नी संसार का लगभग आधा भाग उन्हीं का अनुयायी है। आटोमन राज्य, हिन्दुस्तान तथा मध्य एशिया के सुन्नी मुसलमान उन्हीं की व्याख्या के समर्थक हैं। मालिक इब्ने अनस (७१५–७९५ ई०) की "मुवत्ता," मालिकी धर्मविधान का प्राचीनतम ग्रन्थ है। मिस्र के नीचे के भाग को छोड़कर पूरे उत्तरी अफ़्रीक़ा के सुन्नी इसी विधान को मानते हैं। मुहम्मद इब्ने इदरीस अल-शाफ़ई द्वारा इस्लाम के विधान की व्याख्या को जो लोग स्वीकार करते हैं, वे शाफ़ई कहलाते हैं। शाफई का जन्म ७६७ ई० में ग़ज़्ज़ह में हुआ और वे ८२० ई० में क़ाहेरा में मृत्यु को प्राप्त हुए। मिस्र के नीचे के भाग, पूर्वी अफ़्रीक़ा, फ़िलिस्तीन तथा पश्चिमी और दक्षिणी अरबवाले और हिन्दुस्तान के समुद्र तट के भाग के कुछ सुन्नी मुसलमान उन्हीं के धर्म-विधान के अनुयायी हैं। अहमद इब्ने हम्बल (मृत्यु ८५५ ई०) शाफई के शिष्य थे। अपने कट्टर सिद्धान्तों के कारण उन्हें अपने जीवन-काल में बडे-बड़े कष्ट भोगने पड़े। उन्होंने मोतज़ेला विचारकों का घोर विरोध किया और ख़लीफ़ा मामून ने, जो मोतज़ेला का समर्थक था, उन्हें मृत्युदंड भी दिया, किन्तु बगदादवालें इनका सर्वदा अत्यधिक आदर-सम्मान करते रहे। इनके अनुयायियों की संख्या बहुत कम है और केवल वहाबी ही इनके धर्म-विधान को मानते हैं। इन चार विद्वानों के अतिरिक्त सुन्नियों के मतानुसार इजतेहाद (शरीअत अथवा सुन्नत की व्याख्या) के द्वार बन्द हो गये और अब किसी को इस दिशा में कोई मौलिक कार्य करने का अधिकार नहीं। केवल उन्हीं विद्वानों के सिद्धान्तों पर टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

अब्बासी राज्यकाल कलाकौशल की उन्नति के लिए भी बड़ा प्रसिद्ध है। यद्यपि इस समय जो भवन वर्तमान हैं उनमें बहुत थोड़े-से ही प्रारम्भिक अब्बासी ख़लीफ़ाओं के बताये जाते हैं, किन्तु कला के अन्य क्षेत्रों के, विशेषतः सुलेख और चित्रकला की उन्नति के तत्कालीन बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। संगीत की जो उन्नति उमय्या राज्यकाल में हुई वह अब्बासी दौर में भी जारी रही। हारूनुर्रशीद के दरबार में संगीतज्ञों को विशेष प्रोत्साहन मिलता था। ख़लीफ़ा मामून तथा ख़लीफ़ा मुतवक्किल (८४७–८६१ ई०) का मुसाहिब इसहाक़ इब्ने इबराहीम मौसवी (७६७–८५० ई०) संगीत का बड़ा माहिर समझा जाता था। नृत्य के क्षेत्र में भी बग़दाद का दरबार दमिश्क के दरबार से किसी प्रकार पीछे न था। अब्बासी राज्यकाल में संगीत के कई ग्रन्थों के अनुवाद हुए और कई मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की गयी।

धर्म के क्षेत्र में नये विचारों का प्रचार हुआ और बहुत-से नये धार्मिक आन्दोलन एवं विचारधाराएँ प्रचलित हो गयी। मोतज़ेला आन्दोलन, जो उमय्या ख़लीफ़ाओं के समय मे ही प्रारम्भ हो चुका था, अब्बासी ख़लीफ़ा मामून के समय में बड़ी उन्नति कर गया। ख़लीफ़ा की दर्शन-शास्त्रीय रुचि ने इस आन्दोलन को राज्य के धर्म का रूप दे दिया। मामून ने ८२७ ई० में क़ुरान के "खल्क" होने के विषय में घोषणा करा दी। वास्तव में यह बडा ही साहसपूर्ण क़दम था। कट्टर धर्मनिष्ठ लोग क़ुरान को ईश्वर की वाणी कहते है और उनका विचार है कि जिन शब्दों में ईश्वर का आदेश हुआ, वे मूल रूप मे क़ुरान में सुरक्षित है। मोतज़ेला इसका खडन करते है। "ख़ल्क़" का सिद्धात यह है कि "शब्द मनुष्य के बनाये हुए है।" मामून ने अपने समस्त अधिकारियो को इसी सिद्धान्त को मानने पर विवश किया। अहमद इब्ने हम्बल को प्राचीन कट्टर विचारों से विचलित न होने के कारण मृत्युदण्ड भोगना पड़ा। मामून के दो उत्तराधिकारियो के राज्यकाल में मोतज़ेला सिद्धान्तो का ही जोर रहा, किन्तु ८४८ ई० में मुतवक्किल ने इस नयी विचारधारा का दमन करा दिया। इस समय के मोतजेला विद्वानों में नज़्ज़ाम (८४५ ई०) बड़ा प्रसिद्ध हुआ है।

मोतज़ेला विचारधारा का विरोध करनेवालों में प्रमुख बग़दाद का अबुल हसन अली अल अशअरी (९३५–३६ ई०) था। वह भी प्रारम्भ मे मोतज़ेला विद्वानों का शिष्य रह चुका था। उसने "कलाम" के ज्ञान का प्रचार किया। अशअरी के सिद्धान्तों का अधिक प्रचार अबू हामिद अल ग़ज़्ज़ाली (जन्म १०५८ ई०, मृत्यु ११११ ई०) द्वारा हुआ। उन्होंने इस्लाम के शुद्ध नियमों के पालन पर विशेष जोर दिया। बाद में उनके ऊपर सूफी मत का अधिक प्रभाव पड़ा और वे इस्लाम के कट्टर अनुयायियों के एक प्रकार के नेता हो गये।

तसव्वुफ अथवा सूफी मत की भी अधिक उन्नति इसी युग में हुई। यह लोग भी अपने सिद्धांतों को कुरान तथा हदीस पर आधारित करते थे। प्रारम्भ में केवल दरवेशों अथवा सन्तों का समूह ही इसमे सम्मिलित रहा, किन्तु धीरे-धीरे नव-अफ़लातून-वादी, ज्ञेयवादी तथा बौद्ध आदि मतों की भी गहरी छाप उनके ऊपर पड़ी और उनमें से अधिकांश सर्वेश्वरवाद सम्बन्धी दर्शन को मानने लगे।

शीआ

उमय्या राज्यकाल के समान अब्बामी राज्यकाल में भी शीओं का जीवन कष्ट में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि अब्बासी राज्य की स्थापना में शीओं का भी बड़ा हाथ था

किन्तु अब्बासियों ने इनके दमन में कोई कसर न उठा रखी थी। खलीफ़ा मुतवक्किल तो अपने कट्टरपन में उमय्या ख़लीफ़ाओं से भी बढ़ गया। ८५० ई० में उसने नजफ़ में हज़रत अली तथा करबला में इमाम हुसेन के रौज़ो को नष्ट करा दिया। शीआ भी अपनी स्थिति से भली-भांति परिचित थे और दमनचक्र के बावजूद जब कभी उन्हें अवसर मिल जाता वे ख़लीफ़ाओं को हानि पहुँचाने से न चूकते। उन्होंने अपनी बचत के लिए "तक़ीयह्" अथवा अपने वास्तविक विचारों को गुप्त रखने का सिद्धान्त निकाल लिया। शीओं का दावा था कि हज़रत अली केवल हज़रत मुहम्मद के राज्य के ही उत्तराधिकारी नहीं हैं अपितु मुहम्मद साहब के धर्म के रहस्यों से भी वे ही पूर्ण रूप से अवगत हैं और अन्य लोग उन्हें नहीं जानते। शीआ इस बात का प्रचार करते थे कि इमाम केवल ईश्वर की ओर से ही नियुक्त होता है और उसका हज़रत अली की संतान होना परमावश्यक है। १२ इमामों के माननेवाले "असना अशअरी" कहलाये, किन्तु शीओं के कुछ समूह ऐसे भी हुए जो इनसे कम इमामों को भी मानते थे और इस आधार पर उनके बहुत से गिरोह हो गये हैं।

छठे इमाम जाफ़र सादिक (मृत्यु ७६५ ई०) के पुत्र इस्माईल से जिनका उनके पिता के ही जीवनकाल में निधन हो गया था (७६० ई०), एक अन्य शाखा निकली जो इस्माईली कहलाती है। उन्होंने अपने विचारों का बड़े रहस्यमय ढंग से प्रचार किया और राजनीति के क्षेत्र में वे सुन्नियों के कड़े विरोधी सिद्ध हुए। उन्होंने बहुत-से स्थानों पर अपने गुप्त केन्द्र बनवा लिये, जहाँ से वे भीतर ही भीतर अब्बासी ख़लीफ़ाओं का तख़्ता पलटने का प्रयत्न किया करते थे। बड़े-से-बड़े सुन्नी आलिम तथा हाकिम की हत्या करा देना उनके बायें हाथ का खेल था। इस प्रकार के इस्माईली बातिनी (गुप्त रहनेवाले) कहलाते थे। उनका विचार था कि क़ुरान के अर्थ को उसके रहस्य का पता लगाकर ही समझा जा सकता है। कुरान के शब्दों के अर्थ का कोई अधिक महत्त्व नहीं। महत्त्व केवल उस रहस्यमय व्याख्या का है जो वे किया करते थे। इस्माईली सिद्धान्तों का सबसे अधिक प्रचार अब्दुल्लाह द्वारा सर्वप्रथम बसरा में, तदुपरान्त उत्तरी शाम स्थित सलामिया नामक स्थान से हुआ। वह लोगों को महदी[1] के प्रकट होने के विषय में आश्वासन दिलाया करता था। उसकी मृत्यु ८७४ ई० के लगभग हुई किन्तु इससे पूर्व ही हमदान क़रमत नामक एक इराक़ी किसान उसका शिष्य बन गया, जिसने बड़े उत्साह से अब्दुल्लाह के सिद्धांतों का प्रचार किया और उसके माननेवाले क़रामती

१. महदी के विषय में इब्ने ख़लदून ने इस ग्रंथ में विस्तार से लिखा है।

कहलाने लगे। ८९० ई० के लगभग उसने कूफ़े के समीप अपने प्रचार का एक केन्द्र बना लिया। नबती किसानों तथा अरबों की बहुत बड़ी संख्या उसके सिद्धांतों को मानने लगी। बसरे में ज़ंज (नीग्रो) लोगों ने ८६८ ई० तथा ८८३ ई० के मध्य ख़लीफ़ाओं के विरुद्ध जो संघर्ष प्रारम्भ किया उसमें उसने उनका साथ देकर ख़लीफ़ाओं को बहुत तंग किया। ८९९ ई० में क़रमत के एक प्रचारक सईद अल हसन अल जन्नाबी ने फ़ारस की खाड़ी के पश्चिमी तट पर एक अन्य राज्य स्थापित कर लिया, जिसकी राजधानी अल-आहसा (अल-हुफ़ूफ़) निश्चित हुई। शीघ्र ही इस राजधानी ने बग़दाद के राज्य की नींव हिला दी। असहा से इस्माईलियों के विभिन्न समूह अब्बासी राज्य के आस-पास के स्थानों पर आक्रमण करने लगे। अल जन्नाबी ९०३ ई० के लगभग यमामह को अपने अधिकार में करके उमान तक छापे मारने लगा। उसके पुत्र अबू-ताहिर सुलेमान ने इराक़ के नीचे के अधिकांश भाग नष्ट-भ्रष्ट करके ९३० ई० में मक्के पर अधिकार जमा लिया। १० वीं तथा ११वीं शती ई० में क़रमत एवं अल जन्नाबी के अनुयायी अपने केन्द्र सलामिया से निकलकर शाम तथा इराक़ पर छापे मारने लगे, यहाँ तक कि ख़ुरासान और यमन तक भी सुरक्षित न रह सके।

इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर १२वीं शती ईसवी में हसन इब्ने सब्बाह (११२४ ई०) ने हशाशून (अथवा हशीश नामक एक प्रकार का नशा खिलानेवालों के समूह) का संगठन किया, जो अंग्रेज़ी में 'असेसिन' कहलाते हैं। १०९० ई० में उसने क़ज़वीन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित अल-अमूत नामक पर्वतीय क़िले को अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ से वह अपने शिष्यों को, जो उसके धर्म के दाई (प्रचारक) कहलाते थे, अब्बासी राज्य के विभिन्न प्रांतों में भेजने लगा। उनके संगठन के निम्न वर्ग में फ़िदाई होते थे जो अपने स्वामी के प्रत्येक आदेश का पालन करने के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहते थे। १०९२ ई० में इन लोगों ने प्रसिद्ध सलजूक़ वज़ीर निज़ामुल मुल्क की हत्या कर दी। ख़लीफ़ा तथा अन्य सुल्तानों ने इनके विनाश का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी। अन्त में १२५६ ई० में हुलाकू ने इन्हें पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।

पूर्व के राज्य तथा अब्बासी ख़लीफ़ाओं का पतन[1]

जहाँ एक ओर हारूनुर्रशीद एवं मामूनुर्रशीद के राज्य का एश्वर्य तथा गौरव इतिहास के पाठकों को आश्चर्य-चकित किये बिना नहीं रहता, वहाँ दूसरी ओर उमय्या

१. पृ० २१ व २२ पर जिन ग्रंथों की चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त अंग्रेज़ी में देखिए

वंश के विशाल राज्य का क्षेत्र अब्बासी राज्य की स्थापना के समय से ही कम होने लगा था। उन्दुलुस, मग़रिब और बाद में मिस्र अब्बासियों के हाथ से निकल गये। पूर्व में भी राजधानी से दूर के स्थानों को धीरे-धीरे उन्ही के ईरानी तथा तुर्क दासों ने उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकालना प्रारम्भ कर दिया।

ताहिरी वंश—सर्वप्रथम जिस व्यक्ति ने बग़दाद के अधिकार-क्षेत्र से पृथक् होकर स्वतत्र-जैसा राज्य स्थापित किया, वह ख़ुरासान का एक ईरानी दास ताहिर इब्न अल-हुसेन, मामूनुर्रशीद का सेनापति था, जिसे ८२० ई० में मामून ने बग़दाद के पूर्व के अपने समस्त राज्य का हाकिम नियुक्त कर दिया था। उसने अपनी राजधानी मर्व में बनायी और अपनी मृत्यु के पूर्व ही ख़लीफा का नाम भी ख़ुत्बों से पृथक् करा दिया। ताहिर के उत्तराधिकारियों ने अपना राज्य हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त तक बढ़ा लिया और अपनी राजधानी नीशापुर में बनायी। वे ८७२ ई० तक राज्य करते रहे।

सफ़्फ़ारी वंश—८७२ ई० मे याक़ूब इब्न अल-लैस अल-सफ़्फ़ार (८६७–८७८ ई०) ने, जो एक साधारण वश का व्यक्ति था, अपनी वीरता से ताहिरी वंश का अन्त कर दिया और यह वंश ९०८ ई० तक राज्य करता रहा, किन्तु सामानियों ने इसके राज्य को नष्ट कर दिया।

सामानी वंश—सामानी राज्य के संस्थापक का पूर्वज बल्ख़ का सामान नामक एक ज़रदुश्त्री था। उसके एक पौत्र नस्र इब्न-अहमद (८७४–८९२ ई०) ने सामानी राज्य की स्थापना की, किन्तु उसकी उन्नति उसके भाई तथा उत्तराधिकारी इस्माईल (८९२–९०७ ई०) के द्वारा ही हुई। सामानियों के राज्यकाल मे ही मावराउन्नहर (ट्रांसाक्ज़ियाना) पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त हुआ। उनकी राजधानी बुख़ारा और उनका प्रसिद्ध नगर समरक़न्द, दोनो बग़दाद का मुक़ाबला करने लगे।

ग़ज़नवी—अपने राज्य मे सामानियों ने उत्तर से आनेवाले तुर्क ख़ानाबदोशों को अत्यधिक आश्रय दिया। इस प्रकार तुर्कों का प्रभुत्व बढ़ता ही गया। ९६१ ई० में

Stanley Lane Poole, *"The Mohammadan Dynasties"*, M. Nazim, *"The Life and times of Sultan Mahmud of Ghazna"* Harold Bowen, *The Life and Times of Ali Ibn Isa the Good Vizier*, Stanley Lane Poole, *"Catalogue of Oriental Coins in the British Museum"* **तथा फ़ारसी में, "राहत अल-सुदूर", जुवैनी, "तारीख़े जहां कुशा" रशीदुद्दीन, फ़ज़लुल्लाह, "जामे-उत्तवारीख़".**

अलप्तगीन नामक एक तुर्क दास को सामानियों ने खुरासान का हाकिम नियुक्त कर दिया। उसने ९६२ ई० में ग़ज़नी पर अपना अधिकार ज़मा लिया और अपना एक पृथक् राज्य स्थापित कर लिया। उसके दास तथा जामाता सुबुक्तगीन (९७६–९९७ ई०) ने अपना राज्य खुरासान तथा हिन्दुस्तान में पेशावर तक बढ़ा लिया। ९९४ ई० में ग़जनवियों ने सामानियों के राज्य का आक्सस के दक्षिण का पूरा भाग अपने अधिकार में कर लिया। सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद (९९९ ई०–१०३० ई०) अपने हिन्दुस्तान के आक्रमणों के लिए प्रसिद्ध है। तुर्कों के इस्लामी राजनीति में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त ईरानियों के प्रभुत्व का अन्त हो गया, परन्तु इनके राज्य का संगठन भी सामानियों अथवा सफ़्फ़ारियो की भांति सैनिक शक्ति पर आधारित था। सैनिक शक्ति के ह्रास के साथ-साथ बड़े राज्यों का पतन भी होने लगता है। महमूद की मृत्यु के उपरान्त उसका राज्य भी टुकड़े-टुकड़े हो गया। उत्तर तथा पश्चिम में तुर्किस्तान के खानों ने तथा ईरान के सलजूको ने गजनवियों का राज्य छीन लिया। ११८६ ई० में आधुनिक अफ़गानिस्तान के गोरियों ने इनके राज्य को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। इनकी शक्ति का मुख्य आधार इनका सैन्य-संगठन था और इनकी राजनीति प्राचीन ईरान की राजनीति पर आधारित थी। धार्मिक विचारों मे ईरान के प्राचीन धर्म एवं बौद्ध मत से भी ये बड़े प्रभावित हुए थे और सबको मिला-जुलाकर इस्लामी चोला पहना दिया था।

बुवय्या—इधर तो अब्बासियों का पूर्वी राज्य विभिन्न ईरानी तथा तुर्क वंशों के अधिकार में चला गया, उधर बुवहयिद अथवा बुवय्या ईरानियों एव सलजूक तुर्कों ने अब्बासियों पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि इनका राज्य बगदाद में केवल नाम मात्र को रह गया।

८वें अब्बासी खलीफा अल मोतसिम (८३३–४२ ई०) ने अपने रक्षार्थ ४००० तुर्कों की एक सेना बनायी थी। यह सेना विशेष रूप से खुरासानियों को, जिनकी सहायता से अब्बासियों ने राज्य स्थापित किया था, वश में रखने के लिए नियुक्त की गयी थी, किन्तु अब्बासियों को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वे रक्षक नही अपितु उनके लिए भक्षक सिद्ध हो रहे हैं। उनके अत्याचार से बचने के लिए ८३६ ई० में खलीफा मोतसिम अपनी राजधानी बगदाद से टिगरिस तट पर ६० मील दूर स्थित सामर्रा नगर को ले गया। उसने इस नगर का नाम "सुर्रा मन रा" (धन्य हो वह जो उसे देखे) रखा। यहाँ मस्जिदों एवं महलों का निर्माण कराया गया। सन् ८३६ से ८९२ ई० तक यह नगर अब्बासियों की राजधानी बना रहा।

दिसम्बर ८६१ ई० में ख़लीफ़ा मुतवक्किल (८४७–८६१ ई०) की हत्या तुर्कों द्वारा उसके पुत्र ने करा दी। उसकी मृत्यु के उपरान्त तो ख़लीफ़ा तुर्कों के हाथ की कठपुतली हो गये। अन्त.पुर की स्त्रियों ने अपने पुत्रों एवं आश्रितों के राज्य के लिए खुल्लम-खुल्ला उनसे मिलकर षड्यंत्र रचना आरम्भ कर दिया और लगभग २०० वर्ष तक अब्बासी ख़लीफ़ाओं की राजधानी में यही खेल खेला जाता रहा।

दिसम्बर, ९४५ ई० में ख़लीफ़ा अल मुस्तकफी (९४४–४६ ई०) के समय में अहमद बिन बुवय्या ने, जो अपने-आपको ईरान के प्राचीन सासानी वंश से सम्बन्धित बताता था, तुर्को का प्रभुत्व समाप्त कर दिया और ख़लीफा अल-मुस्तकफी (९४४–९४६ ई०) ने उसे "अमीरुल उमरा" तथा "मुइज़्ज़ुद्दौला" की उपाधियाँ प्रदान कीं। इन लोगो ने शीराज़ को अपनी राजधानी बनाया और ९४५–१०५५ ई० तक ये ख़लीफ़ाओं को कठपुतली बनाये रहे। ये लोग शीआ थे। अत: शीओं की प्रथाए दरबार मे प्रचलित हो गयी। उनमे सबसे प्रसिद्ध अजदुद्दौला (९४९- ९८३ ई०) हुआ, जिसने अपने राज्य का क्षेत्र बहुत बढ़ा लिया और शाहशाह की उपाधि धारण कर ली। किन्तु १०५५ ई० में सलजूक़ तुर्कों ने तुगरिल बेग के नेतृत्व में बग़दाद में प्रविष्ट होकर बुवय्या वंश का अन्त कर दिया।

सलजूक़ वंश—९५६ ई० के लगभग सलजूक तुर्को ने अपने तुर्कमान गुज़्ज़ क़बीले की शक्ति बुखारा के आस-पास बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। सलजूक़ का एक पौत्र तुगरिल अपने भाई के साथ खुरासान तक धावे मारने लगा। १०३७ई० मे दोनों ने मर्व तथा नीशापुर को गजनवियो के हाथ से छीन लिया और बल्ख, जूरजान, तबरिस्तान, ख़्वारिज़्म, हमदान, रैय एवं इस्पहान तक अपना राज्य बढाते-बढाते १८ दिसम्बर १०५५ ई० को तुगरिल बेग अपने तुर्क सैनिकों को लेकर बग़दाद के द्वार पर पहुँच गया। बुवय्या का तुर्क सेनापति एव बगदाद का रक्षक नगर छोड़कर भाग गया। ख़लीफ़ा ने उसका भव्य स्वागत करके उसे "अस्सुल्तान" की उपाधि प्रदान की और समस्त अधिकार उसे सौप दिये। तुग़रिल (१०३७–१०६३ ई०), उसके भतीजे तथा उत्तराधिकारी अल्प अरसलान, (१०६३ ई० १०७२ ई०) तथा अल्प अरसलान के पुत्र मलिक शाह (१०७२–१०९२ ई०) ने सलजूक राज्य की शक्ति बहुत बढ़ा दी। अल्प अरसलान के सैनिको ने बाइज़टाइन शक्ति के छक्के छुड़ा दिये और एशिया माइनर (लघु) को अपने अधिकार में कर लिया। १०८४ ई० मे कूनियह (इकूनियम) सलजूकों के उस क्षेत्र की राजधानी बन गया। अल्प अरसलान तथा मलिक शाह के राज्यकाल में उनके ईरानी वज़ीर निज़ामुल मल्क को बडा प्रभत्व प्राप्त हो गया। इब्ने ख़लदून के

अनुसार मलिक शाह के २० वर्ष के राज्यकाल में समस्त अधिकार निज़ामुल् मुल्क को ही प्राप्त रहे। "सियासतनामा" नामक राजनीति का प्रसिद्ध ग्रन्थ उसी की रचना बताया जाता है। उमर ख़्ययाम (मृत्यु ११२३ ई०) निज़ामुल् मुल्क का ही आश्रित था। मलिक शाह के बाद सलजूक़ राज्य का भी पतन हो गया।

ख़लीफ़ा अल-नासिर (११८०–१२२५ ई०) ने सलजूक़ों की शक्ति का अन्त करने के लिए ख़्वारिज़्म के बादशाह तकश (११७२–१२०० ई०) को, जो ख़्वारिज़्म-शाही तुर्क वंश से था, सलजूक़ों के इराक़ अजम (मेड़िया) पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। सलजूक़ों को परास्त करने के उपरान्त ख़्वारिज़्म-शाहियों ने उनका स्थान ले लिया और ख़लीफ़ा की सारी आशाएँ समाप्त हो गयीं। उसके पुत्र अलाउद्दीन मुहम्मद (१२००–१२२० ई०) ने ईरान का बहुत बड़ा भाग, बुख़ारा, समरक़न्द तथा ग़जनी अपने अधिकार में कर लिये। वह बग़दाद पर भी दाँत लगाने तथा हज़रत अली की किसी संतान को बादशाह बनाने की योजना बनाने लगा।

इसी बीच में मंगोलों के क़बीलों को संगठित करके चिंगीज़ ख़ां (लगभग ११५५–१२२७ ई०) ने बुख़ारा, समरक़न्द, बल्ख़ तथा ख़्वारिज़्म को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। १२५३ ई० में चिंगीज़ ख़ां का पौत्र हुलाकू मंगोलिया से एक बहुत बड़ी सेना लेकर निकला। उसने ख़लीफ़ा अल मुस्तासिम (१२४२–१२५८ ई०) को इस्माईलियों के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए लिखा, किन्तु उसे इसका कोई उत्तर न प्राप्त हुआ। १२५६ ई० में मंगोलों ने इस्माईलियों के सभी प्रसिद्ध किले यहाँ तक कि अल अमूत तक पर अधिकार जमा लिया। १० फ़रवरी १२५८ ई० तक हुलाकू के सैनिकों ने बग़दाद को अपने अधिकार में कर लिया और २० फ़रवरी को ख़लीफ़ा तथा उसके उच्च पदाधिकारियों की हत्या करके बग़दाद की ईट से ईट बजाकर अब्बासी ख़लीफ़ाओं के राज्य को समाप्त कर दिया। १२६० ई० में हुलाकू ने शाम पर चढ़ाई कर दी, किन्तु वह मिस्र के ममलूक सेनापति क़ूतूज़ का मुकाबला न कर सका। इस प्रकार मंगोलों का तूफान पश्चिम की ओर न बढ़ पाया, किन्तु आमू दरिया से शाम के सीमान्त तक के प्रदेश मंगोलों के अधीन हो गये। हुलाकू ने ईल ख़ान की उपाधि धारण कर ली, किन्तु उसके सातवें उत्तराधिकारी ग़ाज़ान महमूद (१२९५–१३०४ ई०) ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। मंगोल भी ईरानियों की सेवाओं की उपेक्षा न कर सके। जुवैनी वंशवाले, विशेष रूप से "तारीख़े जहां कुशा" का लेखक अता मलिक 'जुवैनी (मृत्यु १२८३ ई०) तथा "जामे–उत्तवारीख़" का लेखक रशीदुद्दीन फ़जलुल्लाह (मृत्यु १३१८ ई०) उनके दरबार के बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं।

अफ़्रीक़ा, मिस्र तथा स्पेन

अफ़्रीक़ा—बनी अब्बास के राज्य की स्थापना के बाद भी स्पेन में बनी उमय्या के राज्य क़ा अन्त न हो सका और न उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के बरबरों ने अब्बासी राज्य की अधीनता स्वीकार की। बरबर यद्यपि मुसलमान हो गये थे, किन्तु उन्हे अरबो का प्रभुत्व पसन्द न था, अतः विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों को जितनी सफलता उत्तरी अफ़्रीक़ा मे मिली उतनी किसी अन्य स्थान पर नही मिली।

इदरीसी वंश—७८५ ई० में जब इदरीस इब्ने अब्दुल्लाह अल हसन के एक प्रपौत्र को मदीने में हज़रत अली के सहायकों के प्रचार में सफलता प्राप्त न हुई तो वह मग़रिब (मोराको, उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा) भाग गया और वहाँ उसने इदरीसी वश के राज्य की स्थापना की जो ७८८ से ९७४ ई० तक चलता रहा। इनकी राजधानी फ़ास अथवा फेज में थी और यह शीओं का प्रथम स्वतंत्र राज्य हुआ। इनको बरबरों से, यद्यपि वे सुन्नी थे, विशेष सहायता मिली, किन्तु मिस्र के फ़ातेमी तथा स्पेन के उमय्या वंश के बीच में होने के कारण इन्हें सर्वदा दोनों राज्यों से खतरा बना रहता था।

(१) **इब्ने इज़ारी, "अख़्बार मसमूआ फ़ी फ़तह अल-उन्दुलुस", अल-इदरीसी, "ज़िक्र अल-उन्दुलुस", इब्ने ख़लदून, "किताबुल इब्र", अल, ज़रकशी, "तारीख़ अल-दौलतैन अलमुवह्हेदिया वहल हफ़सियह", इब्ने बस्साम, "अल-ज़ख़ीरह फ़ी महासिन अहल अल जज़ीरह", अल दब्बी, "बुग़यत अल मुल्तामिस फ़ी तारीख़ रिजाल अल-उन्दुलुस, इब्न अलक़ूतियह, "तारीख़े इफ़्तिताह अल उन्दुलुस", अब्दुल वाहिद अल मुर्राकुशी "अलमोजिब फ़ी तल्ख़ीसअ ख़्बार अल-मग़ारिब, "इब्नअल-ख़तीब", अल-इहातह फ़ी अख़्बार ग़रनाता", "अख़्बार अल-अस्र फ़ी इनक़िज़ा दौलत बनी नस्र" तथा अंग्रेजी में** Stanley Lane Poole and Arthur Gilman, "*The Moors in Spain*", Edward Creasy, "*The Fifteen Decisive Battles of the World,*" S.P. Scott, "*History of the Moorish Empire in Europe*", Henry Coppee, "*History of the Conquest of Spain by the Arab Moors*" Francis G. Stokes, "*Spanish Islam*", John W. Draper, "*A History of the Intellectual Development of Europe*", "*The Cambridge Medieval History.*"

फिर भी वे लगभग २०० वर्ष तक राज्य करते ही रहे, किन्तु कारडोवा (स्पेन) के खलीफा हकम द्वितीय (९६१–९७६ ई०) के राज्यकाल में इस वंश का अन्त हो गया।

बनी अग़लब——जिस प्रकार इदरीसियों ने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका में अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की उसी प्रकार बनी अग़लब अथवा अग़लाबइद्स ने उत्तर-पूर्वी अफ़्रीका में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इस राज्य के संस्थापक इबराहीम इब्न अल-अगलब को हारूनुर्रशीद ने इफरीक़िया (टयुनिस तथा उसके आस-पास के भूभाग) का हाकिम नियुक्त किया था, किन्तु उसने स्वतत्र रूप से राज्य करना प्रारम्भ कर दिया और फिर किसी अब्बासी ने अपना कोई हाकिम वहाँ नियुक्त नही किया। उन्होंने अमीर की उपाधि धारण कर ली और ८००–९०९ ई० तक राज्य करते रहे। इबराहीम के बहुत से उत्तराधिकारी उसी के समान साहसी तथा वीर थे। वे अपने जहाज़ी बेड़े इटली, फ़्रांस तथा सारडीनिया तक भेजने लगे। ९०२ ई० मे इन लोगों ने सिसली पर पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया। जियादतुल्लाह प्रथम (८१७–८३८ ई०) ने अपने राज्यकाल मे क़ैरवान की मस्जिद का निर्माण प्रारम्भ कराया जो इबराहीम द्वितीय (८७४–९०२ ई०) के राज्यकाल मे पूरी हुई। यह मस्जिद पूर्व के देशों की भव्य मस्जिदो से किसी प्रकार कम नही। मक्के, मदीने तथा बैतुल मुकद्दस (येरोशलम) की मस्जिदों के समान इसे भी मुसलमानों ने स्वर्ग के चौथे द्वार में सम्मिलित कर लिया। १०९ वर्ष के राज्य के उपरान्त ९०९ ई० में जियादतुल्लाह तृतीय (९०३–९०९ ई०) के राज्यकाल में फातेमियों ने उनके राज्य पर अधिकार जमा लिया।

मिस्र

फ़ातेमी वंश——८९० ई० के लगभग मुहम्मद अल हबीब, जो अपने को हज़रत अली एवं उनकी पत्नी हज़रत फ़ातिमा की सतान बताता था, यह प्रचार करने लगा कि उन्ही के वंश मे महदी पैदा होनेवाले है। वह शीओं की इस्माईली शाखा का समर्थक था। सना (यमन) के अबू अब्दुल्लाह अल हुसेन अल शीई नामक एक व्यक्ति ने, जो मुहम्मद का शिष्य हो गया था, हज के समय उत्तरी अफ़्रीक़ा के बरबरों, विशेष रूप से क़ुतामह बरबरों को मिला लिया और ९०९ ई० में उसने बनी अगलब के ज़ियादतुल्लाह तृतीय को पराजित कर उसकी राजधानी अर्रक्कादह पर, जो क़ैरवान के समीप है, अधिकार जमा लिया। इसी बीच में फातेमी मुहम्मद की मृत्यु हो गयी किन्तु उसका पुत्र उबैदुल्लाह (९०९–९३४ ई०) भागकर अफ़्रीक़ा पहुँचा और अबू अब्दुल्लाह ने

उसे ९१० ई० में अरंक्क़ादह में सिंहासनारूढ़ कर दिया। उसने मोराको तक अपना अधिकार बढ़ा लिया और महदीया नामक अपनी राजधानी अलग बसायी। ९१४ ई० में उसकी सेना ने सिकन्दरिया पर अधिकार जमा लिया, किन्तु सेना को वापस होना पड़ा। ९२१ ई० में उसके पुत्र अबुल क़ासिम को भी पराजित होकर लौट जाना पड़ा।

९३७ ई० में मुहम्मद इब्ने तुग़्ज नामक अब्बासियों के तुर्क हाकिम ने खलीफ़ा अर्राजी से प्रार्थना की कि उसे इख़शीद की उपाधि प्रदान करके अधिक अधिकार दे दिये जायँ। खलीफ़ा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसने शाम, फ़लस्तीन तथा मक्का-मदीना अपने अधिकार में कर लिये। ९४६ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी और काफ़ूर नामक उसके एक हब्शी ख्वाजा सरा ने उसके पुत्रों की ओर से राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। ९६६ ई० से उसने स्वतंत्र रूप से शासन करना शुरू कर दिया। ९६८ ई० मे काफ़ूर की मृत्यु हो गयी और ५ फरवरी ९६९ ई० को फातेमी सेनापति जौहर रक्कादह से एक बहुत बड़ी सेना लेकर निकला और ९ जुलाई ९६९ ई० को सिकन्दरिया पर पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया। जौहर ने क़ाहेरा अल-मुइज्जिया नामक नया नगर बसाया जो ९७३ ई० से फ़ातेमियों की राजधानी बना। ९७२ ई० में उसने अल अजहर की मस्जिद का निर्माण कराया। अल-शीई के बाद जौहर ही फ़ातेमी राज्य का दूसरा महान् संस्थापक कहा जा सकता है। मिस्र के साथ उत्तरी अफ़्रीक़ा भी उसने विजय कर लिया। इस वश के पाँचवें बादशाह मंसूर निजार अल अजीज (९७५—९९६ ई०) के राज्यकाल में फातेमी वश का राज्य एटलांटिक से लाल सागर, यमन, मक्का तथा दमिश्क़ तक पहुंच गया। उसने क़ाहेरा में बहुत-सी मस्जिदों, महलों, पुलों तथा नहरों का निर्माण कराया। वह बगदाद तथा कारडोवा पर भी लोभ की दृष्टि डालने लगा। फ़ातेमियो ने अब्बासियों की भाँति तुर्कों एवं हबशियों को बहुत बड़ी संख्या में नौकर रखा, जो बाद में उनके राज्य के पतन का कारण बन गये। १०४३ ई० से सलजूकों के प्रभुत्व के कारण शाम और बाद मे अफ़्रीक़ा के प्रान्त फ़ातिमी राज्य से पृथक् होने लगे। ऊपरी मिस्र की बनी हिलाल तथा सुलैम जातियां १०५२ ई० से त्रिपोली एव टयुनिस में धावे मारने लगी। सिसली फातेमियों के अधिकार से निकल गया। १०९९ ई० में सलीबी योद्धाओं ने येरोशलम पर अधिकार जमा लिया और ईसाइयों के निरन्तर आक्रमणों के उपरान्त सलाहुद्दीन अय्यूबी ने ११७१ ई० में मिस्र विजय करके फ़ातेमी वंश का अन्त कर दिया। फरवरी ११९३ ई० मे सलाहुद्दीन की मृत्यु हो गयी। उसके उत्तराधिकारी १२४९ ई० तक मिस्र में राज्य करते रहे।

ममलूक सुल्तान—१२४९ ई० में अय्यूबी अल-सालेह की विधवा ने मिस्र का राज्य अपने अधिकार में कर लिया और ८० दिन तक उत्तरी अफ़्रीक़ा तथा पश्चिमी एशिया में राज्य करती रही। जब अमीरों ने उसके सेनापति इज़्ज़ुद्दीन ऐबक को अपना सुल्तान बना लिया तो उसने उससे विवाह कर लिया। ऐबक (१२५०–१२५७ ई०) पहला ममलूक सुल्तान हुआ है। वह अपना अधिकांश जीवन शाम, फ़िलिस्तीन एव मिस्र के रण-क्षेत्रों में व्यतीत करता रहा। १२६० ई० मे ममलूक नायब तथा सेनापति अल मुजफ्फ़र सैफ़ुद्दीन कूतूज़ (१२५९–६० ई०) ने हुलाकू की सेना से टक्कर लेकर मगोलों के तूफान को आगे बढ़ने से रोक दिया। प्रारम्भिक ममलूक सुल्तानों में अल मलिक, अल-जाहिर रुक्नुद्दीन बेबर्स अल् बुन्दु कदारी जो एक तुर्क दास था, बड़ा प्रतापी बादशाह हुआ। वास्तव मे ममलूक वश का संस्थापक उसी को कहना चाहिए। उसने क़ाहेरा तथा दमिश्क के मध्य मे अत्यन्त द्रुतगामी डाक का प्रबंध कराया। जलसेना का पुनरुत्थान तथा शाम के क़िले को दृढ़ बनवाना उसके अन्य कारनामों मे सम्मिलित है। अपने राज्य को धार्मिक लोगों की दृष्टि में अधिक पवित्र बनाने के लिए उसने जून १२६१ ई० में अब्बासी ख़लीफा अल जाहिर (१२२५–२६ ई०) के पुत्र को दमिश्क़ से बुलवाकर अल मुस्तनसिर के नाम से ख़लीफ़ा बना दिया। ख़लीफा मुख्य रूप मे प्रबंध किया करते थे और ममलूक सुल्तानों की इच्छानुसार बनाये-बिगाड़े जाते थे। ममलूक सुल्तानो का वश दो शाखाओं में विभाजित हो गया था। राज्य की स्थापना से १३८२ ई० तक जिन ममलूकों का राज्य रहा वे बहरी कहलाते थे। १३८२ ई० मे सरकेशियन तुर्क ममलूकों का राज्य प्रारम्भ हुआ जो १५१७ ई० तक चलता रहा। ये बुरजी ममलूक कहलाते थे। इनका सस्थापक इब्ने ख़लदून का आश्रयदाता अज़्ज़ाहिर सैफुद्दीन बरक़ूक (१३८२–१३९८ ई०) था। उसके पुत्र अल नासिर नासिरुद्दीन फ़रज के राज्यकाल (१३९८–१४०५ ई०) में तीमूर ने आक्रमण किया।

तीमूर ने तातारी क़बीलों की एक बहुत बड़ी सेना संगठित करके १३८० ई० से अपनी विश्व-विजय की योजना के अनुसार आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। १३९३ ई० मे उसने बग़दाद पर अधिकार जमा लिया। १३९४ ई० में उसकी सेनाओं ने मेसोपोटामिया मे बुरी तरह लूट-मार की। १३९५ ई० में उसने क़िपचाक़ के भूभाग पर आक्रमण किया और एक वर्ष से अधिक वर्त्तमान काल के मास्को पर अपना अधिकार जमाये रहा। १३९८–९९ ई० में वह देहली तक पहुँच गया और तूफ़ान की भाँति १४०१ ई० में उत्तरी शाम को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। तीन दिन तक अलेप्पों में लूट-मार होती रही। २०,००० मुसलमानों के सिरों का एक बहुत बड़ा मीनार तैयार

कराया गया। सुल्तान फ़रज की सेना पराजित हुई और तीमूर ने दमिश्क़ पर अधिकार जमा लिया, किन्तु वह मिस्र तथा अफ़्रीक़ा की ओर न बढ़ सका और शीघ्र ही बग़दाद वापस चला गया, जहाँ पुनः हत्याकांड एव लूटमार प्रारम्भ कर दी और सिरो के १२० मीनारे बनवाये। २१ जुलाई, १४०२ ई० को उसने अकरा मे उतमान सेना को पराजित करके सुल्तान बायजीद प्रथम को बन्दी बना लिया। १४०४ ई० में तीमूर की मृत्यु हो गयी और उसकी मृत्यु के साथ मंगोलों के विश्व विजय के स्वप्न भी समाप्त हो गये। इन बाहरी आक्रमणों तथा साधारण आंतरिक विद्रोहों के बावजूद मिस्र, इब्ने खलदून के अनुसार ममलूकों के राज्यकाल में मुसलमानों के अन्य राज्यों की अपेक्षा सबसे अधिक उन्नत एवं सभ्य था। पश्चिमी शाम, मक्का-मदीना सहित हिजाज प्रान्त मिस्र के राज्य के अधीन थे और यमन तक उसकी सीमा फैली हुई थी। भारत के व्यापारिक मार्ग पर मिस्रवालों को पूरा अधिकार प्राप्त था। ममलूक बादशाहो ने अपनी धन-धान्य-सम्पन्नता के कारण कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान एव संस्कृति के अन्य क्षेत्रों में बड़ी उन्नति कर ली थी। इब्ने खलदून ने एक आदमी से जो हज करके लौटा था, काहेरा के विषय में प्रश्न किया तो उसने उत्तर दिया कि जिसने क़ाहेरा नही देखा, वह इस्लाम के ऐश्वर्य एवं गौरव का अनुमान कर ही नहीं सकता। १५१७ ई० मे उतमान सुल्तान सलीम ने मिस्र पर अधिकार जमाकर उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

स्पेन तथा उत्तरी अफ़्रीक़ा—जब ७५० ई० मे अब्बासी खलीफा सफ्फाह ने बनी उमय्या के वंशवालों की हत्या करानी प्रारम्भ कर दी तो १०वें उमय्या खलीफा हिशाम (७२४–७४३ ई०) का पौत्र अब्दुर्रहमान, अब्बासी खलीफाओं के चगुल से निकलकर उत्तरी अफ़्रीका होता हुआ सितम्बर ७५५ ई० में स्पेन पहुंचा और १५ मई ७५६ ई० को उसने कारडोवा पर अधिकार जमा लिया। वहांवालो ने उसे "अमीर" स्वीकार कर लिया। ३२ वर्ष के घोर सघर्ष के उपरान्त जब ७८८ ई० मे उसकी मृत्यु हुई तो उसने अपने पुत्र हिशाम के लिए स्पेन का दृढ़ एवं विस्तृत राज्य तथा एक बहुत बडी सेना छोड़ी, किन्तु अरब अमीरों का पारस्परिक विरोध तथा नव-मुस्लिमों के अधिक अधिकार की अभिलाषा दब न सकी। अब्बासियों के समान अब्दुर्रहमान को भी अपनी रक्षा हेतु अन्य क़ौमों की नियुक्ति करनी पड़ी। अब्दुर्रहमान द्वितीय (८२२–८५२ ई०) के राज्यकाल में ईसाइयों ने मुसलमानों की शक्ति का मुक़ाबला करना पुनः प्रारम्भ कर दिया। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद प्रथम (८५२–८८६ ई०) के राज्यकाल में स्थिति और भी ख़राब हो गयी। अब्दुर्रहमान तृतीय (९१२–९६१ ई०) ने अपने राज्यकाल

के लगभग ५० वर्षों में अपनी शक्ति के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया। उसके राज्यकाल में फ़ातेमियों ने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न किया। ९२९ ई० में उनके दल-बल को तोड़ने एवं मुसलमानों में अपनी राज्यसत्ता को दृढ़ बनाने के लिए अब्दुर्रहमान तृतीय ने ख़लीफ़ा तथा अमीरुल मोमनीन के साथ-साथ "नासिर ले दीनिल्लाह" की उपाधि धारण कर ली और उत्तरी अफ़्रीक़ा के कुछ भागों को विजय करके फ़ातेमियों को आगे बढ़ने से रोक दिया। बग़दाद के तुर्क दासों के समान स्पेन के सकालेबा दास (सलाव) भी, जो अधिकांश युद्ध में बन्दी बनाये जाते थे, ख़लीफ़ाओं के बड़े विश्वासपात्र थे और अरबों को उनका प्रभुत्व पसन्द न था। उसके राज्यकाल में उन्दुलुस (आईबेरियन प्रायद्वीप) सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र बन गया। कृषि, कलाकौशल एवं व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। प्रथम बनी उमय्या अमीर के समय से ही मस्जिदों एवं महलों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था और भवननिर्माण कला की एक नयी शैली उन्नति करने लगी थी। अब्दुर्रहमान तृतीय के राज्यकाल में ९३६ ई० में कारडोवा के समीप उत्तर में अज़्जहरा नामक नगर बसाना प्रारम्भ किया गया। साहित्य, दर्शन-शास्त्र एवं इतिहास की रचना को भी प्रश्रय प्रदान किया गया।

मुलूकुत्तवाएफ़—अब्दुर्रहमान तृतीय, हकम द्वितीय (९६१—९७६ ई०) तथा अल हाजिब उल मसूर (९७७—१००२ ई०) के राज्य के बाद स्पेन के विशाल राज्य का पतन होने लगा। बरबर, अरब, सकालेबा तथा स्पेनवाले राज्य के टुकड़े-टुकड़े करके आपस में बाँटने का प्रयत्न करने लगे। ११वीं शती ई० के प्रथम आधे भाग में लगभग २० छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। इस स्थिति को अरबवाले मुलूकुत्तवाएफ़ अथवा विभिन्न दलों के बादशाहों का राज्य कहते हैं।

बनू अब्बाद—इन राज्यों में सेविल का बनू अब्बाद का राज्य (१०२३-१०९१ ई०) सबसे अधिक शक्तिशाली था। इस राज्य के शासक अपने आपको हीरह के लाख़मीद बादशाहों की सन्तान बताते थे। इनके राज्य के अन्तिम काल में ईसाइयों ने अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु यूसुफ़ इब्ने तशफ़ीन नामक मोराको के शक्तिशाली बरबर ने नवम्बर १०९० ई० में गरनाता और १०९१ ई० में सेविल पर अधिकार जमा लिया। इन लोगों ने टोलेडो एवं सरगोसा के अतिरिक्त स्पेन के समस्त इस्लामी राज्य पर अधिकार जमा लिया।

मुराबेतीन—मुराबेतीन ने ११वीं शती ई० के मध्य में एक धार्मिक दल के रूप में अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। सर्वप्रथम सिनहाजा क़बीले की लमतूना शाखा ने

इनका साथ दिया। सिनहाजा क़बीलेवाले सहारा के विशाल रेगिस्तान में खाना-बदोशों के समान जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे इन लोगों ने पूरे उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा पर अपना प्रभुत्व जमा लिया और बाद में स्पेन को भी अपने अधिकार में कर लिया।

मुराबेतीन राज्य के संस्थापक यूसुफ इब्ने ताशफीन (१०६१–११०६ ई०) ने १०६२ ई० मे मराकश अथवा मोराको नामक नगर बमाया, स्पेन में क़रतेबा (कार-डोवा) के स्थान पर सेविल को अपनी राजधानी बनाया। ५० वर्ष से अधिक काल तक मुराबेतीन शक्ति उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा तथा दक्षिणी स्पेन में अपनी राज्यसत्ता जमाये रही। वे अब्बासी ख़लीफाओं के अनुयायी तथा धर्म के सम्बन्ध में इतने कट्टर थे कि यूसुफ के पुत्र एव उत्तराधिकारी अली (११०६–११४३ ई०) के राज्य में अलग़ज्जाली के ग्रन्थ स्पेन तथा मग़रिब में इस कारण जलवाये गये कि उनमें फक़ीहों के, विशेष रूप से मालिकी फक़ीहो के, विरुद्ध बातें पायी जाती थी। इन लोगों ने "अमीरुल मुस्लेमीन" की उपाधि धारण की। मुराबेतीन बरबर भी शीघ्र ही मोराको एवं उन्दुलुस नगरो की सस्कृति तथा भोग-विलास के शिकार हो गये और मुवह्हेदीन ने ११४७ ई० मे इनके राज्य का अन्त कर दिया।

मुवह्हेदीन—मुवह्हेदीन वशवालो ने भी अपना संगठन बरबर क़बीलों में धार्मिक प्रचार के रूप मे प्रारम्भ किया। बरबर की मसमूदह शाखा के मुहम्मद इब्ने तूमर्त (१०७८–११३० ई० लगभग) ने महदी की उपाधि धारण कर ली और वे इस बात का दावा करने लगे कि वे इस्लाम के तौहीद (एकेश्वरवाद) के सिद्धान्त का प्राचीन शुद्धतम रूप मनवाना चाहते हैं। इसी कारण उनके अनुयायी मुवह्हेदीन कहलाने लगे। ११३० ई० मे इब्ने तूमर्त की मृत्यु हो गयी और जनातह क़बीले के एक कुम्हार अब्दुल मोमिन इब्ने अली ने उसका स्थान ले लिया और ११४४ से ११४६ ई० के मध्य में मुराबेतीन की सेना को तलेम्सान के समीप पराजित करके फ़ास, क्योटा, तांजीर तथा अगमात को अपने अधिकार में कर लिया। ११ मास के अवरोध के उपरान्त (११४६–४७ ई०) मराकश को विजय करके उसने मुराबेतीन के राज्य का अन्त कर दिया। तदुपरान्त पाँच वर्ष के भीतर उसने स्पेन को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिया। ११५२ ई० में इन्होने अलजीरिया, ११५८ ई० में ट्युनिस तथा ११६० ई० मे त्रिपोली पर अधिकार जमा लिया। ११६३ ई० में अब्दुल मोमिन की मृत्यु हो गयी। ११७० ई० में मुवह्हेदीन ने अपनी राजधानी सेविल मे बना ली। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध बादशाह अब्दुल मोमिन का पौत्र अबू यूसुफ याक़ूब अल मसूर (११८४–

११९९ ई०) हुआ है। सलाहुद्दीन अय्यूबी (सलादिन) ने उसी के दरबार में बहुमूल्य उपहार सहित अपने राजदूत भेजकर सलीबी युद्ध लड़नेवाले ईसाइयों (क्रुसेडर्स) के विरुद्ध सहायता मँगवायी। उसके राज्यकाल में कला एवं संस्कृति को विशेष प्रोत्साहन प्रदान हुआ। उसने मोराको में सिकन्दरिया के नमूने पर रिबात अल-फ़तह का निर्माण कराया और एक अस्पताल भी बनवाया जिसे वहाँवाले संसार की अद्वितीय वस्तु समझते थे। मुवह्हेदीन ने स्पेन में ईसाइयों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का भी प्रयत्न किया। मंसूर का पुत्र मुहम्मद अल-नासिर (११९९–१२१४ ई०) १२१२ ई० में कारडोवा के ७० मील पूर्व "लस नवास डा तोलोसा" में, जिसे अरब उक़ाब पर्वत कहते हैं, ईसाई बादशाहों की संगठित सेना से बुरी तरह पराजित हो गया। कहा जाता है कि उसके ६ लाख सैनिकों में से केवल १००० सिपाही ही बचकर वापस जा सके। अल-नासिर मराकश भाग गया, जहाँ दो वर्ष उपरान्त उसकी मृत्यु हो गयी।

बनू नस्र-मुवह्हेदीन का स्पेन का राज्य ईसाई बादशाहों ने आपस में बाँट लिया। मुसलमानों का राज्य स्पेन की एक छोटी-सी दक्षिणी पट्टी के चारों ओर ग़रनाता तक सीमित रह गया, जहाँ बनू नस्र ने एक नये वंश की स्थापना की जो १२३२ ई० से १४९२ ई० तक चलता रहा। मोराको का राज्य ख़लीफा मुहम्मद अल-नासिर के उत्तराधिकारी अब्दुल मोमिन की संतान के अधिकार में १२६९ ई० तक रहा। तदुपरान्त बनू मरीन नामक बरबरों की एक शाखा ने उस राज्य पर अधिकार जमा लिया।

बनू नस्र (१२३२–१४९२ ई०) का सस्थापक मुहम्मद इब्ने यूसुफ़ नस्र था जो इब्न अल-अहमर कहलाता था। इसी कारण यह वश बनू अल अहमर भी कहलाता है। मुहम्मद (१२३२–१२७३ ई०) मदीने के ख़जरज क़बीले से सम्बन्धित होने का दावा करता था। उसने अल-ग़ालिब की उपाधि धारण कर ली और ग़रनाता के दक्षिण-पूर्व में अल-हमरा नामक क़िले का निर्माण कराया। उसके वंश के प्रयत्न से अल हमरा के क़िले की गणना संसार के उच्चकोटि के क़िलों में होने लगी।

मुहम्मद पचम (१३५४–५९ ई०) तथा मुहम्मद षष्ठ (१३६२–१३९१ ई०) सरीखे इस वंश के बादशाहों ने स्पेन के गिरते हुए गौरव को सँभालने का बड़ा प्रयत्न किया और साहित्य एवं कला की उन्नति की।

मग़रिब

त्रिपोली से ग़रनाता तक का भाग जिसे अरब मग़रिब कहते थे, इब्ने खलदून के अनुसार उन्नति एवं सभ्यता में मिस्र का पासंग भी न था। १३ वी शती ई० के मध्य से

उत्तरी अफ़ीक़ा तीन राज्यों में विभाजित हो गया, जो १४ वीं शती ईसवी के अन्त तक आपस में निरंतर युद्ध करते रहे—

(१) पूर्वी अलजीरिया, ट्युनीसिया एवं त्रिपोलितानिया के हफ़सी।

(२) मोराको के मरीनी।

(३) पश्चिमी अलजीरिया के ज़यानी।

हफ़सी—हफ़सी उत्तरी अफ़ीक़ा के एक बरबर क़बीले से सम्बन्धित थे। उन्होंने तीन शताब्दियों (१२२८–१५७४ ई०) से अधिक इफरीक़िया पर राज्य किया। इस वंश का नाम हितता के सरदार शेख अबू हफ़स उमर के नाम पर पड़ा जो इब्ने तूमर्त के मुख्य चेलों एवं अब्दुल मोमिन के विश्वास-पात्रों में था। १२२८ ई० तक हफसी मुवह्हेदीन के अधीन रहे। १२२८ ई० में अबू ज़करिया नामक इफ़रीक़िया के हाकिम ने ट्युनिस में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे क़सन्तीना, बिजाया, तलेम्सान इत्यादि पर अधिकार जमा लिया। मरीनियों तथा मिकान्सा वालों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसका राज्य क्योटा से तांजीर और भूमध्यसागर से सिजिलमासा तक फैल गया। जब १२४९ ई० में उसकी मृत्यु हुई तो उस समय के मुसलमानों के अफ़ीकी राज्य का वह सबसे अधिक शक्तिशाली बादशाह था।

बनी हफस का राज्य स्थापित हो जाने से इफरीकिया में कुछ वर्षों के लिए शान्ति एव समृद्धि का संचार हो गया और ट्युनिस न केवल राज-सत्ता का ही केन्द्र बना अपितु सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति का भी वहाँ विशेष संचार होने लगा। इस वंश के बादशाहों ने यूरोप के ईसाई बादशाहों से मैत्री के सम्बन्ध स्थापित रखा, जिसके फलस्वरूप यूरोप एव अफ़ीका के व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। किन्तु १२८३ ई० तक हफसी राज्य दो शाखाओं में विभाजित हो गया। ट्युनिस पर अबू हफस का राज्य रहा और बिजाया में अबू ज़करिया का (१२८४ ई०)। तेईस वर्ष तक इन दोनों का आपस में घोर युद्ध होता रहा जिसमें इफरीकिया तथा मध्य मग़रिब के अरब क़बीलों एवं तलेम्सान के अब्दुल वादियों ने कभी इस पक्ष का और कभी उस पक्ष का साथ देकर खूब लाभ उठाया। १३१८ ई० में अबू यहया ने ट्युनिस में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और इफ़रीकिया एवं मध्य मग़रिब के राज्य को अपने अधीन कर लिया। उसे अपने शत्रुओं के घोर विरोध के कारण चार बार राज्य से वंचित होना पड़ा किन्तु अन्त में मरीनियों की सहायता से उसे पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हो गयी। १३४६ ई० में अबू यहया की मृत्यु के उपरान्त पुनः अशान्ति फैल गयी। राज्य के अधिकारी अबुल

अब्बास को हटाकर अबू हफ्स स्वयं बादशाह बन बैठा। यह देखकर मरीनी वंश के सुल्तान अल हसन ने क़सन्तीना तथा बिजाया पर अधिकार जमा लिया और १३४७ ई० मे ट्युनिस को विजय कर लिया। किन्तु १३४८ ई० में उसे विद्रोही अरबों ने क़ैरवान के समीप पराजित कर दिया। उधर उसके पुत्र अबू इनान ने भी विद्रोह कर दिया था अतः वह अपने जीते हुए स्थानों को अपने अधिकार में न रख सका। हफसियों ने बिजाया तथा क़सन्तीना विजय कर लिया, किन्तु १३५३ ई० में मरीनी अबू इनान ने बिजाया पर अधिकार जमा लिया और १३५७ ई० में क़सन्तीना एवं ट्युनिस को भी हथिया लिया, किन्तु शीघ्र ही अरबों के आक्रमण के कारण उसे बनी हफस का राज्य छोड़ देना पड़ा और अबू इस्हाक़ द्वितीय ने ट्युनिस पर अधिकार जमाकर बनी हफस का राज्य पुनः स्थापित कर लिया, किन्तु राज्य में अशान्ति एव उथल-पुथल उसी प्रकार होती रही। अबू इस्हाक़ द्वितीय ट्युनिस का स्वामी था, बिजाया पर अबू अब्दुल्लाह ने अधिकार जमा लिया और क़सन्तीना पर अबुल अब्बास ने। अन्त मे अबुल अब्बास ने बनी हफस के प्राचीन राज्य के बहुत बड़े भाग को विजय कर लिया (१३६८–६९ ई०) और उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी अबू फारिस अजीज (१३९३-१४३४ ई०) मगरिब की शक्तियों मे संतुलन रखने मे बहुत बड़ी सीमा तक सफल रहा।

मरीनी वंश—बनू मरीन ने १२१६ ई० से अपनी शक्ति बढानी प्रारम्भ की और ५३ वर्ष में मेकनेस, फ़ास, रहत तथा सेल पर अधिकार जमा लिया। १२६९ ई० मे अमीर अबू यूसुफ याकूब ने मराकश को विजय करके मरीनी राज्य दृढ़ बना लिया। १३४० ई० तक वे लोग स्पेन के युद्धों मे भाग लेते रहे किन्तु यूरोप के ईसाई बादशाहों द्वारा स्पेन में अधिक प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के कारण इन लोगों ने उस ओर से निराश होकर केवल उत्तरी अफ़्रीक़ा की राजनीति में अधिक-से-अधिक भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और तलेम्सान पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। कई बार वहाँ वालों को मरीनियों ने बुरी तरह पराजित कर दिया। १२९९ ई० से ८ वर्ष तथा ३ मास तक वे तलेम्सान वालों को घेरे रहे। इसी बीच में मरीनियों के स्थायी शिविर के कारण मनसूरा नामक नगर बस गया। १३३७ ई० में मरीनी बादशाह अबुल हसन ने तलेम्सान पर अधिकार जमा लिया और वह तथा उसका पुत्र २२ वर्ष तक वहाँ राज्य करते रहे।

१३४७ ई० में अबुल हसन ने इफरीकिया पर आक्रमण किया, किन्तु अप्रैल १३४८ ई० में अरब कबीलों ने उसे बुरी तरह पराजित कर दिया और मग़रिब में मरीनियों की शक्ति डाँवाडोल हो गयी। उसके पुत्र अबू इनान ने भी इफ़रीक़िया विजय करने का प्रयत्न किया किन्तु उसे कोई सफलता न प्राप्त हुई। अबुल हसन तथा अबू इनान के

राज्यकाल में फ़ास के दरबार को बड़ी उन्नति प्राप्त हो गयी थी और अब्दुर्रहमान इब्ने खलदून तथा इब्नुल ख़तीब सरीखे विद्वान् एवं इब्ने वत्तूता सरीखा पर्यटक इस दरबार द्वारा आश्रय प्राप्त करते रहे। अबू इनान (१३४८–५८ ई०) ने स्पेन के मुसलमान शिल्पकारों एवं भवन निर्माण करनेवालों को बुलवाकर अपनी राजधानी फ़ेज़ अथवा फ़ास की बड़ी उन्नति की।

इफरीक़िया विजय मे असफलता के कारण तथा अबू इनान की मृत्यु के उपरान्त मरीनी राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत वड़ा धक्का पहुँचा। क़बीलों ने कर अदा करने की ओर से उपेक्षा प्रारम्भ कर दी और जब तक वे विवश न हो जाते, कर न देते थे। बड़े-बडे पद पिता से पुत्र को प्राप्त होने लगे। शाही वंशवाले भी षड्यंत्र रचने में किसी से पीछे न थे। वे किसी-न-किसी बालक को सिंहासनारूढ़ करके उसे कठपुतली बनाये रखते, यदि उनमे से कोई अपने अधिकार बढ़ाना चाहता तो वे उसे हटाकर दूसरे को सिंहासनारूढ़ कर देते। इसी सिलसिले में मरीनी सुल्तान अबू सालिम के सैनिकों ने १३६१ ई० मे उसकी हत्या कर दी।

जयानी वंश—बनी हफस तथा मरीनी वंश के बाद बरबर क़बीले के जयानियों का नाम लिया जा सकता है, जो तलेम्सान पर राज्य करते थे। १२३६ ई० से यग़मुरासन नामक जयानी वंश के सुल्तान ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। १३३७ से १३४८ ई० तथा १३५२ से १३५९ ई० तक दो बार मरीनियों ने इनके राज्य पर अधिकार जमाया, किन्तु १३४८ ई० में अबू हम्मू प्रथम ने मरीनियों को पराजित किया। पर १३५२ ई० मे वह पुन. पराजित हो गया, पर १३५९ ई० मे उसने अपना राज्य दुबारा विजय कर लिया, जो १५५४ ई० तक उसी के वंश मे चलता रहा।

(२)

इब्ने खलदून

अब्दुर्रहमान इब्ने मुहम्मद हज़रमी[1] का जन्म ट्युनिस में १ रमजान ७३२ हि० (२७ मई १३३२ ई०) को हुआ। अरबों में पुत्र के नाम के सम्बन्ध से भी पिता का

१. **इब्ने खलदून की जीवनी जो इन पृष्ठों में दी गयी है, उसकी "आत्मकथा" अत्तारीफ़ बे-इब्ने खलदून व रिहलतुहू ग़रबन व शरक़न (मुहम्मद तावीत अत्तंजी द्वारा संकलित तथा क़ाहेरा से १९५१ ई० में प्रकाशित) पर आधारित है। अत्तंजी**

नाम प्रसिद्ध हो जाता है। इस प्रकार वह अबू ज़ैद अथवा ज़ैद का पिता भी कहलाता था। उसकी उपाधि वलीउद्दीन थी, किन्तु वह इब्ने ख़लदून के नाम से प्रसिद्ध है। उसके पूर्वज अपने आपको यमन के एक क़बीले का बताते थे जो हजरमौत में निवास करता था। इस कारण वह हज़रमी कहलाता था। ८वीं शती ईसवी में जब बनी उमय्या के स्थान पर बनी अब्बास सिंहासनारूढ़ हुए तो उनके समर्थक स्पेन की ओर भाग गये। ख़लदून, जिसके नाम पर यह वंश चला, बनी उमय्या अमीरो का राज्य दृढ़ हो जाने के उपरान्त वहाँ पहुँचा। यद्यपि इब्ने खलदून के वंश को समकालीन राज्यों में समय-समय पर बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही, किन्तु उनके विषय में स्वय उसे भी अधिक ज्ञान नहीं था। उसने उनके विषय में जो कुछ लिखा है वह स्पेन के इतिहासों

ने इब्ने ख़लदून के बहुत से संकेतों तथा हवालों को टिप्पणियों द्वारा स्पष्ट भी कर दिया है और उन बहुत से लोगों की जिनका इब्ने ख़लदून ने उल्लेख किया है, संक्षिप्त जीवनियाँ भी दी हैं। आत्मकथा के अतिरिक्त इब्ने ख़लदून के समकालीन इब्नुल ख़तीब के ग़रनाता के इतिहास "अल-इहातह फ़ी अख़्बार ग़रनातह" (क़ाहेरा से १९०१ ई० में दो भागों में प्रकाशित) तथा इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे एवं बरबरों के इतिहास से विशेष सहायता ली गयी है। फ़्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी में इब्ने ख़लदून की जीवनी एवं मुक़द्दमे के विषय में कई लेख तथा ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका उल्लेख "सहायक ग्रंथों की सूची" में कर दिया गया है। इन सबमें मुहसिन महदी का ग्रंथ, "इब्ने ख़लदून्स फ़िलासफ़ी आफ़ हिस्ट्री (*Ibn Khaldun's Philosophy of History*) लन्दन से १९५७ ई० में प्रकाशित बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। डॉ० अली अब्दुल वाहिद वाफ़ी द्वारा संकलित, "मुक़द्दमये इब्ने ख़लदून" में भी, जो मिस्र से १९५७-५८ ई० में प्रकाशित हुआ है, (पृ० १-२०३ में) अरबी भाषा में इब्ने ख़लदून की जीवनी तथा मुक़द्दमे के विषय में विस्तार से लिखा गया है। फ़्रेंज रोज़ेंटहाल द्वारा अंग्रेज़ी में तीन भागों में अनूदित तथा लन्दन से १९५८ ई० में प्रकाशित इब्ने ख़लदून के "मुक़द्दमे" में भी इब्ने ख़लदून की जीवनी तथा मुक़द्दमे के विषय में लिखा गया है। इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे को भली भाँति समझने में फ़्रेंज रोज़ेंटहाल के निम्नांकित दो ग्रंथ भी बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं—*The Technique and Approach of Muslim Scholarship* (१९४७ ई०) तथा *A History of Muslim Historiography* (१९५२ ई०).

पर आधारित है। ९वी शती ईसवी के अन्त में उसके पूर्वजों में एक व्यक्ति कुरयब हुआ है, जिसने उमय्या वंश के विरुद्ध विद्रोह करके सेविल में एक स्वतंत्र-जैसा राज्य स्थापित कर लिया। वह राज्य लगभग १० वर्ष तक चलता रहा। ८९९ ई० में उसंकी हत्या करा दी गयी।

११वीं शती ईसवी के प्रारम्भ में जब स्पेन का केन्द्रीय राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था तो इब्ने खलदून के वंश को सेविल के क्रान्तिकारियों के नेतृत्व के कारण बड़ा महत्त्व प्राप्त हो [illegible]। उसका एक पूर्वज अबू मुस्लिम उमर बिन अहमद इब्ने ख़लदून (मृत्यु १०५७-[illegible] ई०) दर्शन-शास्त्र एवं विज्ञान में अपनी रुचि के कारण बड़ा प्रसिद्ध हुआ। वह अप[illegible] समय के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मसलमा अल मजरीती का शिष्य था। जब ट्युनिस के हफस वंश के संस्थापक सेविल में हाकिम थे तब इब्ने ख़लदून के पूर्वज लोग उनके विश्वासपात्र बन गये। वहाँ की राजनीति पर उनका गहरा प्रभाव था। १३वी शती ईसवी के लगभग जब ईसाई लोग सेविल पर प्रबल आक्रमण करने लगे तो इब्ने खलदून के पूर्वजों का वंश सेविल की पराजय (१२४८ ई०) के पूर्व ही उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका चला गया, जहाँ के दरबार की ओर से उसका भली-भाँति स्वागत हुआ।

[illegible]र्वप्रथम जो व्यक्ति उत्तर-पश्चिमी अफ़ीका पहुँचा, वह उसके परदादा का परदा अलहसन बिन मुहम्मद था। वह सर्वप्रथम क्योटा पहुँचा और वहाँ से हज करबला गया। हज से लौटकर वह बनी हफस के सुल्तान अबू जकरिया के पास [illegible]वान पहुँचा। वहाँ उसे जागीर प्रदान की गयी। उसके कुछ अन्य वंशवालों को भी बनी हफस द्वारा उच्च पद प्राप्त हुए। उन्होंने वहाँ के राजनीतिक एव सांस्कृतिक जीवन मे बडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। "मुक़द्दमे" में कई स्थानों पर इस बात की चर्चा हुई है कि किस प्रकार स्पेन के शरणार्थियों ने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के सांस्कृतिक जीवन को उन्नति पर पहुँचाया। अपने पूर्वजो के इस कारनामे पर इब्ने खलदून सर्वदा गर्व करता हुआ दृष्टिगत होता है और स्पेन की सभ्यता एवं सस्कृति की छाप उसके मस्तिष्क से कभी भी न मिट सकी।

हसन बिन मुहम्मद के पुत्र अबूबक्र मुहम्मद को "साहिबुल अशगाल" का उच्च पद प्राप्त हो गया था, किन्तु १२८३ ई० में इब्ने अबी उमरा की, बनी हफस के विरुद्ध विद्रोह कर देने के कारण हत्या कर दी गयी। उसने राजनीति सम्बन्धी एक छोटे-से ग्रथ की रचना भी की थी जिससे सम्भवतः इब्ने ख़लदून ने पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की।

इब्ने खलदून के दादा मुहम्मद को बनी हफ़स के राज्य में नायब हाजिब का पद प्राप्त था। किन्तु समकालीन राजनीति की अनिश्चित दशा एवं बनी हफस के

राज्य के पतन के कारण उसने अपने अन्तिम जीवन काल में एकान्तवास ग्रहण करके धार्मिक जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया और यही परामर्श उसने अपने पुत्र को भी दिया। दोनों अबू अब्दुल्लाह जुबैदी नामक एक प्रसिद्ध सूफ़ी के शिष्य हो गये। मुहम्मद की १३३६-३७ ई० में मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र अर्थात् इब्ने खलदून का पिता मुहम्मद पठन-पाठन के कार्य में ही जीवन व्यतीत करता रहा और १३४८-४९ ई० की भीषण प्लेग में मुहम्मद की मृत्यु हो गयी। इब्ने ख़लदून के अनुसार उसके पिता को सर्वदा उसकी शिक्षा की चिन्ता रहा करती थी। इब्ने खलदून के वंश में उच्च कोटि की शिक्षा एवं राजनीति दोनों की ही परंपराएँ वर्तमान थीं।

इब्ने ख़लदून ने अपने पिता एवं अपने अनेक समकालीन आलिमों से शिक्षा ग्रहण की थी। उसके अधिकाश गुरुओ के पूर्वजों का वतन स्पेन था। नकली[1] एव अक़ली[2] ज्ञान के सभी क्षेत्रों मे उसे अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। धार्मिक विपयों के अतिरिक्त उसे तर्क-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, ज्योतिप, चिकित्सा-शास्त्र इत्यादि की भी शिक्षा मिली थी। रचनाशैली मे कुशलता एवं इतिहास के ज्ञान मे दक्षता भी उसने प्राप्त की थी।

१३४७ ई० में फास (फेज) के मरीनी सुल्तान अबुल हसन ने, जो १३३७ ई० से अब्दुल वाद वंश के तलेम्सान पर अधिकार जमाये हुए था, ट्युनिस विजय कर लिया, किन्तु १३४८ ई० में अरब क़बीलों द्वारा क़ैरवान मे पराजित होकर, ट्युनिस छोड़ना पड़ा और १३५७ ई० तक बनी हफस का राज्य बडे ख़तरे मे रहा। १३५७ ई० मे अबुल हसन के पुत्र अबू इनान ने ट्युनिस को विजय कर लिया, किन्तु १३५८ ई० मे उसकी मृत्यु हो गयी और फिर कुछ समय के लिए उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा को आक्रमणों से मुक्ति प्राप्त हो गयी।

१३४७ ई० मे मरीनी वश की विजय के उपरान्त ट्युनिस में अबुल हसन के साथ कुछ प्रसिद्ध विद्वान् भी पहुँचे। इब्ने ख़लदून ने इनमे से मुहम्मद (बिन अली) बिन सुलेमान अस्सत्ती, अब्दुल मुहैमन बिन मुहम्मद अल हज़रमी (१२७७-७८ से १३४९ ई०) और सबमे प्रमुख मुहम्मद बिन इबराहीम अल अबिली (१२८२-८३ से १३५६ ई०) से शिक्षा ग्रहण की। अबिली के ट्युनिस से चले जाने के

१. कथन पर आधारित (क़ुरान शरीफ़ तथा हदीस पर आधारित) ज्ञान, देखिए अध्याय ६।

२. बुद्धि अथवा तर्क पर आधारित ज्ञान, गणित, दर्शनशास्त्र इत्यादि, देखिए अध्याय ६।

उपरान्त इब्ने खलदून का भी मन अपने वतन में न लगा और वह वहाँ से चल खड़ा हुआ।

प्लेग के कारण इब्ने खलदून के पिता एवं माता की मृत्यु हो चुकी थी और केवल उसका बड़ा भाई मुहम्मद ही वंश के बड़े-बूढ़ों में रह गया था। २० वर्ष की अवस्था में वह "साहिब अल-अलामह" अथवा हस्ताक्षर करने का अधिकारी नियुक्त हो गया। इस पद के अन्तर्गत उसे फरमानों पर शीर्षक लिखना पड़ता था। यद्यपि यह कोई बहुत बडा पद न था, किन्तु वह हफ्सी वश का विश्वास-पात्र था। फिर भी वह १३५२ ई० मे ट्युनिस से मरीनी राज्य मे चला गया और १३५३ ई० की गरमी में उसने अबू इनान से भेट की। १३५३-५४ ई० में वह बिजाया मे रहा जो मरीनी वश के उच्च पदाधिकारियों के अधीन था।

फ़ास (फ़ेज) में

१३५४ ई० में वह अबुल हसन के पुत्र अबू इनान के निमत्रण पर फास (फेज) पहुँचा और वहाँ के विद्वानो की गोष्ठियो से लाभान्वित होने लगा। वह वहाँ कुरान के प्रसिद्ध विद्वान् मुहम्मद बिन अस्सफार व एक अन्य विद्वान् मुहम्मद बिन मुहम्मद अल मक्करी के सम्पर्क में आया। उसने दर्शन-शास्त्र के माने हुए विद्वान् मुहम्मद बिन मुहम्मद अलवी (१३१०-११ से १३६९-७० ई०) से भी शिक्षा ग्रहण की, जो कहा जाता है कि इब्ने खलदून के ट्युनिस के एक गुरु मुहम्मद इब्ने अब्दुस्सलाम का भी गुरु था। वह क़ाजी मुहम्मद बिन अब्दुर्रज्जाक तथा मुहम्मद बिन यहया अल बरजी (१३१०-११ से १३८४ ई०) की गोष्ठियो मे भी रहा। उसकी वहाँ प्रसिद्ध ज्योतिषी एव चिकित्सक इबराहीम बिन जर्रार से भी भेट हुई। उसको फ़ेज़ में शरीफ़ मुहम्मद बिन अहमद अस्सबती (१२९७-९८ से १३५९ ई०) से भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और वह प्रसिद्ध विद्वान् अबुल बरकात मुहम्मद बिन मुहम्मद अल बल्लाफीकी (मृत्यु १३७०ई०) की शिक्षा से भी, जिसके हवाले उसने मुक़द्दमे में कई स्थानों पर दिये है, लाभान्वित हुआ।

फ़ज में इब्ने खलदून कुछ समय तक विद्याध्ययन में ही व्यस्त रहा, किन्तु उसे शीघ्र ही दरबार के विद्वानों के साथ अबू इनान के दरबार से भी सम्बन्धित होना पड़ा। १३५५ ई० में उसे अबू इनान ने अपना कातिब (सचिव) नियुक्त कर लिया और सुल्तान की सेवा में जो प्रार्थनापत्र प्रस्तुत होते उन पर एवं अन्य काग़जो पर वह शाही आदेश लिखा करता था। उसे यह कार्य पसन्द न था। वह लिखता है कि "उसके पूर्वजो ने इस प्रकार का कार्य कभी न किया था। वे सुल्तानों की परामर्श-

गोष्ठियों के मुख्य अंग रह चुके थे और समकालीन राजनीति एवं क्रान्तियों में भाग लिया करते थे।" यद्यपि उसने इस पद पर अधिक समय तक कार्य न किया, किन्तु इसके सहारे से उसे अन्य देशों के राजदूतों से विचार-विनिमय करने तथा समकालीन उत्तरी अफ़्रीक़ा एवं मुसलमानी स्पेन की राजनीतिक दशा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया।

वह बनी हफ़्स के शाहज़ादे अबू अब्दुल्लाह का, जो उन दिनों फ़ेज़ में था, बड़ा घनिष्ठ मित्र हो गया। अबू इनान अबू अब्दुल्लाह की सहायता से ट्युनिस से बनी हफ़्स में फूट डालकर उस देश पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था, किन्तु थोड़े दिन बाद अबू इनान को यह सन्देह हो गया कि इब्ने ख़लदून अबू अब्दुल्लाह से मिलकर उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा है, अतः उसने १० फ़रवरी १३५७ ई० को इब्ने ख़लदून तथा अबू अब्दुल्लाह को बन्दी बना लिया। उसके बाद ही अबू इनान ट्युनिस पर आक्रमण हेतु रवाना हो गया। ऐसी अवस्था में वह इब्ने ख़लदून को मुक्त रहने ही किस प्रकार दे सकता था। अबू अब्दुल्लाह को तो कुछ समय उपरान्त बन्दीगृह से छोड़ दिया गया, किन्तु इब्ने ख़लदून बन्दीगृह मे ही रहा। २७ नवम्बर १३५८ ई० को अबू इनान की मृत्यु हो गयी और २१ मास के उपरान्त उसे बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया। अबू इनान की मृत्यु के पश्चात् मरीनी वश का पतन प्रारम्भ हो गया। राज्य के वज़ीरों ने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और प्रत्येक उच्च पदाधिकारी शाही वंश के किसी न किसी व्यक्ति का समर्थक बनकर षड्यंत्र रचने लगा। इब्ने ख़लदून ने राज्यों की इस प्रकार की अव्यवस्थित दशा से अपने मुक़द्दमे मे बड़े ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।

इब्ने ख़लदून ने स्वयं अबू इनान के भाई अबू सालिम की, जो देश से निर्वासित हो चुका था, वापिसी के लिए प्रयत्न किया। अबू सालिम ने जुलाई १३५९ ई० में २६ वर्ष की अवस्था में मरीनी राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उसने इब्ने ख़लदून को "कातिब-अल सिर वल तौक़ी वल इन्शा" नियुक्त कर दिया। बाद में उसने उसे अपने राज्य के "मज़ालिम" विभाग का मुख्य अधिकारी वना दिया। इस विभाग के अन्तर्गत उन अभियोगों के निर्णय की देखरेख करनी पड़ती थी जिनका सम्बन्ध "शरा" से न होता था। उसे अपना यह नया कार्य पसन्द भी था और इस विभाग के अध्यक्ष के रूप में उसने जो सेवाएँ कीं उनसे वह संतुष्ट भी था। अबू सालिम, इब्ने ख़लदून की आशा के विरुद्ध, बुद्धिमान् एवं न्यायकारी बादशाह न निकला और दरबार के षड्यंत्र का शिकार हो गया। १३६१ ई० में राज्य के अधिकारियों ने अबू सालिम के विरुद्ध विद्रोह करके उसकी हत्या कर दी।

उस समय अब्दुल वादियों ने अपनी शक्ति का पुनर्गठन करके तलेम्सान पर अधिकार जमा लिया था। सुदूर पूर्व में बिजाया, क़िसिन्तीना तथा ट्युनिस में बनी हफ़्स अपनी शक्ति का पुनरुद्धार करने लगे थे। इस अनिश्चित वातावरण के कारण इब्ने खलदून ने फ़ेज़ से चला जाना ही उचित समझा। किन्तु वहाँ वालों को यह भय हुआ कि कहीं वह अपने अफ़्रीक़ा की राजनीति के ज्ञान से किसी अन्य पक्ष को अनुचित लाभ न पहुँचा दे, अतः उन्होंने उसे इस शर्त पर जाने की अनुमति दी कि वह अफ़्रीक़ा के किसी राज्य में न जायगा अपितु स्पेन चला जायगा। तदनुसार वह फ़ेज़ से प्रस्थान करके २६ दिसम्बर १३६२ ई० को ग़रनाता पहुँच गया।

स्पेन में

ग़रनाता के मुहम्मद पंचम (१३५४-१३९१ ई०) से, अबू सालिम के राज्यकाल में इब्ने ख़लदून की मित्रता हो गयी थी। १३५९ ई० में मुहम्मद के दरबार वालों ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र करके उसके भाई को उसके स्थान पर बादशाह बना दिया। मुहम्मद भागकर अबू सालिम के पास पहुँचा। उस समय इब्ने ख़लदून अबू सालिम का सचिव था। उसने मुहम्मद का भव्य स्वागत कराया। कुछ समय उपरान्त अबू सालिम के प्रयत्न से मुहम्मद के प्रधान मंत्री इब्नुल ख़तीब को भी ग़रनाता वालों ने मुक्त कर दिया और वह मुहम्मद के पास फ़ेज़ पहुँच गया। इब्नुल ख़तीब की विद्वत्ता से इब्ने ख़लदून अत्यधिक लाभान्वित हुआ और उसी की प्रेरणा से उसने अल बरजी की कविता के विषय में कुछ विशेष बातें लिखीं, जिन्हें इब्नुल ख़तीब ने अपने ग़रनाता के इतिहास में संकलित कर लिया। इब्ने खलदून के प्रयत्न से मुहम्मद को ग़रनाता का राज्य प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिली। जब मुहम्मद अपने राज्य पर पुनः अधिकार जमाने के लिए १३६१ ई० में ग़रनाता रवाना हुआ तो अपने परिवार को इब्ने ख़लदून की ही देख-रेख में छोड़ गया। इस कारण जब इब्ने ख़लदून ग़रनाता पहुँचा तो बादशाह एवं प्रधान मत्री दोनों ने उसे हाथों हाथ लिया और वह उनका विश्वासपात्र बन गया।

१३६४ ई० में कास्तिल्ला के ईसाई बादशाह पेडरो प्रथम "अत्याचारी" के पास उसे एक शिष्ट-मंडल का नेता बनाकर इस आशय से भेजा गया कि वह ईसाई बादशाह एवं मुसलमानों में सन्धि करा दे। इब्ने ख़लदून की पेडरो से सेविल में, जो उसके पूर्वजों का वतन था, भेंट हुई। पेडरो इब्ने ख़लदून के उत्तरी अफ़्रीक़ा की राजनीतिक दशा के ज्ञान के विषय में सुनकर तथा यह जानकर कि उसके पूर्वज सेविल

के ही निवासी थे, बड़ा प्रभावित हुआ। उसने इब्ने ख़लदून को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया और उसके पूर्वजों की जागीर उसे वापस कर देने तथा अपने राज्य में ठहर जाने का उससे आग्रह किया। किन्तु इब्ने ख़लदून ने यह स्वीकार न किया और अपना कार्य समाप्त करके बादशाह के उपहार लेकर वह ग़रनाता लौट आया। पेडरो के राज्य में उसे मुसलमानों के प्राचीन राज्य के ऐश्वर्य एवं गौरव के अवशेष देखने एवं मुसलमानों की वर्तमान स्थिति पर ग़ौर करने का अवसर मिला। उसने देखा कि मुसलमानों का प्रभुत्व किस प्रकार घटता जा रहा है। वह जिस सन्धि के लिए गया था वह बराबर के राज्य वालों की सन्धि न थी, अपितु एक उन्नति के पथ पर अग्रसर तथा दूसरे पतनशील राज्य के मध्य की सुलह थी।

ग़रनाता में इब्ने खलदून ने अपने परिवार को भी क़िसिन्तीना से बुलवा लिया। मुहम्मद पंचम युवक एवं जागरूक भी था, अतः इब्ने खलदून ने उसे अपने विचारों से प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। इब्ने खलदून समझता था कि सम्भवतः उसकी शिक्षा द्वारा मुहम्मद अपने राज्य को उसकी कल्पना के "आदर्श राज्य" में परिवर्तित कर सकेगा। अबू सालिम के दरबार में उसे इस दिशा में कोई सफलता न प्राप्त हुई थी, सुल्तान ने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया था। उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में सभ्यता एवं संस्कृति की वे परम्पराएँ भी न थी जो स्पेन में थी, अतः वह मुहम्मद की शिक्षा में अपनी पूरी योग्यता का प्रयोग करने लगा। उसने "अल्लका लिल सुल्तान" नामक एक ग्रंथ की रचना भी की जिसमें सुल्तानों के लिए जिस तर्क-शास्त्र की आवश्यकता होती है उसका उल्लेख किया।

सुल्तान का प्रधान मंत्री इब्नुल ख़तीब, इब्ने ख़लदून एवं मुहम्मद की गोष्ठियों के विषय में सन्देह करने लगा। जब उसे इब्ने ख़लदून की योजनाओं का पता चला तो उसके क्रोध की कोई सीमा न रही। इब्नुल ख़तीब का संभवतः विचार था, जो बाद में ठीक ही निकला कि इब्ने ख़लदून मुहम्मद को जिस मार्ग पर ले जाना चाहता है, मुहम्मद उसके योग्य नहीं। इससे राज्य को बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। वह इब्ने ख़लदून की विद्वत्ता से प्रभावित था और इब्ने ख़लदून भी आजीवन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता रहा।

बिजाया में

इसी बीच में बनी हफ़स के अबू अब्दुल्लाह ने जून १३६४ ई० में बिजाया पर अधिकार जमा लिया। उसने इब्ने ख़लदून को भी अपने राज्य में आमंत्रित किया और

उसे हाजिब बना देने का आश्वासन दिलाया। इब्ने ख़लदून ग़रनाता से चल दिया और मार्च १३६५ ई० में बिजाया पहुँच गया। मुहम्मद पंचम उसके प्रस्थान से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने ११ फ़रवरी १३६५ ई० को इब्नुल ख़तीब से लिखवा-कर उसके पास एक पत्र भिजवाया जिसमें उसकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी थी। इब्ने ख़लदून अपने बिजाया के जीवन से बड़ा संतुष्ट था। वह अपनी आत्म-कथा में लिखता है—"सुल्तान ने आदेश दिया कि दरबारी रोज़ाना प्रातःकाल मेरे दरबार में उपस्थित हुआ करें। मैंने शासन का कार्य संभाल लिया और राज्य के हित एवं अन्य समस्याओं का पूर्ण रूप से समाधान करने लगा।"

"सुल्तान ने क़स्बा के महाविद्यालय के आचार्य का पद भी मुझे प्रदान कर दिया। मै अत्यन्त व्यस्त रहने के बावजूद, दिन के प्रथम भाग में अपना कार्य समाप्त करके क़स्बा महाविद्यालय में जाकर बैठ जाता और वहाँ पठन-पाठन का कार्य प्रारम्भ कर देता और उसे कभी न त्यागता।"

अबू अब्दुल्लाह यद्यपि युवक था, किन्तु उसमें एक गुणवान् बादशाह बनने की योग्यता न थी। शीघ्र ही उसकी प्रजा उसकी कठोरता एवं निष्ठुरता के कारण उससे बुरी तरह असतुष्ट हो गयी। उसी समय में अबू अब्दुल्लाह का चचेरा भाई अबुल अब्बास भी क़िसिन्तीना का बादशाह था। उसने अबू अब्दुल्लाह की प्रजा की सहायता से उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध मे इब्ने ख़लदून ने अबू अब्दुल्लाह के राज्य की बड़ी सहायता की। बिजाया मे धन की कमी हो जाने के कारण वह बिजाया के पर्वतीय बरबरों से कर वसूल करने के लिए तैयार हो गया, यद्यपि यह कार्य बड़ा खतरनाक था। मई १३६६ ई० में अबू अब्दुल्लाह की मृत्यु हो गयी। इब्ने खलदून ने उसके उत्तराधिकारी के राज्य में रहना पसन्द न किया और वह अबुल अब्बास के पास चला गया। किन्तु उसने वहाँ पहुँचते ही भाँप लिया कि अबुल अब्बास से उसकी अधिक दिनों तक नही निभ सकती और उसने आग्रह करके वहाँ से चले जाने की अनुमति प्राप्त कर ली।

बिस्करा में

ट्युनिस से १३५२ ई० में उसके चले जाने के उपरान्त रियाह दवाविदह अरबों को राज्य प्राप्त हो गया। उनकी अनुमति से उसने बिस्करा में निवास करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में उसे पता चला कि उसके भाई यहया को अबुल अब्बास ने बन्दी बना दिया है। अब इब्ने ख़लदून बड़े असमंजस में पड़ गया।

उस समय उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में, तलेम्सान में अब्दुल वादियों का राज्य था जिनका बादशाह अबू हम्मू था। ट्युनिस के अबू हफ़स उसके सहायक थे। उनके विरोधियों में वे अब्दुल वादी थे जो तलेम्सान पर अपनी राज्यसत्ता स्थापित करना चाहते थे। बनी हफस का अबुल अब्बास, जो क़िसिन्तीना तथा बिजाया का बादशाह था, उनका सहायक था। अरब के क़बीले इस अवसर पर कभी इस पक्ष का और कभी उस पक्ष का साथ देने लगते थे। इब्ने ख़लदून ने इस स्थिति से पर्याप्त लाभ उठाया। उसे अरब क़बीलों का बड़ा अच्छा ज्ञान हो गया था और वह जिस प्रकार चाहता उनसे लाभ उठा लेता था।

तलेम्सान के अबू हम्मू का विवाह बिजाया के अबू अब्दुल्लाह से हुआ था जो इब्ने ख़लदून का मित्र तथा आश्रयदाता था। उसने इब्ने ख़लदून को अपने राज्य में प्रधान मंत्री बना देने का आश्वासन दिलाकर आमंत्रित किया। उसका एक पत्र मार्च १३६८ ई० को प्राप्त हुआ, किन्तु इब्ने ख़लदून ने अपने भाई यहया को जो बंदीगृह से मुक्त हो गया था, तलेम्सान भेज दिया और वह स्वयं कहीं न गया। उस समय वह राजनीति की अनिश्चित दशा से निराश हो गया था और अब कुछ समय विद्याध्ययन में व्यतीत करना चाहता था।

इसी बीच मरीनी वंश ने फ़ेज़ के सुल्तान अब्दुल अज़ीज़ (१३६६-१३७२ ई०) के नेतृत्व में बहुत अधिक उन्नति प्राप्त कर ली थी। १३७० ई० में उसने तलेम्सान पर चढ़ाई की। इस कारण अबू हम्मू की स्थिति डाँवाडोल हो गयी। अप्रैल १३७० ई० में अबू हम्मू से इब्ने खलदून ने भेंट की, किन्तु अब्दुल अजीज़ की विजयों के कारण वह समझ गया कि उसका उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में रहना उचित नहीं और उसने स्पेन भाग जाना निश्चय कर लिया, किन्तु इसमें वह सफल न हो सका। मार्ग में ही उसे बन्दी बना लिया गया और अब्दुल अजीज की सेवा में उपस्थित किया गया, किन्तु उसे मुक्त कर दिया गया और वह तलेम्सान के समीप अल-उब्बाद चला गया। एक दो सप्ताह बाद ही अब्दुल अज़ीज़ ने उसे अपनी सेवा में सम्मिलित हो जाने के लिए विवश कर दिया। वह ४ अगस्त १३७० ई० को बिस्करा पहुँच गया और अरब क़बीलों की राजनीति में भाग लेने लगा। दो वर्ष उपरान्त अब्दुल अज़ीज़ ने उसे फेज़ बुलवा लिया और ११ सितम्बर १३७२ ई० को वह अपने परिवार को बिस्करा छोड़कर फ़ेज़ की ओर चल दिया, किन्तु मार्ग में ही उसे अब्दुल अज़ीज़ की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। अबू हम्मू के पक्षपाती बद्दुओं ने उसे मार्ग में बड़े कष्ट पहुँचाये। वह लिखता है—"उन लोगों ने हमारा मार्ग रोका और जो कुछ हमारे पास था वह

सब लूट लिया। हममें से कुछ लोग अपने प्राण लेकर दबदू पर्वत की ओर भाग गये और कुछ पैदल ही गये। मैं भी उन्हीं लोगों में था। दो दिन मैंने बिना वस्त्र के काटे। अन्त में आबादी में पहुँचा और दबदू में जाकर अपने साथियों से मिल गया।" इस तरह की कठिनाइयाँ झेलता हुआ वह किसी न किसी प्रकार फ़ेज़ पहुँच गया।

पुनः स्पेन में

वहाँ की अनिश्चित राजनीति के कारण उसने फ़ेज़ से स्पेन चला जाना ही अपने लिए हितकर समझा। उस समय ग़रनाता में इब्नुल ख़तीब के स्थान पर इब्ने ज़मरक प्रधान मंत्री था। इब्नुल ख़तीब की भाँति वह भी अबू सालिम के समय में फ़ेज पहुँचा था और इब्ने ख़लदून ने उसका भी बड़ा भव्य स्वागत कराया था। किन्तु इब्ने खलदून के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थीं। फ़ेज तथा ग़रनाता के सम्बन्ध उस समय बहुत बिगड़ चुके थे और युद्ध छिड़ जाने तक की नौबत आ गयी थी। फ़ेज के शासन ने उसे जाने की अनुमति न दी, किन्तु १३७४ ई० में वह ग़रनाता पहुँच गया।

ग़रनाता के सुल्तान मुहम्मद में भी इस समय बड़ा परिवर्तन आ चुका था। इब्नुल ख़तीब को जैसा भय था वही हुआ। इब्ने ख़लदून का, दर्शन-शास्त्र से रुचि रखनेवाला बादशाह, बहुत बड़ा अत्याचारी बन चुका था। उसने इब्नुल ख़तीब को ग़रनाता से निर्वासित कर दिया। जब वह मरीनी दरबार में चला गया तब भी मुहम्मद उसकी हत्या कराये बिना संतुष्ट न हुआ। जब मुहम्मद को यह ज्ञात हुआ कि इब्ने ख़लदून ने इब्नुल ख़तीब की सहायता की थी, तो उसने उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

क़िला इब्ने सलमह में

इब्ने ख़लदून ग़रनाता से हुनैन पहुँचा। हुनैन उस समय तलेम्सान के अधीन था जहाँ सुल्तान अबू हम्मू शासन कर रहा था। अबू हम्मू से इब्ने ख़लदून के सम्बन्ध अच्छे न थे, किन्तु अबू हम्मू बिजाया-विजय के स्वप्न देख रहा था, अतः उसने इब्ने ख़लदून से काम लेने का निश्चय कर लिया। इब्ने ख़लदून के एक मित्र ने भी उसकी बड़ी सहायता की। वह अबू हम्मू के राज्य में अल-उब्बाद के समीप निवास करने लगा। ५ मार्च १३७५ ई० को उसका परिवार भी फ़ेज़ से वहीं पहुँच गया।

इसी बीच अबू हम्मू ने उसे एक शिष्ट-मंडल का नेतृत्व सौंपकर दवाविह अरबों के पास जाने का आदेश दिया। इब्ने ख़लदून ने एकान्तवास करने का निश्चय कर लिया था, किन्तु अबू हम्मू के आग्रह पर उसे यह सेवा स्वीकार करनी ही पड़ी। उसने सोचा कि सम्भवतः इस प्रकार शासन की सेवा से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाय। तलेम्सान से प्रस्थान करके वह अरब ज़ुग़बह नामक क़बीले की सुवैद शाखा के प्रमुख वंश औलाद आरिफ के साथ ठहर गया और अपने परिवार को भी वहीं बुलवा लिया। औलाद आरिफ ने पूरे परिवार को क़िला इब्ने सलमह में निवास करने की अनुमति दे दी। यह उरान प्रान्त का एक ग्राम तथा क़िला था जिसे मरीनी वंश के अबू इनान ने इन्हें प्रदान कर दिया था। वहाँ इब्ने खलदून को तीन वर्ष से अधिक शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिल गया।

अब उसकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की हो चुकी थी। अपने जीवन के २० वर्ष तक मुसलमानों के पश्चिमी राज्यों की राजनीति में भाग लेने के कारण उसे इस विषय का उत्तम ज्ञान हो गया था। उसे अनेक महत्त्वपूर्ण राजदूतों, पदाधिकारियों, शासकों, क़बीले के सरदारों एवं विद्वानों से विचार विनिमय का अवसर भी प्राप्त हो चुका था। इतने अधिक वैयक्तिक ज्ञान एवं विद्वत्ता की पृष्ठभूमि में उसने क़िला इब्ने सलमा में अपने इतिहास-ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की। वह लिखता है—"नवम्बर १३७७ ई० में मैं वहाँ के शान्त वातावरण में ईश्वर की कृपा से पाँच महीने में प्राक्कथन (मुक़द्दमे) की रचना पूरी कर सका।" तदुपरान्त इब्ने ख़लदून ने अरब, बरबर एवं ज़नाता का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। वहाँ कोई बड़ा पुस्तकालय प्राप्त न था। अब तक उसने जो कुछ लिखा था वह अपनी स्मृति एवं उन टिप्पणियों के आधार पर लिखा था जो उसके पास थीं। इसी बीच में वह रुग्ण हो गया। वह किसी अच्छे पुस्तकालय की खोज में था, जहाँ बैठकर शान्तिपूर्वक अपने इतिहास की रचना कर सकता। वह लिखता है कि "मेरा हृदय तूनिस (ट्युनिस) की ओर आकृष्ट हुआ जहाँ मेरे पूर्वजों का घर, अवशेष तथा मक़बरे थे।

इस समय ट्युनिस में बनी हफ़्स का अबुल अब्बास शासन कर रहा था। ११ वर्ष पूर्व इब्ने ख़लदून का अबुल अब्बास से संघर्ष हो चुका था, किन्तु उसने जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे पूरा करने का अवसर ट्युनिस में ही मिल सकता था, अतः उसने अबुल अब्बास को पत्र लिखकर वहाँ के पुस्तकालयों में अध्ययन करने एवं अपने जन्म-स्थान तथा अपने पूर्वजों के मक़बरों के दर्शन करने की अनुमति माँगी। अबुल अब्बास ने उसकी एवं उसके पूर्वजों की विद्वत्ता के कारण उसे तत्काल अनुमति दे दी

और वह नवम्बर अथवा दिसम्बर १३७८ ई० में ट्युनिस पहुँच गया। अबुल अब्बास अब ४३ वर्ष का हो चुका था। समकालीन राजनीति का उसे अच्छा ज्ञान हो गया था और वह उत्तरी अफ़्रीक़ा की समस्याओं को भली-भाँति समझने लगा था तथा उनका समाधान करके अपने राज्य को दृढ़ बनाना चाहता था। उसे इब्ने ख़लदून के ज्ञान से लाभान्वित होने की बड़ी इच्छा थी, अतः उसने उसे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। वह लिखता है कि "सुल्तान ने मेरा भली-भाँति स्वागत किया और मुझे संतुष्ट रखने का बड़ा प्रयत्न किया, राज्य की समस्याओं के विषय में मुझसे परामर्श किया। फिर मुझे तूनिस (ट्युनिस) भेजा और अपने हाकिम को आदेश दे दिया कि वह मेरे निवास, वृत्ति एवं अन्य आवश्यकताओं का उचित प्रबन्ध कर दे" किन्तु दरबार के विश्वासपात्रों ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचना प्रारम्भ कर दिया।

इब्ने खलदून ने वहाँ शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी, परन्तु प्रसिद्ध फ़क़ीह इब्ने अरफह अल वरगमी (१३१६-१४१० ई०) ने उसका विरोध प्रारम्भ कर दिया, कारण कि अधिकांश विद्यार्थी इब्ने अरफ़ह के पास से भाग-भागकर इब्ने ख़लदून के पास पहुँचने लगे। दरबारवालों ने अबुल अब्बास के कान भरने प्रारम्भ कर दिये और उसे समझा दिया कि इब्ने ख़लदून को ट्युनिस में छोड़ना खतरे से ख़ाली नहीं, अतः अबुल अब्बास इब्ने ख़लदून से अभियानों पर जाने का आग्रह करने लगा। इब्ने खलदून को पठन-पाठन का जीवन त्यागना पसन्द न था। अक्तूबर १३८२ ई० में जब अबुल अब्बास एक अभियान पर जा रहा था तो इब्ने ख़लदून को भय हुआ कि कहीं उससे फिर अभियान पर जाने का आग्रह न किया जाय। उसी समय ट्युनिस के बन्दरगाह से एक जहाज सिकन्दरिया जा रहा था, अतः इब्ने ख़लदून ने हज करने के लिए मक्का चले जाने की अनुमति माँगी। अबुल अब्बास ने उसे अनुमति दे दी और २४ अक्तूबर १३८२ ई० को वह जहाज़ से इस्कन्दरिया के लिए रवाना हो गया। उसका परिवार ट्युनिस में ही रह गया।

इब्ने ख़लदून ने अपने चार वर्ष के ट्युनिस के निवास-काल में अपने इतिहास-ग्रंथों में उस सामग्री के आधार पर, जो ट्युनिस में प्राप्त थी, संशोधन एवं परिवर्तन किये। उसने अबुल अब्बास को भी अपने इतिहास की एक प्रति भेंट की, किन्तु इसमें समकालीन बादशाह की प्रशंसा न थी। इससे अबुल अब्बास को और भी अधिक शंका हो सकती थी, अतः उसने उसके समाधान हेतु अबुल अब्बास की सेवा में एक क़सीदा भेंट किया, जिसके १०१ शेरों में बादशाह की प्रशंसा के साथ-साथ इतिहास के विषय में इस प्रकार लिखा गया था——

शेर

और आपके सामने युग एवं युगवालों के कुचक्र के सम्बन्ध में उन शिक्षाओं को प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनके गौरव को वे लोग स्वीकार करेंगे जो न्याय-कारी हैं।

* * *

यह पृष्ठ भूतकाल के लोगों के इतिहास की व्याख्या कर रहे हैं। ये किसी घटना का संक्षिप्त रूप में और किसी का विस्तार से उल्लेख करते हैं।

* * *

जो तबाबेआ, अमालेक़ा और उनसे भी प्राचीन क़ौमों, समूद एवं प्रारंभिक आद के गुप्त हाल को जाहिर करते हैं।

* * *

मुजार एवं बरबर में से उन लोगों के इतिहास को भी, जो इस्लाम स्वीकार करने के बाद इस्लाम पर दृढ़ रहे।

* * *

इन पृष्ठों की रचना में मैंने प्राचीन काल के विद्वानों की रचना का सारांश प्रस्तुत किया है और जिन बातों की ओर से उन्होंने उपेक्षा दर्शायी उनका प्रारम्भ से उल्लेख कर दिया है।

* * *

इस अपरिचित विवरण को, जो वनपशुओं के समान वश में न आता था, मैंने ऐसा वश में कर लिया कि अब वाणियाँ मेरे विवरण का अनुकरण करेंगी।

इब्ने ख़लदून मिस्र में

४० दिन से अधिक की यात्रा के उपरान्त वह ८ दिसम्बर १३८२ ई० को सिकन्दरिया पहुँचा। इस बार वह हज के लिए मक्का न जा सका और ६ जनवरी १३८३ ई० को क़ाहेरा के लिए रवाना हो गया। उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के देशों के विपरीत यहाँ नगर की सभ्यता एवं संस्कृति उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। राजधानी के ऐश्वर्य तथा गौरव ने उसे चकित कर दिया। वहाँ की राजनीतिक दशा उस समय तक पतित न हुई थी। ममलूकों के अधीन मिस्र काफ़ी

धन-धान्यसम्पन्न था, किन्तु इब्ने ख़लदून को शीघ्र पता चल गया कि उन्नत सभ्यता के साथ-साथ वहाँ चरित्रहीनता एवं नैतिक पतन का भी अभाव नहीं। एक नये देश में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा अथवा स्पेन के समान कोई पद प्राप्त कर लेना सरल न था। किन्तु क़ाहेरा के कुछ विद्वान् उसके पहुँचने के पूर्व ही उसकी विद्वत्ता से प्रभावित हो चुके थे और उसे वहाँ पहुँचते ही हाथों हाथ लिया गया तथा अल अज़हर विश्व-विद्यालय में आचार्य के पद पर नियुक्त कर दिया गया।

उसके पहुँचने के कुछ मास पूर्व मलिक अज़्ज़ाहिर बरक़ूक़ (१३८२-१३९९ ई०) मिस्र का सुल्तान हो गया था। नये-नये विद्वानों को आश्रय प्रदान करने में उसकी बड़ी रुचि थी। इब्ने ख़लदून शीघ्र ही उसका विश्वासपात्र बन गया और बरक़ूक़ की मृत्यु (१३९९ ई०) तक दोनों के सम्बन्ध अच्छे रहे। इब्ने ख़लदून आजीवन उसके प्रति आभार प्रदर्शित करता रहा। मिस्र पहुँचने पर अल्तून बूग़ा अल जुबानी (मृत्यु १३९० ई०) इब्ने ख़लदून का मित्र हो गया। वह बड़ा प्रभावशाली तुर्क अधिकारी था। उसने इब्ने ख़लदून का बरक़ूक़ से भी परिचय कराया और मिस्र के दरबार के अन्य उच्च पदाधिकारियों से भी।

इब्ने ख़लदून अपने जीवनकाल के शेष २३ वर्षो में कभी आचार्य, कभी महा-विद्यालय के प्रधान और कभी क़ाज़ी के पदों पर आरूढ़ होता रहा। यदि उसकी युवावस्था में उसे यह पद प्राप्त होते तो वह इनको कभी अच्छी दृष्टि से न देखता, किन्तु अब उसने जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया था उसके अनुसार यह पद बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे। उसे अपनी रचनाओं में संशोधन एव परिवर्धन का भी समय मिलने लगा और वह अधिक शान्ति से इतिहास एवं मुक़द्दमे को उच्च कोटि के ग्रंथ बनाने के लिए समय निकाल सका।

मिस्र के निवास-काल में उसे पूर्व एवं पूर्व के देशों के इतिहास तथा राजनीति के अध्ययन का भी अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। बरक़ूक़ ने इब्ने ख़लदून के अफ़्रीक़ी देशों की राजनीति के ज्ञान से बड़ा लाभ उठाया। वह जितने वर्ष मिस्र मे रहा प्राय: अपने देश के ही वस्त्र धारण किया करता था और अपने देशवासियों की यथा-संभव सहायता किया करता था। अपने देश की स्मृति उसके हृदय से न मिट सकी और वह उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचते न देख सकता था।

अज़हर विश्वविद्यालय में कुछ समय तक आचार्य पद पर कार्य कर लेने के उपरान्त बरक़ूक़ ने उसे क़महीयह महाविद्यालय में मालिकी फ़िक़ह का आचार्य नियुक्त कर दिया। उसने १९ मई १३८४ ई० से इस महाविद्यालय में आचार्य पद का कार्य भार

सँभाल लिया। इस अवसर पर उसने जो उद्घाटन-वक्तव्य दिया तथा अन्य स्थानों पर आचार्य पद पर नियुक्ति-विषयक जो उद्घाटन-भाषण दिये उन्हें अपनी आत्म-कथा में उद्धृत किया है।

क़मह़ीयह़ महाविद्यालय के उद्घाटन-भाषण में उसने तुर्कों एवं बरक़ूक़ की प्रशंसा के साथ-साथ यह बताया कि वह किस प्रकार आचार्य के कर्त्तव्यों का पालन करना चाहता है। ज़ाहिरीयह़ महाविद्यालय नया स्थापित हुआ था, अतः उसने वहाँ दूसरे ही प्रकार से अपना भाषण दिया। वहाँ उसने महाविद्यालय के निर्माता बरक़ूक़ की प्रशंसा विशेष रूप से की। उसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्घाटन-भाषण सुरग़तमिशीयह़ महाविद्यालय का था। बरक़ूक़ की प्रशंसा से प्रारम्भ करके उसने यह बताया कि आचार्य के रूप में उसके कार्य के क्या मुख्य सिद्धान्त होंगे। इसके साथ-साथ उसने इमाम मालिक की "मुवत्ता" का बड़ा विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया। इन तीनों भाषणों से मिस्र के विद्वान् बड़े प्रभावित हुए और उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगे।

आचार्य के रूप में उसे प्रायः फ़िक़ह तथा ह़दीस की शिक्षा देनी पड़ती थी, किन्तु वह इतिहास के विषय में भी भाषण किया करता था और "मुक़द्दमे" पर भी।

८ अगस्त १३८४ ई० को बरक़ूक़ ने उसे मुख्य मालिकी क़ाज़ी नियुक्त कर दिया। बीच-बीच में वह इस पद से पृथक् होता रहा, किन्तु फिर भी वह पाँच बार इस पद पर नियुक्त हुआ और जब उसकी मृत्यु हुई तो भी वह मुख्य क़ाजी के पद पर आरूढ़ था। वह कर्त्तव्य परायणता के सामने आलोचकों की अधिक चिन्ता न करता था। उसने भ्रष्टाचार का अन्त कराने तथा "शरीअत" के अनुसार निर्णय करने का घोर प्रयत्न किया। बड़े से बड़ा पदाधिकारी अथवा सम्मानित व्यक्ति उसे प्रभावित करके कर्त्तव्य के सन्मार्ग से विचलित न कर सकता था। स्पेन तथा उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में उसे सुल्तानों को राजनीति की शिक्षा देकर एक आदर्श राज्य स्थापित करने में असफलता हो चुकी थी। विभिन्न सामाजिक ढाँचों के गहन अध्ययन के कारण उसे विश्वास हो गया था कि किसी प्रकार के प्रचार अथवा भाषण द्वारा सामाजिक सुधार सम्भव नहीं। उसने भली-भाँति यह समझ लिया था कि यदि शासक अपने राज्य को दृढ़ बना ले, अपनी प्रजा की रक्षा कर सके तथा विद्वानों को आश्रय प्रदान कर सके और आलिम लोग शरीअत एवं देश के क़ानून को भली भांति समझकर उसका पालन कर सकें तो जहाँ एक ओर समाज का कल्याण हो सकेगा वहाँ दूसरी ओर राज्य भी उन्नति कर सकेगा। इब्ने

ख़लदून ने क़ाज़ी के पद पर आरूढ़ होकर उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने का घोर प्रयत्न किया।

क़महीयह महाविद्यालय के आचार्य का पद ग्रहण करने के उपरान्त ही उसने अपने परिवार को भी मिस्र बुलवा लेने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। अबुल अब्बास, इब्ने ख़लदून के परिवार को जाने की अनुमति न देना चाहता था। वह समझता था कि सम्भवतः उसके कारण इब्ने खलदून पुनः उत्तर–पश्चिमी अफ़्रीका वापस आ जायेगा, किन्तु बरक़ूक़ ने अबुल अब्बास को एक पत्र इब्ने खलदून के परिवार को मिस्र आने की अनुमति देने के लिए ८ अप्रैल १३८४ ई० को ट्युनिस भेजा। अबुल अब्बास ने इब्ने ख़लदून के परिवार को जाने की अनुमति दे दी, किन्तु जिस जहाज़ मे उसका परिवार आ रहा था वह सिकन्दरिया के बन्दरगाह के समीप अक्तूबर-नवम्बर १३८४ ई० में नष्ट हो गया। इब्ने ख़लदून को इस दुर्घटना से बहुत बड़ा धक्का पहुँचा।

क़ाज़ी के पद से मुक्त हो जाने के उपरान्त उसे ज़ाहिरीयह महाविद्यालय में मालिकी फ़िक़्ह का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। २९ सितम्बर १३८७ ई० को वह हज के लिए मक्का रवाना हो गया और ८ मास की यात्रा के उपरान्त वापस आया। मार्ग में उसने पूर्व के बड़े-बड़े विद्वानों से भेंट की। वापसी के उपरान्त जनवरी १३८९ ई० में वह सुरग़तमिशीयह महाविद्यालय में हदीस का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद ही बेबर खानक़ाह के अध्यक्ष का पद भी रिक्त हो गया। आचार्य के पद के साथ-साथ अध्यक्ष का पद भी उसे प्रदान कर दिया गया।

१३८९ ई० में बरकूक़ के विरुद्ध मिस्र में विद्रोह हो गया और वह राज-सिंहासन से वचित कर दिया गया, किन्तु २ फ़रवरी १३९० ई० को वह पुनः सिंहासनारूढ़ हो गया। इस बीच में इब्ने खलदून को भी मिस्र के अन्य फ़क़ीहों की भाँति बरक़ूक के विरुद्ध एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ गये थे। बरक़क इससे अत्यधिक रुष्ट हुआ। इब्ने खलदून ने अपनी सफ़ाई में एक कविता की रचना करके उसे बरक़ूक़ की सेवा में प्रस्तुत किया। बरक़ूक़ कविता से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने अपने पुराने आश्रित को, जिसकी मिस्र में इतनी उन्नति उसी के कारण प्राप्त हुई थी, क्षमा कर दिया। किन्तु उसके शत्रुओं ने अवसर पाकर उसे बेबर ख़ानक़ाह की अध्यक्षता के पद से पृथक् करा दिया, यद्यपि बरक़ूक़ तथा इब्ने ख़लदून के पारस्परिक सम्बंध अधिक ख़राब न हो सके। २१ मई

१३९९ ई० को बरक़ूक़ ने उसे आचार्य पद के साथ मालिकी क़ाज़ी का पद भी प्रदान कर दिया।

एक मास उपरान्त बरक़ूक़ की मृत्यु हो गयी और उसका १० वर्ष का बालक फ़रज उसके स्थान पर सिहासनारूढ़ हुआ। उसने इब्ने ख़लदून को उन· पदों पर, जो उसके पिता ने उसे प्रदान किये थे, आरूढ़ रहने दिया। १४०० ई० में वह फ़रज के साथ दमिश्क़ की यात्रा को गया। वापस होते समय उसने फ़लस्तीन, येरोशलम, बेथलेहेम तथा हरबोन के दर्शन किये। वहाँ से लौटने के उपरान्त कुछ षड्यंत्रकारियों के कारण वह क़ाज़ी के पद से हटा दिया गया।

उस समय तीमूर के तातारी (मुग़ुल अथवा मंगोल) शाम पर बढ़ते चले आ रहे थे और मिस्र ख़तरे में था। फ़रज सेना लेकर उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। इब्ने ख़लदून को भी, यद्यपि वह क़ाज़ी के पद से मुक्त हो चुका था, फ़रज के साथ अपनी इच्छा के विरुद्ध जाना पड़ा। सेना नवम्बर १४०० ई० में युद्ध के लिए रवाना हुई और एक मास उपरान्त दमिश्क़ पहुँच गयी। तीमूर दमिश्क़ की ओर रवाना हो चुका था और फ़रज ने उसके पहुँचने के पूर्व नगर की प्रति-रक्षा की व्यवस्था कर ली। तीमूर के पहुँचने पर एक मास तक दोनों ओर से झड़पें होती रहीं।

जनवरी १४०१ ई० के प्रथम सप्ताह में फ़रज एवं उसके विश्वासपात्रों को पता चला कि सुल्तान के विरुद्ध मिस्र में षड्यंत्र हो रहा है और वे लोग वापस चले गये। दमिश्क़ वालों की समझ में न आता था कि वे क्या करें। उस समय सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों में घोर मतभेद हो गया। सैनिक अधिकारी युद्ध को चलाते रहने के पक्ष में थे, किन्तु असैनिक अधिकारी, क़ाज़ी एवं फ़क़ीह इत्यादि, जिनमें इब्ने ख़लदून भी सम्मिलित था, दमिश्क़ को समर्पित कर देने की राय दे रहे थे। अन्त में दमिश्क़ समर्पित कर दिया गया जिसे तातारियों ने लूट-कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

जब दमिश्क़ के क़ाज़ी तीमूर की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने इब्ने ख़लदून के विषय में प्रश्न किये और उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। क्योंकि सैनिक लोग अब भी द्वारों पर अधिकार जमाये हुए थे, अतः इब्ने ख़लदून को दमिश्क़ की चहार-दीवारी के बाहर रस्सी बाँधकर लटका दिया गया और १० जनवरी १४०१ ई० को उसने तीमूर से भेंट की। इब्ने ख़लदून तीमूर से कई बार मिला और वह फ़रवरी १४०१ ई० तक उस युग के विश्वविजेता के साथ रहा।

इब्ने खलदून ने अपनी भेंटों के समय अपने साथियों एवं अपनी रक्षा के सम्बन्ध में घोर प्रयत्न किये। उसकी उपस्थिति से तीमूर ने पश्चिम के देशों के विषय में सविस्तर ज्ञान प्राप्त करने एवं उसके अनुभव से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। किन्तु इब्ने खलदून ने तीमूर को इस सम्बन्ध में जितने भी उत्तर दिये उनमें इस बात का प्रयत्न किया कि मिस्र अथवा पश्चिम के देशों की कमज़ोरी का तीमूर को जितना कम से कम ज्ञान हो वह अच्छा। तीमूर ने इब्ने ख़लदून को पश्चिम के देशों का सविस्तर भूगोल लिखने का आदेश दिया और उसका मंगोली भाषा में अपने तथा अपने सेनापतियों के लिए भाषांतर कराया। इब्ने ख़लदून को सम्भवतः अपने इस कार्य से बड़ा क्षोभ हुआ और जैसे ही वह तीमूर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हुआ, उसने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के निवासियों के नाम एक बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र लिखा, जिसमें उसने तातारियों के इतिहास एवं तीमूर का बड़ा विशद वर्णन किया। तीमूर के पास से वापस आते हुए जहाज़ में इब्ने ख़लदून की मुलाक़ात एशिया माइनर के उतमान सुल्तान बायजीद यिलदिरिम के राजदूत से हो गयी। उसके द्वारा इब्ने ख़लदून को उस ओर के देशों का भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ।

मार्च १४०१ ई० में इब्ने ख़लदून मिस्र वापस पहुँच गया, और अप्रैल १४०१ ई० में तीसरी बार पुनः क़ाज़ी नियुक्त कर दिया गया, किन्तु मार्च १४०२ ई० में वह अपने पद से पृथक् कर दिया गया। जुलाई १४०२ ई० में वह पुनः क़ाजी नियुक्त हुआ और सितम्बर १४०३ ई० में पदच्युत कर दिया गया। ११ फ़रवरी १४०५ ई० को वह फिर क़ाज़ी बनाया गया और मई १४०५ ई० के अन्त में पुनः इस पद से हटा दिया गया। मार्च १४०६ ई० में उसे फिर क़ाज़ी नियुक्त किया गया, किन्तु कुछ दिन उपरान्त १७ मार्च १४०६ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी और क़ाहेरा के नस्र द्वार के बाहर सूफ़िया क़ब्रिस्तान में उसे दफ़न कर दिया गया।

इब्ने खलदून का परिवार

सम्भवतः उसका विवाह बनी हफ़्स के सेनापति मुहम्मद बिन अल हकम (मृत्यु १३४३ ई०) की पुत्री से ट्युनिस में ही हो गया था, किन्तु जब १३६३ ई० में वह स्पेन जाने लगा तो उसे अपनी पत्नी एवं परिवार वालों को उसके भाई के घर क़िसिन्तीना भेज देना पड़ा। यद्यपि उसे अपने परिवार वालों से बड़ा स्नेह था, किन्तु किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहने के कारण उसे उनसे बार-बार पृथक् होना पड़ता था और कभी-कभी उसके कारण उन लोगों को स्वतंत्रता से वंचित कर दिया

जाता था। किन्तु जब उसे मिस्र में शान्ति से कुछ समय रहने का अवसर मिला तो उसने अपने परिवार को वहाँ बुला भेजा। पर जिस जहाज़ मे वह परिवार आ रहा था, ट्युनिस से आते हुए वह नष्ट हो गया। उस जहाज़ में उसकी पत्नी एवं पाँच पुत्रियों की मृत्यु हो गयी, किन्तु दो पुत्र मुहम्मद तथा अली किसी न किसी प्रकार सुरक्षित पहुँच सके। सम्भवतः इब्ने ख़लदून ने मिस्र में पुनः विवाह किया।

(३)

मुक़द्दमा

इब्ने ख़लदून ने अपने इतिहास की प्रस्तावना के प्रारम्भ में केवल थोड़े से ही पृष्ठ लिखे थे, जिसमें इतिहास के महत्त्व एवं इतिहासकारों की सामान्य भूलों तथा उनके कारणों की चर्चा की थी और दिखाया था कि किस प्रकार अपने सामाजिक वातावरण से अनभिज्ञ होने के कारण बड़े बड़े इतिहासकार तक भूलें कर जाते हैं। "मुक़द्दमे" का शेष भाग वास्तव में उसके इतिहास (किताबुल इब्र) का प्रथम भाग है जिसमें उसने अपने निष्कर्षों की व्याख्या की है और उन्हें उदाहरण सहित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इब्ने खलदून के जीवन-काल में ही प्रस्तावना एवं प्रथम भाग दोनों "मुक़द्दमे" के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे और एक ही ग्रथ समझे जाते थे।

उसने "मुक़द्दमे" की प्रस्तावना मे इतिहासकारों की भूलों के सम्बन्ध में १२ उदाहरण दिये है, जिनसे पता चलता है कि मनुष्य के प्रकृति एवं मानव-समाज संबंधी अज्ञान के कारण इतिहासकारों का भ्रम में पड़ जाना स्वाभाविक है। अतः उसके लेखानुसार इतिहासकारों के लिए यह आवश्यक है कि वे आलोचनात्मक दृष्टि से प्रत्येक बात की खोज का सर्वदा प्रयत्न करते रहे और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व विभिन्न अवसरों पर घटनेवाली घटनाओं की तुलना किया करें। उसने जो उदाहरण प्रस्तुत किये है उनकी आलोचना उसने ऐतिहासिक, सामाजिक, राज-नीतिक, सैनिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से की है। किसी घटना को स्वीकार करने अथवा रद्द करने के पूर्व सुल्तानों के चरित्र, नैतिकता, धार्मिक विचारों एवं सामाजिक व्यवहार की भी उसने आलोचना की है और यह दिखाया है कि कभी कभी षड्यंत्रकारियों द्वारा भी बादशाहों के विरुद्ध झूठी-सच्ची बातें प्रसिद्ध हो जाया करती हैं। ईर्ष्या एवं द्वेष तथा अज्ञानता का भी झूठे समाचारों के प्रसिद्ध हो जाने में बड़ा हाथ होता है। प्रारम्भ के इतिहासकारों की भूल का परिणाम यह होता

ह कि बाद के इतिहासकार, जो आलोचनात्मक दृष्टि से घटनाओं का विवेचन नहीं करते, वे आँख बन्द करके उनका अनुकरण करने लगते हैं और इतिहास विश्वास के योग्य नहीं रह जाता। अतः इब्ने ख़लदून ने इतिहास की रचना के लिए ऐतिहासिक घटनाओं की स्वाभाविक स्थिति के ज्ञान को परमावश्यक बताया है। घटनाओं के साथ-साथ उनके सूत्रों के विषय मे भी प्रामाणिक ज्ञान की आवश्यकता के विषय मे उसने विवेचना की है।

"किताबुल इब्र" की प्रस्तावना में सभ्यता की विशेषताएँ बताते हुए उसने मानव की आदि-कालीन स्थिति से लेकर प्राचीन काल के मेसोपोटामिया, दक्षिणी अरब, मिस्र, ईरान, यूनान एवं रोम की सभ्यताओं की पृष्ठभूमि में निष्कर्ष निकाले है।

पहले अध्याय में उसने मनुष्य के प्राकृतिक वातावरण का विश्लेषण करते हुए मनुष्य के सामाजिक वातावरण पर उसका प्रभाव सिद्ध किया है और यह दिखाया है कि मनुष्य के चरित्र पर किस प्रकार जलवायु का प्रभाव पडता है तथा अकाल और अल्प-मूल्यता से मनुष्य के शरीर एव चरित्र किस तरह प्रभावित होते है। इसके अतिरिक्त इसी अध्याय मे मनुष्य की परोक्ष की बातों मे रुचि एवं उनके ज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्न के सम्बन्ध मे आलोचनात्मक परीक्षा की है।

दूसरे अध्याय में आदि-कालीन सभ्यता का मुख्य रूप, जिसे बदवी सभ्यता कहा जाता है, दिखलाया गया है। उस सभ्यता में मनुष्य की आवश्यकताएँ अधिक नही होती। अरब तथा अफ़्रीक़ा के बरबरों के जीवन एवं सभ्यता में इस समूह का जो स्थान है और ऐसा जीवन उनके चरित्र पर जो छाप डालता है और उनमें जिस प्रकार वीरता एवं प्रति-रक्षा की भावनाएँ उत्पन्न करता है, उसे भली-भाँति स्पष्ट किया है। "असबियत" एवं अरबों के सामाजिक जीवन पर उसके प्रभाव का विशेष विवेचन भी इस अध्याय में किया गया ह।

तीसरे अध्याय में ख़िलाफ़त एवं सल्तनत के पारस्परिक सम्बन्ध, धार्मिक प्रचार का नयी सल्तनतों पर प्रभाव, सल्तनत की विशेषताएँ, उसके गुण एवं दोष, खिलाफत एवं सल्तनत के पद तथा दोनों के पदाधिकारियों के अधिकारों आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

चौथे अध्याय में नगरों की स्थापना, नगर के भवनों के निर्माण, नगर की संस्कृति एव सभ्यता के विकास तथा सल्तनतों का नगर के जीवन एवं सभ्यता से सम्बन्ध और नगरों के पतन एवं विनाश की चर्चा की गयी ह।

पाँचवें अध्याय में मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं एवं जीविकोपार्जन के साधनों, व्यापार, कृषि, कला-कौशल तथा बदवियों एवं नगर-वासियों के जीविकोपार्जन के साधनों के अन्तर का उल्लेख किया गया है।

छठे अध्याय में ज्ञान-विज्ञान की क़िस्मों, इस्लामी देशों की शिक्षा-पद्धति तथा मुसलमानों की समस्त प्रचलित ज्ञानशाखाओं का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस प्रकार तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति की कोई ऐसी शाखा शेष नहीं रही जिसकी इब्ने ख़लदून ने चर्चा न की हो।

इब्ने ख़लदून ने प्राचीन एवं मध्य-कालीन सभ्यता के अनेक बड़े-बड़े केन्द्र देखे थे। मिस्र में तो वह स्वयं २३ वर्ष तक रहा। अन्य स्थानों में या तो वह स्वयं पहुँचा और या उसने वहाँ के यात्रियों के मुँह से उन स्थानों के पर्यटन के वर्णन सुने। उन स्थानों की सभ्यताओं के अभ्युदय एव उन्नति के ग्रंथों का उसने अध्ययन किया था और उनके अवशेष देखकर उनके प्राचीन गौरव का अनुमान लगाया था। इस प्रकार वह इस बात से संतुष्ट हो गया था कि सभ्यता की उन्नति मिल-जुलकर काम करने पर निर्भर है।

इब्ने ख़लदून के अनुसार समस्त सामाजिक संगठन दो विभिन्न वातावरणों से सम्बन्धित होते हैं। एक का सम्बन्ध है रेगिस्तान के उस जीवन से जिसे वह "बदवी" जीवन कहता ह, और दूसरे का सम्बन्ध नगर के जीवन से है जिसे वह "हज़री जीवन" कहता है। पहले प्रकार के जीवन में मनुष्य की आवश्यकताएँ थोड़ी एवं उसका जीवन सरल तथा सादा होता है। "बदवी" जीवन से इब्ने ख़लदून का तात्पर्य प्रत्येक स्थान पर ख़ानाबदोशों के जीवन से नहीं, अपितु उन लोगों के जीवन से भी है जो ग्रामों में निवास करते हैं और कृषि एवं पशु पालन करके जीवन निर्वाह करते हैं। इसी प्रकार वह नगरों को कृषि एवं कृषकों से रहित नहीं समझता। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक संगठन ही उसके अध्ययन का मूल विषय हैं। सामाजिक संगठन का मूल आधार उसने "असबियत" को बताया है।

"असबियत" अथवा 'असबिया' का ठीक हिन्दी अनुरूप शब्द बता सकना कठिन ह। इब्ने ख़लदून ने इसे अपने ग्रंथ भर में एक बड़ा प्रशंसनीय गुण बताया है। उसके अनुसार प्रत्येक सामाजिक संगठन इसी पर आधारित होता है। उसने "बदवी" समाज में इसे बड़ा महत्त्व दिया है और नगर की सभ्यता एवं संस्कृति के पतन तथा बड़े-बड़े राज्यों के विनाश का मूल कारण "असबियत" की कमी अथवा एकान्त अभाव ही बताया है।

अरबी साहित्य में भी "असबियत" शब्द का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। प्राचीन "बदवी" क़बीलों के जीवन का आधार ही, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, असबियत था। असबियत के अधीन कोई भी व्यक्ति अपने क़बीले के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को ज़िन्दा रहने का पात्र न समझता था। अनुचित पक्षपात एवं न्याय अन्याय आदि सभी बातों में क़बीले का गुणगान करना ही "असबियत" माना जाता था। इस्लाम के अभ्युदय के उपरान्त इस भावना का इस्लाम की उन्नति के मार्ग मे बाधक होना स्वाभाविक ही था, अतः इस्लाम ने "असबियत" की घोर निन्दा की है। किन्तु इब्ने ख़लदून ने क़बीले अथवा समूह वालों के पारस्परिक प्रेम, संगठन, दुःख-सुख में एक-दूसरे का साथ देने, युद्ध के समय एक-दूसरे की रक्षा करने एवं हाथ बटाने तथा अन्याय एवं अत्याचार को रोकने की भावनाओं को "असबियत" बताया है। इसका अर्थ केवल अनुचित पक्षपात, अधा प्रेम एवं अपनी शक्ति का सगठन करके दूसरों पर अत्याचार करना नहीं है।

कुछ अन्य अरबी भाषा के लेखकों ने भी इस भावना को प्रशंसनीय बताया है। इतिहासकार इब्ने असीर के अनुसार क़बीलों की कठिनाई के समय सहायता करने का नाम "असबियत" है। इब्नुल ख़तीब ने लिखा है कि "असबियत का उपयोग देश अथवा क़ौम के प्रेम को जागृति देने के लिए किया जा सकता है, अतः इसकी कोई आलोचना नहीं करनी चाहिए।" 'बदवी' क़बीलों का, जिनमें न तो कोई शासन होता है और न कोई विधान, जीवन निर्वाह "असबियत" के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सम्भव नहीं। यही सिद्धान्त पशुओं के लिए, चरागाहों की खोज में फिरनेवाले क़बीलों एवं उन ग्रामीणों के लिए भी लागू किया जा सकता है जो किसी शासन के अधीन नही होते। इस सम्बन्ध में वंशों अथवा कुलों के ऐक्य का भी बड़ा महत्त्व है। खून के रिश्ते बड़े मज़बूत होते है। उनके प्रभाव से यदि कोई मनुष्य अपने किसी निकटतम सम्बन्धी पर अत्याचार होते देखता है अथवा उसे ख़तरे में फँसा हुआ पाता है तो उसका रक्त खौलने लगता है। पारस्परिक स्नेह एवं प्रेम द्वारा भी सहानुभूति एवं निष्ठा की ऐसी ही भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर इब्ने ख़लदून ने "असबियत" को दो भागों में विभाजित किया है, एक साधारण और दूसरी. विशेष। विशेष "असबियत" निकटतम सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होती है और साधारण "असबियत" पूरे क़बीले अथवा समूह में पायी जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे क़बीलों के जिस वंश अथवा घराने में अत्यधिक "असबियत" पायी जाती है वही राज्य का स्वामी बन जाता है। उस पर अन्य क़ौम का कोई आदमी

शासन नहीं कर सकता। इस प्रकार इब्ने ख़लदून के अनुसार "असबियत" के कारण ही स्वाभाविक रूप से नये राज्यों एवं शासन का अभ्युदय होता है। "असबियत" के बल पर ही बादशाह अपनी क़ौमवालों तथा अपनी प्रजा पर अधिकार स्थापित रखता है। यदि एक क़बीले के विभिन्न घरानों की अलग अलग "असबियत" हो तो एक शक्तिशाली "असबियत" का होना परमावश्यक है जिसे देश अथवा राज्य की "असबियत" कहा जा सकता है। यदि ऐसी कोई "असबियत" न हो तो क़बीले एवं वंश का संगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा। जिस क़ौम में "असबियत" की भावनाएँ दृढ हो जाती हैं उसका राज्य सुगमतापूर्वक नष्ट नहीं हो पाता। यदि एक वंश से राज्य निकल जाता है तो दूसरे वंश को प्राप्त हो जाता है। जब राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो अन्य क़ौमों एवं सभ्यताओं से उनका सम्पर्क बढ़ जाता है। उनकी "असबियत" की भावनाओ का धीरे धीरे पतन होने लगता है, इस कारण राज्य का भी विनाश हो जाता है। एक "असबियत" वाली शक्तिशाली क़ौम को दूसरी कमजोर "असबियत" वाली क़ौम पर शनैः शनैः राज्य प्राप्त करने में सुगमता होती है और उसके राज्य का क्षेत्र भी बढ़ जाता है, किन्तु एकाएक बहुत-से राज्यों को केवल "असबियत" के सहारे पर विजय कर लेना सम्भव नहीं।

इस स्थान पर अरबों की विजय के लिए, जो उन्होंने हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के लगभग ३० वर्ष के भीतर प्राप्त कर ली, उसे एक पृथक् सिद्धांत निर्धारित करना पड़ा। इतने महान् कार्य को सम्पन्न कर लेना उसके निकट केवल "असबियत" द्वारा सम्भव न था। उसके लिए इब्ने ख़लदून को धर्म का सहारा लेना पड़ा। उसने एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया कि अरब वालों को जब कभी प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो धर्म के प्रचार के कारण ही हुआ। उसने अरबों की विजयों में उनकी आर्थिक आवश्यकताओं का भी हाथ स्वीकार किया है, किन्तु इस विषय में वह अन्य मुसलमान विचारकों से अलग होकर स्वतन्त्र कारण न सोच सका और "असबियत" एवं आर्थिक आवश्यकताओं के सिद्धांत को अरबों की प्रारम्भिक विजयों पर लागू न कर सका। बनी उमय्या की ख़िलाफ़त के प्रति श्रद्धा के कारण उसने खिलाफ़त तथा इमामत के सिद्धान्तों और उनके कारनामों को साधारण सल्तनतों के सिद्धांतों से अलग कर दिया तथा दोनों का सविस्तर उल्लेख किया। पर वह अपने इस सिद्धांत को कहीं भी न भूला कि सभ्यता के विकास का अध्ययन मनुष्य की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पृष्ठभूमि में करना चाहिए।

मुक़द्दमे की ख्याति

इब्ने ख़लदून ने अपने मुक़द्दमे में सभ्यता के विकास का जिस प्रकार तर्कपूर्ण विवरण दिया है, उसका अनुकरण कोई अरबी अथवा फ़ारसी लेखक न कर सका। सम्भवतः किसी ने इस प्रकार का कोई किसी अन्य ग्रंथ लिखने की चेष्टा भी नही की थी। किन्तु उसके कार्य के महत्त्व से उसके समकालीन एवं बाद के सभी विद्वान् प्रभावित दीख पड़ते है। इतिहास को उसके बताये हुए शोधपूर्ण नियमों के आधार पर अनेक विद्वानों ने लिखने का प्रयत्न किया है। मक्के के इतिहासकार अल-फ़ासी (१३७३–१४२९ ई०) ने अपने "इक़्द" नामक ग्रथ मे इब्ने ख़लदून के हवाले दिये है। १४२५ ई० के लगभग मुहम्मद बिन अहमद बिन मुहम्मद इब्ने अज़्जमलकानी ने इब्ने ख़लदून के इतिहास के कुछ अंश "तज़किरा" नामक अपने ग्रंथ में उद्धृत किये है। मक़रिजी, इब्ने हजर तथा सख़ावी, अस्सुयूती तथा अन्य १५वीं शती ईसवी के विद्वानों ने उसके ग्रंथ से लाभ उठाया है।

१६वीं तथा १७वीं शती ईसवी के विद्वानों ने भी उसकी रचना के महत्त्व को समझने का प्रयत्न किया है। १७वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के एक विद्वान् अल मक़र्री ने उसकी रचनाओं का अपने ग्रन्थों में अत्यधिक प्रयोग किया है, किन्तु उतमान तुर्को ने इब्ने ख़लदून की रचनाओं एवं विचारो से सबसे अधिक लाभ उठाया। विस्सी एफ़िन्दी, ताशकोम रूज़ादेह (१४९५–१५६१ ई०), हाज्जी ख़लीफ़ा (१६०९–५७ ई०), तबए बे (लगभग १६७०) नाएमा (१६८८–८९–१७१६ ई०) आदि विद्वान् तथा १८वी शती ईसवी के एवं उसके बाद के तुर्की विद्वान् उसकी रचनाओं से प्रभावित थे।

१९वीं शती ईसवी के प्रारम्भ से यूरोप वालों ने भी इब्ने ख़लदून तथा उसके "मुक़द्दमे" का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सामाजिक शास्त्र, राजनीति एवं इतिहास की रचना के सम्बन्ध में बहुत-से ऐसे नये विचार, जिनका प्रचार यरोप में बाद में हुआ, इब्ने ख़लदून १४वीं शती ईसवी में अपने मुक़द्दमे में व्यक्त कर चुका था।

ऐरनोल्ड जे. टुआइनबी (Arnold J. Toynbee) ने लिखा है–"अब्दुर्रहमान इब्ने मुहम्मद इब्ने ख़लदून अल हज़रमी ट्यूनिस निवासी (१३३२–१४०६ ई०) अरबी प्रतिभाशाली व्यक्ति था, जिसने व्यस्त आयु के कार्यरत जीवन के ५४ वर्षों की अवधि के ४ वर्ष से भी कम के समय में अपनी साहित्यिक जीवन-कृति

की रचना की, जिसकी तुलना, सूक्ष्म दृष्टि तथा कल्पना की गंभीरता, विस्तार एवं बौद्धिक शक्ति के विचार से थ्यूसीडाइड्स या मेकेवली की कृति से की जा सकती है। इब्ने खलदून का तारा उस अंधकार की, जिसमें से होकर वह चमकता है, पृष्ठभूमि में और भी अधिक प्रकाशमान है, क्योंकि यदि एक ओर थ्यूसीडाइड्स, मेकेवली तथा क्लेरेन्डन को अपने-अपने दीप्तिमान् देशों तथा कालों का चमकीला प्रतिनिधि माना जाय, तो दूसरी ओर इब्ने खलदून अपने देश के आकाश का एक मात्र नक्षत्र कहा जायगा। वास्तव में वह उस सभ्यता के, जिसका सामाजिक जीवन सम्पूर्णतः नीरस, दरिद्र, अपवित्र, क्रूर तथा अल्पकालिक था, इतिहास का एक मात्र प्रमुख व्यक्ति है। बौद्धिक क्रियाशीलता के अभीष्ट क्षेत्र में, ऐसा प्रतीत होता है कि वही अपने किसी भी पूर्वगामी से प्रेरित नहीं हुआ था और न अपने समकालीनों में ही उसे आत्मीयता का अनुभव हुआ। साथ ही साथ अपने अनुगामियों में भी उसने प्रेरणा की चिनगारी प्रज्ज्वलित की, तथापि उसने अपने विश्व-इतिहास के मुक़द्दमे में इतिहास के ऐसे दर्शन की कल्पना तथा उसका प्रतिपादन किया है जिसके कारण निःसन्देह ही वह अपनी भाँति की एक महान् कृति के रूप में है, जिसकी रचना किसी भी व्यक्ति ने किसी भी काल अथवा स्थान में कभी की है। व्यावहारिक क्रियाशीलता के जीवन के प्रति क्षणिक उपेक्षा ने ही इब्ने खलदून को अपने रचनात्मक विचारों को साहित्यिक रूप देने का अवसर दिया है।"[1]

जार्ज सार्टन (George Sorton) ने लिखा है—"इब्ने ख़लदून एक इतिहास-कार, राजनीतिज्ञ, समाज-शास्त्र-वेत्ता, अर्थशास्त्र-ज्ञाता, मानवीय मामलों के वर्तमान तथा भविष्य के इतिहास को समझने के निमित्त उनका गहन अध्ययन करनेवाला तथा मानव जाति के भूतपूर्व इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का इच्छुक व्यक्ति था। वह मध्यकालीन युग का सबसे महान् ऐसा इतिहासकार ही केवल न था, जो बौने अल्पज्ञ इतिहासकारों के सम्मुख देव के समान प्रतीत होता है, अपितु वह इतिहास के प्रथम दार्शनिकों में से एक है और मेकेवली, वोडिन, वाइको, काम्ते तथा करनॉट का पूर्वगामी है। मध्ययुगीन ईसाई इतिहासकारों में केवल दो एक ही ऐसे हैं जिनकी तुलना उससे की जा सकती है। उदाहरणार्थ आटोवान फ्रेज़िंग तथा

1. *A Study of History*, Vol. III, Arnold J. Toynbee. Royal Institute of International Affairs And Oxford University Press.

सैल्सबरी का 'जान', परन्तु वास्तविक रूप से उनमें व इसमें उससे भी अधिक अन्तर है जितना इसमें और वाइको में है। विलक्षण बात यह है कि इब्ने ख़लदून ने उन विधियों की कल्पना करने का साहस किया जो आजकल ऐतिहासिक शोध कार्य की विधियाँ कही जाती है।"[१]

राबर्ट फ्लिट (Robert Flint) ने कहा है—"जहाँ तक इतिहास, विज्ञान अथवा दर्शन क्षेत्र का सम्बन्ध है, अरबी साहित्य उसका एक अत्यन्त देदीप्यमान अलंकार है। न तो परिनिष्ठित और न ही मध्यकालीन ईसाई संसार में ऐसी चमक-दमक का निकटवर्ती कोई अन्य व्यक्ति पाया जाता है। केवल इतिहासकार की कोटि के इब्ने खलदून (१३३२-१४०६ ई०) से श्रेष्ठतर अनेक लोग अरबी लेखकों में हो चुके है, परन्तु इतिहास सिद्धान्तज्ञ (थ्योरिस्ट) के रूप में उनमें से किसी भी काल अथवा किसी भी देश मे वाइको के समय तक, जिसका प्रादुर्भाव ३०० वर्ष बाद हुआ, इब्ने खलदून के तुल्य कोई न हुआ। अफ़लातून, अरस्तू तथा आगस्टाइन उसकी बराबरी के थे, शेष सब इस योग्य भी न थे कि उनका उल्लेख उसके नाम के साथ किया जाय। अपनी मौलिकता, दूरदर्शिता, विद्वत्ता तथा ग्रहणशीलता के कारण वह प्रशंसनीय था। ऐतिहासिक दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में वह अपने सहधर्मियों तथा समकालीनों मे उसी प्रकार अद्वितीय एवं पृथक् था जिस प्रकार काव्यक्षेत्र में दान्ते तथा विज्ञान के क्षेत्र में रोजर बेकन अपने-अपने समकालीनों में थे। अन्य अरबी इतिहासकारों ने यद्यपि वह सब ऐसी सामग्री, जिसका प्रयोग वे कर सकते थे, अवश्य एकत्र की, किन्तु उसका वास्तविक उपयोग इब्ने ख़लदून ने ही किया।"[२]

मुक़द्दमे की हस्तलिखित प्रतियाँ

अरबी एवं फ़ारसी के बहुत कम ऐसे ग्रंथ होगे जिनकी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ इतनी अधिक संख्या में मिलती हों, जितनी इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे की। सम्भवतः इसका कारण उसके ग्रंथ की प्रसिद्धि है जिससे प्रभावित होकर विद्वानों

1. *Introduction To The History of Science*, George Sorton. Baillier, Tindall and Cox.
2. *History of the Philosophy in History*, Robert Flint. Wm. Black & Sons Ltd.

ने १९वीं शती ई० से ही मुक़द्दमे की प्रामाणिक प्रतियों की खोज एवं रक्षा का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था।

प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति तुर्की के सुलेमानिया पुस्तकालय की दामाद इबराहीम पोथी है। इसमें ८६६ नं० की प्रति पर नक़ल करने की कोई तिथि नही दी है, किन्तु ८६७ नं० की प्रति उसी व्यक्ति की नक़ल की हुई है जिसने ८६६ न० की प्रति नक़ल की है। ८६७ नं० की प्रति ४ सफ़र ७९७ हि० (२९ नवम्बर १३९४ ई०) को तैयार हुई थी। लिपिकार का नाम अब्दुल्लाह बिन हसन बिन शिहाब है। प्रति के प्रथम पृष्ठ से पता चलता है कि यह मिस्र के ममलूक सुल्तान अज़्ज़ाहिर बरक़ूक़ (१३८२–९९ ई०) के लिए तैयार की गयी थी और उसे इब्ने ख़लदून ने बरक़ूक को नम्रतापूर्वक समर्पित किया था।

(२) दूसरी प्रति 'फ़ेज़ प्रति' के नाम से प्रसिद्ध है जो ७९८ हि० (१३९६ ई०) में नक़ल की गयी थी। इब्ने खलदून ने अपने लिखे सम्पूर्ण इतिहास को फ़ेज की क़ैरवान मस्जिद को वक़्फ करके भेजा था। "मुक़द्दमा" इसी का एक भाग था।

(३) तुर्की येनी समी नं० ८८८, १० जमादि-उल-अव्वल ७९९ हि० (९ फ़रवरी १३९७ ई०) इब्ने ख़लदून के हाथ की लिखी हुई एक प्रति से नक़ल की गयी थी।

(४) तुर्की के अतिफ़ एफ़िन्दी पुस्तकालय की पोथी नं० १९३६ भी इब्ने ख़लदून के जीवन-काल में ही नक़ल की गयी थी। यह प्रति कई विद्वानों के पास रह चुकी है। इनमे से सर्वप्रथम टिप्पणी मुहम्मद बिन यूसुफ बिन मुहम्मद अल इस्फ़ीजाबी की है, जो कि शनिवार २४ शाबान ८०४ हि० (२९ अप्रैल १४०२ ई०) की लिखी हुई है।

(५) तुर्की की हुसेन चेलेबी की हस्तलिखित प्रति नं० ७९३ जो वरस्सा में है, इसकी नक़ल ८ शाबान ८०६ हि० (२० फ़रवरी १४०४ ई०) को समाप्त हुई। लिपिकार का नाम इबराहीम बिन ख़लील अस्सादी अश्शाफ़ेई अल-मिस्री है। यह भी कई विद्वानों के पास रह चुकी है जिनमें एक यहया बिन हिज्जी अश् शाफ़ेई थे, जिनकी ८५० हि० (१४४६–४७ ई०) की एक टिप्पणी भी हस्तलिखित प्रति पर वर्तमान है।

(६) अहमते तृतीय, ३४०२ नं० एक अन्य हस्तलिखित प्रति है जिसकी नक़ल करनेवाले ने कोई तारीख़ नहीं लिखी, किन्तु इस प्रति के एक स्वामी मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान अद्दारीब ने ८१८ हि० (१४१५–१६ ई०) तारीख़ उस पर डाली है।

इनके अतिरिक्त तुर्की, पेरिस, मिस्र एवं अन्य स्थानों पर बाद की तारीख़ों की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

संस्करण

इब्ने ख़लदून के "मुक़द्दमे" के इस समय तक अनेक संस्करण भी हो चुके हैं जिनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नांकित हैं।

(१) ई० एम० क्वातरमेर (E. M. Quatremere) द्वारा सम्पादित १८५८ ई० का पेरिस का संस्करण Prolègomènes d' Ebn-Khaldoun (प्रोलेगेमेने डा इब्ने खलदून) के नाम से तीन भागों में प्रकाशित हुआ था। यह संस्करण चार हस्तलिखित पोथियों पर आधारित है।

(अ) बिबलोथेके नेशनेल नं० १५२४, जो ११४६ हि० (१७३३ ई०) की है।

(आ) आभर के कैटलाग की म्युनिख़ की हस्तलिखित प्रति नं० ३७३, जो ११५१ हि० (१७३८ ई०) की है।

(इ) दामाद इबराहीम की पोथी जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

(ई) १०६७ हि० (१६५६–५७ ई०) की क्वातरमेर की हस्तलिखित पोथी, जो अब बिबलोथिके नेशनेल की हस्तलिखित पोथी नं० ५१३६ है।

(२) लगभग उसी समय सफ़र १२७४ हि० (सितम्बर-अक्तूबर १८५७ ई०) में नस्र अल-हूरीनी द्वारा सम्पादित "मुक़द्दमा" क़ाहेरा के समीप बूलाक़ नामक स्थान से प्रकाशित हुआ।

(३) १२८४ हि० (१८४७–४८ ई०) में "इब्र" का सम्पूर्ण ग्रंथ बूलाक़ से सात भागों में प्रकाशित हुआ, जिसमें से प्रथम भाग "मुक़द्दमे" से सम्बन्धित है।

(४) मिस्र के डा० अली अब्दुल वाहिद वाफ़ी ने १९५७–५८ ई० में इब्ने ख़लदून के "मुक़द्दमे" का एक उत्तम संस्करण मिस्र से प्रकाशित कराया है, जिसमें बहुत-सी हस्तलिखित पोथियों का उपयोग करके पिछले संस्करणों की अनेक अशुद्धियाँ ठीक की गयी हैं।

(५) इन मुख्य संस्करणों के अतिरिक्त बूलाक़ के संस्करण के आधार पर बहुत-से संस्करण हुए हैं जिनमें एक १८७९–८० ई० में बैरूत से प्रकाशित हुआ था। इसके बाद १९०९ ई० तथा १९३० ई० में भी अनेक संस्करण हुए।

अनुवाद (तुर्की)

१७३० ई० में पीरज़ादे एफ़िन्दी ने मुक़द्दमे का आद्योपान्त अनुवाद किया, जो क़ाहेरा से १२७५ हि० (१८५९ ई०) में प्रकाशित हुआ।

फ़्रांसीसी

"मुक़द्दमे" का फ़्रांसीसी भाषा में अनुवाद तीन भागों में क्रमशः १८६२, १८६५, तथा १८६८ ई० मे पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद डब्लू० एम० स्लेन (W. M. Slane) ने क्वातरमेर (Quatremere) के संस्करण के आधार पर किया था, किन्तु बूलाक़ के संस्करण तथा पेरिस की हस्तलिखित पोथियों से भी मुक़ाबला कर लिया गया था। १९३४–३९ ई० मे पेरिस से ही इसको पुनः फ़ोटो विधि से छापा गया। यद्यपि कुछ विद्वानों ने अनुवाद में अनेक त्रुटियाँ बतायी हैं किन्तु अधिकाश शोध कार्य इसी अनुवाद के आधार पर होता रहा है।

अंग्रेजी

अंग्रेज़ी में अभी तक पूरे मुक़द्दमे का कोई अनुवाद न था, किन्तु १९५८ ई० में फ़्रेंज़ रोज़ेन्थाल (Franz Rosenthal) ने लन्दन से इसका अनुवाद तीन भागों में प्रकाशित कराया है। यह अनुवाद प्रकाशित संस्करणों के अतिरिक्त तुर्की में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। इससे पूर्व भी कुछ अंशों के निम्नांकित अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) आर० ए० निकोल्सन (R. A. Nicholson) के Translation of Eastern Poetry and Prose नामक ग्रंथ में इसका कुछ अश कैम्ब्रिज से १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

(२) १९५० ई० में लन्दन से प्रकाशित चार्ल्सी इसावी के An Arab Philosophy of History नामक ग्रंथ में इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे के कुछ आवश्यक उद्धरण प्रकाशित हुए थे।

जर्मन

(१) म्युनिख़ तथा बर्लिन से १९३२ ई० में अरविन रोज़ेन्थाल ने मुक़द्दमे के उद्धरण "गेडांकन यूबर डेन स्टाट" (Gedanken Uber den Staat) के नाम से प्रकाशित कराये थे।

(२) ए० शीमेल (A. Schimmel) ने १९५१ ई० में इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे के उद्धरण "आऊस गेवेलटे अब शेनेटे आउस डेयेर मुक़द्दमे" (Ibn Chaldun : Ausgewahlte Abschnitte aus der muqaddima) के नाम से प्रकाशित किया था।

उर्दू अनुवाद

(१) इब्ने ख़लदून के मुक़द्दमे का उर्दू अनुवाद सर्वप्रथम मौलवी अब्दुर्रहमान ने किया, जो २०वीं शती ई० के प्रारम्भ मे तीन भागों में लाहौर से प्रकाशित हुआ था और इसके कई संस्करण हो चुके है।

(२) हाल में ही मौलाना साद हसन ख़ाँ यूसुफी ने पूरे "मुक़द्दमे" का अनुवाद कराची (पाकिस्तान) से प्रकाशित कराया है।

सै० अ० अ० रिजवी

मुक़द्दमा

प्रस्तावना तथा विश्व-इतिहास (किताबुल इब्र) का प्रथम भाग

प्राक्कथन

इतिहास की व्याख्या

इतिहास का ज्ञान सभी क़ौमों और नस्लों में प्रचलित है। उसे प्राप्त करने एवं उसके प्रचार हेतु लोग बड़ी खुशी से यात्रा के कष्ट भी उठाते रहे हैं। निम्न वर्ग के लोगों की भी इस ज्ञान में उतनी ही रुचि है जितनी कि गण्य-मान्य लोगों एवं सुल्तानों की। विद्वान् तथा अज्ञ दोनों ही इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं। इतिहास बाह्य रूप से भूतकाल की घटनाओं एव पिछले राज्यों का हाल हमारे समक्ष प्रस्तुत किया करता है। बीते हुए दिन वह हमारे सामने लाकर रख देता है। नाना प्रकार के कथनों एव उदाहरणों से वह परिपूर्ण होता है और हमारी गोष्ठियों के लिए विचार-विनिमय का बड़ा ही उत्तम विषय रहता है। इतिहास से यह भी पता चलता है कि ससार की दशा मे समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन होता रहता है और किस प्रकार विभिन्न क़ौमों एव राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ और किस प्रकार उन्हें उन्नति प्राप्त हुई, किस प्रकार वे पृथ्वी पर फैलीं और उसे आबाद किया। यहाँ तक कि उनके ऐश्वर्य का युग कैसे समाप्त हुआ और कैसे पतन ने उन्हें किसी अशुद्ध अक्षर की भाँति दुनिया के पर्दे से मिटा दिया। यह तो इतिहास का एक रूप है, किन्तु वास्तव में यदि गहन दृष्टि से देखा जाय तो इतिहास में बड़ी गूढ़ बातें भी मिलेंगी। उससे सृष्टि की रचना एवं तत्सम्बन्धी कारणों का पता भी चलता है। घटनाएँ जिस धारा मे प्रवाहित होती रहती है उनका परिचय इतिहास द्वारा मिलता है। वह उनके कारणों एवं रहस्यों को बताता है। यही कारण है कि दर्शन-शास्त्र में इतिहास को भी एक स्थान प्राप्त है और यह उचित भी है कि उसकी गणना दर्शन-शास्त्र में की जाय।

इन्हीं कारणों से विश्वस्त इस्लामी इतिहासकारों ने संसार की समस्त घटनाओं को संकलित किया और फिर उन्हें ग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया, किन्तु मूर्खों ने बातें गढ़-गढ़कर उसे असत्य एवं मिथ्या घटनाओं का भंडार बना दिया। झूठी, अप्रामाणिक

एवं निराधार बातें इधर-उधर से लेकर अथवा स्वयं गढ़कर इसमें सम्मिलित कर दी। फिर बाद मे आनेवाले उन्हीं को मानते रहे और सुनी-सुनायी बातें हम तक पहुँचा दी। न उन्होंने घटनाओं के कारणों पर दृष्टि रखी और न उन विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दिया जिनमें वे घटनाएँ घटीं और न निराधार एवं मिथ्या बातों को इतिहास से पृथक् किया। इस प्रकार के अधिकांश आधुनिक इतिहास शोध एवं अनुसंधान से शून्य हैं और निराधार एवं कपोल-कल्पित बातों के भंडार बने हुए हैं। लोग प्रायः आँख मूँदकर एक-दूसरे की नक़ल ही किया करते हैं और अयोग्य लोग ज्ञान-विज्ञान पर अधिकार जमाये रहते हैं तथा अज्ञान का अन्धकार संसार में व्याप्त रहता है। फिर भी सत्य से कोई टक्कर नहीं ले सकता और उसे सर्वदा विजय प्राप्त होती है। काल्पनिक एवं असत्य घटनाओं का इतिहास में मिश्रण करनेवाले जिस प्रकार चाहें झूठी-सच्ची बातों को मिलाते रहें, किन्तु परखनेवाले तथा समझनेवाले खरे-खोटे को पहचान ही लेते हैं, उनकी विद्वत्ता तथ्य की खोज कर ही लेती है।

कुछ इतिहासकार

इस प्रकार यद्यपि बहुत-से लोगों ने इतिहास लिखे हैं और क़ौमों के विभिन्न विवरणों को संकलित किया है। किन्तु ऐसे इतिहासकार जो प्रसिद्धि एवं श्रेष्ठता के क्षेत्र में अग्रसर हो सके और जिन्होंने अपने से पूर्व की रचनाओं का निचोड़ अपने ग्रंथों में भरने की चेष्टा की, इतने कम हैं कि उन्हें अँगुलियों पर गिना जा सकता है, अपितु यह कहना चाहिए कि वे तीन-चार से अधिक नहीं। उदाहरणार्थ इब्ने इसहाक़,[१] तबरी,[२] इब्नुल कलबी,[३] मुहम्मद बिन उमर अल वाक़ेदी,[४] सैफ़ बिन उमर अल असदी[५] तथा मसऊदी[६]।

१. मुहम्मद बिन इसहाक़, मुहम्मद साहब की प्रसिद्ध जीवनी के रचयिता। इनकी मृत्यु बग़दाद में १५० अथवा १५१ हि० (७६७–६८ ई०) में हुई। ये कुछ समय तक मदीने तथा मिस्र में भी रहे।

२. अबू जाफ़र मुहम्मद बिन जरीर अत्तबरी का जन्म आमुल में २२४ हि० (८३८–९ ई०) में तथा मृत्यु बग़दाद में ३१० हि० (९२३ ई०) में हुई। ये अपने ग्रंथ तारीख़ुर्रुसूल वल मुलूक के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं।

३. हिशाम बिन मुहम्मद जिनकी मृत्यु २०४ अथवा २०६ हि० (८१९–२० अथवा ८२१–२२ ई०) में हुई।

यद्यपि मसऊदी एवं वाक़ेदी की रचनाओं की भी लोग कटु आलोचनाएँ करते हैं और विद्वान् एवं जानकार लोग उन्हें विश्वस्त नही समझते, किन्तु फिर भी बहुत बड़ी संख्या में लोग उन घटनाओं को विश्वास के योग्य समझते है जिनका वर्णन उनके इतिहासों में हुआ है और उनकी रचनाशैली की प्रशसा तथा उनका अनुसरण करते हैं। संक्षेप में शोध में रुचि रखनेवाले व्यक्ति उनके विवरण को विवेक की तराजू में तौलकर स्वयं निर्णय कर सकते है कि उसमें क्या-क्या त्याज्य है और क्या स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में संसार में जितनी घटनाएँ घटती हैं वे विशेष परिस्थितियों में ही घटती हैं और उन्ही पर अवलम्बित होती है।

फिर इन इतिहासकारों के अधिकांश इतिहास साधारण प्रथा एवं नियम पर आधारित हैं। इनमें साधारणतः इस्लाम के दो राज्यों, बनी उमय्या एवं बनी अब्बास तथा उनके अधीनस्थ प्रदेशों का इतिहास होता है। प्रारम्भ से अन्त तक जो परिणाम उनके राज्यों का हुआ, उसका भी इनमे उल्लेख होता है। उनमें कुछ ऐसे इतिहासकार भी है जिन्होंने इस्लाम से पहले की क़ौमों एवं राज्यों का इतिहास भी विस्तार से लिखा है और उस युग की प्रसिद्ध घटनाओं का भी उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ मसऊदी अथवा उसका अनुसरण करनेवालों का नाम लिया जा सकता है। इसके उपरान्त वे लोग आये जिन्होंने स्वातंत्र्य के खुले मैदान को त्याग कर अनुकरण के सँकरे एवं अँधेरे मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया। उन्होने अत्यधिक प्राचीन घटनाओं के वर्णन की उपेक्षा करके केवल अपने ही काल के सविस्तर इतिहास की रचना की। उन्होंने केवल अपने नगर एवं देश की घटनाओं पर विशद दृष्टि डालकर अपने-अपने राज्यों एवं नगरों का इतिहास लिख डाला। उदाहरणार्थ उन्दुलुस का इतिहासकार अबू हय्यान[1] जिसने अपने इतिहास ग्रंथ में केवल उन्दुलुस एवं बनी उमय्या के

४. मुहम्मद बिन उमर अल-वाक़ेदी जिनका जन्म मदीने में १३० हि० (७४७–४८ ई०) तथा मृत्यु २०७ हि० (८२३ ई०) में हुई। ये अपने ग्रन्थ किताबुल मग़ाज़ी के लिए प्रसिद्ध हैं।
५. सैफ़ बिन उमर अल-असदी की मृत्यु १८० हि० (७९६–९७ ई०) में हुई।
६. अली बिन हुसेन अल मसऊदी प्रसिद्ध इतिहासकार एवं भूगोलवेत्ता हुए हैं। इनकी मृत्यु ३४५ अथवा ३४६ हि० (९५६ या ९५७ ई०) में हुई। मुरूजुज्ज़हब व मादनुल जवाहर नामक इनकी रचना बड़ी प्रसिद्ध है।
१. हय्यान बिन ख़लफ़, जन्म ३७७ हि० (८९७–८८ ई०) मृत्यु ४६९ हि० (१०७६ ई०)

राज्यकाल का इतिहास लिखा है। इसी प्रकार इब्नुर्रक़ीक़[1] ने, जो इफ़रीक़िया[2] का इतिहासकार था, इफरीकिया एवं क़ैरवान के इतिहास के आगे कुछ अधिक नहीं लिखा।

इनके उपरान्त नक़्क़ालों तथा मूर्ख इतिहासकारों का युग प्रारम्भ हुआ। वे आँख बंद करके पुरातन लेखकों की नक़ल करने लगे और उनके कथन को प्रामाणिक मानने लगे। उन्हे इस बात का कोई ज्ञान न रहा कि कालचक्र के कारण कहाँ तक परिवर्तन हो चुके हैं। संसार की क़ौमों के स्वभाव तथा आचार-विचार में कितनी घोर क्रान्ति हो चुकी है। इस प्रकार जब वे राज्यों एवं भूतकाल की घटनाओं का चित्रण करते हैं तो वह चित्र बड़ा ही भद्दा एवं भोंडा होता है। उनकी अज्ञानता एवं असावधानी के कारण उनके द्वारा संकलित हुआ नवीन एवं प्राचीन घटनाओं का भंडार स्वीकार करने योग्य नहीं होता। वे न तो घटनाओं के कारणों का पता लगाते हैं और न अन्य सिद्धान्तों पर ध्यान देते हैं। केवल पिछले इतिहासकारों का अनुकरण करते हुए घटनाओं की पुनरावृत्ति करते रहते हैं। क़ौमों में इस समय तक जो-जो परिवर्तन हो चुके हैं उनकी ओर वे कोई दृष्टि नहीं डालते, क्योंकि ऐसा करने में उन्हें कष्ट उठाना पड़ता है, फलतः उनके इतिहासों में इस रहस्य का कोई जिक्र नहीं रहता। इसके अतिरिक्त जब वे किसी राज्य का इतिहास लिखने लगते हैं तो उसके स्रोतों एवं उसके कारणों पर वाद-विवाद किये बिना केवल अनुकरण के दायित्व को ही पूरा कर देते हैं और कल्पना अथवा सत्य के प्रकाश में घटनाओं का वर्णन करते जाते हैं। इस प्रकार उनके इतिहासों का अध्ययन करनेवाला राज्यों के अभ्युदय एवं उनकी श्रेणियों, उनकी शक्ति एवं उन्नति, पारस्परिक संघर्ष इत्यादि के कारण की खोज ही करता रह जाता है, उसे उसका कुछ पता नहीं चल पाता। इन सब बातों का हम आगे चलकर इस मुक़द्दमे में उल्लेख करेंगे।

इनके पश्चात् इतिहासकारों का ऐसा समूह आया जो बड़ा संक्षिप्त विवरण देने लगा और केवल सुल्तानों की नामावली को ही पर्याप्त समझने लगा। उनके वशों एवं इतिहास पर भी उसने कुछ न लिखा। इस प्रकार इब्ने रशीक़[3] ने मीज़ानुल

१. इबराहीम बिन अल क़ासिम इब्नुर्रक़ीक़ १००० ई० के लगभग हुआ है।

२. रोमन राज्य का अफ़्रीक़ा प्रांत। इब्ने ख़लदून ने इसी शब्द का प्रयोग किया है।

३. हसन बिन रशीक़ का जन्म ३९० हि० (१००० ई०) के लगभग हुआ और वह ४५६ हि० या ४६३ हि० (१०६४ ई० अथवा १०७०–७१ ई०) तक जीवित रहा। मीज़ानुल अमल की कोई प्रति अब कहीं प्राप्य नहीं।

अमल में एवं उसका अनुसरण करनेवालों ने अपने-अपने इतिहासों में इसी शैली का पालन किया है। इतिहासकारों के प्रचलित नियमों एवं वर्णन-शैली की उपेक्षा करने के कारण उनके इतिहासों से कोई लाभ नही प्राप्त हो पाता। न उनके कथन का ही कोई विश्वास किया जा सकता है और न उनकी बात ही उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है।

जब मैंने ऐसे इतिहासों का अध्ययन किया और ऐतिहासिक सिद्धान्त के अनुसार उनका निरीक्षण किया तो मैं अचानक सावधान हो गया और स्वयं एक ग्रन्थ लिखने का संकल्प किया। इस मार्ग का अनुसरण करते समय अपनी अयोग्यता का ध्यान रखते हुए मैंने एक इतिहास की रचना की और क़ौमों के गुप्त रहस्यों को खोल दिया। प्रत्येक प्रकार की घटनाओं एवं वर्णनों के लिए विभिन्न अध्याय लिखे। इन अध्यायों में सभ्यता एवं संस्कृति के अभ्युदय तथा उन्नति के कारणों का विश्लेपण करते हुए विशेष रूप से उन क़ौमों के इतिहास पर अपने ग्रन्थ को आधारित किया, जो मग़रिब[1] (पश्चिम) में बसी हुई है और जिन्होंने उस दिशा के नगरों एवं उनके चारो ओर के स्थान को आबादी से ढँक दिया है। इन क़ौमों के अनेक छोटे बड़े राज्य एवं बहुत से प्रतिष्ठित लोग तथा सुल्तान वहाँ हुए है। मैंने उनके सुल्तानों एवं उनके सहायकों का इतिहास भी लिखा। पश्चिम दिशा या मग़रिब अरब एवं बरबर क़ौमों का निवास स्थान है। वे शताब्दियों से वहाँ निवास करती चली आयी है; यहाँ तक कि अब उनके अतिरिक्त अन्य किसी भी क़ौम को मग़रिब जानता तक नहीं। अब वे ही वहाँ के मूल निवासी समझे जाते हैं।

इतिहास का विभाजन

मैंने इस इतिहास को शोध एवं अनुसंधान के आभूषणों द्वारा अलंकृत किया और इसको इस श्रेणी तक पहुँचा दिया कि विद्वान् एवं विशेष व्यक्ति भी इससे पूर्ण रूप से लाभ उठा सकते हैं। इसके संकलन एवं अध्यायों के विभाजन में एक ऐसे बड़े नवीन नियम का पालन किया गया है और ऐसी शैली का प्रयोग किया गया है जो वास्तव में विचित्र और निराली है। इसमें समाज-शास्त्र, सभ्यता एवं संस्कृति का विश्लेषण किया गया है और उसके साथ-साथ मानव-समाज में जो व्यक्तिगत एवं स्वाभाविक

१. हेस्पेरिया, अफ़्रीक़ा, बारबरे अथवा मोराको।

दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हें भी सामने लाया गया है, ताकि सृष्टि के ढाँचे का भी ज्ञान हो जाय और यह भी पता चल सके कि किस प्रकार शासकों ने अपने शासन की रूपरेखा बनायी। इस प्रकार दूसरों के अनुकरण से मुक्ति भी प्राप्त हो गयी है और पिछली क़ौमों और उनके इतिहास का ठीक ठीक ज्ञान भी। इस तरह इस ग्रथ को मने एक मुक़द्दमे एवं तीन भागों में विभाजित किया है। उनका विषय-विस्तार निम्नलिखित है—

मुक़द्दमा : इतिहास के ज्ञान की श्रेष्ठता, उसके विभिन्न नियमों का निश्चित होना एवं पहचान तथा इतिहासकारों की भूलों की ओर संकेत और उनकी समीक्षा।

भाग १ : सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन, उनसे सम्बन्धित संस्थाएँ उदाहरणार्थ देश, राज्य, जीविकोपार्जन, उद्योग-धंधे, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान एवं उनके साधन तथा कारण।

भाग २ : अरब, उसके क़बीले तथा नस्लें, उनके राज्य (आदि काल से आधुनिक समय तक) उनकी समकालीन क़ौमें तथा राज्य; उदाहरणार्थ नबत[1], सुरयानी[2], फ़ारस[3], बनी इसराईल[4], क़िब्त[5], यूनान[6], रूम[7], तुर्क तथा फ़िरंग[8]।

भाग ३ : बरबर[9] एवं उनसे सम्बद्ध जनता और उनके क़बीलों का प्रारम्भिक इतिहास, विशेष रूप से मग़रिब एवं वहाँ के राज्य।

१. उत्तरी अरब का प्राचीनतम राज्य। लगभग ३१२ ईसा-पूर्व में ये लोग काफ़ी शक्ति-शाली हो गये थे। १०५ ई० से इनका पतन प्रारम्भ हो गया।
२. सीरिया वालों का प्राचीन राज्य।
३. ईरान का प्राचीन राज्य।
४. इस्राईलाइट्स जिनका फ़लस्तीन पर राज्य था।
५. काप्ट्स, मिस्र के मूल निवासी।
६. ग्रीस।
७. बाईज़ण्टाइन।
८. फ़्रैंक अथवा यूरोप निवासी।

इसके उपरान्त मैने पूर्व की यात्रा की ताकि वहाँ के ज्ञान से लाभान्वित हो सकूँ और हज इत्यादि के उत्तरदायित्व को पूरा कर सकूँ। इसी अवसर पर मैने ईरानियों एवं तुर्कों की सल्तनतों के इतिहास एवं उन राज्यों की अधिक जानकारी प्राप्त की। उनके आसपास की समकालीन क़ौमों एव सुल्तानों का इतिहास पहले बड़ा सक्षिप्त था, किन्तु इस यात्रा के कारण सुगमतापूर्वक उसकी भी पूर्ति हो गयी। इसके साथ-साथ मै प्रत्येक बात के कारणों पर भी वाद-विवाद कर सका हूँ। इस तरह इस ग्रंथ में सृष्टि का पूर्ण इतिहास आ गया है। यह नाना प्रकार के रहस्यों से परिपूर्ण है और राज्यों के कारणों एवं स्थिति के विषय में विस्तार से लिखा गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में दर्शन के रहस्य भी है और ऐतिहासिक वर्णन भी।

यतः इस ग्रथ मे अरब एवं बरबर जातियों के नागरिकों एवं बदवी[1] बस्तियों का इतिहास दिया गया है और उनके समकालीन बड़े बड़े राज्यों का वर्णन भी लिखा गया तथा इनके प्रारम्भिक एवं अन्तिम इतिहास के विषय मे शिक्षाओ का एक भंडार भी प्रस्तुत किया गया है, अतः इस ग्रथ का नाम **किताबुल इब्र व दीवानिल मुब्तेदा वल ख़बर फ़ी अय्यामिल अरब वल अजम वल बरबर व मन आसरहुम मिन ज़विस् सुल्तानिल अकबर**[2] रखा। यथासम्भव मैने क़ौमों एवं राज्यों के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन बड़े विस्तार से किया है और पिछली शताब्दियों में जो परिवर्तन हुए तथा जो क्रान्तियाँ हुई, उनके कारणों का विस्तृत उल्लेख करने में कोई कसर उठा नही रखी। उनकी सभ्यता एवं संस्कृति जो-जो रूप धारण करती रहीं उनका सविस्तर उल्लेख इस पुस्तक में मैने किया है। उदाहरणार्थ उनके राज्य, उनके धर्म, उनके नागरिक एव ग्रामीण जीवन, उनके सम्मान तथा अपमान, उनकी अधिकता एवं न्यूनता, उनके ज्ञान एवं उद्योग, उनके कला-कौशल और उनके परिवर्तनशील नागरिक एवं बदवी जीवन का विशेष वर्णन मैने अपने इतिहास में किया है। इस सम्बन्ध में जो घटनाएँ घटी उनके साथ-साथ भविष्य में संभाव्य घटनाओं का भी वर्णन किया गया है। इसके साथ-साथ इनकी विशेष परिस्थितियों एवं उनके कारणों का भी सविस्तर उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में विचित्र और आश्चर्यजनक ज्ञान तथा अन्य रहस्यों के साथ-

१. **यायावर, अरब के भ्रमणकारी क़बीलों का जीवन।**

२. **शिक्षाओं का ग्रंथ, प्रारम्भिक एवं बाद के इतिहासों का संग्रह, अरब, ग़ैर अरब (अजम) बरबर तथा उनके समकालीन प्रतिष्ठित सुल्तानों का इतिहास।**

साथ सुबोध दर्शन भी समाविष्ट है। फिर भी मैं अपनी कमियों एवं त्रुटियों को स्वीकार करता हूँ। विद्वानों के समक्ष मैं यह अपनी तुच्छ सम्पत्ति प्रस्तुत करता हूँ। क्योंकि त्रुटियों का स्वीकार कर लेना आलोचनाओं एवं निंदा से मुक्ति दिला देता है, मुझे अपने भाइयों से भलाई की ही आशा है न कि बुराई की।...[१]

१. इसके उपरान्त ग्रंथ के समर्पण का उल्लेख है, जिसका अनुवाद नहीं किया गया।

प्रस्तावना

मुक़द्दमा

इतिहास के ज्ञान की श्रेष्ठता, उसके विभिन्न दृष्टिकोणों की खोज, इतिहासकारों की भूलें एवं त्रुटियाँ तथा उनके कारणों का संक्षिप्त वर्णन

यह सभी जानते हैं कि इतिहास बड़ी उच्च श्रेणी का ज्ञान है। उसके अनेकों लाभ और उत्कृष्ट परिणाम हैं। इतिहास द्वारा हमें पिछली उम्मतों[1] के कार्यकलापों, नबियों के जीवन-चरित्र, सुल्तानों की राजनीति तथा राज्य के नियमादि का ऐसा ज्ञान होता है, जिसके द्वारा यदि कोई इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी कार्यों में उपर्युक्त विषयों में से किसी का भी अनुसरण करना चाहे तो सफलतापूर्वक वह ऐसा कर सकता है। अतः इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि इतिहास के विभिन्न सूत्रों का पता लगाये तथा विभिन्न ज्ञानसूत्रों से उसका परिचय हो। इसके लिए इतिहासकार में कुशाग्र बुद्धि एवं गहन अन्तर्दृष्टि होनी चाहिए, ताकि वह सत्य की खोज कर सके और त्रुटियों तथा भूलों से अपने आपको सुरक्षित रख सके। कारण कि यदि घटनाओं को ज्यों की त्यों दूसरों के लेख से नक़ल कर लेना ही पर्याप्त समझ लिया जाय और स्वाभाविक नियमों, राजनीति के सिद्धांतों, संस्कृति की विचारधाराओं एवं मानवसमाज के संगठन पर दृष्टि न रखी जाय और भूतकाल को वर्त्तमान काल के प्रकाश में न देखा जाय तो भूलें होने, बहक जाने एवं सन्मार्ग से हट जाने की आशंका बनी रह सकती है। इस मार्ग के अनुगामी अधिकांश इतिहासकार, क़ुरान के टीकाकार एवं घटनाओं का वर्णन करनेवाले पहले भी घटनाओं के वर्णन में भूलें कर गये हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने केवल नक़ल पर भरोसा किया और इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वे घटनाएँ स्वीकार करने योग्य थीं भी या नहीं। उन्होंने न तो उन्हें ऐतिहासिक सिद्धान्तों

१. राष्ट्रों।

की कसौटी पर जाँचा ही और न इस बात पर ध्यान दिया कि एक ही प्रकार की घटनाओं से किस प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उन्होंने न तो सृष्टि की स्वाभाविक दशा तथा राजनीति के नियमानुसार उनकी परीक्षा की, न विवेक, बुद्धि एवं ज्ञान से काम लिया। इस कारण वे सत्य एवं सन्मार्ग से पृथक् हो गये और कल्पना एवं मिथ्या के जंगल में भटकते रहे। कहानियों में धन-सम्पत्ति एवं सेनाओं की संख्या के प्रश्न पर विशेष रूप से ऐसी भूलें हुईं, क्योंकि कहानियों में झूठ एवं अशुद्ध वर्णन बहुत बड़ी सीमा तक प्रविष्ट हो सकते हैं। अतः नियमों एवं सिद्धान्तों के अनुसार इनकी परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

उदाहरणार्थ मसऊदी एवं बहुत से अन्य इतिहासकारों ने बनी इसराईल[१] की सेना की संख्या का विवरण देते हुए लिखा है कि जब मूसा[२] ने रेगिस्तान में सशस्त्र सैनिकों अर्थात् ऐसे सैनिकों की, जिनकी अवस्था २० वर्ष से अधिक थी, गणना करायी तो उनकी संख्या छः लाख अथवा इससे कुछ अधिक निकली। इसे लिखते समय इतिहासकार मिस्र एवं शाम[३] के राज्य पर दृष्टि रखना भूल गये और यह न सोचा कि वहाँ इतनी अधिक सेना रखी भी जा सकती है। उन्होंने नही सोचा कि जो राज्य बहुत बड़ा होता है उसमें ही इतनी बड़ी सेना रखी जा सकती है। राज्य की आय के अनुसार उस पर व्यय किया जाता है। आय को देखते हुए उससे अधिक सेना रख लेना सम्भव नही। इसका प्रमाण राज्यों की प्रसिद्ध घटनाओं एवं साधारण स्वभाव से मिल जाता है। फिर भी इतनी अधिक सेना के लिए युद्ध करना भी सम्भव नही, कारण कि वहाँ कोई ऐसा बड़ा मैदान नही जो दृष्टि के पहुँचने की दूरी से दुगुना, तिगुना अथवा इससे भी अधिक बड़ा हो जहाँ सेना की पक्तियाँ खड़ी हो सकें। यदि वे किसी न किसी प्रकार खड़ी हो भी जायें तो दोनों पक्षों का एक-दूसरे पर आक्रमण करना तथा एक-दूसरे के विषय में सूचनाएँ एवं विजय पाना सम्भव नही। इस प्रकार वर्त्तमान काल की घटनाओं का भूतकाल की घटनाओं से एवं भविष्य की घटनाओं का वर्त्तमान काल की घटनाओं से साम्य होना चाहिए।

फ़ारस का राज्य बनी इसराईल के राज्य से बहुत बड़ा था, जैसा कि बख़्त नस्र[४]

१. इसराईलाइटस।
२. मोज़ेज़।
३. सीरिया।
४. नेबुश्शादनज़र।

के उस पर प्रभुत्व से ज्ञात होता है। उसने उस राज्य को पददलित करके पूर्ण रूप से विजय कर लिया था। बैतुल मुक़द्दस[1] को,जो उनके धर्म एवं राज्य का केन्द्र था, उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, हालाँ कि वह फ़ारस के राज्य का केवल एक हाकिम ही था। उसके विषय में यह भी कहा जाता है कि वह पश्चिम दिशा के सीमान्त भू-भाग का एक सरदार था। फ़ारस वालों का राज्य दोनों इराक़[2], खुरासान, मावराउन् नहर[3] और कैस्पियन सागर के दरबन्द तक फैला था। यह राज्य बनी इसराईल के राज्य से कहीं अधिक बड़ा था। फिर भी फ़ारस के राज्य की सेना इस संख्या तक न पहुँच सकी। उनकी बड़ी से बड़ी सेना की संख्या जो क़ादिसिया[4] में एकत्र हुई थी, सैफ़ बिन उमर अल असदी के वर्णन के अनुसार १ लाख २० हज़ार थी। यही इतिहासकार लिखता है कि फ़ारस के राज्य की सुव्यवस्थित सेना उस समय दो लाख थी। हज़रत आयशा[5] एवं जुहरी[6] का कथन है कि क़ादिसिया में रुस्तम के नेतृत्व में जो सेना साद से युद्ध करने आयी थी उसकी संख्या केवल ६० हज़ार थी। यदि बनी इसराईल की सेना की संख्या इतनी भी होती तो उनके राज्य का क्षेत्र बहुत अधिक बड़ा हो गया होता और उनका राज्य दूर-दूर तक फैल चुका होता, क्योंकि देशों एवं राज्यों के क्षेत्र-फल उनके सहायकों एवं उनकी सेना की अधिकता तथा न्यूनता के कारण घटते-बढ़ते रहते हैं।...[7]

१. येरोशलम।
२. मेसोपोटामिया तथा उससे मिला हुआ उत्तर-पश्चिमी फ़ारस।
३. ट्रांसाक्ज़ियाना।
४. क़ादिसिया नजफ़ के दक्षिण तथा कूफ़े की छावनी से १८½ मील है। यहाँ हज़रत उमर के सेनापति साद इब्ने अबी वक़्क़ास और ईरान के सेनापति रुस्तम में ३१ मई अथवा १ जून ६३७ ई० को घोर युद्ध हुआ, जिसमें ईरानी हार गये।
५. हज़रत अबू बक्र, मुसलमानों के प्रथम ख़लीफ़ा की पुत्री तथा मुहम्मद साहब की प्रिय पत्नी। इनका ६७ वर्ष की अवस्था में ६७८ ई० में निधन हुआ।
६. मुहम्मद बिन मुस्लिम जिसकी मृत्यु १२३–१२५ हि० (७४० और ७४२-४३ ई०) के मध्य हुई।
७. इतिहासकारों की इस प्रकार की भूलों के सविस्तर उदाहरण यहाँ दिये गये हैं। उनका अनुवाद नहीं किया गया।

हम इन ऐतिहासिक भूलों का सविस्तर विवरण देकर अपने उद्देश्य से हटते जा रहे हैं, किन्तु हमने यह विवरण इस कारण दिया है कि बहुत से विश्वस्त एवं योग्य इतिहासकार भी इन विषयों का उल्लेख करते समय बहक जाते हैं और वे सत्य से पृथक् हो जाते हैं। उनके मस्तिष्क में ये भूलें जड़ पकड़ जाती हैं। अयोग्य एवं निष्कर्ष निकालने के नियमों से अनभिज्ञ लोगों ने जब इन भूलों को उद्धृत किया तो उन्हें इसी रूप में स्वीकार भी कर लिया और विवेक एवं आलोचना से काम नहीं लिया। इस प्रकार उनके ज्ञान के भंडार में इस तरह के मिथ्या विश्वास ने स्थान ग्रहण कर लिया और इतिहास का एक ऐसा भाग तैयार हो गया जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस भ्रमपूर्ण भाग के अध्ययन से पाठक गण भ्रम में पड़ जाते हैं, अपितु यह कहना चाहिए कि इतिहास अपने उच्च स्तर से नीचे गिर गया और एक साधारण कला समझा जाने लगा।

इतिहासकार के लिए यह परमावश्यक है कि वह सृष्टि के प्राकृतिक एवं राजनीतिक नियमों तथा सिद्धान्तों को भली-भाँति समझता हो। उसे इस बात का ज्ञान हो कि चरित्र, नैतिकता, धर्म इत्यादि में भूमि, स्थान, राज्य एवं क़ौमों के परिवर्तन से क्या-क्या उलटफेर हो जाते हैं। उसमें इस बात की भी योग्यता होनी चाहिए कि वह वर्त्तमान एवं उपस्थित की, भूत एवं अनुपस्थित से तुलना करके देखे कि वे कहाँ तक एक दूसरे से मिलते-जुलते एवं भिन्न हैं। जो बातें मिलती हों उनके कारणों का भी पता लगाये और जो बातें भिन्न हों उनके कारणों की भी खोज करें। राज्यों एवं क़ौमों के सिद्धान्तों, उनके अभ्युदय एवं प्रादुर्भाव का पता लगाये। जिन लोगों का इन कार्यों में मुख्य हाथ हो उनके विषय में उसे पूर्ण ज्ञान होना चाहिए ताकि वह उन सूचनाओं के आधार पर प्रत्येक घटना के कारण का पता लगा सके और जो घटना उस तक पहुँची है, यदि वह उसके नियम तथा सिद्धान्त पर पूरी उतरती है तो उसको वह ठीक समझे अन्यथा उसे मिथ्या एवं असत्य समझकर त्याग दे।

इस प्रकार प्राचीन काल के लोगों ने इतिहास को जो महत्त्व प्रदान किया है वह इन्ही नियमों के अनुसार हुआ है। यहाँ तक कि तबरी, बुख़ारी[1] एवं इब्ने इसहाक़ सरीखे विद्वानों ने इसे अपनी रचनाओं के लिए चुना, किन्तु सर्वसाधारण

१. मुहम्मद इस्माईल अल बुख़ारी अपने ग्रंथ सहीह-अल-बुख़ारी के लिए प्रसिद्ध हैं। यह मुहम्मद साहब की हदीसों का संग्रह है। उनकी मृत्यु ८७० ई० में बुख़ारा में हुई।

इस रहस्य से अनभिज्ञ हैं। फलतः इतिहास का अध्ययन अज्ञानतुल्य समझा जाने लगा और सर्वसाधारण तथा मूर्ख लोगों ने इसके अध्ययन एवं विवेचन को एक साधारण बात्त समझ लिया। इस प्रकार खरा-खोटा, असली-नक़ली, झूठ-सच मिल गये।

इतिहास में जो भूलें होती रहती हैं उनके कारण यद्यपि बहुत से हैं, किन्तु एक बड़ा ही गुप्त कारण, जिस पर लोगों की दृष्टि नहीं पड़ती, यह है कि युग के परिवर्तन एवं समय के बदलने की वजह से जो उलट-फेर क़ौमों एवं क़बीलों में हो जाते हैं उनका इतिहासकारों को ज्ञान नहीं होता। ये परिवर्तन दीर्घकाल में शनैः-शनैः इस प्रकार होते रहते हैं कि लोगों को उनका पता ही नहीं चल पाता और ऐसे बुद्धिमान् एवं अनुभवी बहुत कम लोग होते हैं जो इन परिवर्तनों को पहचान सकें। या यों कहिए कि संसार तथा ससार वाले एवं उनके स्वभाव और नियम सर्वदा एक ही प्रकार तथा एक ही रूप के नही रहते। इन सब बातों मे युग के साथ परिवर्तन होता रहता है। जिस प्रकार मनुष्य एव आबादियाँ एक ही स्थिति में नही रहतीं उसी प्रकार पृथ्वी, युग एवं राज्य भी स्थायी नही हुआ करते।

एक समय वह था जब संसार में प्राचीन फ़ारसी, सुर्यानी, नबत, तबाबआ[१], बनू इसराईल तथा क़िब्त आबाद थे और राज्य, राजनीति, कला-कौशल, शब्दार्थ, मुहावरों के प्रयोग तथा सामाजिक आदान-प्रदान में कुछ नियत नियमों का पालन करते थे, जैसा कि उनके अवशेषों से पता चलता है। फिर इनके उपरान्त दूसरे फ़ारसी, रूमी[२] तथा अरब आये, जिनके कारण एक बहुत बड़ा परिवर्त्तन हुआ। आदतें बदल गयीं, कुछ उनसे मिलती-जुलती रहीं और कुछ उनसे पूर्णतः भिन्न। तदुपरान्त मुज़रया[३] में इस्लाम का अभ्युदय हुआ और प्राचीन आचार-विचार कुछ के कुछ हो गये। उनकी बहुत-सी बातें वर्त्तमान से, जो उन्होंने अपने पूर्वगामी लोगों से ग्रहण की थीं, मिलती-जुलती थीं। उनके बाद अरबों का यह राज्य भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उनका युग समाप्त हो गया। वे लोग जिन्होंने ऐश्वर्य एवं वैभव प्राप्त किया था, संसार से विदा हो गये और राज्य अजम[४] वालों के हाथ में आ गया। पूर्व में तुर्क, पश्चिम में बरबर एवं उत्तर में फ़िरग राज्य करने लगे। इस प्रकार प्राचीन काल के लोगों के

१. **यमन का तुब्बा राज्य।**

२. **बाइज़ण्टाइन।**

३. **फ़ुरात का मुज़ार वंश।**

४. **ग़ैर-अरब।**

राज्य समाप्त हो जाने के उपरान्त क़ौमों की दशा, आचार-विचार, ऐश्वर्य एवं वैभव सभी में परिवर्तन हो गया और मस्तिष्क से उनका ख़याल भी मिट गया।

स्थिति एवं आचार-विचार के परिवर्त्तन का एक व्यापक एवं बड़ा कारण यह है कि प्रत्येक क़ौम एव जाति अपने बादशाहों के आचार-विचार का पालन करती है। यह दार्शनिक नियम कि "लोग अपने बादशाह के धर्म का पालन करते हैं," इस रहस्य की ओर संकेत करता है। जब एक राज्य वाले दूसरे राज्य वालों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते है तो वे विवश होकर अपने से पहले के राज्य वालों की ओर आकृष्ट होते हैं और उनकी बहुत-सी बातों को अंगीकार कर लेते है, किन्तु वे अपनी क़ौमी विशेषताओं को भी नहीं त्यागते। इस प्रकार दोनों की आदतों में संघर्ष होता रहता है। इसके बाद जब कोई अन्य राज्य प्रारम्भ होता है तो पराजित राज्य एवं विजेता राज्य मे पुनः टक्कर होती है किन्तु यह टक्कर पिछले संघर्ष से हलकी होती है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है, यहाँ तक कि क़ौमें अपने आचार-विचार में पिछले लोगों से पूर्णतः पृथक् हो जाती हैं।

संक्षेप में जब तक क़ौमों के राज्यों में निरन्तर रद्दोबदल होती रहेगी तो उनके आचार-विचार एवं चरित्र में भी इसी प्रकार परिवर्त्तन होता रहेगा।......

आज के युग में शिक्षा जीविकोपार्जन का एक साधन बन गयी है और वंश के गौरव एवं सम्मान का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षक दरिद्र, अज्ञात एवं बड़ा साधारण व्यक्ति होता है, अतः बहुत से निम्न वर्ग के लोग तथा शिक्षा देने का व्यवसाय करनेवाले उस उच्च सम्मान का स्वप्न देखने लगते हैं जिसके वे कदापि पात्र नहीं होते। वे सुगमतापूर्वक उसे प्राप्त कर लेना सम्भव समझते हैं। संक्षेप में इन्ही आशाओं में वे अपने आपको भूल जाते हैं। कभी उनकी आशाएँ टूट भी जाती है और वे निराशा के गर्त में गिर जाते हैं, किन्तु वे फिर भी उस उत्कृष्ट सम्मान की प्राप्ति असम्भव नहीं समझते। उन्हें यह ध्यान ही नहीं आता कि वे भी अन्य उद्योग एवं व्यवसाय करने-वालों के ही समान पेशेवर हैं और उस उत्कृष्ट सम्मान का उनसे क्या सम्बन्ध हो सकता है। इस्लाम के प्रारम्भ एवं बनी उमय्या तथा बनी अब्बास के राज्यकाल में शिक्षा की यह दशा न थी जो अब है। शिक्षा को उद्योग एवं व्यवसाय के रूप में न समझा जाता था, अपितु मुहम्मद साहब की रवायतों[1] को नक़ल करना ही शिक्षा समझा जाता था। इस्लाम की अज्ञात बातों को प्रचार की दृष्टि से सिखाना ही शिक्षा थी।

१. वाणी, कथन, परम्परा।

इस प्रकार उत्कृष्ट वंश वाले, सम्मानित व्यक्ति एवं क़ौम के बड़े-बड़े नेता ही शिक्षा दिया करते थे। क़ुरान एवं हदीस की शिक्षा वे प्रचार की दृष्टि से देते थे न कि व्यवसाय की दृष्टि से। उनकी दृष्टि में क़ुरान शरीफ़ वह किताब थी जो उनके रसूल पर उतरी थी। यही उनके पथप्रदर्शन का स्रोत थी। इस्लाम उनका धर्म था। इसी किताब की खातिर उन्होंने काफ़िरों से युद्ध किया और इसी की वजह से उन्हें अन्य क़ौमों पर प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इसी कारण उनकी सर्वदा यही महत्त्वाकांक्षा रहती थी कि वे इसकी शिक्षा अन्य लोगों को प्रदान करें। इस मार्ग में न उन्हें उनके सांसारिक उच्च पद रोक पाते थे और न वंश का गौरव। इसका खुला प्रमाण यह है कि मुहम्मद साहब ने बहुत बडे-बड़े सहाबियों[1] को अरब में इस्लाम की शिक्षा का प्रचार करने के लिए अरबी शिष्ट-मंडलों के साथ भेजा। इस कार्य के हेतु मुहम्मद साहब ने अशरये मुबश्शेरा[2] को भी भेजा और उनके उपरान्त अन्य लोगों को भी। जब इस्लाम की नींव दृढ़ और उसकी जड़ें मजबूत हो गयीं और संसार की दूर-दूर की क़ौमें भी इस्लाम से लाभान्वित हुई तो विभिन्न परिस्थितियों में इस्लामी धर्मशास्त्र में इस्लाम के नियमो को ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता पड़ने लगी। एक ऐसे विधान की आवश्यकता होने लगी जो लोगों को त्रुटियों, भूलों एवं दोषो से सुरक्षित रख सके। ज्ञानोपार्जन परमावश्यक हो गया। इस प्रकार ज्ञान भी कला-कौशल की श्रेणी को प्राप्त हो गया। इसका सविस्तर उल्लेख ज्ञान एवं शिक्षा के अध्याय में किया जायगा। क़ौमी असबियत[3] रखनेवालो ने देश एव शासन की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। ज्ञान एव शिक्षा का प्रचार अन्य लोगो के अधीन हो गया, मानो इस प्रकार ज्ञान ने केवल एक व्यवसाय का जामा पहन लिया हो। धन-धान्य से सम्पन्न लोग इसकी उपेक्षा करने ओर शिक्षा के कार्य को अपमानजनक समझने लगे। शिक्षा का कार्य निम्न वर्ग के लोगों के हाथ मे चला गया। क़ौमी सम्मान के स्वामी तथा राज्य के वैभव-प्राप्त लोग इस कार्य को अपने सम्मान के विरुद्ध समझने लगे।

अब यह ज्ञात ही है कि हज्जाज बिन यूसूफ के पूर्वज, सक़ीफ़[4] के सम्मानित

१. मुहम्मद साहब के मित्र, सहायक।
२. मुहम्मद साहब के १० प्रमुख सहाबी—अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली, तलहा, ज़ुबैर, अब्दुर्रहमान, इब्न औफ़ साद इब्ने अबी वक़्क़ास, सईद इब्ने जैद, अबू उबैदह।
३. क़ौम से ऐसा प्रेम जो हर दशा में उसे संगठित रखता था।
४. अरब का एक सम्मानित क़बीला।

व्यक्तियों में से थे। वे अरबी असबियत एवं क़ुरेशी[1] सम्मान के भी स्वामी थे। साथ-साथ यह भी सच है कि इस युग में इस्लाम की शिक्षा ने वह रूप धारण न किया था जो आज है। वह एक व्यवसाय न बनी थी, अपितु जिस प्रकार इस्लाम के प्रारम्भ में उसे गर्व का विषय समझा जाता था, उसी प्रकार उस समय भी उसे एक सम्मानित वस्तु समझा जाता था।

इसी प्रकार का भ्रम इतिहास का अध्ययन करनेवालों को उस समय होता है जब वे क़ाज़ियों[2] के विषय मे सुनते हैं। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि वे सेनाओं के सेनापति भी होते थे, तो उनका उत्साह बढ़ जाता है और वे भी वैसा सम्मान प्राप्त करने की अभिलाषा करने लगते हैं। वे उस समय के क़ाज़ियों के पद को भी वैसा ही समझने लगते हैं जैसा कि वह आज है।[3]...... प्राचीन काल में क़ाजी का पद उन्हीं को प्राप्त होता था जो राज्य से निकटतम सम्बन्ध रखते थे और राज्य के विश्वास-पात्र होते थे। उनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी कि आजकल मग़रिब में वजीरों की है। उनका बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर निकलना तथा महान् कार्य सम्पन्न करना इसका खुला प्रमाण है, कारण कि ये कार्य उन्हीं को सौपे जाते थे जो विशेष असबियत रखते थे। ऐसी ही दशा में सुननेवालों को भ्रम हो जाता है और वे इस प्रकार की मिथ्या स्थिति से मनमाने निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इस प्रकार की भूल अधिकांश इस युग के अल्प-दर्शी उन्दुलस वाले कर बैठते हैं। इसका कारण यह है कि उनके देश से असबियत बहुत समय पहले ही समाप्त हो गयी थी। जब से उनके राज्य का पतन हुआ और बर-बरों की असबियत के गुणों का उनमें अभाव हो गया, तब से अरब की वंशावलियाँ मात्र उनके पास रह गयीं। एक-दूसरे की सहायता करने का गुण उनमें न रहा, अतः अब उनकी गणना उस अपमानित प्रजा में होती है जो दूसरों के प्रभुत्व एवं अधीनता में दासों के समान जीवन व्यतीत कर रही है, किन्तु उन्हें भ्रम इसी बात का है कि उनका वंश ही उनके प्रभुत्व का कारण है। यदि आप वहाँ के उद्योग-धंधे एवं विभिन्न व्यवसाय करनेवालों को देखें तो आप उन्हें अपने उसी खोये हुए प्रभुत्व का स्वप्न देखते हुए पायेंगे। किन्तु जो लोग क़ौमों, क़बीलों एवं उनके राज्यों के विषय से भली-भाँति

१. अरब का एक प्रमुख क़बीला।
२. इस्लामी राज्य के न्यायाधीश।
३. इस स्थान पर कुछ प्राचीन क़ाज़ियों की कीर्ति पर प्रकाश डाला गया है। इसका अनुवाद नहीं किया गया।

परिचित हैं और जिन्हें इस बात की जानकारी है कि किस प्रकार क़ौमें एवं क़बीले एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं, वे इस बारे में बहुत कम भूलें कर सकते हैं।

इसी प्रसंग में यह बात भी है कि इतिहासकार जब राज्यों तथा बादशाहों के शासनप्रबंध पर वाद-विवाद करने लगते हैं तो उनका नाम, वंश, पिता-माता, अन्तःपुर, उपाधि, अँगूठी, क़ाज़ी, हाजिब[1] तथा वजीर सभी का उल्लेख कर डालते हैं। वे लोग बनी उमय्या एवं बनी अब्बास के राज्यकाल के इतिहासकारों का आँख बन्द करके अनुसरण करते हैं। वे उनके उद्देश्यों को ध्यान में नहीं रखते और न सूझ-बूझ से काम लेते हैं। प्राचीन काल के इतिहासकार अपने समकालीन सुल्तानों अथवा आनेवाली संतान के लिए इस आशय से इतिहास लिखते थे कि वे अपने पूर्वजों के इतिहास से परिचित होकर उनका अनुसरण कर सकें और उन्हीं के पदचिह्नों पर चल सकें तथा उन सुल्तानों के उपरान्त उनकी संतान किसी को कोई बड़ा पद देने अथवा कोई प्रान्त प्रदान करने के समय अपने सम्बन्धियों को अन्य लोगों पर प्राथमिकता (तरजीह) दे सके। उस युग में राज्य की ओर से असबियत वाले लोग ही क़ाज़ी नियुक्त किये जाते थे और उनकी गणना, जैसा कि हम लिख चुके हैं, वज़ीरों में होती थी। अतः प्राचीनकाल के इतिहासकारों के लिए यह परमावश्यक था कि वे ये सब बातें बिना कुछ घटाये बढ़ाये लिख दें। अब सल्तनतों में परिवर्तन हो चुका है और इतिहास का यह उद्देश्य हो गया है कि वह लोगों को बादशाह के व्यक्तिगत गुणों एवं उसके समय की घटनाओं की जानकारी कराये, जिससे पता चल सके कि किन-किन राज्यों ने एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त किया और यह भी ज्ञात हो सके कि किन-किन कौमों का अभ्युदय एव विनाश हुआ। ऐसी स्थिति में, आधुनिक काल के इतिहासों में वर्णित संतानों, स्त्रियों, अँगूठी पर खुदे वाक्यों, उपाधियों या विरुदों, क़ाज़ियों, वजीरों तथा हाजिब आदि संबंधी सविस्तर उल्लेखों से क्या लाभ? क्योंकि न तो अब वे नियम ही प्रचलित हैं और न वंश और न वे पद अथवा रुतबे। यतः ये इतिहासकार प्राचीनकाल के लोगों के इतिहास के उद्देश्य को न समझ सके, अतः अपनी असावधानी एवं अनुकरण की भावना के कारण इन लोगों ने अपने इतिहासों में इसी प्रकार की बातें लिख डाली है। हाँ, जो वजीर इतने प्रभावशाली हो गये कि उनके बादशाहों का यश भी उनकी

१. राज-दरबार का एक मुख्य अधिकारी जो सुल्तान एवं अन्य लोगों के बीच में मध्यस्थ रहता था।

उपस्थिति में साधारण प्रतीत होने लगा, उदाहरणार्थ हज्जाज, बनू मुहल्लब[१], बरा-मेका,[२] बनू सहल इब्ने नव बख़्त,[३] क़ाफ़ूर इख़शीदी,[४] इब्ने अबी आमिर इत्यादि, इनके पूर्वजों का अथवा इनका विवरण देने में कोई आपत्ति नहीं। कारण कि ये इस योग्य हैं कि बादशाहों की श्रेणी में ही इनकी गणना की जा सकती है।

अब हम यहाँ एक ऐतिहासिक रहस्य की चर्चा करके इस अध्याय को समाप्त करते हैं। वह इस प्रकार है कि इतिहास किसी विशेष युग अथवा विशेष क़ौम के हाल एवं अवशेष के वर्णन को कहते हैं, किन्तु संसार की क़ौमों तथा प्राचीन काल की सामान्य घटनाओं का उल्लेख भी इतिहासकार के लिए परमावश्यक होता है। इसका कारण यह है कि इतिहासकार के अधिकांश उद्देश्य इन्हीं पर अवलम्बित होते हैं, अतः उसके विवरण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। कुछ इतिहासकार इसके लिए अपने ग्रंथ को अनेक भागों मे विभक्त करते हैं। इसी लिए मसऊदी ने मुरूजुज़् ज़हब में इस नियम का पालन किया है। उसने अपने युग तक की समस्त पश्चिम एवं पूर्व के ससार की क़ौमों की सविस्तर चर्चा की है। उनके धर्मों, स्वभाव, नगरो, पर्वतों, नदियो, प्रदेशों एव राज्यों का वर्णन किया है। अरब एवं अजम के क़बीलों एवं क़ौमों की विभिन्न शाखाओं का अलग-अलग उल्लेख किया है। इसी कारण उसे इतिहास-कारों में बड़ा ऊँचा दर्जा प्राप्त है। अन्य इतिहासकारों ने इसी लिए अपने अधिकांश अनुसंधानों का आधार इसी इतिहास को बनाया है। वे उसके कथन को मौलिक सिद्धान्त मानते हैं।

तदुपरान्त बकरी[६] का युग आया। सभ्यताओं एवं देशों का विवरण देने में उसने भी इसी नियम का पालन किया, किन्तु उसके काल मे क़ौमों की दशा में अधिक

१. ये बनी उमय्या के राज्यकाल में हुए हैं।
२. ये प्रारम्भिक अब्बासी राज्यकाल में हुए है।
३. ये भी प्रारम्भिक अब्बासी राज्यकाल में हुए हैं।
४. अल-मिस्क काफ़ूर, फ़ुस्तात के इख़शीद वंश के राज्यकाल में वज़ीर नियुक्त हुआ किन्तु धीरे-धीरे उसने अत्यधिक अधिकार प्राप्त कर लिया और ९६६-९६८ ई० तक स्वतंत्र रूप से राज्य करता रहा।
५. इन लोगों ने स्पेन के उमय्या वंश के राज्यकाल में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था।
६. अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता, जिसका जन्म ४३२ हि० (१०४०-४१ ई०) तथा मृत्यु ४८७ हि० (१०९४ ई०) में हुई। इब्ने ख़लदून ने अपने ग्रंथ में कई स्थानों पर इसकी चर्चा की है। इसका एक ग्रंथ 'मीजम मा स्ताजम'

परिवर्तन नहीं हुआ था, अतः उसने उनकी उपेक्षा की। पर हमारे युग अर्थात् आठवीं शताब्दी हि० के अन्त (१४वीं शताब्दी ई०) में मग़रिब की दशा कुछ की कुछ हो गयी है। उसे अपनी आँखों से देख रहे हैं। बरबरी क़ौमों की प्राचीन दशा अचानक बदल गयी। पाँचवी शताब्दी हि० (११वी शताब्दी ई०) के प्रारम्भ में अरब उनके देश में जाने लगे थे और उन्होंने उन्हें पराजित करके अपने राज्य वहाँ स्थापित कर लिये थे। उनका देश उनके हाथ से छिन गया और जो भाग बरबरों के अधिकार में रह गये उनके शासन के मामलों में भी अरब लोग हस्तक्षेप करने लगे। आठवीं शताब्दी हिजरी के मध्य (१४वीं शताब्दी ई०) में समस्त पूर्व तथा पश्चिम में एक भयंकर प्लेग का प्रकोप हुआ। उसने बहुत-सी क़ौमों का समूलोन्मूलन कर दिया। आबादियों के रंग-रूप नष्ट हो गये। इस महामारी का प्रकोप ऐसे समय हुआ जब क़ौमें अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच, कर पतनोन्मुख हो रही थीं, अतः महामारी के कारण उनके ऐश्वर्य एवं वैभव में कमी हो गयी। उनका संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। मनुष्यों के कम हो जाने के कारण, जनसंख्या में कमी हो गयी। नगर एवं प्रदेश उजड़ गये और उनके चिह्न मिट गये। बस्तियाँ नष्ट हो गयी और राज्य एवं क़बीले शक्तिहीन हो गये। पूर्व में भी वही विपत्ति आयी जो पश्चिम में आयी थी, किन्तु उसका परिणाम हुआ उनकी जन-संख्या एवं दशा के अनुरूप। एक ही बार में समस्त संसार विनाश के चंगुल में फँस गया। जब इस प्रकार संसार की दशा में पूर्ण परिवर्तन हो गया तो मानव जाति की दशा भी पहले की दशा के मुक़ाबले में कुछ से कुछ हो गयी और यह ज्ञात होने लगा कि जो संसार हम इस समय देख रहे है, उसका जन्म पुनः हुआ है। अतः इस समय यदि कोई व्यक्ति संसार, उसके प्राणियों, क़ौमों, क़बीलों तथा उनके धर्म का, जो पूर्णतः परिवर्तित हो गये है, इतिहास लिखे तो उसके लिए यह परमावश्यक है कि वह इतिहास लेखन में मसऊदी का अनुसरण करे ताकि उसके बाद के आनेवाले इतिहासकार उसकी नक़ल कर सकें।

यदि ईश्वर ने चाहा तो हम अपने इस ग्रंथ में यथासम्भव मग़रिब के इतिहास का इसी प्रकार का सविस्तर विवरण देंगे और घटनाओं तथा कहानियों के प्रसंग में संकेत द्वारा बतायेंगे कि हमने अपनी इस रचना में मगरिब के ही क़बीलों एवं क़ौमों तथा राज्य का विशेष रूप से उल्लेख किया है, न कि समस्त संसार का। इसका

१९४५-५१ ई० में क़ाहेरा (केअरो) से प्रकाशित हो चुका है। दूसरा ग्रंथ 'अल मसालिक वल ममालिक' अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

कारण यह है कि हमें पूर्व के देशों एवं क़ौमों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है और जिन बातों की हमें सूचना है उनसे उन बातों का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता जिन्हें हम आवश्यक समझते हैं।[1] मसऊदी को इन बातों का ज्ञान, जैसा कि उसने अपने ग्रंथ में लिखा है, अपनी लम्बी चौड़ी यात्राओं के कारण प्राप्त हो गया था। इस पर भी वह उचित रूप से मग़रिब का वर्णन नहीं कर सका है.....।[2]

१. इब्ने ख़लदून ने सम्भवतः शीघ्र ही अपनी योजना बदल दी, कारण कि उसने पूर्व के देशों का भी अपने इतिहास में विस्तार-सहित उल्लेख किया है।

२. यहाँ उन स्वरों के, जो अरबी नहीं हैं, लिखने की विधि इब्ने ख़लदून ने बतायी है। इस अंश का अनुवाद नहीं किया गया।

इब्ने खलदून का चित्र

(एक अन्य मिस्री कलाकार द्वारा)

किताबुल इब्र

प्रथम भाग

सभ्यता की विशेषताएँ, बदवी और स्थिर जीवन-क्रम, एक-दूसरे का पारस्परिक प्रभुत्व, जीविकोपार्जन के साधन, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान तथा सभ्यता को प्रभावित करनेवाली अन्य बातें एवं उनके कारण

प्रस्तावना

इतिहास एवं सत्य

इतिहास वास्तव में ऐसी सूचना है जिससे उस मानवीय संगठन का, जिसे हम संसार की सभ्यता कहते हैं, ज्ञान प्राप्त होता है। सभ्यता की विभिन्न दशाओं के स्वाभाविक परिवर्तन का भडार भी इतिहास ही है। पारस्परिक विरोध, मित्रता, पक्षपात, सगठन तथा विभिन्न मनुष्यों का एक-दूसरे पर प्रभुत्व एवं उसके स्वाभाविक प्रभाव के नाना प्रकार के रूप, राज्यों तथा सल्तनतों की स्थापना, उनकी विभिन्न श्रेणियाँ, उद्योग धंधे, व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल अथवा वे बातें जो ससार की सभ्यता से स्वभावतः उत्पन्न होती हैं तथा जिन पर मनुष्य अपने दैनिक जीवन में आचरण करने का प्रयत्न किया करता है, इतिहास द्वारा ही ज्ञात होती हैं। जब इतिहास सूचनाओं का नाम है, तो सूचनाएँ झूठ एवं असत्य भी हो सकती और होती हैं अतः इतिहास में भी झूठ एव त्रुटियाँ प्रविष्ट हुई और होती रहती हैं। इसके कई कारण हैं——

(१) विचारों एव विश्वासों का वैभिन्य तथा पक्षपात की भावना। मनुष्य की यह स्वाभाविक विशेषता है कि वह अपने सरल स्वभाव के कारण जो समाचार सुनता है उसे आलोचनात्मक दृष्टि से जाँचता और परखता है। यहाँ तक कि सत्य को वह झूठ से पृथक् कर लेता है। परन्तु जब वह किसी विचार अथवा विश्वास का पहले से ही अनुयायी होता है तो अपने विचार एवं विश्वास के प्रति पक्षपात के कारण तदनुकूल सूचनाओं को तत्काल स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार इन विचारों एव पक्षपातों के कारण वह शोध एवं आलोचना से वचित रह जाता है। वह झूठ को स्वीकार कर लेने एवं उसे दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए विवश होता है।

(२) अधिकांश लोग सूचनाओं एवं समाचारों का विवरण देनेवालों को विश्वस्त समझ लेते है, हालाँ कि उनपर विश्वास करने के लिए उनके विषय में खोज एवं छानबीन परमावश्यक होती है।[1]

१. अल जिरह वत्तादील द्वारा सूचना देनेवालों एवं रवायत बयान करनेवालों के विषय में छानबीन की जाती है।

(३) अधिकांश सूचना तथा समाचार देनेवाले अपनी देखी-भाली अथवा सुनी-सुनाई बातों का वास्तविक उद्देश्य समझने में असावधानी बरतते हैं और केवल अपनी व्यक्तिगत कल्पनाओं के आधार पर समाचारों का विवरण दे देते हैं और इस प्रकार भूलें कर जाते हैं।

(४) कभी-कभी सत्यता का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। यह भ्रम कई प्रकार से उत्पन्न होता है। अधिकतर तो इस प्रकार कि समाचारों का विवरण देनेवालों को विश्वस्त समझ लिया जाता है। कभी इस प्रकार की वर्णित घटनाओं की प्रत्यक्ष रूप में घटनेवाली घटनाओं से तुलना नहीं की जाती, ताकि असत्य एवं काल्पनिक तत्त्वों से मुक्ति प्राप्त हो सके।

(५) अधिकांश लोग प्रभावशाली एवं सम्मानित लोगों की प्रशंसा करके अथवा उनकी यशोगाथा गाकर उनके विश्वासपात्र बनने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रशंसा या यशोगाथा के आधार पर बहुत से समाचार जनश्रुति के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। कारण यह है कि मनुष्य स्वभावतः चाटुकारी पसन्द करता है और लोग उच्च श्रेणी एवं सम्मानित पद प्राप्त करने की आकांक्षा किया करते हैं तथा वास्तविक गुण एवं श्रेष्ठता की खोज नहीं करते।

(६) सबसे बड़ा कारण तो यह है कि लोग घटनाओं एवं विभिन्न परिस्थितियों से स्वाभाविक रूप में परिचित नहीं होते। संसार में जितनी घटनाएँ घटती है उनका अपनी विशेष परिस्थितियों एवं वातावरण के कारण एक पृथक् स्थान हुआ करता है। यदि श्रोता संसार में घटनेवाली घटनाओं की उस परिस्थिति तथा वातावरण से परिचित है तो उसका यह ज्ञान समाचारों की सत्यता की छान-बीन में उसका सहायक होगा। समाचारों की परीक्षा के लिए यह नियम बड़ा लाभदायक है। कभी-कभी श्रोता कुछ असम्भाव्य घटनाओं को सत्य मानकर उनका प्रचार करने लगते हैं और फिर अन्य लोग भी उनका अनुसरण प्रारम्भ कर देते हैं।

इसी प्रकार के प्रचार से प्रभावित होकर मसऊदी ने सिकन्दर के विषय में लिखा है कि जब समुद्री जानवरों ने उसे इसकन्दरिया[1] के निर्माण से रोका तो उसने शीशे का एक बक्स बनवाया और उसमें बैठकर समुद्र के धरातल में पहुँच गया। वहाँ उसने उन शैतानों[2] के, जो उसे मिले, चित्र बना लिये। तदुपरान्त उसने चित्रों के

१. अलेकजेंड्रिया।
२. भूत-प्रेत से तात्पर्य है।

अनुसार मूर्त्तियाँ बनवाकर उन्हें नगर की नींव के समक्ष स्थापित करा दिया। जब शैतान निकले तो वे उन मूर्त्तियों को देखकर भाग गये और सिकन्दर ने नगर का पूर्ण रूप से निर्माण करा दिया।

उसने जो बहुत-सी झूठी-सच्ची कहानियाँ लिखी हैं उनमें यह कहानी बड़ी लम्बी-चौड़ी है। इस घटना का होना अनेक कारणों से असम्भव है। सर्वप्रथम शीशे का बक्स बनना और उसका लहरों की थपेड़ों से सुरक्षित रह जाना किस प्रकार सम्भव है? दूसरी बात यह है कि बादशाह लोग अपने आपको ऐसे ख़तरों में नहीं डाला करते। इस प्रकार खतरे में पड़ना अपने आपको खुल्लम-खुल्ला मौत के मुँह में डालना है और अपने राज्य को अन्य लोगों के हाथों में चले जाने की अनुमति दे देना है। तीसरे जिन्नातों[1] का कोई रूप नहीं होता। वे अपने इच्छानुसार जिस रूप में चाहे प्रकट हो सकते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि उनके कई सिर होते हैं तो इसका अर्थ यह है कि वे बड़े भयानक होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उनके वास्तव में अनेक सिर होते ही हैं। ये सब बातें इस कहानी को असम्भव, असत्य एव निराधार बना देती हैं। बुद्धिगम्य न होनेवाली सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जब एक व्यक्ति बक्स में बन्द होकर जल में प्रविष्ट होगा तो उसके लिए साँस लेना कठिन हो जायगा और उसकी वहीं मृत्यु हो जायगी......।[2]

इसी प्रकार की बहुत सी झूठी कहानियाँ इतिहास में मिलती हैं जिनकी परीक्षा सभ्यता की स्वाभाविक एवं प्राकृतिक दशा के ज्ञान से हो सकती है। इनकी सत्यता की छान-बीन भी इसी आधार पर की जा सकती है, अपितु हमारी दृष्टि से समाज के स्वभाव की जानकारी से घटनाओं के विवरण देनेवालों के झूठ-सच का पता भली-भाँति लगाया जा सकता है। कारण कि विवरण देने वालों की सत्यता का पता तो उसी समय चल सकता है जब कि सर्वप्रथम समाचार के तथ्य का पता लग जाय कि उसका घटना सम्भव भी है अथवा नहीं। यदि उसका घटना ही सम्भव न हो तो विवरण देनेवालों के विषय में छानबीन करना आवश्यक नहीं।

शोध में रुचि रखनेवालों के लिए यह उचित नहीं कि घटनाओं के विवरण के शब्दों को बदलकर उनकी ऐसी व्याख्या की जाय जो बुद्धि-संगत न हो। इस प्रकार की

१. एक प्राणी जिसकी उत्पत्ति अग्नि से मानी जाती है और वह दिखाई नहीं देता।
२. इसके बाद इसी प्रकार की कुछ अन्य असम्भव एवं निरर्थक कहानियों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करके उनकी आलोचना की गयी है।

व्याख्या एवं वाद-विवाद शरा[1] सम्बन्धी सूचनाओं के विषय में उचित भी हो सकता है, कारण कि शरा सम्बन्धी सूचनाएँ अधिकांशतः धार्मिक आदेशों एवं आवश्यकताओं के सम्बन्ध में होती हैं और शरा के निर्माता[2] ने उन पर आचरण करनां परमावश्यक बताया है। इस प्रकार की व्याख्याओं द्वारा उन आदेशों की सत्यता के विषय में पुष्टि हो जाती है। किन्तु जो समाचार साधारण घटनाओं के विषय में हों उनके लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी प्रकृत दशा में हों। जब उनका स्वाभाविक दशा में होना स्वीकार कर लिया जाय तब इस बात का पता लगाना चाहिए कि विवरण देनेवाला सच्चा है या झूठा। दोनों[3] में यह भी अन्तर है कि आदेश के पालन का लाभ आदेश द्वारा ही प्राप्त हो जाता है, किन्तु समाचारो से केवल उनके समाचारत्व के कारण ही कोई लाभ तब तक नही उठाया जा सकता जब तक वे अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत न हों।

जब सच एवं झूठ तथा खरे और खोटे की परीक्षा के लिए यह कसौटी बन गयी तो प्राप्त सूचनाओं की जाँच करते समय तत्कालीन मानवसमाज की दशा को गहराई से देखना अनिवार्य हो जाता है। हमे इस बात का पता लगाना चाहिए कि समाज की विभिन्न स्थितियाँ कौन-कौन सी होती हैं और वे क्या सामाजिक भावनाओं के अनुकूल भी हैं अथवा नही। कौन-सी ऐसी स्थिति है जो उन परिस्थितियों में उत्पन्न ही नही हो सकती। हमें उन परिस्थितियों का पता लगाना चाहिए जो सभ्यता की सारभूत हैं और जो उसकी स्वाभाविक दशा के लिए परमावश्यक हैं। हमें उन बातों का भी ज्ञान होना चाहिए जिनका सभ्यता से कोई विशेष सम्बन्ध नही और जो अकस्मात् ही उससे सम्बद्ध हो गयी-सी प्रतीत होती हैं। यदि हम ऐसा करते हैं तो समाचारों के सत्य अथवा असत्य, झूठा या सच्चा होने के सम्बन्ध में हमें एक कसौटी प्राप्त हो जायगी, जिस पर कसकर तर्क-वितर्क करके समाचारों के तथ्य की पुष्टि की जा सकेगी और संदेह का कोई स्थान न रहेगा। तदुपरान्त जब हम सभ्यता संबंधी किसी घटना के विषय में सुनेंगे तो उक्त सिद्धान्त एवं नियम के आधार पर हम यह निर्णय कर सकेंगे कि वह समाचार स्वीकार करने योग्य है अथवा रद्द करने योग्य। या यों कहना चाहिए कि इतिहासकारों को यह एक ऐसा निश्चित मापदण्ड प्राप्त हो जायगा जिसके

१. शरीअत अथवा इस्लाम के धार्मिक नियम।
२. हज़रत मुहम्मद।
३. साधारण घटनाओं तथा शरा के आदेशों में।

द्वारा वे उन समाचारों तथा घटनाओं के, जो उन्हें प्राप्त होंगी, तथ्य का पता लगा सकेंगे। सत्य तो यह है कि इस ग्रंथ के इस भाग की रचना का वास्तविक उद्देश्य यही है। यह एक पृथक् ज्ञान के समान है। इसका विषय सभ्यता एवं मानवसमाज और तत्संबंधी अनेक समस्याएँ है।

यह बात भली-भाँति स्पष्ट होनी चाहिए कि घटनाओं का इस प्रकार का तर्क-वितर्कपूर्ण विवेचन एक विचित्र एवं नवीन बात है, जिससे नाना प्रकार के लाभ होते है और इसका ज्ञान बड़ी कठिनाई, मनन एवं सोच विचार के उपरान्त उत्पन्न होता है। इसको न तो व्याख्या-विषयक ज्ञान कह सकते है और न राजनीति-विषयक। क्योंकि व्याख्या का उद्देश्य लोगों को संतुष्ट करना होता है। इसकी सहायता से लोगों को किसी मत को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के लिए तैयार किया जाता है। चरित्र एवं बुद्धिमत्ता पर आधारित शासन प्रबंध के ज्ञान को राजनीति कहते है, उस पर आचरण करके सर्वसाधारण ऐसे सन्मार्ग पर चलने लगते है जिससे मानव की रक्षा एवं वैयक्तिक जीवन की स्थिरता की व्यवस्था हो जाती है।

ऐतिहासिक ज्ञान की विषयवस्तु उपर्युक्त दोनों ज्ञानों से पृथक् है। संक्षेप में यह एक मौलिक ज्ञान है और मुझे जहाँ तक ज्ञात है, किसी ने इस विषय पर इस प्रकार अभी तक कुछ नही लिखा है। मै यह नही कह सकता कि इस उपेक्षा का क्या कारण है? सम्भव है कि इस विषय पर किसी ग्रन्थ की रचना की गयी हो और उसमें उचित रूप से इसकी व्याख्या भी हो, किन्तु वह हमें प्राप्य नही। कारण कि ज्ञातव्य विषयों की संख्या बेहद बढ़ गयी है और मानवजाति में बहुत बड़े-बड़े दार्शनिक हो चुके है। जो ज्ञान हमें प्राप्त हो चुका है, वह उस ज्ञान की अपेक्षा, जो हमें अभी तक नहीं प्राप्त हुआ, बहुत कम है। उदाहरणार्थ फ़ारस की उन विभिन्न विद्याओं का पता नहीं जिन्हे हज़रत उमर ने ईरान की विजय के उपरान्त नष्ट कर दिया। इसी प्रकार कल्दानियों[1], बिबलोनिया एवं सुरयानियों[2] की वे विद्याएँ एवं अवशेष जिन्हें काल-चक्र ने नष्ट कर दिया है, अब उपलब्ध नहीं है। आज क़िब्तियों[3] एवं उनसे पहले के लोगों के ज्ञान के विषय में कौन जानता है? हमे केवल यूनान वालों के ज्ञान का पता चल सका है और वह भी मामून

१. कल्डियन्स।
२. शाम वालों।
३. काप्टस्।

के कारण, जिसे इन विषयों के ग्रन्थों के अरबी भाषांतर तैयार कराने में बड़ी रुचि थी। उसने बहुत बड़ी संख्या में अनुवाद करनेवाले एकत्र किये थे और अपार धन इस काम पर व्यय किया था। अन्य विषयों के ज्ञान का हमे पता ही क्या हो सकता है।

क्योकि प्रत्येक ज्ञान की वास्तविकता का आधार कोई विशिष्ट प्रकृत वस्तु होती है, अतः इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी विशिष्ट प्रकृत वस्तु की स्थिति के विषय मे तर्क-वितर्क किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक विषय एव तथ्य से सम्बन्धित एक विशेष ज्ञान सकलित हो सकता है, और यह बात असम्भव नही कि दार्शनिकों ने इस विषय पर रचनाएँ की हों और शोध कार्य किये हो। किन्तु हमारे विषय का क्षेत्र केवल ऐतिहासिक घटनाओ की सत्यता की खोज तक सीमित है। यह विषय यद्यपि बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु केवल ऐतिहासिक घटनाओं एव सूचनाओं से, जिनको अधिक महत्त्व नही दिया जाता, सम्बद्ध होने के कारण सम्भव है इसकी उपेक्षा की गयी हो और इसे महत्त्व न दिया गया हो। वास्तविक बात का ज्ञान तो केवल ईश्वर को ही है। "और तुम्हे बहुत कम ज्ञान प्रदान हुआ है।"[1]

इसी ज्ञान की, जो इस समय विवादास्पद है, अनेक ऐसी समस्याएँ है जिनका प्रयोग विद्वान् लोग अपने तर्क मे किया करते है और वे इस योग्य है कि उन्हें इस ज्ञान के उद्देश्यों एव विषयों मे सम्मिलित किया जाय। उदाहरणार्थ दार्शनिक एव विद्वान् लोग नबियों की आवश्यकता को प्रमाणित करने के लिए कहते है कि क्योंकि स्वाभाविक रूप से मनुष्य का जीवन एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर है, अतः उसके सफल सचालन के लिए एक न्यायकारी शासक का होना परमावश्यक है। फ़िक़ह[2] के सिद्धान्तों में भाषा की आवश्यकताओं को प्रमाणित करने के लिए कहा जाता है कि क्योंकि मनुष्य एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर रहता है और चूंकि वह स्वभावतः सामाजिक जीवन व्यतीत करने का आदी है, अतः उसे अपनी हार्दिक इच्छाओं को व्यक्त करने के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जो सुगमतापूर्वक उसकी इच्छाओं एवं उद्देश्यों को दूसरों तक पहुँचा सके।[3] फ़क़ीह[4] लोग यह सिद्ध करने के लिए कि शरा के आदेशो के विशेष

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. इस्लाम का धर्म-विधान।
३. अल-आमिदी ने, "अल एहकाम फ़ी उसूल अल एहकाम" (क़ाहेरा से १९१४ में प्रकाशित) में भाषा-संबंधी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।
४. फ़िक़ह-वेत्ता।

उद्देश्य होते हैं, इस बात का उल्लेख करते हैं कि व्यभिचार एक ऐसा कुकर्म है जिससे लोगों के वंश संकरित हो जाते हैं और उसके कारण मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार वे यह भी कहते हैं कि हत्या करना भी मानव के लिए हानिकारक है। अत्याचार आबादियों को उजाड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसी प्रकार वे उन सब विभिन्न शरा-सम्बन्धी आदेशों का उल्लेख करते हैं जिनका कोई-न-कोई विशेष उद्देश्य होता है। सभी का अन्तिम लक्ष्य यह होता है कि सभ्यता की रक्षा हो और मनुष्य शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। इस प्रकार अन्य ज्ञानों मे भी समाजशास्त्र के विभिन्न अगों पर तर्क-वितर्क किया गया है।

इसी प्रकार इसकी कुछ समस्याएँ हमको किन्ही-किन्ही विद्वानों के विभिन्न कथनों में भी मिल जाती है, किन्तु वे किसी एक स्थान पर पूर्ण रूप से सकलित नही। उदाहरणार्थ मसऊदी उल्लू की कहानियो मे मोब्रेज[1] बहराम बिन बहराम के कथन की नकल करते हुए लिखता है कि "हे बादशाह! राज्य के गौरव को शरीअत के आदेशों के प्रचार, ईश्वर की आज्ञाकारिता और उसके आदेशों के पालन द्वारा उन्नति प्राप्त होती है। बिना राज्य एव देश के शरीअत का कोई अस्तित्व नही रह सकता। देश का सम्मान वहाँ के निवासियो के हाथ मे है और लोगों का अस्तित्व एमारह[2] के कारण है। धन-सम्पत्ति एमारह से प्राप्त होती है। एमारह न्याय पर आधारित है। न्याय एक तराजू है जिसे ईश्वर ने अपने प्राणियों के बीच स्थापित किया है। इसका अस्तित्व एव स्थायित्व बादशाह के हाथों में है।"

नौशीरवाँ[3] के कथन भी इसी से मिलते-जुलते हैं। वह कहता है कि "राज्य सेना के कारण स्थापित रहता है और सेना धन से, धन कर से तथा कर एमारह से और एमारह न्याय से और न्याय उचित पदाधिकारियों से। पदाधिकारियों की योग्यता वजीरो के उचित व्यवहार पर निर्भर होती है। इन सबसे बढ़कर तो यह है कि बादशाह अपनी प्रजा की देख-रेख करे और उसमे उसके पालन-पोषण

१. जरथुष्ट्री पुजारी।
२. "आबादी में कृषि आदि द्वारा वृद्धि करना।" अल-मुबश्शिर बिन फ़ातिक की "मुख़्तारुल हिकम" में है, "यदि कोई बादशाह यह सोचे कि वह अन्याय द्वारा धन-सम्पत्ति का भंडार भर सकता है तो वह भूल करता है, कारण कि धन-सम्पत्ति कृषि द्वारा ही एकत्र हो सकती है।" (एमारत-अल अर्ज़)
३. प्रसिद्ध सामानी बादशाह ख़ुसरो प्रथम, ५३१—५७९ ई०।

एवं उसे सन्मार्ग पर स्थिर रखने की पूरी क्षमता हो, ताकि वह अपनी प्रजा पर पूर्ण प्रभुत्व रख सके, न कि उसकी प्रजा उस पर अधिकार प्राप्त कर ले।"

अरस्तू के एक प्रचलित राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ में भी इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है, किन्तु उसने इस विषय में अन्य बातें मिलाकर इसे अधूरा छोड़ दिया है। उसका तर्क भी अपूर्ण है। इस ग्रन्थ में उसने उन्हीं कथनों की चर्चा की है जिनका उल्लेख हम मोबेज़ों एवं नौशीरवाँ के सम्बन्ध में कर चुके हैं। इसमें ध्यान देने योग्य यह विवरण है[1] कि "संसार एक उद्यान है जिसकी सिचाई राज्य से होती है। राज्य एक शक्ति है जिस पर धर्म का जीवन-मरण आधारित है। धर्म एक राजनीति है जिसकी बागडोर बादशाह के हाथ में है और बादशाह उस व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है जो सेना की सहायता पर निर्भर है। सेना उन सहायकों के समूह का नाम है जिनका पालन-पोषण धन द्वारा होता है। धन वह कर है जो प्रजा से एकत्र किया जाता है। प्रजा उन लोगों के समूह को कहते हैं जो न्याय के आधार पर जीवित रहता है। न्याय वह उत्तम वस्तु है जो संसार के अस्तित्व का कारण है।" फिर वह उसी बात का उल्लेख करने लगता है जिसकी उसने प्रारम्भ में चर्चा की थी। मानो दर्शन एवं राजनीति सम्बन्धी आठों वाक्य एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हों और प्रत्येक का अन्तिम भाग, दूसरे के प्रारम्भिक भाग से सम्बद्ध है। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसे वृत्त का रूप धारण कर लिया है जिसका छोर निश्चित नहीं। अरस्तू को अपने इस वाक्य पर बड़ा गर्व है। वह कहता है कि यह वाक्य लाभों से परिपूर्ण है।

पाठकगण जब हमारे ग्रन्थ में राज्य एवं देश सम्बन्धी अध्याय का आलोचनात्मक अवलोकन करेंगे और जो कुछ हमने अपने विचार एव खोज के आधार पर लिखा है, उसका वे ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो इसमें उन्हें उपर्युक्त विवरण की व्याख्या एवं

१. अरस्तू का कथित राजनीति सम्बंधी ग्रंथ, जिसकी इब्ने ख़लदून ने चर्चा की है, "सिर्रुल असरार" है। कहा जाता है कि यह्या बिन अल बितरीक़ ने इसका यूनानी भाषा से अरबी में अनुवाद किया। यह ग्रन्थ अब्दुर्रहमान बजावी ने क़ाहेरा से १९५४ ई० में प्रकाशित कर दिया है। इसके अंग्रेज़ी एवं फ़्रांसीसी भाषांतर भी तैयार हो गये हैं। अनेक अरबी भाषा के विद्वानों ने उपर्युक्त वाक्य को अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है।

इस संक्षिप्त वर्णन का सविस्तर उल्लेख मिलेगा। तब उन्हें प्रत्येक का तर्क-पूर्ण प्रमाण मिलता जायगा। यह ज्ञान हमे ईश्वर ने अरस्तू की शिक्षा एव मोबेजो के विवरण के अध्ययन के बिना ही प्रदान किया है।

इसी प्रकार राजनीति के सम्बन्ध मे जिन विषयो का हमारी पुस्तक में उल्लेख किया गया है, वे इब्ने मुकफ़्फ़ा[1] के दर्शनशास्त्र सबधी ग्रथों एव उसकी कुछ अन्य पुस्तकों मे भी पाये जाते हैं। किन्तु वे सब तर्क पर आधारित न होने के कारण कहानियों एवं काव्यमय प्रबन्धो के समान हैं। क़ाज़ी अबू बक्र तुरतूशी[2] ने भी यद्यपि इस प्रकार के विषयों का अपने "सिराजुल मुलूक" नामक ग्रन्थ मे उल्लेख किया है और उसके अध्यायों एवं विषयों का विभाजन तथा क्रम भी हमारे ग्रन्थ की तरह ही है। किन्तु न तो उसका वर्णन ही ठीक है न क्रम और न विषय ही पर्याप्त है और न उसने स्पष्ट तर्क एवं प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उसने प्रत्येक समस्या का उल्लेख अलग-अलग अध्यायो मे किया है और प्रत्येक अध्याय मे बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं और कहीं-कहीं फ़ारस के विभिन्न दार्शनिकों, बुजुर्चमेहर[3] एव मोबेजो के कुछ दार्शनिक कथन लिख दिये है या भारतवर्ष के दार्शनिकों, दानियाल[4] एवं हुरमुज[5] के कथन उद्धृत कर दिये है। समस्याओं के सम्बन्ध में उसने सतोपजनक छानबीन नही की है, न उचित तर्क के आधार पर उनके समाधान ही प्रस्तुत किये है। अपितु उसके ग्रन्थ मे विभिन्न कहानियाँ एव घटनाएँ भरी पड़ी है और उसे किसी शिक्षा एव प्रवचन

१. अब्दुल्लाह इब्ने अल-मुक़फ़्फ़ा (मृत्यु १४२ हि०। ७५९–६० ई०)।
२. मुहम्मद बिन अल-वलीद तुरतूशी का जन्म लगभग ४५१ हि० १०५९ ई० तथा मृत्यु ५२० अथवा ५२५ हि० (११२६ अथवा ११३१ ई०) में हुई।
३. ख़ुसरो प्रथम नौशीरवाँ का वज़ीर। उसे ईरान के दर्शन एवं बुद्धि का कोश समझा जाता है। वह काफ़ी वृद्ध हो जाने के उपरान्त ५८० तथा ५९० ई० के मध्य मृत्यु को प्राप्त हुआ।
४. डैनियल, एक पैग़म्बर जिनके विषय में मुसलमानों का विश्वास कि स्वप्नों की व्याख्या करने में दक्ष थे। क़ुरान शरीफ़ में इनका उल्लेख नहीं किन्तु "क़िससुल अम्बिया" (नबियों की कहानियों) में इन्हें बख़्ते नस्र अथवा नेबुशावनिज़ार का समकालीन बताया गया है।
५. सम्भवतः सासानी बादशाह हुरमुज़ प्रथम जो अपने पिता शाहपुर प्रथम के बाद २७२ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसकी मृत्यु २७३ ई० में हुई।

सम्बन्धी ग्रन्थ से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक के हृदय में तो ग्रन्थ का उद्देश्य पूर्ण रूप से स्पष्ट था, किन्तु वह न तो उसे शब्दों द्वारा व्यक्त ही कर सका, न वह उसकी सब समस्याओं को भली-भाँति समझ ही सका। किन्तु मेरा तो ईश्वर ने ही परोक्ष रूप से पथ-प्रदर्शन किया और ऐसा ज्ञान प्रदान कर दिया कि मैं इस ग्रन्थ के प्रत्येक अंग को स्पष्ट कर सका। यदि मेरे प्रयत्न से ये समस्याएँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हो सकीं और मेरे द्वारा दिये गये उदाहरणों एवं तर्कों द्वारा उनकी पूरी व्याख्या हो सकी, तो इसे ईश्वर की देन ही समझना चाहिए। यदि इन विषयों की व्याख्या में मुझसे भी भूल हो गयी हो और समस्याएँ परस्पर एक-दूसरे मे मिलजुल गयी हों, तो शोधकार्य मे रुचि रखनेवाले पाठक इनमें संशोधन कर लेंगे। मेरे लिए यही सम्मान पर्याप्त है कि मैंने एक निर्धारित मार्ग पर चलकर उनका पथ-प्रदर्शन कर दिया। "ईश्वर अपने प्रकाश से जिसका पथ-प्रदर्शन करना चाहता है, करता है।"[1]

अब हम अपने इस ग्रन्थ में सभ्यता की उन समस्याओं की व्याख्या करेंगे जिन्हें मनुष्य को राज्य-व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल एवं सामाजिक जीवन में सामना करना पड़ता है। यह वर्णन इस प्रकार तर्कपूर्ण होगा कि सर्वसाधारण एवं विशेष व्यक्तियों के ज्ञान के अनुसार जो अनुसंधान होगा वह सामने आ जायगा और भ्रम एवं शंकाओं का निराकरण हो जायगा।

हमारा मत है कि मनुष्य कुछ विशेषताओं के कारण अन्य पशुओं से पृथक् है।

(१) ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल के, जो उसे अपनी तर्क-शक्ति द्वारा प्राप्त होते हैं, कारण वह अन्य पशुओं से पृथक् तथा समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हो जाता है।

(२) उसे एक न्यायकारी शासक एवं प्रभुताशाली बादशाह की आवश्यकता रहती है, कारण कि उसके बिना मनुष्य का अस्तित्व सम्भव नही होता। यद्यपि कुछ जानवरों के विषय में भी कहा जाता है कि वे भी बादशाही प्रभुत्व के अधीन जीवन व्यतीत करते हैं, उदाहरणार्थ मधु-मक्खियाँ अथवा टिड्डियाँ, किन्तु उनका पथ-प्रदर्शन दैवी प्रेरणा से होता है,जब कि मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन उनकी चेतना एवं बुद्धि करती है।

(३) मनुष्य जीविकोपार्जन के लिए प्रयत्न करता है और उसके साधन जुटाता है, कारण कि ईश्वर ने उसमें भोजन खोजने की वृत्ति एवं आवश्यकता की नैसर्गिक प्रवृत्ति उत्पन्न की है। इसके द्वारा वह अपना जीवन निर्वाह करता है। भोजन की

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

इच्छा एवं खोज के मार्ग भी मनुष्य को ईश्वर ने ही दिये हैं। "उसने[1] समस्त वस्तुओं को प्राकृतिक रूप दिया, तदुपरान्त उनका पथ-प्रदर्शन किया[2]।"

(४) सभ्यता—मनुष्य नगर अथवा किसी स्थान पर बस जाने का आदी है। वह अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के कारण एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर रहता है। वह अपने साथियों से प्रेम करता है और भोजन की खोज में एक-दूसरे की सहायता करता रहता है। इसका सविस्तर उल्लेख हम बाद में करेंगे। सभ्यता के दो रूप होते हैं। जो सभ्यता घाटियों, पर्वतों, रेगिस्तानों, चटियल मैदानों एवं अन्य हरे-भरे स्थानों में पायी जाती है वह बदवी कहलाती है। जो आबादियाँ नगरों, क़स्बों, ग्रामों एवं क़िलों में होती हैं और जिनकी रक्षा दीवारों द्वारा की जा सकती है वे हज़री[3] कहलाती हैं। इन दोनों स्थितियों में मनुष्यों को सामाजिक संगठन की दृष्टि से कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः हमने इस विषय को छः अध्यायों में विभाजित किया है—

(१) मनुष्यों की सभ्यता का साधारण उल्लेख एवं उसके विभाजन, उन क्षेत्रों का जो सभ्य हैं वर्णन।

(२) बदवी सभ्यता, क़बीले एवं वहशी क़ौमें।

(३) सल्तनत एवं खिलाफ़त तथा सुल्तानों के विभिन्न अधिकारों का उल्लेख।

(४) हजरी सभ्यता, देश तथा नगर।

(५) कला-कौशल, जीविकोपार्जन के साधन, व्यवसाय, उनके साधन इत्यादि।

(६) ज्ञान-विज्ञान तथा उनका अध्ययन एवं प्राप्ति।

हमने बदवी सभ्यता का सर्वप्रथम उल्लेख इस कारण किया है कि उसे अस्तित्व में भी प्राथमिकता प्राप्त है। राज्य के अधिकारों को इसी कारण क़स्बों एवं नगरों पर प्राथमिकता प्रदान की गयी है। व्यवसाय का उल्लेख ज्ञान-विज्ञान के पूर्व इस कारण किया है कि व्यवसाय नैसर्गिक आवश्यकता है और ज्ञान उन्नति एवं सुगमता का साधन है। कला-कौशल का वर्णन हमने व्यवसाय के साथ इस कारण किया है कि कला-कौशल कुछ कारणों से तथा सभ्यता के दृष्टिकोण से व्यवसाय के अधीन ही है।

१. ईश्वर ने।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
३. अचल, एक स्थान पर स्थायी रूप से रहनेवाली, नगरों की सभ्यता एवं संस्कृति "हज़री" सभ्यता तथा संस्कृति कहलाती है।

अध्याय १

मानव-सभ्यता

पहली प्रस्तावना

मानव-सभ्यता का संक्षिप्त उल्लेख

मानवों का सामाजिक संगठन परमावश्यक एवं अनिवार्य है। दार्शनिक अपने शब्दों मे इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि "मनुष्य सामाजिक प्राणी है" अर्थात् मनुष्य के लिए अपने साथियों से मिल-जुलकर रहने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही। दार्शनिक लोग इसे मदीना[1] और हम इमरान कहते हैं।

इस तथ्य की व्याख्या इस प्रकार है कि ईश्वर ने मनुष्य को स्वाभाविक रूप से ऐसा बनाया है कि उसका जीवन एवं अस्तित्व भोजन के बिना सम्भव नही। उसने उसे ऐसी नैसर्गिक शक्ति प्रदान की है जिससे वह अपने भोजन की खोज कर सके तथा उसकी प्राप्ति के साधन जुटा सके। किसी अकेले मनुष्य के लिए अपने भोजन की समस्त आवश्यकताओं का जुटाना असम्भव है। उदाहरणार्थ उसके एक दिन के भोजन की समस्या को ही ले लिया जाय तो वह भी बहुत से पूर्व कार्यों के बिना उसके पेट तक नही पहुँच सकता। गेहूँ उपलब्ध होने पर भी पीसे, माँडे तथा पकाये बिना वह गेहूँ उसके भोजन के योग्य नही हो सकता। इन तीनों कार्यों में से प्रत्येक के लिए अनेक यत्रों की आवश्यकता होती है जो बहुत-सी कलाओं पर निर्भर हैं। लोहार, बढ़ई एवं कुम्हार के कार्यों की सहायता की उसे आवश्यकता पड़ेगी। यदि इसे भी स्वीकार कर लिया जाय कि मनुष्य इन झगड़ों में पड़े बिना केवल दाना चबाकर जीवन-निर्वाह कर सकता है, तब भी इन दानों को एकत्र करने के लिए अनेक कार्यों की आवश्यकता होगी। बोना, काटना, माँडना—इन कार्यों के सपादन हेतु, उसे पहले से भी अधिक यंत्रों एवं व्यवसायों की आवश्यकता होगी। अब यह स्पष्ट है कि ये सब अथवा इनमें से कुछ कार्य एक मष्नुय द्वारा कदापि पूरे नही हो सकते, अतः यह परमावश्यक है कि बहुत से मनुष्य एक स्थान पर एकत्र हों ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कार्य द्वारा सभी की जीविका के साधन जुटा सके। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग एवं

१. Polis, नगर।

प्रयत्न से कभी-कभी ये जीविका के साधन मनुष्यों की आवश्यकताओं से अधिक भी उपलब्ध हो जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी रक्षा हेतु अपने साथियों की सहायता पर निर्भर रहता है। ईश्वर ने जब मनुष्य को विशेष गुण एवं स्वभाव प्रदान किये और प्रत्येक के भाग्य को अलग-अलग निश्चित किया तो अधिकांश पशुओं को मनुष्य से अधिक बल प्रदान किया। उदाहरणार्थ घोड़े में मनुष्य से कहीं अधिक बल है। इसी प्रकार गधे एवं बैल में भी उससे अधिक शक्ति है। सिंह एवं हाथी में तो मनुष्य से कई गुना अधिक शक्ति है। क्योंकि पशु स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के शत्रु होते हैं, अतः ईश्वर ने प्रत्येक को एक विशेष शारीरिक अंग प्रदान किया, जिसके द्वारा वह अपने शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सके। मनुष्य को इसके स्थान पर बुद्धि प्रदान की और हाथ दिये गये। हाथ का यह कर्तव्य हुआ कि वह बुद्धि के बल पर कला-कौशल में भाग ले और मनुष्य के लिए ऐसे यंत्र तैयार करे जो पशुओं के समस्त रक्षा हेतु प्राप्त अंगों का मुक़ाबला कर सकें। भाले सींगों का काम देते हैं, तलवारों का प्रयोग फाड़नेवाले पंजों के स्थान पर होता है, ढालें कड़ी खालों के समान प्रतिरक्षा के काम आती हैं। इसी प्रकार अन्य अस्त्र-शस्त्र पशुओं की रक्षा हेतु प्राप्त अंगों के स्थान पर प्रयोग में आते हैं। जालीनूस[1] ने "मुनाफ़े-उल-आज़ा" नामक ग्रंथ में इस विषय पर प्रकाश डाला है। अतः मनुष्य अस्त्र-शस्त्र के बिना केवल अपने बल से पशुओं का मुकाबला नहीं कर सकता और वन्य पशुओं से तो वह मुक़ाबला कर ही नहीं सकता। अब जिस प्रकार मनुष्य पशुओं का मुकाबला करने में असमर्थ है उसी प्रकार उसके लिए प्रति-रक्षा के समस्त अस्त्र-शस्त्रों का अकेले तैयार करना असम्भव है, अतः यह आवश्यक है, कि वह अस्त्र-शस्त्र के बनाने मे अपने साथियों से सहायता ले।

संक्षेप में पारस्परिक सहयोग के बिना न तो मनुष्य को जीविका के साधन ही उपलब्ध हो सकते हैं और न वह अपना जीवन निर्वाह ही कर सकता है। ईश्वर ने उसके सर्जन मे ही भोजन को अनिवार्य कर दिया है। इसके अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र के बिना वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इनके अभाव में वह वन-पशुओं का भोजन बन जायगा और मानवसमाज का अन्त हो जायगा। जब उसे अपने साथियों का सहयोग न प्राप्त होगा तो वह भोजन भी न प्राप्त कर सकेगा और प्रतिरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र भी न उपलब्ध हो सकेंगे और न मानव शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगा।

१. गैलेन।

अतः मानव के लिए सामाजिक सगठन अनिवार्य है। इसके बिना न तो मनुष्य का अस्तित्व पूर्ण.हो सकेगा और न ससार की आबादी, तथा मनुष्य को अपना ख़लीफ़ा नियुक्त करने के सम्बन्ध में न ईश्वर की इच्छा ही पूरी हो सकेगी[१]। इसी संगठन का नाम हम समाज रखते हैं। ऊपर हमने सामाजिक सगठन-विषयक शास्त्र के विभिन्न विषयों का उल्लेख किया है। हमारे विवरण द्वारा इस शास्त्र की व्याख्या स्वतः हो जाती है। यद्यपि तर्क-शास्त्र में यह बात निश्चित हो चुकी है कि विद्वान् के लिए यह आवश्यक नही कि वह अपने ज्ञान से सम्बन्धित विषयों को प्रमाणित करने का प्रयत्न करे, किन्तु इसका निषेध भी नही है। "ईश्वर ही अपनी कृपा से सफलता प्रदान करता है।"

जब सब लोग उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगे और पृथ्वी मनुष्यों से बस गयी तो इस बात की आवश्यकता हुई कि उनमे कोई न्यायकारी शासक भी हो, जो किसी पर अत्याचार एव अन्याय न होने दे। कारण कि अत्याचार एवं अन्याय मनुष्य मे स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं। जिन शस्त्रों से वह अन्य पशुओं से अपनी रक्षा करता है, उनका प्रयोग वह अपने साथियों से अपनी रक्षा करने मे नही कर सकता, कारण कि वे तो सभी के पास हैं। अतः एक ऐसे व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता होती है जो एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य से रक्षा कर सके। मनुष्य के लिए इस प्रकार का न्यायकारी शासक मनुष्य के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? पशुओं मे न तो मनुष्यों के समान बुद्धि होती है और न तर्कशक्ति। अतः कोई ऐसा मनुष्य ही होना चाहिए जिसमे हर प्रकार से अन्य मनुष्यो पर प्रभुत्व प्राप्त हो और सभी उसकी आज्ञाओं का पालन करें, ताकि कोई किसी पर अत्याचार न कर सके। अतः मानव-समाज मे इस प्रकार का जो व्यक्ति होगा वही बादशाह अथवा सुल्तान कहलायेगा। इस तर्क से यह स्पष्ट हो जाता है कि बादशाह की उपस्थिति मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, जिससे उसे कदापि कोई हानि नही हो सकती। यद्यपि कुछ जानवरों में भी बादशाह होते हैं, जैसा कि दार्शनिको ने मधुमक्खी तथा टिड्डी के विषय मे बताया है, कारण कि वे सब

१. क़ुरान शरीफ़ के अनुसार ईश्वर ने जब हज़रत आदम को पैदा करना चाहा तो फ़िरिश्तों से कहा कि मैं पृथ्वी पर अपना ख़लीफ़ा बनाना चाहता हूँ। फ़िरिश्तों ने इसका विरोध करते हुए निवेदन किया कि हम तो उपासना करते ही हैं। ईश्वर ने उनकी बात यह कहकर रद्द कर दी कि "जो कुछ मैं जानता हूँ तुम नहीं जानते।" (सूरा २, आयत नं० ३०)

अपने नेता की आज्ञाकारी रहती है जो उनसे शरीर, बल एवं रूप-रंग में श्रेठ होता है। किन्तु जानवरों में यह बात केवल नैसर्गिक है और मनुष्यों की बादशाह सम्बन्धी आवश्यकता बुद्धि एवं तर्क के आधार पर होती है।

दार्शनिक लोग नबियों[१] की आवश्यकता को तर्क द्वारा प्रमाणित करते हुए कहते हैं कि उनकी आवश्यकता मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। वे उपर्युक्त तर्क में इतना और भी मिलाकर कहते है कि मनुष्य के लिए ऐसे न्यायकारी शासक का होना, जो दैवी नियमों का प्रचार कर सके, परमावश्यक है। अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो उस शरीअत को, जो ईश्वर की ओर से प्राप्त हुई है, मनुष्यों को सिखाए और उनसे उस पर आचरण कराए। इस प्रकार के व्यक्ति के लिए मनुष्य होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि वह व्यक्ति दैवी गुणों द्वारा शोभित हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति उसकी बातों को सहर्ष स्वीकार कर ले और बिना किसी बहाने अथवा तर्क-वितर्क के शरीअत के नियम मनुष्यों पर लागू हो जायँ। किन्तु दार्शनिको का यह कथन तर्क द्वारा प्रमाणित नही हो सकता, कारण कि मनुष्यों का अस्तित्व एव जीवन उन नियमो द्वारा भी सुरक्षित रह सकता है जिनका आविष्कार वे अपनी ओर से करते है अथवा "असबियत[२]" के बल पर वे अपने विशेप ढग से लोगो को अपने वश मे तथा अपना आज्ञाकारी बना लेते है। इसमे कोई सन्देह नही कि किताब वालों[३] एव नबियो के अनुयायियो की सख्या उन मजूसियों[४] से, जिनके पास कोई दैवी पुस्तक नही, कही कम है और संसार में बिना किताब वालो[५] की सख्या ही अधिक है। वे केवल जीवित ही नही अपितु बड़े बड़े राज्यों का शासन-प्रबन्ध कर रहे है। उत्तरी एवं दक्षिणी देशो मे उनके राज्य स्थापित है, यद्यपि उनका कोई नबी नहीं जिसका वे अनुसरण

१. पैग़म्बरों, ईश्वर के दूतों।
२. क़बीलों का पारस्परिक प्रेम अथवा संगठन।
३. यहूदी तथा ईसाई, जिन्हें ईश्वर की ओर से उसी प्रकार नबियों द्वारा दैवी आदेश प्राप्त होते रहते थे जिस प्रकार मुसलमानों को। इनके धर्म-ग्रंथों के नाम क्रमशः ज़ुबूर, तौरैत एवं इंजील हैं।
४. मैगियन्स अथवा ज़रदुश्ती (ज़ोरोएस्ट्रियन्स)।
५. ऐसे धर्म जिनके पथप्रदर्शन हेतु ज़ुबूर, तौरैत एवं इंजील अथवा क़ुरान के समान कोई दैवी पुस्तक नहीं।

कर सकें। अतः यह बात प्रमाणित हो गयी कि दार्शनिकों ने नबियों के विषय में तर्क करने में भूल की है। उपर्युक्त वर्णन से पता चल गया होगा कि नबी की आवश्यकता तर्क द्वारा सिद्ध नहीं हो सकती अपितु इसका आधार शरीअत एवं उम्मत[1] के बुजुर्गों के पदानुगमन पर निर्भर है।

दूसरी प्रस्तावना

आबाद भूमि का विभाजन, समुद्रों, नदियों तथा इक़्लीमों[2] का वर्णन[3]

तीसरी प्रस्तावना

समशीतोष्ण तथा असमशीतोष्ण इक़्लीमे, वहाँ के मनुष्यों तथा उनके रंग-रूप पर जलवायु का प्रभाव[4]

चौथी प्रस्तावना

जलवायु का मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव[5]

१. अनुयायी, यहाँ तात्पर्य मुहम्मद साहब के अनुयायियों से हैं।
२. जलवायु के प्रदेश। मध्यकालीन भूगोलवेत्ताओं के अनुसार संसार सात इक़्लीमों में विभाजित था।
३. इब्ने ख़लदून ने इस स्थान पर जो भौगोलिक वर्णन किया है वह साधारणतः सभी मध्यकालीन भूगोल के ग्रन्थों में मिल जाता है। उसने विशेष रूप से मुहम्मद बिन मुहम्मद अल इदरीसी (जन्म १०९९ अथवा ११०० ई०, मृत्यु ११६२ ई०) के "नुज़हतुल मुश्ताक़" नामक ग्रंथ पर अपना लेख आधारित किया है। यद्यपि इदरीसी का पूरा ग्रंथ अब कहीं नहीं मिलता, किन्तु इसके विभिन्न अंशों पर यूरोप की भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। इस प्रकरण का अधिक महत्त्व न होने के कारण इसका अनुवाद नहीं किया गया।
४. इस प्रकरण में भी वही साधारण भौगोलिक वर्णन किया गया है जो अन्य मध्यकालीन भूगोल के ग्रंथों में मिलता है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।
५. इस प्रकरण में भी साधारण भौगोलिक वर्णन किया गया है जो अन्य भूगोल की पुस्तकों में मिलता है। अतः इसका भी अनुवाद नहीं किया गया।

पाँचवीं प्रस्तावना

अकाल एवं अल्पमूल्यता से देश में क्या परिवर्तन होते हैं और इनका प्रभाव मनुष्यों के शरीर एवं चरित्र पर किस प्रकार पड़ता है

यह बात जाननी चाहिए कि न तो सब-की-सब समशीतोष्ण इक़लीमें हरी-भरी एवं उपजाऊ होती है और न वहाँ के सभी निवासी सुखसम्पन्नता का जीवन व्यतीत करते है। इन इकलीमों में से कुछ तो ऐसे स्थान है जहाँ के निवासी अनाज, मेवा और खाद्य सामग्री की बहुतायत के कारण सुख-शान्ति से एव धन-धान्यसम्पन्न होकर जीवन व्यतीत करते है, कारण कि वहाँ की भूमि कृषि के लिए बड़ी उपयुक्त एवं उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार वहाँ की आबादी भी घनी होती है। पर इन्ही इक़लीमों में कुछ ऐसे स्थान भी है जिनकी भूमि गरमी के कारण बजर होती है, न वहाँ कृषि ही होती है और न घास। वहाँ के निवासी बड़ी कठिनाई से जीवन व्यतीत करते है। उदाहरणार्थ हिजाज, दक्षिणी यमन के निवासी, नक़ाबपोश सिहाजा जो मगरिब के उजाड़ स्थानों तथा बरबर एव मगरिबी सूडान के मध्य रेगिस्तानों मे निवास करते है, अनाज एव खाद्य सामग्री के लिए तरसते रहते है। इनका अधिकाश भोजन मांस एव दूध है।

अरब के बदवियों की, जो रेगिस्तानो मे चक्कर लगाया करते है, गणना भी इन्ही लोगों में होती है। यद्यपि अनाज एवं खाद्य सामग्री उन्हे पहाड़ियों से प्राप्त हो जाती है, किन्तु प्राय: नही और वह भी उन्हे उनके किसी सहायक एव मित्र की कृपा एव उदारता के कारण। फिर जो कुछ प्राप्त होता है वह बड़ी थोड़ी मात्रा मे ही प्राप्त होता है, वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नही होता अत: वे समृद्ध नही रह सकते। कभी-कभी तो उन्हे केवल दूध पर ही जीवन-निर्वाह करना पड़ता है और दूध को ही अनाज का स्थान देना पड़ता है। किन्तु ये उजाड़ स्थानो के निवासी तथा आवास-रहित जातियाँ जिन्हे खाद्य सामग्री उपलब्ध नही होती, शरीर एव चरित्र में उन लोगो से कही श्रेष्ठ होती है जो हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो मे निवास करते है और भोग-विलास मे ग्रस्त रहते है। इनके रंग निखरे हुए, शरीर सुडौल, रूप सुन्दर एव आकर्षक तथा इनका चरित्र एव स्वभाव पवित्र होता है। इनकी बुद्धि, ज्ञान के विषय में बड़ी तीव्र होती है। अनुभव से पता चलता है कि ये सब गुण इनको प्राप्त है।

इसी विशेषता के कारण अरब, बरबर, नक़ाबपोश एव पहाड़ियो तथा उपजाऊ स्थान के निवासियों में बड़ा अन्तर है। इसका पता परीक्षा एव अनुभव द्वारा ही चल सकता है। इसका कारण सम्भवत: यह है कि भोजन की अधिकता के कारण

उसका रस शरीर में अपकारक अनावश्यक पदार्थ पैदा कर देता है, जिससे असगत रूप से शरीर बढ़ जाता है और बहुत से बदबूदार तथा दूषित त्रि-दोष शरीर मे उत्पन्न हो जाते है।' इससे रग भी मैला हो जाता है और मांस की अधिकता से शरीर एव रूप भी बिगड़ जाता है। जब आर्द्रता एवं उससे उत्पन्न होनेवाली वाष्प मस्तिष्क की ओर चढ़ती है तो वे बुद्धि एवं विवेक को दूषित कर देती है। फलतः मूर्खता, असावधानी एवं असयम का जन्म हो जाता है। यदि जंगलों एव उजाड स्थानों में रहनेवाले पशुओं, उदाहरणार्थ मृग, शुतुरमुर्ग, जराफ़ा, गोरख़र तथा नील गाय की तुलना हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो मे पाये जानेवाले जानवरो से की जाय तो बड़ा अन्तर मिलेगा। जगली जानवरो का रग भी स्वच्छ एव शुद्ध मिलेगा और रूप भी। शरीर के अग भी सुडौल मिलेगे और उनकी समझ भी तीव्र होगी। यद्यपि मृग एव बकरा, गोरख़र एव गधा, नील गाय एव बैल एक ही वर्ग के जानवर है, किन्तु एक-दूसरे से विभिन्न तथा पृथक् है। इसका कारण यह है कि हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो के पालतू पशुओं में अधिक भोजन से उनके शरीर मे अपकारक अनावश्यक पदार्थ उत्पन्न हो जाते है और उपर्युक्त प्रभाव का कारण बन जाते है। इससे उनका रूप-रग भी भद्दा हो जाता है और उनकी चुस्ती व चालाकी भी जाती रहती है। इसके विपरीत कम खाने के कारण वन-पशुओं का शरीर सुडौल तथा यथोचित एव रूप-रग भी सुन्दर एव आकर्षक होता है।

यही दशा आदमियों की भी है कि उन हरी-भरी इकलीमो के, जहाँ कृषि भी खूब होती है, निवासी खाद्य सामग्री एव मेवों इत्यादि की बहुतायत के कारण अधिकाश मूर्ख और बेडौल होते है। इसी प्रकार उन बरबरों की तुलना, जो खाद्य सामग्री की ओर से निश्चिन्त है, मसमूदह के बरबरो तथा गुमारा और सूस के निवासियो से की जाय जो केवल जौ एव ज्वार पर जीवन निर्वाह करते है, तब भी यही अन्तर मिलेगा। यही अन्तर मग़रिब एवं उन्दुलुस (स्पेन) के निवासियों में है। मग़रिब के प्रदेशों के निवासियों के पास साधारणत. भोजन सामग्री की बहुतायत होती और उन्दुलुस के निवासी घी-दूध के लिए तरसते है। जौ एव ज्वार उनका भोजन है, किन्तु फिर भी उन्दुलुस निवासियों की बुद्धि तीव्र, शरीर हलके फुलके और ज्ञान-विज्ञान में वे सबसे श्रेष्ठ होते है।

यही दशा मग़रिब के उन लोगो की है जो उजाड़ स्थानों में निवास करते है। जब उनकी तुलना नगर-निवासियों से की जाती है तो पता चलता है कि यद्यपि नगर-निवासी "मांस-रस" इत्यादि का प्रयोग करते एवं उत्तम भोजन करते हैं, किन्तु भोजन तैयार करने में वे उसमें कुछ ऐसी वस्तुएँ मिला लेते है जिनसे भोजन का गुण हलका हो जाता है। फलतः भोजन की गुरुता समाप्त हो जाती है। वे अधिकांशतः बकरी तथा

पक्षियों का मांस खाते हैं, पर घी उन्हें स्वादिष्ठ नहीं लगता अतः वे उसका प्रयोग बहुत कम करते हैं। इस कारण उनके भोजन में आर्द्रता की कमी होती है और वह शरीर में बहुत कम अपकारक अनावश्यक पदार्थ उत्पन्न करता है। इसी कारण हम देखते हैं कि इन नगर-निवासियों का शरीर मोटा-झोटा भोजन करनेवाले जंगल-निवासियों के शरीर की अपेक्षा बड़ा कोमल एवं नाजुक होता है। इसी प्रकार जो ग्रामीण भूखे रहने के आदी होते हैं उनके शरीर में भी अधिक अनावश्यक पदार्थ नही होते।

समृद्धि एवं अल्पमूल्यता का प्रभाव केवल शरीर पर ही नही पड़ता अपितु ईश्वर की उपासना एवं धर्म पर भी पड़ता है। इससे बहुत कुछ निष्कर्ष निकलते हैं। जो बदवी एवं ग्रामीण लोग भूख के कष्ट भोगते रहते हैं और भोग-विलास एवं स्वादिष्ठ भोजन से अपरिचित होते हैं, वे अधिकांश धर्मनिष्ठ होते हैं और ईश्वर की उपासना में तल्लीन रहते हैं। नगरों में धर्मनिष्ठ लोगों की संख्या बहुत ही कम होती है। समृद्धि एवं सुखसम्पन्नता के कारण उनमें उपेक्षा एवं निष्ठुरता उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण ईश्वर की उपासना करनेवाले एवं धर्मनिष्ठ लोग, भूखे ग्रामीणों से ही मिलते-जुलते हैं। इसी प्रकार समृद्धि एवं सुखसम्पन्नता में पले हुए कोमल नगरनिवासियों एवं ग्रामों के कष्ट भोगनेवाले ग्रामीणों में एक अन्तर यह भी होता है कि जब कभी इन पर अकाल का प्रकोप होता है अथवा इनके यहाँ महँगाई आ जाती है और भुखमरी फैल जाती है,तो नगरनिवासियों पर इस कष्ट का अधिक प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ मगरिब के बरबर तथा मिस्र[1] एवं फ़ेज के निवासी बहुत बड़ी संख्या में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, जब कि जंगलों एवं रेगिस्तानों के अरब, जो केवल खजूर से पेट पालते हैं, वे इफरीक़िया-निवासी जिनका भोजन जौ एवं जैतून है और था, वे उन्दुलुस-निवासी जिनका जीवन-निर्वाह जौ, ज्वार एवं जैतून से होता है, उससे बचे रहते हैं। अकाल एवं भुखमरी उन्हें इतनी अधिक हानि नहीं पहुँचाती जितनी कि कोमल एवं समृद्ध नगर-निवासियों को। इसका कारण यह है कि समृद्धि का जीवन व्यतीत करनेवालों तथा चिकनाई का प्रयोग करनेवालों की आँतें स्वाभाविक रूप से जितनी चिकनाई की आवश्यकता होती है, उससे अधिक चिकनाई प्राप्त कर लेती हैं। जब भोजन में कमी हो जाती है और चिकना भोजन प्राप्त नहीं होता तथा स्वभाव के विरुद्ध उन्हें रूखा-सूखा भोजन करना पड़ता है, तो शीघ्र ही उनकी आँतें सूखने एवं सिकुड़ने लगती हैं। आँतों के कोमल होने के कारण वे शीघ्र ही किसी-न-किसी रोग में ग्रस्त होकर

१. क़ाहेरा (केअरो)

मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अतः भुखमरी के समय मृत्यु का कारण पहले से अधिक भोजन करने का आदी होना होता है न कि मृत्यु के समय में भोजन की कमी। जो लोग भोजन में अधिक चिकनाई खाने के आदी नही होते उनके शरीर का तरल पदार्थ एवं चिकनाई अपनी मूल सीमा पर बिना किसी अधिकता के ठहरी रहती है और वह समस्त प्राकृतिक भोजनों को स्वीकार कर लेता है, अतः भोजन में परिवर्तन के कारण उनकी आँतों में आवश्यकता से अधिक खुश्की नही पैदा होती और वे प्रायः चिकना भोजन करनेवालों के समान मरते नहीं। यह तथ्य भी इस सिद्धांत पर आधारित है कि भोजन की ओर से घृणा अथवा आकर्षण स्वभाव पर निर्भर है। जब कोई व्यक्ति किसी विशेष भोजन का आदी हो जाता है तब यदि वह भोजन विषैला नहीं है तो उसके त्याग देने अथवा उसमें परिवर्तन करने से वह व्यक्ति रोगी हो जाता है। कोई भी खाद्य पदार्थ, भले ही वह दैनिक खाद्यपदार्थ के प्राकृतिक गुणों से भिन्न क्यों न हो, आदत पड़ जाने पर प्रिय भोजन बन जाता है। उदाहरणार्थ यदि कोई गेहूँ के स्थान पर दूध तथा हरी तरकारियों का ही प्रयोग करने लगे तो आदत पड़ जाने से वे ही उसके लिए भोजन बन जाती है और गेहूँ इत्यादि की उसे फिर आवश्यकता नहीं रहती।

इसी प्रकार जो अपने आपको भूखा रखने एवं न खाने का आदी बना लेता है वह बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है, जैसा कि तपस्वी फ़क़ीरों के विषय में प्रचलित उन आश्चर्यजनक कहानियों में मिलता है, जिन्हें बुद्धि स्वीकार नही कर सकती। वास्तव में इसका कारण आदत है। जब किसी की एषणा किसी वस्तु की आदी एवं उसके अनुकूल हो जाती है तो वह वस्तु उसके स्वभाव में प्रविष्ट हो जाती है। इसका कारण यह है कि एषणा अनियमित होती है। जब शनैः शनैः तपस्या के कारण भूखा रहने की आदत पड़ जाती है तो यही उसका स्वभाव बन जाता है। चिकित्सकों को जो यह भ्रम है कि भूख मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाती है, तो इसमें उस अवसर के लिए तो कोई तथ्य पाया जाता है जब अचानक किसी पर भूख की विपत्ति आ जाय और अचानक उसका भोजन बन्द कर दिया जाय। कारण कि ऐसे अवसरों पर अंतड़ियाँ सूख जाती हैं और उनको वे रोग हो जाते हैं जो मृत्यु के निकट पहुंचा देते हैं। किन्तु जब तपस्या करते-करते शनैः-शनैः और थोड़ा-थोड़ा भोजन कम किया जाय, जिस प्रकार सूफ़ी[1]

१. मुसलमान सन्त।

लोग करते है, तो इसमें प्राण का कोई भय नहीं होता। इसी प्रकार भोजन त्यागने के उपरान्त भोजन की आदत डालते समय भी धीरे-धीरे भोजन की मात्रा बढ़ाना परमावश्यक है। क्योंकि यदि भूखा रहने का आदी बनकर पूर्व की भाँति ही भोजन प्रारम्भ कर दिया जाय तो यह भी मृत्यु का कारण बन जाता है।.........[1]

इस तथ्य को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि भूखा रहना, यदि कोई उसे सह सके, मनुष्य के शरीर के लिए अधिक भोजन करने की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। भोजन के त्याग तथा कम भोजन करने से शरीर एवं विवेक की शुद्धता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसका प्रमाण विभिन्न भोजनों के शरीर पर पड़नेवाले प्रभाव से चलता है। हमने देखा है कि जो लोग बड़े और मजबूत जानवरों का मांस खाते हैं, उनकी नसलें भी बलवान् एवं शक्तिशाली होती है। यह अन्तर ग्रामीणों एवं नगरनिवासियों में पूर्णतः स्पष्ट रहता है। उदाहरणार्थ जो लोग ऊँट का मांस खाने अथवा उसका दूध पीने के आदी होते है उनमे ऊँटों के समान धैर्य एवं सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। उनकी अँतड़ियाँ भी ऊँटो के समान कठोर और ताक़तवर हो जाती है। न उनकी आँतें कमजोर हो पाती है और न उनमें वह रोग लगता है जो दूसरों को लगता है। वे अपने आमाशय को ठीक रखने के लिए रेचक औषधियो का रस पी जाते है और बिना पकाये ही उन्हें खा जाते है। उनकी आँतों पर इसका कोई कुप्रभाव नही होता। यदि कहीं हलका भोजन करनेवाले नरम आँतोंवाले लोग उन चीजों को खा जायें तो तत्काल उनकी मृत्यु हो जाय, कारण कि उनमे विषैले पदार्थ होते है। सक्षेप में भोजन का शरीर पर पड़नेवाला प्रभाव एक प्रामाणिक तथ्य है।

लोगों ने इस बात की परीक्षा की है कि जब मुर्गी को ऊँट की मेंगनी में उबले हुए दाने दिये जाते है और उसके अडे लेकर बच्चे निकाले जाते हैं, तो इन अंडों से निकलनेवाले बच्चे साधारण बच्चों से शरीर में बड़े होते है। यदि इस प्रकार का भोजन उन्हें न दिया जाय अपितु उन अंडों के नीचे, जिनसे बच्चे निकाले जा रहे हों, ऊँट की मेंगनियाँ बिछा दी जायँ तो भी उनसे निकलनेवाले बच्चों का शरीर बड़ा होता है। इस प्रकार के उदाहरण बहुत से मिलते है। जब शरीर पर भोजन के इस प्रभाव का पता चल गया तो इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि भूख का भी शरीर पर प्रभाव पड़ेगा, कारण कि विरोधाभासी चीज़ें प्रभाव की उपस्थिति एव अनुपस्थिति में एक ही सम्बन्ध रखती है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भूख शरीर को अपकारक अनावश्यक

१. एक उदाहरण जिसका अनुवाद नहीं किया गया।

पदार्थो से, जो शरीर एवं बुद्धि दोनों के लिए हानिप्रद हैं उसी प्रकार बचाये रखती है जिस प्रकार भोजन शरीर को प्रभावित करता है।

छठी प्रस्तावना

मनुष्यों की विभिन्न क़िस्में, जिन्हें प्रकृति अथवा अभ्यास से परोक्ष की बातों का ज्ञान हो जाता है और इस विषय की प्रस्तावना के रूप में वही[१] एवं स्वप्न का उल्लेख।

(१) नबूअत[२] का अर्थ।

(२) कहानत[३]।

(३) स्वप्न।

(४) अन्य प्रकार से परोक्ष का ज्ञान[४]।

१. वह आदेश जो पग़म्बर अथवा नबी को ईश्वर की ओर से प्राप्त होता है। मुहम्मद साहब को ये आदेश जिब्रील फ़िरिश्ते द्वारा प्राप्त होते थे।

२. नबी अथवा पैग़म्बर होना।

३. काहन (शकुन विचारनेवाला) होना।

४. इस खंड में मुसलमानों के साधारण विश्वासों से सम्बन्धित बातों का उल्लेख किया गया है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

अध्याय २

बद्वी सभ्यता, वह्शी क़ौमों एवं क़बीलों का रह्न-सह्न, उनकी दशा एवं उनसे संबंधित अन्य बातें

(१) बदवी एवं हज़री प्राकृतिक समूह हैं

मानवीय क़बीलो की विभिन्नता का बहुत बड़ा कारण उनके जीविकोपार्जन के साधनों की भिन्नता है। कोई सामाजिक समूह अपने जीवन-निर्वाह के लिए एक काम करता है और दूसरा समूह कोई अन्य। इसी कारण उनकी दशाएँ एक-दूसरे से अत्यधिक भिन्न हो जाती है और उनके अलग-अलग सामाजिक समूह बन जाते है। कारण कि मनुष्य इसी उद्देश्य से मिल-जुलकर एक स्थान पर रहते है कि वे एक-दूसरे की सहायता करें और अपनी आवश्यकता की सामग्री एकत्र करें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे परमावश्यक काम को ही सर्वप्रथम करने को विवश होने है। उस कार्य के उपरान्त वे अनावश्यक कार्य तथा अन्य ऐसे कार्यों मे हाथ डालते है जिनके फलस्वरूप उन्हे प्रसिद्धि प्राप्त होती है। अतः प्रारम्भ मे कोई कृषि करता है तो कोई भेड़-बकरियाँ, ऊँट एवं बैल चराता है, मधुमक्खियाँ पालता है और उनसे प्राप्त दूध, मांस, ऊन, खाल तथा मधु से अपनी आवश्यकता पूरी करता है। ऐसी दशा में चरवाहे एवं कृषक ग्रामों के ऐसे खुले हुए स्थानों मे निवास करने पर विवश होते है जहाँ खेती बाड़ी का कार्य सुगमता पूर्वक हो सके, और पशु पालन में आसानी हो। नगरों की घनी आबादियों मे ये लोग निवास नही कर सकते। अतः ये दोनो समूह अर्थात् कृषक एव चरवाहे ग्रामो में निवास करने लगते है और यह निवास इनके लिए बड़ा आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त बदवी एव ग्रामीण अपने सामाजिक जीवन हेतु तथा अपने जीवन से सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओ के सग्रह के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते है। उदाहरणार्थ अपनी भोजन एवं वस्त्र सम्बन्धी वस्तुओं के लिए वे एक-दूसरे का हाथ न बटाये तो उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो जाय। यद्यपि उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम होती है और वे केवल इतनी ही चीजें चाहते है जिनसे जीवित रह सके, यानी सिर्फ़ खाने को भोजन एवं पहनने को वस्त्र। इससे अधिक उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नही होती।

फिर जब उनकी दशा में परिवर्तन हो जाता है और वे समृद्ध हो जाते है तब उनकी धन-सम्पत्ति में वृद्धि होने लगती है और सुख-सम्पन्नता के साधन भी उपलब्ध होने लगते है। वे एक-दूसरे की सहायता करते है, खूब खाते पीते है, सुन्दर वस्त्र धारण करते है

और प्रत्येक वस्तु को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करने लगते है, भव्य भवनों का निर्माण कराते है, नगरों एव बड़े-बड़े क़सबों की नीव डालते है। संक्षेप मे उनका भोग-विलास का जीवन नित्यप्रति उन्नति करने लगता है और वे विलासिता एवं सुख-शान्ति की चरम सीमा पर पहुंच जाते है। जब भोजन सम्बन्धी उनकी रुचि उन्नत होती है तो वे नाना प्रकार के भोजनों का आविष्कार करते है और स्वादिष्ठ भोजनों की इच्छा उन्हें आ घेरती है। जब उन्हें उत्तम वस्त्र धारण करने की इच्छा होती है तो वे रेशम तथा ज़रबफ़्त के वस्त्र धारण करते है और नाना प्रकार के वस्त्र तैयार करके पहनते हैं। निवास हेतु गगन-चुम्बी भवनों एवं भव्य राज-प्रासादों का निर्माण कराते है। उन्हें सजाकर स्वर्ग के समान कर लेते है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कला-कौशल की उत्पत्ति सार्वजनिक कल्याण की इच्छा से ही होती है। फिर भवनों एवं राज-प्रासादों को सजाने एव सुन्दर बनाने के उद्देश्य से उनमें नहरें निकाली जाती है, ताकि उन्हें स्वर्ग के उद्यान के समान कर दिया जाय। उनमें नाना प्रकार के बेल-बूटे बनाये जाते है और पच्चीकारी की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति भोजन, वस्त्र, फ़र्श एवं अन्य वस्तुओं म नाना प्रकार के आविष्कार करता है। यही लोग नगरनिवासी अथवा हज़री कहलाते हैं। ये लोग नगरों मे रहते और विभिन्न व्यवसाय करते है। कोई कला-कौशल की ओर आकृष्ट होता है तो कोई व्यापार को अपना व्यवसाय बनाता है। संक्षेप में इन नगरनिवासियों के जीविका एवं आय के साधन बदवियों की अपेक्षा उत्तम एवं सुख-दायक होते है। उनको प्रत्येक वस्तु आवश्यकता से अधिक मिलती है, फिर जिस प्रकार अधिक मात्रा में उन्हें चीजें मिलती है उतनी ही अधिक मात्रा में वे व्यय करते है।

संक्षेप मे मानवीय क़बीलों का बदवियों एवं नगरनिवासियों मे बॅट जाना एक स्वाभाविक और आवश्यक बात है, इसके अतिरिक्त और कुछ हो भी नहीं सकता।

(२) संसार में अरब[१] प्राकृतिक समूह हैं

पिछले खंड में हम यह बात स्पष्ट कर चुके है कि रेगिस्तान-निवासियों एवं बदवियों की जीविका के साधन कृषि एवं पशु पालन है। वे भोजन, वस्त्र एवं अन्य समस्त बातों के लिए वस्तुओं की केवल आवश्यक मात्रा का ही प्रयोग करते है। अनावश्यक वस्तुओं एव चीज़ों की इच्छा वे नहीं करते अपितु उनकी उपेक्षा ही करते रहते है। ऊनी

१. **इब्ने खलदून ने ख़ानाबदोश बद्दुओं के लिए हर स्थान पर अरब शब्द का ही प्रयोग किया है।**

कम्बलों के ख़ेमों में, अथवा लकड़ी की झोपड़ी को घास-फूस से ढाँककर उसमें निवास करते हैं अथवा मिट्टी और बिना तराशे हुए पत्थरों से साधारण-सा घर बनाकर उसमे जीवन-निर्वाह करते हैं। उनका उद्देश्य केवल अपने शरीर को गरमी एव ठडक से सुरक्षित रखना होता है। कभी वे गुफाओं मे निवास करने लगते है और भोजन भी कच्चा पक्का जैसा भी उपलब्ध हो गया खा लेते है।

उन उजाड़ स्थानों के निवासियों के लिए, जिनका व्यवसाय कृषि है, एक स्थान पर ठहरना यदि इधर-उधर फिरते रहने से अधिक उचित होता है तो वे एक ही स्थान पर पड़ाव डाल देते है। हरी-भरी भूमि एव पर्वतीय घाटियों में ये लोग अपना स्थायी निवासस्थान बना लेते है। यही ग्रामीण कहलाते है। बरबरी एव अजम[1] क़ौमें इसी श्रेणी में आती है।

जो लोग अपना जीवन-निर्वाह जानवर चराकर करते है वे अधिकतर अपन जानवरों के लिए चरागाहों एव जल की खोज मे इधर-उधर घूमते रहने पर विवश होते है। वे "शावीया" कहलाते है अर्थात् ऐसे लोग जिनका जीवन-निर्वाह बकरियाँ एवं गाय-बैल पालने से होता है। वे सूखे रेगिस्तानों की ओर इसी कारण नही जाते कि वहाँ उनके जानवरों के लिए चरागाहें नहीं मिल सकते। बरबर, तुर्क, तुर्कमान तथा सक़ालिबा[2] नामक क़ौमें यही व्यवसाय करती है।

जो लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए ऊंटो पर निर्भर है वे नित्य यात्रा में ही रहते है और सूखे रेगिस्तानों में निकल जाते है। कारण कि हरे-भरे स्थानों के घास-पात, उपज एव पैदावार उनके ऊँटों के जीवन के लिए इतनी उपयुक्त नही जितनी कि रेगिस्तानों की झाड़ियाँ और वहाँ का खारा जल। फिर हरे-भरे स्थानों की ठडक भी ऊँटों को कष्ट पहुँचाती है। वे रेगिस्तानो के गरम वातावरण में प्रसन्न रहते है। इसके अतिरिक्त रेगिस्तानों के रेतीले स्थानो मे ऊँटनियों के बच्चो का जन्म सुगमतापूर्वक हो जाता है। इन्हीं कारणों से वे रेगिस्तानों में चक्कर काटा करते है। आज यहाँ है तो कल वहाँ। कभी ऐसा भी होता है कि आबाद भूमि के स्वामी उन्हें निकाल देते है और इस प्रकार वे रेगिस्तानों मे शरण लेते है। निरतर उजाड़ स्थानों में निवास करने के कारण उनके स्वभाव में जंगलीपन उत्पन्न हो जाता है और सभ्य नगरनिवासियों के मुक़ाबले मे वे वहशी जानवरों एव वन-पशुओं के समान समझे जाते है। अरब बद्दू

१. जो अरब न हो।
२. सलैव जाति।

भी ऐसे ही आवासरहित होते है। मग़रिब में बरबर, जनाता एवं पूर्व में कुर्द, तुर्क तथा तुर्कमान इसी प्रकार की क़ौमें है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि अरब हरे-भरे स्थानों से दूर रहते है और रेगिस्तान के जीवन के अधिक आदी होते हैं, कारण कि वे केवल ऊँटों पर निर्भर होते है और अन्य लोग ऊँटों के साथ बकरियाँ तथा गाय-बैल भी पालते है।

सक्षेप में अरबों का ख़ानाबदोश (आवासरहित होना) अनुपेक्षणीय एवं स्वाभाविक है और इस प्रकार की बदवियत एव जगलीपन का ससार की आबादी में कही-न-कही पाया जाना परमावश्यक है। "ईश्वर ही सर्जन करता है और सब कुछ जानता है।"[१]

(३) बदवियत को हज़रियत पर प्राथमिकता प्राप्त है और बड़े रेगिस्तान ही सभ्यताओं एवं नगरों के स्रोत हैं

यह उल्लेख हो चुका है कि बद्दू लोगों के जीवन निर्वाह की आवश्यकताएँ बहुत कम होती है, आवश्यकता से अधिक वस्तु की उन्हें कभी चिन्ता नही रहती और न उस तक उनकी पहुँच होती है। इसके विपरीत नगरनिवासी अपव्ययी एव विलासप्रिय होते है। इसमें सन्देह नही कि आवश्यक एवं अनुपेक्ष्य वस्तु को अनावश्यक एवं पूर्ण निर्दोष वस्तुओं पर प्राथमिकता प्राप्त होती है, कारण कि आवश्यक मूल है और परिपूर्णता उसकी शाखा है। या यह समझना चाहिए कि मनुष्य सर्वप्रथम उतनी आवश्यक वस्तु की, जो उसके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त हो, खोज करता है। जब उसको यह वस्तु प्राप्त हो जाती है तो फिर वह आवश्यकता से अधिक भोग-विलास सम्बन्धी एवं पूर्ण वस्तुओं की खोज करता है, अतः बदवियत का अक्खड़पन तथा अशिष्टता का जन्म नगरनिवासियों की नम्रता एवं शिष्टता के पूर्व ही होता है। इस प्रकार नगर की सभ्यता एवं संस्कृति बदवियो के जीवन की सर्वोच्च एवं उन्नत श्रेणी की अवस्था है। वे अपने प्रयत्न से सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति करते है। जब वे लोग एक बार भोग-विलास का जीवन प्रारम्भ करते और उसके आदी हो जाते है तो वे आगे की ओर ही बढते जाते है, यहाँ तक कि उनमें नगरनिवासियों की सी विशेषताएँ अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार क़बीले बदवियत से निकलकर सभ्यता की

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। इसके विपरीत नगरनिवासी[1] रेगिस्तानों तथा वहाँ के जीवन की ओर कदापि आकृष्ट नहीं होते। वे केवल कुछ प्रतिकूल दशाओं[2] में तथा विवश होकर एवं नगर-निवास की आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ होने पर ही रेगिस्तानों की ओर प्रस्थान करते हैं।

इस बात का कि नगरीय जीवन का प्रादुर्भाव बदवी जीवन के पूर्व हुआ, एक अन्य प्रमाण यह है कि यदि हम नगर-निवासियों के विषय में छान-बीन करें तो पता चलेगा कि उनके पूर्वज किसी समय बदवी थे। फिर वे ग्रामो से निकलकर नगरो में बस गये अर्थात् ग्राम एवं क़सबों में निवास करते-करते जब वे धनी हो गये तो वे नगरो में पहुँच गये और भोगविलास में ग्रस्त रहने लगे। इससे यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि बदवियत नगरीय जीवन की प्रथम श्रेणी है। इसके अतिरिक्त नगरनिवासियो तथा बदवियों मे अन्य भेद-भाव भी पाये जाते हैं। कुछ लोग छोटे क़सबो के निवासी होते हैं और कुछ लोग बड़े कसबो के, कोई कम आबाद नगर के और कोई अधिक आबाद नगर के। सक्षेप मे बदवी जीवन को नगर के जीवन पर प्राथमिकता प्राप्त है और नगर के भोग-विलास के जीवन का जन्म बदवियो के साधारण जीवन के बाद हुआ।

(४) नगरनिवासियों[3] की अपेक्षा बदवी अधिक सदाचारी होते हैं

इसका कारण यह है कि जब तक आत्मा अपनी शुद्ध प्राकृतिक दशा मे रहती है और बाहरी कुप्रभावो से मुक्त होती है, तब तक उसमे शुद्ध एव अशुद्ध बातो से प्रभावित होने की योग्यता होती है। हजरत मुहम्मद ने कहा है, प्रत्येक बालक प्राकृतिक दशा मे उत्पन्न होता है, उसके माता-पिता उसे यहूदी, ईसाई अथवा मजूसी बना लेते हैं।"[4] सर्वप्रथम जो गुण अथवा अवगुण उस पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं तो उन पर दूसरी बातो का प्रभाव बड़ी कठिनाई से हो पाता है। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति भलाई करने का आदी हो जाता है और नैतिकता उसके हृदय मे प्रविष्ट हो जाती है तो वह दुराचार से घृणा करने लगता है। इसी प्रकार यदि कोई दुराचार का आदी बन जाता है तो फिर नैतिकता उसमें उत्पन्न ही कैसे हो सकती है। यदि विस्तृत क्षेत्र मे यह बात देखी जाय तो भी यही सिद्धान्त प्रचलित मिलेगा।

१. हज़री।
२. नगर से निर्वासित कर दिये जाने अथवा इसी प्रकार की अन्य दशाओं में।
३. हज़रियों।   ४. सहीह बुख़ारी।

नगर-निवासी नाना प्रकार के भोग-विलास में पलकर सांसारिक एवं स्वार्थी हो जाते हैं। उनकी आत्मा अशुद्ध हो जाती है और दुराचार उनके हृदय में घर कर लेता है। फलतः वे नैतिकता के मार्ग से दूर एवं सदाचार से पृथक् हो जाते हैं। उनमें मर्यादा नाम मात्र को नहीं रहती। सभाओं में वे अपने बड़ों और छोटों के समक्ष ऐसी-ऐसी अनुचित बातें करते हैं कि ईश्वर ही उनसे बचाये। शैतान को भी उनके समक्ष लज्जा आ जाय। इसका कारण यह है कि दुराचार एवं दुष्टता से ग्रस्त रहने के कारण उनमें भले-बुरे का कोई भेद-भाव नहीं रहता और अश्लील बातें करने में भी उन्हें कोई सकोच नहीं होता। इसके विपरीत बदवियों को भी सांसारिक आवश्यकताएँ होती हैं, किन्तु बड़ी ही सीमित। आवश्यकता से अधिक उड़ाने-खाने एवं भोग-विलास की इन्हें कोई इच्छा नहीं होती, अतः इसी अनुपात से उनके आचरण भी साधारण एवं दोषशून्य होते हैं। नगर के दुष्टों की अपेक्षा उनमें दुष्टता एवं दुराचार बहुत ही कम होते हैं। वे लोग प्राकृतिक दशा के निकटतम होते हैं और अनुचित बातों एवं दुराचार से दूर रहते हैं। इसी कारण नगरनिवासियों की अपेक्षा इनका सुधार अधिक शीघ्र एवं सुगमतापूर्वक हो जाता है। इस बात को इस प्रकार समझना चाहिए कि नागरिक जीवन मानवीय आबादी की वह उच्चतम श्रेणी है जिसके उपरान्त विनाश का प्रादुर्भाव होता है। नगरनिवासियों में दुष्टता चरम सीमा पर पहुँच जाती है और सदाचार एवं नैतिकता से वे बहुत दूर हो जाते हैं। वास्तव में पवित्र जीवन व्यतीत करनेवाले ही ईश्वर को प्रिय होते हैं।........[१]

(५) बदवी नगर-निवासियों से अधिक वीर एवं योद्धा होते हैं

इसका कारण यह है कि नगर-निवासियों का पालन-पोषण, भोग-विलास के वातावरण में होता है। समृद्धि एवं सम्पन्नता में उनका जन्म तथा मृत्यु होती है। वे अपनी धन-सम्पत्ति तथा प्राणों की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने उन शासकों एवं अमीरों के कंधों पर जो उनपर शासन करते हैं रखते हैं। उन्हीं पर उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व होता है। वे नगरों के चारों ओर दृढ़ चहारदीवारियाँ एवं कोट का निर्माण करवा कर चितारहित जीवन व्यतीत करते हैं। न तो कोई भय होता है और न कष्ट, अपितु वे शान्ति पर आश्रित होकर प्रतिरक्षा सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्र पृथक् कर देते हैं। शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के कारण वीरता एवं पौरुष के भावों का उनमें इतना अभाव

१. इस्लामी इतिहास के कुछ उदाहरण। इनका अनुवाद नहीं किया गया।

हो जाता है कि वे स्त्रियों एवं बालकों के समान कायर हो जाते हैं और यह कायरता उनके चरित्र का विशेष अंग बन जाती है।

इसके विपरीत बदवी इधर-उधर फैले रहते हैं। उनमें न तो उनकी रक्षा के लिए कोई उत्तरदायी शासक होता है, जिसके भरोसे वे जीवन व्यतीत कर सकें, और न उनके लिए चहारदीवारियाँ एवं कोट होते हैं कि जिनके भरोसे पर वे शान्तिपूर्वक जीवित रह सकें, अपितु उनकी प्रतिरक्षा का भार स्वयं उन्ही पर होता है। वे अपने प्राणों के लिए अपने ही पर निर्भर होते हैं अतः वे सर्वदा सशस्त्र रहते हैं, मार्गों की रक्षा करते रहते हैं। सभाओं तथा घरों मे हों अथवा वाहन की पीठ पर,वे ख़तरों एव आक्रमणों से चौकन्ने रहते हैं। खतरे के समय वे नि.संकोच एव बिना किसी भय के निर्जन जगलों में प्रविष्ट हो जाते हैं। युद्ध उनके स्वभाव में समा जाता है। वीरता उनकी आदत बन जाती है। किसी के उकसाने अथवा भड़काने से उनकी वीरता एव पौरुष का यह स्वभाव उनके लिए सहायक बन जाता है।

इस प्रकार नगर-निवासियों को जब कभी इन बदवियों के साथ मिल-जुलकर रहने का अवसर आ पड़ता है अथवा यात्रा में ये उनके साथ हो जाते हैं तो वे अपना समस्त कार्य बदवियों को सौप देते हैं, वे उनकी सहायता के बिना कुछ नही कर सकते। यह बात अक्सर देखने मे आयी है। ग्रामों, नदी के घाटो अथवा बड़े-बड़े मार्गों की जानकारी के विषय मे वे उन्ही पर भरोसा करते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपनी आदत का दास होता है, न कि स्वभाव एवं प्रवृत्ति का। जब कोई मनुष्य किसी बात का इतना आदी हो जाय कि वह बात ही उसका स्वभाव एव उसकी प्रवृत्ति बन जाय तो फिर यह आदत केवल आदत नही रहती, अपितु स्वाभाविक प्रवृत्ति बन जाती है। मनुष्य-जीवन के गहन अध्ययन से यह बात पूर्णतः प्रमाणित हो जायगी। "ईश्वर की जो इच्छा होती है, उसी का वह सर्जन करता है।"[१]

(६) क़ानून पर भरोसा करने के कारण नगर-निवासियों की वीरता समाप्त हो जाती है और वे प्रतिरोध नहीं कर पाते

इसका कारण यह है कि मनुष्य स्वेच्छा से कोई कार्य नही कर सकता। ऐसे हाकिमों की, जो दूसरों को अपने अधीन किये रहते हैं, सख्या बहुत कम होती है। अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्य साधारणतः अन्य लोगों के अधीन रहता है।

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

यदि शासन मे सहानुभूति एवं न्याय पाया जाता है और किसी पर अनुचित अत्याचार और अन्याय नही होता तो लोग अपनी प्राकृतिक भावनाओं का,चाहे वे वीरता से सबंधित हों अथवा कायरता से, पालन करते है। यदि वे अपनी स्वतंत्रता में शासक को बाधक नही पाते और उसकी रक्षा की चिन्ता से मुक्त होते है, तो उनकी मर्यादा को कोई हानि नही पहुँचती। इसके विपरीत यदि राज्य मे अत्याचार एवं अन्याय होता है तो ऐसे शासन के अधीन रहनेवाले लोगों की वीरता एव साहस का अन्त हो जाता है और उनकी प्रतिरक्षा की भावनाएँ समाप्त हो जाती है। कारण कि जब लोगों को आवश्यकता से अधिक दबा दिया जाता है तो उनके शरीर शिथिल एवं साहस, जैसा कि हम आगे उल्लेख करेंगे, मंद हो जाता है।

जब क़ादसिया[1] के युद्ध मे जुहरा बिन हवीया ने जालीनूस का पीछा करके उसकी हत्या कर दी और उसके अस्त्र-शस्त्र, जिनका मूल्य ७५,००० अशरफ़ियाँ थी, छीन लिये तो साद[2] ने जुहरा से अस्त्र-शस्त्र लेकर अपने अधिकार में कर लिये और कहा कि "तुमने मेरी आज्ञा बिना जुहरा का पीछा क्यों किया ?" और यह घटना हजरत उमर को लिख भेजी। हज़रत उमर ने साद को लिखा कि "जुहरा ने यदि पीछा किया तो क्या बुरा किया ? युद्ध में यदि शिथिलता हुई तो तुम्हारी ओर से हुई और उस पर भी तुम अत्याचार एवं अन्याय प्रदर्शित करते हो और जुहरा का दिल तोड़ते हो।" अतः उन्होंने आदेश दिया कि छीने हुए अस्त्र-शस्त्र जुहरा को लौटा दिये जायँ।[3]

यदि शासन द्वारा कठोर दंड के आधार पर क़ानूनों का पालन कराया जाता है तो शासन की इस कठोरता से लोगों के हृदय की वीरता, पौरुष एवं साहस आदि गुणों का अन्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि दड सहन करते-करते और अपनी मर्यादा की रक्षा का अभाव देखते-देखते लोग अपमान के आदी बन जाते है, जिससे वीरता एवं पौरुष की भावनाएँ समाप्त हो जाती है। यदि शासन के आदेश शिक्षा एवं अनुशासन की दृष्टि से दिये जायँ, जैसा कि प्रायः बाल्यावस्था में दिये जाते है, तो इसका प्रभाव भी आज्ञाकारी समूह पर पड़ेगा और आतक एव आज्ञाकारिता हृदय मे आरूढ़ हो जायगी तथा पौरुष एवं वीरता की भावनाएँ हृदय से लुप्त हो जायँगी। यही कारण है कि अरब उन लोगों की अपेक्षा, जो शासन द्वारा प्रश्रय पाते है, अधिक साहसी एवं निर्भीक

१. यह युद्ध ३१ मई अथवा १ जून ६३७ ई० को हुआ।

२. साद बिन अबी वक़्क़ास, अरब सेना का सेनापति।

३. तबरी ने भी अपने इतिहास में इस घटना का उल्लेख किया है।

होते हैं। यही दशा उन लोगों की है जो शिक्षा प्राप्त करने और कला-कौशल सीखने में दड भोगते हैं। इस प्रकार उनका भी साहस समाप्त हो जाता है और अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने की भावना को वे खो देते है। यही दशा उन विद्यार्थियों की है जो सूफ़ियों एवं आलिमों की सम्मानित गोष्ठियों मे बैठकर शिक्षा प्राप्त करते हैं और उनके सामने अपनी मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट कर देते है। उनके साहस एवं पौरुष का भी अन्त हो जाता है।

अब यहाँ सम्मानित सहाबियो[1] के उदाहरण को सामने रखकर सन्देह न किया जाय, कारण कि वे बड़ी नम्रता एव दीनतापूर्वक दीन[2] तथा शरीअत की शिक्षा ग्रहण करते थे। किन्तु इसके बावजूद उनकी वीरता एव उनके पौरुष मे कोई कमी न होती थी, अपितु उनकी गणना शूरवीरो मे होती थी। इसका कारण यह है कि मुसलमानो ने धर्म की शिक्षा ऐसे सम्मानित व्यक्तियो से प्राप्त की जो सहाबियो मे से थे और जो समझा-बुझाकर तथा प्रोत्साहन द्वारा शिक्षा दिया करते थे। वह शिक्षा आधुनिक कला-कौशल एव साहित्य की शिक्षा के समान न थी, अपितु उसमे धर्म के आदेश एव शिक्षाएँ बतायी जाती थीं। इनके द्वारा मुसलमानों का धार्मिक विश्वास दृढ हो जाता था और वे केवल ईश्वर से भयभीत रहते तथा अन्य सभी शक्तियों की उपेक्षा करने लगते थे। यही कारण है कि सम्मानित सहाबियों की शक्ति एवं उनके पौरुष में किसी प्रकार की कमी न हुई और वे उसी प्रकार दृढ़ रहे। इस्लामी शिक्षा से उन्हे कोई हानि न हुई। हजरत उमर का कथन है कि "जिसका उपकार शरीअत द्वारा न हो, उसका उपकार सम्भव ही नही।" इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति खुद अपना सुधारक बनकर शरा के नियमो का पालन करके अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से शुद्ध कर सकता है। उसे विश्वास होता है कि शरा से बढ़कर लोगो का शुभचिन्तक कोई अन्य नहीं। संक्षेप में इस्लामी शिक्षा बहुत समय तक इसी ढग पर चलती रही। जब धर्म में दोष उत्पन्न होने लगे और हाकिमों के आदेश चलने लगे तो शरीअत साधारण ज्ञान एव कला की शिक्षा के समान ताड़न द्वारा सिखायी जाने लगी। लोग नगर के जीवन की ओर आकृष्ट हुए और दासों के समान आदेशो का पालन होने लगा। मनुष्य की वीरता एव पौरुष का अन्त होने लगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐसे शासन एवं ऐसी शिक्षा से प्रजा एवं विद्यार्थियों की

१. हज़रत मुहम्मद के सहायक, मित्र।
२. इस्लाम धर्म।

वीरत्व भावनाओं को अत्यधिक हानि पहुँचती है, कारण कि दोनों के ही आदेश देने का काम प्रायः अन्य लोगों के हाथ में होता है। इस प्रकार नगरनिवासी बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक राज्य एवं शिक्षकों की आज्ञाओं का पालन करते करते कमज़ोर एवं साहसहीन हो जाते हैं। परन्तु बदवियों की दशा इसके विपरीत है, कारण कि वे न तो किसी बादशाह के आज्ञानुवर्ती होते हैं और न किसी शिक्षक के।

अबू मुहम्मद बिन अबी ज़ैद[1] ने अपने ग्रंथ[2] में शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि "शिक्षक को बालकों को तीन बेंत से अधिक कदापि न मारने चाहिए।" दंड की यह सीमा उसने क़ाजी शुरैह[3] के आधार पर निश्चित की है। कुछ विद्वानों ने इस सीमा का यह कारण बताया है कि वही[4] के प्रारम्भ में हज़रत मुहम्मद के शरीर को तीन बार दबाया गया था, किन्तु यह बात अधिक बुद्धि-ग्राह्य नही। हज़रत मुहम्मद को तीन बार दबाये जाने से दंड की सीमा पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, कारण कि दैवी शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं। "ईश्वर ही बुद्धिमान् है और सब कुछ जानता है।"

(७) असबियत वाले ही बदवी रेगिस्तान में जीवन निर्वाह कर सकते हैं

यह बात जाननी चाहिए कि ईश्वर ने मनुष्य के स्वभाव में गुण तथा दोष दोनों ही का समावेश किया है। क़ुरान में दैवी आदेश है कि हमने मनुष्य को सन्मार्ग एवं कुमार्ग दोनों ही दिखा दिये हैं। किन्तु यदि मनुष्य अपने स्वभाव की देख-भाल की ओर से लेश मात्र भी असावधान हो जाय और धर्म का पालन करते हुए अपना सुधार न करे, तो पापों एव दोषों के फंदे में शीघ्र फँस जाता है। साधारण मनुष्यो के लिए भी यही बात सत्य है, किन्तु ईश्वर के विशिष्ट दास गुणों के अत्यन्त निकट एवं दोषों से बहुत दूर होते है। चूंकि अत्याचार एवं अन्याय की भावनाएँ मनुष्य में जन्म से ही वर्त्तमान

१. अब्दुल्लाह (उबैदुल्लाह) बिन अबी ज़ैद (जन्म ३१६ हि०/९२८ ई०–मृत्यु ३८६ हि०/९९६ ई०), इब्ने ख़लदून ने कई स्थानों पर उसकी रचनाओं के हवाले दिये हैं।
२. "अहकामुल मुअल्लेमीन वल मुतअल्लेमीन"।
३. सम्भवतः सातवीं शताब्दी ईसवी का प्रसिद्ध क़ाज़ी, जिसे हज़रत उमर ने कूफ़े का क़ाज़ी नियुक्त कर दिया था।
४. वह आदेश जो हज़रत मुहम्मद को जिब्रील फ़िरिश्ते द्वारा प्राप्त होता था।

होती हैं, अतः जब किसी की दृष्टि किसी की धन-सम्पत्ति पर पड़ती है तो उसका हृदय यही चाहता है कि वह उस धन-सम्पत्ति का अपहरण कर ले। यदि उसे शासक का भय न हो तो वह ऐसा कर भी डाले।

शेर— अन्याय मनुष्य की आदत है, यदि तुम देखो,

यदि सदाचारी अन्याय नहीं करते तो इसका कुछ-न-कुछ कारण होगा।

नगरों में एक-दूसरे पर अत्याचार को रोकने का उत्तरदायित्व शासक एवं समकालीन शासन पर है। वे अपनी अधीनस्थ प्रजा को अपने अधिकार में रखते हैं और उस पर अत्याचार नहीं होने देते। लोग शासन के भय से अत्याचार नही करते। यदि समकालीन शासक ही अत्याचार करने लगे तो फिर इसका कोई उपाय नहीं। यदि कोई बाहरी खतरा उठ खड़ा हो अर्थात् कोई शत्रु दिन अथवा रात्रि में आक्रमण कर दे, तो नगर की दीवारें एवं कोट नगरवालों को बाहरी शक्ति के अत्याचार से सुरक्षित रखते हैं, या फिर देश के वीर अपने प्राणों को हथेली पर रखकर बाहरी सत्ता के अत्याचार को रोक देते हैं।

यह तो नगरवासियों के विषय में लिखा गया। अब बदवी क़बीलो के विषय में सुनिए। उनके ग्रामों मे न तो शासक होते है और न सुल्तान, न चहारदीवारी होती है और न कोट और न सेना तथा लश्कर। वहाँ के शेख अथवा नेता उस आदर तथा सम्मान के कारण, जो लोगों के हृदय में उनके प्रति स्थिर होता है, एक-दूसरे को अत्याचार से बचाते हैं। जब किसी क़बीले के किसी घर पर कोई अत्याचार होता है तो उस क़बीले के वीर एवं शेख़ अथवा उसके अन्य सम्बन्धी क़बीलेवाले की सहायता एवं रक्षा करते है और अत्याचार को रोकते हैं। यह बात उसी समय सम्भव है जब कि उस क़बीले में "असबियत"[१] हो, सभी एक ही कुल के हों और कबीला विशेष गौरव एव ऐश्वर्य का स्वामी हो। अन्य लोगों को ऐसी हालत में उनसे झगड़ा मोल लेने में भय लगता रहता है, क्योंकि जब क़बीले का प्रत्येक व्यक्ति अपने वश एवं अपने ही लोगों पर प्राण न्योछावर करता है, तब उसकी शक्ति अजेय होती है। ईश्वर ने मानव मात्र के स्वभाव में यह बात उत्पन्न कर दी है कि वे अपने सम्बन्धियों एवं निकटवर्तियों के लिए ही बलिदान करते है और एक क़बीले एवं वंश के समस्त

१. प्रस्तावना में इस विषय पर विस्तार से उल्लेख हुआ है।

सँभाल लिया। इस अवसर पर उसने जो उद्घाटन-वक्तव्य दिया तथा अन्य स्थानों पर आचार्य पद पर नियुक्ति-विषयक जो उद्घाटन-भाषण दिये उन्हें अपनी आत्म-कथा मे उद्धृत किया है।

क़महीयह महाविद्यालय के उद्घाटन-भाषण में उसने तुर्कों एवं बरक़ूक़ की प्रशंसा के साथ-साथ यह बताया कि वह किस प्रकार आचार्य के कर्त्तव्यों का पालन करना चाहता है। ज़ाहिरीयह महाविद्यालय नया स्थापित हुआ था, अतः उसने वहाँ दूसरे ही प्रकार से अपना भाषण दिया। वहाँ उसने महाविद्यालय के निर्माता बरक़ूक़ की प्रशंसा विशेष रूप से की। उसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्घाटन-भाषण सुग़तमिशीयह महाविद्यालय का था। बरक़ूक की प्रशंसा से प्रारम्भ करके उसने यह बताया कि आचार्य के रूप में उसके कार्य के क्या मुख्य सिद्धान्त होंगे। इसके साथ-साथ उसने इमाम मालिक की "मुवत्ता" का बड़ा विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण किया। इन तीनों भाषणों से मिस्र के विद्वान् बड़े प्रभावित हुए और उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगे।

आचार्य के रूप में उसे प्रायः फिक़ह तथा हदीस की शिक्षा देनी पड़ती थी, किन्तु वह इतिहास के विषय मे भी भाषण किया करता था और "मुक़द्दमे" पर भी।

८ अगस्त १३८४ ई० को बरकूक ने उसे मुख्य मालिकी क़ाज़ी नियुक्त कर दिया। बीच-बीच में वह इस पद से पृथक् होता रहा, किन्तु फिर भी वह पाँच बार इस पद पर नियुक्त हुआ और जब उसकी मृत्यु हुई तो भी वह मुख्य क़ाजी के पद पर आरूढ़ था। वह कर्त्तव्य परायणता के सामने आलोचकों की अधिक चिन्ता न करता था। उसने भ्रष्टाचार का अन्त कराने तथा "शरीअत" के अनुसार निर्णय करने का घोर प्रयत्न किया। बड़े से बड़ा पदाधिकारी अथवा सम्मानित व्यक्ति उसे प्रभावित करके कर्त्तव्य के सन्मार्ग से विचलित न कर सकता था। स्पेन तथा उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में उसे सुल्तानों को राजनीति की शिक्षा देकर एक आदर्श राज्य स्थापित करने में असफलता हो चुकी थी। विभिन्न सामाजिक ढाँचों के गहन अध्ययन के कारण उसे विश्वास हो गया था कि किसी प्रकार के प्रचार अथवा भाषण द्वारा सामाजिक सुधार सम्भव नहीं। उसने भली-भाँति यह समझ लिया था कि यदि शासक अपने राज्य को दृढ़ बना ले, अपनी प्रजा की रक्षा कर सके तथा विद्वानों को आश्रय प्रदान कर सके और आलिम लोग शरीअत एवं देश के क़ानून को भली भांति समझकर उसका पालन कर सकें तो जहाँ एक ओर समाज का कल्याण हो सकेगा वहाँ दूसरी ओर राज्य भी उन्नति कर सकेगा। इब्ने

ख़लदून ने क़ाज़ी के पद पर आरूढ़ होकर उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने का घोर प्रयत्न किया।

क़महीयह महाविद्यालय के आचार्य का पद ग्रहण करने के उपरान्त ही उसने अपने परिवार को भी मिस्र बुलवा लेने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। अबुल अब्बास, इब्ने ख़लदून के परिवार को जाने की अनुमति न देना चाहता था। वह समझता था कि सम्भवत: उसके कारण इब्ने खलदून पुनः उत्तर–पश्चिमी अफ्रीका वापस आ जायेगा, किन्तु बरक़ूक़ ने अबुल अब्बास को एक पत्र इब्ने खलदून के परिवार को मिस्र आने की अनुमति देने के लिए ८ अप्रैल १३८४ ई० को ट्युनिस भेजा। अबुल अब्बास ने इब्ने खलदून के परिवार को जाने की अनुमति दे दी, किन्तु जिस जहाज़ में उसका परिवार आ रहा था वह सिकन्दरिया के बन्दरगाह के समीप अक्तूबर-नवम्बर १३८४ ई० में नष्ट हो गया। इब्ने ख़लदून को इस दुर्घटना से बहुत बड़ा धक्का पहुँचा।

क़ाजी के पद से मुक्त हो जाने के उपरान्त उसे जाहिरीयह महाविद्यालय में मालिकी फ़िक़ह का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। २९ सितम्बर १३८७ ई० को वह हज के लिए मक्का रवाना हो गया और ८ मास की यात्रा के उपरान्त वापस आया। मार्ग में उसने पूर्व के बड़े-बड़े विद्वानों से भेंट की। वापसी के उपरान्त जनवरी १३८९ ई० में वह सुरग़तमिशीयह महाविद्यालय में हदीस का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद ही बेबर खानक़ाह के अध्यक्ष का पद भी रिक्त हो गया। आचार्य के पद के साथ-साथ अध्यक्ष का पद भी उसे प्रदान कर दिया गया।

१३८९ ई० मे बरक़ूक़ के विरुद्ध मिस्र में विद्रोह हो गया और वह राज-सिंहासन से वंचित कर दिया गया, किन्तु २ फरवरी १३९० ई० को वह पुनः सिंहासनारूढ़ हो गया। इस बीच में इब्ने ख़लदून को भी मिस्र के अन्य फकीहों की भाँति बरक़ूक के विरुद्ध एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ गये थे। बरक़क़ इससे अत्यधिक रुष्ट हुआ। इब्ने ख़लदून ने अपनी सफाई में एक कविता की रचना करके उसे बरक़ूक़ की सेवा में प्रस्तुत किया। बरक़ूक़ कविता से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने अपने पुराने आश्रित को, जिसकी मिस्र में इतनी उन्नति उसी के कारण प्राप्त हुई थी, क्षमा कर दिया। किन्तु उसके शत्रुओं ने अवसर पाकर उसे बेबर ख़ानक़ाह की अध्यक्षता के पद से पृथक् करा दिया, यद्यपि बरक़ूक़ तथा इब्ने ख़लदून के पारस्परिक सम्बध अधिक ख़राब न हो सके। २१ मई

१३९९ ई० को बरक़ूक़ ने उसे आचार्य पद के साथ मालिकी क़ाज़ी का पद भी प्रदान कर दिया।

एक मास उपरान्त बरक़ूक़ की मृत्यु हो गयी और उसका १० वर्ष का बालक फ़रज उसके स्थान पर सिहासनारूढ़ हुआ। उसने इब्ने ख़लदून को उन पदों पर, जो उसके पिता ने उसे प्रदान किये थे, आरूढ़ रहने दिया। १४०० ई० में वह फ़रज के साथ दमिश्क़ की यात्रा को गया। वापस होते समय उसने फ़लस्तीन, येरोशलम, बेथलेहेम तथा हरबोन के दर्शन किये। वहाँ से लौटने के उपरान्त कुछ षड्यंत्रकारियों के कारण वह क़ाजी के पद से हटा दिया गया।

उस समय तीमूर के तातारी (मुग़ुल अथवा मंगोल) शाम पर बढ़ते चले आ रहे थे और मिस्र ख़तरे में था। फ़रज सेना लेकर उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। इब्ने ख़लदून को भी, यद्यपि वह क़ाजी के पद से मुक्त हो चुका था, फ़रज के साथ अपनी इच्छा के विरुद्ध जाना पड़ा। सेना नवम्बर १४०० ई० में युद्ध के लिए रवाना हुई और एक मास उपरान्त दमिश्क़ पहुँच गयी। तीमूर दमिश्क़ की ओर रवाना हो चुका था और फ़रज ने उसके पहुँचने के पूर्व नगर की प्रति-रक्षा की व्यवस्था कर ली। तीमूर के पहुँचने पर एक मास तक दोनों ओर से झड़पें होती रहीं।

जनवरी १४०१ ई० के प्रथम सप्ताह में फ़रज एवं उसके विश्वासपात्रों को पता चला कि सुल्तान के विरुद्ध मिस्र में षड्यंत्र हो रहा है और वे लोग वापस चले गये। दमिश्क़ वालों की समझ में न आता था कि वे क्या करें। उस समय सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों में घोर मतभेद हो गया। सैनिक अधिकारी युद्ध को चलाते रहने के पक्ष में थे, किन्तु असैनिक अधिकारी, क़ाज़ी एवं फ़क़ीह इत्यादि, जिनमें इब्ने ख़लदून भी सम्मिलित था, दमिश्क़ को समर्पित कर देने की राय दे रहे थे। अन्त में दमिश्क़ समर्पित कर दिया गया जिसे तातारियों ने लूट-कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

जब दमिश्क़ के क़ाज़ी तीमूर की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने इब्ने ख़लदून के विषय मे प्रश्न किये और उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। क्योंकि सैनिक लोग अब भी द्वारों पर अधिकार जमाये हुए थे, अतः इब्ने ख़लदून को दमिश्क़ की चहार-दीवारी के बाहर रस्सी बाँधकर लटका दिया गया और १० जनवरी १४०१ ई० को उसने तीमूर से भेंट की। इब्ने ख़लदून तीमूर से कई बार मिला और वह फ़रवरी १४०१ ई० तक उस युग के विश्वविजेता के साथ रहा।

इब्ने खलदून ने अपनी भेंटों के समय अपने साथियों एवं अपनी रक्षा के सम्बन्ध में घोर प्रयत्न किये। उसकी उपस्थिति से तीमूर ने पश्चिम के देशों के विषय में सविस्तर ज्ञान प्राप्त करने एवं उसके अनुभव से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। किन्तु इब्ने ख़लदून ने तीमूर को इस सम्बन्ध में जितने भी उत्तर दिये उनमें इस बात का प्रयत्न किया कि मिस्र अथवा पश्चिम के देशों की कमज़ोरी का तीमूर को जितना कम से कम ज्ञान हो वह अच्छा। तीमूर ने इब्ने खलदून को पश्चिम के देशों का सविस्तर भूगोल लिखने का आदेश दिया और उसका मंगोली भाषा में अपने तथा अपने सेनापतियों के लिए भाषांतर कराया। इब्ने खलदून को सम्भवतः अपने इस कार्य से बड़ा क्षोभ हुआ और जैसे ही वह तीमूर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हुआ, उसने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के निवासियों के नाम एक बड़ा लम्बा चौड़ा पत्र लिखा, जिसमें उसने तातारियों के इतिहास एवं तीमूर का बड़ा विशद वर्णन किया। तीमूर के पास से वापस आते हुए जहाज़ में इब्ने खलदून की मुलाक़ात एशिया माइनर के उतमान सुल्तान बायज़ीद यिलदिरिम के राजदूत से हो गयी। उसके द्वारा इब्ने ख़लदून को उस ओर के देशों का भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ।

मार्च १४०१ ई० में इब्ने ख़लदून मिस्र वापस पहुँच गया, और अप्रैल १४०१ ई० में तीसरी बार पुनः क़ाज़ी नियुक्त कर दिया गया, किन्तु मार्च १४०२ ई० में वह अपने पद से पृथक् कर दिया गया। जुलाई १४०२ ई० में वह पुनः क़ाजी नियुक्त हुआ और सितम्बर १४०३ ई० में पदच्युत कर दिया गया। ११ फरवरी १४०५ ई० को वह फिर क़ाज़ी बनाया गया और मई १४०५ ई० के अन्त में पुनः इस पद से हटा दिया गया। मार्च १४०६ ई० में उसे फिर क़ाज़ी नियुक्त किया गया, किन्तु कुछ दिन उपरान्त १७ मार्च १४०६ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी और क़ाहेरा के नस्र द्वार के बाहर सूफ़िया क़ब्रिस्तान में उसे दफ़न कर दिया गया।

इब्ने खलदून का परिवार

सम्भवतः उसका विवाह बनी हफ़स के सेनापति मुहम्मद बिन अल हकम (मृत्यु १३४३ ई०) की पुत्री से ट्युनिस में ही हो गया था, किन्तु जब १३६३ ई० में वह स्पेन जाने लगा तो उसे अपनी पत्नी एवं परिवार वालों को उसके भाई के घर क़िसिन्तीना भेज देना पड़ा। यद्यपि उसे अपने परिवार वालों से बड़ा स्नेह था, किन्तु किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहने के कारण उसे उनसे बार-बार पृथक् होना पड़ता था और कभी-कभी उसके कारण उन लोगों को स्वतंत्रता से वंचित कर दिया

जाता था। किन्तु जब उसे मिस्र में शान्ति से कुछ समय रहने का अवसर मिला तो उसने अपने परिवार को वहाँ बुला भेजा। पर जिस जहाज़ मे वह परिवार आ रहा था, ट्युनिस से आते हुए वह नष्ट हो गया। उस जहाज़ में उसकी पत्नी एवं पाँच पुत्रियो की मृत्यु हो गयी, किन्तु दो पुत्र मुहम्मद तथा अली किसी न किसी प्रकार सुरक्षित पहुँच सके। सम्भवतः इब्ने ख़लदून ने मिस्र मे पुन. विवाह किया।

(३)

मुक़द्दमा

इब्ने ख़लदून ने अपने इतिहास की प्रस्तावना के प्रारम्भ मे केवल थोड़े से ही पृष्ठ लिखे थे, जिसमे इतिहास के महत्त्व एव इतिहासकारों की सामान्य भूलों तथा उनके कारणों की चर्चा की थी और दिखाया था कि किस प्रकार अपने सामाजिक वातावरण से अनभिज्ञ होने के कारण बड़े बड़े इतिहासकार तक भूलें कर जाते है। "मुक़द्दमे" का शेष भाग वास्तव मे उसके इतिहास (किताबुल इब्र) का प्रथम भाग है जिसमें उसने अपने निष्कर्षों की व्याख्या की है और उन्हे उदाहरण सहित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इब्ने खलदून के जीवन-काल में ही प्रस्तावना एवं प्रथम भाग दोनों "मुकद्दमे" के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे और एक ही ग्रंथ समझे जाते थे।

उसने "मुक़द्दमे" की प्रस्तावना मे इतिहासकारों की भूलों के सम्बन्ध में १२ उदाहरण दिये है, जिनसे पता चलता है कि मनुष्य के प्रकृति एव मानव-समाज सबंधी अज्ञान के कारण इतिहासकारों का भ्रम मे पड़ जाना स्वाभाविक है। अतः उसके लेखानुसार इतिहासकारों के लिए यह आवश्यक है कि वे आलोचनात्मक दृष्टि से प्रत्येक बात की खोज का सर्वदा प्रयत्न करते रहे और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व विभिन्न अवसरों पर घटनेवाली घटनाओं की तुलना किया करें। उसने जो उदाहरण प्रस्तुत किये है उनकी आलोचना उसने ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सैनिक एव आर्थिक दृष्टिकोण से की है। किसी घटना को स्वीकार करने अथवा रद्द करने के पूर्व सुल्तानों के चरित्र, नैतिकता, धार्मिक विचारो एवं सामाजिक व्यवहार की भी उसने आलोचना की है और यह दिखाया है कि कभी कभी षड्यंत्रकारियों द्वारा भी बादशाहों के विरुद्ध झूठी-सच्ची बातें प्रसिद्ध हो जाया करती है। ईर्ष्या एव द्वेष तथा अज्ञानता का भी झूठे समाचारों के प्रसिद्ध हो जाने में बड़ा हाथ होता है। प्रारम्भ के इतिहासकारों की भूल का परिणाम यह होता

ह कि बाद के इतिहासकार, जो आलोचनात्मक दृष्टि से घटनाओं का विवेचन नहीं करते, वे आँख बन्द करके उनका अनुकरण करने लगते है और इतिहास विश्वास के योग्य नहीं रह जाता। अतः इब्ने खलदून ने इतिहास की रचना के लिए ऐतिहासिक घटनाओं की स्वाभाविक स्थिति के ज्ञान को परमावश्यक बताया है। घटनाओं के साथ-साथ उनके सूत्रों के विषय मे भी प्रामाणिक ज्ञान की आवश्यकता के विषय में उसने विवेचना की है।

"किताबुल इब्र" की प्रस्तावना में सभ्यता की विशेषताएँ बताते हुए उसने मानव की आदि-कालीन स्थिति से लेकर प्राचीन काल के मेसोपोटामिया, दक्षिणी अरब, मिस्र, ईरान, यूनान एव रोम की सभ्यताओं की पृष्ठभूमि में निष्कर्ष निकाले है।

पहले अध्याय में उसने मनुष्य के प्राकृतिक वातावरण का विश्लेषण करते हुए मनुष्य के सामाजिक वातावरण पर उसका प्रभाव सिद्ध किया है और यह दिखाया है कि मनुष्य के चरित्र पर किस प्रकार जलवायु का प्रभाव पड़ता है तथा अकाल और अल्प-मूल्यता से मनुष्य के शरीर एव चरित्र किस तरह प्रभावित होते है। इसके अतिरिक्त इसी अध्याय मे मनुष्य की परोक्ष की बातों में रुचि एव उनके ज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्न के सम्बन्ध मे आलोचनात्मक परीक्षा की है।

दूसरे अध्याय मे आदि-कालीन सभ्यता का मुख्य रूप, जिसे बदवी सभ्यता कहा जाता है, दिखलाया गया है। उस सभ्यता मे मनुष्य की आवश्यकताएँ अधिक नही होती। अरब तथा अफ़्रीका के बरबरों के जीवन एव सभ्यता मे इस समूह का जो स्थान है और ऐसा जीवन उनके चरित्र पर जो छाप डालता है और उनमें जिस प्रकार वीरता एव प्रति-रक्षा की भावनाएँ उत्पन्न करता है, उसे भली-भाँति स्पष्ट किया है। "असबियत" एवं अरबो के सामाजिक जीवन पर उसके प्रभाव का विशेष विवेचन भी इस अध्याय में किया गया ह।

तीसरे अध्याय मे ख़िलाफ़त एवं सल्तनत के पारस्परिक सम्बन्ध, धार्मिक प्रचार का नयी सल्तनतों पर प्रभाव, सल्तनत की विशेषताएँ, उसके गुण एवं दोष, खिलाफत एव सल्तनत के पद तथा दोनों के पदाधिकारियों के अधिकारों आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

चौथे अध्याय मे नगरो की स्थापना, नगर के भवनों के निर्माण, नगर की संस्कृति एव सभ्यता के विकास तथा सल्तनतों का नगर के जीवन एव सभ्यता से सम्बन्ध और नगरों के पतन एवं विनाश की चर्चा की गयी ह।

पाँचवें अध्याय मे मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं एवं जीविकोपार्जन के साधनों, व्यापार, कृषि, कला-कौशल तथा बदवियो एवं नगर-वासियो के जीविकोपार्जन के साधनो के अन्तर का उल्लेख किया गया है।

छठे अध्याय में ज्ञान-विज्ञान की क़िस्मों, इस्लामी देशों की शिक्षा-पद्धति तथा मुसलमानों की समस्त प्रचलित ज्ञानशाखाओं का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस प्रकार तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति की कोई ऐसी शाखा शेष नही रही जिसकी इब्ने ख़लदून ने चर्चा न की हो।

इब्ने ख़लदून ने प्राचीन एवं मध्य-कालीन सभ्यता के अनेक बड़े-बड़े केन्द्र देखे थे। मिस्र में तो वह स्वयं २३ वर्ष तक रहा। अन्य स्थानों में या तो वह स्वयं पहुँचा और या उसने वहाँ के यात्रियों के मुंह से उन स्थानों के पर्यटन के वर्णन सुने। उन स्थानों की सभ्यताओं के अभ्युदय एवं उन्नति के ग्रंथों का उसने अध्ययन किया था और उनके अवशेष देखकर उनके प्राचीन गौरव का अनुमान लगाया था। इस प्रकार वह इस बात से संतुष्ट हो गया था कि सभ्यता की उन्नति मिल-जुलकर काम करने पर निर्भर है।

इब्ने ख़लदून के अनुसार समस्त सामाजिक संगठन दो विभिन्न वातावरणों से सम्बन्धित होते है। एक का सम्बन्ध है रेगिस्तान के उस जीवन से जिसे वह "बदवी" जीवन कहता ह, और दूसरे का सम्बन्ध नगर के जीवन से है जिसे वह "हज़री जीवन" कहता है। पहले प्रकार के जीवन में मनुष्य की आवश्यकताएँ थोड़ी एवं उसका जीवन सरल तथा सादा होता है। "बदवी" जीवन से इब्ने ख़लदून का तात्पर्य प्रत्येक स्थान पर ख़ानाबदोशों के जीवन से नहीं, अपितु उन लोगों के जीवन से भी है जो ग्रामों में निवास करते है और कृषि एवं पशु पालन करके जीवन निर्वाह करते है। इसी प्रकार वह नगरों को कृषि एवं कृषकों से रहित नहीं समझता। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक संगठन ही उसके अध्ययन का मूल विषय है। सामाजिक संगठन का मूल आधार उसने "असबियत" को बताया है।

"असबियत" अथवा 'असबिया' का ठीक हिन्दी अनुरूप शब्द बता सकना कठिन ह। इब्ने ख़लदून ने इसे अपने ग्रंथ भर में एक बड़ा प्रशंसनीय गुण बताया है। उसके अनुसार प्रत्येक सामाजिक संगठन इसी पर आधारित होता है। उसने "बदवी" समाज में इसे बड़ा महत्त्व दिया है और नगर की सभ्यता एवं संस्कृति के पतन तथा बड़े-बड़े राज्यों के विनाश का मूल कारण "असबियत" की कमी अथवा एकान्त अभाव ही बताया है।

अरबी साहित्य में भी "असबियत" शब्द का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। प्राचीन "बदवी" क़बीलों के जीवन का आधार ही, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, असबियत था। असबियत के अधीन कोई भी व्यक्ति अपने क़बीले के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को जिन्दा रहने का पात्र न समझता था। अनुचित पक्षपात एव न्याय अन्याय आदि सभी बातों में क़बीले का गुणगान करना ही "असबियत" माना जाता था। इस्लाम के अभ्युदय के उपरान्त इस भावना का इस्लाम की उन्नति के मार्ग में बाधक होना स्वाभाविक ही था, अतः इस्लाम ने "असबियत" की घोर निन्दा की है। किन्तु इब्ने खलदून ने क़बीले अथवा समूह वालों के पारस्परिक प्रेम, संगठन, दु ख-सुख में एक-दूसरे का साथ देने, युद्ध के समय एक-दूसरे की रक्षा करने एवं हाथ बटाने तथा अन्याय एवं अत्याचार को रोकने की भावनाओं को "असबियत" बताया है। इसका अर्थ केवल अनुचित पक्षपात, अधा प्रेम एवं अपनी शक्ति का संगठन करके दूसरों पर अत्याचार करना नही है।

कुछ अन्य अरबी भाषा के लेखकों ने भी इस भावना को प्रशंसनीय बताया है। इतिहासकार इब्ने असीर के अनुसार क़बीलों की कठिनाई के समय सहायता करने का नाम "असबियत" है। इब्नुल खतीब ने लिखा है कि "असबियत का उपयोग देश अथवा कौम के प्रेम को जागृति देने के लिए किया जा सकता है, अतः इसकी कोई आलोचना नहीं करनी चाहिए।" 'बदवी' क़बीलों का, जिनमें न तो कोई शासन होता है और न कोई विधान, जीवन निर्वाह "असबियत" के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सम्भव नहीं। यही सिद्धान्त पशुओं के लिए, चरागाहों की खोज में फिरनेवाले क़बीलों एवं उन ग्रामीणों के लिए भी लागू किया जा सकता है जो किसी शासन के अधीन नही होते। इस सम्बन्ध मे वशों अथवा कुलों के ऐक्य का भी बड़ा महत्त्व है। ख़ून के रिश्ते बड़े मज़बूत होते हैं। उनके प्रभाव से यदि कोई मनुष्य अपने किसी निकटतम सम्बन्धी पर अत्याचार होते देखता है अथवा उसे ख़तरे में फँसा हुआ पाता है तो उसका रक्त खौलने लगता है। पारस्परिक स्नेह एवं प्रेम द्वारा भी सहानुभूति एवं निष्ठा की ऐसी ही भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर इब्ने ख़लदून ने "असबियत" को दो भागों में विभाजित किया है, एक साधारण और दूसरी विशेष। विशेष "असबियत" निकटतम सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होती है और साधारण "असबियत" पूरे क़बीले अथवा समूह में पायी जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे क़बीलों के जिस वंश अथवा घराने में अत्यधिक "असबियत" पायी जाती है वही राज्य का स्वामी बन जाता है। उस पर अन्य क़ौम का कोई आदमी

शासन नहीं कर सकता। इस प्रकार इब्ने ख़लदून के अनुसार "असबियत" के कारण ही स्वाभाविक रूप से नये राज्यों एवं शासन का अभ्युदय होता है। "असबियत" के बल पर ही बादशाह अपनी क़ौमवालों तथा अपनी प्रजा पर अधिकार स्थापित रखता है। यदि एक क़बीले के विभिन्न घरानों की अलग अलग "असबियत" हो तो एक शक्तिशाली "असबियत" का होना परमावश्यक है जिसे देश अथवा राज्य की "असबियत" कहा जा सकता है। यदि ऐसी कोई "असबियत" न हो तो क़बीले एवं वंश का संगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा। जिस क़ौम मे "असबियत" की भावनाएँ दृढ हो जाती हैं उसका राज्य सुगमतापूर्वक नष्ट नहीं हो पाता। यदि एक वश से राज्य निकल जाता है तो दूसरे वंश को प्राप्त हो जाता है। जब राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो अन्य क़ौमों एवं सभ्यताओं से उनका सम्पर्क बढ़ जाता है। उनकी "असबियत" की भावनाओ का धीरे धीरे पतन होने लगता है, इस कारण राज्य का भी विनाश हो जाता है। एक "असबियत" वाली शक्तिशाली क़ौम को दूसरी कमजोर "असबियत" वाली क़ौम पर शनैः शनैः राज्य प्राप्त करने मे सुगमता होती है और उसके राज्य का क्षेत्र भी बढ़ जाता है, किन्तु एकाएक बहुत-से राज्यों को केवल "असबियत" के सहारे पर विजय कर लेना सम्भव नहीं।

इस स्थान पर अरबों की विजय के लिए, जो उन्होंने हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के लगभग ३० वर्ष के भीतर प्राप्त कर ली, उसे एक पृथक् सिद्धांत निर्धारित करना पड़ा। इतने महान् कार्य को सम्पन्न कर लेना उसके निकट केवल "असबियत" द्वारा सम्भव न था। उसके लिए इब्ने ख़लदून को धर्म का सहारा लेना पड़ा। उसने एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया कि अरब वालों को जब कभी प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो धर्म के प्रचार के कारण ही हुआ। उसने अरबों की विजयों में उनकी आर्थिक आवश्यकताओं का भी हाथ स्वीकार किया है, किन्तु इस विषय में वह अन्य मुसलमान विचारकों से अलग होकर स्वतन्त्र कारण न सोच सका और "असबियत" एवं आर्थिक आवश्यकताओं के सिद्धांत को अरबों की प्रारम्भिक विजयों पर लागू न कर सका। बनी उमय्या की ख़िलाफ़त के प्रति श्रद्धा के कारण उसने खिलाफ़त तथा इमामत के सिद्धान्तों और उनके कारनामों को साधारण सल्तनतों के सिद्धांतों से अलग कर दिया तथा दोनों का सविस्तर उल्लेख किया। पर वह अपने इस सिद्धांत को कहीं भी न भूला कि सभ्यता के विकास का अध्ययन मनुष्य की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की पृष्ठभूमि में करना चाहिए।

मुक़द्दमे की ख्याति

इब्ने ख़लदून ने अपने मुक़द्दमे मे सभ्यता के विकास का जिस प्रकार तर्कपूर्ण विवरण दिया है, उसका अनुकरण कोई अरबी अथवा फ़ारसी लेखक न कर सका। सम्भवतः किसी ने इस प्रकार का कोई किसी अन्य ग्रंथ लिखने की चेष्टा भी नही की थी। किन्तु उसके कार्य के महत्त्व से उसके समकालीन एव बाद के सभी विद्वान् प्रभावित दीख पड़ते हैं। इतिहास को उसके बताये हुए शोधपूर्ण नियमों के आधार पर अनेक विद्वानों ने लिखने का प्रयत्न किया है। मक्के के इतिहासकार अल-फ़ासी (१३७३–१४२९ ई०) ने अपने "इक़्द" नामक ग्रंथ मे इब्ने ख़लदून के हवाले दिये है। १४२५ ई० के लगभग मुहम्मद बिन अहमद बिन मुहम्मद इब्ने अज़्जमलकानी ने इब्ने ख़लदून के इतिहास के कुछ अश "तज़किरा" नामक अपने ग्रंथ में उद्धृत किये हैं। मक़रिजी, इब्ने हजर तथा सख़ावी, अस्सुयूती तथा अन्य १५वी शती ईसवी के विद्वानों ने उसके ग्रथ से लाभ उठाया है।

१६वी तथा १७वी शती ईसवी के विद्वानों ने भी उसकी रचना के महत्त्व को समझने का प्रयत्न किया है। १७वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा के एक विद्वान् अल मक़र्री ने उसकी रचनाओं का अपने ग्रन्थों में अत्यधिक प्रयोग किया है, किन्तु उतमान तुर्कों ने इब्ने ख़लदून की रचनाओ एव विचारो से सबसे अधिक लाभ उठाया। विस्सी एफिन्दी, ताशकोम रूज़ादेह (१४९५–१५६१ ई०), हाज्जी ख़लीफ़ा (१६०९–५७ ई०), तबए बे (लगभग १६७०) नाएमा (१६८८–८९–१७१६ ई०) आदि विद्वान् तथा १८वी शती ईसवी के एवं उसके बाद के तुर्की विद्वान् उसकी रचनाओ से प्रभावित थे।

१९वी शती ईसवी के प्रारम्भ से यूरोप वालों ने भी इब्ने खलदून तथा उसके "मुकद्दमे" का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सामाजिक शास्त्र, राजनीति एवं इतिहास की रचना के सम्बन्ध मे बहुत-से ऐसे नये विचार, जिनका प्रचार यरोप में बाद में हुआ, इब्ने खलदून १४वीं शती ईसवी में अपने मुक़द्दमे में व्यक्त कर चुका था।

ऐरनोल्ड जे. टुआइनबी (Arnold J. Toynbee) ने लिखा है–"अब्दुर्रहमान इब्ने मुहम्मद इब्ने ख़लदून अल हज़रमी ट्यूनिस निवासी (१३३२–१४०६ ई०) अरबी प्रतिभाशाली व्यक्ति था, जिसने व्यस्त आयु के कार्यरत जीवन के ५४ वर्षों की अवधि के ४ वर्ष से भी कम के समय में अपनी साहित्यिक जीवन-कृति

की रचना की, जिसकी तुलना, सूक्ष्म दृष्टि तथा कल्पना की गभीरता, विस्तार एवं बौद्धिक शक्ति के विचार से थ्यूसीडाइड्स या मेकेवली की कृति से की जा सकती है। इब्ने खलदून का तारा उस अधकार की, जिसमे से होकर वह चमकता है, पृष्ठभूमि में और भी अधिक प्रकाशमान है, क्योंकि यदि एक ओर थ्यूसीडाइड्स, मेकेवली तथा क्लेरेन्डन को अपने-अपने दीप्तिमान् देशो तथा कालो का चमकीला प्रतिनिधि माना जाय, तो दूसरी ओर इब्ने खलदून अपने देश के आकाश का एक मात्र नक्षत्र कहा जायगा। वास्तव मे वह उस सभ्यता के, जिसका सामाजिक जीवन सम्पूर्णत नीरस, दरिद्र, अपवित्र, क्रूर तथा अल्पकालिक था, इतिहास का एक मात्र प्रमुख व्यक्ति है। बौद्धिक क्रियाशीलता के अभीष्ट क्षेत्र मे, ऐसा प्रतीत होता है कि वही अपने किसी भी पूर्वगामी से प्रेरित नही हुआ था और न अपने समकालीनो मे ही उसे आत्मीयता का अनुभव हुआ। साथ ही साथ अपने अनुगामियो मे भी उसने प्रेरणा की चिनगारी प्रज्ज्वलित की, तथापि उसने अपने विश्व-इतिहास के मुकद्दमे मे इतिहास के ऐसे दर्शन की कल्पना तथा उसका प्रतिपादन किया है जिसके कारण नि:सन्देह ही वह अपनी भाँति की एक महान् कृति के रूप मे है, जिसकी रचना किसी भी व्यक्ति ने किसी भी काल अथवा स्थान मे कभी की है। व्यावहारिक क्रियाशीलता के जीवन के प्रति क्षणिक उपेक्षा ने ही इब्ने खलदून को अपने रचनात्मक विचारों को साहित्यिक रूप देने का अवसर दिया है।"[1]

जार्ज सार्टन (George Sorton) ने लिखा है—"इब्ने खलदून एक इतिहासकार, राजनीतिज्ञ, समाज-शास्त्र-वेत्ता, अर्थशास्त्र-ज्ञाता, मानवीय मामलो के वर्तमान तथा भविष्य के इतिहास को समझने के निमित्त उनका गहन अध्ययन करनेवाला तथा मानव जाति के भूतपूर्व इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का इच्छुक व्यक्ति था। वह मध्यकालीन युग का सबसे महान् ऐसा इतिहासकार ही केवल न था, जो बौने अल्पज्ञ इतिहासकारो के सम्मुख देव के समान प्रतीत होता है, अपितु वह इतिहास के प्रथम दार्शनिकों मे से एक है और मेकेवली, वोडिन, वाइको, काम्ते तथा करनॉट का पूर्वगामी है। मध्ययुगीन ईसाई इतिहासकारो मे केवल दो एक ही ऐसे है जिनकी तुलना उससे की जा सकती है। उदाहरणार्थ आटोवान फ्रेजिग तथा

1. *A Study of History*, Vol III, Arnold J. Toynbee. Royal Institute of International Affairs And Oxford University Press.

सैल्सवरी का 'जान', परन्तु वास्तविक रूप से उनमे व इसमे उससे भी अधिक अन्तर है जितना इसमे और वाइको मे है। विलक्षण बात यह है कि इब्ने खलदून ने उन विधियों की कल्पना करने का साहस किया जो आजकल ऐतिहासिक शोध कार्य की विधियाँ कही जाती है।"[1]

राबर्ट फ्लिट (Robert Flint) ने कहा है—"जहाँ तक इतिहास, विज्ञान अथवा दर्शन क्षेत्र का सम्बन्ध है, अरबी साहित्य उसका एक अत्यन्त देदीप्यमान अलकार है। न तो परिनिष्ठित और न ही मध्यकालीन ईसाई ससार मे ऐसो चमक-दमक का निकटवर्ती कोई अन्य व्यक्ति पाया जाता है। केवल इतिहासकार की कोटि के इब्ने खलदून (१३३२-१४०६ ई०) से श्रेष्ठतर अनेक लोग अरबी लेखकों मे हो चुके है, परन्तु इतिहास सिद्धान्तज्ञ (थ्योरिस्ट) के रूप मे उनमे से किसी भी काल अथवा किसी भी देश मे वाइको के समय तक, जिसका प्रादुर्भाव ३०० वर्ष बाद हुआ, इब्ने खलदून के तुल्य कोई न हुआ। अफलातून, अरस्तू तथा आगस्टाइन उसकी बराबरी के थे, शेष सब इस योग्य भी न थे कि उनका उल्लेख उसके नाम के साथ किया जाय। अपनी मौलिकता, दूरदर्शिता, विद्वत्ता तथा ग्रहणशीलता के कारण वह प्रशसनीय था। ऐतिहासिक दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र मे वह अपने सहधर्मियो तथा समकालीनो मे उसी प्रकार अद्वितीय एव पृथक् था जिस प्रकार काव्यक्षेत्र म दान्ते तथा विज्ञान के क्षेत्र मे रोजर बेकन अपने-अपने समकालीनो मे थे। अन्य अरबी इतिहासकारो ने यद्यपि वह सब ऐसी सामग्री, जिसका प्रयोग वे कर सकते थे, अवश्य एकत्र की, किन्तु उसका वास्तविक उपयोग इब्ने खलदून ने ही किया।"[2]

मुकद्दमे की हस्तलिखित प्रतियाँ

अरबी एव फारसी के बहुत कम ऐसे ग्रथ होगे जिनकी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ इतनी अधिक सख्या मे मिलती हो, जितनी इब्ने खलदून के मुकद्दमे की। सम्भवत. इसका कारण उसके ग्रथ की प्रसिद्धि है जिससे प्रभावित होकर विद्वानो

1. *Introduction To The History of Science*, George Sorton. Bailler, Tindall and Cox.
2. *History of the Philosophy in History*, Robert Flint. Wm. Black & Sons Ltd.

ने १९वी शती ई० से ही मुकद्दमे की प्रामाणिक प्रतियो की खोज एव रक्षा का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था।

प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति तुर्की के सुलेमानिया पुस्तकालय की दामाद इबराहीम पोथी है। इसमे ८६६ न० की प्रति पर नकल करने की कोई तिथि नहीं दी है, किन्तु ८६७ न० की प्रति उसी व्यक्ति की नकल की हुई है जिसने ८६६ न० की प्रति नकल की है। ८६७ न० की प्रति ४ सफर ७९७ हि० (२९ नवम्बर १३९४ ई०) को तैयार हुई थी। लिपिकार का नाम अब्दुल्लाह बिन हसन बिन शिहाब है। प्रति के प्रथम पृष्ठ से पता चलता है कि यह मिस्र के ममलूक सुल्तान अज्जाहिर बरकूक (१३८२–९९ ई०) के लिए तैयार की गयी थी और उसे इब्ने खलदून ने बरकूक को नम्रतापूर्वक सर्मापित किया था।

(२) दूसरी प्रति 'फेज प्रति' के नाम से प्रसिद्ध है जो ७९८ हि० (१३९६ ई०) मे नकल की गयी थी। इब्ने खलदून ने अपने लिखे सम्पूर्ण इतिहास को फेज की कैरवान मस्जिद को वक्फ करके भेजा था। "मुकद्दमा" इसी का एक भाग था।

(३) तुर्की येनो समी न० ८८८, १० जमादि-उल-अव्वल ७९९ हि० (९ फरवरी १३९७ ई०) इब्ने खलदून के हाथ की लिखी हुई एक प्रति से नकल की गयी थी।

(४) तुर्की के अतिफ एफिन्दी पुस्तकालय की पोथी न० १९३६ भी इब्ने खलदून के जीवन-काल मे ही नकल की गयी थी। यह प्रति कई विद्वानो के पास रह चुकी है। इनमे से सर्वप्रथम टिप्पणी मुहम्मद बिन यूसुफ बिन मुहम्मद अल इस्फीजाबी की है, जो कि शनिवार २४ शाबान ८०४ हि० (२९ अप्रैल १४०२ ई०) की लिखी हुई है।

(५) तुर्की की हुसेन चेलेबी की हस्तलिखित प्रति न० ७९३ जो बरस्सा मे है, इसकी नकल ८ शाबान ८०६ हि० (२० फरवरी १४०४ ई०) को समाप्त हुई। लिपिकार का नाम इबराहीम बिन खलील अस्सादी अश्शाफेई अल-मिस्री है। यह भी कई विद्वानो के पास रह चुकी है जिनमे एक यहया बिन हिज्जी अश्शाफेई थे, जिनकी ८५० हि० (१४४६–४७ ई०) की एक टिप्पणी भी हस्तलिखित प्रति पर वर्तमान है।

(६) अहमते तृतीय, ३४०२ न० एक अन्य हस्तलिखित प्रति है जिसकी नकल करनेवाले ने कोई तारीख नही लिखी, किन्तु इस प्रति के एक स्वामी मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान अद्दारीब ने ८१८ हि० (१४१५–१६ ई०) तारीख उस पर डाली है।

इनके अतिरिक्त तुर्की, पेरिस, मिस्र एव अन्य स्थानो पर बाद की तारीखो की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ है।

संस्करण

इब्ने खलदून के "मुकद्दमे" के इस समय तक अनेक सस्करण भी हो चुके है जिनमे से अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नाकित है।

(१) ई० एम० क्वातरमेर (E. M. Quatremere) द्वारा सम्पादित १८५८ ई० का पेरिस का सस्करण Prolègomènes d' Ebn-Khaldoun (प्रोलेगेमेने डा इब्ने खल्दून) के नाम मे तीन भागो मे प्रकाशित हुआ था। यह सस्करण चार हस्तलिखित पोथियो पर आधारित है।

(अ) बिबलोथेके नेशनेल न० १५२४, जो ११४६ हि० (१७३३ ई०) की है।

(आ) आभर के कैटलाग की म्युनिख की हस्तलिखित प्रति न० ३७३, जो ११५१ हि० (१७३८ ई०) की है।

(इ) दामाद इबराहीम की पोथी जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

(ई) १०६७ हि० (१६५६–५७ ई०) की क्वातरमेर की हस्तलिखित पोथी, जो अब बिबलोथिके नेशनेल की हस्तलिखित पोथी न० ५१३६ है।

(२) लगभग उसी समय सफर १२७४ हि० (सितम्बर-अक्तूबर १८५७ ई०) मे नस्र अल-हूरीनी द्वारा सम्पादित "मुकद्दमा" काहिरा के समीप बूलाक़ नामक स्थान मे प्रकाशित हुआ।

(३) १२८४ हि० (१८६७–६८ ई०) मे "इब्र" का सम्पूर्ण ग्रथ बूलाक से सात भागो मे प्रकाशित हुआ, जिसमे से प्रथम भाग "मुकद्दमे" से सम्बन्धित है।

(४) मिस्र के डा० अली अब्दुल वाहिद वाफी ने १९५७–५८ ई० मे इब्ने खलदून के "मुकद्दमे" का एक उत्तम सस्करण मिस्र से प्रकाशित कराया है, जिसमे बहुत-सी हस्तलिखित पोथियो का उपयोग करके पिछले सस्करणो की अनेक अशुद्धियाँ ठीक की गयी है।

(५) इन मुख्य सस्करणों के अतिरिक्त बूलाक के सस्करण के आधार पर बहुत-से सस्करण हुए है जिनमे एक १८७९–८० ई० मे बैरूत से प्रकाशित हुआ था। इसके बाद १९०९ ई० तथा १९३० ई० मे भी अनेक सस्करण हुए।

अनुवाद (तुर्की)

१७३० ई० मे पीरजादे एफिन्दी ने मुकद्दमे का आद्योपान्त अनुवाद किया, जो काहेरा से १२७५ हि० (१८५९ ई०) मे प्रकाशित हुआ।

फ़्रांसीसी

"मुकद्दमे" का फ्रासीसी भाषा मे अनुवाद तीन भागो मे क्रमश. १८६२, १८६५, तथा १८६८ ई० मे पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद डब्लू० एम० स्लेन (W. M. Slane) ने क्वातरमेर (Quatremere) के सस्करण के आधार पर किया था, किन्तु बूलाक के सस्करण तथा पेरिस की हस्तलिखित पोथियों से भी मुकाबला कर लिया गया था। १९३४–३९ ई० मे पेरिस से ही इसको पुन. फोटो विधि से छापा गया। यद्यपि कुछ विद्वानो ने अनुवाद मे अनेक त्रुटियाँ बतायी है किन्तु अधिकाश शोध कार्य इसी अनुवाद के आधार पर होता रहा है।

अंग्रेजी

अग्रेज़ी मे अभी तक पूरे मुकद्दमे का कोई अनुवाद न था, किन्तु १९५८ ई० मे फ़्रेज रोजेन्थाल (Franz Rosenthal) ने लन्दन से इसका अनुवाद तीन भागो मे प्रकाशित कराया है। यह अनुवाद प्रकाशित सस्करणो के अतिरिक्त तुर्की मे उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर किया गया है। इससे पूर्व भी कुछ अशो के निम्नाकित अनुवाद प्रकाशित हो चुके है।

(१) आर० ए० निकोल्सन (R. A. Nicholson) के Translation of Eastern Poetry and Prose नामक ग्रथ मे इसका कुछ अश कैम्ब्रिज से १९२२ ई० मे प्रकाशित हुआ था।

(२) १९५० ई० मे लन्दन से प्रकाशित चार्ल्सी इसावी के An Arab Philosophy of History नामक ग्रथ मे इब्ने खलदून के मुकद्दमे के कुछ आवश्यक उद्धरण प्रकाशित हुए थे।

जर्मन

(१) म्युनिख तथा बर्लिन से १९३२ ई० में अरविन रोजेन्थाल ने मुक़द्दमे के उद्धरण "गेडाकन यूबर डेन स्टाट" (Gedanken Uber den Staat) के नाम से प्रकाशित कराये थे।

(२) ए० शीमेल (A. Schimmel) ने १९५१ ई० में इब्ने खलदून के मुक़द्दमे के उद्धरण "आऊस गेवेलटे अब शेनेटे आउस डेयेर मुकद्दमे" (Ibn Chaldun : Ausgewahlte Abschnitte aus der muqaddima) के नाम से प्रकाशित किया था।

उर्दू अनुवाद

(१) इब्ने खलदून के मुकद्दमे का उर्दू अनुवाद सर्वप्रथम मौलवी अब्दुर्रहमान ने किया, जो २०वी शती ई० के प्रारम्भ मे तीन भागो मे लाहौर से प्रकाशित हुआ था और इसके कई सस्करण हो चुके है।

(२) हाल मे ही मौलाना साद हसन खॉ यूसुफी ने पूरे "मुकद्दमे" का अनुवाद कराची (पाकिस्तान) से प्रकाशित कराया है।

सै० अ० अ० रिजवी

मुक़द्दमा

प्रस्तावना तथा विश्व-इतिहास (किताबुल इब्र) का प्रथम भाग

आप जरीर को हमारे ऊपर अधिकारी नियुक्त कर दे तो अच्छा हो।" हजरत उमर ने अरफजा से इस विषय की पूछताछ की तो अरफजा ने कहा कि "हे अमीरुल मोमिनीन![1] लोग ठीक कहते है। मै अजद क़बीले से हूँ। अपने कबीले मे एक खून करके यहाँ भाग आया था।"

यह देखना चाहिए कि अरफजा, बजीलह कबीले वालो मे कैसा घुल मिल गया कि उनके कुल मे उन्ही के वेष मे प्रकट होने लगा, यहा तक कि उसे उस कबीले का शासक बनाने का निश्चय कर लिया गया। यदि इस तथ्य से कुछ लोग परिचित न होते और उसकी उपेक्षा करते रहते तो कुछ समय उपरान्त लोग इसे पूर्णत. भूल जाते और हर प्रकार से बजीलह क़बीले मे उसकी गणना होने लगती। अब भी इस प्रकार की घटनाएँ घटती रहती है और इससे पूर्व भी घटती रहती थी।

(११) क़बीले में जिस वंश अथवा घराने में अत्यधिक "असबियत" पायी जाती है वही राज्य का स्वामी होता है

यद्यपि प्रत्येक क़बीले एव शाखा के एक होने के कारण सामान्य रूप मे सभी मे "असबियत" पायी जाती है, किन्तु विशेष कुलो के आधार पर अन्य "असबियतो" का भी अभ्युदय होता है। उदाहरणार्थ एक वश अथवा एक घरवालो अथवा एक पिता की सतानो मे जो पारस्परिक स्नेह एव निष्ठा होगी वह निकट के सम्बधियो एव चाचा की सतान मे नही हो सकती। इस प्रकार "असबियत" दो तरह की हुई--एक साधारण दूसरी विशेष। विशेष "असबियत" की दृष्टि से वे परस्पर एक-दूसरे की हृदय से सहायता करते है। साधारण "असबियत" के कारण वे पूरी क़ौम एव कबीले वालो से सम्बधित होते है। इसी प्रकार की निष्ठा एव सहानुभूति की, दोनो प्रकार की "असबियतो" से आशा की जाती है। किन्तु विशेष कुल के कारण जो "असबियत" उत्पन्न होती है वह रिश्ते के निकटतम होने के कारण अधिक प्रभावशाली होती है। इसके अतिरिक्त यह खुली हुई बात है कि नेतृत्व एवं सरदारी कबीले की प्रत्येक शाखा पर विभाजित नही होती अपितु इसका श्रेय किसी एक ही शाखा को प्राप्त होता है और वह उसी शाखा को अधिक प्राप्त होता है जिसमें "असबियत" अधिक पायी जाती हो, इस कारण उसी को अधिक प्रभुत्व प्राप्त होता है। शासन के लिए प्रभुत्व एव ऐश्वर्य की अधिक आवश्यकता होती है अत:

१. धर्मनिष्ठ मुसलमानों के हाकिम, खलीफ़ा।

ऐसे प्रभुत्वप्राप्त वश के हाथ मे शासन आ जाने के पश्चात् वह उसके हाथ मे से आसानी से नही निकल पाता। कारण कि यदि शासन ऐसी शाखाओ के हाथ मे चला जाय जो ऐश्वर्य एव वैभव मे कम हो तो शासन का चलना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार शासन प्रभावशाली एव श्रेष्ठ शाखाओ और वशो मे चक्कर लगाता रहता है और एक वश से निकलकर दूसरे प्रभावशाली वश मे पहुँच जाता है। जिस वश को अधिक प्रभुत्व प्राप्त होता है वही शासन प्राप्त कर लेता है। इस तथ्य का रहस्य यह है कि सगठन एव "असबियत" में वही सम्बध होता है जो प्रकृति तथा किसी अन्य वस्तु मे हुआ करता है। स्वभाव समस्त तत्त्वो के एक-समान रहने की दशा मे ठीक नही रहता। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी तत्त्व को प्रभुत्व प्राप्त हो। यही बात "असबियत" के सम्बध मे कही जा सकती है। उसके लिए भी प्रभुत्व आवश्यक है, और शासन एव नेतृत्व भी उसी का साथ देगा जो सब से अधिक शक्तिशाली एव प्रभुत्व वाला होगा।

(१२) "असबियत" वाली कौम पर अन्य कौम का आदमी शासन नही कर सकता

यह प्रमाणित हो गया है कि राज्य प्रभुत्व द्वारा प्राप्त होता है और प्रभुत्व "असबियत" द्वारा। फलत कौम पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आज्ञाकारी "असबियतो" से शासक की "असबियत" अधिक प्रभावशाली हो, कारण कि जब शासक की "असबियत" सभी को प्रभावशाली एव महान् प्रतीत होगी तो सभी की गरदने उसके समक्ष अवश्य ही झुक जायेंगी और आज्ञापालन मे उनका सिर उसके सामने नीचे झुक जायगा। किन्तु एक कौम मे यदि दूसरी कौम का आदमी आ जाय और वह उन पर शासन करना चाहे तो यह सम्भव नही, कारण कि इस प्रकार कुल से सम्बधित "असबियत" उसे प्राप्त न हो सकेगी। उसे केवल आगन्तुक का वर्ग प्राप्त होगा या सहायक का। नये कुल के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के कारण उसे उस कुल के लोगो का स्नेह प्राप्त हो सकता है, किन्तु कोई अपरिचित व्यक्ति किसी कौम पर इस प्रकार प्रभुत्व प्राप्त नही कर सकेगा।

यदि हम यह मान ले कि अन्य कुल का कोई व्यक्ति किसी कौम मे घुल-मिल जाय और लोग उसके पहले कुल को भूलकर उसे उसी कौम का व्यक्ति समझने लगे और उसे उसी कुल का बताने लगे, तो इस मेल से पूर्व उसे अथवा उसके पूर्ववर्ती लोगों को राज्य किस प्रकार प्राप्त हुआ ? इस समस्या का समाधान तो सम्भव

नही। शासन तो उसी एक वर्ग अथवा व्यक्ति को प्राप्त होना है जिसे "असबियत" मे प्राथमिकता प्राप्त हो। अत इस अपरिचित व्यक्ति को, जिसका अन्य कुल मे होना सभी को भली-भाँति ज्ञात है, राज्य मे प्रभुत्व किस प्रकार मिल सकता है? राज्य के पैतृक होने के कारण राज्य के वास्तविक अधिकारी मे ईर्ष्या करना परमावश्यक है और इसके लिए "असबियत" की आवश्यकता है।

बहुत-से कबीलो के सरदार कभी-कभी किसी विशेष कुल अथवा वंशवालो की वीरता एव दान-पुण्य से ऐसे प्रभावित हो जाते है कि अपने-आप को भी उसी वश का बताने लगते है और उसकी किसी शाखा से सम्बधित होने का दावा करने लगते है। इस आचरण द्वारा वे अपनी सरदारी को जिस प्रकार कलंकित करते है और अपने सम्मान मे जो बट्टा लगा देते है उसका उन्हे पता नही होता।

आजकल प्राय ऐसा होता रहता है, उदाहरणार्थ सबके सब जनाता यही दावा करते है कि मूल रूप से वे अरब है। अवलाद रबाब, जो हिजाजी प्रसिद्ध और बनू आमिर से सम्बधित है और जुगाबा की शाखा है, वे बनू सुलैम, विशेष रूप से उनकी शरीद नामक शाखा से पैदा होने का दावा करते है और कहते है कि हमारा दादा दुर्भाग्यवश बनू आमिर मे पहुँचकर बढई का काम करने लगा और उन्ही मे सम्मिलित हो गया। उसकी गणना उन्ही के कुल मे होने लगी, यहाँ तक कि उसे प्रभुत्व प्राप्त हो गया और वह हिजाजी कहलाने लगा। इसी प्रकार तूजीन के बनू अब्दुल कवी बिन अब्बास का दावा है कि वे हजरत अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब[1] की सतान मे से है। उन्हे केवल इस सम्मानित वश से सम्बधित होने के सम्मान का लोभ हो गया। वास्तव मे उन्हे अब्बास बिन अतीया, अब्दुल कवी के पिता के नाम से भ्रम हो गया। वे यह न समझ सके कि इतिहास मे इस बात का कोई प्रमाण नही कि कोई अब्बासी मगरिब मे आया था। कारण कि अब्बास बिन अतीया अब्बासियो के शत्रु इदरीसियो एवं उबैदीईन[2] के अलवियो[3] के प्रभुत्व के प्रारम्भिक काल मे हुआ। ऐसी दशा मे वह किसी अलवी समूह से किस प्रकार सम्बधित हो सकता था। . . ..[4]

१. मुहम्मद साहब के चाचा (मृत्यु २१ फ़रवरी ६५३ ई०)।

२ फ़ातेमी।

३ हजरत अली के सहायक।

४. मुसलमानों के इतिहास से कुछ अन्य उदाहरण। इन उदाहरणों का अनुवाद नहीं किया गया।

(१३) वंश एवं पद की प्रतिष्ठा वास्तव में "असबियत" वालों को प्राप्त है, दूसरों के लिए यह प्रतिष्ठा मिथ्या एवं निराधार है

यह समझ लेना चाहिए कि प्रतिष्ठा एवं योग्यता व्यक्तिगत गुणों पर आधारित हैं। "वंश" का अर्थ यह है कि लोग उसकी प्रतिष्ठा से लाभ उठायें। लोगो का सम्मानित वंश से सम्बद्ध होना क़ौम की दृष्टि मे सम्मान का कारण होता है, कारण कि कौम के हृदय पर उनके पूर्वजों की प्रतिष्ठा एवं सौजन्य का सिक्का बैठा होता है। लोग वास्तव मे अपने जन्म एवं नस्ल के सम्बंध में खनिज पदार्थ के समान हैं। मुहम्मद साहब का कथन है कि "लोग सोने तथा चाँदी की खानों के अनुरूप हैं, जो जाहिलियत[1] मे अच्छे थे, वे इस्लाम मे भी अच्छे हैं, यदि वे इस कथन का महत्त्व समझे।" इस प्रकार योग्यता एव नैतिकता का आधार कुल है।

हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि कुल का लाभ "असबियत" मे निहित है, जो पारस्परिक सहायता एव स्नेह के लिए विवश करती है। अत "असबियत" जितनी ही दृढ एव महान् होगी और घराना प्रतिष्ठित एव सम्मानित होगा, उतना ही कुल का लाभ अधिक स्पष्ट तथा प्रभावशाली होगा। पूर्वजो की प्रतिष्ठा एव उनका सौजन्य सोने पर सुहागे का काम करेगा, अत ऐसे घरानो मे वशवृक्ष के अधिक स्पष्ट होने के कारण योग्यता एव प्रतिष्ठा भी वास्तविक एव तथ्य पर आधारित होगी। विभिन्न घरानो मे "असबियत" की भिन्नता के साथ साथ प्रतिष्ठा एव सम्मान मे भी अन्तर रहेगा। अब जो लोग अपने कबीलो से पृथक् होकर अलग-अलग नगरो मे जाकर बस जाते है और उनमे "असबियत" एव पारस्परिक स्नेह नाम मात्र को रह जाता है, वहाँ उनको वशवाला कहने का कोई महत्त्व नही है। यदि वे इसका दावा भी करे तो यह केवल उनकी भूल है।

यदि नागरिक जीवन की सहृदयता देखी जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि शरीफ नगरवासी अपने पूर्वजो के कारण चरित्रवान् कहे जाते है और इनकी सतान में किसी प्रकार का मिश्रण नही हुआ है। किन्तु जब "असबियत" शेष नही तो फिर ऐसे लोगो को कुल एव पूर्वजो की नैतिकता तथा सहृदयता से कोई लाभ नही हो सकता, अत उनका शरीफ एव उच्च वश का होना केवल नाम मात्र का ही है, और वह भी इस कारण कि उनके पूर्वज एक निश्चित नैतिकता के मार्ग के पथिक रह चुके है, अन्यथा वास्तविक प्रतिष्ठा एव सौजन्य उनमे कहाँ? यदि यह कहा जाय कि उनमे नाम के अर्थानुसार सौजन्य भी वास्तविक है, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका पूर्ण सौजन्य

१ इस्लाम के पूर्व का अरब युग।

सदिग्ध है। यह बात नगरवासियो की अपेक्षा उजाड़ स्थान के निवासी कबीलो के लिए अधिक सत्य है।

कभी कभी किसी वश को उसके चरित्रबल, नैतिकता एव "असबियत" के कारण पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, किन्तु जैसे ही वह नागरिक जीवन मे प्रविष्ट होता है उसकी प्रतिष्ठा मे कमी होने लगती है और कुल मिलजुल जाते है। फिर मस्तिष्क मे प्रतिष्ठा नाम मात्र को ही रह जाती है जिसके फलस्वरूप वे अपनी गणना शरीफो में करने लगते है, हालाँ कि सौजन्य से उनका कोई भी सम्बन्ध नही होता, क्योंकि वे "अस-बियत" से वचित होते है। इस प्रकार अधिकांश नगरवासी अरब एवं अजम[1] अपने प्रारम्भिक नागर जीवन मे इसी झूठी प्रतिष्ठा एवं मिथ्या आग्रह से ग्रस्त रहते है।

बनी इसराईल भी इसी भ्रम में पडे रहे। सर्वप्रथम उनका वश समस्त ससार मे प्रतिष्ठा एव सौजन्य के लिए प्रसिद्ध था, कारण कि हजरत इबराहीम[2] से हजरत मूसा[3] तक उनमे शरीअत[4] वाले होते रहे और नबियो एव पैगम्बरो के जन्म का उनमे क्रम बँधा रहा। इसके अतिरिक्त उनमे "असबियत" थी और वे राज्य के स्वामी थे, किन्तु बाद मे उनके इन गुणो का अन्त हो गया और वे अपमानित एव तिरस्कृत हो गये। उनके भाग्य मे देश से निर्वासिन लिख दिया गया और सहस्रो वर्षो तक वे काफिरो के दास बने रहे। किन्तु फिर भी वे प्रतिष्ठा के भ्रम मे पडे रहे। अब भी उनमे से कोई हारूनी[5] कहलाता है, कोई यूशा की सतान होने का गर्व करता है तो कोई अपनी वंशा-वली कलेब से मिलाता है, कोई अपने आप को यहुजा से सम्बन्धित बताता है, यद्यपि दीर्घ काल से वे "असबियत" से अपरिचित तथा अपमानित है। केवल यही नही, अधिकाश नगरवासी इसी प्रतिष्ठा के पागलपन से ग्रस्त है, हालाँ कि वे "असबियत" का नाम तक नही जानते।

अबुल वलीद बिन रुशद[6] ने इस सम्बन्ध मे यह लिखने मे भूल की है कि "किताबुल

१. जो अरब न हों।
२. अबराहम।
३. मोजेज।
४. धार्मिक विधान।
५ ऐरोनाइट।
६. अबुल वलीद मुहम्मद इब्ने अहमद, जिसे यूरोप वाले Averroes कहते हैं, बड़ा प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ है। ११४९ ई० में उसका कार्डोवा (स्पेन) मे जन्म

खिताबत" मे, जो अरस्तू के एक ग्रथ का सक्षिप्त रूपांतर है, इस विषय मे केवल इतना ही लिखा है कि "प्रतिष्ठा का लक्षण है मनुष्यो का ऐसा आभिजात्य जो प्राचीन काल मे किसी समय नगर मे आकर बसनेवाले पूर्वजो से प्राप्त हुआ हो।" वह उस शोध तक नही पहुँच सका जो हमने की है। काश, वह यह समझता कि किसी कौम के प्राचीन काल मे किसी नगर मे बस जाने से मनुष्य को क्या लाभ पहुँच सकता है, जब कि क़ौम मे "असबियत" का अन्त हो चुका हो, जो भय एव आतक के लिए भी आवश्यक है और शासन एव राज्य के लिए भी। सम्भवत. उसने पूर्वजो की महत्ता को ही अपनी प्रतिष्ठा समझ लिया है। वार्तालाप द्वारा प्रतिष्ठित लोगो को प्रभावित और अपनी ओर आकृष्ट किया जा सकता है और बातचीत मे दक्ष लोग ही बडे-बड़े अधिकारो के स्वामी होते है। जिनमे यह शक्ति नही होती उनकी ओर न तो कोई अन्य व्यक्ति ध्यान देता है और न वे किसी अन्य को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते है। नगरवासी साधारणत. इसी प्रकार के लोग होते है। उनकी बात की कोई भी परवाह नही करता। चूँकि इब्ने रुशद का पालन-पोषण नगर मे हुआ और "असबियत" से उसका कोई सम्बन्ध न था और न "असबियत" सम्बन्धी लाभो से उसे कोई मतलब था, अत प्रतिष्ठा एव वश के विषय मे जो बाते साधारणत. प्रसिद्ध थी, वह उन्ही से प्रभावित हो गया अर्थात् (उसने यही समझा कि) प्रतिष्ठा केवल पूर्वजो के उल्लेख को कहते है। वह इस विषय मे तथ्य तक न पहुंच सका।

(१४) दासों एवं पाले हुए लोगों के वंश की प्रतिष्ठा एवं सम्मान उनके स्वामियों तथा आश्रयदाताओं के कारण होता है, न कि कुल की प्राचीनता द्वारा

यह इस प्रकार है कि पूर्व मे हम उल्लेख कर चुके है कि प्रतिष्ठा वास्तव मे "असबियत" वालो द्वारा ही सम्भव है। अत. जब "असबियत" के स्वामी किसी अन्य कुल वाले को पाल ले अथवा उसे दास बना ले और वह कुल के बन्धनो एव सम्बन्धो मे भी बध जाय तो ऐसे दास तथा पाले हुए लोग अपने स्वामियो एव आश्रयदाताओ के कुल की प्रशसा करने लगते है और उन्ही के रग मे रग जाते है, मानो दासो एव स्वामियो की "असबियत" एक ही हो। "असबियत" के बधन मे बँध जाने के कारण कुल की

हुआ। उसने कई ग्रंथों का, जो अरस्तू के बताये जाते हैं, अनुवाद किया। कहा जाता है कि ११९९ ई० में मोराको में उसकी मृत्यु हुई।

एकता का संबंध भी होने लगता है। हजरत मुहम्मद ने कहा है,—"कौम के दासों की गणना कौम में ही होती है। चाहे वह दास हो या पाला हुआ।"

दास इत्यादि का वह कुल जिसमे उसका जन्म हुआ, उसकी नयी "असबियत" मे लाभदायक नही हो सकता, कारण कि उसका मौलिक कुल उस कुल मे, जिसमे वह आकर सम्मिलित हुआ है, पूर्णतः भिन्न होता है। उसके अन्य कुल मे सम्मिलित हो जाने मे उसका मौलिक कुल भुला दिया जाता है, कारण कि वह अपनी 'असबियत" वालो से पृथक् हो चुकता है। अत दास एव किसी अन्य पाले हुए व्यक्ति की गणना उस नवीन कौम मे होती है और वह उसी मे से एक समझा जाने लगता है। जब स्वामी तथा आश्रयदाता दास अथवा पाले हुए व्यक्ति की कौम से भिन्न होते है तो दास अथवा पाले हुए व्यक्ति के वश की प्रतिष्ठा उन्ही के सबध से होगी और वह उनकी प्रतिष्ठा से नहीं बढ सकती, अपितु कम ही रहेगी। इस प्रकार राज्यो एव सल्तनतो के दास सेवा एवं दासता प्रदर्शित करने मे जितनी अधिक निष्ठा प्रदर्शित करते है उतना ही अधिक उनका सम्मान बढ जाता है।

देखना चाहिए कि अब्बासी खलीफाओ के युग मे बनी बरमक[1], तुर्क दासो एव बनू नवबख्त ने राज्य की दासता के बावजूद बहुत अधिक प्रतिष्ठा एव सम्मान प्राप्त कर लिया और उन्होने नये-नये शासनो की स्थापना की। जाफर बिन यहया[2] बिन खालिद, हारूनुर्रशीद एव उसकी कौम का दास होने के कारण बडे घराने वाला एव प्रतिष्ठित समझा जाता था, न कि इस कारण कि उसका फारस वालो के वश से सम्बन्ध था। प्रत्येक राज्य मे ऐसा ही होता है कि सेवा मे एव दासता मे प्रतिष्ठा एव सम्मान पाने के कारण दासो तथा परिजनो का सम्मान एव प्रभाव घटता बढता रहता है। अन्य कुल के अधिक प्रभाव के कारण उनका अपना कुल भुला दिया जाता है और उनमे कोई तथ्य नही रह जाता। उन्हे उसी कुल के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त होती है

१. अब्बासी ख़लीफ़ा मंसूर (७५४–७७५ ई०) ने अपना प्रधान मंत्री ख़ालिद इब्ने बरमक को बनाया। बरमक बल्ख़ के एक बौद्ध विहार का मुख्य पुजारी था। ख़ालिद के वंशज बहुत समय तक अब्बासियों के प्रधान मंत्री रहे।

२. जाफ़र यहया का पुत्र तथा ख़ालिद का पौत्र था। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त वह अब्बासी ख़लीफ़ा हारूनुर्रशीद का प्रधान मंत्री हुआ। वह ख़लीफ़ा का बड़ा विश्वास-पात्र था किन्तु बाद में ख़लीफ़ा ने उससे रुष्ट होकर २९ जनवरी ८०३ ई० को उसकी हत्या करा दी।

जिसमे उनका पालन-पोषण होता है और "असबियत" में भी वे उन्ही के साथ संबंन्धित होते है। सक्षेप मे दासो की प्रतिष्ठा स्वामियों की ही प्रतिष्ठा एव दासों का "आदि" स्वामियो का ही "आदि" होता है। इस प्रकार उन्हे अपने कुल से कोई लाभ नही होता, कारण कि सम्मान एव प्रतिष्ठा का आधार दासता अथवा पालन-पोषण का सम्बन्ध होता है। कभी ऐसा होता है कि पहले कुल मे "असबियत" एव राज्य होते है किन्तु उनके नष्ट हो जाने के बाद ऐसे लोग अन्यो की दासता एव पालन-पोषण के अन्तर्गत आ जाते है। ऐसी दशा मे प्रथम कुल एव "असबियत" से उन्हे कोई लाभ नही पहुँचता। उनके लिए समस्त लाभो के द्वार अन्य किसी दूसरे कुल मे खुलते है। बनी बरमक की प्रतिष्ठा मे यह बात पूर्णत: सिद्ध हो जाती है कि फारस मे वे मोबद[1] घराने से सम्बन्धित थे, किन्तु अब्बासियो की दासता मे पहुँचकर उनके पिछले कुल का कोई मूल्य न रहा। अब्बासियो की दासता एवं आश्रय द्वारा ही उन्हे सम्मान एव प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उनके सम्मान के किसी अन्य स्रोत की खोज का कोई महत्त्व नही। "तुम लोगो मे से ईश्वर की दृष्टि मे वही सबसे अधिक सम्मानित है जो उसका सबसे अधिक भय करता है।"[2]

(१५) किसी घराने की प्रतिष्ठा चार पीढ़ियों तक चलती है

यह बात पूर्णत स्पष्ट है कि ससार की प्रत्येक वस्तु एव उसकी स्थिति नश्वर है। खनिज पदार्थ, वनस्पति, पशु एव मनुष्य सभी नष्ट हो जाते है। अब मनुष्यो का उदाहरण ले लिया जाय। ज्ञान-विज्ञानों की एक समय चर्चा होती है और वे फिर नष्ट हो जाते है। कला-कौशलो का अभ्युदय होता है और वे बाद मे विनष्ट हो जाते है। कुल एव वश मे सम्बन्धित प्रतिष्ठा आज किसी वश तथा कबीले को मिलती है और कल कोई उनका नाम तक नही जानता। कोई भी ऐसा मनुष्य नही मिल सकता जिसके पूर्वज आदम से लेकर इस समय तक प्रतिष्ठा के स्वामी रहते चले आये हो। यह सम्मान केवल मुहम्मद साहब को प्राप्त है। आपके पूर्वज नि सन्देह आदम से लेकर आपके समय तक प्रतिष्ठित एव सम्मानित रहे। यह केवल आपकी विशेषता एव सम्मान है। जिस प्रकार अन्त मे वश की प्रतिष्ठा शून्य को प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार उसको प्रारम्भिक अस्तित्व का शून्य होना भी परमावश्यक है, जैसा कि ससार की प्रत्येक नश्वर वस्तु का गुण है कि वह शून्य से निकलती है और शून्य मे ही मिल जाती है।

१. अग्नि-पूजकों के पुजारी।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

हमने जो यह बात कही कि कुल की प्रतिष्ठा चार पीढियो से अधिक नही चलती, उसका कारण यह है कि वश की प्रतिष्ठा का सस्थापक भली-भाँति जानता है कि उसको आदर-सम्मान किस प्रकार प्राप्त हुआ है, अत वह उन गुणो की रक्षा मे, जो उसके सम्मान एव प्रतिष्ठा का कारण हुए, अपनी जान लड़ा देता है। वह अपने ठाट-बाट को स्थायी रखने का प्रयत्न करता रहता है। जब पुत्र का समय आता है तो वह अपने पिता द्वारा सुनी सुनाई बातो के आधार पर पिता के पद-चिह्नों पर चलता है, किन्तु पिता तथा पुत्र के प्रयत्नों मे वह अन्तर होता है जो किसी घटना के पात्र तथा उस घटना के श्रोता मे होता है। किन्तु जब तीसरे व्यक्ति अर्थात् पोते की बारी आती है तो वह अपने पिता का अनुसरण करता है। किन्तु उसमे तथा उसके पिता मे वही अन्तर होता है जो एक अनुकरण करनेवाले तथा आविष्कार करनेवाले मे होता है।

जब चौथे अर्थात् प्रपौत्र का समय आता है तो वह सब पुरातन रूढियों से पृथक् हो चुकता है और उन आदतो एव भावनाओ का पूर्णत. त्याग कर चुका होता है जो कभी खानदानी प्रतिष्ठा का आधार थी। वह उन्हे अब घृणा की दृष्टि से देखता है। उसके हृदय मे यह भ्रम बैठ जाता है कि उसके वश की प्रतिष्ठा बलिदानो एव कष्टो पर आधारित नही है, अपितु वह उसकी वशागत परिपाटी है जिसका वह एव उसका वश पात्र है। न तो उस प्रतिष्ठा का आधार "असबियत" ही है न चरित्र एव नैतिकता का बल। इस पीढी के लोगों की दृष्टि केवल अपनी वर्त्तमान खानदानी प्रतिष्ठा एव सम्मान पर केन्द्रित रहती है। उन्हे प्राचीन वैभव एव ऐश्वर्य के मूल कारण का कोई ज्ञान नही होता। वे अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को अपने कुल का एक गुण समझते है जो स्वत. "असबियत" वालों मे पाया जाता है। उनको इस बात का पूर्ण विश्वास होता है कि उनकी प्रतिष्ठा इसी प्रकार चलती रहेगी, कारण कि वे सर्वदा अन्य लोगो को अपने समक्ष झुकता देखते है। उनको इस बात का ज्ञान नही होता कि किन गुणो के आधार पर सब लोग उनके समक्ष झुक रहे है और हृदय से उनका साथ दे रहे है। जब उनमे यह यथेच्छाचार उत्पन्न हो जाता है तो कौम उनसे जलने लगती है और उन्हे अपमान की दृष्टि से देखने लगती है। फिर वह पिछली "असबियत" के आधार पर इस पीढी के अतिरिक्त किसी अन्य पीढी मे से किसी व्यक्ति को चुनकर उसे प्रतिष्ठा एव सम्मान प्रदान् करने लगती है। फलत. नये कुल एव नयी पीढ़ी को सम्मान प्राप्त हो जाता है और पहले की पीढ़ी, जिसे अपने विषय मे अभिमान हो गया था, भुला दी जाती है। इसी प्रकार के परिवर्तन बादशाहो, सुल्तानो, अमीरो, प्रतिष्ठित लोगो एव "असबियत" वालों मे चलते रहते है। नगरों मे जब कोई वश अथवा घराना मैदान से

हट जाता है तो दूसरा वश उसका स्थान ले लेता है। "यदि वह[1] नष्ट करना चाहता है तो वह ऐसा करा देता है और नया सर्जन कर देता है। ईश्वर के लिए यह कठिन नहीं।"

हमने प्रतिष्ठा एव सम्मान के जीवन की अवधि जो चार पीढियों तक निर्धारित की है तो यह कोई अटल सिद्धान्त नही है, अपितु अनेको परिस्थितियो के अध्ययन के आधार पर यह सीमा रखी गयी है, कारण कि कभी-कभी चार पीढ़ियो की समाप्ति के पूर्व ही प्रतिष्ठा एव सम्मान का अन्त हो जाता है। कभी प्रतिष्ठा एव सम्मान चार पीढियो से आगे बढकर पाचवी तथा छठी पीढी तक पहुँच जाते है। किन्तु पतन अवश्य प्रारम्भ हो जाता है और वे विनाश की ओर बढने लगते है। हमने चार पीढियो की सीमा इस कारण निर्धारित की है कि इसमे से पहली पीढी प्रतिष्ठा की सस्थापक होती है, दूसरी बनी हुई बात को निभानेवाली, तीसरी केवल अनुकरण करनेवाली और चौथी किये कराये पर पानी फेरनेवाली . . . .।[2]

(१६) वहशी क़ौमें दूसरी कौमों की अपेक्षा प्रभुत्व शीघ्र प्राप्त कर लेती है

इससे पूर्व तीसरी प्रस्तावना मे उल्लेख हो चुका है कि बदवी जीवन वीरता का कारण होता है। इसी तथ्य के आधार पर वहशी कौमे वीरता एव पौरुष मे अद्वितीय होती है। उनमे प्रभुत्व प्राप्त करने की शक्ति बहुत अधिक होती है जिसके फलस्वरूप वे अपनी इच्छानुसार अन्य कौमो से प्रभुत्व छीन लेती है। इस तरह कालचक्र के कारण परिवर्तन होते रहते है। जब कभी ये कौमे हरे-भरे स्थानो मे बस जाती है और भोग-विलास मे अपना समय व्यतीत करने लगती है तो इस स्थानान्तरण के कारण उनकी वहशत मे जितनी कमी होने लगती है, उतनी ही उनकी वीरता एव बदवियत[3] भी कम होती जाती है। मूक पशुओ मे से उदाहरणार्थ बकरा, मृग, बारहसिगा, गधा एव गोरखर यद्यपि एक ही प्रकार के पशु है, किन्तु पालतू जानवरो का जगलीपन मनुष्यो के साथ रहने के कारण नष्ट हो जाता है और वे आराम के आदी हो जाते है। उनके उठने-

१. ईश्वर।
२. इस्लामी इतिहास से कुछ उदाहरण।
३. बदवी अथवा बद्दुओं का जीवन।

बैठने, तेजी, चाल-ढाल, रंग-रूप, सभी मे परिवर्तन हो जाता है। यही दशा वहशी मनुष्यो की भी है, कारण कि वहशत की समाप्ति के उपरान्त ये भी अपने स्वभाव के जीर्ण वस्त्र उतार फेकते है। इस तथ्य का कारण यह है कि मनुष्य की आदते एव स्वभाव अपने चारों ओर के वातावरण से अत्यधिक प्रभावित होते है।

चूँकि कौमो को प्रभुत्व एव श्रेष्ठता वीरता, पौरुष, साहस एव मनचलेपन के गुणों के कारण प्राप्त होती है, अत. जिस कौम मे बदवियत एव वहशत अधिक होगी वही दूसरी कौमो की अपेक्षा शीघ्र प्रभुत्व प्राप्त कर लेगी, चाहे दोनो पक्ष वाले सख्या एव "असबियत" की शक्ति मे बराबर के ही क्यो न हो। इस प्रकार मुजर नामक कबीले पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि उन्होंने बदवियत एव वहशत पर दृढ़ रहने के कारण हमीर एव कहलान सरीखे भोग-विलासग्रस्त कबीलो पर अधिकार प्राप्त कर लिया। रबीआ, जो इराक के हरे-भरे स्थानो मे निवास करते एव भोग-विलास मे ग्रस्त रहते थ, पराजित हो गये। रेगिस्तान के जीवन ने बनु मुजर को प्रभुत्व प्राप्त करने के योग्य बना दिया। अन्य समूहो के अधिकार मे जो कुछ था, उसे उन्होने छीन लिया।

इसके उपरान्त बनू तै, बनू आमिर बिन सासेया तथा बनू सुलैम बिन मसूर ने मुजर कबीले के साथ वही व्यवहार किया जो मुजर कबीला हमीर तथा कहलान के साथ कर चुका था। इसका कारण यह था कि प्रभुत्वशाली मुजर के पश्चात् भी वे उसी प्रकार वहशी एव बद्दू बने रहे और उनकी "असबियत" एव उनके वैभव मे कोई अन्तर न पड़ा। वे समृद्धि एव भोग-विलास से दूर रहे, यहाँ तक कि मुजर पर भी उन्होने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। यही दशा अरब के समस्त कबीलो की रही कि वे जितना ही समृद्धि एव भोग विलास के निकट होते गये, उतना ही दूसरो से पराजित होते गये। सक्षेप मे बदवी कबील्रे सख्या एव शक्ति मे समान होने के बावजूद अपने प्रतिस्पर्धी पर सर्वदा प्रभुत्व प्राप्त करते रहे।

(१७) "असबियत" राज्य-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर ले जाती है

हम इससे पूर्व यह उल्लेख कर चुके है कि "असबियत" के ही आधार पर पक्षपात, शक्ति, प्रतिरक्षा एव अधिकार की माँग की भावनाएँ उत्पन्न होती है और इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि मनुष्य को अपने सामाजिक जीवन मे स्वाभाविक रूप से किसी शासक एव न्यायकारी की आवश्यकता होती रहती है, ताकि वह एक को

दूसरे के अन्याय से बचाये। उस हाकिम के लिए यह आवश्यक है कि वह "असबियत" के बल पर अधीनस्थ व्यक्तियो पर अधिकार स्थापित रखे, ताकि उसके समस्त आदेश भली भाँति प्रचलित हो सकें। इसी प्रभुत्व को राज्य अथवा सल्तनत कहा जाता है। यह राज्य एव सल्तनत मानो शासन के अतिरिक्त एक वस्तु है। कारण कि शासन केवल एक प्रकार का नेतृत्व होता है, जिसमे शासक सबका नेता एव सबमें अधिक प्रभुत्वशाली होता है। उसकी बात को सभी पसन्द करते है और हृदय से उसको स्वीकार करते है, किन्तु उसको किसी पर अत्याचार एव अन्याय का अधिकार नही होता। इसके विपरीत शाहशाहियत एव सल्तनत को बल एव शक्ति आतक एव प्रभुत्व के कारण प्राप्त होती है।

"असबियत" का स्वामी जब इस उच्च श्रेणी को प्राप्त हो जाता है तो वह ऊपर की ही श्रेणी पर दृष्टि डालता है। जब वह अधिकार एव सर्वसाधारण पर आज्ञा-कारिता प्राप्त कर लेता है और आतक एव शक्ति के प्रदर्शन का जरा-सा भी अवसर मिलने पर वह उसे हाथ से नही जाने देता। कारण कि मनुष्यो को यह आतक स्वाभाविक रूप से पसन्द है और यह प्रभुत्व एव शक्ति उसे "असबियत" के बिना नही प्राप्त हो सकती। इसका यह निष्कर्ष निकला कि राजनीतिक प्रभुत्व "असबियत" का अन्तिम एव एक मात्र उद्देश्य है और हम यही सिद्ध करना चाहते थे।

यदि एक क़बीले मे विभिन्न घराने अपनी अपनी पृथक् "असबियत" रखते हों तो उनमे एक "असबियत" का होना आवश्यक है, जो समस्त "असबियतों" से शक्तिशाली एव प्रभुत्व-सम्पन्न हो और सबको अपने मे मिला ले, मानो उसकी गणना एक बड़ी "असबियत" मे हो जिसे हम देश अथवा राज्य की "असबियत" कह सकते है। यदि ऐसी दशा न होगी तो कबीलों एव वशो का संगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा और लोग विरोध एव झगडे मे पड़कर नष्ट हो जायँगे, जैसा कि ईश्वर ने कहा है,—"यदि ईश्वर मानव को अलग-अलग न रखे तो पृथ्वी नष्ट हो जायगी।"[१] जब यह राजनीतिक "असबियत" विशेष क़बीलों की "असबियतों" पर छा जाती है तो स्वाभाविक रूप से दूर की अन्य "असबियतों" पर प्रभुत्व ढूँढ़ती है। यदि वे "असबियते" उसके बराबर की टक्कर की है और मुकाबले मे डट जाती है तो संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और किसी को प्रभुत्व नही प्राप्त होता, अपितु प्रत्येक "असबियत" अपने-अपने स्थान

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

पर स्थापित रहती है। अर्थात् प्रत्येक का प्रभुत्व अपनी ही कौम एवं अपने ही क़बीले पर रहता है। जिस प्रकार ससार के विभिन्न कबीले एव कौमें अलग-अलग बसती रहती है और पारस्परिक सघर्ष के कारण एक को दूसरे क़बीले और दूसरे शासन एवं 'असबियत" पर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है, तब विजयी शासन एव "असबियत" दूसरी शक्ति को हड़पकर वीर बन जाती है और उसके प्रभुत्व एव शासन की भावनाएँ और भी जागृत हो जाती है। इसी प्रकार एक शासन अपने प्रभुत्व का क्षेत्र बढ़ाता रहता है और अन्य शक्तियों को हडपता रहता है। इसी वेग मे ऐसे शासनो से भी सघर्ष हो जाता है जो एक वृद्ध की भाँति अपने जीवन की घड़ियाँ गिनते रहते और "असबियत" वाले एव राज्य के अधिकारी उनका साथ छोड़ चुकते है। उन पर इस नयी सत्ता को अधिकार प्राप्त हो जाता है और वह राज्य प्राप्त कर लेती है और समस्त देश उसी के अधीन हो जाता है। यदि प्रतिस्पर्धी सत्ता शक्तिहीन हो जाय किन्तु उसमे अभी प्राण शेष हो और "असबियत" वालो की सहायता चाहती हो तो राज्य उसके पदाधिकारियो मे सुरक्षित रह जाता है, जो कि कठिनाई के समय उसकी रक्षा करके उसे बचा लेते है और उस नये राज्य का जोर रुक जाता है। तुर्कों को अब्बासियो के साथ, सिनहाजा एव जनाता को कुतामा के साथ और बनी हमदान को अलवियो एव अब्बासी सुल्तानो के साथ इसी प्रकार की घटनाओ का सामना करना पड़ा।

इस तर्क-वितर्क से यह स्पष्ट हो गया कि राज्य "असबियत" का लक्ष्य है और जब "असबियत" चरम सीमा को पहुँच जाती है तो कबीले को प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है, चाहे वह अत्याचार एव अधिकार द्वारा हो, चाहे प्रतिरक्षा के कारण। सक्षेप मे समय के अनुसार जो उचित होता है वही होता है। यदि "असबियत" चरम सीमा को न पहुँच जाय अपितु उसमे बाधाएं पड़ती रहे तो वह आगे बढ़ते-बढ़ते रुक जाती है और दैवी निर्णय की प्रतीक्षा किया करती है।

(१८) भोग-विलास एवं समृद्धि का आदी हो जाना क़बीलों को राज्य प्राप्त करने से वंचित रखता है

इसका कारण यह है कि जब कोई कबीला "असबियत" के आधार पर एक प्रकार का प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है तो प्रभुत्व के ही अनुपात से वह समृद्धि एवं सासारिक सुखों से लाभ उठाता है और विलासप्रिय लोगो की सूची मे सम्मिलित हो जाता है।

सक्षेप मे अपनी शक्ति एव प्रभुत्व के अनुसार तथा अपने आश्रयदाता राज्य की सहायता एव उस के महत्त्वानुसार वह आनन्द-मगल मनाने लगता है। यदि वह राज्य, जिसका यह कबीला सहायक है, इतना शक्तिशाली है कि कोई अन्य सत्ता उस राज्य को छीनने अथवा राज्य मे साझीदार बनने मे असमर्थ है, तो यह क़बीला उसके राज्य पर आश्रित होकर प्राप्य समृद्धि एव भोग-विलास पर सतुष्ट रहता है और जो कुछ आय होती है उसी को पर्याप्त समझकर बैठा रहता है। उसे कभी किसी राज्य के अपहरण करने अथवा अपहरण के साधन जुटाने की इच्छा नही होती। उसका उद्देश्य केवल धन-सम्पत्ति द्वारा आराम उठाना, कला-कौशल सीखना एव भोग-विलास का जीवन व्यतीत करना होता है। वह राज्य की छत्रछाया मे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है। उस कबीलेवाले अपने साधनो के अनुसार सुन्दर भवनो का निर्माण कराते है, तथा उत्तम वस्त्र धारण करते है। सक्षेप मे उनका विलासमय जीवन इसी प्रकार बढ़ता जाता है और वे अपने ऐश व आराम के समस्त साधन एकत्र करते जाते है। फलत· बदवियत की कठोरता, "असबियत" एव वीरता की भावनाएँ उसमे से निकलती जाती है और वे लोग समृद्धि की गोद मे पलने लगते है। तदुपरान्त उनकी सन्तान एव आनेवाली पीढ़ियो का जन्म भी इसी वातावरण मे होता है। वे अपना कार्य स्वयं करना नही जानती, अपितु अन्य लोगो से सेवा कराना जानती है। वे उन बातों से पूर्णत: अपरिचित होती है जो "असबियत" हेतु आवश्यक होती है। यह बात उनके स्वभाव मे प्रविष्ट हो जाती है। इसी प्रकार आनेवाली सन्ताने भी "असबियत" एव वीरता से दूर होती जाती है और "असबियत" भी उनसे पृथक् हो जाती है, यहाँ तक कि इसके कारण पूरे कबीले का विनाश हो जाता है। उनके द्वारा अपनी शक्ति एव प्रभुत्व को स्थापित रखने का कोई प्रश्न ही नही उठता, कारण कि यह अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है कि भोग-विलास का जीवन एव आराम "असबियत" का, जो प्रभुत्व का विशेष स्रोत है, अन्त कर देते है। क़बीले की "असबियत" के अन्त के कारण उसमे प्रतिरक्षा एव बचाव की भावनाएँ भी नही रहती और वे अन्य लोगो द्वारा अपना प्रभुत्व स्वीकार नही करा सकती। अन्य क़ौमे उसे सुगमतापूर्वक हड़प कर डालती है। इससे यह सिद्ध हो गया कि भोग-विलास एव आराम देश एव राज्य के शत्रु है। "ईश्वर जिसे चाहता है उसी को राज्य प्रदान करता है।"[१]

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(१९) अपमान एवं तिरस्कार सहने की आदत तथा अन्य लोगों की आज्ञाकारिता भी क़बीले के लिए राज्य एवं सल्तनत की प्राप्ति में बाधक होती है

इसका कारण यह है कि अपमान एव तिरस्कार सहन करने का आदी होना तथा अन्य लोगो की आज्ञाकारिता द्वारा "असबियत" का विनाश हो जाता है एव उसका जोर तथा तेजी समाप्त हो जाती है। कारण कि अधीनता एवं अपमान सहन करना इस बात का खुला प्रमाण है कि "असबियत" का अन्त हो चुका है और न अब प्रतिरक्षा की भावनाएँ शेष है, मानो प्रतिरक्षा एवं आगे बढने की भावनाएँ पूर्णतः समाप्त हो चुकी हैं। उदाहरणस्वरूप जब हजरत मूसा ने बनी इसराईल को शाम देश की ओर ले जाना चाहा और यह सुखद समाचार सुनाया कि शाम देश का राज्य ईश्वर ने तुम्हारे भाग्य मे लिख दिया है, तो वे हतोत्साहित हो गये और खुले शब्दो मे अपनी अस्वीकृति इस प्रकार प्रकट की—"उसमे तो एक आतकवादी कौम रहती है, जब तक वे वहाँ से न निकले हम कदापि वहाँ न जायँगे।"[1] अर्थात् ईश्वर अपनी शक्ति से उन्हें वहाँ से निकाल दे, किन्तु हम "असबियत" के सहारे से उनमे युद्ध न करेगे और प्राणों को खतरे मे न डालेगे और यदि ऐसा हो गया तो हे हजरत मूसा! हम इसे आपका चमत्कार समझेगे। उस पर भी जब मूसा ने उन्हे अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया तो वे हठधर्मी और जिद्द करने लगे और अवज्ञा से परिपूर्ण वाक्य कहने लगे, "तुम तथा तुम्हारा रब दोनो मिलकर उनसे युद्ध करे।"[2]

इसका कारण यह था कि मुकाबले एव अपने अधिकार की माँग उनके हृदय से मिट चुकी थी और एक महान् अविश्वास व्यापक हो गया था। वे साहसहीन हो चुके थे। कई पीढ़ियो से क़िब्तियों[3] के अत्याचार सहते-सहते उनके हृदय मे आज्ञाकारिता तथा अपमान की भावनाएँ आरूढ हो चुकी थी और "असबियत" का अन्त हो गया था। इसके अतिरिक्त उन्हे हजरत मूसा के इस सदेश पर पूर्ण विश्वास भी न होता था कि शाम का राज्य उनके भाग्य मे लिखा जा चुका है और वे ईश्वर के आदेश से शाम के अमालेक़ा को पराजित भी कर सकते है। इस कारण वे झिझक गये

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
३. मिस्र के काप्टस्।

और उन्होने राज्य की माँग न की। चरित्र में अपमान की भावनाओं के उत्पन्न हो जाने के कारण वे नबी के सच्चे सदेश मे वाद-विवाद करने लगे और निन्दा एव कटु आलोचनाएँ प्रारम्भ कर दी। इस कारण ईश्वर ने उन्हे शाम एव मिस्र के मध्यवर्ती रेगिस्तान मे बन्दी बना दिया और वे उसमे ४० वर्ष तक भटकते रहे। इस दीर्घ-काल मे न तो वे किसी सभ्यता का मुँह देख सके और न वे किसी नगर का पता लगा सके और न किसी मनुष्य के दर्शन कर पाये। कुरान शरीफ मे इस घटना का उल्लेख हुआ है।

कुरान की आयत[1] द्वारा ज्ञात होता है कि रेगिस्तान के निवास के दड में एक विशेष रहस्य यह था कि क़िब्ती, जो आतकवादी एव कठोर शासन मे पलकर सर्वदा के लिए अपमानित एव "असबियत" से वचित हो चुके है, रेगिस्तान में नष्ट हो जायें और उनके स्थान पर एक अन्य आत्मसम्मानवाली कौम पैदा हो, जिसने किसी के आतक एव किसी की कठोरता को सहन न किया हो और अपमान एव तिरस्कार से उसका पाला न पड़ा हो, ताकि नवजात "असबियत" के बल पर वे अपने अधिकार की माँग हेतु दृढ हो जायँ और शत्रु पर छा जायें। यही से इस रहस्य का भी पता चलता है कि चालीस वर्ष की अवधि वह कम से कम अवधि है जिसमे एक पीढ़ी मर-खपकर विनाश के गर्त मे पहुँच जाती है और दूसरी पीढी उसके स्थान पर उत्पन्न हो जाती है। सक्षेप मे यह घटना "असबियत" के प्रभाव को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है कि प्रतिरक्षा, मुकाबले, पक्षपात एव अपने अधिकार की माँग सबकी सब "असबियत" पर आधारित है। जो इससे वचित हुआ, वह इन सब भावनाओं एव योग्यताओं को खो देता है।

कौम में अपमान एव तिरस्कार को सहन करने की भावनाएँ उत्पन्न करने के लिए कर, जुर्माने एव लगान इत्यादि का भी बडा हाथ है। जुर्माना तथा कर वही क़ौम अथवा वही कबीला अदा करेगा जो अपमान एव तिरस्कार को सहन करे। कारण कि इनमे खुला हुआ अपमान एव तिरस्कार है जिसे आत्म-सम्मान वाले किसी प्रकार उस समय तक नही सहन कर सकते जब तक उन्हे हत्या एव विनाश से भय न दिलाया जाय, अथवा उनमे "असबियत" की भावनाएँ इतनी कमजोर हो गयी हो कि उनको प्रतिरक्षा एव मुकाबले के लिए प्रेरित न करे। जिसमे "असबियत" की भावनाएँ इतनी कमजोर हो कि वह अपमान एव तिरस्कार को न टाल सके तो वह मुक़ाबले

१. वाक्य।

एवं अपने अधिकारों की माँग के लिए किस प्रकार तैयार होगा, अपितु वह तो अपमान एव तिरस्कार स्वीकार करके तत्काल झुक जायगा। इस प्रकार मुहम्मद साहब का यह कथन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है कि जब मुहम्मद साहब ने कुछ अंसार[1] के घरों मे कृषि के यत्र देखे तो कहा कि ये वस्तुएँ जिस किसी के घर में प्रविष्ट हुई उसके घर में अपमान एव तिरस्कार भी प्रविष्ट हो जाता है। इससे इस बात की ओर स्पष्ट सकेत है कि कृषि मे लगान एवं जुर्माना अदा करना पडता है, जिसके अदा करने के उपरान्त मनुष्य अपमान से नहीं बच सकता, अपितु अपमान के साथ-साथ छल एव धूर्तता जैसे दुर्गुण भी हृदय मे प्रविष्ट हो जाते है। अतः जिस कौम अथवा कबीले को यदि कोई कर अदा करने का अपमान सहन करते देखे तो समझ ले कि राज्य प्राप्त करने की उसमे कोई योग्यता नही। यही से यह भ्रम भी स्पष्ट हो जाता है कि मगरिब मे जनाता बदवी चरवाहो का व्यवसाय करते थे और समकालीन बादशाहो को कर अदा किया करते थे। यदि यह घटना सच होती तो राज्य उन्हें किस प्रकार प्राप्त होता और वे किस प्रकार शासन कर पाते।

इग प्रसग मे दरबन्द के बादशाह शहर बराज के शब्दों पर गौर किया जा सकता है। जब अब्दुर्रहमान बिन रबीआ ने शहर बराज को घेरकर उसे परेशान कर दिया तो उसने शान्ति की प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि "आज से मै तुम्हारी अधीनता स्वीकार करता हूँ। अब मेरा आदर सम्मान एव अपमान तुम्हारे हाथ में है। आओ राज्य पर अधिकार जमा लो। ईश्वर तुम्हें और हमे शान्ति प्रदान करे। जो जिजया हम तुम्हे अदा करेगे उससे तुम हमारी सहायता एव अन्य कार्य करोगे। किन्तु हमसे जिजया लेकर हमे अपमानित मत करो। इससे तुम हमे इतना कमजोर कर दोगे कि हम तुम्हारे शत्रुओं के शिकार हो जायँगे। इस कहानी से हमारे उपर्युक्त कथन की पूर्ण रूप से पुष्टि होती है।

(२०) नैतिकता में दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न क़ौम में राज्य प्राप्त करने का चिह्न है और यदि इसके विरुद्ध हो तो यह राज्य से वंचित होने का द्योतक है

यह ज्ञात हो चुका कि राज्य एव सल्तनत की स्थापना मनुष्य की स्वाभाविक आवश्यकता है और मानवीय सगठन के लिए है। यह भी सत्य है कि मनुष्य अपने

१. मुहम्मद साहब के मदीने के सहायक।

वास्तविक स्वभाव एवं बुद्धि द्वारा निर्णय की शक्ति के कारण पाप के स्थान पर सदाचार एव नैतिकता के निकट रहता है, कारण कि उसमें पाप उन पाशविक वृत्तियो के कारण आता है जो उसमे वर्त्तमान है। मानवता के नाते मनुष्य नैतिकता एव उपकार की ओर ही आकृष्ट होता है और राज्य एव राजनीति भी मनुष्य के लिए मानवता के कारण आवश्यक होती है। फिर इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि यश एव प्रतिष्ठा का, जो राज्य हेतु आवश्यक है, आधार "असबयित" एव एक-दूसरे की सहायता है।

यश उन बातो पर आधारित है जो उसके अस्तित्व को पूर्ण बनाती है, वे बाते मनुष्य के व्यक्तिगत गुण है। राज्य के अधिकार "असबियत" का परिणाम है। इसी प्रकार "असबियत" मनुष्य के व्यक्तिगत गुणो को पूर्ण बनाती है। राज्य के अधिकारो का अस्तित्व पूर्ण बनानेवाली बातो के बिना उस व्यक्ति के जीवन के समान है जिसके अग कट चुके है अथवा ऐसा है कि मानो कोई वस्त्र पहने बिना लोगो के सामने नगा खड़ा हो।

बिना प्रशसनीय गुणो के "असबियत" सम्मानित वशवालो का एक बहुत बडा अवगुण है। राज्य का अधिकार रखनेवालो मे यदि यह अवगुण हो तो फिर यह और भी बडा दोष है, कारण कि राज्य के साथ जितना अधिक से अधिक प्रताप अथवा यश सम्भव है, वह उससे सम्बन्धित होता है। इसके अतिरिक्त राज्य एव शासन के अधिकार ईश्वर की मानव के प्रति जमानत के रूप मे है। शासक दैवी नियमो की रक्षा करता है और जहाँ तक दैवी नियमो का सम्बन्ध है, वह मनुष्यो के मध्य मे ईश्वर के अनुरूप है। दैवी नियम मानव के उपकार के लिए ही होते है। धार्मिक नियमो से इस तथ्य की पुष्टि होती है। बुरे कानून या तो मूर्खता और या शैतान की ओर से होते है और वे भाग्य एव ईश्वर की शक्ति के विरुद्ध होते है। वह सदाचार एव दुराचार दोनो का सर्जन करता है, कारण कि सर्जन की शक्ति उसके अतिरिक्त किसी अन्य मे नही।

अब जिसमे पूरी "असबियत" वर्त्तमान हो और साथ ही साथ वह सदाचरण के ऐसे गुणो मे, जो दैवी आदेशो को चलाने के लिए आवश्यक है, सुशोभित हो तो वह प्राणियो मे ईश्वर का राज्य स्थापित करने और प्राणियो की रक्षा करने के योग्य होगा। यह दलील पिछली दलील से अधिक मजबूत और विश्वास के योग्य है।

इस वाद-विवाद का साराश यह निकला कि "असबियत" वाली कौमों में सदाचार एव नैतिकता उनके द्वारा राज्य विजय करने के चिह्न है। इस प्रकार हम

जिन कौमो के लोगो को "असबियत" वाले पाते है और आस-पास की क़ौमो को उनके प्रभुत्व के अधीन पाते है तो वे सदाचार एव नैतिकता मे दूसरो से आगे बढ़ने का प्रयत्न करते है और इसकी इच्छा प्रदर्शित करते है, दया एव क्षमा भाव अपने स्वभाव मे प्रविष्ट कर लेते है। वे दरिद्रो की बातो को सहन करते है, आतिथ्य की भावना अपने-आप मे उत्पन्न करते है। परिश्रम, प्रयत्न एव चेष्टा से कभी जी नही चुराते। कठिनाइयो को सहन करते है। जो वचन देते है उसका पालन करते है। आदर-सम्मान की रक्षा हेतु धन व्यय करने मे कोई कसर नही उठा रखते। शरीअत का सम्मान करते है और शरीअत के आलिमो का आदर करते है। जब आलिम लोग शरीअत के अनुसार उनके लिए किसी कार्य को करने अथवा न करने का आदेश देते है तो वे उन आदेशो का सम्मान करते है। सक्षेप मे वे उनके प्रति सद्भावना रखते है। धर्मवालों के प्रति ऐसी निष्ठा रखते है कि उनसे उन्हे आशीर्वाद की आशा होती है और उनसे वे अपने लिए शुभकामनाएँ कराते है। बुजुर्गो एव सूफी सन्तो के प्रति आदर-सम्मान का व्यवहार करते है। जब उन्हे कोई सत्य की ओर आकृष्ट करता है तो वे तत्काल आकृष्ट हो जाते है। शक्तिहीनो के साथ न्याय करते है और उनके उपकार हेतु धन व्यय करने मे भी सकोच नही करते। सत्य की किसी प्रकार उपेक्षा नही करते। दरिद्रो के प्रति नम्रतापूर्वक व्यवहार करते है। न्याय चाहनेवालो की शिकायते सुनते है। शरई आदेशो एव एबादतो पर दृढ रहते है। ऐसे अवगुणो से, जो छल, धूर्तता, धोखे एव वचन का पालन न करने से सम्बधित है, बचते रहते है। सक्षेप मे इन्ही स्वभावो के कारण सदाचारी एव चरित्रवान् मनुष्य राज्य एव राजनीति के उचित पात्र बने और साधारण प्राणियो पर राज्य करने लगे। नि सन्देह ईश्वर ने नैतिकतापूर्ण यह ऐसे गुण प्रदान किये है जो उनकी "असबियत" एव प्रभुत्व के पूर्णरूप से उपयुक्त है और राज्य एव सल्तनत उनकी "असबियत" के लिए उचित है।

इससे हमने इस बात का पता चला लिया कि जब ईश्वर किसी कौम तथा वश को राज्य एव सल्तनत द्वारा सम्मानित करता है तो सर्वप्रथम उसके चरित्र को ठीक करता है। तदुपरान्त उसे इस देन द्वारा सुशोभित करता है। इसी प्रकार यदि वह कौमो से राज्य छीनना चाहता है तो सर्वप्रथम उनको दुराचार की ओर प्रेरित करता है। उन्हे चरित्रहीन बना देता है और कुमार्ग पर चलाता है। फलत उनमे शासन की योग्यता नही रहती और वे प्रभुत्व से गिरने लगते है, यहाँ तक कि एक दिन वे राज्य से पूर्णत हाथ धो बैठते है। उनके स्थान पर अन्य लोगो को प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है।

इसका कारण यह है कि संसारवाले यह समझ लें कि ईश्वर ने उन्हे अपनी देन ए राज्य से उनके ही दुराचार के कारण वचित कर दिया। ईश्वर ने स्वय कहा है, "यी तुम पिछली उम्मतों का इतिहास उठाकर देखोगे और हालात की छानबीन करो तो ज्ञात हो जायगा कि राज्यो एव सल्तनतो के तख़्ते इसी प्रकार उलटते रहे है।"

यह बात स्पष्ट रहे कि वे अद्वितीय गुण जो "असबियत" वाली क़ौमो मे पाये जा हैं और जो उनके प्रताप का प्रत्यक्ष प्रमाण है, इस प्रकार है—वे क़ौमें आलिमं पवित्र व्यक्तियो, प्रतिष्ठित लोगों, उच्च वश एव कुलवालो, व्यापारियो तथा यात्रिय के प्रति आदर-सम्मान एव उदारतापूर्वक व्यवहार करती है और प्रत्येक के सा उसकी श्रेणी के अनुसार पेश आती है। इसका कारण यह है कि यह बात स्वाभावि है कि "असबियत" एव मर्यादा वाली कौमें उन लोगो का आदर-सम्मान करती जो उनके कौमी एव "असबी"[1] गौरव को उन्नत करती है और प्रतिष्ठा एवं सम्मा मे उनके समान तथा उनके तुल्य होती है। इस आदर-सम्मान का कारण कभी य होता है कि वे कौमे इस आचरण द्वारा स्वय अपने सम्मान को स्थायी रखना चाहतं है और कभी भय एव आतक के कारण ऐसा करती है। कभी यह उद्देश्य होता है वि इस उत्तम व्यवहार के कारण कौम को स्वय आदर-सम्मान प्राप्त हो जाय, किन्तु उ लोगों का आदर-सम्मान, जिनमे न "असबियत" हो जिसके कारण भय किया जा और न उनसे उच्च श्रेणी प्राप्त करने की आशा हो, इस कारण किया जाता है वि इसके द्वारा उच्चकोटि की नैतिकता एव चरित्र का प्रदर्शन किया जाता है और राज नीति को उचित रूप से चलाया जाता है। अपने समकक्ष कबीले के शरीफो[2] का आदर सम्मान राजनीति के लिए विशेष रूप से आवश्यक होता है और साधारण योग्यता वे व्यक्तियो एव शरीफो का सम्मान साधारण राजनीति के कारण होता है। पवि लोगों का आदर-सम्मान धर्म के कारण होता है और आलिमो का आदर-सम्मा शरई आदेशो की स्थापना की दृष्टि से किया जाता है। व्यापारियों के साथ उत्त व्यवहार उनका साहस बढाने के लिए किया जाता है ताकि व्यापार की उन्नति हो यात्रियो के साथ उत्तम व्यवहार नैतिकता के प्रदर्शन हेतु किया जाता है, कारण वि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी श्रेणी के अनुसार व्यवहार करना न्याय को प्रमाणित करत है। अतः जिस क़ौम मे यह हृदयग्राही गुण पाये जायँ तो यह समझ लेना चाहिए वि

१. असबियत सम्बन्धी।

२. नेताओं।

वह शीघ्र ही शासन का कार्यभार सँभालेगी और राज्य के सम्मान द्वारा सम्मानित होगी, कारण कि ईश्वर ने राज्य-विजय करने के यही चिह्न निश्चित किये है। इसी कारण ईश्वर जिस कौम से राज्य एव सल्तनत छीनना चाहता है तो सर्वप्रथम यह चिह्न उसमें प्रकट होता है कि वह कौम गरीफो एव देश के सम्मानित व्यक्तियो का आदर-सम्मान त्याग देती है। जब किसी कौम में इन गुणों का अभाव पाया जाय तो समझ लेना चाहिए कि उसकी प्रतिष्ठा पतनशील है और अब राज्य भी हाथ से निकलनेवाला है। "यदि ईश्वर किसी का पतन चाहता है तो फिर उसे कोई नहीं रोक सकता।"[1]

(२१) वहशी कौमों का राज्य बड़ा विस्तृत होता है

इसका कारण यह है कि वहशी कौमे अधिक प्रभुत्ववाली एव शक्तिशाली होती है। क्योंकि वे कौमो से युद्ध करने में अत्यधिक निर्भीक एव निडर होती है अत: वे दूसरी कौमों को अपना दास एव आज्ञाकारी बना लेती है। मानो वे मनुष्यो में खूँख्वार वनपशुओं के समान होती है और सभी लोग उनसे आतकित रहते है। उदाहरणार्थ अरब, जनाता, कुर्द, तुर्क और सिनहाजा के कुछ कबीले, जिनकी गणना वहशी कौमो मे होती है। इन वहशी कौमों का कोई देश नही होता जिसके प्रेम के बधनो मे वे बँधी रहे और न कोई उनका विशेष घर होता है जिसमे वे घिरी रहने को आदी हों। स्वदेश-विदेश, नगर-यात्रा सभी उनके लिए समान होते है। इसी कारण वे अपने ही राज्य के क्षेत्र अथवा उसके समीप रहकर जीवन नहीं व्यतीत करती अपितु दूर-दूर के देशो मे पहुँचकर वहाँ बसनेवाली कौमों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है। इस सम्बन्ध में यह घटना उल्लेखनीय है। जब हजरत उमर से बैअत[2] की गयी और वे लोगो को इराक के युद्ध हेतु प्रेरित करने के लिए खडे हुए तो कहा, "हे लोगो! हिजाज तुम्हारा कोई घर नही जो तुमको यह बाहर न निकलने दे। यह तुम्हे केवल जल एव घास की सुगमता उपलब्ध करता है और जीविका सम्बन्धी अन्य आवश्यकताएँ आसानी से एकत्र कराता है, किन्तु इसका यह उद्देश्य नही कि तुम इन आवश्यकताओ के दास बन जाओ और हिजाज का त्यागना तुम्हारे लिए कठिन हो जाय। हे मुहाजेरीन[3]! क्या तुम ईश्वर के आश्वासन को भूल गये जो कहता है कि, "जाओ और

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. अधीनता की शपथ।
३. वे लोग जो हजरत मुहम्मद के साथ मक्का छोड़कर मदीना चले गये थे।

उस भूमि पर फैल जाओ जिसका ईश्वर ने तुम्हे स्वामी बनाने का वचन दिया है।"[१] अरब की प्राचीन कौमो की यही दशा रही है। उदाहरणार्थ तुब्बा एव हमीर, जो कहा जाता है कि कभी यमन से मगरिब तक पहुँच गये और कभी इराक तथा हिन्द तक। अरब के अतिरिक्त अन्य कौमे नि सन्देह ऐसी न थी। यही दशा मगरिब के नक़ाबपोशो (सिनहाजा) की थी कि जब उन्होने राज्य की बागडोर सँभाली तो प्रथम इकलीम मे स्थित सूडान के पास से उठकर चौथी एव पाँचवी इकलीम में उन्दुलुस तक पहुँच गये। इतिहास से पता चलता है कि वहशी कौमो की यही दशा रही है और इसी लिए उनके राज्य का क्षेत्र बडा विस्तृत होता है और उनके स्वदेश के आगे बडी दूर तक उनके राज्य का क्षेत्र फैला रहता है। "ईश्वर ही रात-दिन निश्चित करता है।"[१]

(२२) किसी सल्तनत एवं "असबियत" की स्वामी क़ौम से सल्तनत नही निकलती, यदि एक वंश से निकल जाती है तो दूसरे वंश में पहुँच जाती है

जब किसी कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है और अन्य कौमे उसके प्रभुत्व का लोहा मानकर उसकी आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेती है तो राज्य चलाने एव राजसिहासन की रक्षा हेतु उन्ही मे से लोग छाँटे जाते है और उसी कौम के वश मे से उनका चुनाव होता है, किन्तु सब वशो मे से नही, अपितु केवल उसी वश से जो सबमे शक्तिशाली एव प्रभावशाली होता है। उसके सामने किसी की वीरता को सफलता नही प्राप्त होती। जब उस वश के व्यक्ति राज्य एवं शासनप्रबन्ध हेतु चुने जाते है और कार्य के क्षेत्र मे प्रविष्ट होते है तो भोग-विलास एव समृद्धि की इच्छा करने लगते है। वे अपने ही कबीले तथा वश के लोगो को राजसिहासन पर आरूढ करते है और जिन वशों को शासनप्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नही, वे दूर ही पड़े रहते है। जिस शासन मे उनको वश के अनुसार सम्मिलित होने का अधिकार होता है, उसमे उनकी कोई चिन्ता नहीं करता। किन्तु इस प्रकार भोग-विलास के जीवन से पृथक् रहकर वे शक्तिहीनता से भी बचे रहते है।

फलत: भोग-विलास में ग्रस्त रहनेवाले एवं शासक वश जब काल-चक्र का शिकार होते है और उनकी कमजोरी उनकी समृद्धि का अन्त कर देती है तो राज्य

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

भी उनकी ओर से आँखे फेर लेता है, काल-चक्र उन्हे हड़प कर डालता है, समृद्धि उनकी तेजी एव कठोरता का अन्त कर देती है, भोग-विलास उनके गौरव को नष्ट कर देता है और वे मानवी सस्कृति तथा राजनीति मे जो कुछ कर सकते है उसका अन्त हो जाता है।

शेर— रेशम के कीड़े की भाँति जो कातता है और फिर बाद मे,
उसी काते हुए सूत के कारण उसका अन्त हो जाता है।

ऐसी अवस्था मे उनके मुकाबले में अन्य वश उपस्थित होते है जिनकी "असबियत" उसी प्रकार दृढ, जिनका उत्साह पूर्णरूप से सुरक्षित और जिनके भय एव आतक का सिक्का सबके हृदय पर आरूढ होता है। अतः राज्य प्राप्त करने की इच्छा उनका हाथ पकडकर उठाती है। जिस राज्य से आतकवादी शक्ति उन्हे दूर रखती थी वह उन्ही की कौम से थी। वे उसकी प्राप्ति हेतु कटिबद्ध होकर युद्ध प्रारम्भ करते है और वीरता के गुण प्रदर्शित करते है, अत. अन्त मे राज्य की बागडोर सँभाल लेते है और देश पर अधिकार जमा लेते है। फिर कौम के वह वश तथा कबीले जो नये राज्य के प्रारम्भिक काल में शासनप्रबन्ध से पृथक् रखे जाते थे, कुछ समय व्यतीत होने पर उस शासकवर्ग के साथ वही व्यवहार करते है जो वह अपने पूर्व के वश के साथ कर चुका है। संक्षेप मे कौम के वशो में इसी प्रकार व्यवहार होता रहता है, यहाँ तक कि पूरी कौम का "असबी" उत्साह ठडा पड जाता है और समस्त वश नष्ट हो जाते है। "तुम्हारे ईश्वर के अनुसार परलोक उन्ही का है जो ईश्वर का भय करते है।"

देखना चाहिए कि अरब में आद नामक कौम का राज्य नष्ट हो जाने के कारण उनके भाई समूद ने राज्य सँभाल लिया। तदुपरान्त उनसे उनके भाई अमालक़ा ने राज्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनके भाई हमीर सिहासनारूढ हुए। उनके उपरान्त तबाबेआ का राज्य प्रारम्भ हुआ। फिर अजवा को प्रभुत्व मिला। उनके भी बाद मुजर का शासन प्रारम्भ हुआ। यही हाल ईरानी राज्यो का हुआ। जब कयानी राज्य नष्ट हो गया तो सासानियो को प्रभुत्व प्राप्त हो गया। तदुपरान्त मुसलमानों द्वारा उनका विनाश हो गया। इसी प्रकार यूनान वालो का राज्य उनके हाथ से निकलकर रोमवालों को प्राप्त हो गया। इसी तरह मगरिब में बरबर क़बीलों में से कुतामा तथा मगरावह के विनाश के उपरान्त सिनहाजा तथा मसमूदह को प्रभुत्व प्राप्त हुआ। तदुपरान्त जनाता की कुछ शाखाओं ने अपना राज्य प्रारम्भ किया। सक्षेप मे प्रभुत्व के इस पूरे परिवर्तन काल मे "असबियत" एव वशीय मर्यादा का

हाथ रहा। जिसमे "असबियत" अधिक होती है, वही सर्वोच्च प्रभुत्व का स्वामी बन जाता है। भोग-विलास, ऐश व आराम एव समृद्धि शासन एवं सल्तनत की जड़ें खोखली कर डालती हैं।

जब एक वश तथा क़बीले का राज्य समाप्त होता है तो प्रभुत्व उसी वश को प्राप्त होता है जो शासकवश की "असबियत" मे साझीदार हो और जिसके अधीन सभी "असबियतें" रह चुकी हों और उसके शासन से परिचित हों। यह दशा निकटतम वशीय सम्बन्ध की स्थिति में है कि शासन एक क़ौम के विभिन्न वंशो में चक्कर लगाता रहता है, कारण कि "असबियत" का अन्तर वश के निकट तथा दूर के सम्बन्ध पर निर्भर है। नि:सन्देह जब संसार में कोई बड़ी क्रान्ति हो, उदाहरणार्थ राज्य के धर्म मे परिवर्तन हो जाय, अथवा संसार की आबादी बड़े पैमाने पर घट जाय अथवा कोई अन्य क्रान्ति हो, तो फिर राज्य प्रथम शासकवर्ग से पूर्णतः निकल जाता है और एक दूसरी कौम जिसको ईश्वर उसके स्थान पर लाना चाहे, राज्य प्राप्त कर लेती है। इस तथ्य के प्रमाण-स्वरूप तारीखे मुजर का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो कई पीढियो तथा नस्लों से बदवियत में डूबे हुए तथा सभ्यता एवं सस्कृति से अपरिचित थे किन्तु इस्लाम स्वीकार करते ही उन्होने राज्यों एव सल्तनतो के तख्ते पलट दिये और उनके हाथ से प्रभुत्व छीन लिया।

(२३) पराजित क़ौमें विजयी कौमों के आचार-व्यवहार, वेष-भूषा, धर्म-विश्वास, चरित्र, स्वभाव एवं अन्य बातों का बड़ी रुचि से अनुकरण करती है

इसका कारण यह है कि यह मनुष्य की प्रकृति है कि जो कोई उस पर प्रभुत्व प्राप्त करता है वह उसकी योग्यता से प्रभावित हो जाता है। या तो अत्यधिक श्रद्धा के कारण विजयी का कोई न कोई गुण उसे प्रभावित कर लेता है और या उसको यह भ्रम होने लगता है कि विजयी का उस पर प्रभुत्व अकस्मात् नही अपितु उसकी अपार योग्यता के कारण है। जैसे ही यह विचार एव विश्वास हृदय में आरूढ़ हो जाते है तो पराजित विजयी को हर रग मे रँगने लगता है और अपने आचरण से उसका चित्र खीचने का प्रयत्न करता है। इसी आचरण एव व्यवहार को हम प्रभुत्व कहते है। कभी-कभी पराजित इस भ्रम में रहता है कि विजयी के प्रभुत्व का कारण न "असबियत" है और न आतक एव शक्ति, अपितु वही स्वभाव एव आदते, धर्म तथा विश्वास इस प्रभुत्व का कारण है जिन्होने उसे आकृष्ट कर लिया है। इसका साराश भी प्रथम

कारण से मिलता-जुलता है, कारण कि इस दशा मे भी प्रभुत्व के रहस्य का पता लगाने मे उसे भ्रम होता है। इसी भ्रम के कारण पराजित, विजयी का हर प्रकार से अनुकरण करता जाता है। वेष-भूषा, घोडो, अस्त्र-शस्त्र तथा जीवन की अन्य समस्याओ में वह विजयी का अनुकरण करता है। उसकी सन्तान भी इसी प्रथा पर आचरण करती है। इसका कारण यह है कि संतान की दृष्टि मे उसके पूर्वज योग्यता एवं निपुणता का केन्द्र होते है।

इसी प्रकार प्रत्येक राज्य के इतिहास को अपने समक्ष रखकर यह देखना चाहिए कि किसी के अधीन प्राणी किस प्रकार अपने समकालीन शासक की वेष-भूषा एव आचार-व्यवहार का अनुकरण करते है। यहाँ तक कि शाही सेना की वर्दी की भी नकल करने लगते है। यह बात केवल प्रभुत्व एव शक्ति के कारण होती है। सदृश बनने की इच्छा का यहाँ तक प्रभाव पड़ता है कि जब एक कौम दूसरी कौम के समीप निवास करने लगे और उससे प्रभावित हो जाय तो वह अपनी पडोसी कौम का अनुकरण करने लगती है।

आज हमारे युग मे उन्दुलुसवाले इसी कारण वेष-भूषा, चाल-ढाल, आचार-विचार, स्वभाव एव अन्य बातो मे जलालका[1] के अत्यधिक सदृश है। यहाँ तक कि दीवारों, कारखानो तथा घरो में चित्रो एव बेलबूटों के बनवाने मे भी उन्ही का अनुकरण करते है। गहरी दृष्टि से देखनेवालो को यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सब कुछ जलालका के प्रभुत्व एव उनकी शक्ति का प्रभाव है। यही से इस कथन के तथ्य का पता लगता है कि साधारण लोग समकालीन बादशाह के धर्म का अनुकरण करते है।

इससे भी जिस तथ्य का हमने वर्णन किया, उसका पता चल जाता है कि बादशाह को क्योंकि अपनी अधीनस्थ प्रजा पर प्रभुत्व प्राप्त होता है, अतः प्रजा भी उसी का अनुकरण करती है। प्रजा को इस बात पर विश्वास होता है कि उसका बादशाह पूरी योग्यता एव प्रतिष्ठा का स्वामी है, जिस प्रकार सतान को अपने पिता एवं शिष्य को गुरु की योग्यता का पूर्ण विश्वास होता है।

(२४) जब कोई कौम पराजित होकर दूसरी क़ौम के चंगुल में फँसती है तो शीघ्र ही नष्ट हो जाती है

इसका कारण यह है कि जब किसी क़ौम के अधिकार की बागडोर किसी दूसरे के हाथ मे चली जाती है और वह दास बनकर दूसरों के हाथ का खिलौना एवं उन

१. गेलिकियन।

पर निर्भर हो जाती है तो उसमे शिथिलता एव आलस्य उत्पन्न हो जाते है। कौम के लोग साहसहीन हो जाते है और उनकी आशाएँ मद पड जाती है। सतान शक्ति-हीन हो जाती है और उनकी कमी होने लगती है। आबादी नित्य-प्रति घटने लगती है, कारण कि आबादी की बहुतायत, उच्च साहस एव नयी उमगो का स्रोत होती है। इससे नैसर्गिक शक्तियो मे उत्तेजना उत्पन्न होती है। जब आलस्य के कारण आशाएं ठडी पड जाती है और उल्लास, उत्तेजना एव सस्कृति के अन्य साधन नष्ट हो जाते है और "असबियत" अन्य लोगों का प्रभुत्व स्वीकार करने के कारण पूर्व से ही समाप्त हो जाती है तो ऐसी दशा मे आबादी अनिवार्य रूप से घटने लगती है। लोगो में परिश्रम एवं कर्तव्यपरायणता की भावना ठंडी पड़ जाती है और प्रयत्न एव सघर्ष की योग्यता नही रहती। प्रतिरक्षा की उनमे शक्ति नही रह जाती और अन्य कौमो का प्रभुत्व उनके ऐश्वर्य एवं वैभव को नष्ट कर देता है। वे प्रत्येक शक्तिशाली कौम से दब जाते है और प्रत्येक ताकतवर उन्हे हडप कर डालता है, चाहे वह राज्य उन्नति की चरम सीमा पर क्यों न पहुँच गया हो।

इसका एक कारण और भी है। वह इस प्रकार कि मनुष्य भूमि पर दैवी राज्य स्थापित करने के लिए उत्पन्न हुआ है और वह नैसर्गिक रूप से अधिकार सम्पन्न है। अधिकार-सम्पन्न जब अपना अधिकार खो दे और आदर-सम्मान से हाथ धो ले तो वह स्वाभाविक रूप से आलसी एव शिथिल हो जाता है। न उसे खाने की इच्छा होती है और न पीने की। मनुष्य के विषय मे तो यह सत्य है ही, वन-पशुओ के स्वभाव के विषय मे भी यही देखा गया है कि जब तक वे मनुष्यो की कैद मे रहते है, बच्चे देना वन्द कर देते है। यही हाल पराजित क़ौमो का है कि सर्वप्रथम दूसरो की दासता मे पहुँचकर उनकी जनसख्या मे कमी होने लगती है और वे कमजोर पड जाती है और तत्पश्चात् नष्ट हो जाती है।

फारस की कौम पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि पहले एक समय ऐसा था जब संसार उनसे भरा पडा था। फिर जब अरबो का शासन-काल आया और उनकी "असबियत" एव उनके गौरव मे कमी हुई तब भी वे थोडी-बहुत सख्या मे बच गये। कहा जाता है कि जब हजरत साद[1] ने मदाएन के उस ओर के इलाके की जन-गणना करायी तो वहाँ के निवासियो की सख्या १,३७,००० निकली। इनमे से ३७,००० घराने

१. साद बिन अबी वक़्क़ास।

थे, किन्तु जब वे लोग अरबो के अधीन हुए और अरबो का प्रभुत्व उन पर जमा तो थोड़े ही लोग शेष रह गये। फिर वे इस प्रकार नष्ट हो गये कि मानो थे ही नही।

यहाँ यह विचार पैदा न हो कि उनके मिटने एव नष्ट होने में अत्याचार का हाथ था, कारण कि इस्लामी राज्य तो न्याय पर आधारित थे, अपितु यह बात मनुष्य के लिए स्वाभाविक है कि कोई कौम जैसे ही अन्य लोगो के अधीन हुई और उसने दूसरो के हाथ मे खेलना प्रारम्भ किया तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। हबशी कौमों पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि वे दासता हेतु शीघ्र तैयार हो जाती है, कारण कि उनमे मानवीय गुणों का अभाव होता है। उनका स्वभाव पशुओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वे लोग अपने गले में दासता की जंजीर अपनी इच्छा से डलवा लेते है। वे सम्मान, धन-सम्पत्ति एव पद के लोभी होते है।

पूर्व मे तुर्को, उन्दुलुस मे जलालका अथवा फिरगियो को दासता स्वीकार करने मे कोई भय नही होता और आदर-सम्मान के लोभ मे वे इसके लिए तैयार हो जाते है।

(२५) अरब का प्रभुत्व एवं अधिकार प्राय: खुले एवं बेरोक देशों पर होता है

अरब अपने स्वभाव के अनुसार वहशी होने के कारण प्राय लूट-मार के आदी होते है। युद्ध एव लडाई-भिड़ाई के खतरो मे अपने प्राणों को डाले बिना जब कभी भी वे किसी वस्तु पर अधिकार प्राप्त कर पाते है, लूटकर चलते बनते है और रेगिस्तान के चरागाहो मे शरण लेते है। जब तक प्रतिरक्षा का अवसर न आये, ये लोग युद्ध में नही फँसते। ये लोग ऐसे स्थानो की ओर रुख नही करते है जिनकी विजय अधिक बलिदान चाहती है, अपितु ऐसे स्थानो पर अधिक छापे मारते है जो सुगमतापूर्वक उनकी लूट-मार का शिकार हो जाते है। इसी प्रकार वे कबीले तथा क़ौमे भी, जो पर्वतो की घाटियो मे निवास करती है, उनके उत्पात से बच जाती है, कारण कि अरब उनकी विजय हेतु कठिनाइयों एव खतरो का सामना करने के लिए तैयार नही होते। किन्तु जब किसी कौम को खुले मैदानो मे निवास करते देखते है अथवा किसी राज्य को शक्तिहीन पाते है तो लूट-मार कर उसको नष्ट कर डालते है। इसका कारण यह है कि उनको अधिक कठिनाइयो का सामना नही करना पड़ता। सक्षेप मे खुले मैदानों के निवासी जब तक पूर्णरूप से उनके प्रभुत्व के अधीन न हो जायँ उस समय तक वे इसी प्रकार लुटते रहते है। फिर विभिन्न कबीलों के वंश बारी-बारी उन पर शासन तथा राज्य करते है, यहाँ तक कि उनका शासन-काल स्वय समाप्त हो जाता है।

(२६) अरब जिस राज्य पर अधिकार प्राप्त करते है, वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है

वास्तव मे अरब एक वहशी कौम है, जिसमे वहशियो के स्वभाव इस प्रकार आरूढ हो जाते है कि वे उनकी स्वाभाविक आदत समझे जाने लगते है। यह वहशत अरबो को इस कारण अधिक पसन्द है कि इसके द्वारा उनको दूसरो की आज्ञाकारिता से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और किसी के राज्य के समक्ष वे अपना सिर नही झुकाते। उनकी यह प्रवृत्ति सभ्यता तथा सस्कृति की कट्टर विरोधी है। इसके अतिरिक्त वे इधर-उधर चलने-फिरने एव लूटमार के आदी होते है और यह आदत उन्हे शान्ति से नही बैठने देती और वे किसी स्थान को स्थायी रूप से बसाने मे असमर्थ होते है। उदाहरणार्थ पत्थर की उन्हे इसी कारण आवश्यकता होती है कि वे उससे अपने चूल्हे बनाये, अत. पत्थर के लिए वे भवनो को तोड़-फोड़कर उनसे पत्थर प्राप्त कर लेते है। लकड़ी की आवश्यकता उन्हे इस कारण होती है कि उससे बने हुए खूँटो से अपने खेमे खड़े करते है। इसी उद्देश्य से वे अच्छे-अच्छे घरो की छते तोड़ डालते है और उनसे लकड़ियाँ निकाल ले जाते है। इस प्रकार उन लोगो का अस्तित्व भवनो एव घरों के लिए जो सभ्यता एव सस्कृति हेतु परमावश्यक है, हानिकारक होता है। यह तो उनकी साधारण दशा है किन्तु वैसे भी लोगो के धन का अपहरण उनके लिए स्वाभाविक है। उन्हे अपनी जीविका बर्छों की छाया मे प्राप्त होती है। फिर वे लोग धन के अपहरण के समय किसी उद्देश्य एवं सीमा से सन्तुष्ट नही रहते, अपितु जिस वस्तु पर भी उनकी दृष्टि पड जाती है, वह चाहे धन-सम्पत्ति हो और चाहे अन्य प्रयोग की वस्तु, वे उन्हें लूट ले जाते है। जब उनको सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है तो लोगो के धन की रक्षा का कोई उपाय नही रह जाता। सभ्यता नष्ट होने लगती है।

इसके अतिरिक्त वे लोग कला-कौशल को कोई महत्त्व नहीं प्रदान करते। वे अत्यधिक परिश्रम द्वारा जो कुछ तैयार करते है उसका कोई मूल्य नही समझते। हम इस तथ्य को आगे के पृष्ठो मे स्पष्ट करेगे कि व्यवसाय एव पेशो का मूल आधार कला-कौशल है। जब कला-कौशल का अनादर होने लगता है और देश मे उसका कोई मूल्य नही समझा जाता तो लोगों के हृदय मे कला-कौशल का उत्साह मद पड़ जाता है, अपितु नष्ट हो जाता है और हाथ काम से रुक जाते है। देशवाले आतकित हो जाते है। सभ्यता को हानि होने लगती है।

अरबो के अधीनस्थ राज्यो के विनाश का एक यह भी कारण होता है कि वे देश के शासन-प्रबन्ध की ओर कोई विशेष ध्यान नही देते। न तो वे झगड़े फ़साद की रोक-थाम करते हैं और न एक दूसरे को कष्ट पहुँचाने से रोकते है। वे इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया करते है कि किसी प्रकार लोगो की धन-सम्पत्ति का अपहरण कर लिया जाय। जब वे अपना उद्देश्य पूरा कर लेते है तो राज्यवालों की उपेक्षा करने लगते है। न उनके उद्देश्यों की देखभाल करते है और न उनको अपराध करने से रोकते है। अनेक बार वे लोगों पर जुर्माने लगाते है। इससे उन्हें केवल धन-सबधी लाभ प्राप्त करने की इच्छा रहती है और यह उनकी आय का एक साधन होता है। वे इस प्रकार अत्यधिक धन-सम्पत्ति एकत्र करना चाहते है। उनके इस व्यवहार से अत्याचार एव उत्पात तो कम नही होता अपितु फसाद की अग्नि और भी भडकती है, कारण कि इस तरह भारी-भारी जुर्मानो के कारण शासन के धन एकत्र करने की इच्छा और भी प्रबल हो जाती है। प्रजा मनमाना काम करने लगती है। यह भावना मानवीय सगठन हेतु अत्यन्त हानिकारक तथा सभ्यता के लिए विनाशक होती है। कारण कि इस बात का उल्लेख हो चुका है कि बादशाह का अस्तित्व मनुष्य की प्रकृति को देखते हुए परमावश्यक है। उसके बिना मनुष्य का अस्तित्व असम्भव है और न इससे मनुष्य के सामाजिक जीवन की ही कोई रूपरेखा बनती है।

राज्य के विनाश का एक अन्य कारण यह भी है कि उनमे अत्यन्त यथेच्छाचार पाया जाता है। वे दूसरे के राज्य को सहन नही कर सकते, यद्यपि वह पिता, भ्राता अथवा क़बीले का नेता ही क्यो न हो। हाँ, कभी लज्जा एव सकोचवश दब जाते है। इसी कारण उनमें हाकिमो की सख्या अधिक होती है जो एक-एक करके आते रहते है। उनमे से प्रत्येक प्रजा को खूब निचोडता है और उन पर शासन की आकाक्षाएँ पूरी करता है। सभ्यता भी विनाश का लक्ष्य बनती है और घटने लगती है।

कहा जाता है कि एक अरब हिजाज से अब्दुल मलिक के पास आया। अब्दुल मलिक[1] ने अरब से हज्जाज[2] के विषय मे प्रश्न किया। वह चाहता था कि अरब

१. अब्दुल मलिक बिन मरवान उमय्या वंश का पाँचवाँ ख़लीफ़ा। वह ६८५ ई० से ७०५ ई० तक ख़लीफ़ा रहा।

२. हज्जाज बिन यूसुफ़ अल-सक़फ़ी जिसे अब्दुल मलिक ने अरब तथा अरबी इराक़ का हाकिम बना दिया था। उसका आतंक एवं निष्ठुरता प्रसिद्ध है। उसकी मृत्यु ७१४ ई० में हुई।

हज्जाज की राजनीति एव उनके सुशासन की प्रशसा करे, किन्तु उसने कहा कि "मैं उसे अकेला अत्याचार करता हुआ छोडकर आया हूँ", मानो अरब में केवल शासक ही अत्याचार करता हो तो यह उसके सुशासन का द्योतक है।

सक्षेप में जिस राज्य पर उन्होने शासन किया तथा अधिकार प्राप्त किया तो उसकी सभ्यता की हानि हुई, देश वीरान हुआ और भूमि की दशा कुछ से कुछ हो गयी। उदाहरणार्थ जब वे यमन मे पहुँचे तो यमन विनाश के घाट उतर गया। केवल थोडे से नगरो को छोडकर इराक की भी यही दशा हुई, कारण कि पारसियो के राज्य-काल मे वह बड़ा ही हरा-भरा था और अब उजड चुका है। इधर शाम भी वीरान है। पाँचवी शताब्दी[1] के प्रारम्भ मे बनू हिलाल तथा बनू सुलैम मगरिब एव इफरीकिया की ओर पहुँचे तो ३५० वर्ष तक राज्य के लिए सघर्ष करते रहे। उन्होने उस भूभाग को अपना बना लिया और मगरिब के खुले मैदान नष्ट हो गये, हालाँ कि इससे पूर्व सूडान एव भूमध्य सागर के मध्य का पूरा भू-भाग आबादी से भरा हुआ था। नगरो एव कसबो मे जो सभ्यता नष्ट हो चुकी है उसके अवशेष एवं उजड़े हुए घरो के खंडहर अब भी भूत-काल की सभ्यता का पता दे रहे है। "ईश्वर ही भूमि तथा उस पर जो कुछ है उसका वारिस है। वही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"[2]

(२७) अरबों को राजनीतिक प्रभुत्व नबूअत,[3] विलायत[4] अथवा अन्य किसी बहुत बड़े धार्मिक प्रभाव के अधीन ही प्राप्त हुआ है

इसका कारण यह है कि अरब स्वाभाविक रूप से वहशी होते है। कठोरता, आत्म-सम्मान, उच्च साहस और शासन की उनमें बड़ी प्रवल इच्छा होती है, अत. वे लोग किसी के अधीन रहना बडी कठिनाई से पसन्द करते है। वे अपनी इच्छाओं के लिए किसी बिन्दु पर वड़ी कठिनाई से रुकते है। जब नबूअत अथवा विलायत का प्रचार उनमे होता है तो इस कारण कि प्रचार करनेवाला उन्ही मे से होता है, उनका अभिमान नष्ट हो जाता है और वे सुगमतापूर्वक आज्ञाकारी बनकर सगठित हो जाते है।

१. पाँचवी शताब्दी हिजरी (११ वीं शताब्दी ईसवी)।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
३. नबी (ईश्वर के दूत) होने के कार्य।
४. वली (सूफ़ी-सन्त) होने के कार्य।

धर्म स्वय उनकी कठोरता, अभिमान, ईर्ष्या एव यथेच्छाचार की भावनाओं का खडन करता है। उन लोगो मे नबी अथवा वली उनको दैवी आदेशों पर दृढ़ रखने तथा उनके अनुचित स्वभाव एवं दुराचार को मिटाकर उत्तम गुण एवं चरित्र पैदा करने का अनथक प्रयत्न करते है और सत्य पर दृढ रहने के लिए उन सबको दिल से तैयार करते है। जब वे एकता एव सगठन की एक ही लडी मे गुँथ जाते है तो राज्यों को विजय कर लेते है और राज्यों के शासन की बागडोर अपने हाथ मे संभाल लेते है। अरब यद्यपि बड़े कठोर स्वभाव के होते है किन्तु अन्य कौमों की अपेक्षा शीघ्र सत्य एवं धार्मिक पथ-प्रदर्शन को स्वीकार कर लेते है। इसका कारण यह है कि उनमे दुराचार एवं व्यभिचार नही पाया जाता। स्वाभाविक रूप से वहशी होने के कारण वे प्रकृति से निकटतम होते है और भलाई को स्वीकार करने की उनमें बड़ी योग्यता होती है। बुरी तथा अनुचित आदते एव अनुपयुक्त भावनाओ को स्वीकार करने से वे बड़ी दूर एवं बहुत बड़ी सीमा तक सुरक्षित रहते है।

(२८) राजनीति के विषय में अरब समस्त क़ौमों से दूर एवं अपरिचित होते है

इसका कारण यह है कि समस्त क़ौमो की अपेक्षा अरबों में बहुत अधिक बदवियत पायी जाती है। वे सबसे अधिक दूर रेगिस्तानों में निवास करते है। हरे-भरे स्थानों के जीवन की आवश्यकताओं की उन्हें कोई चिन्ता नही होती। वे उससे दूर एवं कठिन जीवन व्यतीत करने के आदी होते है। उनमें से कोई भी किसी अन्य की आज्ञाकारिता स्वीकार नही करता, कारण कि उनके स्वभाव मे जो वहशत है,वह उन्हें इसी ओर प्रेरित करती है। उनका जो नाम मात्र को शेख होता है वह अधिकांश उन्ही के ऊपर निर्भर होता है, ताकि वह उनकी सहायता एवं "असबियत" से अपने आपमे प्रतिरक्षा की भावना उत्पन्न करे। इसी कारण से वह उन्हे प्रोत्साहन देने एव उनके साथ कृपा एवं दया-भाव प्रदर्शित करने पर विवश होता है। वह उनको किसी प्रकार रुष्ट नही कर सकता, कारण कि उनके विरुद्ध कार्य करने से "असबियत" छिन्न-भिन्न हो जायगी और न तो वह अपनी रक्षा और न अन्य लोगों की रक्षा कर पायेगा, यद्यपि राजनीति के लिए यह आवश्यक है कि शासक कठोरता, हिसा एव आतंक द्वारा राज्य के अधि-नियमो को देश मे चलाये, क्योंकि कृपा एव नरमी से राजनीति को चलाना असम्भव है।

इसका एक अन्य कारण यह भी है कि अरब लोग, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, लोगों की धन-सम्पत्ति के अपहरण की ओर आकृष्ट होते है। इसके अतिरिक्त राज्य एव शासन के कर्त्तव्यों से, उदाहरणार्थ राज्य के अधिनियमों का प्रचलित कराना, लोगों की एक दूसरे के अत्याचार से रक्षा करना, वे इनसे अपरिचित होते है। जब वे किसी क़ौम पर अधिकार प्राप्त करते है तो धन की प्राप्ति ही उनका उद्देश्य होता है। वे राज्य के समस्त अधिनियमो की उपेक्षा करने लगते है। कभी-कभी प्रजा पर भारी आर्थिक दड लगाकर आय के साधन तैयार कर लेते है और अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करते है। राजनीति के गुणो की उन्हे कोई चिन्ता नही होती, अपितु वे ऐसी अभिलाषाओं के वश मे होते है जो राज्य को उपद्रव एव विनाश की ओर ले जाती है। अशान्ति नित्य-प्रति बढने और देश की सभ्यता विनाश की ओर अग्रसर होने लगती है। इस परिस्थिति मे उनकी अधीन कौम का प्रत्येक प्राणी ऐसा उद्दड एव निर्भीक हो जाता है कि वह दूसरो पर अत्याचार प्रारम्भ कर देता है और वे एक दूसरे से झगड़ा किया करते है। ऐसी दशा में सभ्यता की किसी प्रकार कल्पना ही नही की जा सकती। वे वन-पशुओ के समान एक दूसरे को खाकर नष्ट हो जाते है। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अरब कौम का राजनीति से कोई सबध नही।

दीन एव धर्म के प्रकाश से जब अरबों के स्वभाव मे क्रान्ति आती है तो उनमें राजनीति की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। धर्म उनके अत्याचार एव अन्याय को समाप्त करके प्रेम एवं स्नेह उत्पन्न करता है। इस प्रकार जब अरब कौम में राज्य एव सल्तनत की नीव पड़ी और धर्म ने शरा सबधी अधिनियमो के रूप मे राजनीति की समस्याओं को दृढतापूर्वक देश मे प्रचलित किया और उन आदेशों को चलाया जो सभ्यता की बाह्य एवं आंतरिक आवश्यकताओ के लिए परमावश्यक थे, और इसी सिद्धान्त पर खिलाफतों[1] का क्रम प्रारम्भ हुआ, तो फिर अरबो के राज्य ने जोर पकडा और उनके राज्य मे एक गौरव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार जब रुस्तम[2] मुसलमानो की सेना को नमाज हेतु पक्तियाँ जमाये देखता था तो कहता था कि "उमर मेरा कलेजा चबा रहा है, वह अरब के कुत्तो को कैसा अनुशासन सिखा रहा है।"

जब मुसलमान कबीलो ने धर्म की उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया तो राज्य भी उनके हाथ से निकल गया और उन्होने राजनीति भी भुला दी। वे पुन अपने रेगिस्तानों

१. ख़लीफ़ाओं के राज्य।

२. क़ादिसिया के युद्ध में फ़ारस वालों का सेनापति।

की ओर चल दिये तथा अपनी "असबियत" का समस्त गौरव भूल गये। उनमें वहशत पुनः आ गयी और वे आज्ञाकारिता एव अनुशासन की भावनाओ से शून्य हो गये। अब उनमे राज्य का कोई चिह्न नही। केवल वे खलीफाओ की सतान से सबधित है। उनकी कौम वाले खिलाफ़त के अन्त एव राज्य तथा शासन के हाथ से निकल जाने एवं अजम[1] द्वारा परास्त हो जाने के कारण पुनः रेगिस्तानो की ओर चल दिये। अब न वे राज्य के तथ्य को जानते है और न राजनीति के अर्थ से परिचित है, अपितु उनमें से बहुत से लोगो को यह भी ज्ञात नही कि कभी किसी समय उनका राज्य भी था, वे उस गौरव तथा वैभव के स्वामी रह चुके है जो कभी किसी क़ौम को बिरले ही प्राप्त हुआ हो। आद, सुमूद, अमालक़ा, हमीर, तबाबेआ, मुजर, बनी उमय्या तथा बनी अब्बाह के राज्य इस बात के प्रमाण है। किन्तु जब उन लोगो ने धर्म को भुला दिया तो वे पुनः अपनी बदवियत की ओर पलट आये, पर अब भी कभी-कभी अरब शक्तिहीन राज्यो का अपहरणकर लेते है। जैसा कि वे आजकल मगरिब पर अधिकार जमाये है, किन्तु इसका भी परिणाम वही दृष्टिगत होता है कि सभ्यता विनाश का शिकार हो जायगी, कारण कि जब वे राजनीति से पूर्णतः अपरिचित एव शासनप्रबंध के अयोग्य है तो सभ्यता किस प्रकार रह सकती है।

(२९) नगर-वासी रेगिस्तानी क़बीलों तथा समूहों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते हैं

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि रेगिस्तानों की सभ्यता, नगरों की सभ्यता को देखते हुए दोषपूर्ण एवं अधूरी होती है, कारण कि सभ्यता के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, वे सबकी सब उन्हे प्राप्त नही होती। उनके यहाँ तो केवल खेती का व्यवसाय होता है। कृषि के यत्र भी वहाॅ प्राप्त नही होते, कारण कि उन्हे अधिकांश नगर के कला-कौशल में दक्ष लोग बनाते है। न उनके यहाॅ बढई होते है, न दरजी और न लोहार, जिनसे उनकी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। इसी प्रकार उन लोगो के पास (सिक्कों के रूप मे) धन भी नही होता। वे केवल सामान एवं पैदावार अपने हाथ मे रखते है, उदाहरणार्थ कृषि हेतु अनाज, पशु तथा उनसे प्राप्त वस्तुएँ दूध, ऊन, खाल इत्यादि, जिन्हे वे नगरवासियो के हाथ बेचकर जीवन निर्वाह करते है। नगरो के प्रति उनकी आवश्यकता, अनुपेक्ष्य वस्तुओं के कारण होती है और बदवियों के

१. जो अरब न हों।

प्रति नगरवासियों की आवश्यकता अनावश्यक एवं सौंदर्य की वस्तुओं की जरूरत के कारण होती है। जब तक बदवियों को नगरवासियों पर प्रभुत्व प्राप्त न हुआ हो, वे नगरवालो पर ही निर्भर रहते है और नगरवासी अपनी आवश्यकताओ तथा सेवाओं में उनसे कार्य लेते हैं। यदि नगर मे कोई प्रभुत्वशाली शासक है तो वे सर्वदा उसी के आतक के नीचे दबे रहते है और उनकी आज्ञाकारिता के क्षेत्र से नही निकलते। यदि ऐसा नही तो कम से कम नगर मे किसी न किसी को तो शेष नगरवालो पर प्रभुत्व प्राप्त होगा, अन्यथा सभ्यता का सगठन समाप्त हो जायगा। फिर यही शासक बदवियों को अपने अधीन रखता है और अपनी आवश्यकताओ मे उनसे काम लेता है। कभी वह उनकी अनुमति तथा स्वीकृति से, तो कभी धन व्यय करके उन्हे प्रसन्न करके काम लेता है। वे धन के लोभ में उसकी सेवा में तल्लीन रहते हैं। फिर वे उसी धन से नगर से अपने जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करते है। कभी कभी शासक, यदि उसे बदवियो पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है, तो वह उन्हे विवश करके कार्य लेता है। कभी वह उन्हें उनके सम्बन्धियो इत्यादि से पृथक् कर देता है। जब कुछ ग्रामीण उसके अधिकार में आ जाते है तो शेष भी उसकी आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेते है। यदि वे ऐसा न करे तो उन्हे अपने विनाश का भय होता है। यह बात उनसे सम्भव नही कि वे एक स्थान छोडकर अन्य स्थान पर बस जायँ और शासक के अत्याचार से मुक्त हो जायँ, कारण कि आसपास के समस्त स्थान बदवियो के दृढ अधिकार मे रहते है। वे किसी को अपने पास नही फटकने देते, अत निसहाय बदवियो को नगरवासियो के प्रभुत्व के अधीन रहने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नही होता। वे उन्ही के प्रभुत्व के अधीन अपने जीवन के दिन काटते रहते हैं।

अध्याय ३

वहशी वंश, शाही अधिकार, ख़िलाफ़त, शाहीपद और तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ आधारभूत एवं गौण सिद्धान्त

(१) शाही अधिकार और बड़े-बड़े शाही वंशों का ऐश्वर्य "असबियत" द्वारा प्राप्त होता है

हम पहले लिख चुके है कि प्रभुत्व एवं अधिकार, प्रतिरक्षा तथा मुकाबला "असबियत" से ही पैदा होते है। "असबियत" ही कौमो मे स्नेह उत्पन्न करती है और एक दूसरे पर मर मिटना सिखाती है। यह भी सत्य ही है कि शाही अधिकार ऐसी अत्यन्त सम्मानित एव मनोरंजक वस्तु है जिसमें समस्त संसार के उपकार, शारीरिक एव वैषयिक इच्छाएँ तथा इंद्रिय-लोलुपता आदि समाविष्ट है। इसी कारण इन अधिकारो की प्राप्ति का मूल पारस्परिक ईर्ष्या एव द्वेष तथा एक दूसरे से होड़ आदि की भावनाएँ है। बडी कठिनाई से ही कोई इस उच्च पद को छोडने को खुशी से तैयार होगा। जब तक पूर्णरूप से विवश न हो जाय तब तक कोई भी उसे किसी प्रकार हाथ से नही जाने देना चाहता। इसमे झगड़ा फसाद होता है और प्रायः युद्ध एव रक्तपात तक हो जाता है, तव जाकर कही राज्य एव प्रभुत्व प्राप्त होता है। प्रभुत्व का एक मात्र आधार "असबियत" है। "असबियत" का यह कारनामा साधारण लोगों की दृष्टि से ओझल रहता है। वे ऐसे सभी आधार भुला देते है जिनके बल पर सल्तनत एव राज्य की नीव पड़ती है। नागरिक जीवन मे ही उनकी आँखे खुलती है और लगातार कई पीढ़ियो तक एक के बाद दूसरे बादशाह को राज्य प्राप्त करते हुए वे देखा करते है, अत. वे उन परिस्थितियो से पूर्णतः अपरिचित होते है जो राज्य के प्रारम्भिक अस्तित्व का कारण हुई थी। उन्होने केवल उन्ही शासको को देखा होता है जो अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुके होते है और सब लोग जिनके आज्ञाकारी बन चुके होते है। आदेशो के पालन मे उन्हे "असबियत" की कोई आवश्यकता नही होती। उन्हे इस बात का ज्ञान नही कि राज्य किस प्रकार प्रारम्भ हुआ और पिछले सुल्तानो ने किन कठिनाइयो को सहन करके शासन की नीव डाली। इस विषय मे उन्दुलुस वालों का उदाहरण विशेष रूप से विचारणीय है कि उन्होंने "असबियत" की इस अपार महिमा को भुला दिया, कारण कि उनके राज्य की स्थापना हुए दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था और उन्हे "असबियत" की चिन्ता तक न रह गयी थी।

(२) जब किसी शाही वंश की जड़ें दृढ़ हो जाती हैं तो उसे "असबियत" की चिन्ता नही रहती

उपर्युक्त तथ्य इस बात पर आधारित है कि प्रारम्भ मे अपार शक्ति के बल पर ही लोग नये राज्य के समक्ष सिर झुकाते है। क्योंकि लोगों को उसका अनुभव नही होता अत. उसकी आज्ञाकारिता नयी एवं विचित्र ज्ञात होती है। फिर जब एक विशेष वश मे सल्तनत जम जाती है और उसमे विभिन्न सुल्तानो के सिहासनारोहण का एक क्रम बँध जाता है, तो लोग सल्तनत का प्रारम्भिक इतिहास भूल जाते है और शासक वश का सिक्का सब पर बैठ जाता है। लोग उसकी अधीनता एव वशवदता को धार्मिक महत्त्व का स्थान दे देते हैं। उस वश के हित के लिए ऐसा जी-तोड युद्ध करते है मानो कोई धार्मिक जेहाद कर रहे हो। ऐसी अवस्था मे उस प्रभुताशाली वश को "असबियत" की क्या आवश्यकता रह जाती है, विशेषत. जब उसकी अधीनता एवं आज्ञाकारिता अल्लाह की "किताब" की एक ऐसी आज्ञा समझी जाने लगी हो, जिसमे न तो कोई परिवर्तन हो सकता है और न जिसे त्यागा जा सकता है। उसे धार्मिक विश्वास की एक कड़ी समझा जाने लगता है।

ऐसी दशा में उस प्रभुत्वशाली वश के राज्य एवं शासन की रक्षा या तो उन दासों और अन्य आश्रितों के बल-बूते पर निर्भर होती है, जो सल्तनत की "असबियत" की छाया मे पलते है और उसी के आश्रय मे आँख खोलते है, अथवा उन लोगो की सहायता पर, जो कुल के सम्बन्ध से तो पृथक् है किन्तु जिन्हे राज्य का सम्बन्ध प्राप्त है। वनी अब्बास के युग मे यही दशा रही, कारण कि अरबी "असबियत" तो मोतसिम[1] और उसके पुत्र वासिक बिल्लाह[2] के समय तक समाप्त हो चुकी थी। तदुपरान्त उन्होने अपना राज्य अजम, तुर्क, देलम, सलजूक सरीखी अपनी आश्रित कौमो द्वारा स्थापित रखा। अन्त में अजम ही राज्य पर छा गये और राज्य अपने केन्द्र की ओर सिमटने लगा यहाँ तक कि बगदाद का क्षेत्र भी उनके उत्पात से सुरक्षित न रह सका। देलम ने उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया और समस्त इलाको को अपने अधीन कर

१. अल-मोतसिम बिल्लाह, हारूनुर्रशीद का पुत्र, जो मामून की मृत्यु के उपरान्त ८३३ ई० से ८४२ ई० तक ख़लीफ़ा रहा।

२. अब्बासी ख़लीफ़ा अल वासिक़ बिल्लाह, जो ८४२ ई० से ८४७ ई० तक ख़लीफ़ा रहा।

लिया। खलीफ़ा लोग उन्ही के अधिकार में थे। फिर भी जब देलम का प्रभुत्व समाप्त हुआ तो सलजूक राज्य में अधिकारसम्पन्न बन गये और खलीफा लोग उन्हीं के अधीन रहने लगे। तदुपरान्त वे भी मैदान से हट गये और तातारियो ने राज्य पर चढ़ाई कर दी, ख़लीफ़ा की हत्या करके उसके वश को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

मगरिब में सिनहाजा की भी यही दशा हुई। लगभग पाँचवी शताब्दी[1] (हि०) में अथवा इससे कुछ पूर्व उनकी "असबियत" मे दोष उत्पन्न हो गया और उनका राज्य घटने लगा। उनके क्षेत्र महदिया, बजाया, कलआ तथा इफरीकिया के सीमांत के नगरो तक रह गये, अपितु इस सीमित राज्य पर भी शत्रुओं की ओर से कड़े आक्रमण होने लगे। किन्तु उनका सम्मान एव प्रभुत्व एक सीमा तक चलता रहा, यहाँ तक कि उनका भी ईश्वर के आदेश से अन्त हो गया और वे भी चल बसे। इसके उपरान्त मोहाद लोगों को मसमूदह में उनकी "असबियत" के कारण प्रभुत्व प्राप्त हुआ और सिनहाजा वश का नाम व निशान भी मिट गया।

यही दशा बनी उमय्या के उन्दुलुस के राज्य की हुई। जब उनकी अरबी "असबियत" समाप्त और अव्यवस्था व्यापक हो गयी तो प्रत्येक शासक अपने अपने स्थान पर स्वतंत्र हो गया और समस्त राज्य को आपस मे बाँट लिया। जो जिस भाग पर शासन कर रहा था, वह उसी का स्वामी बन गया। सक्षेप मे इनकी भी वही दशा हुई जो अजम द्वारा अब्बासियों की हुई थी। प्रत्येक ने शाही उपाधियाँ एव ऐश्वर्य तथा वैभव का संग्रह कर लिया। चूँकि उन्दुलुस वालो मे "असबियत" की तथा कौमी मर्यादा और सहानुभूति की भावनाएँ समाप्त हो चुकी थी, अत किसी ने उनके आचरण पर कान तक न हिलाये और किसी का भी लेश मात्र विरोध करने अथवा उनके कार्यो मे परिवर्त्तन करने का साहस न हुआ। वे उसी वैभव से अपना राज्य चलाते रहे, जैसा कि इब्ने शरफ[2] कहता है।

शेर—उन्दुलुस के भूभाग मे मोतसिम एव मोतजिद के नाम मुझे
ऐसी बात कहने पर उद्यत करते है जो मुझे न कहनी चाहिए।

१. ११वीं शताब्दी ईसवी।
२. मुहम्मद बिन मुहम्मद, मृत्यु ४६० हि० (१०६७–६८ ई०), किन्तु ये शेर उसके समकालीन इब्ने रशीक़ के है जिन्हें उसने इब्ने शरफ़ के समक्ष पढ़ा था।

अयोग्य लोगो ने शाही उपाधियाँ धारण कर ली है। उनका उदाहरण
ऐसा है जिससे प्रतीत होता है कि बिल्ली फूलकर सिंह बनना चाहती है।

उन लोगो ने बरबर तथा जनाता क़बीलों में से दासो एव ऐसे लोगो की सहायता से, जो (अफ्रीका) के समुद्रीय तट पर से उन्दुलुस पहुँच गये थे, उन पर अपना सिक्का जमाये रखने का प्रयत्न किया। इस तरह उन्होने बनी उमय्या का उदाहरण अपने सामने रखा। उन लोगो की अरबी "असबियत" जब कमजोर हो गयी तो इब्ने आमिर[1] ने उस वश पर अधिकार जमा लिया। उनमें से प्रत्येक उन्दुलुस के किसी न किसी भाग पर शासन करता रहा। यहाँ तक कि लम्तूना के मराबेतीन अपनी अत्यन्त बलशालिनी "असबियत" के जोर पर समुद्र पार करके पहुँचे और उनका राज्य नष्ट कर दिया। उन्होंने उस राज्य का समूलोन्मूलन कर दिया। उनके प्रतिपक्षियो मे नाम मात्र को भी "असबियत" न थी अत. वे उनका मुक़ाबला न कर सके।

इस वर्णन से यही निष्कर्ष निकला कि क़ौम मे राज्य की नीव "असबियत" पर ही पडती है। और आगे चलकर वही उसकी रक्षा करती है। अल्लामा तरतूशी ने "सिराजुल मुलूक" नामक अपने ग्रथ मे लिखा है कि राज्य एवं सल्तनत की प्रतिरक्षा का भार वेतन एव वृत्ति पानेवाली सेना पर होता है। यह बात साधारण राज्यो की उस अवस्था के विषय मे सत्य नही जिनकी नीव रखी जा रही हो। इस कथन का महत्त्व उसी समय के लिए है जब राज्य दृढ होकर अपनी अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो चुका हो और देश वालों ने तत्कालीन राज्य के समक्ष सिर झुका दिया हो। ऐसे अवसर पर वेतन पानेवाली सेना के बल पर नि.सन्देह राज्य चल सकता है। अल्लामा यह लिखने पर सम्भवत. इस कारण विवश हुए कि उन्होने स्वय राज्य को ऐसी शक्तिहीन दशा मे देखा जब वह यौवन पार करके वार्धक्य मे प्रविष्ट हो रहा था। राज्य का अस्तित्व दासों एव आश्रितो पर निर्भर था, या उन वेतन पानेवाले सैनिको पर जो राज्य की प्रतिरक्षा हेतु तैयार किये जाते थे। तरतूशी के युग मे राज्य की बड़ी अव्यवस्थित दशा हो गयी थी और बनी उमय्या के राज्य में घुन लग गया था। वह अपनी अरबी "असबियत" खो चुका था और प्रत्येक अमीर अपने अपने स्थान पर एक स्वतत्र शासक बन चुका था। इब्ने हूद तथा उसके पुत्र मुजफ़्फर सराकूसी की सहायता से राज्य

१. इब्ने अबी आमिर तथा इब्ने अब्बाद अरब क़बीले थे जिन्होंने स्पेन के उमय्या वंश की रक्षा की और उमय्या "असबियत" को कुछ समय तक नष्ट होने से बचाये रखा।

चल रहा था। क्योंकि अरबी लोग भोग-विलास एवं आराम के कुप्रभाव में आ चुके थे और ३०० वर्ष से वे समृद्धि की गोद मे पल रहे थे, अत. उनकी "असबियत" की भावना भी समाप्त हो चुकी थी। तरतूशी ने एक स्वतत्र शासक के राज्य-काल मे आँख खोली और उसके राज्य को चारो ओर इस दृढता से फैला दिया कि उसके विरुद्ध कोई सिर न उठा सकता था। राज्य की प्रतिरक्षा का कार्य वेतन तथा वृत्ति पानेवाली सेना ही करती थी, अत: उसने स्वयं देखे हुए वातावरण के अनुसार उपर्युक्त सिद्धान्त बना लिया कि राज्य की रक्षा सेना से होती है। उसने राज्य की प्रारम्भिक दशा पर दृष्टि नही डाली और यह समझने का प्रयत्न नही किया कि राज्य की नीव "असबियत" पर ही पड़ती है। "ईश्वर जिसे देना चाहता है उसे अपना राज्य देता है।"[१]

(३) कुछ शासक वंश "असबियत" की उपेक्षा करके भी राज्य स्थापित करते हैं

यह इस प्रकार होता है कि एक वंश अथवा कौम की "असबियत" का लोहा दूर-दूर की कौमे तथा कबीले मान लेते है और दूर-दूर के राज्यो के शासक भी उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत रहते है और उसके ऐश्वर्य तथा गौरव पर भरोसा रखते हैं। अब यदि उक्त "असबियत" वाला कोई प्रभावशाली व्यक्ति अपने राज्य से निकलकर उनके पास पहुँच जाता है तो उन राज्यों के शासक उसका सहर्ष स्वागत करते है और उसकी सहायता हेतु कटिबद्ध रहते है तथा उसके राज्य को दृढ बनाने का हृदय से प्रयत्न करते है कि किसी प्रकार वह प्रभुत्व नये सुल्तान के हाथ मे आ जाय। इस सहायता के फलस्वरूप उनको नये बादशाह से बड़े-बड़े पद प्राप्त होते है, वजीर एवं अन्य उच्च पदाधिकारी बनने की उन्हे अभिलाषा होती है। उन्हे इस बात की आशा एवं आकाक्षा कदापि नही होती कि वे नये राज्य मे हिस्सा बटायेगे और बराबर के साझेदार बनेगे। उस बादशाह की "असबियत" उन्हे हृदय से स्वीकार होती है और उसकी शक्ति का उन्हे विश्वास होता है। उसकी कौम के प्रभुत्व एवं आतक की ससार मे इतनी अधिक धूम होती है कि लोग उसकी अधीनता एव वशंवदता को धार्मिक विश्वास की वस्तु समझते है और उसके विरुद्ध कोई कार्य करना बहुत बड़ा पाप समझते है। उनके मस्तिष्क मे यह बात बैठ जाती है कि इधर इन्होने उसकी आज्ञाओं का उल्लघन किया तो उधर दैवी प्रकोप उन पर टूट पड़ेगा।

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

बनू इदरीस को मगरिबे अकसा[१] तथा उबैदीईन को इफरीक़िया एवं मिस्र में इसी स्थिति का सामना करना पड़ा। यह युग वह था जब कि अबू तालिब[२] के वंशज पूर्व से भागकर मगरिब के भू-भाग मे पहुंचे थे और बनी अब्बास के मुकाबले मे उन्होंने खिलाफत का दावा किया था। क्योकि बनी अब्द मनाफ[३] मे बनी उमय्या के बाद खिलाफत एवं सल्तनत साधारण रूप से बनी हाशिम[४] का अधिकार समझी जाती थी, अत: इन लोगों ने अब्बासी खलीफाओं के मुकाबले मे खलीफा होने का दावा किया। ये लोग अब्बासियों की राजधानी के आसपास के स्थानों को छोडकर मगरिबे अकसा की ओर जा पहुँचे और स्वतंत्र राज्य का दावा करने लगे। बरबरों ने कई बार उनकी सहायता करके उनका राज्य एवं शासन स्थापित कराया। अवरबा तथा मुगीला कबीलो ने बनू इदरीस की सहायता की। कुतामा, सिन्हाजा तथा हव्वारा उबैदीईन[५] की सहायता पर कटिबद्ध हो गये। अन्त मे "असबियतो" के जोर से बरबर कबीलों ने इदरीसियो तथा उबैदीईन के राज्य स्थापित करा दिये। उन्होने सर्वप्रथम अब्बासियो के अधिकार से पूरा मगरिब छीन लिया और तत्पश्चात् इफरीकिया। इसके बाद अब्बासियो का राज्य कम होने लगा और वे परेशान होने लगे। उबैदीईन का राज्य उनके विपरीत फैलने तथा बढने लगा, यहाँ तक कि मिस्र, शाम तथा हिजाज सब उबैदीईन के अधीन हो गये और उन्होंने अब्बासियो से इस्लामी राज्य मे आधा-आधा हिस्सा बाँट लिया। बरबरियो ने, जिन्होने अपने प्रयत्न से उबैदीईन का राज्य स्थापित कराया था, अपने मामले उन्ही के समक्ष प्रस्तुत करना शुरू कर दिया और उन्हीं की वशंवदता स्वीकार कर ली। वे वास्तव मे उनके अधीन उच्च पदों की आशाएँ किया करते थे और इसी पर गर्व करते थे, कारण कि उनके हृदय एवं मस्तिष्क पर बनी हाशिम के राज्य सम्बंधी अधिकार का बड़ा प्रभाव था और वे किसी प्रकार उनका विरोध नहीं कर सकते थे। यह घटना उसी प्रकार की थी जिस प्रकार इससे पूर्व मुजर तथा

१. मोराको।
२. अबू तालिब बिन अब्दुल मुत्तलिब, मुहम्मद साहब के चाचा। हजरत अली इन्हीं के पुत्र थे।
३. अब्द मनाफ़।
४. बनी हाशिम। अरब का एक प्राचीन क़बीला जो हाशिम बिन अब्द मनाफ़ के नाम पर चला। मुहम्मद साहब के इसी कबीले से सम्बन्धित थे।
५. फ़ातेमी।

क़ुरैश का प्रभुत्व बहुत-सी कौमों ने स्वीकार कर लिया था। इस कारण उनका प्रभुत्व कई पीढ़ियों तक चला, यहाँ तक कि अरबो का राज्य पूर्णतः समाप्त हो गया। "ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय मे कोई परिवर्तन नही कर सकता।"[१]

(४) बड़े बड़े राज्यों तथा शाही अधिकारों का अभ्युदय किसी धर्म अथवा धार्मिक प्रचार (दावत) के आधार पर होता है

इसका कारण यह है कि राज्य प्रभुत्व द्वारा प्राप्त होता है और प्रभुत्व "असबियत" से उत्पन्न होता है। विभिन्न इच्छाओ का एक ही माँग पर केंद्रित हो जाना और सब लोगो का एक-सा दृष्टिकोण होना, एक ही केन्द्रीय विश्वास-बिन्दु पर उनका संगठित हो जाना दैवी सहायता के बिना असम्भव है। यह दैवी सहायता सत्य-आधारित धर्म की स्थापना के सम्बध मे प्राप्त होती है। ईश्वर का आदेश है--"यदि तुम पृथ्वी का पूरा ख़जाना भी व्यय कर डालते, तो तुम उन लोगो को सगठित न कर सकते थे।"[२]

इसका कारण यह है कि जब हृदय वासनाओ के उपभोग तथा लौकिक बातों की ओर आकृष्ट होने लगता है तो लोगो मे एक दूसरे से आगे बढ़ने की भावना उत्पन्न हो जाती है और पारस्परिक मत-भेद प्रारम्भ हो जाता है। जब संसार एवं उसकी मिथ्या वासनाओ को त्याग कर लोगो की आत्मा सत्य की ओर आकृष्ट होती है और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त होती है, तो इन सबका उद्देश्य एक होता है। न पारस्परिक सघर्ष समाप्त हो जाते है और विरोध एव झगडो का अन्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की सहायता की इच्छा करने लगता है। इस प्रकार जब सब लोग सगठित हो जाते है तो उनका एक भव्य राज्य स्थापित हो जाता है। इसका उल्लेख आगे किया जायगा।

(५) धार्मिक प्रचार (दावत) "असबियत" की शक्ति बढ़ा देता है

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि धार्मिक भावनाएँ ईर्ष्या एवं द्वेष की जड़ें काटकर लोगों को पूर्ण रूप से सत्य की ओर प्रेरित कर देती है। धर्मानुयायी अपनी किसी भी समस्या पर एक ही दृष्टि-कोण से विचार किया करते है, क्योकि सबकी इच्छाएँ एक ही प्रकार की होती है और सबका उद्देश्य भी एक ही होता है। उस पर वे

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

दृढ़ रहते हैं। राज्य के इच्छुक, धर्मनिष्ठ लोगों से संख्या में चाहे जितने अधिक हों, उनके उद्देश्य भिन्न तथा मिथ्या बातों से पूर्ण होते हैं। वे मृत्यु के भय से एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। वे धर्मनिष्ठ लोगों का ही चाहे उनकी सख्या अधिक क्यों न हो, मुकाबला नही कर सकते। वे उनसे पीछे रह जाते है। इस्लाम के प्रारम्भ मे अरबो की यही दशा थी, कारण कि कादिसिया एव यरमूक[1] के युद्ध मे इस्लामी सेनाओ की सख्या ३०,००० से कुछ ही अधिक थी। इसके विपरीत फारस की सेना कादिसिया के युद्ध मे १, २०, ००० से कम न थी और हुरकुल की सेना वाकदी के अनुसार चार लाख थी। ये सांसारिक लोग इतनी अधिक संख्या के बावजूद अरबो के आक्रमण को न रोक सके, अपितु अरबों ने उन्हें पराजित कर दिया और उनकी धन-सम्पत्ति लूट ली।

यही दशा लमतूना एवं मुवह्हेदीन के मुकाबले मे मगरिब के कबीलों की थी। उनमे "असबियत" भी अधिक पायी जाती थी और वे संख्या मे भी अधिक थे, किन्तु लमतूना एवं मुवह्हेदीन क़बीलो के धार्मिक संगठन ने उनकी कौमी "असबियत" की बड़ी उन्नति की थी और वे सब सत्य के लिए प्राण तक देने को उद्यत रहते थे। इसी कारण मगरिबी "असबियत" उनका मुकाबला न कर सकी और उनके आक्रमण को सहन न कर सकी। इसी तथ्य के अन्तर्गत यह भी देखना चाहिए कि जब उनका धार्मिक उत्साह एव जोश ठडा पड़ गया तो उनके राज्य का पतन हो गया। आजकल प्रभुत्व का आधार कौमी "असबियत" है, न कि किसी धर्म के अनुयायियो की सख्या। इस प्रकार समान "असबियत" वाले राज्य अथवा कुछ कम या अधिक "असबियत" वाली सल्तनतें उन राज्यों पर अधिकार प्राप्त कर लेती है, जो किसी समय धार्मिक उत्साह के कारण उन पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुए थी, भले ही वे "असबियत" मे भी अधिक थी और "बदवियत" मे भी।

यही दशा उस समय थी जब कि मुवह्हेदीन जनाता के मुक़ाबले मे दृढ़ थे। जनाता, मसामेदा की तुलना मे यद्यपि "बदवियत" मे भी अधिक थे और वहशत-पसन्दी मे भी, किन्तु मसामेदा के महदी के अधीनस्थ लोगो के धार्मिक उत्साह एव मजहबी जोश

१. जोरडन की पूर्वी शाखा। यहाँ अरब सेनापति ख़ालिद का अगस्त ६३६ ई० में शाम (सीरिया) के बादशाह हेरैकलियस अथवा हुरक़ुल की बहुत भारी सेना से भी भीषण युद्ध हुआ, जिसमें शाम वाले पराजित हो गये। इब्ने खलदून ने शाम एवं ईरान की जो संख्या बतायी है उसका उल्लेख तबरी एवं मसऊदी ने नहीं किया है।

से भरे होने के कारण उनकी कौमी "असबियत" बड़ी शक्तिशाली और जोरदार हो गयी थी। इसी कारण प्रारम्भ मे जब उनका "जनाता" से संघर्ष हुआ तो उन्होंने उन लोगों पर अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु जब इन्ही लोगो का धार्मिक उत्साह ठंडा हो गया और मजहबी जोश कम हुआ तो ज़नाता ने इन्हे हड़प कर लिया। जनाता चारों ओर से उन पर टूट पड़े और राज्य उनके हाथों से छीन लिया। "ईश्वर मे अपने आदेशों का पालन करा लेने की शक्ति है।"[१]

(६) धार्मिक प्रचार "असबियत" के बिना पूर्ण नही होता

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि साधारण प्राणियो को किसी दृष्टिकोण एवं उद्देश्य पर एकमत करने के लिए उभारना हो तो उसके लिए "असबियत" परमावश्यक है। हदीस मे लिखा है—"ईश्वर ने कोई ऐसा पैगम्बर नही भेजा जिसे अपने अनुयायियों की सहायता न प्राप्त हो।" जब नबियों का ही, जो लोगों की आदते बदलने में सबसे अधिक योग्यता रखते है, "असबियत" के बिना काम नही चल सकता, तो अन्य लोगो का ज़िक्र ही क्या ? आदतो के परिवर्त्तन के लिए उन्हे तो "असबियत" की और भी अधिक आवश्यकता है, कारण कि "असबी" सहायता के बिना वे किसी को सत्य-धर्म की ओर प्रेरित ही नही कर सकते। "इब्ने कसी[२] शेखुस् सूफिया खल उन-नालैन" नामक तसव्वुफ के ग्रंथ के लेखक जब सत्यनिष्ठ प्रेरणा का प्रचार करके उन्दुलुस में महदी के प्रचार से पूर्व अपने सहायक मुराबेतून को साथ लेकर उठे तो कुछ समय तक उनका बड़ा जोर रहा, कारण कि एक ओर तो लम्तूना मुवह्हेदीन के साथ भिड़े हुए थे और उनका पूरा ध्यान उन्ही की ओर था। दूसरे, उन्दुलस मे उस समय कोई "असबियत" वाले कबीले भी न थे कि वे उनके वेग को रोकते, अतः उनका कदम जमा। किन्तु जैसे ही मुवह्हेदीन मगरिब पर छाये तो इब्नुल क़सी भी अपने साथियों के साथ मुवह्हेदीन के समक्ष झुक गये और उनके प्रचार मे उनके सहायक बन गये। अरकश के किले तथा उसकी सीमाओ से मुवह्हेदीन को आगे बढ़ने का उन्होने अवसर दे दिया। इस प्रकार उन्दुलुस मे मुवह्हेदीन के प्रचारक सर्वप्रथम यही मुराबेतून थे और इन्ही के विद्रोह को मुराबेतून का विद्रोह कहा जाता है।

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

२. अहमद बिन क़सी (मृत्यु ५४६ हि०/११५१ ई०)। उन्होंने अपना विद्रोह ११४१ ई० के लगभग प्रारम्भ किया।

संक्षेप में जब इसी प्रकार सर्वसाधारण मे दुराचार प्रचलित हो जाता है तो इबादत करनेवाले धर्मनिष्ठ, फ़क़ीह तथा आलिम, अत्याचारी अमीरो के सुधार एव पथ-प्रदर्शन के लिए उठ खडे होते है और दुष्टता एव निद्य कर्म को मिटाकर सदाचरण फैलाते है। इन प्रचारको का केवल यही उद्देश्य होता है कि वे ईश्वर की ओर से पुण्य के पात्र बने। उन्हे देखकर उनके बहुत से अनुयायी उठ खड़े होते है और प्राण हथेली पर रखकर उनके साथ हो लेते है। भीषण खतरो का सामना करते है। कुछ लोग तो मृत्यु के भी शिकार हो जाते है, किन्तु "असबियत" के बिना इतने महान् कार्य का बीडा उठाने के कारण उन्हे उससे कोई लाभ नही होता, वे व्यर्थ मे ही प्राण त्याग देते है। ईश्वर ने ऐसे खतरो मे अपने प्राण डालने का आदेश नही दिया है, अपितु शक्ति अथवा क्षमता का बधन निश्चित किया है। मुहम्मद साहब ने आदेश दिया है कि "यदि तुम दुराचार होते देखो तो अपने हाथ से उसको बदलने का प्रयत्न करो। यदि तुममे इतनी शक्ति न हो तो जबान से समझाओ। यदि यह भी न कर सको तो केवल हृदय से उसे बुरा समझो।"

बादशाहों के आचार-व्यवहार, सल्तनतो के सिद्धान्त एव नियम ऐसी गहरी जड़ें पकड़े होते है कि वे उस समय तक, जब तक कोई प्रभावशाली प्रचारक न हो, हिल नही सकते। इस प्रचार के पीछे भी कबीले एव वश की "असबियत" का होना आवश्यक है। इसी प्रकार नबियो की सत्य सबधी पुकार मे भी "असबियत" मौजूद होती है, यद्यपि उनको सत्य का विशेष समर्थन प्राप्त होता है और ईश्वर की पूरी सहायता उनके साथ होती है, किन्तु इस कारण कि ईश्वर ने ससार मे प्रत्येक वस्तु का आधार आदत एवं कारण को बनाया है, अतः नबियो को भी "असबियत" से काम लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। अब वह व्यक्ति जो "असबियत" के बिना ऐसे महान् कार्य करना चाहे तो यद्यपि वह सत्य पर ही दृढ क्यों न हो, विनाश के गर्त मे गिर जायगा। वह व्यक्ति जो गुप्त रूप से राज्य एव शासन का आकाक्षी हो और बाह्य रूप से धर्म तथा मजहब का दावा करे, तो वास्तव मे वह इसी योग्य है कि बाधाएं उसे रोक ले और विनाश उसके मार्ग मे रोड़ा बन जाय। कारण कि शरई राज्य एव धार्मिक इमामत[1] दैवी आदेश एव सहायता, सत्यता तथा मुसलमानों के प्रति निष्ठा के बिना स्थिर नही रह सकती। यह ऐसा तथ्य है जिस पर किसी बुद्धिमान् मुसलमान को कोई सन्देह हो ही नही सकता।

सर्वप्रथम ऐसा असतोष एव ऐसी हलचल बगदाद मे खालिद दरयूश नामक एक

१. नेतृत्व, साधारण प्रयोग में नमाज पढ़ाना।

व्यक्ति ने मचायी। ताहिर ने विद्रोह कर दिया था। खलीफ़ा की हत्या हो चुकी थी। मामून को खुरासान से इराक़ पहुँचने मे विलम्ब हुआ और उसने अली बिन मूसीरिजा को जो इमामं हुसेन के वशज थे, अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। समस्त बनी अब्बास मामून के विरोधी होकर बैअत[१] समाप्त करने पर उद्यत हो गये। उन्होने इबराहीम बिन अल महदी के हाथ पर बैअत कर ली। इस प्रकार यह ऐसे असतोष एवं हलचल का युग था कि समस्त बगदाद नगर शासन के कानूनो की उपेक्षा करने लगा था। शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाली प्रजा पर नगर के गुडो, बदमाशों तथा सैनिको ने अत्याचार प्रारम्भ कर दिया। वे मार्गो मे लूटमार करके धन-सम्पत्ति बाजारो मे लाकर खुल्लमखुल्ला बेचने लगे। नगर-वासी न्याय हेतु अधिकारियो के पास जाते किन्तु वे उनकी बात भी न सुनते। ऐसी अव्यवस्थित दशा मे धर्म-निष्ठ एवं सुधारक लोग अत्याचारियो की रोक टोक एव हिसा के विनाश हेतु मैदान मे निकल आये। इसी समय खालिद दरयूश नामक एक सुधारक बगदाद मे उठ खडा हुआ, जिसने परोपकार एव सदाचार के प्रचार एव दुष्टता तथा दुराचार के विनाश का व्रत लिया। एक बहुत बड़ा समूह उसकी पताका के नीचे आकर एकत्र हो गया। उपर्युक्त सुधारक ने उपद्रवकारियों से घोर युद्ध किया और उन पर अधिकार जमाकर उन्हे बुरी तरह कुचल दिया।

खालिद के उपरान्त एक अन्य व्यक्ति अबू हातिम सहल बिन सलामह असारी बगदाद के सामान्य लोगो मे से उठ खडा हुआ। वह गले मे कुरान लटकाकर सत्य का नारा लगाता हुआ पहुँचता था। इस प्रकार उसने लोगो को सदाचार एव उपकार की ओर प्रेरित किया और दुष्टता एव दुराचार से उन्हे बाज रखा। अल्लाह की पुस्तक एव मुहम्मद साहब की सुन्नत पर आचरण करने के लिए उसने उन्हे विवश किया। बनी हाशिम के तथा सम्मानित एवं निम्न वर्ग के सभी लोग उसके सहायक बन गये। वह बगदाद पहुँचकर ताहिर के महल मे उतरा। खजाने पर अधिकार जमाया और नगर मे चक्कर लगाकर उसने दुराचारियो एव बदमाशो को धमकाया। लोगो को समझाया कि वे नगर के उचक्को को अपनी रक्षा हेतु[२] कुछ न दे। खालिद दरयूश ने उससे कहा कि

१. अधीनता की शपथ।

२. ख़फ़ारा, तबरी ने इस शब्द की बड़ी स्पष्ट व्याख्या की है। वह लिखता है-- ख़फ़र का यह अर्थ है कि कोई किसी उद्यान के स्वामी के पास पहुँचे और

"मै समझता हूँ, शासन का इसमे कोई दोष नही।" सहल ने उत्तर दिया,—"जो कोई भी अल्लाह की पुस्तक एव मुहम्मद साहब की सुन्नत का विरोध करेगा, मै उससे युद्ध करूँगा।" इबराहीम बिन अल-महदी ने जब सहल की यह बढती हुई शक्ति देखी तो सेना को सुव्यवस्थित करके उसे दड देने हेतु भेजा। सेना ने उस पर अधिकार प्राप्त करके उसे बन्दी बना लिया। इस प्रकार उसकी पूरी शान मिट्टी मे मिल गयी और वह बड़ी कठिनाई से भाग सका। यह घटना २०१ हि० (८१७ ई०) मे घटी।

इसी प्रकार उसके उपरान्त भी बहुत से बनावटी सत्य का दावा करनेवाले उठे। उन्होने यह न समझा कि सत्य को दृढ करने के लिए "असबियत" कितनी आवश्यक है। वे अपने दुराचार के दुष्परिणाम के विषय मे भी न सोच सके। उनके विषय मे यही उचित था कि यदि वे पागल हो तो उनका उपचार किया जाय। यदि वे राज्य मे विघ्न डालते हो तो उनकी मार-पीट की जाय, अथवा उन्हे मृत्युदड दिया जाय, अथवा उन्हे मसखरा समझकर उनकी ओर से उपेक्षा की जाय।

इनमे से कुछ ऐसे भी है जो फातेमी इमाम महदी आखिरुज् जमाँ के, जिनकी वे प्रतीक्षा किया करते है, अपने आपको प्रतिनिधि घोषित करते हुए उनके प्रचारक बन जाते है। कोई स्वय महदी बन बैठता है और कोई उनका प्रचारक एव सहायक होने का दावा करता है। ये धूर्त न तो फातेमियो के तथ्य को समझते है न उस इमाम के विषय मे, जिसकी प्रतीक्षा हो रही है। अधिकाश खबती, पागल तथा छली एव धूर्त होते है जो इन कुकर्मो एव इसी प्रकार के प्रचार से राज्य एव शासन, जिसकी उन्हे महत्वाकाक्षा होती है, प्राप्त करना चाहते है। परिस्थिति के अनुकूल न होने के कारण वे अपने उद्देश्य तक पहुँचने मे असमर्थ रहते है। इसी कारण वे समस्त सम्बधो को त्याग-कर धर्म का ढोग रचते है और समझते है कि धार्मिक आवरण मे वे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेगे। जो हानि भविष्य मे होनेवाली होती है, उस तक उनकी बुद्धि नहीं पहुँच पाती। इसी उत्पात के कारण वे शीघ्र ही मौत के घाट उतर जाते है और अपने कुकर्मो का दड भोग लेते है।

इसी आठवी शताब्दी हि० (१४वी शताब्दी ई०) के प्रारम्भ मे सूस मे तुवैजिरी नामक एक व्यक्ति सूफियो के वेष मे उठा और उसने भूमध्यसागर के तट पर स्थित

उससे कहे कि "तुम्हारा उद्यान हमारी रक्षा (ख़फ़र) में है। मै किसी बदमाश को इसे हानि न पहुँचाने दूँगा। तुमको इतना धन प्रति मास देना होगा।"

मास्सा नामक मस्जिद मे जाकर दावा किया कि "मैं फ़ातेमी इमाम महदी हूँ जिनकी लोग प्रतीक्षा कर रहे है।" साधारण लोग भ्रम मे पड़ गये। वास्तव मे उस युग में लोग दुर्घटनाओं एवं कष्टो के कारण उकना तथा घवडा गये थे और इमाम महदी की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे यह भी जानते थे कि इमाम महदी अपना प्रचार उसी मस्जिद से प्रारम्भ करेगे। फलत: समस्त बरबरी कबीले उसकी सहायतार्थ एकत्र हो गये। सरदारो एव अमीरो ने जब यह दशा देखी तो खटक गये और भयभीत हो गये कि विलम्ब के कारण विद्रोह हो जायगा और राज्य हाथ से निकल जायगा। उमर अस् सकसीवी, मुसमूदा के एक सरदार ने गुप्त रूप से एक आदमी को तैयार करके उस झूठे की बिछौने पर ही हत्या करा दी।

गुमारा मे भी इसी आठवी शताब्दी के प्रारम्भ मे अब्बाम नामक एक व्यक्ति ने महदी होने का दावा किया। बहुत से कबीलो के मूर्ख लोग उसके बहकावे मे आकर उसके सहायक बन गये। उसने साहस कर बादिस नामक नगर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार मे कर लिया। किन्तु उसके प्रचार को प्रारम्भ हुए चालीस दिन ही हुए थे कि वह भी कत्ल होकर अन्य धूर्तो के पास पहुंच गया।

सक्षेप मे इतिहास द्वारा इस प्रकार के अनेक उदाहरणो का पता चलता है। वास्तव मे "असबियत" के प्रभाव की उपेक्षा के कारण इसी प्रकार के कष्टो का सामना करना पड़ता है। वास्तव मे जो ढोग रचे एव धोखे का जाल बिछाये, वह इसी योग्य है कि शीघ्र ही दंड का पात्र हो, कारण कि "पापियो के लिए यही दड है।"[1]

(७) प्रत्येक राज्य अपने विशेष क्षेत्र में सीमित रहता है, उसके बाहर नही बढ़ सकता

जो कौम किसी सल्तनत की नीव रखती है और उसके स्थायित्व के साधन एकत्र करती है उसको अनिवार्य रूप से विभिन्न प्रान्तों एव सीमाओं मे विभाजित हो जाना पडता है, ताकि शत्रु से रक्षा के साधन और सल्तनत के आदेश उपलब्ध हो सके। उदाहरणार्थ खराज की वसूली एवं फसाद का खडन इत्यादि भली-भाँति हो सके। जब कौम इस प्रकार विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो मे विभाजित हो जाती है और सीमाएँ निश्चित हो जाती है, तो किसी-न-किसी सीमा पर पहुंचकर उस राज्य के मनुष्यो की आबादी का अन्त आ जाता है। इसी सीमा को राज्य की अतिम सीमा तथा सल्तनत के वृत्त का राज्य

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

के केन्द्र से दूरतम बिन्दु समझना चाहिए। अब यदि राज्य अपनी इस अन्तिम सीमा को पार करके आगे बढना चाहता है तो वह कौमी सहायको से वचित रह जाता है और पडोसी शत्रुओ को अपनी इच्छाओ की पूर्ति का सुअवसर मिल जाता है। सल्तनत कठिनाई मे पड़ जाती है, कारण कि इधर शत्रु की धृष्टता मे वृद्धि हो जाती है और उधर स्वय सल्तनत का आतक एव उसका सम्मान घट जाता है।

जब कौम की सख्या इतनी अधिक हो कि विभिन्न दिशाओ एव सीमातो मे विभाजित हो जाने के उपरान्त भी लोग बच रहे तो सल्तनत मे इतनी शक्ति शेष रहती है कि वह अपने राज्य की सीमा को आगे बढाती चली जाय, यहाँ तक कि अपनी कौमी शक्ति के अनुपात से वह एक ऐसी सीमा पर आकर ठहर जाय जिसके आगे वह शक्ति उपलब्ध न हो। इसकी स्वाभाविक वजह यह है कि एक विशेष सीमात पर पहुँचकर राज्य का विस्तार सम्भव नही होता। "असबी" शक्ति ही राज्य मे पूर्ण रूप से विद्यमान रहती है। यह बात विशेष रूप से "असबियत" तक ही सीमित नही अपितु प्रत्येक कार्य सम्बधी शक्ति की यह विशेषता है। इस प्रकार सल्तनत अपने केन्द्रीय स्थान पर तो पूर्ण बल एव शक्ति के साथ स्थापित होती है और जैसे-जैसे वह अपने चारो ओर फैलती है उसमे कमजोरी आती जाती है, यहाँ तक कि अन्तिम सीमा पर पहुँचकर उसका जोर पूर्णत घट जाता है। अब वह सीमान्त के उस पार नही बढ सकती। इसे एक प्रज्वलित वस्तु के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसी वस्तु की किरणे जितनी ही अपने केन्द्र से दूर होती जायँगी, मद्धिम पडती जायँगी, यहाँ तक कि एक सीमा पर पहुँचकर वे पूर्णत समाप्त हो जायँगी और फिर अधकार ही अधकार रहेगा। यही कारण है कि जब सल्तनत शक्तिहीन होने लगती है तो सीमात के आस-पास उसका जोर घटने लगता है, यद्यपि तब तक केन्द्र सुरक्षित होता है। अन्त मे वह स्वय ही शक्तिहीन होकर समाप्त हो जाता है। अथवा यो कहा जा सकता है कि राज्य का केन्द्र हृदय के समान है जो शरीर मे प्राण फैलाता है। हृदय पर अधिकार प्राप्त कर लेने के उपरान्त शरीर के अग स्वय शक्तिहीन हो जाते है। उदाहरण-स्वरूप फारस की सल्तनत का केंद्रीय स्थान मदायन[1] था। जब मुसलमानो ने उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया तो फारस का सम्पूर्ण राज्य स्वत. नष्ट हो गया। मदायन की विजय के उपरान्त राज्य के जो भाग यज़्दजर्द के अधिकार मे रह गये, वे राज्य को विनाश से न बचा सके।

१. Ctesiphon.

इसके विपरीत शाम की रूमी[1] सल्तनत के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो पता चलेगा कि जब मुसलमानो ने रूमियो से शाम छीन लिया तो वे लोग अपने राज्य के केन्द्र कुस्तुन्तुनिया मे पहुँच गये और शाम के अधिकार से निकल जाने के कारण उनको अधिक हानि नही हुई। उनका राज्य चलता ही रहा, यहाँ तक कि फिर ईश्वर ने उन्हे पूर्णतः नष्ट कर डाला।

यदि अरबो का ही उदाहरण सामने रखा जाय तो पता चलेगा कि इस्लाम के प्रारम्भिक काल मे वे अपनी सख्या अधिक होने के कारण अपने पडोसी राज्यो, शाम, इराक तथा मिस्र पर विजयी हो गये। फिर वहाँ से भी आगे बढ़कर सिन्ध, हब्श,[2] इफरीकिया तथा मगरिब को उन्होने अपने अधिकार मे कर लिया। तदुपरान्त उन्दुलुस भी विजय कर लिया। इसके बाद जब उनका राज्य विभिन्न भागो मे विभाजित हुआ और उन भागो की सीमाएँ निर्धारित हुई तथा विविध राज्यवासी राज्यरक्षा की समस्या मे फँसे तो विभाजन के कारण उनकी सख्या भी कम हो गयी और इससे उनकी विजयो का क्रम टूट गया। इस्लाम के आतक मे अन्तर पडने लगा और उसमे अपने सीमान्त से आगे बढने की शक्ति न रही। इस प्रकार अरबों का राज्य घटते-घटते समाप्त हो गया। यही दशा बाद के आनेवाले राज्यो की हुई। सल्तनतो का स्थायित्व उनके समर्थको की अधिकता एव न्यूनता पर निर्भर हो गया। जब विभाजन के कारण कौम की जनसख्या घटी तो विजय का क्रम बन्द हो गया और प्रभुत्व भी समाप्त हो गया। ईश्वर इसी प्रकार प्राणियो से व्यवहार करता है।

(८) सल्तनत का गौरव, उसके राज्यविस्तार तथा स्थायित्व पर एवं जीवन, उसके सहायकों की संख्या की अधिकता एवं न्यूनता पर निर्भर होता है

इसका कारण यह है कि राज्य के स्थायित्व का आधार "असबियत" है और "असबियत" वाले ही उसके रक्षक होते हैं। वही राज्य की विभिन्न दिशाओ मे फैलते हैं और उसकी जडो को दृढ बनाते है। जब सल्तनत के सहायक एवं रक्षक तथा "असबियत" वाले अधिक सख्या मे होगे तो राज्य की शक्ति एवं जोर अधिक होगा और उस राज्य का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा।

१. बैजन्टाइन।
२. अबीसीनिया।

इस्लामी सल्तनत को ही उदाहरणस्वरूप सामने रख लिया जाय। जब अरबों को ईश्वर ने इस्लाम के कारण संगठित कर दिया तो तबूक के युद्ध तक, जो मुहम्मद साहब के पवित्र जीवन-काल का अन्तिम युद्ध समझा जाता है, मुसलमान अश्वारोहियों तथा पदातियो की संख्या, जिनमे मुजर तथा कहतान कबीले भी सम्मिलित थे, एक लाख दस हजार[1] तक पहुँच गयी थी। इसके बाद मुहम्मद साहब की मृत्यु तक जिन लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया उन्होने इस संख्या मे और भी वृद्धि कर दी। ये लोग राज्यो की विजय हेतु उठे तो कोई शक्ति इन्हे रोक न सकी और कोई बात इनके मार्ग मे बाधक न हो सकी। उस युग की दो सबसे बडी सत्ताएँ, अर्थात् फारस एव रूम के राज्य भी उनके चरणो मे गिर पडे। तुर्कों को पूर्व मे, फ़िरग एव बरबर को पश्चिम मे तथा कूत[2] को उन्दुलुस मे उन्होने विजय कर लिया। हिजाज के भूभाग से निकलकर वे सुदूर पश्चिम मे सूसे अकसा तक पहुँच गये और यमन से बढकर सुदूर उत्तर मे तुर्कों को विजय कर लिया। इस प्रकार सातो इकलीमो को उन्होने अपने अधीन कर लिया। फिर सिनहाजा एव मुवह्हेदीन के इतिहास का अध्ययन कीजिए, जो उबैदीईन[3] के मुकाबले मे डटे हुए थे। कुतामा जो उबैदीईन के सहायक थे, सख्या मे सिनहाजा एव ममसूदा से कही अधिक थे। इसी कारण उनके राज्य को बहुत अधिक ऐश्वर्य एव गौरव प्राप्त हुआ। इफरीकिया, मगरिब, शाम, मिस्र तथा हिजाज उनके अधीन हो गये। फिर जनाता का उदाहरण सामने रखा जाय। वे सख्या मे ममसूदा से भी कम थे, अत. उनका राज्य मुवह्हेदीन से भी छोटा रहा। इसी प्रकार समकालीन दो राज्यो, जनाता बिन मरीन तथा बनी अब्दुल वाद को यदि उदाहरणार्थ देखा जाय तो सख्याबाहुल्य तथा जनसत्ता की अधिकता का यही नियम मिलेगा कि बनी मरीन अपनी सख्या की अधिकता के कारण शक्तिशाली राज्य के स्वामी थे और उनके राज्य का क्षेत्र भी विस्तृत था और उन लोगो ने कई बार बनी अब्दुल वाद पर प्रभुत्व प्राप्त किया। कहा जाता है कि राज्य के प्रारम्भ मे बनी मरीन की जनसख्या ३,००० थी और बनी अब्दुल वाद की सख्या केवल १,००० थी, किन्तु अब्दुल वाद की समृद्धि एव सहायको की सख्या ने उनकी सख्या शीघ्र बढ़ा दी।

१. अन्य सूत्रों में इससे भी कम संख्या, अर्थात् ३०,००० से १०,००० तक दी गयी है।

२. गोथ।

३. फ़ातेमियों।

प्रभुत्वशाली क़ौम की अपने राज्य के प्रारम्भ मे जो जनसंख्या होती है, उसी के अनुसार उसकी सल्तनत बढती एवं दृढ़ होती है और उसका जीवन-काल भी तदनुपाती होता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक वर्त्तमान वस्तु की आयु उसकी प्राकृत शक्ति पर निर्भर होती है और सल्तनत की प्रकृति "असबियत" पर निर्भर होती है। जब सल्तनत की "असबियत" शक्तिशाली होती है तो प्रकृति भी उसी प्रकार शक्तिशाली होती है और राज्य की आयु भी लम्बी होती है। अतः "असबियत" का आधार तदनुसार जन-सख्या की अधिकता एवं कमी ही है।

तब इस समग्र तथ्य का रहस्य यों हुआ कि राज्य मे विघ्न सीमातों से ही उत्पन्न होता है। राज्य जितना ही अधिक विस्तृत होगा उसके सीमांत दूर-दूर पर स्थित होंगे। वहाँ की अशान्ति एवं परेशानी का प्रभाव केन्द्र पर बडी देर में पडेगा। राज्य के अधीनस्थ क्षेत्र विभिन्न एव बहु-सख्यक होते है और विभिन्न कालों में उनमे अशान्ति उत्पन्न होती रहती है। उनके दूर होने के कारण केन्द्र पर उस अशान्ति का प्रभाव देर मे तथा कम पडता है। इस प्रकार राज्य की आयु बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ इस्लामी राज्यो मे बगदाद मे बनी अब्बास तथा उन्दुलुस मे बनी उमय्या का राज्य दीर्घकाल तक चलता रहा और अशान्ति एव उथल-पुथल से मुक्त रहा। चौथी शताब्दी हिजरी (१०वी शताब्दी ईसवी) के उपरान्त उनके गौरव तथा सम्मान मे निःसन्देह अन्तर पडा। उबैदीईन का राज्य लगभग २८० वर्ष तथा सिनहाजा का राज्य इससे भी कम समय तक रहा। उनका राज्य मअद्द-अल-मुइज्ज के राज्य के ३५८ हि० (९६९ ई०) से लेकर मुवह्हेदीन के कलअह एव बोगी पर अधिकार जमा लेने (५५७ हि०/११६२ ई०) के समय तक चलता रहा। समकालीन मुवह्हेदीन का राज्य लगभग २७० वर्ष तक रहा।

सक्षेप मे राज्यो की आयु उनके सहायको (की सख्या) के कारण घटती बढ़ती है। "ईश्वर ने अपने सेवकों से इसी प्रकार व्यवहार किया।"[1]

(९) जिस राज्य में क़बीलों की संख्या अधिक तथा "असबियत" वालों की बहुतायत होती है, वहाँ राज्य बड़ी कठिनाई से बन पाता है

इस कथन का आधार यह है कि यतः राज्य मे विभिन्न मत एवं नाना प्रकार की महत्त्वाकांक्षाएँ रहती हैं और प्रत्येक मत एवं महत्त्वाकांक्षा के पीछे शक्तिशाली "अस-

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

बियत" का हाथ होता है जो अन्य आकाक्षाओं की सफलता मे बाधक होता है, अतः राज्य के विरुद्ध हर समय विद्रोहों का क्रम चलता रहता है। यद्यपि राज्य मे भी पृथक् रूप से "असबियत" होती है, किन्तु उसके अधीनस्थ "असबियत" वाले कबीले अपने मे वह शक्ति एव गौरव पाते है जिसके भरोसे वे नित्य प्रति राज्य से टकराते रहते है।

इस्लाम के अभ्युदय से लेकर अब तक मगरिब एव इफरीकिया के देश इस तथ्य को भली-भॉति स्पष्ट कर रहे है, कारण कि वहॉ "असबियत" वाले बरबरो के कबीले आबाद है। इस प्रकार प्रारम्भ मे इब्ने सरह[1] ने उनपर तथा फिरगियों ने मगरिब पर विजय प्राप्त कर ली, किन्तु इसमे उन्हे कोई लाभ न हुआ। वे निरन्तर विद्रोह करते रहे तथा मुर्तद[2] भी होते रहे। मुसलमान लगातार उनका सहार करते रहे, किन्तु दीन (इस्लाम) का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के उपरान्त भी उन्होने विद्रोह करना एव मुर्तद होना न त्यागा। इब्ने अबी जैद[3] का कथन है कि मगरिब मे बरबर १२ बार मुर्तद हुए और इस्लाम मूसा बिन नुसैर के राज्य के पूर्व तक दृढतापूर्वक एव स्थायी रूप से न फैल सका। इसी कारण हजरत उमर का कथन है कि "इफरीकिया वहॉ के निवासियों के हृदय मे फूट डालता है।" इस कथन का तात्पर्य यह है कि वहॉ ऐसे "असबियत" वाले कबीले आबाद है जो कभी शासन एव प्रभुत्व के समक्ष नही झुकते और आज्ञाकारिता नही स्वीकार करते। इराक एव शाम की दशा नि सन्देह ऐसी न थी क्योकि वे फारस एव रूम के अधीन थे और उनमे साधारण नगरनिवासी तथा समृद्धि के वातावरण मे पले हुए ऐसे लोग बसे थे जो युद्ध मे जान चुराते थे। जब मुसलमानो ने रूम एव फारस पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और राज्य उनके हाथ से छीन लिया तो राज्य सचालन मे न कोई बाधा रह गयी और न कठिनाई।

अब रहा मगरिब, तो वहाँ असख्य बरबर कबीले बसे हुए थे और सब बदवी, "असबियत" वाले एव कौमी मर्यादा के स्वामी होते थे। उनमे जब एक कबीला नष्ट हो जाता तो दूसरा उसका स्थान ले लेता और उद्दडता एव मुर्तद होने मे उसी के समान उद्यत रहता था। इन्ही सघर्षो के कारण मुसलमानो को इफरीकिया एव मगरिब मे अपना राज्य स्थापित करने मे समय लग गया।

१. हजरत मुहम्मद के बाद तीसरे ख़लीफ़ा द्वारा नियुक्त मिस्र का हाकिम, जिसने ६४७ ई० के थोड़े दिनों बाद त्रिपोलितनिया को विजय करने का प्रयत्न किया।
२. जो इस्लाम स्वीकार करने के उपरान्त उसे त्याग दे।
३. अब्दुल्लाह बिन अबी जैद (जन्म ३१६ हि०।९२८ ई०, मृत्यु ३८६ हि०।९९६ ई०), इब्ने ख़लदून ने उसके ग्रंथों के हवाले अनेक स्थानों पर दिये है।

इससे पूर्व बनी इसराईल के युग मे शाम की भी यही दशा थी। उसमें फ़लस्तीन तथा कनआन के कबीले, बनी इस्व, बनी मिदयान, बनी लूत, आरमीनी' अमालका, गिर्गशाई तथा नबत इत्यादि जजीरे एव मूसल तक भरे पडे थे और सब पृथक् वैभव एव "असबियत" के स्वामी थे। इस कारण बनी इसराईल को वहाँ अपना राज्य स्थापित करने मे अत्यधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। कभी उनके पॉव डगमगाते और कभी जम जाते थे। यहाँ तक कि उनमे आपस मे विरोध एवं मतभेद उत्पन्न हो गया था। उन्होने अपने बादशाहो का विरोध करके उन पर चढ़ाई की। सक्षेप मे वे अपने पूरे राज्यकाल मे कभी भी शान्ति से राज्य न कर सके। अन्त मे फ़ारस ने उन पर अधिकार जमा लिया, तदुपरान्त यूनान एव रूम ने। अन्त मे वे बैतुल मुकद्दस से निर्वासित कर दिये गये।

इसके विपरीत वह स्थान जहाँ "असबियत" पायी ही न जाती हो, वहाँ राज्य शीघ्र स्थापित हो जाता है और अशान्ति एव गड़बड़ी की कमी के कारण राज्य के नियमों का सुगमतापूर्वक पालन होने लगता है। इसी कारण समकालीन राज्य को भी अधिक "असबियत" की आवश्यकता नही पड़ती, जैसा कि मिस्र एवं शाम की इस समय दशा है कि वे "असबियत" वाले कबीलों से पूर्णतः शून्य हैं। मिस्र देश विद्रोह एवं उपद्रव के अभाव के कारण बड़ी शान्ति एवं आराम से जीवन व्यतीत कर रहा है। "असबियत" वाले ही शासक हैं और वही प्रजा। वहाँ तुर्कों की सल्तनत है और तुर्की क़बीले ही समय-समय पर राज्य सँभालते रहते हैं। बगदाद के अब्बासी खलीफाओ का नाम-मात्र को खुत्बा पढा जाता है।

उन्दुलुस की भी इस समय ऐसी ही दशा है। इब्नुल अहमर[1] का उस पर राज्य है। प्रारम्भ से ही उनके राज्य मे न कोई बल था और न कोई वैभव। केवल अमय्या राज्य का बचा हुआ एक "असबियत" वाला वश रह गया था, जिसको उन्दुलुस पर प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार जब उन्दुलुस मे अरबी राज्य ने दम तोडा तथा बरबर मे से लम्तूना एव मुवह्हेदीन उन्दुलुस के शासक हुए तो कुछ ही दिनो मे उनका राज्य डगमगाने लगा और सल्तनत का सँभलना कठिन हो गया। लोग उनके घोर शत्रु हो गये। अन्त मे मुवह्हेदीन ने अपने राज्यकाल के अन्त मे मराकश नगर की रक्षा हेतु अनेक किले विद्रोहियो को सौप दिये। शासन की यह दशा देखकर कुछ क़बीले, जो नगर के जीवन एव सभ्यता से बहुत बड़ी सीमा तक शून्य थे और "असबियत" की

१ ग़रनाता का नासिरी वंश।

भावनाएँ जिनमे मौजूद थी, शासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए और उन्होंने विद्रोह क आवाज बुलन्द कर दी। उदाहरणार्थ इब्ने हूद[1], इब्नुल अहमर[2], इब्ने मर्दनीश[3] त उन सरीखे अन्य लोग राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। इब्ने हूद ने पूर्व अब्बासी ख़िलाफत का आदोलन चलाया और लोगों को मुवह्हेदीन के विरुद्ध विद्रो करने के लिए उभारा। इस प्रकार समस्त देश मे क्राति फैल गयी और उस मुवह्हेदीन को निकाल दिया। इस प्रकार इब्ने हूद उन्दुलस के राज्य का विधिपूर्व शासक बन गया।

तदुपरान्त इब्ने अहमर ने प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न किया और इब्ने हूद प्रचार के विरुद्ध विद्रोह की पताका ऊँची की। मुवह्हेदीन मे से इफरीकिया के इ अबी हफस ने अपने नाम पर प्रचार प्रारम्भ कर दिया। अन्त मे उन्होने अपने सम्ब धियो के एक छोटे से समूह की सहायता से, जिनको "रऊना" (नेता) कहा करते थे उन्दुलुस के राज्य पर अधिकार जमा लिया। उन्दुलुस वालो मे "असबियत" की भाव नाएँ ठडी पड जाने के कारण, इब्ने अहमर को प्रभुत्व की प्राप्ति मे अधिक सहायत एवं "असबियत" की आवश्यकता न पडी। तदुपरान्त उसने जनाता के उन लोगो क सहायता से, जो समुद्र के मार्ग से उन्दुलुस मे, बस गये थे, विद्रोहियो का भली-भाँति दम किया और ये लोग भी उसके पक्षपाती बनकर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध हेतु तैयार हो गये।

इसके उपरान्त जनाता के शासको मे से मगरिब के हाकिम के हृदय मे उन्दुलुस प अधिकार जमाने की इच्छा हुई। उस समय भी यही जनाता के कबीले इब्ने अहम के लिए ढाल बने, यहाँ तक कि इब्ने अहमर के राज्य की नीव दृढ हो गयी। लोग उन शासन के आदी हो गये और राज्य पर अधिकार जमाने का किसी ने साहस न किया इसी प्रकार इब्ने अहमर का राज्य एक पीढी से दूसरी पीढी होता हुआ अब तक चल आ रहा है। इससे निष्कर्ष यही निकला कि इब्ने अहमर का प्रभुत्व "असबियत" वे बिना स्थापित न रह सका। प्रारम्भ मे उसे "असबियत" एवं सहायता कम प्राप्त थ किन्तु उन्दुलुस पर अधिकार जमाने के लिए उतनी ही पर्याप्त थी, कारण कि उन्दुलु स्वय "असबियत" वाले कबीलो से शून्य था; फिर उस पर अधिकार जमाने के लि

१. सरगोसा के।
२. ग़रनाता के।
३. वलेनशिया एवं मुराशिया के।

अधिक "असबियत" की आवश्यकता ही क्या थी। "ईश्वर को संसारों की आवश्यकता नही।"[१]

(१०) बादशाह स्वाभाविक रूप से अपने आप को श्रेष्ठता का एक मात्र स्रोत समझता है

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि राज्य "असबियत" के कारण स्थापित होता है और वह "असबियत" कुछ "असबियतो" से मिलकर पैदा होता है, जिनमे एक सबसे अधिक शक्तिशाली एव जोरदार होती है और उसे सभी पर प्रभुत्व प्राप्त रहता है, यहाँ तक कि समस्त "असबियते" उस एक "असबियत" मे लुप्त हो जाती है। फिर इसी "असबियत" द्वारा संसार की कौमो को अपने अधीन किया जाता है और सामाजिक सस्थाओ और मनुष्यो एवं वशों के मुकाबले मे श्रेष्ठता की भावनाएँ उत्पन्न होती है। इस तथ्य का रहस्य यह है कि साधारण "असबियत" कबीले के लिए ऐसी ही है जैसी कि किसी वस्तु के लिए उसकी प्रकृति। प्रकृति का स्थायित्व तत्त्वो से है। यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि तत्त्व के एक निर्धारित मात्रा मे मिश्रण से प्रकृति को स्थायित्व नही प्राप्त हो सकता। उसके लिए यह आवश्यक है कि एक तत्त्व को सभी तत्त्वो पर प्रभुत्व प्राप्त हो और उसी से सबका मिश्रण हो। उसी प्रकार समस्त "असबियतो" मे एक ही "असबियत" के प्रभुत्व से राज्य को अस्तित्व प्राप्त होता है। यह प्रभुत्व-शाली "असबियत" किसी सम्मानित एव श्रेष्ठ वश को प्राप्त होती है। इस घराने मे भी एक नेता एव सरदार का होना परमावश्यक है जो अपनी "असबियत" के अन्य लोगो पर ही प्रभुत्व न रखता हो, बल्कि अन्य "असबियतो" पर भी उसका उतना ही प्रभुत्व हो, कारण कि उसके वश एवं घराने को समस्त घरानो पर श्रेष्ठता प्राप्त होती है। इसी प्रकार जब उस नेता को सर्वसाधारण पर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है तो वह पाशविक स्वभाव के कारण अपने समान किसी अन्य के न होने का नारा लगाता है। अपने आदेश एव मत को वह किसी अन्य के आदेश या मत के समान नही समझता, अपितु अपने आपको अनुपम समझता है। यह भावना मनुष्य मे स्वाभाविक रूप से पायी जाती है और ससार की राजनीति के लिए यह आवश्यक भी है, कारण कि यदि इसी प्रकृति के कुछ शासक एक हो जायँ तो ससार की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाय, राजनीति मे विघ्न पड़ जाय और विद्रोह एव अशान्ति फैल जाय। ईश्वर ने कहा है—"यदि (एक)

१ क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

ईश्वर के अतिरिक्त भूमि अथवा आकाश मे अन्य ईश्वर होते तो वे छिन्न-भिन्न हो जाते।"

ऐसी दशा मे समस्त "असबियतो" का गौरव समाप्त हो जाता। किसी मे इतनी शक्ति न रहती कि राज्य एवं शासन मे शासक तथा बादशाह की बराबरी का दावा कर सकता, मानो समस्त असबियतों का प्रभाव समाप्त हो गया हो। इन परिस्थितियो मे सब लोग समकालीन बादशाह का ही गुण-गान करने लगते है। समस्त गौरव, श्रेष्ठता एव वैभव का वही पात्र होता है। अन्य लोग इससे वचित दिखाई पड़ने लगते है। अद्वितीय होने का यह सम्मान पूर्ण रूप से सुल्तानो को ही प्राप्त होता है। अन्य लोगो को तो अपनी अपनी श्रेणी के अनुसार ही हासिल होता है। सक्षेप मे सल्तनतो पर उपर्युक्त कथन पूर्ण रूप से लागू होता है। "ईश्वर इसी प्रकार मनुष्यो से व्यवहार करता है।"

(११) जब किसी क़ौम के हाथ राज्य आ जाता है तो उसके साथ साथ भोग-विलास का आविर्भाव भी स्वाभाविक होता है

इस कथन का तात्पर्य यह है कि कोई कौम किसी राज्य पर जब प्रभुत्व प्राप्त करती है तो उस देश वालो की धन-सम्पत्ति भी उसके अधिकार मे आ जाती है तथा इस धन-सम्पत्ति की प्राप्ति से विजयी कौम के भोग-विलास के जीवन मे वृद्धि हो जाती है। उसका ऐश व आराम बहुत बढ जाता है। पग-पग पर नाज व नखरो का प्रदर्शन होने लगता है। स्वभाव कुछ के कुछ हो जाते है। सक्षेप मे जीवन की आवश्यक वस्तुओ के अतिरिक्त भोग-विलास एव ऐश व आराम सम्बधी चीजो की इच्छा होने लगती है वे अपने पिछले लोगो के पद-चिह्नो पर चलने लगते है। अपने स्वभाव तथा दैनिक जीवन मे वे लोग भोग-विलास के इतने आदी हो जाते है कि वे उन वस्तुओ को अपने दैनिक जीवन हेतु परमावश्यक समझने लगते है। उन चीजो के बिना उनका काम ही नही चलता। भोजन-वस्त्र, फ़र्श, बर्तन इत्यादि के प्रयोग मे लोग एक-दूसरे के प्रति स्पर्धी बनने का प्रयत्न करने लगते है। वे इन चीजो के प्रयोग के सम्बन्ध मे अन्य कौम वालो से अपनी तुलना करके गर्व अनुभव करते है। उत्तम भोजन, वस्त्र तथा सवारियो के प्रयोग मे वे अपने आपको सबसे ऊँचा समझते है। उनके बाद मे आनेवाले तो उन्ही के पद-चिह्नों पर चलते है और अपने-अपने सम्मान एव स्थिति को देखते हुए भोग-विलास मे अग्रसर होते जाते है और जब तक उनके राज्य का अन्त नही होता तब तक यही दशा रहती है। इस प्रकार जब राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो भोग-विलास भी उच्च श्रेणी का ही होता है और आदतो मे भी अत्यधिक अहकार उत्पन्न हो जाता है।

(१२) युद्ध विजय के उपरान्त आराम-चैन, शान्ति तथा समृद्धि के युग में प्रवेश करना राज्यों के लिए एक स्वाभाविक बात है

इसका कारण यह है कि क़ौमे अपनी इच्छा के आधार पर ही राज्य प्राप्त करती है और इस इच्छा का अन्तिम उद्देश्य प्रभुत्व होता है। जब कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है तो उसके प्रयत्न के क़दम रुक जाते हैं। वह साँस लेती है। किसी कवि ने कहा है--

शेर--मैने काल के सघर्ष पर, जो मेरे तथा उसके मध्य मे हो रहा है, आश्चर्य किया। जब हमारे मध्य मे कुछ शान्ति हुई तो युग भी ठहर गया।

क़ौम को जब राज्य प्राप्त हो जाता है तो वह उस उद्योग, सघर्ष एव परिश्रम को त्याग देती है जो राज्य की प्राप्ति के लिए किया करती थी। अब वह सुख-शान्ति एव आराम और चैन की अभिलाषी हो जाती है। वह उन वस्तुओं के सकलन मे व्यस्त हो जाती है जो राज्य का वास्तविक फल हैं, अर्थात् भवन, निवास-स्थान इत्यादि। तब लोग भव्य राज-प्रासादो एवं महलो का, निर्माण कराने लगते है। सुन्दर नहरे निकालते है, रमणीक उद्यान लगवाते है। सक्षेप मे सासारिक आनन्दो का वे जी भरकर मजा लेते है। आराम को कष्ट की तुलना मे अधिक पसन्द करते है। वस्त्र, भोजन, बरतन, फर्श इत्यादि मे अमीराना चोचले करते है और इसी के आदी हो जाते है। फिर उनके बाद में आनेवाले इन्ही बातो को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर हृदय से इन्हे पसन्द करते हैं। इस प्रकार यह भोग-विलास तथा आराम और चैन कौमो में कई कई पीढियो तक चलता रहता है, यहाँ तक कि एक दिन राज्य के समाप्त होने पर कौम का यह सब ठाट-बाट भी समाप्त हो जाता है।

(१३) जब सल्तनत श्रेष्ठता, भोग-विलास, चैन और आराम की चरम सीमा तक पहुँच जाती है तो वह पतन की ओर बढने लगती है और उसकी युवावस्था समाप्त होकर वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगत होने लगते हैं

इसके कई प्रमाण हैं।

पहली बात यह कि सल्तनत की कमजोरी एव शक्तिहीनता का कारण व्यक्तिगत राज्य होता है, कारण कि जब श्रेष्ठता "असबियत" वाली क़ौमो के प्राणियो मे समान

रूप से होती है तो लोग मिल-जुलकर राज्य की उन्नति एवं उसके स्थायित्व के ि
प्रयत्न करते है। सब एक-जी और एक-जान होकर दूसरों पर प्रभुत्व प्राप्त करत
और राज्य पर आनेवाले खतरों को टालते रहते है। प्रत्येक व्यक्ति अपने रा
के विस्तार एवं प्रभुत्व को अपने सम्मान, समृद्धि एवं शक्ति का साधन समझता
सक्षेप मे पूरी कौम अपने राज्य के स्थायित्व हेतु जान पर खेलने को उद्यत हो ज
है और अपने विनाश को राज्य के पतन पर प्राथमिकता प्रदान करती है। इ
विपरीत यदि गौरव एव श्रेष्ठता का केद्र केवल एक ही व्यक्ति हो तो वह सब की "अ
बियत" को कुचलकर उनको स्वतत्रता से वचित कर देता है, दान-पुण्य, परोप
द्वारा अन्य लोगो को सम्मानित करता है और कौम शिथिल होकर युद्ध त्याग देती
उसका उत्साह ठडा पड़ जाता है और अपमान, निरादर एव दासता की उसमे अ
प्रविष्ट हो जाती है। फिर वह सतान जो उन्ही की गोद मे पलती है, वह शाही इन
को देश की रक्षा एव सहायता का बदला अथवा पारिश्रमिक समझती है। इ
अतिरिक्त उसके मस्तिष्क मे कोई बात नही आती। क़ौम का कोई व्यक्ति राज्य
रक्षा हेतु प्राणो के बलिदान के लिए तैयार नही होता। इस दशा मे राज्य मे कमज़
आ जाती है। उसका गौरव घटने लगता है। देश वालो की वीरता की भावनाअ
समाप्त हो जाने के कारण "असबियत" मे भी विघ्न आ जाता है और राज्य नित्य-प्र
पतन की ओर बढ़ने लगता है।

राज्य के कमजोर हो जाने का दूसरा कारण यह है कि किसी देश पर अधि
प्राप्त कर लेने के उपरान्त, जैसा कि हम अभी उल्लेख कर चुके है, स्वाभाविक रूप
देशवासियों की आदते बिगड़ जाती है। उनके व्यय मे वृद्धि हो जाती है। उनकी अ
व्यय के लिए पर्याप्त नही होती। फकीर एव दरिद्र लोग नष्ट हो जाते है। समृद्ध
विलासी लोग अपनी आय से अधिक अपव्यय करने लगते है। बाद में आनेवाली संत
भी उन्ही का अनुकरण करती है। वे अपनी आय से भोग-विलास का जीवन न
व्यतीत कर सकती। साथ ही अपनी बिगड़ी हुई आदतो को निभा भी नही पात
उनकी आवश्यकताएं सर्वदा उन्हे कष्ट दिया करती है। उधर सुल्तान एव म
वेतन एवं इनामो को युद्ध की सेवाओ पर व्यय करने की माँग करते है। उनके
इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता। वे कठोर एव भारी जुर्माने करके ल
के हाथ से धन छीनते है और उसे अपनी वैयक्तिक इच्छाओं पर व्यय करते है अ
अपने राज्य के उच्च पदाधिकारियों तथा अपनी संतान को इनाम के रूप मे बांट
हैं। इस प्रकार प्रजा दरिद्र तथा कंगाल हो जाती है। उसमें अपनी दशा सँभा

की शक्ति नही रहती। जब प्रजा की आर्थिक दशा कमजोर पड़ जाती है तो बादशाह की भी आर्थिक दशा डॉवाडोल हो जाती है।

इसके अतिरिक्त जब राज्य मे भोग-विलास का जोर हो जाता है और लोगों की आवश्यकताएँ उनके वेतन एव उनकी वृत्तियो से पूरी नही हो पाती और उनके खर्च नहीं चल पाते, तो समकालीन बादशाह को विवश होकर उनके वेतन मे वृद्धि करनी पडती है, ताकि वे अपनी आय एवं व्यय के अन्तर को दूर कर सके और आय की न्यूनता का निराकरण कर सके। उधर खराज[1] एवं राज्य की आय सीमित एवं निर्धारित होती है। उसके घटने-बढने का कोई उपाय नही हो पाता। यदि कर इत्यादि लगाकर राज्य की आय मे कुछ वृद्धि कर ली जाय, फिर भी तो वह सीमित ही रहेगी। जब राज्य की आय को वेतन मे बॉटा जाने लगे और प्रत्येक व्यक्ति के विलासमय जीवन को दृष्टि मे रखते हुए उसके बढते हुए व्यय के अनुसार उसके वेतन एव इनाम मे वृद्धि की जाय तो फिर सेना की सख्या अनिवार्य रूप से इस आशय से घटानी पडेगी कि राज्य की आय वेतनो के लिए पूरी हो सके। इसके साथ-साथ यह भी सच है कि भोग-विलास किसी विशेष सीमा पर आकर नही रुक जाता। जब भोग-विलास बढेगा तो वेतन मे और अधिक वृद्धि का प्रश्न उठेगा। जब वृद्धि का प्रश्न आयेगा तो सेना के कम करने का प्रश्न भी सामने आयेगा। इस प्रकार सेना को बार-बार कम करना पड़ेगा। राज्य की शक्ति नष्ट हो जायगी। पडोस के राज्य उसको हडप कर लेने का साहस करने लगेगे तथा अधीनस्थ कबीले एव "असबियतें" भी राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करने लगेगी, यहाँ तक कि वह राज्य, यदि ईश्वर का ऐसा ही आदेश हुआ तो नष्ट हो जायगा।

इसके अतिरिक्त विलासप्रियता मनुष्य का चरित्र नष्ट कर डालती है, क्योंकि उसके कारण मनुष्य मे नाना प्रकार के दोष, त्रुटियाँ एव अनुचित आदते उत्पन्न हो जाती है। इसका सविस्तर उल्लेख हम शहरी सस्कृति के अध्याय मे करेगे। जब बदवियो की दशा उन्नत होती है तो उपकार एव परोपकार, जिनके कारण राज्य प्राप्त होता है और स्थायी बनता है, देश से नष्ट हो जाते है। लोगों मे दुष्टता एव उद्दडता की भावनाएँ जोर पकड़ लेती है। यही देश के विनाश का सबसे बडा चिह्न है। उस दशा मे सल्तनत विनाश के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। उसके कार्य मे बाधाएँ आने लगती

१. राजस्व, विशेष रूप से भूमिकर।

है और वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था मे प्रविष्ट हो जाती है, यहाँ तक कि । निश्चित समय पर वह पूर्णतः समाप्त भी हो जाती है ।

तीसरा प्रमाण यह है कि राज्य एव सल्तनत की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से जन मे आलस्य को जन्म देती है । जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि जब शासक व आलस्य, आरामतलबी एव सुख-शान्ति की इच्छुक और अभ्यस्त हो जाती है तो सब बाते अन्य आदतो के समान उसके स्वभाव का अंग बन जाती है और उस रा के लोग उन्ही के दास हो जाते है । अब भावी सताने उसी आराम, चैन, आलस्य मे त भोग-विलास मे पल और बढ़कर उन वहशी आदतो एवं बदवी स्वभावों को एकदम भ् देती है जिनके कारण कभी उनके पूर्वजो ने राज्य एव मुकुट प्राप्त किया था । अथ वीरता, पौरुष, खूँख्वारी, कठोरता, जगलो मे मारे मारे फिरने का स्वभाव तथा इ प्रकार के अन्य गुण उनमे से पूर्णत. निकल जाते है, यानी शासकवर्ग एवं साधारण नग वासी मे आज्ञापालन तथा कौमी पोशाक के अतिरिक्त अन्य कोई अन्तर शेष नही रहत इस प्रकार उनकी कौमी सहानुभूति कमजोर पड़ जाती है । उनके पौरुष का दबद फीका पड़ जाता है । उनका गौरव कम होने लगता है । अब इन सबका परिणाम रा को स्वयं भोगना पड़ता है । वह एक वृद्ध के समान जीवन यापन करने लायक भर जाता है । सक्षेप मे, विजयी कौम के लोग इसी प्रकार भोग-विलास तथा सुख-शान्ति जीवन के विभिन्न रूपो मे ग्रस्त रहने और इसी वातावरण मे डूबकर परिश्रम, ब तत्परता एव कठोरता से दूर हटते जाते है । वीरता की उन भावनाओं को पूर्णतः भ् देते है जिनसे प्रतिरक्षा एव एक-दूसरे की सहायता की भावना का जन्म होता वे अन्य "असबियत" एव अन्य भावनाओ मे पलने लगते है । यदि संसार के इतिह का अध्ययन किया जाय तो इस प्रकार के उदाहरण अनेक राज्यो के इतिहास मे मि और यह तथ्य नि सन्देह तर्कपूर्ण प्रमाणित होगा ।

कभी-कभी जब प्रभुत्व वाली क़ौमें आलस्य एवं आराम मे पड़कर स्वय प्रतिर एवं बचाव करने मे विवश हो जाती है तो वे अपने अतिरिक्त किसी अन्य कौम को, परिश्रम एव कठिन कार्य करने की अभ्यस्त होती है, अपना सहायक एव सहानु बना लेती है । उस कौम वालो की एक सेना बनती है । वे सैनिक युद्ध-प्रिय होत और भूख-प्यास एव अन्य कठिनाइयो के झेलने मे पक्के होते है । यह उपाय राज्य शक्तिहीनता दूर करने का एक साधन होता है और उसे उस समय तक नष्ट हो बचाये रखता है जो ईश्वर ने उस राज्य के विनाश हेतु निश्चित किया है । उदाहरण पूर्व के देशो मे तुर्क सुल्तानो ने देश में आनेवाले दासो को सेना में भर्ती किया, अश्वार

भी रखे तथा पदाति भी, क्योंकि ये लोग नि संकोच युद्ध किया करते थे और प्राचीन ममलूकों[1] की सतानो से अधिक कठोर एव सहनशील होते थे। वे ममलूक भोग-विलास एव शाही आश्रय मे पले होते थे। इफरीक़िया मे मुवह्हेदीन सुल्तानों ने भी इसी नियम का पालन किया। उनके बादशाह अपनी सेना मे प्रायः ज़नाता एवं अरब क़ौमो के लोगो को भर्ती करते थे और सेना में उन्ही की सख्या बढ़ाते थे। वे अपने उन देश-वासियो को, जो भोग-विलास मे पलते थे और आलस्यमय जीवन के आदी हो चुके थे, सैनिक सेवाओ से पूर्णतः दूर रखते थे। इसी कारण उनके राज्य शक्तिहीनता एव कमजोरी से दूर रहकर नयी स्फूर्ति एवं रौनक प्राप्त करते रहते थे। उनकी आबादियों में नित्यप्रति उन्नति होती रहती थी।

(१७) मनुष्यों के समान राज्यों की भी स्वाभाविक अवस्थाएँ होती हैं

चिकित्सको एव ज्योतिषियो के मतानुसार मनुष्यो की स्वाभाविक आयु चान्द्र गणनानुसार १२० वर्ष की है। एक ही पीढ़ी मे विभिन्न परिस्थितियो मे यह अबाध गति से घटती बढती रहती है। कुछ जातियो मे वह पूरे १०० वर्ष की होती है और कुछ मे ५०–६० अथवा ७० वर्ष तक, यानी करनो[2] के अनुसार जो भी आयु निर्धारित हो। मुहम्मद साहब के अनुयायियो की आयु ६०–७० वर्ष के मध्य मानी गयी है। हदीस मे यही बात स्पष्ट की गयी है। अब बहुत कम और बिरले ही लोगो की आयु किसी विशेष नक्षत्र के प्रभाव के कारण १०० या १२० वर्ष तक पहुँचती है। उदाहरणार्थ हजरत नूह की अथवा आद एव समूद क़ौमो के कुछ अन्य व्यक्तियो की आयु पेश की जा सकती है।

सल्तनतो की अवस्थाएँ यद्यपि क़रनो के अनुसार ही घटती बढ़ती रहती हैं, किन्तु अधिकाश सल्तनतो का स्थायित्व तीन क़रनो से अधिक नही होता। एक क़रन एक मनुष्य की औसत अवस्था के बराबर होता है, जो ४० वर्ष की होती है। वहाँ पहुँचकर मनुष्य का बढ़ना बन्द हो जाता है। ईश्वर ने कहा है—"जब तक वह वयस्क नही हो जाता अथवा ४० वर्ष की अवस्था को नही प्राप्त होता......।"[3] इसी तथ्य के आधार पर हमने एक पीढ़ी अथवा एक करन को ४० वर्ष के बराबर बताया है और इसी सिद्धान्त

१. श्वेत दासों।
२. १०–२०–३० अथवा ४० वर्ष की कोई अवधि।
३. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

की दृष्टि मे बनी इसराईल के ४० वर्ष तक रेगिस्तान में भटकते फिरने के रहस्य का भी पता चल जाता है। वह रहस्य यह था कि ४० वर्ष की अवधि मे जितने भी बनी इसराईल जीवित हो, वे मर-खपकर समाप्त हो जायँ और उनके स्थान पर दूसरी नयी सतान का जन्म हो, जो अपमान एव निरादर की भावनाओं तथा दासता एव आज्ञाकारिता के विचारो से पूर्णत: अपरिचित हो।

इसका निष्कर्ष यही निकला कि एक पीढी अथवा एक करन की आयु-अवधि ४० वर्ष होती है। हमने जो यह कहा कि सल्तनतों का जीवन तीन करनों से अधिक नही बढने पाता, इसका कारण यह है कि पहली पीढ़ी मे लोग बदवी आदतों, वहशत एव परिश्रम पर कटिबद्ध रहते है। जीवन की कटुता एवं कठोरता को सहन करते है। स्वभाव मे कठोर एव खूंख्वार हो जाते है। गौरव एव श्रेष्ठता में परस्पर एक-दूसरे के साझीदार होते है। इसी कारण उनमे "असबियत" असली रूप मे वर्त्तमान रहती है। उनकी धाक सब पर बैठी रहती है, उनसे सब काँपने और दबे रहते हैं। इसके विपरीत दूसरी पीढी के लोग सल्तनत एव विलासप्रियता के कारण "बदवियत" से निकलकर नागरिक जीवन मे प्रवेश करते है और परिश्रम त्यागकर आरामतलबी एवं आलस्य ग्रहण करते है। श्रेष्ठ भावनाएँ सर्व-साधारण से निकलकर किसी एक व्यक्ति मे केन्द्रित हो जाती है। शेष लोग प्रयत्न एव क्रियाशीलता की भावनाओं को खो देते है। वे आगे बढने की प्रवृत्ति से वचित होकर पीछे हटने के अपमान के आदी हो जाते है। इस प्रकार "असबियत" के प्रति उत्साह समाप्त हो जाता है और लोग अपमान एव विवशता के आदी हो जाते है। किन्तु इस दूसरी पीढी अथवा करन मे ऐसे लोग फिर भी शेष रहते है जो अपने जीवनकाल मे प्रथम करन को देख चुके होते है। वे उनसे परिचित होते है। गौरव एव श्रेष्ठता की प्राप्ति के सम्बध मे उनके प्रयत्नो से तथा प्रतिरक्षा एव सगठन-विषयक उनके साहस एव हौसले से खूब परिचित होते है। इस प्रकार दूसरे करन के ऐसे लोग इन सब आदतो को नही त्यागते, यद्यपि कुछ बातो की उनमे भी कमी आ जाती है। वे इसी आशा पर जीवित रहते है कि सम्भवत: प्रथम करन की अवस्था मे पुन: पहुँच जायें। कभी उन्हे यह भ्रम होता है कि वह स्थिति अब भी वर्त्तमान है। तीसरे करन मे लोग "बदवी" परिश्रम को पूर्णत भूल जाते है और शासन के आतक से दबकर सम्मान एव "असबियत" से हाथ धो बैठते है। समृद्धि एव भोग-विलास के वातावरण मे पलने के कारण वे अमीरी ठाट-बाट को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते है। स्त्रियो एव बालको की भाँति प्रतिरक्षा के लिए सल्तनत का मुँह देखते रहते है। "असबियत" के नष्ट हो जाने के

कारण सहायता, प्रतिरक्षा एवं अपनी माँगों को भूल जाते है। यद्यपि युद्ध, वेष-भूषा, शहसवारी एव सैनिक करतब मे वे कुछ अकड दिखाकर लोगो को धोखा देते है, किन्तु अधिकांश मे स्त्रियो से भी अधिक कायर होते है, समय पडने पर प्रतिरक्षा नही कर पाते। उन्हे इसी कारण बादशाह की आवश्यकता का अनुभव होता रहता है, ताकि राज्य की प्रतिरक्षा हेतु अपरिचित क़ौम से सहायता ली जाय, जो अपने आप मे वीरता की भावानाएँ रखती हो, और दासो को अधिक सख्या मे सेना मे भर्ती किया जाय, ताकि देश एक प्रकार से शान्ति की साँस ले सके और अपने निश्चित समय पर समाप्त हो।

इस प्रकार तीन ही क़रनों मे सल्तनत अपने जोर-शोर को त्यागकर शक्तिहीन हो जाती है। वश एव कुल की मर्यादा भी, जैसा कि उल्लेख हो चुका और सिद्ध किया जा चुका है, चार पीढ़ियो तक चलती है। इस प्रकार ४० वर्ष का एक क़रन मान लेने पर तीन करनो मे १२० वर्ष होते है। साधारणत सल्तनत का स्थायित्व इतनी ही अवधि तक रहता है। यदि कोई अन्य कारण हो, उदाहरणार्थ राज्य तो अन्तिम साँसें ले रहा हो किन्तु मैदान मे कोई दावेदार न खडा हो जो उस पर अधिकार जमाये, तो इस प्रकार सल्तनत की आयु मनुष्य की आयु के समान बढ़ती है। सर्वप्रथम वह बढ़ती जाती है, तदुपरान्त उसमे अपरिवर्तनशीलता आ जाती है और फिर समाप्त हो जाती है। इसी कारण प्रसिद्ध है कि एक सल्तनत की आयु १२० वर्ष की होती है।

इस वर्णन से एक सिद्धान्त बनाया जा सकता है और उससे पैतृक पीढ़ियो की गणना हो सकती है। यह इस प्रकार कि जब किसी विशेष व्यक्ति से लेकर अपने समय तक किसी को ज्ञान प्राप्त हो, किन्तु पीढियो की गणना मे कुछ सन्देह हो कि वे कितनी हो चुकी है, तो उस दशा मे यही किया जाय कि प्रत्येक शताब्दी के लिए तीन पीढियो को ध्यान मे रखा जाय। यदि ज्ञात काल, पीढ़ियो की सदिग्ध सख्या पर पूरा पूरा बट जाय तो समझ लेना चाहिए कि ज्ञात सख्या ठीक है और इतनी ही पीढ़ियाँ इस समय तक बीत चुकी है। यदि एक करन की कमी रह जाय तो समझ लेना चाहिए कि सख्या मे भूल हुई है और एक पीढ़ी अधिक मान ली गयी है। यदि काल की सख्या एक करन से अधिक हो तो एक पीढी कम हो गयी होगी। इसी प्रकार पूर्वजो की ठीक सख्या ज्ञात होने पर किसी विशेष पीढ़ी का काल उलटा हिसाब लगाकर लगभग ठीक ज्ञात किया जा सकता है। "ईश्वर ही रात और दिन निश्चित करता है।"[1]

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(१५) राज्य शनैः शनैः बदवियत से निकलकर नागरिक जीवन तक पहुँचता है

समझ लेना चाहिए कि बदवियत एवं नागरिक जीवन सल्तनत की प्राकृतिक दशाएँ हैं। वह प्रभुत्व, जिसमे राज्य प्राप्त होता है, "असबियत" एव तत्सम्बन्धी वीरता तथा पौरुष से प्राप्त होता है। साधारणत यह सब बाते "बदवियत" मे ही विशेष रूप से पायी जाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि राज्य का प्रारम्भ "बदवियत" से होता है। फिर जब राज्य की बागडोर हाथ में आती है तो सुख-सम्पन्नता के द्वार खुल जाते हैं, समृद्धि उत्पन्न हो जाती है। नगर का जीवन वास्तव मे सुख-सम्पन्नता की विभिन्न स्थितियो और कला-कौशल को, जिनसे भोजन, वस्त्र, गृह, निवास-स्थान, फर्श, इमारतो, मजिलो इत्यादि के विभिन्न रूपो का आविष्कार किया जाता है, कहते हैं। इनमे से प्रत्येक के लिए सज्जा, बारीकियो एव सौन्दर्य के नये-नये मार्ग निकाले जाते है जो विशेष रूप से उन्ही के साथ सम्बन्धित होते हैं। इस सम्बन्ध मे एक के बाद दूसरी कला उत्पन्न होती रहती है। जैसे-जैसे लोगो की इच्छाओं, उनके स्वभाव, उनके भोग-विलास की स्थिति में परिवर्तन होता जाता है, वैसे ही वैसे देश मे नये कला-कौशल प्रचलित होते जाते हैं। इस प्रकार "बदवियत" पर शहरियत का रग अवश्य चढता है, कारण कि राज्य की प्राप्ति के उपरान्त विलासप्रियता का आ जाना स्वाभाविक है और सल्तनत वाले सर्वदा शहरियत एव सस्कृति मे अपने पिछले लोगो के पद-चिह्नों पर चलते हैं। उन्ही की स्थिति को अपने जीवन का मापदड बनाते हैं और बहुत कुछ उनसे प्राप्त करते हैं।

अरबो ने जब अन्य देशो को विजय करना प्रारम्भ किया तथा फारस एव रूम को अपने अधिकार मे ले लिया और उनके बालकों तथा बालिकाओ से वे सेवा कराने लगे तो उनकी यही दशा रही कि उन्होंने नगर के जीवन की विशेषताएँ अपने अधीन राज्यो से सीखी, अन्यथा विजय के पूर्व वे उनके नाम से भी परिचित न थे। कहा जाता है कि जब उन्हे तकिये दिये गये तो वे समझे कि यह गूदडे की गठरी है।[1] जब उन्होंने किसरा के राजकोष मे काफूर देखा तो उसे नमक समझकर आटे

१ इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार भी हो सकता है—"कहा जाता है कि जब भोजन हेतु उनके पास चपातियाँ लायी गयीं तो वे उनके विषय में कुछ न समझ पाये।"

मे नमक के स्थान पर प्रयोग करने लगे। सक्षेप में, इतिहास मे इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते है। जब अरबो ने रूम एव फ़ारस को दास बनाया और वे उनसे सेवा कराने लगे, घर-बार के धधे उनको सौंपे और अन्य कार्यो के लिए उनमे से माहिर चुने, तो उन्होंने अरबो को प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध मे सुधार, सशोधन एव अच्छाई के मार्ग दर्शाये। भोग-विलास, समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता के नाना प्रकार के उपाय उन्हें समझाये। फिर क्या था, अरबो ने भी रग बदला और अपने आपको नगर के जीवन एव सस्कृति के शिखर पर पहुँचा दिया। गृह, अस्त्र-शस्त्र, फर्श, बर्तन, अपितु गर्व की बातों; उदाहरणार्थ बरात एव दावतो की महफ़िलों मे, बनावट एव नजाकत में सीमा से आगे बढ गये।

उन घटनाओ पर ध्यान दीजिए जो मसऊदी एव तबरी ने मामून के विवाह के सम्बन्ध मे, जो हसन बिन सहल[2] की पुत्री बूरान से हुआ, लिखे है। वर एव वधू की ओर से निसकोच धन व्यय किया गया। सक्षेप मे ऐसी धूम-धाम से विवाह का आयोजन हुआ कि उसे सुनकर मनुष्य चकित रह जाता है। उदाहरणार्थ मामून के परिजनो को वधू के पिता हसन बिन सहल ने जो धन प्रदान किया एव दान-पुण्य का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया, उसका सविस्तर उल्लेख इस प्रकार है— उपस्थित गणो मे जो प्रथम वर्ग के लोग थे उन पर कस्तूरी एव अम्बर की गोलियाँ न्योछावर की गयी। गोलियो पर जो कागज लपेटा हुआ था, उस पर विभिन्न आय की जागीरो के आदेश लिखे हुए थे। जिसको जो कागज मिल गया, उसने उस पर लिखी हुई भूमि पर अधिकार जमा लिया। दूसरी श्रेणी के लोगो मे अशर्फियो की थैलियाँ बाँटी गयी, जिनमे से प्रत्येक थैली मे १०-१० हजार दीनार थे। तीसरी श्रेणी के लोगो मे १०-१० हजार दिरहम से भरी थैलियाँ बाँटी गयी। हसन ने मामून के आगमन के पूर्व जो व्यय किया था, वह उससे कई गुना अधिक था। मामून की ओर से बूरान को महर में पहली रात्रि मे १,००० बहुमूल्य याकूत दिये गये और अम्बरी मोमबत्तियाँ जलवायी गयी, जिनमे से प्रत्येक मोमबत्ती लगभग डेढ़-डेढ मन

१. तबरी की तारीख़—उल-रुसुल वल मुलूक, मसऊदी की मुरूजुज्जहब। अन्य इतिहासकारों ने भी इस घटना का सविस्तर विवरण दिया है।

२ हसन बिन सहल, ख़लीफ़ा मामून का बहुत बड़ा विश्वासपात्र था। बूरान से मामून का विवाह ८२५—२६ ई० में हुआ। हसन की मृत्यु जून ८५० ई० में हुई।

की थी। इसके लिए शाही राजप्रासाद मे ऐसा फर्श बिछवाया गया जिसकी चटाई भी सोने के तारो एव मोती तथा याकूत से जड़ी हुई थी। मामून ने जब यह देखा तो कहा कि अबू नुवास[1] को धन्य हो। उसने इसी दृश्य को सामने रखकर सभवत. मदिरा की प्रशसा मे यह शेर लिखा था—

शेर—मदिरा पर उसके छोटे बड़े बुलबुले ऐसे ज्ञात होते है
मानो सुनहरी भूमि पर मोती बिखरे हुए हो।

वलीमा[2] की रात्रि का भोजन पकाने के लिए एक वर्ष पूर्व से १४० खच्चरो पर लकडियाँ लदवाकर पूरे साल दिन मे तीन-तीन बार रसोई मे पहुँचायी जाती रही, किन्तु लकडी का यह बोझ भी उसी रात मे समाप्त हो गया। तदुपरान्त तेल डालकर डालियाँ जलायी जाने लगी। नाविकों को नौकाएँ उपस्थित करने का आदेश हुआ था, ताकि विशेष अतिथि दजला के मार्ग से मामून के नगर मे लाकर शाही महलो में उतारे जायँ और वे वलीमा की दावत मे सम्मिलित हो। इन नौकाओ की सख्या ३०,००० थी। इनमे बैठकर लोगों ने नदी के भ्रमण मे दिन का पिछला भाग व्यतीत किया।

अपव्ययता का यही एक उदाहरण नही, अपितु इस प्रकार के अनेक उदाहरण इतिहास मे मिलते है। इसी प्रकार का अपव्यय मामून बिन जिन्नून[3] के विवाह मे, जो तलीतला (टॉलेडो) मे हुआ, किया गया। इसका सविस्तर उल्लेख इब्ने बस्साम[4] ने कितावुज् जखीरा मे और इब्ने हय्यान[5] ने अपने इतिहास मे किया है, हालाँ कि यह

१ अबूनुवास प्रसिद्ध अरब कवि, जिसका जन्म अहवज़ में ७४७ ई० में हुआ। उसकी मृत्यु ८०६ से ८१४ ई० के बीच में बतायी जाती है।

२. विवाह के उपरान्त दुलहे की ओर से दी जानेवाली दावत।

३ बरबर मामून ने कारडोवा के राज्य के अन्त के उपरान्त टोलेडो में एक नये राज्य की स्थापना की। उसका समस्त जीवन अपनी शक्ति को बढ़ाने मे व्यतीत हुआ। उसकी मृत्यु १०४६ ई० में हुई।

४. अली बिन बस्साम की मृत्यु ५४२ हि० (११४७–४८ ई०) में हुई।

५. इब्ने हय्यान बिन खलफ़ को स्पेन के मुसलमान इतिहासकारों मे बड़ी श्रेष्ठता प्राप्त है। उसका जन्म ९८७–८८ ई० तथा मृत्यु १०७६ ई० में हुई।

वही अरब थे जो बदवियत के युग में अपनी सादगी तथा सीधे-सादे और सरल जीवन के कारण इन आडम्बरों से लेश मात्र भी परिचित न थे।

कहा जाता है कि हज्जाज ने अपने किसी पुत्र का खतना कराया। फारस का एक जमीदार भी उस समारोह मे उपस्थित हुआ। हज्जाज ने उससे फारस की दावतो के विषय मे पूछा और कहा कि "तुमने जो बडी से बडी दावत का समारोह देखा हो, उसके विषय मे मुझे बताओ।" उसने कहा—"मै एक बार नौशीरवॉ के एक अमीर के किसी समारोह मे उपस्थित था। दावत के समय हम सबके समक्ष चॉदी के थालो मे भोजन लगकर आया। प्रत्येक थाल मे सोने के चार प्याले रखे थे। एक थाल को चार-चार दासियाँ उठाकर लाती थी और चार आदमी एक थाल पर बैठ जाते थे। भोजन के उपरान्त वही चार आदमी थाल, प्याले एव दासियों को अपने घर लेते गये। हज्जाज ने यह कहानी सुनकर दास को आदेश दिया कि "जाओ, ऊँट जिबह करो और लोगो को भोजन कराओ।" जमीदार ताड़ गया कि हज्जाज इस सम्बन्ध मे कुछ न करेगा और वास्तव मे यही हुआ।

यही दशा बनी उमय्या के दान-पुण्य की थी। वे लोग प्रायः ऊँट इनाम मे दिया करते थे और अरब मे प्राचीन काल से यही प्रथा चली आ रही थी। तदुपरान्त अब्बासियो और इसी प्रकार उबैदीईन[1] के राज्यकाल मे धन, वस्त्रो के थान, जीन सहित घोडे आदि वस्तुएँ पुरस्कार मे प्रदान की जाती थीं।

यही दशा कुतामा की अगालबा के साथ इफरीकिया मे और बनू तुगश (इखशी-दियो) की मिस्र मे रही। यही व्यवहार लम्तूना का उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ के साथ और जनाता का मुवह्हेदीन के साथ रहा। इस प्रकार नगर का जीवन पिछले राज्यो से अगले राज्यों मे अविरत गति से चलता रहा। फारस के नगरो के जीवन ने बनी उमय्या एव बनी अब्बास पर अपना रग चढाया। फिर उन्दुलुस मे बनी उमय्या के नागरिक जीवन ने उस युग के जनाता एव मुवह्हेदीन के बादशाहो को प्रभावित किया। इस प्रकार बनी अब्बास की सभ्यता एव सस्कृति दैलम की ओर चली गयी। फिर तुर्क और सलजूको की ओर आयी। इसके उपरान्त मिस्र मे तुर्क दास एव इराक के तातारी नागरिक जीवन एव सस्कृति के स्वामी बने। फिर सल्तनत जितनी शक्तिशाली होती गयी, नागर-जीवन भी उतना ही अधिक सम्मानित होता गया, कारण कि नगर का जीवन भोग-विलास एव आडम्बरो से परिपूर्ण था और उसका सब ठाट-बाट

१. फ़ातेमियों।

धन-सम्पत्ति पर निर्भर था। धन-सम्पत्ति की प्राप्ति राज्य के विस्तार एवं सुल्तानों की शक्ति पर अवलम्बित होती है। फलत. नगर का जीवन सल्तनत के सम्बन्ध से बदलता रहता है, अतः इसे इस प्रकार भली भाँति सोच और समझ लेने की जरूरत होती है। यह सिद्धान्त नगर के जीवन के विषय मे पूर्णतः सत्य सिद्ध होता है। "जो कुछ इस भूमि पर है उसका वारिस ईश्वर ही है।"

(१६) प्रारम्भ में भोग-विलास से सल्तनत की शक्ति की उन्नति होती है

इसका कारण यह है कि जब देश मे भोग-विलास बहुत फैल जाताहै तो सतति भी अधिक बढने लगती है। कौमियत एव "असबियत" की भावनाएँ भी तीव्र हो जाती है। तदुपरान्त दासो एव पाले हुए लोगो की सख्या भी अधिक हो जाती है और वे सब उसी भोग-विलास मे पीढियो तक पलते-बढते रहते है। इन दासो के बढ़ने से देश की जनसख्या भी बढती है और उनकी शक्ति मे भी वृद्धि होती है। फलत स्पष्ट है कि जनसख्या की वृद्धि के साथ साथ "असबियत" भी बढती है। प्रथम एव द्वितीय करन समाप्त करके सल्तनत जब शक्तिहीन होने लगती है तो दास एव पोषित लोग स्वय स्थायी राज्य की नीव नये सिरे से नही रख सकते, क्योंकि उनका शासन से कोई सम्बन्ध नही होता। वे तो शासन पर अवलम्बित एव निर्भर होते है। मूल के समाप्त हो जाने के उपरान्त शाखाएँ किस प्रकार बच सकती है? ऐसी अवस्था मे शाखाएँ भी नष्ट हो जाती है और सल्तनत शक्तिहीन हो जाती है।

इस तथ्य को इस्लामी इतिहास के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। मुहम्मद साहब एव उनके उत्तराधिकारी खलीफाओ के शासनकाल मे मुजर एव कहतान के कबीलों को मिलाकर अरबों की सख्या एक लाख पचास हजार अथवा उसके लगभग थी। फिर जब भोग-विलास बढा और जनसख्या मे वृद्धि हुई तथा धन-सम्पत्ति का बाहुल्य हुआ तो दासो एव पाले हुए लोगो की अधिकता के कारण यह सख्या लगभग दुगुनी हो गयी। कहा जाता है कि जब मोतसिम[1] ने युद्ध के उपरान्त अमूरिया[2] विजय किया तो उसकी सेना की सख्या ९ लाख थी

१. अल-मोतसिम बिल्लाह, हारूनुर्रशीद का चौथा बेटा, जो ८३३ ई० से ८४२ ई० तक खलीफ़ा रहा।

२. अमोरियम।

और यह संख्या कल्पना से कुछ अधिक भी ज्ञात नही होती। यदि अब्बासी खलीफ़ाओ के सहायकों एवं मददगारों की सख्या पर, जो पूर्व-पश्चिम तथा दूर एवं निकट सब ओर लाखो की तादाद मे फैले पड़े थे, ध्यान दिया जाय तो मोतसिम की सेना की सख्या पर आश्चर्य न होगा।

मसऊदी लिखता है कि जब मामून के राज्यकाल मे अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब[1] के वश वालो की जनगणना, उनके लिए वृत्ति निश्चित करने के उद्देश्य से की गयी तो उनकी स्त्रियो एव उनके पुरुषों की सख्या ३०,००० निकली। इस प्रकार केवल २०० वर्ष मे उनकी जनसख्या किस सीमा तक ऊँची पहुँच गयी, इसका कारण केवल यही था कि सल्तनत सुख-सम्पन्नता एव समृद्धि की ओर अग्रसर हुई और कई पीढियो तक उनका भोग-विलास मे पालन-पोषण हुआ। अन्यथा विजयो के प्रारम्भ मे अरबो की सख्या इसके बराबर तो क्या इसके निकट भी न पहुँच सकी थी। "ईश्वर ही सर्जन करता है और वही सब कुछ जानता है।"[2]

(१७) सल्तनत की विभिन्न परिस्थितियाँ और विभिन्न प्रकार के बदवी जीवन

सल्तनत को अपने जीवनकाल मे विभिन्न परिस्थितियो एवं नयी-नयी घटनाओ का सामना करना पडता है और देशवासी भी उन्ही परिस्थितियो के कारण अपने चरित्र एव अपनी आदतो मे परिवर्तन करते जाते है। कारण कि चरित्र एव आदते वास्तव मे एक विशेष परिस्थिति से ही उत्पन्न होती है। सल्तनत की परिस्थितियाँ प्राय. पाँच विभिन्न अवस्थाओं मे ही सीमित रहती है।

पहली अवस्था विजय एव सफलता की है। इसमे कौम प्रतिरक्षा सम्बन्धी समस्याओं मे पूर्णत शक्तिशाली होती है। वह राज्यो को विजित कर लेती है और शासन दूसरों के हाथ से छीन लेती है। इस रूप मे पूरी कौम सम्मान एव श्रेष्ठता के रग मे रँगी रहती है और धन-सम्पत्ति एकत्र करने मे तल्लीन हो जाती है। प्रतिरक्षा एव बचाव के उपाय सोचती रहती है। तत्कालीन सुल्तान किसी गुण का अकेला ठेकेदार नही बनता, कारण कि कौम को जो प्रभुत्व प्राप्त होता है वह "असबियत" के ही कारण

१. अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब, मुहम्मद साहब के चाचा, जिनका निधन ६५३ ई० में हुआ। अब्बासी राज्य का संस्थापक अस्सफ़्फ़ाह उन्हीं के वंश से था।

२ क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

उसे प्राप्त होता है। यह "असबियत" भी मौलिक रूप मे तब मौजूद होती है। अपनी गौरव-गरिमा में वह सभी को साझीदार बनाती रहती है।

सल्तनत की दूसरी अवस्था मे सुल्तान वैयक्तिक प्रभुत्व एव गौरव का अभिलाषी होता है और देश का एक मात्र स्वामी बन जाता है। वह अपने शासन-प्रबन्ध में न तो किसी को साझीदार बनाता है और न किसी का हस्तक्षेप सहन कर सकता है। इस रूप मे बादशाह अपने आश्रितो एव दासों की ओर विशेष ध्यान देता है और उनकी सख्या इस आशय से बढाता है कि वह उनकी सहायता से उन "असबियत" वालो एवं कौम के प्रेमियों के उत्साह एव दल-बल को तोड़ दे, जिनकी ओर से यह भय हो सकता है कि वे राज्य मे हिस्सा बटाने का प्रयत्न करेंगे, अथवा शासनप्रबन्ध मे सम्मिलित होने की इच्छा करेंगे। ऐसे लोगो को वह शासनप्रबन्ध सम्बन्धी कार्यो से पृथक् करता जाता है और ऐसे अवसरो से, जिनमे वे शासनप्रबन्ध मे हस्तक्षेप कर सके, दूर रखता है। इसका उद्देश्य केवल यह होता है कि किसी न किसी प्रकार राज्य एव शासन उसी के अधिकार मे रहे और उसकी मृत्यु के उपरान्त राज्य बिना किसी हस्तक्षेप के उसके वंश मे चलता रहे। इस सम्बन्ध मे बादशाह को अपनी प्रतिरक्षा एव अपने प्रभुत्व हेतु जिन युक्तियो से कार्य करना पडता है उनमे वह अपने पूर्वजो की भाँति, जिन्होने राज्य की नीव रखी थी, कठिन परिश्रम करता है। कभी-कभी उसे उनसे भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पडता है, कारण कि उसके पूर्वजों ने तो अपने सभी "असबियत" वालो की सहायता से अपने राज्य की अपरिचित लोगो से रक्षा की थी और अब उसको केवल अपने ही सम्बन्धियो के विरुद्ध प्रतिरक्षा का आयोजन करना पडता है, और वह भी कुछ अपरिचित लोगो की सहायता से। इसी कारण उसे इस सम्बन्ध मे अपने पूर्वजो से अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

तीसरी अवस्था मे समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता अधिक व्यापक हो जाती है। राज्य एव शासनप्रबन्ध के ये वही फल है जिनकी ओर मनुष्य आकृष्ट होता है। धन एकत्र करने की बड़ी-बडी योजनाएँ बनायी जाती है। सल्तनत की प्रसिद्धि का डका दूर-दूर तक बजता है। समकालीन बादशाह का ध्यान खराज इत्यादि की प्राप्ति की ओर पूर्णरूप से आकृष्ट होता है। आय-व्यय को सुव्यवस्थित किया जाता है। व्यय का अनुमान लगाकर संयम से काम लिया जाता है। भव्य भवनो का निर्माण किया जाता है। बडे-बड़े कारखाने खुलते है। बड़े-बड़े नगर बसाये जाते है। भव्य पूजा-गृहो एव मस्जिदो की नीव डाली जाती है। सम्मानित एव प्रतिष्ठित क़ौमो

तथा कबीलों की ओर से राजदूत आने लगते हैं। शाही वंश का अभ्युदय होने लगता है। बादशाह के न्याय एवं दान-पुण्य की उन्नति होने लगती है। उसके सहचर एव मित्र उन्नति करने लगते हैं। उनकी आर्थिक दशा सुधरने लगती है और उनके आदर-सम्मान मे वृद्धि होने लगती है। सेना सुव्यवस्थित होती है। उसके वेतन एव वृत्तियाँ निश्चित की जाती हैं। दान-पुण्य करने में न्याय एवं संतुलन पर ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक मास नियमित रूप से वेतन का भुगतान होता है। इसी सुव्यवस्था के कारण जब विशेष अवसरों पर सेना सज-धजकर सामने आती है तो उसकी प्रत्येक बात मे रौनक़ दृष्टिगत होती है। सेना के वस्त्र, वर्दियाँ, अस्त्र-शस्त्र सभी अच्छे होते है। इसी सुव्यवस्था के कारण मित्र राज्यो मे उसका सिर ऊँचा रहता है और शत्रु राज्य उससे काँपते रहते हैं। यह श्रेणी राज्यवालों के प्रभुत्व की अन्तिम सीमा होती है, कारण कि उस समय वे स्वतत्र होते है, सम्मान एव गौरव के स्रोत होते हैं और अपने बाद आनेवालो के लिए कर्म एव उन्नति के मार्ग खोलते हैं।

चौथी अवस्था सतोष एव शान्ति की है। इस श्रेणी को प्राप्त हो जाने के उपरान्त बादशाह अपने पूर्वजों के आचरण पर निर्भर रहने लगता है। अपने बराबर वाले राज्यों से सन्धि बनाये रखता है। शत्रुओं तक के साथ सयम-पूर्वक व्यवहार करता है। प्रत्येक बात मे अपने पूर्वजो का अनुसरण करता है। उन्ही के पद-चिह्नों पर चलता है। वे जो कर गये है, वही वह भी करता है, मानो वह अपने पूर्वजो का पूर्णरूप से भक्त एव उनका अनुयायी हो। उसे यह ज्ञात होता है कि यदि वह अपने पूर्वजो के अनुकरण से पीछे हटा तो उसके कार्य अस्त-व्यस्त हो जायँगे। वह भली भाँति समझता है कि उसके पूर्वज गौरव एव श्रेष्ठता के सस्थापक थे, अतः वे ही उन कार्यो के मूलाधार हैं।

पाँचवी अवस्था अपव्यय की है। इस युग का बादशाह अपने पूर्वजो द्वारा सचित धन-सम्पत्ति को कभी अपनी अभिलाषाओ की पूर्ति एव भोग-विलास पर और कभी अपने मित्रो एव दरबारियो को दान देने मे नि सकोच व्यय करता है। ससार के दुराचारियो एव व्यभिचारियो का उसकी छत्रछाया मे पालन-पोषण होता है। ससार के महान् कार्य, जिन्हे वे कदापि नही चला सकते, उनके सिपुर्द होते है। इन लोगो की समझ मे यह नही आता कि वे क्या करे अथवा क्या न करे। वे कौम के सम्मानित लोगो की कीर्तियो को नष्ट एव अपने पूर्वजो के कार्यो को बरबाद करने लगते हैं। जब यह स्थिति हो जाती है तो लोग बादशाह से जलने लगते हैं। उसकी सहायता से हाथ खीचने लगते हैं। बादशाह क्योंकि सैनिक व्यय एवं खजाने का धन

भोग-विलास में व्यय करने लगता है, अतः सेना की दशा भी शोचनीय हो जाती है। सेना की देखभाल एवं उसके विषय मे पूछ-ताछ करने की ओर से उपेक्षा होने लगती है। इस प्रकार वह अपने पूर्वजो की कीर्ति पर पानी फेर देता है और उनकी बनायी हुई व्यवस्था का समूलोच्छेदन कर देता है। जब राज्य इस शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाता है तो वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था मे प्रविष्ट हो जाता है। वह एक ऐसे प्राचीन एवं स्थायी रोग से ग्रस्त हो जाता है कि उससे उसकी मुक्ति कठिन ही होती है। उसके स्वस्थ होने का कोई उपाय दृष्टिगत नही होता और उसकी मृत्यु ही शेष रह जाती है। इसकी अधिक व्याख्या हम बाद मे करेगे। "ईश्वर ही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"[१]

(१८) राज्य के अवशेष उसकी मूल शक्ति के अनुसार होते है

यह सत्य है कि किसी सत्ता के अवशेष उसकी शक्ति के द्योतक होते है और वे इस बात की घोषणा करते रहते है कि वह सत्ता कितनी शक्तिशाली थी। यही बात उन भव्य भवनो एव मस्जिदो तथा पूजा-गृहो के विषय मे कही जा सकती है, जो विगत राज्यो के अवशेष के रूप मे अब भी वर्त्तमान है। उनसे राज्य के सस्थापकों के ऐश्वर्य एव गौरव का पता चलता है। इसका कारण यह है कि ऐसे भवनो का निर्माण उसी दशा मे हो सकता था जब बहुत बड़ी सख्या मे भवन-निर्माण करनेवाले तथा शिल्पकार एकत्र किये जाते थे और वे मिल-जुलकर उस निर्माण-कार्य को सम्पन्न करते थे।

जब राज्य दूर-दूर तक फैला होता है और प्रजा बहुत बडी सख्या मे बसी होती है, तब भवन-निर्माण करनेवाले भी सुगमतापूर्वक बडी सख्या मे प्राप्त हो जाते है और राज्य की विभिन्न दिशाओं से एकत्र कर लिये जाते है। इस प्रकार भवन-निर्माण कार्य बडे पैमाने पर पूरा कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ आद एवं समूद नामक क़ौमों के अवशेषों को देखिए। इनका उल्लेख कुरान शरीफ़ में भी हो चुका है। इनके अतिरिक्त किसरा के राजप्रासादो के दरबार-कक्षों की ओर दृष्टिपात कीजिए, जिनसे फारस के राज्य की शक्ति प्रकट होती है। उनकी दृढता इस सीमा को पहुँच गयी थी कि जब हारूनुर्रशीद ने उनको तुड़वाना चाहा और खुदाई का कार्य प्रारम्भ कराया, तो तोड़नेवाले तोड़ने में असमर्थ हो गये। वे किसी प्रकार न टूट सके।

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

इस सम्बन्ध मे हारूनुर्रशीद का यहया बिन खालिद बरमकी[1] से परामर्श करना और उसका सुल्तान को इस संकल्प से रोकना बड़ा प्रसिद्ध है। ध्यानपूर्वक देखिए कि एक राज्य तो उनका निर्माण कराये और एक उन्हे तोड़ भी न सके, यद्यपि विध्वस एव निर्माण कार्य मे सुगमता की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। इसी से दोनों राज्यों के पारस्परिक अन्तर का पता चलता है।

इसी प्रकार दमिश्क मे वलीद[2] द्वारा निर्माण कराये हुए राजप्रासादों, क़रतबा[3] में बनी उमय्या की बनवायी हुई जामा मस्जिद और नदी का पुल, क़रताजना[4] की ऊँची भूमि पर नहरों मे जल लाने के हेतु बनी उमय्या के निर्माणकार्य, मगरिब में शरशाल के अवशेष एव मिस्र मे एहराम[5] इत्यादि के निर्माणो के अवशेषो से उन राज्यों की निर्माणशक्ति का पता चलता है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि भूतकाल में इन आश्चर्यजनक भवनों का निर्माण इजीनियरों एवं भवन निर्माण करनेवालो तथा शिल्पकारों के पारस्परिक सहयोग से सम्भव हो सका था। इसी कारण वे अत्यन्त दृढ़ बन सके थे। इसका कारण, जैसा जन-साधारण कहते है, यह नही है कि उस युग के लोगो का डीलडौल हमसे बहुत बडा था, अतः वे इतने भव्य भवनों का निर्माण करा सके। तब के और अब के मनुष्यों के डीलडौल मे इतना अधिक अन्तर नही है जितना इन भवनों को देखने से ज्ञात होता है। वास्तव मे किस्सा-कहानी गढ़नेवालों की अतिशयोक्ति एवं झूठ के कारण उपर्युक्त भ्रम उत्पन्न हो गया है। उदाहरणार्थ आद, समूद एवं अमालका नामक कौमो के विषय मे बिना सिर-पैर की झूठी कहानियाँ प्रसिद्ध हो गयी है। इनमें अधिक आश्चर्यजनक औज[6] बिन अनाक[7] की कहानी है कि वह अमालक़ा नामक क़ौम का एक व्यक्ति था जिससे बनी इसराईल ने शाम मे युद्ध किया। उसके डील-

१. यहया बिन ख़ालिद, हारूनुर्रशीद का प्रसिद्ध बरमकी वज़ीर, जिसकी मृत्यु ८०५ ई० में हुई।

२. सम्भवतः वलीद (७०५–७१५ ई०) की मस्जिद की ओर संकेत है।

३. कारडोवा।

४. कारथेज।

५. पीरामिड।

६. ओग, Og.

७. अनक, Anak.

डौल के विषय मे कहा जाता है कि वह समुद्र से मछलियाँ पकड़ लेता था और उन्हें सूर्यताप मे भून-भूनकर खाता था। इस निराधार कहानी से जहाँ कहानी कहने-वालों की मानव-जीवन की अनभिज्ञता ज्ञात होती है, वहाँ नक्षत्रो के विषय मे उनके अज्ञान का भी आभास होता है, कारण कि उन्हे यह भ्रम है कि सूर्य मे गरमी होती है और जितना ही कोई उसके निकट जाय गरमी बढ जायगी । वे इस तथ्य से परिचित नही कि गरमी प्रकाश पर निर्भर होती है। किरणो का प्रकाश, भूमि के धरातल से प्रतिबिम्बित होने के कारण तीव्र हो जाता है, अत: भूमि के निकट गरमी भी ज्यादा हो जाती है। जब प्रतिबिम्बित किरणे अपने मूल स्थान से दूर हटती है अथवा ऊँचाई की ओर जाती है तो वहाँ गरमी नही होती, अपितु ठडक हो जाती है। ऊँचाई के इस स्थान पर बादल उडते रहते है । सूर्य स्वय न तो गरम होता है और न ठडा । वह तो एक ललित एव प्रकाशपूर्ण पदार्थ है। इसी प्रकार किस्सा कहनेवाले कहते है कि औज बिन अनाक अमालका कौम का एक व्यक्ति था अथवा कनआनियों मे से था, जो उस समय, जब बनी इसराईल ने शाम विजय किया, नष्ट हो गये। उस युग के बनी इसराईलवालो का डीलडौल आजकल के लोगो के समान था। इसका प्रमाण बैतुल मुकद्दस[1] के द्वारो से मिलता है, यद्यपि वे इस बीच मे नष्ट हो गये और पुन: बनवाये गये, किन्तु उनकी शकल एव द्वारो की लम्बाई-चौडाई मे कोई भी परिवर्तन नही किया गया। तब यह किस प्रकार सम्भव है कि औज बिन अनाक के डीलडौल और इस युग के लोगो के डीलडौल मे इतना अधिक अन्तर हो।

वास्तव मे इस भूल का कारण यह है कि इन कहानी सुनानेवालो ने ये भव्य अवशेष तो देखे, किन्तु उस युग की सामूहिक शक्ति का कोई अनुमान नही लगाया। न वे उन यत्रो को समझ सके जिनके द्वारा इन आश्चर्यजनक भवनो का निर्माण कराया गया था। इस कारण उन्होने इन अवशेषो की विशालता का सम्बन्ध उनके निर्माताओ के डीलडौल से जोड दिया और कह दिया कि चूँकि वे बड़े लम्बे डीलडौल वाले थे, अत. ऐसे भव्य भवनो का निर्माण वे ही कर गये, यद्यपि यह विचार पूर्णत. मिथ्या है।.....[2]

इसी प्रकार सल्तनत के दान-पुण्य सल्तनत के ऐसे अवशेष है जिनसे उसकी शक्ति का पता लगाया जा सकता है। सल्तनत भले ही पतन एव शक्तिहीनता की ओर बढ़

१. येरोशलम।

२. इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण यहाँ लेखक ने दिये है, जिनका अनुवाद नहीं किया गया।

रही हो, किन्तु सुल्तानों की दान-पुण्य एवं इनाम-इकराम की रुचि अवश्य अपना प्रभाव दिखाती है, कारण कि उनके साहस तथा हौसले उनके शासन के प्रभुत्व एव उनकी शक्ति के अनुसार होते हैं। अन्त तक दान-पुण्य एव साहस की भावना उनमें मौजूद रहती है। इस प्रकार इब्ने जीयजान के उन पुरस्कारों द्वारा इस तथ्य का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है, जो उसने क़ुरेशी शिष्ट मडल को प्रदान किये। उसने लोगो को १०-१० सेर सोना-चाँदी तथा १०-१० दास एव दासियाँ और एक-एक अम्बर की टिकिया प्रदान की। तदुपरान्त अब्दुल मुत्तलिब को अन्य लोगो की अपेक्षा दुगुनी चीजे प्रदान की। यद्यपि उस समय उसका राज्य फारस के अधीन यमन तक सीमित था, किन्तु उसे उदारता एव साहस अपनी तबाब्रेआ नामक क़ौम से, जिसने इराक, मगरिब एव हिन्द तक की क़ौमो पर राज्य किया था, परम्परागत रूप मे प्राप्त हुआ था, अतः उसने इनाम एव दान-पुण्य मे इतनी उदारता प्रदर्शित की।

इसी प्रकार इफरीकिया मे सिनहाजा सुल्तानो के दरबार मे जब जनाता अमीरो के शिष्ट-मडल आते थे तो वे भी उनको अत्यधिक धन-सम्पत्ति, वस्त्रो के थान एव घोडे प्रदान किया करते थे। इब्ने रफीक़ ने उनके इस इतिहास का वर्णन किया है।

बरामेका के शाह भी इसी प्रकार दान-पुण्य किया करते थे। इनके इनाम एव व्यय भी अपार एव असीमित होते थे। जब वे किसी दरिद्र की सहायता करते तो उसे वे इतनी धन-सम्पत्ति प्रदान कर देते थे कि वह सर्वदा के लिए धन-धान्यसम्पन्न हो जाता था। यह दान ऐसा नही होता था कि प्राप्त धन एक-आध दिन मे ही समाप्त हो जाय और प्राप्तकर्ता दरिद्र का दरिद्र ही बना रहे। यह सब कहानियाँ इतिहासों मे लिखी हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुल्तानो के दान-पुण्य उनके राज्यो की शक्ति के अनुसार होते है। देख लीजिए कि उबैदीईन का सेनापति, जौहर अल-कातिब सक़लबी जब मिस्र की विजय के उद्देश्य से कीरवान से चला तो नकद धन का १,००० गधो का बोझ उसके साथ था। आज किसी भी राज्य का खज़ाना इतना न होगा।

इस सम्बन्ध मे अहमद बिन मुहम्मद बिन अब्दुल हमीद के हाथ के कुछ लेख प्राप्त हुए है, जिनमे मामून के खिलाफत काल की वह आय लिखी है, जो अधीनस्थ प्रदेशो एव राज्यो से वसूल होकर शाही खजाने मे आया करती थी। हम उसे "जिराबुद्दौला" नामक ग्रथ से उद्धृत करते है।[१]

१. यह सूची विभिन्न ग्रंथों में दी हुई है, A. Von Kremer **ने** *Kulturgeschichte des Orients* (Vienna, 1875) **मे इस पर विस्तार से प्रकाश**

प्रदेश	कर द्वारा आय
सवाद (दक्षिणी मेसोपोटामिया)	२७,७८०,००० दिरहम फसलों द्वारा, १४,-८००,००० दिरहम अन्य साधनों से. नजरानी कबायें २००, मुहर लगाने की मिट्टी २४० रतल[1]।
कस्कर	११,६००,००० दिरहम ।
दजला के प्रदेश	२०,८००,००० दिरहम ।
हुलवान	४,८००,००० दिरहम ।
अहवाज	२५,००० दिरहम तथा ३० हजार रतल शकर ।
फारस	२७,०००,००० दिरहम, गुलाबजल की ३० हजार बोतलें मुनक्के २० हजार रतल ।
किरमान	४,२००,००० दिरहम, यमन के ५०० रेशमी थान, खजूर २० हजार रतल और एक प्रकार का जीरा १,००० रतल ।
मुकरान	४००,००० दिरहम ।
सिंध एवं उससे संबंधित स्थान	११,५००,००० दिरहम, ऊदे हिन्दी १५० रतल ।
सिजिस्तान	४,०००,००० दिरहम, विशेष प्रकार के वस्त्रों के ३०० थान, मिसरी २० हजार रतल ।
खुरासान	२८,०००,००० दिरहम, १,००० चाँदी की ईंटे, ४,००० लद्दू जानवर, १,००० दास, २७,००० थान, ३०,००० रतल आमलक ।
जुरजान	१२,०००,००० दिरहम, रेशम के १००० लच्छे ।
क़ूमिस	१,५००,००० दिरहम, १००० चांदी की ईंटे ।
रै	१२,०००,००० दिरहम, मधु २०,००० रतल ।
तबरिस्तान, अर्खयान तथा निहावद	६,३००,००० दिरहम, तबरिस्तानी कालीन ६०० । लबादे २००, पारचा ५०० थान, मुन्देल ३००, जामात ३०० ।

डाला है। उसका विचार है कि इसमें ८६ हि० (७८५ ई०) की स्थिति का उल्लेख है।

१. एक रतल लगभग एक पौंड के बराबर होता था।

हमदान	११,८००,००० दिरहम, अनार तथा नीबू इत्यादि का मुरब्बा १००० रतल, मधु १२,००० रतल।
बसरे एवं कूफे के मध्य के स्थान	१०,७००,००० दिरहम ।
मासबजान एव अरैंयान	४,०००,००० दिरहम ।
शहर जूर	६,०००,००० दिरहम ।
मूसल एव उससे सबधित स्थान	२४,०००,००० दिरहम, सफेद मधु २०,००० रतल।
आजरबाईजान	४,०००,००० दिरहम ।
जजीरा एव फुरात के आस-पास के स्थान	३४,०००,००० दिरहम।
जीलान	५,०००,००० दिरहम, १,००० दास, मधु १२,००० मशक, बाज १०, खिलअते २०।
अरमीनिया	१३,०००,००० दिरहम, जरबफ्त के फर्श २०, विभिन्न रग के वस्त्र ५३० रतल, नमक में लगी हुई सूरमाही (एक प्रकार की छोटी मछली) १०,००० रतल, खच्चर २००, बाज ३०।
किन्नसरीन	४००,००० दीनार, मुनक्के १००० ऊँट का बोझ।
दमिश्क	४२०,००० दीनार।
जार्डन	९७,००० दीनार।
फिलस्तीन	३१०,००० दीनार, मुनक्के ३००,००० रतल ।
मिस्र	९२०,००० दीनार।
बरका	१,०००,००० दिरहम।
इफरीकिया	१३,०००,००० दिरहम, फर्श १२०।
यमन	३७०,००० दीनार, वस्त्रों को छोड़कर।
हिजाज	३००,००० दीनार।

इसी प्रकार उन्दुलुम की धन-सम्पत्ति के विपय मे विश्वस्त सूत्रो से ज्ञात होता है कि अब्दुर्रहमान नासिर[1] ने अपनी मृत्यु के समय बैतुल माल[2] मे ५,०००,०००

१. अब्दुर्रहमान नासिर उन्दुलुस (स्पेन) का ८वाँ उमय्या ख़लीफ़ा, कहा जाता है कि उसी ने सर्वप्रथम ख़लीफ़ा की उपाधि धारण की।

२. मुसलमानों का ख़ज़ाना।

दीनार छोड़े थे, जिनका वजन ५०० क़िन्तार[1] था। मैंने कुछ इतिहासों में रशीद[2] के विषय मे पढा है कि उसके राज्यकाल मे बैतुल माल की आय ७,५०० किन्तार वार्षिक थी।

मैंने उबैदीईन वंश के विषय मे इब्ने खलेकान[3] के इतिहास मे सेनापति अल-अफजल बिन बद्र अल जमाली के विषय मे, जो मिस्र के उबैदीईन खलीफाओ पर नियत्रण रखता था, पढ़ा है कि जब अल-अफजल की मृत्यु हो गयी तो ६००,००० दीनार एव २५० इरदब[4] दिरहम उसके खजाने मे मिले। इसी प्रकार अँगूठियो के लिए बहुमूल्य पत्थर, मोती, वस्त्र, घर के सामान, सवारी के जानवर तथा माल लादनेवाले जानवर प्राप्त हुए।

जहाँ तक हमारे समय की सल्तनतो का सम्बन्ध है, उनमे सबसे बडी मिस्र के तुर्को की सल्तनत है। इस तुर्क सुल्तान अन्नासिर मुहम्मद बिन क़लाऊन के समय मे इस राज्य को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था। उसके शासन-काल के प्रारम्भ मे उसके दो अमीरो, बैबर तथा सल्लार का बड़ा जोर बँध गया था। बैबर ने सल्लार से मिलकर राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। अल्प समय पश्चात् ही अन्नासिर ने राज्य पर अधिकार कर लिया और उसने बैबर के सहायक सल्लार को बन्दी बनाकर उसका खजाना साफ करवाया[5]। मैंने उस ख़जाने की धन-सम्पत्ति की सूची देखी है और उसे प्रस्तुत करता हूँ।

पीले रत्न एव लाल	४½ रतल।
पन्ना	१९ रतल।
हीरे तथा अँगूठियों के लिए एक प्रकार के रत्न	३०० बड़े टुकडे।
विभिन्न प्रकार के अँगूठियो के पत्थर	२ रतल।
गोल मोती १ मिस्क़ाल[6] से १ दिरहम तक	१, १५०।

१. एक क़िन्तार लगभग एक हण्डरेडवेट के बराबर होता था।
२. हारूनुर्रशीद।
३. शम्सुद्दीन अबुल अब्बास अहमद इब्ने मुहम्मद इब्ने अबू बक्र, इब्ने ख़लेकान (मृत्यु १२८२ ई०) का "वफ़ायतुल अयान" नामक ग्रन्थ, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है, बड़ा प्रसिद्ध है।
४. इनके विषय में कोई निश्चित पता न चल सका।
५. यह घटना १३०९–१० ई० में घटी।
६. १½ दिरहम।

सोने के सिक्के	१,४००,००० दिरहम ।
खालिस सोने का भंडार,	दो दीवारों के मध्य मे सोने के थैले जिनके मूल्य का कोई अनुमान नही लगाया जा सका।
दिरहम	२,०७१,००० ।
जवाहरात	४ क़िन्तार।

इसी अनुपात से वस्त्रो के बहुत से थान, घरेलू सामान, सवारी के जानवर, लद्दू जानवर, (अनाज की) फसले, मवेशी तथा दास और दासियाँ एव जागीरो का भी हवाला दिया गया है।

इसके बाद मोराको मे मरीनी वश हुआ। उनके खजाने की, मरीनी वित्त-मत्री हस्सून बिन अल बव्वाक के हाथ की लिखी हुई एक सूची मुझे मिली है, जिसके अनुसार सुल्तान अबू सईद ने अपने खजाने मे जो धन-सम्पत्ति छोडी वह ७०० किन्तार सोने के दीनारो से अधिक थी। उसके पास इसी अनुपात से अत्यधिक अतिरिक्त धन-सम्पत्ति भी थी। उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी अबुल हसन के पास इससे भी अधिक धन-सम्पत्ति थी। जब उसने तलेमसान पर विजय प्राप्त की[1], तो उसे ३०० किन्तार से अधिक सोने के सिक्के, जवाहरात और उसी अनुपात से अपार धन-सम्पत्ति वहाँ के सुल्तान अब्दुल वादिद अबू ताशफ़ीन के खजाने से प्राप्त हुई।

इफरीकिया मे मेरा समकालीन, मुवहहिद वश का ९वाँ बादशाह अबू बक्र[2] था। उसने अपने सेनापति मुहम्मद बिन अल हकीम को बन्दी बनवाकर उसका सफाया करा दिया। उसे ४० किन्तार सोने के दीनार और अँगूठियो के अत्यधिक बहुमूल्य पत्थर एव मोती मिले।

मै मिस्र मे मलिक अज् जाहिर अबू सईद बरकूक के समय मे था, जिसने कलाऊन के उत्तराधिकारियो से राज्य छीन लिया था। जब उसने अमीर महमूद नामक उसके वजीर को बन्दी बनवा लिया[3] तो वजीर के खजाने मे १,६००,००० दीनारो का पता चला। इसके अतिरिक्त इसी अनुपात से अत्यधिक वस्त्र, सवारी

१. १३३७ ई०।
२. इब्ने खलदून का अबू बक्र (१३१८–४६ ई०) के राज्यकाल मे जन्म हुआ था।
३. ७९८ हि० (१३९५–९६ ई०) में, अमीर महमूद की मृत्यु ७९९ हि० (१३९७ ई०) मे हुई।

के जानवर, लद्दू जानवर मवेशी एवं (अनाज की) फसलें मिली थीं। इस प्रकार जब दो अथवा अधिक राज्यों की तुलना की जाय तो उनकी समृद्धि एवं धन-सम्पत्ति तथा शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान लगाने के लिए सल्तनतों के कार-बार एव ऐतिहासिक अवशेषों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कारण कि उनकी पृष्ठभूमि मे राज्यविषयक वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपनी देखी-भाली एव अपने काल की चीजो की नाप-तौल तथा सख्या को सूचना की सत्यता का मापदड निर्धारित न करना चाहिए और जो बात ज्ञात हो उसे असम्भव न समझना चाहिए। साधारण लोगो की तो चर्चा की ही नही जा सकती, विशेष लोग भी जब भूतकाल के राज्यों के विषय मे सुनते है तो उनसे सम्बन्धित बातों पर विश्वास नही करते, यद्यपि ऐसा कदापि न करना चाहिए, कारण कि ससार तथा तत्सम्बन्धी सभ्यता एक समान नही रहतीं, अपितु उनमे अन्तर होता रहता है। जिसने घटिया अथवा मध्य स्तर का युग ही देखा हो वह उच्च स्तर के युग का ठीक-ठीक अनुमान किस प्रकार लगा सकता है, उदाहरणार्थ बनी अब्बास, बनी उमय्या तथा उबैदीईन की ठीक-ठीक एव अस्वीकार न किये जाने योग्य घटनाएँ जब हम तक पहुँचती है और उन घटनाओ की तुलना हम अपने राज्य की वास्तविक घटनाओं से, जो भूतपूर्व राज्यों की अपेक्षा कही अधिक कमजोर है, करते है तो उनमे बड़ा अन्तर पाते है। इसका कारण केवल यह है कि राज्य की शक्ति एव जनसख्या मे परस्पर बड़ा अन्तर होता है। निष्कर्ष यही निकलता है कि पिछले राज्यों के अवशेष अपने-अपने राज्यो से गहरा सम्बन्ध रखते है, जिसे अस्वीकार करना असम्भव है। इन राज्यो की उन घटनाओ के अनेकों प्रमाण है और उनके अवशेष एवं उनके वर्त्तमान भवन उनके इतिहास की पुष्टि करते है। अतः उन राज्यो की शक्ति का अनुमान उन ऐतिहासिक घटनाओ द्वारा, जिनके विवरण दिये जाते है, उन पर तथा अवशेषो के आधार पर करना चाहिए।

इस सम्बन्ध मे शिक्षा ग्रहण करने योग्य एक अन्य कहानी का उल्लेख किया जाता है। वह इस प्रकार है कि इब्ने बत्तूता[1] जो तनजा[2] का निवासी था, पूरे २० वर्ष पूर्व के देशों में पर्यटन करता रहा। उसने इराक़, यमन तथा हिन्दुस्तान

१. शेख़ फ़क़ीह, अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्ने अब्दुल्लाह इब्ने मुहम्मद इब्ने इबराहीम जो इब्ने बत्तूता के नाम से प्रसिद्ध था, तानजीर-निवासी था (७०३–७७९ हि० । १३०४–१३७७ ई०) ।

२. तानजीर।

की खूब सैर की। वह देहली[1] में भी पहुँचा, जो हिन्दुस्तान के बादशाह सुल्तान मुहम्मद[2] शाह की राजधानी थी। बादशाह उसका अत्यधिक आदर-सम्मान किया करता था। वह मालकी मजहब का क़ाजी नियुक्त कर दिया गया। वहाँ से वह मगरिब की ओर रवाना हुआ और वहाँ पहुँचकर सुल्तान अबू इनान के दरबारियो मे सम्मिलित हो गया। वह कभी-कभी अपने पर्यटन की चर्चा किया करता था और ससार के विभिन्न भागो मे उसने जो आश्चर्यजनक बाते देखी थी उनका उल्लेख किया करता था। हिन्दुस्तान के बादशाह की तो वह प्रायः ही चर्चा करता रहता था, जिसको सुनकर श्रोता आश्चर्यचकित रह जाते थे। उदाहरणार्थ यह कि हिन्द का सुल्तान जब यात्रा हेतु निकलता तो स्त्री-पुरुष एव बालको की जन-गणना कराकर उन सबके लिए छः मास का व्यय शाही राजकोश से अदा करने का आदेश दे जाता था। जब वह यात्रा से वापस आता तो समस्त नगर-निवासी सुल्तान का भव्य स्वागत करते थे। सब लोग बाहर निकलकर उसके चारो ओर चक्कर लगाते, फिर उसी समूह के मध्य दिरहम एवं दीनार लोगो पर न्योछावर किये जाते। सुल्तान के राजप्रासाद मे प्रविष्ट होने के समय तक धन-सम्पत्ति इसी प्रकार लुटायी जाया करती थी। वह इसी तरह की कहानियो का उल्लेख करता था जिनका लोग खडन किया करते थे। उन्ही दिनो की बात है कि मेरी भेट राज्य के वजीर फ़ारिस बिन वदरार से हुई और हम लोग इब्ने बत्तूता की कहानियो पर विचार-विनिमय करने लगे। साधारण लोगों के विचार के समान मै उनको स्वीकार करने को तैयार न था। इस पर वजीर ने कहा कि क्या तुम भूतकाल की सल्तनतों की इन घटनाओ का केवल इस कारण खडन करते हो कि तुमने उन्हे स्वय अपनी आँखों से नही देखा है। यदि यह बात है तो तुम वजीर के उस पुत्र के समान हो जिसका पालन-पोषण बन्दीगृह मे हुआ था।

यह कहानी इस प्रकार है कि जब एक वजीर पर राज्य की ओर से क्रोध प्रदर्शित किया गया तो उसे बन्दीगृह मे डाल दिया गया। वजीर बहुत समय तक बन्दी रहा। उसके एक पुत्र पैदा हुआ। उसका भी पालन-पोषण वही हुआ। जब वह बड़ा हुआ

१. उसकी यात्रा के हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए, सै० अ० अ० रिजवी—"तुग़लुक़-कालीन भारत" भाग १ (अलीगढ़ १९५६ ई०) पृ० १५७–३०६।
२. सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लुक़ १३२५–१३५१ ई०।

तो एक दिन वह अपने पिता से पूछने लगा कि "जो मांस हम खा रहे हैं, वह किस चीज का है ?" पिता ने उत्तर दिया कि "बकरे का।" पुत्र ने पूछा कि "बकरा कैसा होता है?" पिता ने बकरे का पूरा विवरण उसे बता दिया। पुत्र ने पूछा "पिता जी ! क्या वह चूहे के समान होता है ?" पिता ने कहा "वाह ! कहाँ बकरा, कहाँ चूहा।" इसी प्रकार गौ एवं ऊँट के मास के विषय मे वार्त्ता हुई। इसका कारण यह था कि वजीर के पुत्र ने बन्दीगृह मे जीवन व्यतीत करने के कारण चूहे के अतिरिक्त कोई अन्य जानवर देखा ही न था। अतः वह हर जानवर को चूहे की सतान समझता था। इसी प्रकार यह साधारण बात है कि जिस वस्तु को लोगों ने न देखा हो, उससे सम्बन्धित समाचार का वह खंडन कर देते है। यह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लोग आश्चर्यजनक बातों की रुचि के कारण, असम्भव बात को स्वीकार कर लेते है। अतः मनुष्य के लिए यह उचित है कि वह प्रत्येक सूचना की परीक्षा सिद्धान्त की कसौटी पर करे और निष्पक्ष भाव से विवेकशक्ति द्वारा सम्भव एव असम्भव बात की जाँच करे। जिस बात का घटना सम्भव हो, उसे स्वीकार करे और जिस बात का घटना असम्भव हो, उसे स्वीकार न करे। यहाँ पर सम्भावना का तात्पर्य बुद्धि-आधारित सम्भावना से नही है जिसका क्षेत्र बडा ही विस्तृत है, क्योकि घटनाओं की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। इसका तात्पर्य भौतिक सम्भावना से है, अर्थात् जब हम किसी वस्तु के तथ्य, गुण, शक्ति एव वैभव का पता लगा ले तो फिर उसी के अनुसार उसके विषय मे निर्णय करे। जो बाते उपर्युक्त सिद्धान्तो से पृथक् हो उन्हे असम्भव समझे। "कहो, ईश्वर हमे अधिक ज्ञान प्रदान करता है।"[1]

(१९) सुल्तान अपनी क़ौम तथा अपनी "असबियत" वालों के विरुद्ध दासों एवं आश्रितों से सहायता लेता है

यह तो ज्ञात ही है कि सुल्तान के राज्य-सम्बन्धी समस्त कार्य उसी की कौम द्वारा सम्पन्न होते हैं। उसकी कौमवाले उसकी "असबियत" वाले होते है और कठिन समय मे उसके सहायक होते है। उन्ही की सहायता से वह विद्रोहियो का दमन करता है और उन्ही के भरोसे पर वह राज्य के समस्त कार्य करता है। उदाहरणार्थ विजारत के पदो पर भी वही आरूढ़ होते हैं और खराज एव करो की वसूली भी उन्ही के सिपुर्द

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

होती है। कौम के यही व्यक्ति राज्य की प्राप्ति मे उसका दायाँ हाथ होते है और राज्य एवं शासन मे उसके सहायक एवं साझीदार होते है। सक्षेप मे समस्त कार्यो मे उसका हाथ बॅटाते हैं। इस प्रकार राज्य के प्रारम्भिक काल मे कौम का सुल्तान के साथ यही सम्बन्ध रहता है। जब राज्य दूसरे काल-चक्र मे प्रविष्ट होता है तो बादशाह स्वेच्छाचार एवं मन-माना कार्य करने का आदी हो जाता है और वह अपने आपको गौरव एवं श्रेष्ठता का अकेला ठेकेदार समझता है। अपनी कौम को शासन मे हस्तक्षेप करने से रोकता है। जब यह स्थिति हो जाती है तो उसकी कौम के लोग उसके शत्रु हो जाते हैं। उनको रोकने के लिए तथा राज्य मे हस्तक्षेप करने से बाज रखने के लिए सुल्तान अन्य कौमो से सहायता लेता है। इन्ही अपरिचित लोगो की सहायता से बादशाह अपनी क़ौम पर प्रभुत्व स्थापित रखता है और राज्य का सचालन भी इन्ही के हाथ मे दे देता है, अतः उस युग मे सुल्तान के सबसे बड़े विश्वास-पात्र वही होते हैं। सुल्तान के विशेष लोगों मे उनकी गणना होती है। वे सम्मान एव श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते है, कारण कि वही अपरिचित लोग सुल्तान की कौम को उसके उचित अधिकारों से वचित रखते है और उसे उस गौरव एव श्रेणी से हटाते है जिसकी वह पूर्व से आदी होती है। इसी मार्ग मे वे प्राणों की बाजी भी लगा देते है और मौत की चिन्ता नहीं करते। जब अपरिचित लोगों के इस प्रकार के बलिदान बादशाह की सेवा मे प्रस्तुत किये जाते है तो बादशाह उन्हे विशेष रूप से सम्मानित करता है। उन पर सब कुछ न्योछावर करता है और उन्हे वह सब कुछ प्रदान करता है जो कभी अपनी कौम को दिया करता था। राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्य, बड़े-बड़े पद, उदाहरणार्थ विजारत, सिपहसालारी एवं दीवानी के विभाग उन्हे सौप देता है। उनको ऐसी-ऐसी उपाधियाँ प्रदान की जाती है जो उसकी कौमवालो को भी न प्राप्त थी, कारण कि बलिदानो की वजह से वे लोग बादशाह के बहुत बड़े निष्ठावान्, हितैषी एवं मित्र हो जाते है, किन्तु सल्तनत की यह शोचनीय दशा उसके अन्त एवं विनाश की द्योतक होती है। यह घातक रोग उस "असबियत" को विनाश के घाट उतार देता है जो कभी प्रभुत्व प्राप्त करने का साधन थी। इधर राज्यवाले जब बादशाह को अपनी ओर से उपेक्षा करते हुए देखते है और पता लगा लेते है कि बादशाह के हृदय मे उनका कोई स्थान नही, तो वे भी बादशाह के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेष रखने लगते है और उस पर कोई न कोई विपत्ति पड़ने की अभिलाषा अपने हृदय मे छिपाये रखते है। इसका कुप्रभाव राज्य को भी भोगना पड़ता है, कारण कि वे सल्तनत के लिए ऐसा रोग बन जाते है जिसका उपचार सम्भव नही। आगामी सतानों मे भी

यह रोग अपना विष फैलाये बिना नहीं रहता, यहाँ तक कि राज्य के चिह्न भी मिट जाते हैं।

इस तथ्य के प्रमाण मे बनी उमय्या के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए कि वे किस प्रकार अपने युद्धो में और किस प्रकार राज्य के कार्यो में भी अरबवालों से ही सहायता लिया करते थे। उदाहरणार्थ अमर इब्ने साद इब्ने अबी वक्कास, उबैदुल्लाह इब्ने जियाद इब्ने अबी सुफयान[1], हज्जाज बिन यूसुफ, मुहल्लब बिन अबी सुफरा[2], खालिद[3] बिन अब्दुल्लाह अल क़सरी, इब्ने हुबैरा[4], मूसा बिन नुसैर[5], बिलाल बिन अबी बुरदा इब्ने अबी मूसा अशअरी और नसर बिन सैयार[6] इत्यादि। बनी अब्बास

१. उबैदुल्लाह इब्ने ज़ियाद, उमय्या वंश का विश्वास-पात्र, अपनी कठोरता के लिए सुप्रसिद्ध था। वह २५ वर्ष की अवस्था मे ६७३–७४ ई० में ख़ुरासान का हाकिम नियुक्त हुआ। उमय्या ख़लीफ़ाओं की ओर से उसने अनेक युद्धों मे भाग लिया। वह ६८६ ई० मे एक युद्ध में मारा गया।
२. मुहल्लब बिन अबू सुफ़रा बड़ा प्रसिद्ध अरब सेनापति हुआ है। ६६३–६५ ई० मे उसने काबुल तथा मुल्तान तक धावे किये। ख़ुरासान तथा समरक़न्द के हाकिमों के साथ भी वह कई अभियानों पर गया। उसकी मृत्यु ७०२ अथवा ७०३ ई० मे हुई।
३. ख़ालिद बिन अब्दुल्लाह को ७०७–८ ई० अथवा ७०९–१० ई० मे ख़लीफ़ा वलीद ने मक्के का हाकिम (गवर्नर) नियुक्त किया। ७२४ ई० मे वह ख़लीफ़ा हिशाम द्वारा पूरे इराक़ का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। वह कठोरता मे हज्जाज से कम न था। उसको अन्त मे पदच्युत कर दिया गया और अक्तूबर-नवम्बर ७४३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।
४. अबुल मुसन्ना उमर बिन हुबैरा ने उमय्या ख़लीफ़ा सुलेमान के समय मे बैज़न्टाइन वालों से घोर युद्ध किये। ख़लीफ़ा यज़ीद द्वितीय ने उसे इराक़ तथा ख़ुरासान का हाकिम नियुक्त कर दिया था। मार्च ७२४ ई० मे ख़लीफ़ा हिशाम ने उसके स्थान पर ख़ालिद को हाकिम नियुक्त कर दिया।
५. मूसा बिन नुसैर ने मग़रिब के पश्चिमी भाग तथा स्पेन को विजय किया था, उसकी मृत्यु ७१६–१७ ई० में हुई।
६. नसर बिन सैयार, ख़ुरासान का प्रसिद्ध हाकिम था। उसने मध्य एशिया के कई युद्धों में बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उसकी मृत्यु नवम्बर ७४८ ई० में हुई।

के राज्यकाल के प्रारम्भ मे भी अरब के ही कन्धों पर राज्य का बोझ रहा, किन्तु जब राज्य ने अपना रग पलटा और समस्त गौरव एव श्रेष्ठता केवल एक व्यक्ति-विशेष मे सीमित हो गयी तो अरबों को राज्य मे हस्तक्षेप करने से रोका जाने लगा। विजारत अजम के हिस्से मे आयी और राज्य के कार्यो का सचालन अजम (वाले) करने लगे। बनी बरामेका, बनी सहल, बनी नवबख्त और बाद मे बनी बोया, तुर्क दासो मे बुगा, वसीफ उतामिश, बाकियाक इब्ने तूलून इत्यादि बारी-बारी से खिलाफ़त एव सल्तनत पर अधिकार प्राप्त करने लगे, तब अरब सस्थापकों के हाथ से राज्य निकलने लगा और वे सम्मान एव श्रेष्ठता से वचित होने लगे।

(२०) सल्तनतों में दासों एवं आश्रितों का हाल

सल्तनत द्वारा आश्रय प्राप्त कौमे एवं कबीले शासक कौम से सम्बन्ध रखने मे विभिन्न रूप ग्रहण करते रहते है। कभी उनके सम्बन्ध प्राचीन एव पुराने होते है और कभी नये। वास्तव मे "असबियत" के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति वश की प्रतिरक्षा एव वश के प्रभुत्व द्वारा होती है, अर्थात् अपने सहायकों को अन्य लोगों से बचाना एव अन्य लोगो पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही "असबियत" का वास्तविक उद्देश्य है। सम्बन्धियों, रिश्तेदारो एव नातेदारों का एक-दूसरे के लिए बलिदान करना एव अन्य लोगों तथा अपरिचित लोगो मे प्रत्येक का दूसरे के प्रति उपेक्षा करना स्वभाविक है। वह मित्रता एव मेल-जोल जो दासता के कारण उत्पन्न होते है, वे भी सहायता एवं प्रतिरक्षा के सम्बन्ध मे नस्ल का स्थान ले लेते है, अपितु उससे अधिक गहरा प्रभाव रखते है। कारण कि नस्ल यद्यपि प्राकृतिक एव स्वभाविक है, किन्तु काल्पनिक भी है। वास्तविक सम्बन्ध वह है जो एक साथ रहने, एक-दूसरे की रक्षा की भावना रखने, प्राचीन मेल-जोल, एक ही स्थान पर पालन-पोषण एव शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने एवं दु:ख-सुख मे एक साथ जीवन व्यतीत करने से उत्पन्न हो। जब इन साधनों से प्रेम एव निष्ठा उत्पन्न हो जाती है तो एक व्यक्ति दूसरे पर प्राण न्योछावर करने लगता है और कठिनाई के समय सहायता हेतु उद्यत रहता है। यह कोई काल्पनिक बात नही, अपितु रात-दिन की देखी-भाली बात है कि लोगो के पारस्परिक सम्बन्ध इसी प्रकार स्थापित होते हैं और यही अपना प्रभाव दिखाते है।

यही सिद्धान्त उपकार करने तथा उपकृत होने पर लागू होता है, कारण कि आश्रयदाता एव उपकारक और आश्रित तथा उपकृत मे उपकार के कारण एक विशेष सम्बन्ध एवं रिश्ता स्थापित हो जाता है, जो कुल के सम्बन्ध अथवा अन्य प्रकार के

सम्बन्धों के समान प्रभाव रखता है और दोनों पक्षों को मित्रता के बंधन में बाँध देता है। उपकार के इस सम्बन्ध को हम यद्यपि कुल का सम्बन्ध नही कह सकते, किन्तु उसके फल एव लाभ सबके-सब उसमे वर्त्तमान है। फिर यदि कबीलों एव प्रभुत्व-वाली कौमो मे ये सम्बन्ध राज्य की प्राप्ति के पूर्व ही स्थापित हो गये है और अब तक चले आ रहे है तो इस ऐक्य की जड़े बड़ी दृढ़ होगी। उचित भावनाओ पर इनका आधार होगा और प्रभाव एव लाभ मे यह कुछ कम न होगा। दो कारणों से राज्य की प्राप्ति के पूर्व इस सम्बन्ध के स्थापित हो जाने के कारण कुल एव मित्रता के सबध मे कोई भेद-भाव न रहेगा। राज्य प्राप्त होने पर उनमे ऐसे गहरे एवं निकटतम सम्बन्ध होगे कि बहुत कम लोग ही समझ सकेगे। दोनों पक्षो मे कुल के नही अपितु मैत्री के सम्बन्ध होंगे। इस कारण शासक वश एव अधीनस्थ कबीले परस्पर निकटतम सबधी दृष्टिगत होंगे। यदि उपकार एव आश्रय का सम्बन्ध दोनो पक्षो मे राज्य की प्राप्ति के उपरान्त स्थापित होता है, तो राज्य उनमे पारस्परिक भेद-भाव को कायम रखता है। स्वामी अन्य होता है तथा दास अन्य। सम्बन्धी पृथक् होते है और मित्र एव दोस्त पृथक्। राज्य को इसी की आवश्यकता होती है। शासन समस्त सम्मानो एव श्रेणियों को परखकर अलग-अलग रखता है। अत देश वाले एवं शासकवर्ग एक-दूसरे से विभिन्न होंगे और सर्वदा अपरिचित समझे जायँगे। इनमे पारस्परिक प्रेम कम एव एक-दूसरे की सहायता की भावनाएँ कमजोर होगी और यह सबध, राज्य की प्राप्ति के पूर्व सहायता एवं उपकार द्वारा जो प्रेम का सबध स्थापित हो जाता है, उसकी अपेक्षा घटिया एव दोषपूर्ण होगा।

दूसरा कारण यह है कि जब उपकार एव आश्रय का सबंध राज्य की प्राप्ति के पूर्व दीर्घकाल से स्थापित होता है, तो इस सम्बन्ध की वास्तविकता के विषय मे कुछ ज्ञात नही होता और उसके रूप का पता नही चलता, अपितु अधिकाश दोनो ओर से घनिष्ठता के कारण कुल के सम्बन्ध का धोखा होने लगता, है। इस प्रकार "असबियत" भी जोर पकड़े रहती है, किन्तु राज्य की प्राप्ति के उपरान्त उत्पन्न होनेवाला सम्बन्ध क्योकि निकटतम काल का होता है और अधिकाश लोग जानते है कि दोनो के मध्य मे कुल का सम्बन्ध नही, अपितु उपकार एव आश्रय का सबध है, अतः ऐसी अवस्था मे "असबियत" भी कमजोर रहती है और वे स्वय पूर्व के सम्बन्ध से (जो राज्य की प्राप्ति के पूर्व स्थापित होता है) कमजोर होते है।

साधारण सल्तनतो एव राज्यों के लिए भी यही बात सत्य है कि यदि शासक ने राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही किसी पर दया एवं कृपा की है और वह

उसका आश्रित है, तो राज्य की प्राप्ति के उपरान्त यह संबंध और भी दृढ़ हो जायगा और उपकृत के विषय मे इस तथ्य का पता न चल सकेगा, अपितु वह निकटतम सम्बन्धी, पुत्र अथवा भाई ज्ञात होगा। इसके विपरीत यदि यह सबंध प्रभुत्व प्राप्त करने के उपरान्त स्थापित हुआ है तो इसको निकटतम रिश्तेदारी का सम्मान नही प्राप्त हो सकता। इसमे पहले सम्बन्धवाली बात नही उत्पन्न हो सकती। यह कोई काल्पनिक बात नही है, अपितु रात-दिन की देखी एवं अनुभव की हुई बात है। राज्य अपने जीवनकाल के अन्तिम दिनों मे ऐसा ही करते है। वे अपरिचित लोगो का उपकार करके उन्हे अपना बना लेते है, किन्तु इन अपरिचित लोगो को वह गौरव एव सम्मान नही प्राप्त होता जो उन लोगो को प्राप्त होता है जो राज्य के पूर्व से ही उपकृत होते है, कारण कि उनके साथ उपकार का सम्बन्ध स्थापित हुए अधिक दिन व्यतीत नही होते, दूसरे, राज्य स्वयं दम तोड़ता होता है और समाप्त होनेवाला रहता है। उसकी छाया मे किसी को अधिक लाभ नही हो सकता, अतः उन लोगो का सम्मान गिरा ही रहता है।

यह भी स्पष्ट रहे कि सुल्तान अपने प्राचीन मित्रो एवं उपकृतो को छोड़कर नये अपरिचित लोगो को इस कारण मुँह लगाता है और उन्हे उपकार के भार से लाद देता है कि पिछले लोगो के हृदय मे स्वय बादशाह के मुकाबले की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है और वे उसकी आज्ञाओ का उल्लंघन करने लगते है। वे उसे उसी दृष्टि से देखने लगते है जिससे उसकी अपनी कौम अथवा कुलवाले देखते है। उन लोगों को इस बात का अभिमान होता है कि वे दीर्घकाल से बादशाह के आश्रित रह चुके है और उनके पूर्वज, बादशाह के पूर्वजो एवं कौम वालो के सहचर थे अतः उनमे अह भाव एव अपनी मर्यादा की रक्षा की अत्यधिक भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। तब बादशाह को भी उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है और वह उनकी उपेक्षा करके अन्य लोगो को अपना मित्र बनाने लगता है। क्योकि इन नये लोगो को वर्त्तमान काल मे ही आश्रय प्रदान होता है, अत. ये लोग उस श्रेष्ठता एव गौरव तक नही पहुँच पाते, अपितु अपनी प्राचीन अवस्था मे ही पडे रहते है। ऐसी स्थिति राज्य के अन्तिम काल मे दृष्टिगत होती है और राज्य के सहायक दो वर्गो मे बँट जाते है; एक प्राचीन सहायको का वर्ग और दूसरे नये सहायको का वर्ग। किन्तु वास्तव मे पिछले सहायको को ही राज्य का सहायक कहा जा सकता है और नये लोग तो केवल सेवक ही होते है, न कि राज्य के सहायक। "ईश्वर धर्मनिष्ठ मुसलमान का मित्र है।"[1]

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(२१) (अन्य लोगों द्वारा) सल्तनतों में बादशाह पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है तथा उसे वश में रखा जा सकता है

किसी क़ौम अथवा क़बीले के किसी विशेष वश अथवा घराने मे जब राज्य स्थापित होता है और वह वश पूरी विजयी कौम मे अकेला राज्य का स्वामी होकर अन्य वंशो को पीछे ढकेल देता है और राज्य वशागत एक नस्ल मे चलने लगता है, तब अधिकांश सल्तनत के वजीरों एवं बादशाह के सहचरो की ओर से बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र होने लगते हैं और राज्य उस वश के हाथ से छीन लिया जाता है। इसका कारण प्राय: यह होता है कि वंश का कोई अयोग्य व्यक्ति अथवा बालक अपने पिता के जीवनकाल मे ही राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया जाता है अथवा बादशाह की मृत्यु के उपरान्त उसके सम्बन्धियो एव निकटवर्त्तियो के प्रयत्न के फलस्वरूप सिहासनारूढ़ हो जाता है। जब यह अनुभव किया जाने लगता है कि राज्य का नया उत्तराधिकारी अपनी अयोग्यता के कारण शासनप्रबध चलाने मे असमर्थ है, तो उसका कोई सहायक राज्य की बागडोर सँभालता है, चाहे वह उसके पिता का वजीर हो चाहे सहचर या क़बीले का कोई अन्य व्यक्ति। वह राज्य का पूर्ण प्रबध अपने हाथ मे लेकर बादशाही करने लगता है, बालक को शासनप्रबध से पृथक् रखकर भोग-विलास मे ग्रस्त रखता है और राज्यव्यवस्था की ओर उसे दृष्टिपात करने भी नही देता, यहाँ तक कि राज्य का स्वामी वही हो जाता है। जब शहशाहियत की उसे चाट पड़ जाती है तो फिर वह सोचने लगता है कि शहशाहियत कभी-कभी केवल राजसिहासन पर आसीन होकर लोगो को इनाम एव उपाधियाँ प्रदान करने तथा स्त्रियो के साथ घर की चहारदीवारी मे जीवन व्यतीत करने का नाम है, और राज्यव्यवस्था एवं शासन प्रबध, हुकूमत की समस्याओ का समाधान, आदेशो एव देश की दशा की देखभाल और छानबीन, देश की सैनिक अथवा आर्थिक दशा की देखरेख एव सीमान्तो की व्यवस्था वजीर के कार्य हैं। इस कारण वह इन समस्याओ को वजीर पर ही छोड़ देता है। इस तरह बादशाह का एक निरकुश राज्य स्थापित हो जाता है और वह तदुपरान्त उसकी सतान मे चलता रहता है। इतिहास से पता चलता है कि बनी बोया[1], तुर्को, क़ाफूर अल-

१. बुवहहिद्ज।

इख़शीदी[1] इत्यादि को पूर्व में तथा मंसूर[2] इब्ने अबी आमिर को उन्दुलस में इसी प्रकार प्रभुत्व प्राप्त हुआ।

कभी ऐसा होता है कि अधिकारहीन बादशाह असावधानी की निद्रा से जागकर अपनी स्थिति की परीक्षा करता है और फिर प्रयत्न एवं परिश्रम के फलस्वरूप खोया हुआ अधिकार एवं प्रभुत्व पुनः अपने हाथ में ले लेता है और अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त विद्रोहियों एवं उन लोगों को, जिन्होने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था, खूब कुचलता है। कभी उनकी हत्या कराता है और कभी उन्हे पदच्युत कराता है, किन्तु राज्य पर इस प्रकार बिरले को ही अधिकार प्राप्त होता है। क्योंकि जब राज्य की शक्ति इतनी गिर जाती है कि वजीर एव उच्च पदाधिकारी स्वतत्र एव स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, तो फिर स्थिति का सुधरना कठिन हो जाता है और राज्य वजीरो एवं उच्च पदाधिकारियों के हाथ का खिलौना बना रहता है। कारण कि प्रायः राज्य की यह दशा ऐसे अवसरों पर हो जाती है जब राज्य भोग-विलास का केन्द्र बन जाय, राज्य वाले समृद्धि एवं विलासिता में डूबे हुए हों, वीरता एवं पौरुष की भावनाएँ उनमे से निकल चुकी हों, लोग ऐश व इश्रत के आदी हो चुके हों और उनका पालन-पोपण इसी वातावरण मे हुआ हो। ऐसी अवस्था मे वे राज्य व्यवस्था के कष्टों की किस कारण चिन्ता करेगे और स्वाधीनता एवं पराधीनता मे क्या भेद-भाव कर सकेंगे। वे सल्तनत का सबसे बड़ा उद्देश्य यह समझते है कि खूब रंगरलियाँ मनायी जायें और भोग-विलास मे जीवन व्यतीत किया जाय। फिर राज्य के उच्च पदाधिकारियो एव स्तम्भो की ओर से इस प्रकार का अपहरण ऐसे अवसर पर होता है, जब कि शाही वश अपनी समस्त कौम को राज्य एव शासन से निकालकर निरंकुश राज्य प्रारम्भ कर देता है और सबको बिना किसी अधिकार के और अपने आपको अधिकार वाला समझने लगता है।

१. क़ाफ़ूर, जो इख़शीदियों के राज्यकाल के अन्तिम वर्षो में अधिकार का स्वामी था। उसने मिस्र तथा शाम में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। उसकी मृत्यु ९६८ ई० में हुई।

२. अल मंसूर इब्ने अबी आमिर को उसके समय में कारडोवा में अत्यधिक प्रभुत्व प्राप्त हो गया था। उसने मलिक करीम (सम्मानित बादशाह) की उपाधि धारण कर ली थी, किन्तु स्पेन के उमय्या ख़लीफ़ाओं को उसने हटाने का कभी प्रयत्न न किया। उसकी मृत्यु अगस्त १००२ ई० में हुई।

सक्षेप में ये दोनो रोग, अर्थात् बादशाह का अधिकार से वंचित हो जाना और वजीरों एव आश्रितो का जोर पकड़ लेना, ऐसे है जो सल्तनत मे उत्पन्न होकर रहते है और फिर अधिकतर उनका कोई उपचार नही हो सकता। "ईश्वर जिसे चाहता है उसे अपना राज्य प्रदान करता है।"

(२२) जो लोग सल्तनत एव सुल्तान पर प्रभुत्व प्राप्त करते है वे शाही उपाधि मे उसके साझीदार नही बनते

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि सल्तनत एव राज्य का आधार कौमी "असबियत" है और अन्य "असबियते" उसकी सहायता होती है। जब प्रभुत्व वाले वश का आतक एव दबदबा सब पर छा जाता है तो फिर सल्तनत उसी वश का हक हो जाती है और वह स्वतत्र रूप से शासन करने लगता है। यही "असबियत" कौमी सल्तनत की रक्षा एव स्थायित्व की भी उत्तरदायी होती है। फिर यदि कोई महत्त्वाकाक्षी समय की चिन्ता न करके राज्य का समस्त शासन अपने अधीन कर लेता है और वह "असबियत" वाला भी है, किन्तु उसकी "असबियत" देशवालों की "असबियत" मे लीन है और राज्य उसे वंशागत नही प्राप्त हुआ है, तो ऐसी दशा मे वह स्वाधीन बनने का प्रयत्न नही करता, अपितु सल्तनत के लाभो द्वारा लाभान्वित होता है, उदाहरणार्थ समस्त शासनप्रबध वह अपने हाथ मे ले लेता है, राज्य के समस्त प्रबध को सँभालता है, देश के सियाह-सफेद का स्वामी बनता है, किन्तु बाह्यरूप मे उसके शहशाहियत के दिखावे से पृथक् होने के कारण लोग इसी भ्रम मे रहते है कि वह बादशाह का कर्मचारी एवं आज्ञाकारी है। किन्तु परदे के पीछे उसी के आदेश मुल्क मे प्रचलित होते है,अतः वह कभी शाही उपाधि ग्रहण नही करता और ऐसी स्थिति से, जिसमे यह पता चले कि वह राज्य प्राप्त करने का इच्छुक एवं स्वतत्र होना चाहता है—यद्यपि परदे के पीछे उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है, बचता रहता है। उसके अधिकारो पर स्वय बादशाह की ओर से आवरण पडता है, कारण कि वह प्रारम्भ से ही राज्य के कार्यो से पृथक् होकर भोग-विलास मे ग्रस्त होते हुए राज्य का समस्त भार उसके कधों पर रख देता है। लोगो को भ्रम होता है कि वह अब भी बादशाह का सहायक है और उसी के द्वारा नियुक्त है। वास्तव मे अपहरणकर्त्ता इतना शक्तिहीन होता है कि लोग उसके प्रभुत्व को स्वीकार करने पर किसी प्रकार तैयार नहीं होते और यदि वह भूलकर भी खुल्लम-खुल्ला राज्य की बागडोर सँभालने का इरादा कर बैठे तो बादशाह की "असबियत" वाले उस पर टूट पड़ेगे और उसका विनाश कर देगे। इन कारणो से वह स्वय शहशाहियत की ओर

रुख नही करता और उसे अपने लिए खतरनाक समझता है। इस प्रकार अब्दुर्रहमान बिन मंसूर बिन अबी आमिर[1] को इसी स्थिति का सामना करना पड़ा, जब कि उसने शाही उपाधि ग्रहण करने का प्रयत्न किया और हिशाम[2] एव उसके कुटुम्ब वालो की बराबरी का प्रयत्न करने लगा। वह अपने पिता एव भाई की भाँति केवल राज्य पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने से सतुष्ट न हुआ और हिशाम से इस बात की माँग कर बैठा कि उसे खिलाफत का वली अहद बना दिया जाय। तब बनूमरवान एव समस्त कुरैश उसके विरोधी हो गये और हिशाम के चाचा के पुत्र मुहम्मद बिन (हिशाम बिन) अब्दुल जब्बार बिन नासिर से बैअत कर ली और आमिर के सहायकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फलतः उसका राज्य नष्ट हो गया और उसका विनाश हो गया। उसका खलीफा मुअय्यद मारा गया और उसके स्थान पर खलीफा के वंश मे से किसी अन्य को सिहासनारूढ़ कर दिया गया। संक्षेप मे राज्य की दशा अस्त-व्यस्त हो गयी। "ईश्वर ही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"

(२३) सल्तनत के वास्तविक गुण एवं उसकी किस्में

देश एवं राज्य की आवश्यकता मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। इसका प्रमाण हम दे चुके है, कारण कि मनुष्य का जीवन एवं अस्तित्व मानवजाति से मिल-जुलकर रहने तथा एक-दूसरे की सहायता से जीविकोपार्जन एव जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सम्भव नही। जब मनुष्य सामूहिक जीवन व्यतीत करने पर विवश हुआ, तो मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार, लेन-देन एवं एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति के द्वार भी खुले। क्योंकि मनुष्य मे स्वभाविक रूप से अत्याचार एव शोषण की भावनाएँ भी पायी जाती है, अतः कोई न कोई एक-दूसरे को उसके अधिकार से वचित करने की चेष्टा किया करता है। उसके मुकाबले मे पीड़ित अपने अधिकारो की प्रतिरक्षा का प्रयत्न एव सघर्ष करता है, कारण कि क्रोध

१. वह अन्नासिर के नाम से प्रसिद्ध था। उसकी मृत्यु ३९९ हि० (१००९ ई०) में हुई। अल-मंसूर का एक अन्य प्रिय पुत्र अब्दुल मलिक अल्-मुज़फ़्फ़र नामक था।

२. हिशाम द्वितीय कारडोवा (क़रतेबा) का १०वाँ उमय्या शासक था जिसन ९७६–१००९ ई० तथा १०१०–१०१३ ई० तक भली-भाँति राज्य किया।

एव आतक की भावनाएँ सभी मे पायी जाती है। फलत: सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और आपस मे मारकाट होने लगती है। देश नष्ट हो जाता है। रक्त की नदियाँ बहती है। असख्य प्राण नष्ट हो जाते है। इस प्रकार मानव-संतान के नष्ट हो जाने की शका उत्पन्न होने लगती है, यद्यपि ईश्वर ने उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व लिया है। निष्कर्ष यह निकला कि मनुष्यों का बिना किसी शासक अथवा बादशाह के स्वतत्र रूप से जीवित रहना असम्भव है, अपितु ऐसे किसी शासक या प्रभुत्व वाले व्यक्ति का होना आवश्यक है जो एक को दूसरे पर अत्याचार करने से रोके और अपने प्रभुत्व एव आतक से सबको अपने वश मे रखे और किसी को आज्ञा के क्षेत्र से बाहर निकलने न दे। उसको यह प्रभुत्व एवं आतंक "असबियत" द्वारा प्राप्त होता है, कारण कि हम उल्लेख कर चुके है कि माँगे एवं प्रतिरक्षा सम्बन्धी बाते "असबियत" के बिना कदापि पूर्ण नही होती। क्योकि सल्तनत को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है और इसके समान कोई अन्य सम्मान नही अत: प्रत्येक के हृदय मे उसकी प्राप्ति की इच्छा होती है और जिन्हे यह पद प्राप्त होता है उनको उसकी रक्षा मे अपने बचाव के लिए नाना प्रकार के उपाय सोचने पड़ते है और ये दोनों उद्देश्य, माँगे एव प्रतिरक्षा "असबियतो" के बिना प्राप्त नही हो सकती। इसके अतिरिक्त "असबियते" भी नाना प्रकार की होती है। प्रत्येक का अधिकार एव प्रभुत्व अपनी ही कौम तथा कबीले पर होता है, किन्तु प्रत्येक कबीले एव क़ौम मे एक बादशाह नही होता। बादशाह वास्तव मे वह है जो समस्त प्रजा को अपने सामने झुका ले। राजस्व एव खराज वसूल कर सके। अपने राज्य की सभी दिशाओ मे सेना नियुक्त कर सके। सीमातो का उचित प्रबध कर सके। उस पर किसी अन्य का अधिकार न हो। ऐसा ही व्यक्ति बादशाह कहलाता है। यदि उसकी "असबियत" एवं प्रभुत्व उपर्युक्त समस्याओ मे से किसी के समाधान मे असमर्थ है, उदाहरणार्थ वह सीमातो का उचित प्रबध नही कर सकता, अथवा राजस्व एव ख़राज वसूल नही कर सकता, अथवा उचित स्थान एव अवसर पर सेना की नियुक्ति नही कर सकता, तो वह उतना ही असफल बादशाह है और उसकी शहशाहियत मे उतनी ही कमी है।

क़ीरवानी अगालेबा के राज्यकाल मे बरबर मुलूक और अब्बासी खिलाफत के प्रारम्भ मे अधिकाश अजम मलिक इसी प्रकार के थे। इस तरह यदि बादशाह की "असबियत" अन्य "असबियतो" को अपने वश में न कर सके और उन पर प्रभुत्व न प्राप्त कर सके, अपितु वह स्वय किसी शक्ति के अधीन हो तो ऐसा बादशाह भी अपनी सल्तनत एव अपने प्रभुत्व मे खोटा एव अधूरा रहता है। इसी प्रकार के अमीर एवं शासक राज्य की विभिन्न दिशाओं मे होते है, जो सब मिलकर किसी एक

विस्तृत राज्य के अधीन रहते हैं। जब किसी सल्तनत का प्रभावक्षेत्र बहुत फैल जाता है तो उसके दूरस्थ स्थानों के छोटे-छोटे शासक एवं हाकिम अपने केंद्रीय शासन के अधीन अपना राज्य चलाते है। उदाहरणार्थ सिनहाजा, उबैदीईन के विस्तृत राज्य के अधीन और ज़नाता कभी बनी उमय्या के अधीन और कभी उबैदीईन के अधीन रहते थे। यही दशा अजम के मलिकों की थी जो अब्बासियों के राज्य की छत्र-छाया में हुकूमत करते थे। फ़ारस के विभिन्न वंशों के शासक सिकन्दर एवं यूनानियों के अधीन राज्य करते थे। इतिहास मे इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। "ईश्वर अपने दासों पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित रखता है।"

(२४) शासन-प्रबंध में बादशाह का संयम से आगे बढ़ जाना राज्य के लिए प्रायः हानिकारक होता है और उससे राज्य का विनाश हो जाता है

यह समझ लेना चाहिए कि प्रजा की उन्नति एवं उपकार सुल्तान के व्यक्तित्व, उसके शरीर, उसके रूप-रंग एवं सुन्दरता, उसके स्वास्थ्य, विद्वत्ता एवं विवेक तथा बुद्धि पर निर्भर नही, अपितु प्रजा की उन्नति, उसका उपकार एवं हित उस संबंध में निहित है जो बादशाह को प्रजा द्वारा प्राप्त है। कारण कि सल्तनत एवं राज्य विशेष सम्बन्ध को कहते हैं और यह सम्बन्ध दोनो पक्षों में पूर्ण रूप से निश्चित होता है। अतः इस प्रकार सुल्तान वास्तव मे वह हुआ जो प्रजा का स्वामी हो और उसके कार्यो को सँभालता हो। अर्थात् सुल्तान वह है जिसकी कोई प्रजा हो और प्रजा वह है जिसका कोई सुल्तान एव बादशाह हो। अत. जिस प्रकार का सबध सुल्तान प्रजा के साथ रखता है उसी के अनुसार हम सल्तनत एव शासन का नाम रख देते हैं। अब यह सल्तनत एवं शासन यदि न्याय एव उचित सिद्धान्तों पर आधारित है और भली-भाँति चल रहा है तो बादशाह के व्यक्तित्व से प्रजा पूरा-पूरा लाभ उठायेगी और उसकी आवश्यकताओं का प्रबध उचित रूप से हो सकेगा। यदि इसके विपरीत राज्य दुराचार एवं बुराई पर आधारित है और राज्य-व्यवस्था अत्याचार के सिद्धान्तों पर हो रही है, तो यह राज्य प्रजा के लिए हानिकारक होगा और नष्ट हो जायगा। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कहना चाहिए कि राज्य के गुण मृदुलता एवं नरमी में निहित हैं, कारण कि यदि बादशाह अत्याचारी, कठोर एवं क्रूर है, प्रजा को अधिकतर दंड देता रहता, अपनी प्रजा के अवगुणों एव दोषों की खोज मे तल्लीन रहता है, तो ऐसी दशा में लोग आतंकित एवं अपमानित हो जायँगे और वे झूठ, छल, धूर्तता एवं जाल द्वारा बादशाह से अपने प्राणों

की रक्षा किया करेंगे । फिर एक समय तक यही कार्य करने से ये दोष उनके स्वभाव में प्रविष्ट हो जायेंगे । उनके अनुभव में भी दोष उत्पन्न हो जायेंगे । उनके चरित्र नष्ट हो जायेंगे । कभी ऐसा होगा कि युद्ध एव प्रतिरक्षा के अवसर पर प्रजा बादशाह का साथ छोड़ देगी और किसी संकट के समय विश्वासघात कर देगी । ऐसी दशा मे सहायता एवं प्रतिरक्षा का कोई उपाय न हो सकेगा । कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रजा बादशाह की हत्या पर उद्यत हो जाती है और राज्य नष्ट हो जाता है तथा समस्त व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है । यदि प्रजा की ओर से इस प्रकार की कोई बात प्रस्तुत न भी हो और बादशाह कुछ समय तक अपनी प्रजा पर अत्याचार करता रहे तो कम से कम "असबियत" तो नष्ट हो ही जायगी और सहायता से वचित होने के कारण राज्य की नीव खोखली पड जायगी ।

यदि बादशाह कठोर नही, अपितु प्रजा के साथ नरमी का व्यवहार करता है, उसकी भूलों को क्षमा करता है, तो प्रजा भी उससे स्नेह करने लगती है । कष्टो मे उसकी प्रतीक्षा किया करती है । उससे हृदय से प्रेम करने लगती है । यदि बादशाह का किसी शत्रु से युद्ध हो जाय तो प्रजा उसकी रक्षा मे प्राण की बाजी लगा देती है, अतः इस दशा मे राज्य के समस्त अग ठीक रहते हैं । अब रहे राज्य से लाभ, तो वे इस प्रकार है कि बादशाह प्रजा के साथ दया एवं कृपापूर्वक व्यवहार करे, उसकी रक्षा मे प्रयत्नशील रहे । कभी-कभी प्रतिरक्षा सबधी उत्तरदायित्व को पूरा करने से राज्य की वास्तविकता पूरी हो जाती है और उसका कर्त्तव्य पूर्ण हो जाता है । अब प्रजा के प्रति बादशाह की अधिक दया एव उपकार, उसके नरमी के व्यवहार मे सम्मिलित है, जो वह अपनी प्रजा के प्रति प्रदर्शित करता है । प्रजा की आर्थिक दशा को ठीक करना भी नरमी के व्यवहार से संबधित है । यह उसका कर्त्तव्य नही । सक्षेप मे प्रजा के प्रति दया एव कृपापूर्वक व्यवहार करने से बादशाह अपनी प्रजा के हृदय को आकृष्ट कर लेता है और उसकी प्रजा उस पर हृदय से अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार रहती है ।

फिर इस तथ्य को भी समझ लेना चाहिए कि कुशाग्र बुद्धि एवं विवेकवाले बादशाहों में मृदुलता एवं नरमी की भावनाएँ बड़ी कम होती हैं । भोले-भाले एवं सीधे-सादे लोगों में ही यह नरमी की भावनाएँ अधिक पायी जाती हैं । विवेक एवं तीक्ष्ण बुद्धि और सूझ-बूझ वाले बादशाहों में मृदुलता इस कारण कम पायी जाती है कि वह अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं सूझबूझ के कारण कार्यो के परिणाम को पूर्व से ही समझ लेता है और वहाँ तक प्रजा की बुद्धि पहुँचने में पूर्णतः असमर्थ होती है । इन्ही परिणामों को प्राप्त करने के उद्देश्य से वह प्रजा पर उसकी सामर्थ्य से अधिक भार डाल देता है

और प्रजा बेचारी नष्ट हो जाती है। इसी बात को दृष्टि मे रखकर मुहम्मद साहब ने कहा है—"तुममे जो लोग सबसे कमजोर हो उनके पीछे-पीछे चलो।"

इसी कथन को ध्यान मे रखकर शरीअत के आदेशानुसार शासक को अत्यधिक बुद्धिमान् न बनना चाहिए। इसका प्रमाण जियाद बिन अबी सुफयान[1] की कहानी से, जब कि हजरत उमर फारूक़ ने उसे इराक के राज्य से पदच्युत किया, मिलता है। जियाद ने पूछा—"हे अमीरुल मोमिनीन! क्या आपने मुझे इस कारण पदच्युत किया है कि मै शासनप्रबंध करने मे असमर्थ हूँ, अथवा मैंने कोई अपहरण किया है।" उत्तर मिला कि "इन दोनों कारणों मे से किसी कारण से मैंने तुमको पदच्युत नही किया। मुझे तुम्हारी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि से खटका पैदा हो गया कि कही तुम अपनी प्रजा के लिए कष्ट का कारण न बन जाओ।" इस प्रकार फिकह-वेत्ताओ ने शासक के लिए यह शर्त लगा दी है कि वह जियाद इब्ने अबी सुफयान तथा अमर बिन आस के समान अत्यधिक बुद्धिमान् एव राजनीतिज्ञ न हो, कारण कि ऐसी दशा मे शासक द्वारा अत्याचार एवं जुल्म तथा प्रजा पर सामर्थ्य से अधिक भार पड जाने की आशका बनी रहती है। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिज्ञ के लिए अत्यधिक बुद्धिमान् एव समझदार होना बहुत बड़ा दोष है, न कि गुण।

स्पष्ट सिद्धान्त है कि मानव के गुणों मे से किसी एक का भी सीमा से अधिक बढ़ जाना दोष का कारण बन जाता है। उत्तम केवल मध्य का मार्ग ही है। दान-पुण्य मध्य के मार्ग पर होने के कारण उत्कृष्ट है और उनके दोनों सिरों पर अपव्ययता एवं कृपणता है जो दोनों ही अवगुण है। वीरता भी मध्य वर्ग की होने पर प्रशसनीय है। यही बात अन्य गुणों के विषय मे भी कही जा सकती है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति मे उच्च कोटि का विवेक होता है उसको शैतानी गुणो से सम्पन्न बताया जाता है और कहा जाता है कि वह तो बना-बनाया शैतान अथवा अत्यत धूर्त है। "ईश्वर जिसे चाहता है, उसे पैदा करता है।"[2]

१. जियाद बिन अबीही को मुआविया ने इराक़ का हाकिम नियुक्त किया। वह प्रथम हि० में पैदा हुआ और ५३ हि० (६७३ ई०) में मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह हजरत उमर के जीवनकाल के अन्तिम वर्षों में बसरे का हाकिम नियुक्त हो गया था। इतिहासकारों ने उसकी तथा हजरत उमर की कई वार्त्ताओं का उल्लेख किया है। वह मुआविया का सौतेला भाई बताया जाता है।

२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(२५) खिलाफ़त तथा इमामत

वास्तव मे सल्तनत का अस्तित्व मानव के सामाजिक जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है और सल्तनत का स्थायित्व प्रभुत्व एवं आतंक के बिना सम्भव नहीं। यह दोनों भावनाएँ आतक एवं पाशविक स्वभाव के परिणाम है, इसी कारण आतक-शील बादशाह के आदेश प्राय: न्यायपथ से विचलित हुआ करते है और उसके कारण प्रजा का जीवन कष्टमय हो जाता है। इसी लिए समकालीन अत्याचारी बादशाह की आज्ञाकारिता बड़ी कठिन हो जाती है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ एवं बाद के लोगों के उद्देश्यों मे भी बड़ा अन्तर होता है। जिसे भी प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है वह अपने अधीनस्थ प्राणियो को अपनी ही इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की ओर आकृष्ट करता है। इसी कारण देश मे कोई न कोई शक्तिशाली "असबियत" उसके विरुद्ध उठ खड़ी होती है और देश मे हत्याकांड एवं लूट-मार द्वारा छोटी-मोटी प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी सकटपूर्ण अवस्था मे शासन सम्बन्धी अधिनियमो का बनाना परमावश्यक होता है, जिनके कारण कोई भी राजाज्ञा की अवहेलना करने का साहस न कर सके, अपितु सब आज्ञाकारी एवं अधीन बने रहे। इस प्रकार फ़ारस इत्यादि के राज्य इन्ही नियमों के आधार पर चलते रहे है। यदि कोई राज्य शासनविधान न बना सके अथवा उसे देश मे न चला सके तो वह अपना प्रभुत्व एव सम्मान भी स्थापित करने में असफल रहेगा और देश पूर्णरूप से उसके अधिकार मे न आ सकेगा। यही ईश्वरीय नियम उसके बन्दों मे प्रचलित है।

यदि शासन-विधान राज्य एव देश के बुद्धिमानों एव योग्य व्यक्तियो द्वारा सकलित हो तो उसका संकलन बुद्धिजन्य राजनीति कहलायेगी, और यदि ये नियम ईश्वर की ओर से संकलित एव तैयार होकर किसी रसूल एवं नबी द्वारा मनुष्यों तक पहुँचे, तो इन्हें हम धार्मिक राजनीति कहेगे। यह धार्मिक राजनीति इस लोक तथा परलोक दोनों को लाभ पहुँचायेगी।

केवल यही लोक मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य नहीं है, कारण कि यह तो नश्वर एवं व्यर्थ है और कभी न कभी नष्ट हो जायगा। ईश्वर ने कहा है—"क्या तुम यह समझ बैठे हो कि हमने तुम्हें व्यर्थ पैदा किया है?" अत: मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य धर्म ही है जो उसे परलोक मे सदा सुखी रखेगा। इसी कारण ससार मे जितनी "शरीअतें" आयीं वे मनुष्यजाति के लिए इबादत एवं उपासना संबंधी अन्यआ देश लायी, यहाँ तक कि शासनप्रबंध संबंधी अधिनियमों की भी उपेक्षा नहीं की गयी, जो कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के लिए स्वाभाविक है। अत: धर्म एवं "शरीअत" के प्रकाश में "शरीअतों"

ने देश में इस आशय से संविधान चलाये कि ईश्वर के समस्त प्राणी रसूल के आदेश के क्षेत्र में आ जायँ। अब सुल्तान लोग अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, क्रोध, आतंक एवं रोष से प्रेरित होकर जो कुछ भी करते है वह अत्याचार एवं जुल्म है, जिसे ईश्वर किसी तरह पसन्द नही करता। इसी अत्याचार को मिटाने के लिए उसने धार्मिक नीति बनायी है, अतः जो बातें सासारिक राजनीति के अनुसार सुल्तान सम्पन्न करते है वे भी बुरी एवं दोषपूर्ण है, कारण कि अल्लाह द्वारा प्रदत्त प्रकाश की पृष्ठभूमि मे उनका निर्माण नही होता। ईश्वर स्वयं कहता है—"जिसके लिए ईश्वर कोई प्रकाश नही रचता उसे कोई प्रकाश नही मिलता।" रसूल ही एक ऐसा व्यक्ति है जो ईश्वर की कृपा से मनुष्यों की परलोक संबंधी समस्याओं को भली-भाँति जानता एवं समझता और उनके हित से भली-भाँति परिचित होता है, किन्तु साधारण मनुष्यों की दृष्टि मे उनमें से कोई भी सामने नही। फिर चाहे कोई दरिद्र हो अथवा धनी, सब के कर्म परलोक में उसी रूप मे उनके समक्ष आ जायँगे।

इसी बात की ओर मुहम्मद साहब ने सकेत किया है—"तुम्हे तुम्हारे ही कर्मो का बदला मिलता है।" सासारिक राजनीति के अधिनियम केवल सांसारिक हितों के अनुसार होते है, कारण कि मनुष्य की दृष्टि बाह्य दृश्यों तक सीमित होती है। इसके विपरीत "शरा" के बनानेवाले के सामने परलोक की उन्नति ही सबसे बड़ा उद्देश्य होता है, अतः "शरीअतों" की आवश्यकतानुसार समस्त प्राणियों को लोक एवं परलोक की दृष्टि से "शरई" आदेशों के पालन पर विवश किया जाता है। इसके पालन कराने का उत्तरदायित्व नबियो एव उनके ख़लीफ़ाओ पर है जो नबियों के उत्तराधिकारी होते है।

इस विवरण से ख़िलाफत की स्थिति स्पष्ट हो जाती है और पता चल जाता है कि सुल्तान का मनमाना राज्य उसकी अपनी व्यक्तिगत इच्छाओ एवं अभिलाषाओं का राज्य कहलाता है। पर राजनीति के अनुसार "शासन", मानवबुद्धि के अनुसार राज्य करने का नाम है। शासन का उद्देश्य यह होता है कि मनुष्य ससार का यथेष्ट लाभ प्राप्त कर सके और उसकी हानियो से बच सके। खिलाफत का अर्थ यह है कि सबको शरई दृष्टिकोण के अनुसार जीवन निर्वाह करने पर प्रेरित किया जाय, जिससे परलोक का सौभाग्य भी उसे प्राप्त हो और सासार के वे लाभ भी हासिल हो जायँ जो परलोक के सौभाग्य में सहायक है। "शरीअत" के अनुसार संसार की सभी स्थितियों पर इसी कारण ध्यान देना उचित है कि उनसे पारलौकिक जीवन सुधर सके। इस प्रकार अधिक स्पष्ट शब्दों में ख़िलाफ़त धर्म की रक्षा एवं देख-भाल और संसार की

राजनीति मे "शरा" के बनानेवाले का ठीक ठीक उत्तराधिकारी एवं जानशीन होना है। इस तथ्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए, कारण कि इससे अन्य विवरणों के समझने मे सहायता मिलेगी। "ईश्वर ही बुद्धिमान् है और सब कुछ जानता है।"

(२६) ख़िलाफ़त एवं उसकी शर्तों के सम्बन्ध में मुसलमानों का मतभेद

अभी इस बात का उल्लेख हो चुका है कि "खिलाफत" वास्तव मे धर्म की रक्षा एव देख-भाल और सासारिक राजनीति मे शरा के बनानेवाले का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करने और उसका उत्तराधिकारी बनने का नाम है। इसे "खिलाफत" भी कहते हैं और "इमामत" भी। उत्तराधिकारी एव नायब को ख़लीफ़ा भी कहते है और इमाम भी। इमाम शब्द नमाज के इमाम के समान है। जिस प्रकार नमाज के इमाम का अनुसरण किया जाता है, उसी प्रकार समकालीन इमाम का भी अनुसरण करना चाहिए। इसी कारण इसे "इमामते कुबरा"[1] भी कहते है। "खलीफा" को खलीफा इस कारण कहा जाता है कि वह नबी के अनुयायियो मे नबी का उत्तराधिकारी एव नायब होता है। कभी उसे केवल खलीफा कहा जाता है और कभी ईश्वर के रसूल का खलीफा। ईश्वर का ख़लीफा कहकर सम्बोधित करने मे मतभेद है, किन्तु कुछ आलिम लोगों ने इसकी भी अनुमति दे दी है। इसका कारण यह है कि सभी मनुष्यों को भूमि पर ईश्वर का ख़लीफा होने का सम्मान प्राप्त है, अतः बादशाह को यह सम्मान सबसे बढ़कर हासिल है, जैसा कि ईश्वर ने कहा है—"मै पृथ्वी पर अपना खलीफा बनाना चाहता हूँ।" और "उसने पृथ्वी पर तुम्हे अपना खलीफा बनाया।"[2] किन्तु अधिकाश आलिम प्रत्येक व्यक्ति को अल्लाह का खलीफा कहकर सम्बोधित करने मे सहमत नही, क्योकि उनकी राय मे उपर्युक्त आयतो[3] मे इस खिलाफत की चर्चा नही है। इसके अतिरिक्त यह भी कारण है कि एक बार हजरत अबू बक्र को अल्लाह का खलीफा कहकर सम्बोधित किया गया तो आपने इसका खडन किया और कहा—"मै अल्लाह का खलीफा नही अपितु रसूलल्लाह का ख़लीफा हूँ।" दूसरा प्रमाण यह है कि खिलाफत ऐसे व्यक्ति की की जाती है जो उपस्थित न हो। अल्लाह प्रत्येक समय उपस्थित है अतः उसकी खिलाफत एवं उसके नायब होने का कोई अर्थ नही।

१. बड़ी इमामत।
२ क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
३. क़ुरान शरीफ़ के वाक्यों।

खलीफा तथा इमाम की नियुक्ति परमावश्यक है। उसकी आवश्यकता सहाबा[1] एवं ताबेईन के कथनो द्वारा भी प्रमाणित होती है। जब मुहम्मद साहब की मृत्यु हुई तो सहाबा ने तुरन्त हजरत अबू बक्र के प्रति बैअत[2] की और अपने राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य उन्ही को सौप दिये। मुहम्मद साहब की मृत्यु के उपरान्त भी खलीफा एव इमाम के चुनाव को बडा महत्त्व प्राप्त रहा और प्रत्येक काल में इसी सिद्धात पर आचरण होता रहा। मनुष्य को कभी भी बिना किसी नियत्रण के नही रखा गया। इस प्रकार खलीफा एव इमाम की नियुक्ति पर मुहम्मद साहब के सभी अनुयायियों का सहमत होना सिद्ध हो जाता है। कुछ लोगो का मत है कि इमामत की स्थापना इजमा[3] के अनुसार नही, अपितु बुद्धि के अनुसार आवश्यक है। उम्मत ने सर्वसम्मति से बुद्धि की आवश्यकता को प्रचलित किया है। बुद्धयनुसार इमामत इसी लिए आवश्यक है कि मनुष्य का सामाजिक जीवन इमाम के बिना सम्भव नही, क्योकि जब मनुष्य मिल-जुलकर रहेगे तो उनके उद्देश्यों मे परस्पर सघर्ष होने के कारण वे बिना युद्ध किये नही रह सकते। अत. जब तक कोई न्यायकारी शासक न होगा, ससार रणक्षेत्र बन जायगा और अन्त मे सभी नष्ट हो जायँगे, हालाँ कि मानव-जीवन की रक्षा "शरीअत" का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

दार्शनिको ने मनुष्यो मे "नबूअत" की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए इसी तथ्य को अपने समक्ष रखा है। इस तर्क मे जो दोष है उसे भी हम स्पष्ट कर चुके हैं। उनके तर्क की एक प्रस्तावना तो यह है कि न्यायकारी हाकिम अल्लाह की शरीअत लेकर आता है, जिसे सभी मनुष्य अपना धार्मिक विश्वास समझकर हृदय से उसे स्वीकार कर लेते है। यह सिद्धान्त इस कारण स्वीकार नही किया जा सकता कि कभी-कभी कोई हाकिम आतक एव निरकुशता द्वारा भी सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है, "शरीअत" का उसमे कोई हाथ नही होता। उदाहरणार्थ मजूसी कौम अथवा ऐसी कौमों के, जो "अहले किताब" नही और दीन का प्रचार जिन तक पहुँचा ही नही, राज्य भी राज्य ही कहलाते हैं जो "शरीअत" के अधीन नही, अपितु निरकुशता एव आतंक पर आधारित है। फिर दार्शनिको के कथनो के खडन मे हम यह भी कह सकते है कि लड़ाई-झगड़े को शान्त करने के लिए क्या यह उचित नही कि बुद्धि के प्रकाश मे प्रत्येक व्यक्ति को

१. मुहम्मद साहब के सहायक, मित्र।

२. अधीनता की शपथ।

३. विचारों में मतैक्य।

अत्याचार एवं निरंकुशता के दोष समझाये जायें और इस प्रकार मार-काट की रोक-थाम की जाय। क्या यह आवश्यक है, जैसा कि विद्वानों का मत है कि झगड़ों का निपटारा केवल "शरीअत" के अनुसार एवं इमाम की नियुक्ति द्वारा हो? जिस प्रकार इमाम की नियुक्ति द्वारा झगड़े समाप्त किये जा सकते है, उसी प्रकार प्रभावशाली बादशाह की नियुक्ति द्वारा भी उनको मिटाया जा सकता है, अथवा लोग स्वयं समझ-बूझकर जुल्म एवं अत्याचार को त्याग सकते हैं। अतः दार्शनिकों का तर्क जो इस प्रस्तावना का आधार है, अधिक वजन नही रखता और यह स्वीकार करना पड़ता है कि "ख़िलाफ़त" एवं "इमामत" की आवश्यकता केवल हजरत मुहम्मद के अनुयायियों की सर्वसम्मति के सिद्धान्त पर आधारित है।

कुछ लोगों का मत पूर्णतः इससे भिन्न है। उनके मतानुसार इमाम की नियुक्ति न तर्कानुमोदित है और न शरा द्वारा। मोतजेला मे से असम[1] इसी मत का अनुयायी है और कुछ खारजी भी इसी मत पर निर्भर हैं। उनके लिए तो इतना ही आवश्यक है कि "शरीअत" के आदेश पर ससार चलने लगे। यदि सब लोग मिल-जुलकर न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे और दैवी आदेशो के प्रचलित कराने मे संगठित रूप से कार्य करने लगे तो फिर इमाम की नियुक्ति की आवश्यकता ही नही रह जाती। किन्तु मुसलमानों की सर्वसम्मति इसके विरुद्ध है अतः यह मत ठीक नही। लोगों के इमामत को आवश्यक न समझने और इस प्रकार का मत स्वीकार कर लेने का यह कारण है कि राज्य प्रायः अत्याचार, जुल्म, लोगो की धन-सम्पत्ति के अपहरण एव सासारिक आनन्दों द्वारा लाभान्वित होने का साधन है। सुल्तान ऐसा व्यक्ति होता है जो इन सब कुकृतियों मे तल्लीन रहे, यद्यपि "शरीअत" इन कुकर्मो की निन्दा से भरी पड़ी है। इन कर्मो को वह बहुत ही बुरा बताती है। इनके परित्याग पर बड़ा जोर देती है। ऐसी दशा मे इमाम अथवा हाकिम की आवश्यकता का किस कारण अनुभव किया जाय और उसे क्यो उचित समझा जाय। किन्तु इनको यहाँ धोखा हुआ है, कारण कि "शरीअत" ने केवल सल्तनत की ही निदा नही की और उसके स्थायित्व को ही बुरा नहीं वताया, अपितु उन दोषो एवं बुराइयों को भी स्पष्ट किया है जो निरंकुशता

१. प्रारम्भिक मोतज़ेला में अल-असम को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। वह ८०० ई० के लगभग जीवित था। मावरदी ने भी ख़िलाफ़त सम्बन्धी उसके विचारों पर "अल-अहकामु-स्सुल्तानिया" नामक अपने ग्रंथ में वाद-विवाद किया है।

एवं अत्याचार अथवा सांसारिक भोग-विलास के लोभ से उत्पन्न होती हैं। इनकी बुराई में तो कोई सन्देह नही, किन्तु "शरीअत" ने जहाँ उन दोषों को स्पष्ट किया है वहाँ संसार मे न्याय की स्थापना, धार्मिक आदेशों के प्रचार, उनकी रक्षा इत्यादि सभी की प्रशंसा की है और इन कार्यो के कारण लोगो को पुण्य एवं परलोक के लाभ की आशा दिलायी है। इस प्रकार इमामत के अच्छे एवं बुरे दो रूप हैं। बुरे रूप की "शरीअत" ने निदा की है और अच्छे रूप की प्रशंसा, इमामत एवं सल्तनत के मौलिक रूप की बुराई नही की है और न उसके परित्याग का आदेश दिया है। इसका उदाहरण इस प्रकार है कि "शरीअत" ने वासना एवं क्रोध की निन्दा की है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि ये दोनों भावनाएँ हीनी ही न चाहिए, कारण कि बहुत-से स्थानों पर इनकी भी आवश्यता होती है। इनकी बुराई का उद्देश्य यह है कि अनुचित मार्गो मे और "शरीअत" के आदेशों के विरुद्ध इन शक्तियो से काम न लिया जाय। यो तो हजरत दाऊद[1] एव सुलेमान[2] जैसे लोग महान् राज्यों के स्वामी हुए हैं जिनके समकक्ष कोई नही मिलता, यद्यपि दोनों ही बड़े सम्मानित नवी थे, और ईश्वर के निकट प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ एवं सम्मानित। ऐसी दशा में इमामत एवं सल्तनत मूल रूप से किस कारण दोषपूर्ण कही जा सकती है?

इसके अतिरिक्त हम यह भी कहते हैं कि इमामत को अनिवार्य न समझकर उसकी उपेक्षा करने से "मोतजेला" को कोई लाभ नही पहुँचा, कारण कि इसे तो वे भी स्वीकार करते हैं कि "शरई" आदेशों का प्रचार अनिवार्य एवं परमावश्यक है। यह "असबियत" एवं प्रभुत्व द्वारा सम्भव है और "असबियत" की यह स्वाभाविक माँग है कि कोई बादशाह एवं शासक होना चाहिए, अतः शासक एवं बादशाह का होना आवश्यक हो गया, चाहे दिखाने को इमाम न नियुक्त किया जाय। इस प्रकार वे जिस बात से बचे थे, वही उनके सामने आयी।

जब यह सिद्ध हो गया कि इमाम की नियुक्ति इजमा के अनुसार आवश्यक है, तो उसका रूप "फ़र्जे किफ़ाया"[3] के समान है और यह देश के प्रभावशाली व्यक्तियों का

१. डेविड।
२. सालोमन।
३. फ़र्ज (कर्त्तव्य) की दो क़िस्में है, "फ़र्जे आम", प्रत्येक मनुष्य का अलग अलग कर्त्तव्य, जैसे नमाज पढ़ना, रोजा रखना इत्यादि, और दूसरी क़िस्म "फ़र्जे किफ़ाया", पूरी उम्मत अथवा हजरत मुहम्मद के अनुयायियों के समाज का कर्त्तव्य।

कर्त्तव्य है कि वे किसी व्यक्ति को इमाम चुनकर नियुक्त करें और समस्त प्राणियों के लिए यह अनिवार्य है कि उसकी आज्ञाकारिता से मुँह न मोडे। कारण कि ईश्वर ने कहा है—"ईश्वर के आदेशो, उसके रसूल के आदेशो तथा तुममे जो लोग अधिकार के स्वामी हो, उनके आदेशो का पालन करो।"[1]

एक ही समय मे दो इमामो का नियुक्त करना सम्भव नही। आलिम लोग कुछ हदीसो के आधार पर इस बात से सहमत है। ये हदीसे मुस्लिम[2] की सहीह नामक पुस्तक के "इमारह" नामक अध्याय मे मौजूद है। वे इस सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से द्योतक है।

अन्य लोगो का मत है कि दो इमामो के सिद्धान्त का यह अर्थ है कि एक ही स्थान पर अथवा पास-पास दो इमाम न हो। जब दूरी अधिक हो और इमाम दूर के भू-भाग का भली-भाँति शासनप्रबंध न कर सके तो वहाँ लोकहित की दृष्टि से दूसरा इमाम नियुक्त किया जा सकता है। जो विद्वान् इस मत को मानते है उनमे सर्वोत्कृष्ट अबू इसहाक अल-इसफरायिनी है।[3] इमामुल हरमैन[4] ने भी "किताबुल इरशाद" नामक ग्रंथ मे इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। उन्दुलुस या मगरिब के विद्वान् भी इसी मत का अनुमोदन करते है। उन्दुलुस के आलिमो की बहुत बड़ी सख्या ने उमय्या खलीफा अब्दुर्रहमान अन्नासिर एवं उसके वश वालो की बैअत कर ली थी और उन्हे "अमीरुल मोमिनीन" कहते थे। "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि, जैसा कि हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे, केवल खलीफाओ को ही दी जाती है। कुछ समय उपरान्त मगरिब मे मुवह्हेदीन ने भी यही किया।

कुछ आलिम इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नही कि जहाँ तक इजमा

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. मुस्लिम बिन हज्जाज नीशापुरी अथवा क़शमिरी सहीह मुस्लिम के, जो मुहम्मद साहब की हदीसों का संग्रह है, संकलनकर्त्ता थे। उनकी मृत्यु ८७५ ई० में हुई। "सहीह मुस्लिम" को सहीह बुख़ारी के समान सुन्नी लोग बड़ा विश्वस्त ग्रन्थ मानते है और दोनों ग्रंथ सहीहैन के नाम से प्रसिद्ध है।
३. इबराहीम बिन मुहम्मद अल इसफ़रायिनी की मृत्यु ४१८ हि० (१०२७ ई०) मे हुई।
४. अबुल मआली अब्दुल मलिक बिन अब्दुल्लाह अल जुवैनी (४१९–४७८ हि०। १०२८–१०८५ ई०)।

का प्रश्न है, दो इमाम हो सकते है। यह कोई प्रमाण नही, कारण कि यदि इस प्रश्न पर कोई इजमा होता तो अबू इसहाक तथा इमामुल हरमैन इसका अवश्य विरोध करते। उन्हे इजमा के महत्त्व का अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक ज्ञान था। इमाम अल मजारी[1] तथा अन्नवाई[2] के मत का उपर्युक्त हदीस[3] के आधार पर खडन हो चुका है।

कुछ हाल के आलिमों ने केवल एक ही इमाम की नियुक्ति के औचित्य पर वाद-विवाद किया है, किन्तु उनके मत परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। वे इस आयत का सहारा लेते हैं—"यदि अल्लाह के अतिरिक्त (जमीन तथा आसमान पर) अन्य ईश्वर होते तो (जमीन और आसमान) नष्ट हो चुके होते।" इस आयत के आधार पर कोई स्पष्ट सिद्धान्त नही बनाया जा सकता, कारण कि इसका सारा जोर तर्क पर आधारित है। ईश्वर ने इस आयत मे केवल यह बात ही स्पष्ट की है कि हम ईश्वर के एक होने का तर्कपूर्ण प्रमाण पा जायें और उसकी एक मात्र सत्ता के दृढ विश्वासी हो जायें। जहाँ तक इमामत का सम्बन्ध है, हमे यह जानने की आवश्यकता है कि दो इमामों की नियुक्ति का निषेध किस कारण किया गया, और यह कि इस बात का सम्बन्ध शरीअत एव दीन (इस्लाम) की आवश्यकताओ से है, अतः कुरान की उपर्युक्त आयत से, उस समय तक कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता, जब तक कि हम इसे शरा से सम्बद्ध मानकर यह न कहे कि अधिक ईश्वरों के कारण भ्रष्टाचार फैलता है, और उन चीजों से जिनके कारण भ्रष्टाचार फैलता है हमे बचते रहना चाहिए। तभी इस आयत का प्रयोग शरीअत के सदर्भ मे उचित रूप से किया जा सकता है।

यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होनी चाहिए कि इमामत की चार शर्तें हैं—(१) ज्ञान, (२) न्याय, (३) योग्यता, (४) पच ज्ञानेन्द्रियो तथा शारीरिक भुजाओ का सुरक्षित होना, जो विचार एव आचरण हेतु परमावश्यक हैं। पाँचवी शर्त अर्थात् इमाम के क़ुरैशी वश से संबधित होने के विषय मे मतभेद है।

(१) ज्ञान की शर्त इस कारण लगायी गयी कि इमाम यदि ज्ञान-सम्पन्न और शरई आदेशो से परिचित न होगा तो वह शरा को अपने राज्य मे किस प्रकार

१. मालिकी इमाम मुहम्मद बिन अली, जन्म लगभग ४५३ हि० (१०६१ ई०), मृत्यु ५३६ हि० (११४१ ई०)।
२. मुहीउद्दीन यहया बिन शरफ़, ६३१–६७६ हि० (१२३३ ई०–१२७७ ई०)।
३. इमाम मुस्लिम की "सहीह"।

प्रचलित कर पायेगा। इसके अतिरिक्त इमाम का ज्ञान इजतेहादी[1] श्रेणी का हो न कि तकलीदी[2], कारण कि तक़लीद एक प्रकार का दोष है और इमामत के लिए गुणों एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व की आवश्यकता होती है। इसका दोष से क्या सम्बन्ध ?

(२) न्याय की शर्त इस कारण लगायी गयी कि इमामत एक ऐसा धार्मिक पद है जो उन समस्त पदो की रक्षा करता है जिनमे न्याय परमावश्यक है। अतः इमामत के पद मे तो बहुत बड़ी सीमा तक न्याय का गुण होना चाहिए। इस बात पर कोई मत-भेद नही कि यदि इमाम शरा के विरुद्ध कार्य करने लगे तो उसका न्याय समाप्त हो जायगा, किन्तु इस बात पर मतभेद है कि यदि वह बिदअत[3] सम्बन्धी विश्वास रखने लगे तो न्याय समाप्त होगा अथवा नही।

(३) योग्यता की शर्त का यह तात्पर्य है कि इमाम शरई आदेशों के पालन कराने एवं युद्ध तथा जेहाद मे सम्मिलित होने में निर्भीक एवं वीर हो और लोगों को समझने में उसकी बुद्धि कुशाग्र हो। पूर्ण उत्तरदायित्व से शरई आदेशों के पालन कराने एवं जेहाद मे सम्मिलित होने के लिए वह लोगों को उद्यत कर सके। "असबियत" एवं राजनीति से भली-भाँति परिचित हो ताकि धर्म की रक्षा, शत्रुओं से जेहाद, धार्मिक आदेशों का चलाना एवं राज्य के हित संबंधी जो उत्तरदायित्व इमाम के ऊपर है, उन्हें वह भली-भाँति सम्पन्न कर सके।

(४) पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा शारीरिक भुजाओं के ठीक होने का उद्देश्य यह है कि उनमें कोई दोष न हो और वे अनुपयोगी न हों। उदाहरणार्थ इमाम पागल न हो, अन्धा न हो, बहरा न हो और गूंगा न हो। जो भुजाएँ कार्य हेतु आवश्यक है वे सुरक्षित हों, उदाहरणार्थ हाथ, पाँव एवं अण्डकोष सुरक्षित हों। इन भुजाओ के सुरक्षित होने की शर्त इस कारण लगायी गयी कि ये सब इमाम के उन समस्त कर्त्तव्यों एवं कार्यो के सम्पन्न कराने मे परमावश्यक हैं जो उसके सिपुर्द किये गये है। यदि इमाम के बाह्य रूप-रंग में कोई दोष उत्पन्न हो गया हो, उदाहरणार्थ उपर्युक्त भुजाओं मे से कोई भुजा हो ही नही तो फिर इसमें कोई अधिक आपत्ति नही। इस प्रकार भुजाओं के ठीक होने का तात्पर्य भुजाओं एवं ज्ञानेन्द्रियों की निपुणता है।

यदि कोई ऐसी स्थिति प्रस्तुत हो जाय जिससे इमाम को राज्य-व्यवस्था के सचा-

१. नयी परिस्थिति में शरीअत के सिद्धान्तों के आधार पर तदनुकूल निर्णय कर सकना।
२. अनुकरण, जिसमें कोई नया मार्ग खोज निकालने की सामर्थ्य न हो।
३ इस्लाम में नयी राहें निकालना।

लन में कठिनाई हो तो फिर उसकी इमामत पर विश्वास न हो सकेगा। इसके दो रूप हैं। प्रथम रूप सुरक्षा की शर्त के निकटतम पहुँचने से संबंधित है। उसे आवश्यक शर्त समझना चाहिए। इसका रूप इस प्रकार है कि इमाम को बन्दी बनाकर ऐसा विवश कर दिया जाय कि वह राज्य-व्यवस्था मे पूर्णतः असमर्थ हो जाय। दूसरा रूप यह है कि उसके कुछ सहचर एवं सहायक उसे इस प्रकार से अधिकार में कर लें कि वह राज्यव्यवस्था में हस्तक्षेप करने से असमर्थ हो जाय, किन्तु कोई विद्रोह न कर सके। ऐसी दशा में अधिकार प्राप्त कर लेनेवाले की दशा देखी जाती है। यदि उसका आचरण धर्म के अनुसार है, वह न्यायप्रिय एव उचित रूप से राजनीति का ज्ञान रखता है, तो ऐसी दशा मे उसकी इमामत स्वीकार की जा सकती है और यदि उसकी दशा इसके विरुद्ध है, तो मुसलमानों के लिए पिछले इमाम की सहायता करना अनिवार्य है, ताकि अपहरणकर्त्ता से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाय और वह स्वाधीन होकर आज़ादी की साँस ले सके।

(५) अब जहाँ तक क़ुरैशी वंश का सबध है, तो सक़ीफा[१] मे सहाबा[२] इस पर सहमत हो चुके हैं। इस प्रकार अंसार[३] ने जब साद इब्ने उबादह[४] से बैअत करने की इच्छा प्रकट की और कहने लगे कि "एक अमीर हममें से हो और एक तुममें से", तो क़ुरैश ने मुहम्मद साहब के इस कथन पर अपना तर्क आधारित किया कि "इमाम क़ुरैश से होंगे" और यह भी कहा कि मुहम्मद साहब ने हमको यह भी आदेश दिया है कि "हम तुम लोगों मे से ऐसों का उपकार करें जो सदाचारी हैं एवं अन्य लोगों का उपकार करते है और हम तुम लोगों की भूलों को क्षमा करें।" यदि इमामत तुम्हारा हक होता तो मुहम्मद साहब हमको तुम्हारे विषय मे यह आदेश क्यों देते। इस वार्त्ता से असार सतुष्ट हो गये और उन्होंने पुनः यह न कहा कि "एक अमीर हममे से हो और एक तुममे से" तथा साद बिन उबादा से बैअत करने का विचार भी छोड दिया। सहीह बुखारी मे भी लिखा है कि "यह वस्तु[५] क़ुरैश क़बीले मे ही रहेगी।"

१. बनू साइदह का बड़ा कक्ष, जहाँ हज़रत अबू बक्र को ख़लीफ़ा चुना गया।
२ मुहम्मद साहब के सहचर, मित्र।
३. मुहम्मद साहब के मदीने के सहायक।
४. साद बिन उबादह, मुहम्मद साहब के प्रतिष्ठित सहाबी थे। कहा जाता है कि उस समय अरबों में कोई भी उनसे अच्छा लिख-पढ़ न सकता था। उनकी मृत्यु १५ हि० (६३६–३७ ई०) में हुई।
५. ख़िलाफ़त।

संक्षेप मे इसी प्रकार के अन्य बहुत से प्रमाण है, किन्तु जब कुरैश का जोर घटा तो उनकी "असबियत" मे भी अन्तर पड़ गया, कारण कि वे भोग-विलास मे ग्रस्त हो गये और चारों ओर फैल गये तथा खिलाफ़त का बोझ सहन न कर सके, जिससे अजम ने उन पर अधिकार जमा लिया। वही समस्त अधिकारो के स्वामी बन बैठे। इस परिवर्तन के कारण अधिकांश विद्वानों को भ्रम हो गया और उन्होने कुरैशी की शर्त का निषेध कर दिया। कुछ लोग मुहम्मद साहब के ज़ाहिरी शब्दो से अपने विचारों का समर्थन करने लगे, उदाहरणार्थ मुहम्मद साहब ने कहा है–"सुनो तथा आज्ञाकारी रहो, यद्यपि तुम पर एक अगूर सरीखा छोटे सिर वाला हबशी दास अमीर बना दिया जाय।" हालॉ कि मुहम्मद साहब के इस कथन द्वारा कोई तर्क नही किया जा सकता, कारण कि उन्होने जो कुछ कहा है वह उदाहरणस्वरूप और इस उद्देश्य से कि अमीर की आज्ञाकारिता का अत्यधिक प्रयत्न करते रहना चाहिए। कभी यह लोग हजरत उमर के इस कथन[१] को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते है––"यदि अबू हुजैफा का दास सालिम[२] जीवित होता तो मै उसे नियुक्त कर देता", अथवा " ..मै उसके प्रति कोई आपत्ति न प्रकट करता।"

यह कथन भी उनके उद्देश्य के लिए लाभदायक नही, कारण कि सहाबी का कथन हमारे लिए प्रमाण नही। इसके अतिरिक्त कौम का दास भी तो कौम मे ही सम्मिलित होता है और सालिम की "असबियत" भी तो कुरैश की ही "असबियत" थी। ऐसी अवस्थाओ मे "असबियत" को ही महत्त्व प्राप्त है। हजरत उमर के कथन का आधार यह ज्ञात होता है कि जब आपने ख़िलाफ़त के विषय को अत्यधिक महत्त्व दे दिया और उसकी शर्ते अपने मतानुसार उपस्थित लोगों मे से किसी मे न पायी, अपितु सालिम के व्यक्तित्व मे ही पायी, तो आपने सालिम को प्राथमिकता प्रदान कर दी, कारण कि ख़िलाफ़त की योग्यता के अतिरिक्त कुरैश क़बीले की "असबियत" भी उसे प्राप्त थी। इस प्रकार हजरत उमर का विचार साधारण मुसलमानों के उपकार एवं उन्नति से सम्बन्धित था। वे ख़िलाफ़त का कार्य ऐसे व्यक्ति को सौपना चाहते थे जिसमे कोई दोष न हो।

काजी अबू बक्र बाकिल्लानी भी इमाम के लिए कुरैशी वश का होना आवश्यक न समझता था, कारण कि उसने भी अपने युग मे यह देखा था कि कुरैशी "असबियत"

१. तबरी के अनुसार हजरत उमर ने मरते समय यह शब्द कहे थे।
२. कहा जाता है कि सालिम मुसलमानों के प्रारम्भिक काल मे मदीने में इमाम रहा करता था।

का अन्त हो चुका है और ईरानी मलिकों ने ख़लीफ़ाओं पर अधिकार जमा लिया है। अतः उन्होंने कुरैशी होने की शर्त हटा दी और खारजियों के साथ सहमत होने की ओर ध्यान न दिया। इसका यह कारण है कि उनके युग के खलीफाओ की समस्त दशा उनकी दृष्टि मे थी, किन्तु अधिकांश आलिम लोग इसी मत पर दृढ़ रहे कि "इमामत" के लिए कुरैशी होना आवश्यक है, चाहे इमाम मुसलमानो का शासनप्रबध चलाने में असमर्थ ही क्यो न हो। इस बात पर यह आलोचना की गयी कि ऐसी दशा मे तो 'योग्यता' की भी शर्त नही पूरी होती, कारण कि "असबियत" के समाप्त होने के साथ साथ शक्ति एव प्रभुत्व का भी अन्त हो जाता है और 'योग्यता' की शर्त भी समाप्त हो जाती है। जब योग्यता का पतन हुआ तो ज्ञान एवं धर्म किस प्रकार सुरक्षित रह सकते हैं। इस प्रकार इमामत की समस्त शर्तें एक साथ समाप्त हो जाती हैं, हालाँ कि यह इजमा के विरुद्ध है। अब हम यहाँ इस बात को स्पष्ट करना चाहते है कि वंश की शर्त का क्या रहस्य है, ताकि उपर्युक्त धर्मो मे से सच्चे धर्म का पता लगाया जा सके।

यह सच है कि समस्त शरई आदेश विशेष उद्देश्यो पर, जिनके कारण वे मानव-जाति मे प्रचलित किये जाते हैं, आधारित होते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार जब हम कुरैशी वंश के सम्बन्ध मे जो आदेश दिया गया है, उसके रहस्य का पता लगाने बैठते हैं, तो उसका रहस्य केवल यह नही पाते कि इस शर्त मे मुहम्मद साहब से सम्बन्ध को सामने रखा गया है और इस सम्बन्ध द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करने का विचार है, जैसा कि साधारण लोग समझते है। यद्यपि इसका निषेध नही किया जा सकता कि कुरैशी होने मे इस सम्बन्ध को सामने रखा गया है, किन्तु केवल आशीर्वाद शरीअत का उद्देश्य नही, अतः इस शर्त का कोई अन्य रहस्य भी होना चाहिए जो वास्तविक उद्देश्य हो। जब बात को और अधिक गहराई से देखा जाय तो "असबियत" पर ही दृष्टि जमती है कि यहाँ इसी को महत्त्व दिया गया है, कारण कि इसी से सहायता एव मदद की आशा की जाती है और इसी के कारण इमाम के विषय मे झगड़ा एव मतभेद समाप्त हो जाता है और समस्त उम्मत उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती है तथा पारस्परिक प्रेम एव स्नेह मे कोई अन्तर नही पड़ता, कारण कि कुरैश का एक ऐसा वंश था जिसे समस्त मुजर कबीलों पर प्रभुत्व प्राप्त था। "असबियत" एवं शराफ़त का उसे विशेष सम्मान प्राप्त था और सारा अरब उसकी इस शराफत एवं सम्मान से प्रभावित था। इसी के प्रभुत्व को स्वीकार करता था। यदि मुहम्मद साहब क़ुरैश के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए इमाम होने का प्रस्ताव रखते तो कुछ दूर न था कि उम्मत मे फूट पड़ जाती। अरब क़ुरैशी के अतिरिक्त किसी अन्य के समक्ष कदापि

सिर न झुकाते और उसके विरोध पर तुल जाते। मुजर के क़बीलो में से कोई भी उनकी रक्षा न कर सकता था और न लोगों को जेहाद के लिए उभार सकता था। फलत: लोगों में विरोध की ख़तरनाक अग्नि भड़क पड़ती और लोग बहुत बड़े विरोध का शिकार हो जाते। मुहम्मद साहब को इसी कलह का बड़ा भय था। वे संगठन पैदा करने के लिए अत्यधिक प्रयत्न करते रहते थे। पारस्परिक फूट एव विरोध दूर करने के उपाय सोचते रहते थे, ताकि आपस में गहरा संगठन स्थापित हो जाय। "असबियत" की भावनाएँ ज़ोर पकड़ें और एक दूसरे की सहायता एवं सहयोग से भली-भाँति कार्य कर सकें। क़ुरैश में इमामत का पद स्थापित हो जाने से ये समस्त संघर्ष एक साथ समाप्त हो जाते थे, कारण कि वे अपने प्रभुत्व की लाठी से जिस दिशा में चाहते लोगों को घेर ले जाते। किसी के विषय में यह सोचा नहीं जा सकता था कि वह उनसे बदल जायगा अथवा विरोधी हो जायगा, कारण कि विरोध एवं झगड़ा रोकने पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था, अतः इसी तथ्य एवं कुरैश की अत्यधिक "असबियत" के अधीन इमाम के क़ुरैशी वंश का होने की शर्त लगी, ताकि समस्त मुसलमान सगठन एवं मेल के सूत्र में बँधे रहें और समस्त प्रबंध भली-भाँति सम्पन्न हो सके। जब शासन एवं इमामत क़ुरैश के हाथ में आ गयी तो मुज़र नामक क़बीले ने उनका साथ दिया। जब मुजर साथ हुए तो फिर समस्त अरब, क़ुरैश के समक्ष झुक पड़ा और सभी क़ौमे उनकी आज्ञाकारी बन गयी। तदुपरान्त इस्लामी सेनाओ ने दूरस्थ स्थानो को पद-दलित कर दिया। इस प्रकार विजयो के युग मे यही दशा रही और बनी उमय्या एव बनी अब्बास के काल मे इमामत का यह बढ़ता हुआ गौरव शेष रहा, यहाँ तक कि ख़िलाफ़त शक्तिहीन हो गयी। अरबी "असबियत" छिन्न-भिन्न हो गयी। जो भी व्यक्ति अरब के इतिहास से भली-भाँति परिचित है और उसके विषय मे गहरा अध्ययन किये हुए है, उसे अच्छी तरह ज्ञात है कि क़ुरैश को मुजर पर कितना प्रभुत्व एव कितनी श्रेष्ठता प्राप्त थी। इब्ने इसहाक़ ने भी "किताबुस् सियर" मे इन समस्त बातो का सविस्तर उल्लेख किया है।

जब यह बात सिद्ध हो गयी कि इमाम के लिए क़ुरैशी की शर्त इस कारण लगायी गयी कि वह अपनी "असबियत" एव प्रभुत्व से लोगों के विरोध एव झगड़ों को मिटा डाले, साथ ही साथ हमें यह भी ज्ञात है कि शरा सबधी आदेश किसी विशेष काल, युग अथवा क़ौम तक सीमित नही होते, अत: स्वीकार करना पड़ेगा कि इसी से "योग्यता" की शर्त भी लगायी गयी। "असबियत" दोनो शर्तो के साथ आवश्यक है। इसी कारण हमने मुसलमानों के इमाम के लिए यह शर्त लगा दी कि वह ऐसी क़ौम का व्यक्ति हो

जिसकी "असबियत" उस युग की समस्त "असबियतों" पर भारी हो, ताकि सभी उसके अधीन हो जायँ और फिर सब एक-जान एवं एक-दिल होकर उसकी सहायता करें। इस तथ्य का विरोध नहीं किया जा सकता कि जो "असबियत" क़ुरैश रखते थे, उसका इस युग में कोई उदाहरण नही मिल सकता। कारण कि इस्लामी प्रचार का स्रोत वही थे और अरब की समस्त "असबियतें" उनका साथ दे रही थीं, अतः उन्होंने समस्त क़ौमों पर अधिकार जमा लिया, किन्तु अब क़ुरैशी "असबियत" समाप्त हो चुकी है। अब इसके अतिरिक्त क्या उपाय है कि हर देश में उसी व्यक्ति को अमीर तथा इमाम बनाया अथवा स्वीकार किया जाय जिसकी "असबियत" उस देश में शक्तिशाली एवं प्रभुत्व रखती हो।

यदि खिलाफ़ते इलाही के रहस्य को समझ लिया जाय तो हमारा कथन असत्य न ज्ञात होगा, कारण कि ईश्वर ने खलीफा को इस कारण नियुक्त किया है कि वह प्राणियों के हित की देख-भाल कर सके और उनकी कोई हानि न होने दे। इस विषय मे ईश्वर ने उसे अपना प्रतिनिधि बनाया है, उसको इमामत का उत्तरदायित्व सौपा है। किसी को कोई उत्तरदायित्व उसी समय सौपा जाता है जब उसमे उसे पूरा करने की शक्ति हो। इस प्रकार इब्नुल खतीब[1] ने स्त्रियों के विषय में लिखा है कि स्त्रियाँ बहुत से शरई आदेशों मे पुरुषों के अधीन की गयी है। उन्हें सीधे सम्बोधित नही किया गया है अपितु किसी निष्कर्ष के आधार पर भी उन्हें उन आदेशो में सम्मिलित नही किया गया। इसका कारण यह है कि स्त्रियाँ स्वाधीन नही अपितु उनके अधिकार की बाग पुरुषों के हाथ में है। इबादतों मे निःसन्देह स्त्रियों को सीधे सम्बोधित किया गया है, कारण कि इबादतों का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति अलग रखता है। इस खिलाफ़त की समस्या पर दृष्टि न भी डाली जाय तब भी सांसारिक घटनाओ से पता चलता है कि किसी क़ौम तथा क़बीले पर वही व्यक्ति शासन करता है जिसे उन सब पर प्रभुत्व प्राप्त हो। क्योंकि शरई आदेश साधारणतः अनुभव एव अन्य घटनाओ के विरुद्ध नही होते, अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि इमाम गौरव तथा "असबियत" वाला ही हो सकता है। "परमेश्वर ही सब कुछ जानता है।"

(२७) इमामत के विषय में शीओं के विभिन्न मत

शब्दार्थ के अनुसार शीआ अनुयायियो एव सहायकों को कहते है। फ़िक़्ह एवं

१. मुहम्मद बिन उमर ११४८–४९ अथवा ११४९–५० ई० से १२०९–१० ई० तक। वे फ़ख़ुद्दीन राज़ी के नाम से प्रसिद्ध थे।

कलाम-वेत्ताओं के अनुसार हजरत अली तथा उनकी संतान के अनुयायियों को शीआ कहा जाता है। समस्त शीआ इस बात पर सहमत है कि इमामत सर्वसाधारण के हित सबधी उन कार्यों मे नही है जिनका सचालन एव व्यवस्था आम लोगों की राय पर रखी जा सके, उदाहरणार्थ वे जिसे चाहे चुन लें और इमाम बना ले, अपितु इमामत धर्म के स्तम्भो में एक बहुत बडा स्तम्भ है और इस्लाम का वास्तविक आधार है। नबी के लिए यह कदापि उचित नही कि वह उसकी उपेक्षा करे और उसे उम्मत की राय पर छोड़ दे कि जिसे वह चाहे इमाम बनाये, अपितु नबी पर इस बात का पूर्ण उत्तरदायित्व है कि इमाम को वह स्वय नियुक्त करे। फिर इमाम के लिए यह भी आवश्यक है कि वह छोटे और बडे हर प्रकार के पापों से मुक्त हो।

शीओं का विश्वास है कि हजरत मुहम्मद, हजरत अली को इमाम मनोनीत कर चुके थे और इसका प्रमाण वे कुछ उन हदीसो से देते है जिनके सूत्र वे ही है और जिनकी व्याख्या वे अपने ही धर्म के अनुसार करते है। साधारण सुन्नी इन रवायतो के तथ्य से पूर्णत. अपरिचित एवं अनभिज्ञ है, अपितु अधिकांश रवायते, जिनका शीआ लोग उल्लेख करते है, जाली तथा बनावटी है। उनके रवायत के ढग मे दोष है अथवा वे अपने धर्मानुसार उनका अर्थ समझाते एव व्याख्या करते है।

इसके अतिरिक्त शीआ लोग इस विषय मे जिन हदीसों की चर्चा करते है, वे उनके मतानुसार दो प्रकार की है—एक स्पष्ट दूसरी गर्भित। स्पष्ट का उदाहरण मुहम्मद साहब का यह आदेश है कि "मै जिसका मौला हूँ, अली भी उसके मौला है।" शीओ का कथन है कि इस प्रकार की किसी हदीस का किसी अन्य सहाबी के विषय मे पता नहीं। यह विशेपता हजरत अली को ही प्राप्त है। इस आधार पर हजरत उमर ने हजरत अली को सम्बोधित करते हुए कहा कि "आप प्रत्येक मोमिन स्त्री एवं पुरुष के मौला हो गये।"

इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहब ने कहा—"तुममे सबसे बडे न्यायकर्त्ता हजरत अली है। इमामत का उद्देश्य ईश्वर के आदेशो के अनुसार न्याय करना है।" ईश्वर के इन वाक्यो "ईश्वर, उसके रसूल और उसके आदेशो का पालन करो जो तुम्हारा हाकिम हो" का तात्पर्य आपके ही व्यक्तित्व से है, जिनकी आज्ञाकारिता अनिवार्य बतायी गयी है, कारण कि आयत मे आज्ञाकारिता का तात्पर्य दैवी आदेशो की आज्ञाकारिता से है। इसी आधार पर सकीफे[1] के दिन जब इमाम की नियुक्ति की समस्या पर विचार-विनिमय होने लगा तो आपके अतिरिक्त कोई अन्य पंच न हो सका।

१. याक़ूबी के अनुसार हज़रत अली ने स्वयं अपने सहायकों को सक़ीफ़ा में रोक दिया।

इसी प्रकार का एक मुहम्मद साहब का अन्य कथन बताया जाता है—"जो अपनी जान की बाजी लगाकर मुझसे बैअत करेगा, मै उसी के लिए वसीयत करूँगा और वही मेरे बाद मेरे अधिकार का वारिस होगा ।" केवल हजरत अली ने ही इस प्रकार बैअत की ।

यह रवायते स्पष्ट थी । अब जो रवायते गार्भित है उनका उदाहरण यह है कि जब बराअह नामक[2] सूरा ईश्वर की ओर से आया तो मुहम्मद साहब ने हज के समय उसके पाठ एव प्रचार हेतु हजरत अली को नियुक्त किया । सर्वप्रथम मुहम्मद साहब ने हजरत अबू बक्र को इस उद्देश्य हेतु रवाना किया था, किन्तु आपके पास दैवी आदेश आया कि "आप अपने किसी निकट-सबधी अथवा कौम के किसी सम्मानित व्यक्ति को भेजे", तब आपने हजरत अली को रवाना किया कि वे उस सूरे का पाठ एव प्रचार करे । शीओ का मत है कि इस कथन से हजरत अली की अन्य सहाबियो पर श्रेष्ठता प्रमाणित होती है ।

इसके अतिरिक्त वे कहते है कि ऐसा कोई उदाहरण नही कि मुहम्मद साहब ने हजरत अली पर किसी सहाबी को प्राथमिकता दी हो । हजरत अबू बक्र एव हजरत उमर पर अन्य लोगो को दो बार प्राथमिकता दी गयी, एक बार हजरत उसामा[3] बिन जैद को और दूसरी बार अमर आस को । शीओं का मत है कि यह सब घटनाएं इस बात का प्रमाण है कि हजरत अली खिलाफ़त के लिए चुन लिये गये थे ।

उपर्युक्त रवायतो के अतिरिक्त वे अन्य रवायतों का भी उल्लेख करते है, जो पूर्णत: अप्रसिद्ध एव अपरिचित है और उन रवायतो तथा व्याख्याओं मे दूर का भी सबध नही । जो समूह शीओं की उपर्युक्त हदीसो के आधार पर हजरत अली के इमाम होने पर विश्वास रखता है और उनके उपरान्त उनकी सन्तान के इमाम होने पर, उसे "इमामिया" कहते है । वे शेखैन[4] से इस आधार पर अपना कोई सम्बन्ध नही रखते कि उन्होने इन रवायतो के अनुसार न तो हजरत अली से बैअत की और न उनको इमाम तथा

२. क़ुरान शरीफ़ का ९वाँ सूरा ।

३ मुहम्मद साहब ने अपने निधन के पूर्व शाम के विरुद्ध एक सेना तैयार करायी । इस सेना की सरदारी के लिये हजरत अबू बक्र तथा हजरत उमर के अतिरिक्त अन्य मुसलमान सरदारों ने भी इच्छा प्रकट की, किन्तु हजरत मुहम्मद ने उसामह को इस कार्य हेतु चुना ।

४. हजरत अबू बक्र तथा हजरत उमर ।

ख़लीफ़ा नियुक्त किया। वे शेख़ैन की खिलाफ़त एवं इमामत को स्वीकार नही करते। ऐसे कट्टर शीआ जो शेख़ैन में त्रुटियाँ निकालते है, उनका कथन हमारे निकट भी और अन्य शीओ के निकट भी असत्य एवं अविश्वसनीय है।

कुछ शीआ ऐसे है जो यह कहते है कि उपर्युक्त हदीसें हजरत अली को गुणों के अनुसार नियुक्त करती है न कि व्यक्तित्व के अनुसार। अर्थात् उनसे केवल गुणों का पता चलता है जो केवल हजरत अली में पाये जाते है, विशेष व्यक्ति की ओर वे संकेत नही करती। लोगों ने केवल यह भूल की कि वे उन गुणों को उस व्यक्ति से सबंधित न कर सके जिसमें वास्तव में वे वर्त्तमान थे और अन्य व्यक्ति में उन गुणों के अस्तित्व की कल्पना कर ली। ज़ैदिया फ़िर्क़ेवाले इसी मत के अनुयायी है। ये शेख़ैन से अपने सबंध पृथक् नहीं समझते और न उनकी इमामत में दोष निकालते है, किन्तु हजरत अली को शेख़ैन से श्रेष्ठ अवश्य मानते है। उनके मतानुसार क्योंकि श्रेष्ठ के होते हुए भी उससे कम की इमामत स्वीकृत है, अतः हजरत अली की उपस्थिति में वे शेख़ैन की इमामत को ठीक समझते है।

हजरत अली के उपरान्त खलीफ़ाओं का जो क्रम चला उसके विषय में भी शीओं मे मतभेद है। कुछ लोग हजरत फ़ातिमा[1] की सतान में रवायतों के आधार पर खिलाफ़त का क्रम चलाते है। ये इमामिया कहलाते हैं, कारण कि इनके निकट इमाम की पहचान एवं उसकी नियुक्ति धार्मिक विश्वास का एक अंग है और इसे ये मूल सिद्धान्त स्वीकार करते है। कुछ लोग ऐसे है जो हजरत फ़ातिमा की संतान में ही खिलाफ़त का क्रम चलाते है किन्तु रवायतों को इसमे कोई स्थान नहीं देते, अपितु चुनाव का आधार शीओ की सूझ-बूझ पर रखते है। ये शर्त लगाते है कि इमाम विद्वान् हो, ज़ाहिद[2] हो, दानी हो, वीर हो और साथ-साथ अपने सिद्धान्तो का प्रचार भी करे। यह फ़िर्क़ा जैदिया कहलाता है। इस प्रकार ये लोग अपने धर्म का सम्बन्ध जैद[3] बिन अली बिन

१. हजरत मुहम्मद की पुत्री, हजरत अली की पत्नी एवं इमाम हसन, हुसेन की माता।
२. तपस्वी
३. जैद बिन अली जैनुल आबेदीन (इमाम) जैदिया फ़िरक़े के संस्थापक। इन्होंने उमय्या राज्य के विनाश के लिए घोर प्रयत्न किये और ७४० ई० के लगभग कई गुप्त योजनाएँ चलायीं।

हुसेन शहीद की ओर बताते हैं। ये जैद अपने भाई मुहम्मद बाक़िर[1] से इस बात पर वाद-विवाद किया करते थे कि इमाम के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी इमामत की घोषणा करे। इमाम मुहम्मद बाक़िर उत्तर देते कि इस दलील से तो स्वयं हमारे तथा तुम्हारे सम्मानित पिता जैनुल आबेदीन[2] भी इमाम नही रहते, कारण कि न तो उन्होंने अपनी इमामत का प्रचार किया और न प्रचार का विचार भी कभी उनके हृदय में आया। वे उन्हें मोतजेला ने ता वासिल बिन अता[3] का अनुयायी बताते थे। इधर इमामिया ने जब यह देखा कि जैद शेखैन की इमामत को स्वीकार करते है और उनसे पृथक् नही होते, तो वे उनसे पृथक् हो गये और उनकी गणना इमामों में न करते थे। इसी कारण उनको राफ़िज़ा[4] कहा जाता है।

कुछ शीओं का यह मत है कि ख़िलाफ़त का अधिकार हजरत अली, हसन तथा हुसेन से होता हुआ मुहम्मद बिन अल हनफ़िया[5] तक पहुँचा और फिर उनसे उनकी संतान की ओर। यह फिर्का केसानिया कहलाता है। इस प्रकार वे मुहम्मद बिन अल हनफिया के दास केसान[6] से अपना सम्बन्ध जोड़ते है। फिर इन उपर्युक्त फिर्कों में थोड़ा-बहुत मतभेद है, जिसे हम इस वर्णन के अधिक बढ़ जाने के भय से छोड़ देते है।

१. इमाम मुहम्मद बाक़िर, इमाम जैनुल आबेदीन के पुत्र तथा इमामियों के ५वें इमाम थे। इनका निधन ७३१ ई० में तथा जन्म ६७६ ई० में हुआ था।
२. इमाम हुसेन के पुत्र तथा शीओं के चौथे इमाम। कहा जाता है कि इनकी माता शहर बानू ईरान के बादशाह यज्द जिर्द तृतीय की पुत्री थी। उनका जन्म ६५७ ई० तथा मृत्यु ७१३ ई० में हुई।
३. वासिल बिन अता अबू हुज़ैफ़ा अल ग़ज़्ज़ाली, मोतजेला का मुख्य नेता (जन्म मदीना ६९९–७०० ई०, मृत्यु ७४८–४९ ई०)।
४. पृथक् होनेवाले।
५. हजरत अली के पुत्र, जिनकी माता बनू हनीफ़ा के क़बीले की थीं। इमाम हुसेन की हत्या का बदला लेने के लिए इन्होंने मुख़्तार को प्रोत्साहन दिया। इनकी मृत्यु ७००–७०१ ई० मे हुई।
६. अबू अमरा कैसान बजीला-निवासी एवं शीओं का बहुत बड़ा समर्थक था। उसकी मृत्यु सम्भवतः ६८६ ई० मे मजार के युद्ध में हुई।

इन शीओं में एक फिर्का "गुलात"[१] का है जो बुद्धि एव धार्मिक (इस्लाम के) विश्वास के क्षेत्र से बाहर हो गया है और इमामों मे उलूहियत[२] को मानता है। इनमे भी मतभेद है। एक समूह कहता है कि इमाम लोग स्वय तो मनुष्य हैं किन्तु उनमें दैवी गुण भी पाय जाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि ईश्वर इन इमामों के व्यक्तित्व में प्रविष्ट हो गया है। उनका यह धार्मिक विश्वास ईसाइयों के उस धार्मिक विश्वास से मिलता-जुलता है जो वे हज़रत ईसा के विषय मे रखते हैं। हज़रत अली को जब ऐसे मार्गभ्रष्टों का पता चला तो आपने उनको आग मे जलवा दिया। इसी प्रकार मुहम्मद बिन हनफिया को जब यह ज्ञात हुआ कि मुख्तार बिन उबैद[३] इसी प्रकार के "उलूहियत" के विचार रखता है, तो आपने उस पर लानत की और उससे अपना कोई सम्बन्ध न होने की घोषणा की। इसी प्रकार एक रवायत हज़रत जाफरे सादिक[४] के विषय मे भी बतायी जाती है कि आपने जब ऐसे मार्गभ्रष्टों के समाचार सुने तो उन पर लानत की और उनसे कोई मतलब न रखने की घोषणा की।

इनमे एक फिर्के का धार्मिक विश्वास है कि इमाम की निपुणता किसी अन्य व्यक्ति को, जो इमाम नही है, नही प्राप्त होती। उनके मतानुसार जब किसी इमाम की मृत्यु हो जाती है तो उसकी आत्मा किसी दूसरे इमाम मे प्रविष्ट हो जाती है, ताकि उसमे भी वही निपुणता उत्पन्न हो जो पहले इमाम मे थी। यह फ़िर्का मानो आवागमन पर विश्वास रखता है।

गुलात मे से एक फ़िर्क़ा वाकिफ़या के नाम से प्रसिद्ध है। यह इमामत के अधिकार को एक ही व्यक्ति मे सीमित समझता है और उसके अतिरिक्त किसी अन्य को इमाम नही मानता। अब इनमे से भी कुछ लोगों का यह विश्वास है कि इमाम जीवित है

१. अतिशयवादी।
२. दैवी गुणों।
३. मुख़्तार बिन अबी उबैद अल सक़फ़ी, जिसने इमाम हुसेन के हत्यारों से बदला लेने के लिए ६६ हि० (६८५–८६ ई०) मे कूफ़े पर अधिकार जमा लिया। उसकी मृत्यु १४ रमज़ान ६७ हि० (३ अप्रैल ६८७ ई०) को हुई।
४. इमाम जाफ़रे सादिक़, इमाम मुहम्मद बाक़िर के पुत्र, इमाम हुसेन के पौत्र तथा इमामियों के छठे इमाम थे। इनका जन्म लगभग ७०२ ई० में मदीने में हुआ और ७६५ ई० में मृत्यु हुई।

किन्तु दृष्टि से ओझल है, और हजरत खिज्र[1] की कहानी को दलील के रूप में प्रस्तुत करते है। कुछ लोग यही विचार हजरत अली के विषय मे भी रखते है कि वे अब तक जीवित है और बादल मे मौजूद है। गरज आपकी ध्वनि और विद्युत् आपका कोड़ा है। वे मुहम्मद बिन अल हनफिया के विषय मे भी इसी प्रकार के विचार रखते है कि वे हिजाज के भूभाग मे जबले रिजवा मे जीवित है।. . .[2]

इमामिया फिर्के में से जो लोग गुलात है, विशेष रूप से असना अशरी[3], तो वे भी बारहवे इमाम मुहम्मद बिन हसन असकरी के, जिनकी उपाधि महदी है, सम्बन्ध मे यही विचार एव विश्वास रखते है कि वे हिल्ला (इराक) मे अपने घर के तहखाने मे अपनी माता सहित अदृश्य हो गये और संसार के अन्तिम काल मे प्रकट होकर ससार को न्याय एवं इसाफ़ से भर देगे। वे अपने मत की पुष्टि मे तिरमिजी की वह हदीस प्रस्तुत करते है जो इमाम महदी के विषय मे है। अभी तक उनको उन महदी के प्रकट होने का इतजार है, यहाँ तक कि उन्होंने उनका नाम भी मुतजिर रखा है। ये लोग प्रत्येक रात्रि मे एशा[4] की नमाज के उपरान्त घोडा लेकर तहखाने के द्वार पर खड़े हो जाते है और उनका नाम लेकर उन्हे पुकारते है और प्रकट होने के विषय मे आग्रह करते है। जब अधेरा हो जाता है और तारे निकल आते है तो इस विषय को आगामी रात्रि के लिए स्थगित करके घरो को लौट जाते है। अब तक उनका यही दैनिक कार्य-क्रम है।

वाकिफया फिर्के में कुछ ऐसे लोग है जिनका कथन है कि जिन इमामो की मृत्यु हो चुकी है, वे पुन. जीवित होगे। इसके उदाहरण मे वे असहाबे कहफ[5] की कहानी (उस व्यक्ति की कहानी जो एक ग्राम मे पहुँचा तथा बनी इसराईल के उस व्यक्ति की, जिसकी हत्या हो चुकी है, कहानी) प्रस्तुत करते है, जिस पर दैवी आदेश से जिबह किये हुए बैल की हड्डी मारी गयी थी और जिसका उल्लेख कुरान शरीफ़ मे हो चुका है। वे इसी प्रकार की अस्वाभाविक घटनाएँ प्रस्तुत करते है जो चमत्कार के रूप मे किसी समय घटी थी और उन्हे प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करना अनुचित है।......[6]

१. एक पैग़म्बर जिनके विषय में धार्मिक विश्वास है कि वे सर्वदा जीवित रहेंगे।
२. इस स्थान पर कुछ अशआर दिये गये है जिनका अनुवाद नहीं किया गया।
३. हज़रत अली की संतान से १२ इमामों के अनुयायी।
४. रात्रि की अन्तिम अनिवार्य नमाज़।
५. सात सोनेवाले, इनकी कहानी का क़ुरान शरीफ़ में उल्लेख है।
६. कुछ अशआर, जिनका अनुवाद नहीं किया गया।

बड़े-बड़े शीआ लोग स्वयं इन ग़ाली शीओं से सहमत नही अपितु इनके विचारों का खंडन करते हैं। इस प्रकार शीओं ने मानो हमको गाली शीओं के विचारों के खंडन से मुक्त कर दिया और इसका भार स्वय ही अपने कधों पर ले लिया। केसानी, मुहम्मद बिन हनफिया के उपरान्त उनके पुत्र अबू हाशिम की इमामत से सहमत हैं और इसी कारण वे हाशिमिया के नाम से प्रसिद्ध है। अबू हाशिम के उपरान्त इमामत में फिर इनका मतभेद है। कुछ लोगो का कथन है कि इनके उपरान्त इमामत इनके भाई अली को प्राप्त हुई, फिर उनके पुत्र हसन बिन अली को। दूसरे कहते हैं कि अबी हाशिम की जब शरह[1] के भू-भाग मे मृत्यु हो गयी तो उन्होंने मुहम्मद बिन अली बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास के लिए इमामत की वसीयत की, और मुहम्मद ने अपने पुत्र इबराहीम के लिए, जो इमाम के नाम से प्रसिद्ध है, और इबराहीम ने अपने भाई अब्दुल्लाह बिन अल हारिसिया के लिए, जिनकी उपाधि सफ्फ़ाह थी, और उन्होने अपने भाई अबू जाफर अब्दुल्लाह के लिए, जिनकी उपाधि मसूर थी, वसीयत की। फिर इसी प्रकार उनकी सतान मे से एक के बाद दूसरा इमाम होता रहा। यह धार्मिक विश्वास उन हाशिमियो का है जो अब्बासियो के राज्य के समर्थक थे। अबू मुस्लिम, सुलेमान इब्ने कसीर, अबू सलेमा खल्लाल तथा प्रारम्भिक अब्बासी शीओ की भी इन्ही मे गणना होती है। किसी समय वे अपने विचारों की इस प्रकार पुष्टि करते हैं कि इमामत का अधिकार उनको हजरत अब्बास द्वारा पहुचता है, जो मुहम्मद साहब की मृत्यु के समय जीवित थे और चाचा होने के कारण खिलाफ़त के सबसे अधिक पात्र थे।

ज़ैदिया का धार्मिक विश्वास यह है कि इमामत का निर्णय प्रभावशाली व्यक्तियों की सूझ-बूझ पर निर्भर है। नस्स[2] का इससे कोई सबध नही। ये लोग सर्वप्रथम हजरत अली की इमामत को स्वीकार करते है, फिर उनके पुत्र इमाम हसन की, फिर इमाम हसन के भाई हज़रत हुसेन को इमाम मानते है, फिर कहते है कि इमामत उनसे इमाम जैनुल आबेदीन तक पहुँची और उनसे उनके पुत्र जैद बिन अली को, जो ज़ैदिया फ़िर्क़े के सस्थापक थे, पहुँची। उन्होने कूफे मे पहुँचकर इमाम होने का दावा किया किन्तु उन्हे कनासा में शूली दे दी गयी। उनकी मृत्यु के उपरान्त जैदिया ने उनके पुत्र यहया को इमाम स्वीकार कर लिया जो खुरासान चले गये और जूजजान मे उनकी

१. सम्भवतः शाम के बेलक़ा के भू-भाग में।

२. शरा के वे आदेश जो पूर्ण रूप से स्पष्ट हों और उनमें किसी प्रकार का मतभेद न हो।

हत्या कर दी गयी। उन्होने मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन हसन बिन हसन मुहम्मद साहब के नाती को, जो नफ़से जकिया[1] के नाम से प्रसिद्ध है, इमाम नियुक्त किया। वे हिजाज़ पहुँच गये और महदी की उपाधि धारण कर ली। फिर उन्हें मंसूर की सेना ने बन्दी बना लिया और उनकी हत्या कर दी गयी। वे अपने भाई इबराहीम को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये। वे बसरा मे प्रकट हुए और ईसा बिन जैद बिन अली ने उनकी सहायता की। मंसूर ने उनके मुकाबले के लिए भी सेनाएँ भेजी। फलत: इबराहीम तथा ईसा दोनों की हत्या कर दी गयी। हजरत जाफर सादिक़ ने इन घटनाओं की पूर्व से ही भविष्यवाणी कर दी थी, जिसे उनका चमत्कार समझा जाता है।

कुछ (जैदियो) का मत है कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह नफ़से जकिया के बाद इमामत मुहम्मद बिन अल-कासिम बिन अली बिन उमर को प्राप्त हुई। ये उमर, जैद बिन अली के भाई थे। मुहम्मद बिन अल-क़ासिम तालिक़ान पहुँच गये, किन्तु बन्दी बनाकर उन्हे मोतसिम के पास पहुँचा दिया गया। मोतसिम ने उन्हें बन्दी बना दिया और बन्दीगृह में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

कुछ जैदियों का यह मत है कि यहया बिन जैद के उपरान्त इमामत उनके भाई ईसा को प्राप्त हुई जिन्होंने इबराहीम बिन अब्दुल्लाह के साथ होकर मंसूर से युद्ध किया था। इन शीओ के मतानुसार, इमामत उन्ही के वंश में चलती रही और जगियो[2] ने भी, जैसा कि हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे, उनकी इमामत का प्रचार किया।

कुछ जैदियों का मत है कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह के बाद इमाम इदरीस[3] हुए जो मगरिब की ओर चल दिये और वही उनकी मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त उनके पुत्र इदरीस असगर उनके उत्तराधिकारी हुए। उन्होने फ़ास[4] नगर बसाया। फिर उन्हीं की संतान मग़रिब मे सिहासनारूढ़ हुई। यहाँ तक कि एक दिन उनका भी विनाश हो गया। इसका उल्लेख हम उनके इतिहास मे करेंगे। इसके उपरान्त जैदिया फिर्के वाले छिन्न-भिन्न हो गये।

१. पवित्र आत्मा।
२. हबशियों।
३. इदरीस प्रथम बिन अब्दुल्लाह, मग़रिब के हजरत अली के समर्थकों के राज्य के संस्थापक। इनकी मृत्यु जुलाई ७९३ ई० में हुई।
४. फ़ेज।

इसके उपरान्त जैदियो मे से हसन बिन जैद बिन मुहम्मद बिन इस्माईल बिन हसन बिन जैद बिन हसन (मुहम्मद साहब के नाती) तथा उनके भाई मुहम्मद बिन जैद दाई[1] बनकर उठे और तबरिस्तान के स्वामी बन गये। फिर दैलम मे नासिर तरूश ने इस दावत को जिदा किया और समस्त दैलम उनका अनुयायी हो गया। नासिर का नाम वास्तव मे हसन बिन अली बिन हसन बिन अली बिन उमर था और वे जैद बिन अली के भाई थे। नासिर के उपरान्त तबरिस्तान मे उनकी सतान मे राज्य चलता रहा और दैलम को उन्ही के कारण राज्य प्राप्त हुआ। तदुपरान्त उन्होने बगदाद के खलीफाओ पर भी, जैसा कि हम उनके इतिहास मे उल्लेख करेगे, प्रभुत्व प्राप्त कर लिया।

अब इमामिया के विषय मे सुनिए। वे इमामत का क्रम इस प्रकार मानते हैं— हजरत अली के उपरान्त उनकी वसीअत द्वारा उनके पुत्र हसन, फिर उनके भाई हुसेन, फिर उनके पुत्र जैनुल आबेदीन, फिर उनके पुत्र मुहम्मद बाकिर, फिर उनके पुत्र जाफरे सादिक। यहाँ से मतभेद के कारण वे दो समूहो मे विभाजित हो गये है। एक फिर्का हजरत जाफर के उपरान्त उनके पुत्र इस्माईल को इमाम मानता है। इसी फिर्के को इस्माईलिया कहते है। दूसरा फिर्का हजरत जाफर के पुत्र मूसा काजिम को इमाम स्वीकार करता है। यह फिर्क़ा असना अशरिया[2] के नाम से प्रसिद्ध है, कारण कि ये लोग इमामत के क्रम को १२ इमामो पर समाप्त कर देते है और कहते है कि १२वे इमाम ससार के अन्त तक लोगों की दृष्टि से ओझल रहेगे।

इस्माईलिया का कथन है कि इस्माईल[3] अपने पिता जाफर की प्रामाणिक "नस्स" द्वारा इमाम नियुक्त हुए थे। इस्माईल की मृत्यु यद्यपि अपने पिता के पूर्व हो चुकी थी, किन्तु इन लोगो का मत है कि "नस्स" का उद्देश्य यह था कि इमामत का क्रम उन्ही की सतान मे चले, जैसा कि मूसा नबी एव हारून नबी की कहानियों द्वारा ज्ञात होता है। कहा जाता है कि इस्माईल के उपरान्त उनके पुत्र मुहम्मद अल मकतूम[4] मे इमामत पहुँची, जो गुप्त रहनेवाले इमामो मे सबसे पहले इमाम थे। उनका मत है कि यदि

१. बुलानेवाला, विशेष रूप से इस्लाम के विभिन्न फ़िर्क़ों का प्रचारक।
२. १२ इमामों का अनुयायी।
३. इमाम जाफ़रे सादिक़ के ज्येष्ठ पुत्र, जिनकी मृत्यु उनके पिता की मृत्यु के ५ वर्ष पूर्व मदीने में ७६०–६१ ई० में हुई।
४. छिपे हुए।

इमाम शक्तिशाली न हो तो वह गुप्त ही रहता है और उसके अनुयायी उसका प्रचार करते है और अन्य लोगो को उसका अनुयायी बनाते है । इमाम जब शक्तिशाशी होता है तो खुले आम अपना प्रचार करता है । इस्माईलिया के अनुसार मुहम्मद अल मकतूम के पश्चात् उनके पुत्र जाफर अल मुसद्दिक इमाम हुए । उनके बाद उनके पुत्र मुहम्मद अल हबीब और वे गुप्त इमामो मे अन्तिम इमाम है । उनके उपरान्त उनके पुत्र उबैदुल्लाह अल-महदी इमाम हुए । अबू अब्दुल्लाह शीई ने कुतामा मे खुल्लमखुल्ला प्रचार किया और लोगो ने उसका साथ देना प्रारम्भ कर दिया और उसके प्रचार का समर्थन किया । वे महदी को सिजिलमासह की कैद से निकाल लाये और कुछ ही दिनो मे कैरवान एव मगरिब का राज्य भी महदी को प्राप्त हो गया । फिर महदी की सतान मिस्र पर शासन करती रही ।

इस्माईल की इमामत को स्वीकार करने के कारण उन्हें इस्माईलिया कहा जाता है । क्योकि वे लोग इमामे बातिन[1] के सिद्धान्त को भी मानते है, अत उन्हे बातिनिया भी कहते है । उन्हे मलाहेदा की उपाधि इस कारण दी गयी कि उनके धार्मिक विश्वास एव मत मलाहेदा[2] तथा जिन्दीको से मिलते है । इनके विश्वास कुछ प्राचीन है और कुछ नवीन । पाँचवी शताब्दी हि०[3] के अन्त मे हसन बिन मुहम्मद अस् सब्बाह ने इस धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया और शाम तथा इराक के कुछ किलो पर भी अधिकार जमा लिया और फिर उसका प्रचार इसी प्रकार चलता रहा, यहाँ तक कि मिस्र मे तुर्को ने और इराक मे तातारियो ने उनका अन्त कर दिया । इस सब्बाह के प्रचार का सविस्तर उल्लेख शहरस्तानी की "मिलल वन् नहल" मे दिया हुआ है ।

इनमें से असना अशरी फिर्के को बाद के लोग इमामिया के नाम से पुकारते है । उनका कथन है कि इस्माईल के अपने पिता जाफरे सादिक के जीवनकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त हो जाने के कारण उनके भाई मूसा काजिम अपने पिता की प्रामाणिक "नस्स" के अनुसार इमाम नियुक्त हुए । फिर उनके पुत्र अली रिजा इमाम माने गये, जिनको मामून ने अपना उत्तराधिकारी बनाया था, किन्तु इनकी मामून के राज्यकाल ही मे मृत्यु हो गयी, अत इन्हे राज्य करने का अवसर न मिल सका । फिर मुहम्मद तकी

१. गुप्त ।
२. इस्लाम के विरोधी, अधर्मी ।
३. ११वीं शताब्दी ईसवी ।

उनके पुत्र इमाम स्वीकार किये गये। उनके बाद उनके पुत्र अली हादी, फिर उनके पुत्र मुहम्मद हसन असकरी, फिर उनके पुत्र मुहम्मद महदी मुतजिर इमाम नियुक्त हुए।

शीओं के यही धार्मिक विश्वास अधिक प्रसिद्ध है, यद्यपि इनमें भी कहीं कहीं अधिक मतभेद है, किन्तु उनके प्रसिद्ध न होने के कारण उनका उल्लेख नही किया गया। यदि किसी को इससे भी अधिक इनका सविस्तर उल्लेख आवश्यक हो तो वह इब्ने हज़म की "किताबुल मिलल वन् नहल" एवं शहरस्तानी तथा अन्य लोगों के ग्रन्थों का अध्ययन करे। इनमें उसे सतोषजनक हाल मिलेगा।

"ईश्वर जिसे मार्गभ्रष्ट करना चाहता है उसे मार्गभ्रष्ट करता है और जिसका पथ-प्रदर्शन करना चाहता है, उसका पथ-प्रदर्शन करता है।"[१]

(२८) ख़िलाफ़त ने किस प्रकार सल्तनत का रूप धारण किया

समझ लेना चाहिए कि राज्य एव सल्तनत "असबियत" का स्वाभाविक परिणाम है, जिसमे किसी की इच्छा का कोई स्थान नही। "असबियत" के अस्तित्व से ही उसकी आवश्यकता का प्रमाण मिलता है। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि शरा एवं धर्म संबंधी आंदोलन अथवा अन्य साधारण आन्दोलन "असबियत" के बिना नही चल पाते, कारण कि समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति "असबियत" के बिना नही होती। इस प्रकार "असबियत" कौम के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसी से ईश्वर के आदेशो का संसार मे पालन होता है। इसी तथ्य के आधार पर "सहीह" नामक हदीस में यह चर्चा की गयी है—"ईश्वर ने कोई ऐसा नबी नही भेजा जिसे उसकी क़ौम वालो का समर्थन न प्राप्त हो।" एक ओर तो यह बात, दूसरी ओर शरा में "असबियत" की निंदा की गयी है और उस पर ध्यान न देने की सलाह दी गयी है। उदाहरणार्थ कहा गया है कि "अल्लाह ताला ने तुम्हारी जाहिलियत की उद्दंडता एवं कुल के अभिमान को मिटा दिया। तुम सब आदम की सतान हो और आदम मिट्टी से पैदा हुए है।[१]" इसी प्रकार अल्लाह ने कहा है कि "तुममे अल्लाह की दृष्टि में विश्वस्त वही है जो अधिक धर्मनिष्ठ हो।[१]" साथ ही साथ सल्तनत एव सल्तनत वालो की निन्दा भी की गयी है और उनके द्वारा जो अनुचित परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरूप लोग अधिकाश अपव्यय एव दुराचार में पड़ जाते है, उसकी बुराई भी की गयी है। धार्मिक प्रेम एवं स्नेह स्थापित रखने पर जोर दिया गया है

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

और विरोध एवं शत्रुता को बड़ी कठोरता से रोका गया है। फिर यह भी स्पष्ट रहना चाहिए कि यह लोक-परलोक तक पहुँचने की सवारी है। जिसकी सवारी खो जाय वह अपने निर्धारित लक्ष्य तक किस प्रकार पहुँच सकता है। अब जिन सांसारिक बातों एव कार्यों की निदा की गयी है अथवा उनके आचरण का शरीअत द्वारा निषेध हुआ है, तो इसका यह अर्थ नही कि उन बातों एव कार्यो को पूर्णतः त्याग दिया जाय और उनका आचरण ही न किया जाय, जिन शारीरिक अगों द्वारा ये कार्य सम्पन्न होते हैं उनको बेकार डाल दिया जाय, अपितु इसका उद्देश्य यह है कि सासारिक कार्यो का मुख यथा-शक्ति एवं यथासम्भव उचित एवं ठीक उद्देश्यों की ओर फेर दिया जाय, ताकि समस्त कार्य भली-भाँति सम्पन्न हो सके और एक ही उद्देश्य के अधीन वे ससार मे प्रकट हों, जैसा कि मुहम्मद साहब ने कहा है—"जिसने अल्लाह तथा उसके रसूल के लिए हिजरत की उसकी हिजरत नि.सन्देह अल्लाह एव उसके रसूल के लिए है और जिसने ससार की प्राप्ति अथवा किसी स्त्री के लिए हिजरत की, उसकी हिजरत इन्ही वस्तुओ के लिए है न कि अल्लाह एव रसूल के लिए।" उदाहरणार्थ यदि शरा मे क्रोध की निदा की गयी है तो इसका उद्देश्य यह नही कि क्रोध की शक्ति का ही अन्त कर दिया जाय, कारण कि यदि मनुष्य के क्रोध की शक्ति पूर्णत. समाप्त हो जाय तो फिर वह सत्य की सहायता कैसे कर सकेगा, जिहाद किस प्रकार करेगा, अल्लाह के कलमे[1] का प्रचार किस प्रकार होगा। केवल उस क्रोध की निदा की गयी है जो शैतानी भावनाओं के अधीन हो और जिससे शैतानी उद्देश्यो की पूर्ति हो। अतः क्रोध यदि शैतानी मार्ग मे हो तो बुरा है और यदि अल्लाह के लिए है तथा सत्य के कारण एव सत्य की सहायतार्थ, तो उचित एव प्रशंसनीय है। मुहम्मद साहब के स्वभाव में भी क्रोध पाया जाता था।

यही बात वासनाओ के विषय में कही जा सकती है। यदि शरीअत मे वासनाओ की निंदा की गयी है तो इसका यह उद्देश्य कदापि नही कि वासनाओ का समूल उच्छेद कर दिया जाय, कारण कि यदि यह शक्ति पूर्णतः समाप्त हो जाय तो मनुष्य के अधि-कारों की रक्षा में दोष आ जायगा, अपितु इसकी निदा का उद्देश्य यह है कि वासनाओ से शिष्टजन-स्वीकृत एवं प्रशंसनीय मार्गो मे काम लिया जाय। ताकि मनुष्य अपने आपको ऐसा आज्ञाकारी दास सिद्ध करे जिसके समस्त कार्य एव कर्त्तव्य दैवी आदेशों के क्षेत्र में हों।

इसी प्रकार यदि "असबियत" की निदा इन शब्दों में की गयी है कि "तुम्हारे

१. इस्लामी कलमा—"ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह।"

संबधी, निकटवर्ती एव सतान कदापि तुम्हें कोई लाभ न पहुँचायेंगी", तो इससे उस "असबियत" की निंदा की गयी है जो असत्य एव अस्वीकृत मार्गो तथा दुराचार में प्रयोग की जाय। जैसा कि जाहिलियत के युग मे प्रथा थी कि "असबियत" के अभिमान मे वे एक-दूसरे पर अनुचित गर्व करते थे अथवा किसी पर व्यर्थ मे अपना हक जताते थे, कारण कि यह व्यर्थ बात है जिससे परलोक मे कोई लाभ सम्भव नही। जो "असबियत" सत्य के मार्ग मे काम आये और उसके बल पर दैवी आदेश ससार में प्रचलित हो तो वह नि सन्देह प्रशसनीय है। यदि यही "असबियत" मिट जाय तो शरीअते भी मिट जायें, कारण कि शरीअतों का अस्तित्व एव उनकी वास्तविकता "असबियत" से ही पूर्ण होती है।

यही दशा सल्तनत की भी है कि शारे[1] ने जहाँ-जहाँ इसकी निदा की है तो वह इस कारण कदापि नही कि सल्तनत के जोर से ससार मे सत्य का प्रचार न हो। सबको दीन एव धर्म की ओर आकृष्ट किया जाय और अन्य धार्मिक बातो का भी ध्यान रखा जाय, कारण कि इस दृष्टि से सल्तनत पूर्ण रूप से आशीर्वाद एव लाभ का भडार है, ईश्वर की छाया है, वह बुरी किस कारण हो सकती है। हाँ यदि वह बुरी है तो इसी कारण कि सल्तनत की आड मे असत्य का जोर बढे, मनुष्यो को अपने व्यक्तिगत उद्देश्यो एव अभिलाषाओं के आधार पर तग किया जाय। इसके विपरीत यदि शासनप्रबध का यह उद्देश्य हो कि ससार मे सच्ची "खिलाफते इलाही" की व्यवस्था की जाय, लोगो को ईश्वर की इबादत तथा अल्लाह के लिए जिहाद के वास्ते तैयार किया जाय, तो इस प्रकार के राज्य की किसी तरह निन्दा नही की जा सकती। हजरत सुलेमान ने राज्य की जो इच्छा की और ईश्वर से यह प्रार्थना की कि "हे ईश्वर! मुझे ऐसा राज्य दे जो मेरे बाद किसी को न प्राप्त हो सके।"[2] तो यही पवित्र उद्देश्य उनके समक्ष था और वे असत्य एव झूठ से मुक्त थे।

इसी प्रसग मे यह ऐतिहासिक घटना भी ध्यान देने योग्य है कि हजरत उमर जब शाम के दौरे पर पहुँचे और हजरत मुआविया उनके सम्मुख शाहाना ऐश्वर्य एवं वैभव तथा वस्त्र धारण करके उपस्थित हुए, तो हजरत उमर को हजरत मुआविया की यह सजधज अच्छी न लगी और कहा—"मुआविया! क्या यह किसरा की प्रथा है?"

१. मुहम्मद साहब से तात्पर्य है।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

उन्होंने उत्तर दिया कि "अमीरुल मोमिनीन ! मै ऐसे सीमान्त पर नियुक्त हूँ जहाँ शत्रु मेरे अत्यधिक निकट है। युद्ध जिहाद, तथा ऐश्वर्य एव वैभव द्वारा उन्हे आतकित करने की आवश्यकता है।" यह उत्तर सुनकर हजरत उमर मौन हो गये। क्योकि मुआविया ने अपने कार्य को सत्य एव धर्म के उद्देश्यो पर आधारित किया, अत हजरत उमर ने उनकी बात का विरोध नही किया। अब यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सल्तनत यदि पूर्णत त्याग देने योग्य एव घृणित होती तो हजरत उमर मुआविया के इस उत्तर को स्वीकार न करते जो उन्होने अपनी शहशाहियत के गौरव के स्पष्टीकरण मे प्रस्तुत किया, अपितु उसको त्याग देने का आदेश दे देते। उधर हजरत उमर ने जो यह कहा कि "मुआविया ! क्या यह किसरा की प्रथा है ?" इससे फारस वालो की झूठ की पूजा, अत्याचार, निष्ठुरता, विद्रोह, मार्ग-भ्रष्ट होने, ईश्वर की उपेक्षा की बुरी आदत की ओर सकेत था, जिन पर वे अपने राज्यकाल मे आचरण करते थे। इसी बात का उत्तर मुआविया ने दिया कि "इस जाहिरी ऐश्वर्य तथा वैभव से मेरा उद्देश्य फारस वालो के समान झूठ की पूजा एव भोग-विलास नही, अपितु धार्मिक उद्देश्य है और उसी पर इस आचरण का आधार है।" यह उत्तर सुनकर हजरत उमर चुप हो गये।

सम्मानित सहाबा का भी यही हाल था कि वे राज्य एवं शासन से बचा करते थे और उसके दुष्परिणामो को सामने रखकर उनसे दूर रहने का प्रयत्न करते रहते थे कि कही झूठ की पूजा एव भोग-विलास का अपराध उन पर न लग जाय। इस प्रकार जब मुहम्मद साहब की मृत्यु का समय निकट आया तो आपने नमाज की इमामत के लिए हजरत अबू बक्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, कारण कि धार्मिक बातों मे वही सबसे अधिक अग्रणी थे। फिर इस घटना को दृष्टि मे रखकर लोगो ने आपको खलीफा चुन लिया, किन्तु खिलाफत का उत्तरदायित्व केवल यही तक सीमित था कि लोगों को शरई आदेशो का पाबद किया जाय। जिस प्रकार का राज्य उस युग के असत्यवादियों में प्रचलित था, उसकी किसी को कल्पना तक न थी। उन राज्यो से झूठों की उन्नति के भय से हजरत अबू बक्र ने खिलाफत का उत्तरदायित्व सँभाला और मुहम्मद साहब के आदेशो का भली-भाँति पालन किया। मुर्तिदों[1] से जिहाद किया, यहाँ तक कि समस्त अरब इस्लामी सूत्र में बँध गया।

तदुपरान्त आपने खिलाफत का भार हजरत उमर के कधो पर रखा और हजरत

१. उन लोगों से, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने के उपरान्त उसे त्याग दिया था।

उमर भी आपके ही पदचिह्नों पर चले। संसार की क़ौमों से युद्ध करके आपने उन्हें पराजित किया। फिर अरब ने आपके नेतृत्व मे अन्य देशवालों की धन-सम्पत्ति छीन ली। फिर खिलाफ़त का उत्तरदायित्व हजरत उमर से हजरत उस्मान को प्राप्त हुआ और आपसे हजरत अली को। ये सब सम्मानित खलीफा लोग प्रचलित सल्तनत से दूर का भी सम्बन्ध न रखते थे। सल्तनत से इतनी दूर रहने का कारण उनकी धर्मनिष्ठा थी जो सरल जीवन का पाठ पढ़ाती थी। दूसरा कारण उनका अरबी बदवीपन, जिसके कारण वे भोग-विलास से दूर रहे। अरब वाले उस समय सासारिक बातो एवं भोग-विलास से कोई संबंध न रखते थे। उनका धर्म भी उन्हें इसकी अनुमति न देता था, कारण कि धर्म उनको सांसारिक आनन्दों एवं भोग-विलास से दूर रखता था, उनकी "बदवियत" एवं उनकी वासभूमि भी इसके लिए अनुपयुक्त थी। वे प्रारम्भ से ही एक सरल जीवन के आदी हो गये थे और उसी को वे पहचानते थे। भोग-विलास से उनका क्या सम्बन्ध? इसी कारण कहा जाता है कि कोई भी कौम मुजर के समान कठिन और गरीबी का जीवन व्यतीत करने की आदी न थी, कारण कि वे हिजाज के बिना चारे और जल वाले भू-भाग में पैदा हुए थे और हरे-भरे स्थानों की समृद्धि एव भोग-विलास से अनभिज्ञ थे। ऐसे स्थान उनसे अत्यधिक दूरी पर स्थित थे। उन पर रबीआ एवं यमन के कबीले अधिकार जमाये थे। इसी लिए वे उनकी नकल नही कर सकते थे। वे गोबरैला तथा बिच्छू खाया करते थे। ऊँट का ऊन रक्त में पकाकर खाते और इस पर गर्व करते थे। कुरैश की खाने-पीने एवं रहन-सहन की भी दशा यही थी। यहाँ तक कि जब अल्लाह ताला ने उनको हजरत मुहम्मद के पवित्र व्यक्तित्व द्वारा सगठित किया और क़ुरैश मे ही आपको भेजकर उन्हे सम्मानित किया तो पूरे अरब की "असबियत" धर्म की सेवा के लिए सिमट आयी और फिर वे एक-जान एव एक-दिल होकर फ़ारस एव रूम की क़ौमों पर टूट पड़े और अल्लाह ताला ने अपने सच्चे वचन से उनके भाग्य में जो राज्य एवं सांसारिक धन-सम्पत्ति लिख दी थी, वह उन्हे प्राप्त हो गयी। फिर तो समृद्धि ने अरबो का घर देख लिया और धन-सम्पत्ति इस सीमा तक आने लगी कि किन्ही-किन्ही युद्धों मे एक-एक अश्वारोही के हिस्से में ३०—३० हज़ार अशरफ़ियाँ अथवा इसके लगभग आ जाती थी। सक्षेप मे उन्होंने इतनी धन-सम्पत्ति एकत्र की जिसकी कोई सीमा नही, किन्तु शिक्षा ग्रहण करने योग्य तो यह बात है कि इस पर भी उन्होंने अपना सरल एवं नीरस जीवन नही त्यागा। इसी लिए कहा जाता है कि हजरत उमर अपने वस्त्रों में चमड़े का पेवंद लगा लेते थे और हजरत अली कहा करते—"हे सोने-चाँदी! मेरे अतिरिक्त किसी अन्य को

जाकर बहकाओ ।" अबू मूसा[1] मुर्ग का मांस नही खाया करते थे, कारण कि अरब में मुर्गो के कम मिलने के कारण वे उसके आदी न थे। आटा चालने के लिए चलनी की तो प्रथा ही न थी और वे बिना छना आटा खाया करते थे।

उनका जीवन जहाँ एक ओर इतना सरल था वहाँ दूसरी ओर उनकी आय एव धन-सपत्ति इतनी अधिक थी कि वे ससार के अन्य धनी लोगो से मुकाबला करते थे। इस प्रकार मसऊदी हजरत उसमान के राज्यकाल के विषय में लिखता है कि उस समय सहाबा बड़ी-बडी जागीरों एव धन-सम्पत्ति के स्वामी बन गये थे और हजरत उस्मान के शहीद हो जाने के पश्चात् उनके खजाने में १½ लाख दीनार तथा १० लाख दिरहम वर्त्तमान थे। कुरा एव हुनैन की घाटियों में जो आपकी जागीर थी, वह भी २ लाख दीनार से कम न थी। इनके अतिरिक्त आपने अत्यधिक ऊँट-घोडे छोडे थे। जुबैर[2] की मृत्यु के उपरान्त उनके तरके का मूल्य ५० हजार दीनार था। इसके अतिरिक्त १००० घोडे तथा १००० दासियाँ और भी थी। तलहा के समय इराक की दैनिक आय १००० दीनार थी और अश् शहरह के भू-भाग की आय इससे भी अधिक बतायी गयी है। अब्दु-र्रहमान बिन औफ के अस्तबल मे १००० घोडे, १००० ऊँट तथा १०,००० भेडे मौजूद थी और मृत्यु के उपरान्त उनकी छोड़ी हुई सम्पत्ति ८४ हजार दीनार मूल्य की ज्ञात हुई। जैद बिन साबित ने १ लाख दीनार की जागीर तथा बहुत कुछ नक़द छोड़ा। चाँदी-सोने की ईंटे इसके अतिरिक्त थी। जुबेर ने बसरा, मिस्र, कूफा तथा इस्कन्द-रिया मे बडे-बड़े भवनो का निर्माण कराया। इसी प्रकार तलहा ने भी कूफ़े में अपने लिए भवन बनवाये और मदीने मे चूने एव ईंटो से अपने लिए एक नया घर बनवाया। साद बिन अबी वक़्कास ने (मदीने के समीप) मे अपने लिए एक भव्य भवन का अकीक निर्माण कराया। इसका प्रांगण बड़ा लम्बा-चौड़ा और उसकी ऊपरी मंजिल

१. अबू मूसा अशअरी, इस्लाम के प्रारम्भिक काल के बड़े प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हुए हैं। जुलाई ६५७ ई० में सिफ़्फ़ीन का युद्ध रुक जाने के बाद उन्हें हजरत अली एवं मुआविया का निर्णय कराने के लिए पंच नियुक्त किया गया था। उनकी मृत्यु कूफ़े में ४२ हि० (६६३–६२ ई०) अथवा ५२ हि० (६७२ ई०) में हुई।

२. जुबैर बिन अल अव्वास उन लोगों में थे जो मुहम्मद साहब के इस्लाम के प्रचार के प्रारम्भ होते ही मुसलमान हो गये थे। उनकी मृत्यु जमल के युद्ध (दिसम्बर, ६५६ ई०) में हुई।

में झरोखे रखवाये। मिकदाद[1] ने मदीने मे अपने लिए भवन का निर्माण कराया, जिसके भीतर और बाहर चूने का पलस्तर भी था। याला बिन मुनयह ने ५० हजार दीनार नकद तथा जागीर छोड़ी। उसकी धन-सम्पत्ति का मूल्य ३ लाख लगाया गया।

इन समस्त तथ्यों को सामने रखकर इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि मुसलमानो की धन-सम्पत्ति उस समय किस सीमा तक पहुँच चुकी थी, किन्तु यह भी स्मरण रहे कि यह सम्पत्ति दीन (इस्लाम) खोकर नही प्राप्त की गयी थी और न दीन के आदेशो के विरुद्ध। यह सब कुछ उन्हे युद्ध की लूट मे प्राप्त हुआ था। उन्होने इसमे कोई अपव्यय नही किया, अपितु संयम को सर्वदा ध्यान मे रखा, अतः यह अपार धन-सम्पत्ति सम्मानित सहाबा के उत्कृष्ट व्यक्तित्व में कोई दोष उत्पन्न न कर सकी। अब सांसारिक धन-सम्पत्ति की बहुतायत की जो निंदा की जाती है इसका कारण यह है कि उसका अपव्यय किया जाता है और उसके कारण लोगो में असयम का सूत्रपात होता है। किंतु यदि धन-सम्पत्ति की अधिकता के बावजूद सयम न त्यागा जाय और व्यय उचित रूप से धर्म के मार्ग में ही हो, तो धन की अधिकता धर्म के मार्ग पर चलने में सहायता देती है और परलोक के लाभ का साधन बनती है। अत. जब अरब की "बदवियत" एवं दरिद्रता अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो गयी और "असबियत" के कारण उन्हें राज्य प्राप्त हो गया एव ऐश्वर्य तथा गौरव हासिल हुआ, तो सल्तनत के समान, समृद्धि एव अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त कर लेने के कारण उन्होने दुराचार की ओर कदम नही बढ़ाया और सत्य एव न्याय के मार्ग को नही त्यागा। इस प्रकार जब हजरत अली एव मुआविया मे "असबियत" के आधार पर विरोध की अग्नि भड़क उठी तो उन्होने अपने युद्धो[3] मे कभी भी सासारिक लोभ, झूठ एव द्वेष को, जैसा कि कुछ लोगों को भ्रम हो जाता है, अपने सामने न रखा। वास्तव मे यह एक "इजतेहादी विरोध"[4] था और प्रत्येक अपने इजतेहाद के प्रकाश मे दूसरे को गलती पर बताता था, इसी कारण दोनो

१. मिक़दाद बिन् अल-असवद की मृत्यु ३३ हि० (६५३–५४ ई०) मे हुई।
२. मुनयह याला की माता अथवा दासी थी। याला उमय्या का पुत्र था।
३. सिफ़्फ़ीन का युद्ध के बाद भी हजरत अली तथा मुआविया का संघर्ष, हजरत अली के ख़िलाफ़त के काल के अन्त तक चलता रहा।
४. प्रस्तुत परिस्थिति को अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार समझकर शरा की पृष्ठभूमि में निर्णय।

पक्ष आपस मे टकरा गये। यह बात स्वीकार की जा सकती है कि हजरत अली सत्य के मार्ग पर थे, किन्तु मुआविया भी किसी झूठे उद्देश्य से उनके मुक़ाबले में नही आये। उनकी दृष्टि के समक्ष भी सत्य की खोज थी यद्यपि उन्होंने सत्य की प्राप्ति मे भूल की। इसी प्रकार सभी मुसलमान अपने-अपने दृष्टिकोण से सत्य पर आरूढ थे। किसी मे भी असत्य की जिद न थी।

जब इस अशान्ति के समाप्त होने के उपरान्त गौरव एव श्रेष्ठता सुल्तान के अकेले व्यक्तित्व मे केन्द्रित हो गयी और सियाह-सफेद का अधिकार एक व्यक्ति के हाथ में चला गया तो मुआविया अपने एव अपनी कौम के पद-गौरव एव सम्मान को न त्याग सके। यह एक स्वाभाविक बात थी, जिसका कारण "असबियत" थी। उधर बनी उमय्या तथा उनके सहायकों ने,जो सत्य के पालन के कारण मुआविया का साथ न दे रहे थे,इस बात को समझ लिया तो उन्होंने मुआविया की सहायता मे कोई कसर उठा न रखी और जान तक की बाजी लगा दी। यदि मुआविया अपने आचरण को व दलते और सल्तनत की आवश्यकताओ की उपेक्षा करके लोगो का विरोध करते तो जो सगठन उन्होंने पैदा किया था,वह समाप्त हो जाता। हालाँ कि सल्तनत की आवश्यकताएँ एवं सगठन तथा मेल उन घटनाओ की अपेक्षा, जो पेश आयी, कही अधिक महत्त्वपूर्ण थे, उनके कारण किसी बडे विरोध का भय न रहा। इस प्रकार उमर इब्न अब्दुल अजीज़,[1] कासिम बिन मुहम्मद बिन अबू बक्र[2] को देखकर कहा करते थे कि यदि मेरा बस चलता तो मै इनको खिलाफत देता। यदि वे कासिम को उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते तो कर भी सकते थे, किन्तु जो बनी उमय्या अधिकारसम्पन्न हो गये थे, उनसे वे डरते थे कि बनी उमय्या के हाथ से राज्य निकल जाने पर कही उनमे विरोध एव मतभेद न हो जाय। ये सब सल्तनत के खेल है जिनका आधार "असबियत" है।

इस पूरे वर्णन का निष्कर्ष यह निकला कि जब सल्तनत प्राप्त होती है और एक ही व्यक्ति राज्य के पूरे सगठन का अकेला स्वामी एव सियाह-सफेद का मालिक हो जाता है और सत्य एव सिद्धान्त को अपनी सल्तनत मे से नही त्यागता, तो ऐसी सल्तनत की कोई भी निदा नही करता। इस प्रकार हजरत सुलेमान एव उनके पिता हजरत दाऊद बनी इसराईल के स्वतत्र शासक थे, हालाँ कि दोनो ही ईश्वर के सम्मानित नबी एव सत्य तथा

१. उमय्या वंश का ९वाँ ख़लीफ़ा, जो ७१७ ई० से ७२० ई० तक ख़लीफ़ा रहा। वह अपने पवित्र जीवन के लिए बड़ा प्रसिद्ध था।

२, ख़लीफ़ा अबू बक्र का पोता, जिसकी मृत्यु ७२० तथा ७३० ई० के मध्य में हुई।

सिद्धान्त के सच्चे अनुयायी थे। इसी प्रकार मुआविया ने यजीद को अपना उत्तराधिकारी बनाया। यदि ऐसा न करते तो अशांति उत्पन्न हो जाती, कारण कि बनी उमय्या अपने वंश से सल्तनत का किसी अन्य वश मे जाना किसी मूल्य पर सहन न कर सकते थे। यदि मुआविया किसी अन्य को अपना उत्तराधिकारी बनाते तो बनी उमय्या स्वय उन पर टूट पड़ते, चाहे उनके साथ इसके पूर्व उनके कितने ही अच्छे सम्बन्ध क्यो न थे। उनके गुणों में किसी को सन्देह न था। इसके विरुद्ध मुआविया के विषय मे कुछ सोचना इनसाफ का खून करना है, कारण कि वे यजीद के व्यभिचार एव दुराचार को जानते हुए उसको अपना उत्तराधिकारी कभी न नियुक्त करते।

इसी प्रकार मरवान बिन अल हकम[१] तथा उसके पुत्र यद्यपि बादशाह थे, किन्तु बादशाहत से उनका उद्देश्य झूठ की पूजा, विद्रोह एव उपद्रव को उन्नति देना कदापि न था, अपितु वे यही प्रयत्न करते रहे कि राज्य मे सत्य एव न्याय का प्रचार हो, सदाचरण एव परोपकार की उन्नति हो। किन्तु विशेष परिस्थितियो मे उनके द्वारा ऐसे कार्य सम्पन्न हो गये जो इसके विरुद्ध दृष्टिगत होते है, किन्तु उन्हें इसका भय था कि कही ऐसा न करने से क़ौम का संगठन भंग न हो जाय। संगठन एव मेल उनके निकट समस्त बातों पर सर्वोपरि था। हमने जो इस ऐतिहासिक तथ्य की चर्चा की उसका प्रमाण उनके द्वारा सुन्नत एवं दीन के पालन के उदाहरणो से मिल जायगा, जिनका विवरण बुजुर्गों के प्रामाणिक तथा प्रचलित इतिहास से प्राप्त होता रहा है। उदाहरणार्थ अब्दुल मलिक[२] के आचरण को ध्यान मे रखकर इमाम मालिक सरीखे महान् व्यक्ति ने अपने "मोता" नामक ग्रंथ मे तर्क के आधार पर समर्थन करते हुए उसे प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया। मरवान को ताबेईन[३] की प्रथम श्रेणी मे माना गया है, उसका न्याय बडा प्रसिद्ध है। फिर अब्दुल मलिक की संतान में राज्य चलता रहा और वे भी धर्म के सम्बन्ध में अपने पूर्वजों की श्रेणी के समझे जाते थे। उन्ही के हाथ मे उमर बिन अब्दुल अजीज का राज्य आया। वे प्रथम चारों खलीफाओं के समान ख़िलाफ़त

१. उमय्या वंश का चौथा ख़लीफ़ा, जो ६८४ ई० से ६८५ ई० तक लगभग २९८ दिन ख़लीफ़ा रहा।

२. अब्दुल मलिक बिन मरवान, उमय्या वंश का ५वाँ ख़लीफ़ा। वह ६८५ ई० से ७०५ ई० तक ख़लीफ़ा रहा। उसका राज्य विभिन्न विजयों के लिए प्रसिद्ध है।

३. वे लोग जो मुहम्मद साहब के बाद की दूसरी पीढ़ी में थे।

चलाने का प्रयत्न करते रहे और सहाबा का अनुसरण करने में बाल बराबर भी पीछे नहीं हटे।

उनके उपरान्त ऐसे लोगों को प्रभुत्व प्राप्त हुआ जिन्होंने सल्तनत से अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एव सांसारिक उद्देश्यो मे लाभ उठाना चाहा। उन्होंने अपने पूर्वजो के सयम एव संतुलन को त्याग दिया। उनके समान उन्होने हर बात मे सत्य की खोज की चिता त्याग दी। जब उनके स्वभाव मे इतना बडा परिवर्तन आ गया तो लोग भी उनके कार्यो एव आचरण से घृणा करने लगे। तदुपरान्त अब्बासियों के राज्य के प्रचार की पताका उन्नत हुई और राज्य बनी अब्बास के अधीन हो गया। ये लोग भी प्रारम्भ मे न्याय के उच्च स्तर पर दृढ रहे और सल्तनत का पूरा जोर सत्य एव धर्म की उन्नति मे लगाया और इसमें कोई कसर उठा न रखी। यहाँ तक कि जब रशीद की सतान का राज्यकाल आया तो उनमे से कुछ सदाचारी थे और कुछ दुराचारी। फिर जब उस सतान की सतान को राज्य प्राप्त हुआ तो उनके भोग-विलास की कोई सीमा न रही और वे सांसारिक आनन्द एव दुराचार मे डूब गये तथा धर्म को पीछे डाल दिया। ऐसी अवस्था मे अल्लाह ने भी उन्हे विनाश के घाट उतार दिया और सभी अरबो से हुकूमत की बागडोर छीन ली और अन्य लोगों को प्रभुत्व प्रदान कर दिया। अब जो इतिहास का अध्ययन करते समय भूतकाल के खलीफाओं एव बादशाहो का हाल तथा उनका परस्पर भेद पढेगा कि कोई सत्य पर मिटता है और कोई झूठ पर प्राण त्यागता है, तो वह हमारे विवरण के तथ्य को स्वीकार किये बिना नही रह सकता।

मसऊदी[1] ने बनी उमय्या के विषय में अबू जाफर अल मंसूर के कथन के आधार पर उल्लेख किया है कि अल मंसूर के दरबार मे उसके चाचाओं ने बनी उमय्या की चर्चा की तो अबू जाफर भरे दरबार मे बोल उठा कि "अब्दुल मलिक एक निरकुश व्यक्ति था। जो चाहता कर डालता। सुलेमान इन्द्रिय-लोलुपता के वश मे था और उमर 'अधों मे काना राजा' था। इनमे यदि कोई व्यक्ति था तो हिशाम था उसने फिर यह भी कहा कि बनी उमय्या ने जब तक अल्लाह के दिये हुए राज्यप्रबध को कुशलतापूर्वक थामे रखा और उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए वे अनुचित बातो को त्यागते रहे, उस समय तक उनकी दशा अच्छी रही, किन्तु जब उनकी विलास-प्रिय सतान का युग आया तो उनकी दृष्टि एव उनके विचार इन्द्रिय-लोलुपता की ओर आकृष्ट हो गये और वे नाना प्रकार के पापो मे ग्रस्त हो गये और यह न समझे कि अल्लाह ने उनकी

१. मुरूजुज़् जहब।

रस्सी ढीली छोड रखी है, इसी लिए वे अल्लाह की उपेक्षा करने की ओर ध्यान न देकर असावधान हो गये। खिलाफत की रक्षा का ध्यान त्याग दिया। राज्य के उत्तरदायित्व को साधारण बात समझने लगे और राजनीति के क्षेत्र मे बड़ी अयोग्यता का परिचय देने लगे। जब यह दशा हो गयी तो अल्लाह ने भी उनसे सम्मान को छीनकर अपमान के वस्त्र उनको पहना दिये और अपनी देन से उन्हे वचित कर दिया।

फिर अब्दुल्लाह बिन मरवान को दरबार मे उपस्थित किया गया। उसने एक घटना का उल्लेख किया जो नोबा के बादशाह तथा उससे सबंधित थी। उसने बताया कि जब मै भागकर नोबा पहुँचा और कुछ समय तक वहाँ ठहरा रहा तो एक दिन नोबा का बादशाह मेरे पास आया। मैने यद्यपि उसके लिए बहुमूल्य एव उत्तम फर्श बिछवाया था, किन्तु वह आकर भूमि पर ही बैठ गया। मैने पूछा कि "आप मेरे बिछाये हुए फर्श पर किस कारण नही बैठते ?" तो उसने उत्तर दिया कि "मै बादशाह हूँ और प्रत्येक बादशाह का कर्त्तव्य है कि यत. ईश्वर ने उसको उच्च श्रेणी प्रदान की है अत वह अल्लाह के गौरव को प्रकट करे और स्वय दीनता एव नम्रता जाहिर करे।" फिर उसने मुझसे पूछा कि "तुम लोग मदिरा-पान क्यो करते हो, जब कि अल्लाह ताला ने तुम्हारे धार्मिक ग्रथो मे इसका निषेध किया है ?" मैने कहा कि "यह पाप हमारे दास, सेवक इत्यादि अज्ञान के कारण करते है।" उसने फिर पूछा कि "तुम कृषि को घोडे की टापो से क्यो रौदते हो, हालाँ कि उपद्रव फैलाने का तुम्हारी शरीअत मे निषेध किया गया है।" मैने उत्तर दिया कि "यह पाप भी हमारे दासो एव सेवको ने अज्ञान मे किया।" उसने कहा—"अच्छा तुम रेशमी वस्त्र किस कारण धारण करते हो और सोने-चाँदी के आभूषणो का क्यो प्रयोग करते हो,हालाँ कि यह सब चीजे तुम्हारे धर्म मे निषिद्ध है।" मैने कहा कि "जब राज्य हमारे हाथ से निकलने लगा तो हमने अजम से, जो हमारे धर्म मे आ चुके थे, सहायता ली। वे इन वस्तुओ का हमारी इच्छा के विरुद्ध प्रयोग करते है।" मेरे उत्तर सुनकर वह हाथ से भूमि कुरेदने लगा और कहने लगा कि "क्या खूब ! जो कुछ किया वह तुम्हारे दासो, सेवको एव उन अजमियो ने किया जो तुम्हारे धर्म मे प्रविष्ट हो गये थे।" फिर उसने सिर उठाकर कहा—"जो कुछ तुमने बताया वह सत्य के विरुद्ध है। सत्य तो यह है कि तुमने अल्लाह की हराम की हुई वस्तुओ को हलाल कर लिया और जिन बातो का उसने निषेध कर दिया है, उन्हे पसन्द कर प्रयोग करते हो। अपने राज्य में तुमने अत्याचार को प्रश्रय दिया, फलतः अल्लाह ने तुम्हे जो सम्मान प्रदान किया था, वह तुमसे छीन लिया और अपमान के वस्त्र तुमको पहनाये। अब भी दैवी प्रकोप अपनी चरम सीमा को नही पहुँचा

है। मुझे भय है कि कही ईश्वर का कोप तुम्हारे ऊपर इसी समय न टूट पड़े, जब कि तुम हमारे नगर मे ठहरे हुए हो तो कही हम भी तुम्हारे साथ न पिस जायें और पाप मे ग्रस्त हो जायें। आतिथ्य केवल तीन दिन तक होता है। मार्ग-व्यय मुझसे ले लो और मेरे राज्य से चले जाओ।" इस पर मसूर ने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया तथा सोच मे पड गया।

अब तुमने देख लिया कि खिलाफत सल्तनत में कैसे परिवर्तित हुई और यह भी जान लिया कि प्रारम्भ मे केवल खिलाफत थी और प्रत्येक व्यक्ति पर उसके धर्म का राज्य था। ससार की प्रत्येक वस्तु के मुकाबले मे वे धर्म का पालन करते थे चाहे इसमे वे नष्ट ही क्यो न हो जाते। हजरत उस्मान का उदाहरण प्रस्तुत है कि जब आप अपने घर मे घिर गये, तो हजरत हसन, हजरत हुसेन, अब्दुल्लाह बिन उमर, इब्ने जाफर तथा अन्य लोग प्रतिरक्षा हेतु आपके पास पहुँचे, किन्तु हजरत उस्मान ने मुसलमानो के विरुद्ध तलवार निकालने से रोक दिया। उन्हे केवल यही भय था कि कही मुसलमानों मे सघर्ष न हो जाय और उस प्रेम एव स्नेह का अन्त न हो जाय जिससे मुसलमानों ने धर्म की रक्षा की थी, यद्यपि युद्ध से रोक देना स्वय उनकी हत्या का कारण बन गया, किन्तु उन्होने इसकी कोई चिन्ता न की।

दूसरा उदाहरण हमारे सामने हजरत अली का मौजूद है कि जब प्रारम्भ मे आपकी ख़िलाफत पर बैअत की गयी तो मुगीरह[1] ने आपको परामर्श दिया कि जुबैर, मुआविया एव तलहा को अपने-अपने स्थान पर नियुक्त रहने दिया जाय, यहाँ तक कि सब लोग आपकी बैअत से सहमत और समस्त मुसलमान सगठित हो जायें। इसके उपरान्त आपकी जो इच्छा हो करे। वास्तव मे राजनीति की दृष्टि से यह उचित था, किन्तु हजरत अली ने इस परामर्श के अनुसार आचरण करना स्वीकार न किया, कारण कि छल एव धूर्तता को इस्लाम मे स्वीकृति नही दी गयी है। दूसरे दिन जब मुगीरह आये तो कहने लगे कि "मैंने कल जो आपको परामर्श दिया था उस पर जब मैंने पुनः गौर किया तो ज्ञात हुआ कि वह उचित न था और आपका मत ही ठीक था।" इस पर हजरत अली ने उत्तर दिया कि "नही, मुझे भली-भाँति ज्ञात है कि तुम्हारा कल का परामर्श उचित था और आज की बात मिलावट से शून्य नही, किन्तु मैं क्या करूँ। तुम्हारे परामर्श पर आचरण करने से मुझे सत्य रोकता है।" इन बुजुर्गो की वास्तव मे यही दशा थी कि धर्म के सुधार के लिए वे सासारिक हानि सहन कर लेते

१. मुग़ीरह बिन शोबा (मृत्यु ६६८–६७१ ई० के मध्य में), हज़रत उमर की ख़िलाफ़त के काल में कुछ समय तक बसरे का हाकिम रहा।

थे। एक हम हैं कि जो अपना धर्म नष्ट करके सासारिक लाभ की चिन्ता करते है। फिर न धर्म ही बाकी रहता है और न संसार ही प्राप्त होता है।

इन ऐतिहासिक घटनाओं से यह अनुमान लगा लिया गया होगा कि खिलाफत किस प्रकार राज्य मे परिवर्तित हो गयी और खिलाफत का केवल यह अर्थ रह गया कि "वह धर्म की रक्षा और सत्य के मार्गो के पालन का नाम है।" किन्तु उस समय तक यही परिवर्तन हुआ था कि दीन एवं शरीअत के राज्य के स्थान पर राजनीतिक शासन स्थापित हुआ था। आगे चलकर तो "असबियत" एव तलवार ने समस्त अधिकार अपने हाथ मे ले लिये। प्रथम दशा बनी उमय्या मे मुआविया एवं मरवान से अब्दुल मलिक तक और बनी अब्बास मे सफ्फाह से रशीद तथा उसकी किसी सदाचारी सतान तक चलती रही। फिर खिलाफत कर्त्तव्य छोड़कर केवल नाम मात्र की ही रह गयी और सल्तनत प्रचलित हो गयी। प्रभुत्व एवं शक्ति अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। इसका प्रयोग क्रोध एवं आतंक को शान्त करने एवं सांसारिक इच्छाओं तथा इन्द्रिय-लोलुपता की पूर्ति के लिए होने लगा। राज्य का यही रूप अब्दुल मलिक की सतान एवं रशीद के अब्बासी उत्तराधिकारियों मे प्रचलित हुआ। अरब की "असबियत" के बाकी रहने के कारण खिलाफत का नाम चलता रहा। तथ्य कुछ न था। खिलाफत एव सल्तनत इन युगों मे समान रूप धारण किये हुए थी, किन्तु जब अरबी "असबियत" का अन्त हुआ तो कौमवालों की योग्यता भी समाप्त हो गयी। स्थिति के परिवर्तन के कारण खिलाफत का नाम भी मिट गया और अब केवल सल्तनत एवं राज्य रह गये।

पूर्व मे ईरानी बादशाहो की जो शान थी वह यहाँ भी प्रकट हुई। वे केवल आशीर्वाद हेतु खलीफा के आज्ञाकारी थे और हर प्रकार से राज्य दूसरों के अधिकार मे था। खलीफा का इससे कोई सम्बन्ध न था। जनाता सुल्तानो ने मगरिब मे यही किया सिनहाजा का उबैदीईन से यही सम्बन्ध था। मगरावा तथा बनू यफरान के उन्दुलुस के उमय्या खलीफाओं एवं कैरवान के उबैदीईन से यही संबंध थे।

इस विवरण का निष्कर्ष यह निकला कि सर्वप्रथम खिलाफत रही। सल्तनत एवं शासन की उसमे झलक तक न थी। फिर आगे चलकर दोनों परस्पर मिल-जुल गये और मिश्रित हो गये। फिर और आगे बढ़कर केवल सल्तनत रह गयी। यह उस समय हुआ जब कि देश की "असबियत" एवं खिलाफ़त की "असबियत" पृथक् हो गयी। "ईश्वर ही रात और दिन निकालता है।"[१]

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(२९) बैअत

ज्ञात होना चाहिए कि बैअत, आज्ञाकारिता हेतु प्रतिज्ञा करने का नाम है। इस प्रकार बैअत करनेवाला अपने अमीर[१] से प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने व्यक्तिगत एवं मुसलमानों के समस्त कार्यों में अमीर के अधिकारो को स्वीकार करेगा और वह उसका किसी विषय मे विरोध न करेगा और अमीर की ओर से उसे जो आदेश प्राप्त होगा, चाहे वह उसकी इच्छा के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल, वह उसका पूर्णरूप से पालन करेगा। फिर यह प्रथा चली आ रही है कि जब अमीर से बैअत करते और वचनबद्ध होते है तो हाथ मे हाथ देते है, ताकि वचन और भी दृढ़ हो जाय। यह कार्य मानो बेचनेवाले एव क्रय करनेवाले के समान है, अतः इसका नाम बैअत रखा गया, जो "बाअह" धातु से बना है, अतः बैअत का अर्थ हाथ मिलाना हुआ। शब्दकोश एवं शरा के अनुसार बैअत का तथ्य यही है।

हदीस मे जो लैलतुल अकबा व शजरा[२] की बैअत का उल्लेख है, तो उसका अर्थ यही बैअत है, अथवा जहाँ कही बैअत शब्द आता है वहाँ इसके अर्थ यही होते है। बैअतुल खुलफा[३] एव ऐमानुल बैअह[४] भी इसी प्रकार की चीज है। खलीफाओं की आदत थी कि बैअत मे प्रतिज्ञा कराते और फिर शपथ द्वारा उसकी पुष्टि कराते थे। इसी को ऐमानुल बैअह कहा जाता था और इसी के लिए अधिकाश लोगो से आग्रह किया जाता था। इसी कारण जब इमाम मालिक से इस शपथ के विषय मे फतवा[५] लिया गया तो आपने फतवा दिया कि इसको बैअत से पृथक् कर देना चाहिए, किन्तु विभिन्न राज्यो के शासको ने इसे स्वीकार न किया। फिर इमाम साहब को भी इस फतवे के कारण बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा।

हमारे युग मे जो प्रथा प्रचलित है वह ईरानी शाहाना अभिवादन से मिलती

१ हाकिम।
२. अक़बा की रात्रि मे तथा वृक्ष पर, अक़बा वह स्थान है जहाँ मुहम्मद साहब ने मक्के से मदीने की हिजरत के पूर्व भेट की थी और मदीने वालों ने वृक्ष के नीचे बैअत की थी।
३. ख़लीफ़ाओं से बैअत।
४. बैअत के सम्बन्ध में निष्ठा की घोषणा।
५. किसी कर्म के उचित अथवा अनुचित होने के सम्बन्ध मे मुफ़्ती या आलिम द्वारा शरा के अनुसार दी गयी व्यवस्था।

जुलती है, उदाहरणार्थ लोग भूमि, हाथ, पॉव अथवा दामन का चुम्बन करते है और इसी आचरण को बैअत कहा जाता है। यह वास्तव मे एक प्रकार की आज्ञाकारिता की प्रतिज्ञा है, कारण कि अभिवादन भी आज्ञाकारिता के प्रदर्शन का एक साधन है। प्रयोग होते होते यही बैअत का ढंग वास्तविक बैअत मे परिणत हो गया। फिर इसमे हाथ मिलाने की आवश्यकता भी, जो बैअत की वास्तविक द्योतक है, जरूरी न समझी जाने लगी। कारण कि प्रत्येक साधारण एव विशेष व्यक्ति से हाथ मिलाना राजकीय गौरव एव सम्मान के प्रतिकूल समझा जाने लगा, जिसकी रक्षा बादशाह के लिए परमावश्यक थी। हॉ, कभी ऐसा होता है कि बादशाह सम्मानित करने की दृष्टि से अपने विशेष व्यक्तियो एवं धार्मिक आलिमो से हाथ मिलाते है। अत. हमारे शब्दो मे बैअत का अर्थ, जिसका ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है, स्पष्ट हो गया होगा, कारण कि सुल्तान एवं इमाम की बैअत तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

(३०) वली अहदी

इस बात का हम उल्लेख कर चुके है कि इमामत मे शरा सम्बन्धी तथ्य होता है और इसमे बड़े रहस्य निहित है। इसमे तथ्य केवल इतना है कि उम्मत के धार्मिक एव सासारिक हितों पर गौर करके उनका उचित प्रबंध किया जाय। इस अर्थ के अधीन इमाम उम्मत का वली हुआ और उसका रक्षक, जो अपने समस्त जीवन-काल मे अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखता है, जो कुछ उसकी मृत्यु के उपरान्त घटने की सम्भावना है उसका प्रबन्ध भी वह यथासम्भव एव यथाशक्ति अपने जीवनकाल ही मे कर देता है। उदाहरणार्थ उम्मत की देख-भाल के लिए वह अपना एक ऐसा उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाता है, जिस पर उम्मत को ऐसा ही विश्वास होता है जिस प्रकार उस पर था। शरीअत मे उम्मत की "इजमा" द्वारा इस आचरण (वली अहद नियुक्त करने) का उचित होना सिद्ध हो जाता है। कारण कि हजरत अबू बक्र ने सम्मानित सहाबा के मजमे मे हजरत उमर को अपना उत्तराधिकारी एवं वली अहद नियुक्त किया। इसको समस्त सहाबा ने उचित समझा और हजरत उमर की आज्ञाकारिता अपने लिए आवश्यक समझी। इसी प्रकार हजरत उमर ने अपने निधन के पूर्व वली अहद की नियुक्ति की समस्या अशरये मुबश्शेरा[1] मे से शेष छः सहाबियों पर छोड़ी कि जैसा वे उचित समझे करे और

१. मुहम्मद साहब के १० सहाबी, जिनके विषय में कहा जाता है कि वे अवश्य ही स्वर्ग में जायेंगे।

मुसलमानों के लिए कोई भी इमाम छाँट ले। अन्त मे चुनाव का अधिकार अब्दुर्रहमान बिन औफ़[१] को दिया गया। उन्होंने सोच विचार के उपरान्त मुसलमानो की हार्दिक इच्छा ज्ञात की तो सबका हृदय हजरत उस्मान एवं हजरत अली की ओर आकृष्ट पाया। इस कारण उन्होने हजरत उस्मान से बैअत कर ली, कारण कि अब्दुर्रहमान बिन औफ के समान हजरत उस्मान भी इस बात पर सहमत थे कि शेखैन का अनुसरण किया जाय और स्वय कोई निर्णय न किया जाय। अतः हजरत उस्मान की खिलाफत सबने स्वीकार कर ली और वे खलीफा मान लिये गये और उनकी आज्ञाकारिता आवश्यक समझी गयी। जिस मजमे मे इस चुनाव की घोषणा की गयी उसमे वे सब सहाबा उपस्थित थे जो शेखैन की बैअत कर चुके थे। किसी ने वली अहदी एवं उत्तराधिकार की इस समस्या पर कोई आपत्ति प्रकट न की, अपितु मौन रहे। इससे यह स्पष्ट है कि वे जानशीनी के इस नियम से सहमत थे और इसे शरा के अनुकूल समझते थे। यह बात ज्ञात हो ही गयी है कि "इजमा" को शरई समस्याओं के लिए प्रमाण माना गया है।

अब यदि इमाम अपने पिता अथवा पुत्र को अपना वली अहद नियुक्त कर दे तो हम इस पर कोई शका नही कर सकते, कारण कि जब उसे उसके जीवन-काल की समस्त समस्याओं एव मामलो मे विश्वास के योग्य माना गया है, तो वह अपने जीवनकाल के बाद की समस्याओं के विषय में भी जो निर्णय दे, उस पर हमको कोई शका न करनी चाहिए और इमाम की कोई आलोचना न करनी चाहिए। यह बात उन लोगो के धार्मिक विश्वास के विरुद्ध है जो कहते हैं कि इमाम का अपने पिता अथवा पुत्र को वली अहद नियुक्त करना अपराध है, अथवा जो लोग केवल पुत्र को वली अहद नियुक्त करना पाप समझते है और पिता को नही। वास्तव मे यह कार्य शका एव भ्रम से बहुत दूर है, विशेष कर जब कोई खास हित भी इसके साथ हो अथवा किसी विशेष उपद्रव या अशान्ति से बचने का विचार हो। ऐसी अवस्था मे तो शका का कोई स्थान रह ही नही सकता, जैसा किमु आविया ने जब अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी बनाया तो इसके लिए बनी उमय्या के अधिकार-

१. अब्दुर्रहमान बिन औफ़, अरब के क़ुरैशी क़बीले के थे और मुहम्मद साहब द्वारा इस्लाम का प्रचार प्रारम्भ होते ही मुसलमान हो गये थे। वे उन दस लोगों में बताये जाते हैं जिनके विषय में मुहम्मद साहब का कथन है कि वे अवश्य स्वर्ग में जायेंगे। उनकी मृत्यु ६५२ ई० में हुई।

सम्पन्न एवं सम्मानित व्यक्तियों की सहमति पर्याप्त समझी। इसी सहमति एवं सगठन की दृष्टि से उन्होंने अन्य लोगों को छोड़कर यजीद को अपना उत्तराधिकारी चुना। वास्तव मे बनी उमय्या उस समय यजीद के अतिरिक्त किसी अन्य को वली अहद बनाने के लिए सहमत न हो सकते थे। कुरैश तथा समस्त मुसलमानों की "असबियत" उनकी सहायतार्थ उनके साथ थी। वे स्वय प्रभावशाली थे और प्रतिभा-सम्पन्न भी, अतः इन्ही कारणो से मुआविया ने अन्य अच्छे लोगों को छोड़कर यजीद को चुना और योग्य एव श्रेष्ठ को त्यागकर अयोग्य एवं निम्न को केवल इस लोभ से सिहासनारूढ़ किया कि लोगों का सगठन एवं ऐकमत्य भग न हो, जिसको शारे[1] ने अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया था। इस बात के अतिरिक्त मुआविया के विषय में और कहा ही क्या जा सकता है, कारण कि उनके जाने-माने न्याय तथा मुहम्मद साहब के सहचरों की दृष्टि मे उनके विषय में कोई शका प्रकट करना सम्भव नही। इसके अतिरिक्त सम्मानित सहाबा की उपस्थिति एवं उनका इस विषय मे मौन रहना इस बात की खुली दलील है कि मुआाविया के प्रति कोई शका नही की जा सकती और न उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है। उस युग मे न तो मुआविया का ही स्वभाव ऐसा था कि वे राज्य के सम्मान एव गौरव हेतु सत्य पर आचरण करने से बाज रहते और न सहाबा ही सत्य का प्रचार करने से बाज रह सकते थे। इन बुजुर्गो की न्यायप्रियता इस प्रकार के दुराचार को कदापि स्वीकार न कर सकती थी।

अब रही यह समस्या कि यदि यह उत्तराधिकार उचित था तो अब्दुल्लाह बिन उमर[2] क्यो इस मौके से टल गये और बचकर चल दिये, तो इसका कारण वास्तव में यह था कि वे अपनी पवित्रता एवं धर्मनिष्ठा के कारण प्रत्येक अनुचित बात से बचना चाहते थे और ऐसी किसी बात में किसी प्रकार का भाग नही लेना चाहते थे। उनकी यह सावधानी बड़ी प्रसिद्ध है। यजीद के वली अहद नियुक्त किये जाने के सम्बन्ध में इब्ने जुबैर के अतिरिक्त सभी सहमत थे किन्तु यदि किसी समस्या के विषय में सभी सहमत हां तो किसी एक का विरोध कोई महत्त्व नही रखता। फिर मुआविया के उपरान्त जो लोग खलीफा हुए, वे सत्य की खोज एवं उस पर आचरण करते रहे। उदाहरणार्थ, अब्दुल मलिक तथा सुलेमान बनी उमय्या मे से और सफ्फाह, मसूर,

१. हजरत मुहम्मद से तात्पर्य है।

२. अब्दुल्लाह बिन उमर, खलीफ़ा हजरत उमर के ज्येष्ठ पुत्र। वे अपनी धर्म-निष्ठता के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। उनकी मृत्यु ७३ हि० (६९३ ई०) में हुई।

महदी एवं रशीद बनी अब्बास में से, अथवा उन सरीखे अन्य लोग जिनकी निर्णय-शक्ति एव न्यायप्रियता सर्वमान्य थी। वे मुसलमानों के हित के विषय में ईमानदारी से सोच-विचार करते थे और ऐसा कार्य न करते थे जिससे उनकी कटु आलोचना हो सकती। उन्होने अपने पुत्रों एवं भाइयो को अपना उत्तराधिकारी बनाया, किन्तु किसी ने उन पर अँगुली न उठायी।

यह कहना उचित नहीं कि उनका यह आचरण प्रथम चारों खलीफाओं के आचरण के विरुद्ध था तो उनकी दशा एवं उनकी परिस्थितियों की तुलना प्रथम चारों खलीफाओं की स्थिति से क्यो की जाय। ये ख़लीफ़ा ऐसे युग मे हुए थे जब ख़िलाफत पर सल्तनत की लेश मात्र भी छाप न पड़ी थी। ख़लीफा केवल धार्मिक एव दीनी मनुष्य होता था और दीन की ही पृष्ठ-भूमि में अपने प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करता था। इसी कारण ख़लीफा लोग अपना उत्तराधिकारी केवल उसी को नियुक्त करते थे जो धर्म एव दीन के मामले मे श्रेष्ठ होता था। उनके उपरान्त मुआविया के युग मे स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया था। सल्तनत का गौरव बढ़ चुका था। धर्म की शान घट चुकी थी। अब ऐसे शासक की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो सल्तनत एवं "असबियत" मे अद्वितीय हो। अतः यदि मुआविया "असबियत" की आवश्यकताओं के विरुद्ध किसी अन्य को सिहासनारूढ़ करते तो उनकी इमामत कौन स्वीकार करता, देखते-देखते वह समाप्त हो जाती और इस दशा मे कौम को जिस विरोध का सामना करना पड़ता, वह स्पष्ट है।

एक बार एक आदमी ने हजरत अली से पूछा कि "हजरत ! इसका क्या कारण है कि मुसलमानो ने आपकी खिलाफत का तो बड़ा विरोध किया, किन्तु हजरत अबू बक्र तथा हजरत उमर की ख़िलाफ़त का किसी ने विरोध नही किया?" आपने उत्तर दिया--"इसका कारण यह है कि इनमें से दोनों बुजुर्ग मुझ-जैसे लोगो के शासक थे और अब मै तुम-जैसे लोगों का।" इसका अर्थ यही है कि अब राज्य धार्मिक भावनाओं से शून्य है, अतः यह परिवर्तन हो गया।

मामून ने जब अली बिन मूसा बिन जाफ़र अस् सादिक को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उनका नाम रिज़ा रखा तो, अब्बासियों को यह बड़ा बुरा लगा। उन्होने मामून की बैअत तोड़कर उसके चाचा इबराहीम बिन अल महदी से बैअत कर ली और फिर राज्य मे इतनी अशान्ति फैल गयी कि डाके तक पड़ने लगे और राज्य छिन्न-भिन्न होनेवाला ही था कि मामून खुरासान से बग़दाद की ओर लपका और पुनः बैअत ली गयी तथा अशान्ति का अन्त हो गया।

संक्षेप में वली अहद के चुनाव में सर्वसाधारण की मनोवृत्ति को बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है। युग के रंग-ढग की उस पर अत्यधिक छाप पड़ती है। जैसे-जैसे युग रग पलटता है, स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। कबीले एव "असबियते" अपनी गति-विधि बदलती है। देश की आवश्यकताएँ और लोगो की चित्त-वृत्ति कुछ की कुछ होती जाती हैं और नयी-नयी मसलेहते उत्पन्न होती है। फिर प्रत्येक का आदेश पृथक् होता है और प्रत्येक की बात अलग। यदि वलीअहदी का उद्देश्य केवल यह हो कि बाप-दादा की मीरास बेटे-पोतो मे सुरक्षित रहे तो धार्मिक दृष्टिकोण से यह उद्देश्य बड़ा ही हीन है, कारण कि खिलाफ़त तथा सल्तनत अल्लाह का प्रदान किया हुआ सम्मान है। वह जिसे चाहे, उसे उसके द्वारा सम्मानित करे। अतः इसके चुनाव मे यथासम्भव ईमानदारी से काम लेना चाहिए, ताकि यह धार्मिक पद एव खिलाफते इलाही नष्ट न हो जाय।

अब वली अहदी के चुनाव मे कुछ बाते उल्लेखनीय है, ताकि इनके द्वारा सत्य एवं असत्य तथा उचित एवं अनुचित का भेद किया जा सके।

१—यह कि मुआविया यजीद को खलीफ़ा नियुक्त करते समय उसके दुराचार एवं व्यभिचार के विषय मे अच्छी तरह जानता था। यजीद ने अपने खिलाफ़त-काल मे इन अवगुणों का प्रदर्शन किया। वास्तव मे मुआविया अपनी श्रेष्ठता एवं अपनी न्याय-प्रियता के कारण इस प्रकार की शका से मुक्त थे, अपितु वे तो अपने जीवन-काल मे यजीद को सगीत सुनने से कठोरतापूर्वक रोका करते थे, हालाँ कि यह पाप उन पापों की अपेक्षा, जो यजीद ने किये, बहुत निम्न श्रेणी का है। फिर समा'[1] के विषय मे सहाबा का स्वय एक मत नही।

जब यजीद खुल्लमखुल्ला व्यभिचार मे ग्रस्त रहने लगा तो इस विषय में भी लोगों का मतभेद हो गया। कुछ लोगों ने उससे विद्रोह करने एव बैअत को तोडने का विचार कर लिया, उदाहरणार्थ हजरत इमाम हुसेन, अब्दुल्लाह बिन जुबैर अथवा उनका अनुसरण करने वाले अन्यलोग। कुछ लोगो ने यजीद का विरोध करना इस कारण उचित न समझा कि कही विद्रोह एव अशान्ति की अग्नि न भडक उठे और हत्याकाड न प्रारम्भ हो जाय। साथ ही साथ यह भी विचार था कि यदि यजीद के विरुद्ध कदम उठाया गया तो उसे निभा न सकेंगे, कारण कि यजीद के सहायतार्थ बनी उमय्या की "असबियत" थी और कुरैश के उच्च पदाधिकारी भी उसके सहाय-

१. सूफ़ियों के संगीत की गोष्ठियाँ।

तार्थ उपस्थित थे, अपितु मुजार की "असबियत" भी उसके सहायतार्थ उद्यत थी। उसका मुकाबला कोई भी न कर सकता था, अतः वे यजीद से पृथक् ही रहते थे और उसके पथप्रदर्शन हेतु ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। अधिकाश मुसलमान इसी विचार के अनुयायी थे। ये दोनों वर्ग इजतेहाद[1] कर सकते थे और अपना स्वतंत्र मत रखते थे जिसका कोई खडन नही कर सकता था, कारण कि उनकी सच्चरित्रता, पवित्रता एव सत्य के प्रति प्रेम सर्वमान्य और प्रसिद्ध है। इनका खडन कोई किस प्रकार करे। अल्लाह हमको भी उन्ही पवित्र बुजुर्गो के पदानुसरण का सौभाग्य प्रदान करे।

२--फिर समस्या यह है कि मुहम्मद साहब ने अपना उत्तराधिकारी किसे नियुक्त किया? शीओ का दावा कि मुहम्मद साहब ने हजरत अली के विषय मे खिलाफत के लिए वसीअत की थी, प्रामाणिक रूप से सिद्ध नही होता। रवायतो का उल्लेख करनेवालो ने इस प्रकार की चर्चा नही की। प्रामाणिक रवायतो मे इतना अवश्य है कि मुहम्मद साहब ने अपनी मृत्यु के समय वसीअत लिखने के लिए दवात-कलम माँगी और हजरत उमर ने मना कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तराधिकारी की नियुक्ति की समस्या का समाधान न हो सका। इसी प्रकार हजरत उमर से जब वली अहद नियुक्त करने के लिए कहा गया तो आपने उत्तर दिया कि "यदि मै अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करूँ तो यह कोई नयी बात न होगी, कारण कि मुझ से अच्छे अर्थात् हजरत अबू बक्र यह कर चुके है और यदि न नियुक्त करूँ तो इसका भी उदाहरण उपलब्ध है, कारण कि मुहम्मद साहब ने भी अपना कोई उत्तराधिकारी नही नियुक्त किया।" यही प्रमाण हजरत अली के शब्दों से भी मिलता है, जिनसे आपने हजरत अब्बास[2] को सम्बोधित किया। यह उस समय की घटना है जब हजरत अब्बास ने हजरत अली को अपने साथ लेकर और मुहम्मद साहब की सेवा मे उपस्थित होकर उत्तराधिकारी की समस्या का समाधान करने के विषय मे कहा। हजरत अली ने इस उद्देश्य के लिए जाना स्वीकार न किया और कहा कि "यदि मुहम्मद साहब ने मना कर दिया तो फिर कभी भी हम इसकी इच्छा न कर सकेंगे।" अत. हजरत अली का यह कथन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है

१. स्वतंत्र रूप से निर्णय करना।

२. मुहम्मद साहब के चाचा।

कि मुहम्मद साहब ने अपने उत्तराधिकारी के विषय में कोई वसीअत न की थी और न किसी को उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

वास्तव मे इमामिया को अपने इस अशुद्ध विचार से भ्रम हुआ कि इमामत की समस्या धर्म के स्तम्भों मे से है अतः इसका निर्णय शारे[1] द्वारा होना चाहिए, हालाँ कि इस कल्पना का कोई आधार नही। वास्तव में वलीअहदी का मामला सर्वसाधारण के हित से सम्बधित है जो उनके उचित निर्णय पर निर्भर है। यह बात स्पष्ट है कि वलीअहदी की समस्या यदि धर्म के स्तम्भो मे होती तो उसको नमाज की श्रेणी प्राप्त होती, अर्थात् मुहम्मद साहब अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त करते, जिस प्रकार आपने हजरत अबू बक्र को नमाज मे अपने स्थान पर नियुक्त किया। जिस तरह नमाज के सम्बन्ध मे प्रसिद्धि हुई उसी प्रकार इसकी भी प्रसिद्धि होती। फिर सबसे बड़ी दलील वह थी जो हजरत अबू बक्र को ख़लीफ़ा चुनने के लिए सम्मानित सहाबा ने प्रस्तुत की, अर्थात् "जब मुहम्मद साहब ने हजरत अबू बक्र को हमारे धार्मिक कार्यो मे अपना उत्तराधिकारी बनाया तो हम उन्हे अपने सासारिक मामलो मे प्रसन्नतापूर्वक ख़लीफ़ा क्यो न स्वीकार कर ले?" इससे यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो गयी कि समस्त सहाबा के निकट उत्तराधिकारी के विषय मे मुहम्मद साहब द्वारा किसी वसीअत का कोई प्रमाण नही मिलता। यही से यह बात भी ज्ञात हो गयी कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के समय इमामत एव उत्तराधिकारी की समस्या को इतना महत्त्व न प्राप्त था जितना आज है। वह "असबियत" जिसे सगठन एवं विघटन करने मे इतना महत्त्व प्राप्त है, उस समय इतनी महत्त्वपूर्ण न थी, कारण कि उस समय इस्लाम चमत्कारो के आधार पर चल रहा था। इन्ही चमत्कारो के बल पर सब मुसलमान सगठित थे और इस्लाम के लिए प्राण त्यागने पर उद्यत थे। उदाहरणार्थ मुसलमानो की आँखो के समक्ष फ़िरिश्ते उनकी सहायतार्थ पहुँचते रहते थे, आकाश से समाचार निरन्तर आते रहते थे, विभिन्न घटनाओ के समय ईश्वर की बाते उनके समक्ष पढ़ी जाती थी, तो फिर ऐसी दशा मे "असबियत" की क्या आवश्यकता थी? सब लोगों ने इस्लाम के समक्ष सिर झुका दिया था। उसकी सत्यता पर सबको विश्वास था। निरन्तर चमत्कार होते रहते, दैवी आदेश आते रहते, एव फिरिश्तों के बार-बार के आगमन ने लोगों को चकित कर दिया था। कोई दम न मार सकता था। ख़िलाफ़त लीजिए अथवा राज्य एव सल्तनत, उत्तराधिकारी की समस्या को

१. हज़रत मुहम्मद द्वारा।

देखिए अथवा "असबियत" या प्रभुत्व को, ये सब बातें उस युग की विचित्र शासन-व्यवस्था मे पायी जाती थी। जब चमत्कारो का युग समाप्त हुआ, दैवी सहायता का क्रम टूटा, वह लोग भी समाप्त हो गये जिन्होने इन चमत्कारों को अपनी आँखों से देखा था, तथा प्रकृति ने पूर्व की भाँति चमत्कारों का स्थान लिया, तो "असबियत" प्रारम्भ हो गयी। प्रकृति का पुनः आगमन हुआ और उससे हित एवं अहित प्रकट होने लगे तो इस नवीन वातावरण मे राज्य, खिलाफत एव जानशीनी सरीखी समस्याएँ, जिनका इसके पूर्व कोई मूल्य न था, बडी महत्त्वपूर्ण समझी जाने लगी।

यह बात देखनी चाहिए कि मुहम्मद साहब के शुभ काल मे खिलाफत अधिक महत्त्व की चीज न थी। इसी कारण उन्होने उत्तराधिकार की समस्या का कोई समाधान नही किया। खिलाफ़ते राशिदा[1] के समय इसे कुछ महत्त्व प्राप्त हुआ, कारण कि धर्म की सहायता, जिहाद, मुर्तिद होने के उपद्रव की रोक-थाम एव राज्यों के विजय हेतु खिलाफत की आवश्यकता हुई, ताकि उसके नेतृत्व मे ये सब कार्य सम्पन्न हो। इस प्रकार उत्तराधिकारी की समस्या खलीफा के अधिकार की बात हो गयी। चाहे वह कोई निर्णय करे और चाहे उसकी उपेक्षा, जैसा कि अभी हजरत उमर के कथन द्वारा ज्ञात हुआ। फिर आज तो उत्तराधिकारी को बडा ही महत्त्व प्राप्त हो गया है, कारण कि लोगों की सहायता एव हितो की रक्षा इसी पर निर्भर है। अब "असबियत" की बड़ी चिता की जाने लगी, कारण कि वही सब को सगठित रखकर परस्पर विरोध एव पृथक् होने से बचाती है और शरा के उद्देश्यो तथा दैवी आदेशो के स्थायित्व का भी उत्तरदायित्व उसी पर है।

३—जो युद्ध इस्लाम के प्रारम्भिक युग मे सहाबा अथवा ताबेईन[2] मे हुए उनका क्या उद्देश्य था? इसका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिए कि उन बुजुर्गो के विरोध अधिकाश धार्मिक मामलो के सम्बन्ध मे थे, न कि सासारिक मामलो मे। यह मतभेद प्रामाणिक दलीलो मे इजतेहाद के कारण उत्पन्न हुआ। मुजतहिदो मे जब इजतेहादी मतभेद उत्पन्न हो जाय तो इजतेहाद सम्बंधी समस्याओ मे सत्य एक ही ओर होगा। अब जिस मुजतहिद[3] का मत सत्य से मिल जाय उसे पुण्य

१. हजरत मुहम्मद के बाद के चार प्रथम ख़लीफ़ा।
२. मुहम्मद साहब के बाद की दूसरी पीढ़ी के लोग।
३. जिन्हें इजतेहाद अर्थात् धार्मिक समस्याओं मे स्वतंत्र रूप से निर्णय करने का अधिकार हो।

होगा और जिसका न मिले वह भूल पर रहा होगा, कारण कि सत्य की सीमाएँ निश्चित नही, अत. सत्य की शका प्रत्येक मुजतहिद के विषय मे होगी । किसी मुजतहिद को विश्वासपूर्वक भूल करता हुआ नही कहा जा सकता और कोई मुजतहिद भी पापी एव दडनीय न होगा । उम्मत का इजमा इसी पर है। यदि हम यह कहें कि इजतेहादी विरोध के समय सब मुजतहिद सत्य का पालन करते है और प्रत्येक मुजतहिद ठीक मार्ग पर होता है, तो भूल का अपराध किसी पर नही लगाया जा सकता । सहाबा एव ताबेईन का मतभेद इजतेहादी मतभेद था और धार्मिक समस्याओं पर अपने-अपने मतानुसार उनमे पारस्परिक विरोध था। उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार किसी को पापी नही कहा जा सकता।

इस प्रकार के इजतेहादी मतभेद पर इस्लाम मे जो युद्ध हुए, वे निम्नाकित है । हजरत अली तथा मुआविया, जुबैर व आएशा एव तलहा का युद्ध, इमाम हुसेन तथा यजीद का युद्ध और इब्नुज् जुबैर तथा अब्दुल मलिक का युद्ध। हजरत अली को जिन घटनाओ का सामना करना पड़ा, वे इस प्रकार है।

(१) जिस समय हजरत उस्मान शहीद हुए तो अधिकाश सहाबी नगरों मे फैले हुए थे । वे हजरत अली की बैअत के लिए नही आये । मदीने मे उपस्थित सहाबी भी दो समूहो में विभाजित हो गये। एक समूह ने तुरन्त बैअत कर ली और दूसरे ने टालमटोल की और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि सब लोग किसी इमाम पर सहमत होकर उससे बैअत कर ले । इस समूह मे साद[1], सईद[2], इब्ने उमर, उसामा बिन जैद, मुगीरा बिन शोबा, अब्दुल्लाह बिन सल्लाम, कुदामह बिन मजऊन, अबू सईद ख़ुजरी, काब बिन अजरा, काब बिन मालिक, नोमान बिन बशीर, हस्सान बिन साबित, मुसेलमा बिन मखलद, फुजालह बिन उबैद इत्यादि । जो सहाबा नगरो मे छिन्न-भिन्न थे, उन्होने भी बैअत से इस कारण हाथ खीचा कि सर्वप्रथम हजरत उस्मान की हत्या का बदला ले लिया जाय और फिर बैअत की समस्या सामने आये। इस प्रकार इन लोगो ने हजरत उस्मान की हत्या के बदले के समय तक मुसलमानों को बिना खलीफा तथा अमीर के रखना उचित समझा । उनका यह भी मत था कि हजरत अली, हजरत उस्मान के हत्यारो से बदला लेने मे मौन है, न यह कि

१. **साद बिन अबी वक़्क़ास, प्रसिद्ध अरब सेनापति (मृत्यु ६७०–७१ ई० अथवा ६७४–७५ ई०) ।**

२. **सईद बिन जैद, मृत्यु ५० अथवा ५१ हि० (६७०–६७१ ई०) ।**

(ईश्वर क्षमा करे) आपके द्वारा हज़रत उस्मान की हत्या हुई है। इस प्रकार जब मुआविया ने हज़रत अली पर खुल्लमखुल्ला दोषारोपण किया तो केवल यह कहा कि "आप हज़रत उस्मान के हत्यारों से बदला लेने के विषय मे उपेक्षा करते हैं," न यह कि उनकी हत्या में आपका हाथ है। उधर हज़रत अली अपने इस दृष्टिकोण पर दृढ़ रहे कि मुझसे बैअत करना सबका कर्त्तव्य है, कारण कि जब मदीना-निवासी बैअत के विषय मे सहमत हो गये तो उन लोगो के लिए भी बैअत अनिवार्य हो गयी जो मदीने के बाहर थे, कारण कि मदीना मुहम्मद साहब का निवास-स्थान था। हज़रत अली का विचार था कि जब लोग सगठित हो जायँ और कुछ शान्ति हो जाय तब इतमीनान से हज़रत उस्मान के हत्यारों से बदला लिया जायगा। उस समय यह सब कुछ सम्भव हो सकेगा। अन्य सहाबियो का यह मत था कि प्रतिभाशाली एवं उच्च श्रेणी के सहाबा विभिन्न स्थानो पर फैले हुए है और बहुत कम सहाबी उपस्थित है, अतः बैअत उचित रूप से प्रामाणिक नही हुई, कारण कि बैअत मे उच्च श्रेणी वालों एव प्रतिभाशालियो की भी सहमति आवश्यक है। यदि कुछ थोड़े से लोग मिलकर खलीफा नियुक्त कर ले और उससे बैअत कर ले तो इससे कुछ नहीं होता। उनका विचार था कि इस समय मुसलमानों का कोई अमीर अथवा खलीफा नही है, अतः सबको चाहिए कि सर्वप्रथम उस्मान के हत्यारों की माँग की जाय और इस कार्य से मुक्त होकर सर्वसम्मति से किसी को इमाम चुना जाय। मुआविया, अमर बिन आस, उम्मुल मोमिनीन[1] आएशा, जुबैर, इब्नुज जुबैर, अब्दुल्लाह, तलहा और उनके पुत्र मुहम्मद, साद, सईद, नोमान बिन बशीर, मुआविया बिन हुदैज इत्यादि का यही मत था। मदीने मे रहकर उन्होने बैअत की ओर से उपेक्षा की। यह प्रथम पीढ़ी वालो का मतभेद था, किन्तु द्वितीय पीढ़ी वालो मे सब लोग इस बात पर सहमत हो गये कि हज़रत अली की बैअत अपने स्थान पर पूर्णतः ठीक थी और वह समस्त मुसलमानो के लिए अनिवार्य थी। इसके विपरीत मुआविया एव उनके अनुयायियो ने भूल की, विशेष कर तलहा एव जुबैर ने, जिन्होने बैअत करके तोड़ डाली। इस युग मे उपर्युक्त मतभेद के बावजूद इस बात पर सभी सहमत थे, क्योकि दोनों पक्ष वालों को इजतेहाद का अधिकार प्राप्त है, अत. दोनो ही भूल एव पाप से मुक्त है।

१. मोमिनों की माता, मुहम्मद साहब की पत्नियाँ उम्मुल मोमिनीन कहलाती थीं। हज़रत आएशा मुहम्मद साहब की एक प्रिय पत्नी एवं हज़रत अबू बक्र की प्रिय पुत्री थीं।

एक बार हजरत अली से पूछा गया कि "जमल[1] एवं सिफ्फीन[2] के युद्धों में जो लोग मारे गये उनके विषय मे आपका क्या मत है? वे मुक्ति प्राप्त करने योग्य है अथवा दंडनीय।" आपने उत्तर दिया कि "ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि इन युद्धो मे जो भी मारा गया, यदि उसका हृदय पाक है तो वह स्वर्ग का पात्र है।" इस प्रकार आपका यह निर्णय दोनों पक्षो की ओर से जिनकी हत्या हुई, उनके विषय मे था। तबरी एव अन्य इतिहासकारों ने इस घटना का उल्लेख इन्ही शब्दों मे किया है। संक्षेप मे ये लोग ऐसे बुजुर्ग थे जिनकी न्यायप्रियता के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता और जिनकी निन्दा किसी तरह सम्भव नही। यही वे लोग है जिनके वचन एव कर्म शरीअत के अनुसार प्रामाणिक है। सुन्नी मुसलमान उनकी न्याय-प्रियता पर एकमत है। केवल थोड़े से मोतजेला उनकी आलोचना करते है। न्याय-प्रिय लोग उनकी बातो को कोई महत्त्व नही देते। यदि न्याय की दृष्टि से उनके विषय मे अध्ययन किया जाय तो उनके और हजरत उस्मान के विषय मे तथा उनके बाद अन्य मामलो मे मतभेद रखनेवाले समस्त सहाबियों को निरपवाद समझा जायगा और किसी पर कोई दोष न लगाया जा सकेगा तथा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर बाध्य होंगे कि यह सब झगड़ा-फसाद अल्लाह की ओर से एक ऐसी परीक्षा थी जिसके द्वारा उसने उम्मत को जाँचा तथा परखा था। यह समय वह था कि ईश्वर ने मुसलमानो के हाथो उनके शत्रुओं का जोर तोड़ डाला था और उनकी भूमि एव राज्य पर अधिकार जमा लिया था। बसरा, कूफा, शाम तथा मिस्र मे मुसलमान प्रतिरक्षा की दृष्टि से फैले हुए थे।

यह भी सत्य है कि केद्र से दूर बसे हुए अरब बड़े असभ्य थे। उन्हे मुहम्मद साहब के साथ रहने का अवसर न मिला था। उनसे अपने चरित्र को सुधारने तथा मुहम्मद साहब के चरित्र के गुण सीखने की आशा न की जा सकती थी। इसके साथ साथ जाहिलियत की भावनाएँ उनमे पूर्णतः वर्त्तमान थी, उदाहरणार्थ, वे निष्ठुर "असबियत" की पूजा करनेवाले एव अभिमानी थे। धार्मिक विश्वास के कारण जो सौभाग्य

१. यह युद्ध हजरत अली एवं हजरत मुहम्मद साहब की पत्नी हजरत आएशा में ४ दिसम्बर ६५६ ई० को बसरे के समीप हुआ। हजरत आएशा ऊँट पर सवार थीं अतः यह युद्ध जमल अथवा ऊँट का युद्ध कहलाता है।

२. सिफ़्फ़ीन का युद्ध हजरत अली एवं मुआविया में फ़ुरात नदी के उस पार रक़्क़ा के समीप जून से अगस्त ६५७ ई० तक ११० दिन चलता रहा।

उन्हे प्राप्त हुआ था, उससे वे सन्तुष्ट न थे। जब इस्लामी सल्तनत को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो वे अरब उन महाजिरो एव असार के अधीन हो गये जो कुरैश, किनाना, सकीफ, हुजैल, हिजाज एव यसरिब[1] के कबीलो मे सबसे पहले मुसलमान हुए। उनको उन महाजिरो एवं असार की अधीनता खटकी और वे इस बात पर कुढ़ने लगे, कारण कि वे अपने कुल को भी सबसे ऊँचा समझते थे और उन्हे अपनी सख्या पर भी गर्व था। उन्हे इस बात का अभिमान था कि वे फ़ारस तथा रूम सरीखी बहुत बडी-बडी शक्तियों से टक्कर ले चुके है। उदाहरणार्थ, बक्र बिन वाइल, अब्द-अल-कैस बिन रबीअह, किन्दह तथा यमन के अज्द, मुज़र के तमीम तथा कैस सब इसी भ्रम मे पड़े हुए थे। ये लोग कुरैश के प्रभुत्व से जलते और उसे बुरा मानते थे। उनकी आज्ञाकारिता की उपेक्षा करते और उनसे बचने के लिए बहाने ढूँढा करते थे। कभी कहते कि हम पर अत्याचार हो रहा है और अपने अधिकारो के नष्ट होने की चर्चा करने लगते। कुरैश न्याय करने मे कमजोर है। इसी प्रकार की बाते राज्य मे फैलने लगी। शनैः-शनैः ये समाचार मदीने तक पहुँच गय और अतिशयोक्ति के साथ हजरत उस्मान के कानो तक पहुँचाये जाने लगे। आपने, इब्ने उमर, मुहम्मद बिन मसलमा, उसामा बिन जैद इत्यादि को जाँच हेतु नगरो में भेजा। इन लोगो ने जाँच-पडताल की तो इन्हे कुरैश अधिकारियों की किसी अनुचित बात का पता न लगा। उन्होने लौटकर जो कुछ देखा था वह बता दिया। उधर नगर के दुष्ट लोगो ने अपनी दुष्टता को जारी रखा। उनके दुराचार मे वृद्धि होती गयी, यहाँ तक कि कूफे के हाकिम वलीद बिन उकबा पर मदिरा-पान का आरोप लगाया गया और एक समूह ने इस विषय मे गवाही दे दी। हजरत उस्मान ने उसे इस्लामी दड-विधानानुसार दड देकर पदच्युत कर दिया। फिर विभिन्न नगरो के लोग अपने-अपने हाकिमो की शिकायते लाने लगे और उनको पदच्युत करने की माँग करने लगे। यही शिकायते हजरत अली, आएशा, जुबैर एव तलहा से भी की गयी। इन्ही शिकायतो पर हजरत उस्मान ने कुछ हाकिमों को पदच्युत भी किया, किन्तु लोग कटु आलोचनाएँ एव निदा करते ही गये। फिर कूफा के हाकिम सईद बिन आस को शिष्ट-मडल के साथ भेजा गया, किन्तु मार्ग मे ही उसे रोककर पदच्युत करके लौटा दिया गया। फिर मदीने में हजरत उस्मान एव अन्य सहाबियों मे मतभेद हो गया। समस्त सहाबियो ने हाकिमों को पदच्युत करने

१. मदीने।

की माँग की। हजरत उस्मान ने कहा, कि "उनके अपराध का प्रमाण न मिलने तव ऐसा नही हो सकता।" फिर सहाबियों ने हजरत उस्मान के अन्य कार्यों एव आचरण की आलोचना की, किन्तु हजरत उस्मान भी इजतेहाद पर दृढ़ थे तथ अन्य सहाबा भी। तदुपरान्त उपद्रवकारियो एव विद्रोहियो के एक बहुत बड़े समूह ने मदीने पर आक्रमण कर दिया। बाह्य रूप से वे यह कहते थे कि हम हजरत उस्मान से न्याय माँगने आये है, हालाँ कि वास्तव मे वे हजरत उस्मान की हत्या का षड्यत्र रच कर आये थे। ये समूह बसरा, कूफा एव मिस्र से आये थे। हजरत अली, आएशा जुबैर तलहा इत्यादि भी इन लोगों का समर्थन करने लगे। उनका कथन था कि न्याय होना चाहिए और जिस प्रकार सम्भव हो विद्रोह को शान्त करना चाहिए अन्त मे उन लोगो ने हजरत उस्मान को भी सहमत कर लिया। उनके आदेशानुसार मिस्र का हाकिम पदच्युत कर दिया गया। विद्रोही मदीने से वापस हो गये और फिर लौट आये। इस बार वे हजरत उस्मान का एक जाली पत्र लाये और यह दावा किया कि इसे हमने हजरत उस्मान के राजदूत से, जिसे वह मिस्र के हाकिम के पास ले जा रहा था, छीना है। उसमे लिखा था कि इन विद्रोहियो की हत्या कर दो। हजरत उस्मान ने शपथ लेकर इस पत्र से अज्ञानता प्रकट की। विद्रोहियो ने माँग की कि अपने कातिब[1] मरवान को हमारे सुपुर्द कर दे। मरवान ने भी शपथ लेकर अपनी अज्ञानता प्रकट की। हजरत उस्मान ने कहा कि "इससे बढ़कर और सफ़ाई क्या हो सकती है ?" फिर तो खुल्लमखुल्ला विद्रोहियो ने हजरत उस्मान के घर का अवरोध कर लिया और अवसर पाकर घर मे घुस गये और आप को शहीद कर दिया। इस प्रकार उपद्रव एव अशान्ति के द्वार खुल गये। अब इन मामलो मे विरोध करनेवाले सहाबियो मे से प्रत्येक गुट के पास पर्याप्त बहाने थे। प्रत्येक गुट धर्म को पूरा-पूरा महत्त्व देता था और धर्म की किसी बात को किसी मूल्य पर नष्ट करने के लिए तैयार न था। उनके आचरण का आधार इजतेहाद पर था और अपने इजतेहाद के ही प्रकाश मे वे सब कुछ करते थे। इसके अतिरिक्त उनकी हार्दिक इच्छाओं से ईश्वर ही परिचित है। हम उनके विषय में कोई शका प्रकट करने मे असमर्थ है, कारण कि इन सम्मानित बुजुर्गो की कृतियाँ एव उनकी वाणी हमे उनके विषय मे सद्भावनाएँ रखने पर विवश करती है।

(२) हजरत हुसेन की घटना इस प्रकार है। जब यजीद के दुराचार एव

१. सचिव।

व्यभिचार से सब लोग परिचित हो गये तो शीओं के समर्थकों ने हजरत हुसेन को कूफे मे आमन्त्रित करते हुए लिखा कि "आप पधारे, हम आपकी सहायता करेंगे।" हजरत इमाम ने सोचा कि 'यजीद के दुराचार का विरोध तो करना ही है' फिर इसमे विलम्ब क्यो किया जाय, जब कि उन्होने स्वय अपने को इसके लिए समर्थ और शक्तिमान् भी पाया। योग्यता तो उनमे और भी अधिक थी, किन्तु शक्ति के सम्बन्ध मे वे उचित निर्णय न कर सके। कारण कि मुजर की "असबियत" कुरैश मे पायी जाती थी, कुरैश की अब्दे मनाफ मे, और अब्दे मनाफ की बनी उमय्या मे। कुरैश एव सभी लोग इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे और कोई इसे अस्वीकार नही कर सकता था। इस्लाम के प्रारम्भ मे लोग चमत्कारो, वहियो[१] के अवतरण एवं मुसलमानों की सहायतार्थ फिरिश्तों के आगमन को देखकर अपनी "असबियत" एवं शक्ति को भूल गये थे। जाहिलियत की "असबियत" का अन्त हो चुका था और अब केवल वह स्वाभाविक "असबियत" शेष रह गयी थी, जिससे लोग अपनी प्रतिरक्षा कर सकते, धर्म को उन्नति दे सकते और जिहाद मे उससे काम ले सकते थे। इस प्रकार धर्म तो अपनी नीव पर दृढ था और आदतो का प्रभाव समाप्त हो चुका था।

जब नबी का युग समाप्त हुआ और आश्चर्य चकित करनेवाले चमत्कार बन्द हो गये तो प्राचीन आदते पुनः अपना रग दिखाने लगी। मुजर, बनी उमय्या के सबसे बडे आज्ञाकारी बन गये। इस बात से यह पता चलता है कि हजरत इमाम हुसेन से स्थिति समझने मे कुछ भूल हो गयी, किन्तु यह सासारिक वार्ता-विषयक भूल थी, अतः इससे उनके सम्मान मे कोई अन्तर नही पड़ता। अब जहाँ तक शरई आदेश का सम्बंध है, उसके समझने मे उन्होने कदापि भूल नही की, कारण कि उसका आधार उनकी निर्णय-शक्ति थी और उनका विचार यही था कि उनमे विरोध की शक्ति वर्त्तमान है।

जब हजरत इमाम मदीने से कूफे को प्रस्थान करने लगे तो हजरत इब्ने अब्बास, इब्नुज् जुबैर, इब्ने उमर तथा हजरत हुसेन के भाई इब्ने हनाफिया एवं अन्य लोगों ने उन्हे जाने से रोका। उनका विचार था कि हजरत भूल कर रहे है। किन्तु भाग्य मे इसी प्रकार लिखा जा चुका था, अतः इमाम हुसेन ने अपने संकल्प को न त्यागा

१ वही।

और रवाना हो गये। हजरत इमाम हुसेन के अतिरिक्त जो अन्य सहाबी लोग हिजाज मे थे तथा जो शाम एव इराक मे यजीद के साथ थे, वे यजीद पर आक्रमण उचित न समझते थे, हालाँ कि वह व्यभिचारी था, कारण कि इसमे अशान्ति एव रक्त-पात का भय था। इसी कारण वे इससे बचे रहे और उन्होने हजरत इमाभ का साथ न दिया। किन्तु उन्होने हजरत इमाम को न बुरा बताया और न दोषी, कारण कि वे भी तो मुजतहिद थे और मुजतहिदो की यह विशेषता है कि उनके मत-भेद को पाप का कारण नही बताया जाता। इसी प्रकार उन सहाबियो को भी पापी समझना बहुत बडी भूल है, जिन्होने हजरत इमाम हुसेन की सहायता की ओर से उपेक्षा की और यजीद के साथ थे और यजीद के विरुद्ध विद्रोह उचित न समझते थे। कारण कि इमाम हुसेन ने स्वय अपने सम्मान एवं अधिकार की पुष्टि मे जाबिर बिन अब्दुल्लाह, अबी सईद खुजरी, अनस बिन मालिक, सहल बिन साद तथा जैद बिन अरकम सरीखे सहाबियो के नाम प्रमाण मे प्रस्तुत किये, किन्तु इनमे से किसी पर भी यह दोष नही लगाया कि उसने मेरी सहायता की ओर से उपेक्षा की, क्योकि वे जानते थे कि सहाबा भी इजतेहाद के अनुसार आचरण कर रहे है। वे स्वय भी इजतेहाद के अनुसार कार्य कर रहे थे, फिर किसी पर क्या दोष लगाया जा सकता था। प्रत्येक का इजतेहाद पृथक् है। इसका उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि कोई शाफई तथा मालिकी काजी किसी हनफी को नबीज[1] पीने के कारण इस्लाम के अनुसार स्वीकृत दड नही दे सकता, क्योकि नबीज पीने का हनफियो मे निषेध नही।

फिर यह भी न समझना चाहिए कि जिस प्रकार अन्य सहाबा ने इजतेहादी मत-भेद के कारण हजरत इमाम का साथ छोडा, उसी प्रकार हजरत इमाम उन्ही के इजतेहाद से शहीद भी हुए होगे। ईश्वर क्षमा करे। इस घोर पाप का उत्तर-दायित्व तो केवल यजीद और उसके साथियो पर है। फिर यह भी न कहना चाहिए कि जब सम्मानित सहाबा ने यजीद के व्यभिचारी होने पर भी उस पर आक्रमण की स्वीकृति नही दी तो उसका आचरण भी उनके निकट ठीक ही होगा। यह कदापि सम्भव नही। व्यभिचारी के वही आचरण ठीक एव स्वीकृत बताये जा सकते है जो शरीअत के क्षेत्र मे हो। इस स्थान पर युद्ध की तो सहाबा के निकट कोई कल्पना ही नही थी, जो वे इसे उचित समझते, क्योकि विद्रोहियों से युद्ध करने के लिए

१. एक प्रकार की खजूर की मदिरा।

उनके निकट इमामे आदिल[1] का नेतृत्व अनिवार्य है, जिसका यहाँ अभाव था, कारण कि यजीद इमामे आदिल नही था, जिसके नेतृत्व मे युद्ध किया जा सके।

इस विवरण का निष्कर्ष यह निकला कि सहाबा के निकट न तो इमाम हुसेन का यजीद के साथ युद्ध उचित था, न यजीद का युद्ध हजरत इमाम के साथ। यजीद ने जो अनुचित कार्य किये उनसे उसकी दुष्टता में वृद्धि होती है और उसकी कुकृतियों का ही प्रमाण मिल जाता है। हजरत इमाम शहीद है और पुण्य के पात्र। वे अपने इजतेहाद पर और सत्य के मार्ग पर आरूढ़ ही माने गये है। जो सहाबा यजीद के साथ थे, वे भी अपने इजतेहाद पर दृढ़ होने के कारण सत्य के ही अनुयायी माने जायेंगे। इस समस्या पर काजी अबू बक्र बिन अरबी मालिकी[2] ने "अल-कवासिम वल अवासिम" नामक ग्रथ मे जो मत प्रकट किया है वह सत्य एव न्याय पर आधारित नही। उसने कहा है कि "हजरत इमाम की हत्या अपने नाना[3] की शरीअत के अनुसार हुई। इस भूल का यह कारण है कि काजी अबू बक्र ने इमामे आदिल की शर्त की ओर से उपेक्षा की है।"

(३) जहाँ तक इब्नुज् जुबैर का सम्बंध है उन्होंने भी इमाम हुसेन की भाँति स्थिति का भली-भाँति अनुमान लगाने में भूल की और धोखा खाया। कारण कि बनू असद न तो जाहिलियत ही मे और न इस्लाम के बाद बनी उमय्या के टक्कर के थे। यह सिद्ध हो चुका कि हजरत अली तथा मुआविया के झगड़े मे मुआविया की भूल नही बतायी जा सकती, कारण कि इजतेहाद उन्होने भी किया था और इजमा के आधार पर इजतेहाद मे भूल भी हो सकती है और वह ठीक भी हो सकता है। इसी प्रकार इब्नुज् जुबैर एवं अब्दुल मलिक[4] के झगड़े मे भी अब्दुल मलिक को दोषी नही ठहरा सकते। रहा यजीद का मामला, तो वहाँ यजीद के व्यभिचार ने उसे पापी बना दिया था। फिर अब्दुल मलिक की न्याय सम्बधी शक्ति बड़ी ही उत्कृष्ट थी। उनके न्याय के सम्बध मे यह प्रमाण पर्याप्त है कि इमाम मालिक उनके आचरण से अपने तर्क की पुष्टि करते थे।[5] इसके अतिरिक्त इब्ने अब्बास तथा इब्ने उमर

१. न्यायकारी इमाम।
२. मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह, ४६९–५४३ हि० (१०७६–७७ से ११४८ ई०)।
३. मुहम्मद साहब।
४. अब्दुल मलिक बिन मरवान, उमय्या वंश का ५वाँ ख़लीफ़ा (६८५–७०५ ई०)
५. इससे पूर्व भी इब्ने ख़लदून में यही दलील दी गयी है।

ने इब्नुज् जुबैर की बैअत को छोडकर अब्दुल मलिक से बैअत की, यद्यपि इब्नुज् जुबैर की बैअत के समय दोनो बुजुर्ग हिजाज मे ही थे। अधिकाश सहाबा का यही मत था कि इब्नुज् जुबैर की बैअत वास्तव मे प्रामाणिक नही, कारण कि बैअत के समय सम्मानित एव श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित न थे, जिस प्रकार मरवान[1] की बैअत के समय ये लोग अनुपस्थित थे। इसके साथ-साथ दूसरी ओर इब्नुज् जुबैर का मत इसके विरुद्ध था। क्योकि प्रत्येक दशा मे दोनो ओर मुजतहिद थे, अत बाह्य रूप से सत्य की सम्भावना दोनो ही ओर थी, किन्तु निश्चित रूप से सत्य के विषय मे कुछ कहना कठिन था। जो रक्तपात एव हत्याकाड बाद मे हुआ वह फिकह के नियमो एव सिद्धात के अनुसार हुआ, किन्तु इब्नुज् जुबैर हर प्रकार से शहीद ठहरे और पुण्य के पात्र भी, कारण कि उनके उद्देश्य एव सकल्प शुभ थे। वे जीवन पर्यन्त सत्य की खोज, इच्छा एव सहायता करते रहे।

यही दृष्टिकोण हमे भूतकाल के सभी पवित्र सहाबा एव ताबेईन के विषय मे रखना चाहिए। यही बुजुर्ग उम्मत के चुने हुए एव सम्मानित व्यक्ति समझे जाते है। यदि हम इन्ही की आलोचना करने लगे तो फिर उम्मत मे सत्यता किसमे मिलेगी? मुहम्मद साहब का आदेश है—"मेरे समय के लोग उम्मत मे सर्वोत्कृष्ट है। उनके बाद वे लोग होगे जो इनका अनुसरण करेगे।" अन्तिम वाक्य को दो-तीन बार दुहराकर उन्होने कहा कि "इनके बाद तो झूठ प्रचलित हो जायगा।" इस कथन मे मुहम्मद साहब ने सत्यता को प्रथम पीढ़ी और उसके बाद की पीढी तक ही सीमित किया है।

जब वास्तविकता यह है तो फिर बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। हृदय एव जिह्वा को अपने अधिकार मे रखना चाहिए। ऐसा न हो कि इन बुजुर्गो के कार्यो के विषय मे कोई शका अथवा सन्देह हृदय मे आ जाय, अथवा उनकी शान के विरुद्ध कोई शब्द जबान से निकल जाय, अपितु यथासम्भव इन लोगो के कार्यो की व्याख्या अच्छी ही करनी चाहिए, कारण कि इन्होने जो कुछ भी मतभेद प्रकट किया वह तर्क एव दलील से किया, इनका पारस्परिक युद्ध जिहाद के रूप मे था और केवल सत्य के सहायतार्थ। यह भी भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि इन बुजुर्गो

१. अब्दुल मलिक का पिता, मरवान बिन हकम, जो उमय्या वंश का चौथा ख़लीफ़ा था और जो ६८४ से ६८५ ई० तक लगभग २९८ दिन तक ख़लीफ़ा रहा।

का विरोध बाद मे आनेवाली उम्मत के लिए उपकार का साधन है। जो जिसका चाहे उसका अनुकरण करे और अपना इमाम तथा मार्गदर्शक बनाये।

(३१) धार्मिक ख़िलाफ़त के पद एवं सेवाएँ

इससे पूर्व यह स्पष्ट किया जा चुका है कि खिलाफत वास्तव मे शारे[1] का उत्तराधिकारी एवं जानशीन होना है। इसका उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा धर्म की भी रक्षा हो और संसार का भी शासन-प्रबंध चले। शारे धार्मिक एव सासारिक दोनों ही समस्याओ का समाधान करता है। धार्मिक समस्याओ का समाधान उन शरई आवश्यकताओ की पूर्ति द्वारा, जिनके प्रचार हेतु वे नियुक्त किये गये है और जिनके पालन कराने का उत्तरदायित्व उन पर है, किया जाता है। सासारिक राजनीति मे वे उन आवश्यकताओ के कारण हस्तक्षेप करते है जो मानव-समाज के लिए जरूरी है। यह बात भी मान्य हो चुकी कि समाज एव संस्कृति मनुष्य के लिए आवश्यक है, अत: तत्सम्बधी समस्याओ की देख-भाल भी उन्हे करना जरूरी है, कारण कि इन समस्याओ के समाधान की उपेक्षा के कारण मनुष्यों की सब आबादी नष्ट हो जायगी। हम इस बात का भी उल्लेख कर चुके है कि बादशाह तथा उसका गौरव सासारिक आवश्यकताओ की रक्षा हेतु पर्याप्त है। यदि शासन शरा के आदेशों के अनुसार होने लगे तो वह पूर्ण समझा जायगा, कारण कि शारे मनुष्यों की आवश्यकताओ को सबसे अधिक अच्छा समझता है। इस तथ्य के अनुसार यदि शासन इस्लामी व्यवस्था के अनुसार है तो वह खिलाफत कहलायेगी और उसी से सम्बंधित समझी जायगी। यदि सल्तनत एव शासन का धर्म से कोई सम्बंध न हो तो वह केवल सल्तनत होगी।

प्रत्येक दशा मे हर सल्तनत के अधीन कुछ पद एव विभाग होते है, जिनमें सल्तनत का कार्य विभाजित होकर लोगों मे बँट जाता है। प्रत्येक पदाधिकारी अपने कर्त्तव्य का, जिसके लिए वह बादशाह के आदेशानुसार नियुक्त होता है, उत्तरदायी होता है। सर्वोच्च प्रभुत्व बादशाह को प्राप्त होता है। इस प्रकार सल्तनत का कार्य भली-भाँति सम्पन्न होता रहता है। खिलाफत के अधीन भी शासन-प्रबन्ध होता है और खिलाफ़त का धार्मिक उत्तरदायित्व भी विभिन्न पदो मे विभाजित होता है, जिनकी व्यवस्था इस्लामी खलीफाओ के हाथ मे होती है। अत: हम अब उस धार्मिक

१. मुहम्मद साहब से तात्पर्य है।

उत्तरदायित्व एवं उन पदों का उल्लेख करते हैं जिनका सम्बंध विशेष कर खिलाफत से है। तदुपरान्त हम सल्तनत एवं राज्य के पदो एव सेवाओं का उल्लेख करेंगे।

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि धार्मिक अथवा शरा सम्बधी उत्तर-दायित्व अथवा पद, उदाहरणार्थ नमाज, फतवा, कजा, जिहाद एव एहतिसाब इत्यादि इमामते कुबरा[1] अथवा खिलाफ़त के अधीन है, कारण कि खिलाफ़त ही इन समस्त उत्तरदायित्वों का मूल सूत्र है और ये सब उसी से निकली है और उसी मे समाविष्ट है। जाहिर है कि खिलाफत इस सामान्य दृष्टिकोण पर आधारित होती है कि इसके द्वारा कौम एव मिल्लत की सांसारिक एव धार्मिक आवश्यकताओं मे उचित परिवर्तन किये जायें और सब लोगो पर शरई आदेश जारी किये जायें। इस कारण ये सब पद खिलाफत से सम्बधित है और वास्तव में ये उसी की शाखाएँ है।

नमाज़ के इमाम

इनमें नमाज की इमामत का पद सब से ऊँचा है, अपितु राज्य एवं सल्तनत से भी श्रेष्ठ है, कारण कि वे तो खिलाफत के ही अधीन है। खिलाफत का यह एक सर्वोच्च पद है। इस दावे का प्रमाण हमे उस दलील से मिलता है जो सम्मानित सहाबा ने हजरत अबू बक्र सिद्दीक को खिलाफत के लिए चुनते समय दी थी और ये शब्द कहे थे कि "जब मुहम्मद साहब ने धार्मिक मामले में आपका हमारे नेतृत्व के लिए चुनाव किया तो हम आपको अपने सांसारिक मामले मे सरदार एव खलीफा क्यों न बना ले।[2]" यदि नमाज को राजनीति की अपेक्षा अधिक सम्मान न प्राप्त होता तो सहाबा का यह निष्कर्ष ठीक न होता।

जब यह बात सिद्ध हो गयी तो यह भी समझ लेना चाहिए कि मदीने में मस्जिदे दो प्रकार की थी। एक बड़ी मस्जिदे, जहाँ लोग अधिक सख्या मे एकत्र होकर नमाज पढते थे, दूसरी प्रत्येक मुहल्ले की छोटी-छोटी मस्जिदें, जो मुहल्ले वालो के लिए सीमित थी। वे ही वहाँ नमाज पढ़ते थे। इनमे बडी मस्जिदों की व्यवस्था या तो खलीफा के हाथ में होती थी अथवा बादशाह, वजीर एव काजी के हाथ मे, जिनको खलीफा की ओर से अधिकार प्राप्त होता था। इन मस्जिदों मे इमाम नियुक्त किये जाते थे जो पाँचो समय की नमाज जुमे एव दोनो ईदो की नमाज, चन्द्र तथा सूर्य-

१. सर्वोत्कृष्ट इमामत।

२. इब्ने ख़लदून ने इस दलील का इससे पूर्व भी उल्लेख किया है।

ग्रहण के समय की नमाज तथा वर्षा की प्रार्थना हेतु नमाज पढाते थे। इमाम की नियुक्ति उत्कृष्ट एव सर्वोपरि कार्य है ताकि सर्वसाधारण के हित की रक्षा मे कोई विघ्न न पड़े। जो आलिम जुमे की (सामूहिक) नमाज़ को अनिवार्य समझते है वे इमाम की नियुक्ति को भी अनिवार्य मानते है।

जो मस्जिदे विशेष मुहल्लो तथा क़ौमो की है उनके अधिकार आस-पास के निवासियो के हाथ मे रहते है। खलीफ़ा अथवा सुल्तान का उनसे कोई सम्बध नही रहता। अब रहे इमामत के अन्य आदेश और उसकी शर्ते, तो वह फिकह के ग्रथो मे विस्तार से लिखी है या "एहकामे सुल्तानिया[1]" के ग्रथो मे, उदाहरणार्थ मावर्दी इत्यादि के ग्रथो मे इनका उल्लेख किया गया है। अत हम इस विवरण को अधिक बढाना नही चाहते। नमाज की इमामत के विषय मे भूत काल के खलीफाओ का यह आचरण रहा है कि वे इसको किसी अन्य पर नही टालते थे, अपितु इस उत्तरदायित्व को स्वय पूरा करते थे और इस कार्य हेतु किसी को अपनी ओर से नियुक्त न करते थे। कई खलीफ़ा खास मस्जिद मे अजान अथवा नमाज की प्रतीक्षा करते हुए आहत हुए। इससे यह सिद्ध होता है कि खलीफा लोग स्वय नमाज पढाते थे और इस कार्य को किसी अन्य पर न छोड़ते थे। उमय्या वश के खलीफाओ के समय मे भी यही प्रथा रही। वे इस सम्मान को इतना उत्कृष्ट समझते थे कि वे स्वय यह उत्तरदायित्व निभाते थे। अब्दुल मलिक के विषय मे प्रसिद्ध है कि उसने अपने हाजिब को आदेश दे दिया था कि "तुमको तीन व्यक्तियो के अतिरिक्त प्रत्येक को रोक लेने का अधिकार प्राप्त है। एक भोजन लानेवाले को, कारण कि विलम्ब की वजह से भोजन नष्ट हो जाता है, दूसरे अजान देनेवाले को, कारण कि वह अल्लाह के आदेश को पूरा करने के लिए लोगो को बुलाता है, उसका रोकना किसी प्रकार उचित नही, तीसरे डाक लानेवाले को, कारण कि डाक के रुक जाने अथवा उसमे देर लगने से राज्य का शासन अस्त-व्यस्त हो जाता है।" जब खिलाफत पर सल्तनत की छाप पडी और शाहाना शान एव गौरव की उन्नति हुई तो खलीफाओ ने सर्वसाधारण से अपने आपको पृथक् रखना एव ऊँचा समझना प्रारम्भ कर दिया। खलीफाओ ने इमामत के लिए अपना नायब नियुक्त करने की प्रथा चलायी। कभी-कभी वे स्वय इमाम बन जाते और कभी ईद अथवा जुमे की नमाज पढ़ाते। इस प्रकार अब्बासी एव उबैदीईन खलीफ़ाओं के समय में यही प्रथा रही।

१. राज्य के शासन-प्रबंध संबंधी ग्रंथ।

मुफ़्ती

इमाम के बाद मुफ़्ती का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए खलीफा के वास्ते यह आवश्यक है कि आलिमो एव शिक्षको मे से किसी योग्य व्यक्ति को छाँटकर फतवे का कार्य सुपुर्द करे और उसके कार्य को सुगम बनाये। जो फतवा देने के योग्य न हो उनको फतवा लिखने से पूर्णत रोक दे, कारण कि फ़तवा लिखने का कार्य मुसलमानों के धार्मिक हित से अत्यधिक सम्बधित है। इस लिए इसकी व्यवस्था खलीफा के ही जिम्मे है और इसका भार उसी के कन्धों पर है। यदि कोई अयोग्य व्यक्ति इस पद पर नियुक्त हो जायगा तो लोगों को मार्गभ्रष्ट कर डालेगा। खलीफा का यह भी कर्त्तव्य है कि शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान के प्रचार हेतु मस्जिदो में शिक्षकों एव मुर्दरिसो को नियुक्त करे। यदि मस्जिदे बडी है जो सीधे सुल्तान की देख-रेख मे है, तो इस प्रकार की धार्मिक सस्थाओ के लिए सुल्तान की अनुमति आवश्यक है। यदि साधारण मस्जिदे है तो सुल्तान की आज्ञा आवश्यक नही। सक्षेप मे मुफ्तियो एव शिक्षको पर कडी दृष्टि रखी जाय। जो जिस उत्तरदायित्व का पात्र न हो उसे वह उत्तरदायित्व कदापि न दिया जाय, अन्यथा नेतृत्व के इच्छुक मार्गभ्रष्ट हो जायॅगे और भलाई चाहनेवाले भटक जायॅगे। इसी लिए हदीस मे उल्लेख हुआ है—"तुममे से जो कोई नि सकोच फतवा दे देता है, वह मानो नरक का भोजन बनने के लिए अधिक तैयार होता है।" इसी महत्त्व के कारण सुल्तानो का यह कर्त्तव्य हो गया कि वे जैसा उचित समझे, लोगो को फतवे एव शिक्षा-दीक्षा की अनुमति दे। जो इस कार्य के योग्य न हो उसे पूर्णत. रोक दे।

काजी

अब रहा काजी का पद, तो यह भी खिलाफत के उत्तरदायित्व मे सम्मिलित है। खिलाफत का सबसे बडा कर्त्तव्य यह है कि लोगों के पारस्परिक झगडों का इस प्रकार निर्णय करे कि वे सर्वदा के लिए समाप्त हो जायॅ, किन्तु निर्णय के लिए यह आवश्यक है कि वह कुरान शरीफ एव सुन्नत के आदेशो के अनुसार हो। खिलाफत से कजा[1] के इसी गहरे सम्बध के कारण इसको खिलाफत का उत्तरदायित्व माना गया है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल मे खलीफा लोग इस पद को स्वय सँभालते थे और अपने अतिरिक्त किसी को यह पद न प्रदान करते थे। हजरत उमर पहले

१. क़ाज़ी का पद।

खलीफ़ा थे जिन्होंने क़ज़ा के पद पर अन्य लोगों को नियुक्त किया। मदीने मे वे स्वयं तथा अबू दरदा क़जा के कार्य को सँभालते थे। बसरे में आपने शुरैह को तथा कफ़े में अबू मूसा अशअरी को क़ाजी का पद प्रदान कर दिया था। इस सम्बध मे अबू मूसा को नियुक्त करते समय हजरत ने एक पत्र लिखा जो कजा के आदेशो एवं निर्णय के विषय मे एक पूर्ण विधान है। इसी महत्व के कारण हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे है।

"कज़ा निःसन्देह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व एवं ऐसी सुन्नत है जिसका पालन करना आवश्यक है। इस कारण सोच-समझकर इस उत्तरदायित्व को पूरा करो और उन बातों का ध्यान रखो जिनसे न्याय की उपेक्षा न हो सके। अपने वचन का पालन करो। अपने सामने तथा अपने न्यायालय में न्याय की उपेक्षा मत करो, ताकि शक्तिशाली शरीफ़ लोग तुमसे अनुचित पक्षपात की आशा न करें और शक्तिहीन लोग तुम्हारे न्याय की ओर से निराश न हो जायँ। वादी से साक्षी माँगो और अपराध अस्वीकार करनेवाले से शपथ लो। मुसलमानों में आपस मे समझौता करा देना बड़ा अच्छा है, किन्तु ऐसा समझौता न हो जिससे कोई हराम चीज हलाल अथवा हलाल चीज हराम हो जाय। यदि कल तुम कोई निर्णय कर चुके हो तो उस पर ठंडे दिल से सोचो। यदि न्याय तुम्हे किसी अन्य ओर ज्ञात हो तो न्याय का पालन करने मे तुम किसी प्रकार का संकोच एवं लज्जा मत करो, कारण कि न्याय ही सर्वोत्कृष्ट है। सत्य की ओर लौट आना, असत्य पर दृढ़ रहने से कहीं अच्छा है। जो बात तुम अल्लाह की किताब एवं रसूल की सुन्नत में न पाओ और तुम्हे उसके निर्णय मे कोई झिझक हो तो उस निर्णय के उदाहरण एवं नजीरे सामने लाओ और उनके अनुसार निर्णय करो। जो व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु के विषय में दावा करे जिसका कोई प्रमाण न हो, अथवा किसी ऐसे साक्षी का हवाला दे जो उपस्थित न हो, तो निर्णय को गवाही की प्राप्ति तक टाल दो और स्थगित रखो। यदि वह गवाह पेश कर दे तो उसके विषय में निर्णय दो, अन्यथा नहीं। सन्देह दूर करने का केवल यही उपाय हो सकता है और अज्ञानता केवल इसी प्रकार दूर हो सकती है। एक मुसलमान की गवाही दूसरे मुसलमान के विषय में स्वीकार की जा सकती है। केवल उस व्यक्ति की गवाही स्वीकार नहीं की जा सकती जिसको किसी अपराध के दंड में कोड़े लग चुके हों, अथवा

उसकी गवाही झूठी सिद्ध हो चुकी हो, अथवा यह प्रमाण मिल जाय कि वह दास की श्रेणी में है। कारण कि अल्लाह शपथ के कारण क्षमा कर देता है। अभियोगी को कभी मत डाँटो फटकारो, क्योंकि न्याय की माँग करने-वालों को न्याय प्रदान करने में बड़ा पुण्य है। इसी से संसार में प्रसिद्धि होती है।"

भूत काल के खलीफाओं ने यद्यपि कजा का उत्तरदायित्व दूसरों के जिम्मे रखा था, किन्तु जो समस्याएँ सर्वसाधारण की राजनीति से सम्बधित थी, उनका समाधान करना खलीफाओं का ही विशेष उत्तरदायित्व होता था। उदाहरणार्थ जिहाद का प्रबध, राजधानी की रक्षा का प्रबन्ध तथा सीमातो की प्रतिरक्षा इत्यादि कार्य वे स्वय ही करते थे। उन्हे वे किसी अन्य पर न छोड़ते थे, कारण कि वे बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य थे। अन्य लोगों को केवल अभियोगों के निर्णय का उत्तरदायित्व दिया जाता था। खलीफा लोग अपना कार्य कुछ हलका करने के लिए उनको इस कार्य हेतु अपना उत्तराधिकारी बनाते थे। फिर क़जा का उत्तरदायित्व उसी को सौपते थे जो वश अथवा कुल मे उनकी "असबियत" मे ही सम्मिलित होता था। किसी अपरिचित को यह पद न दिया जाता। कजा के सम्बध मे आदेश तथा शर्ते फिकह अथवा "एह-कामे सुल्तानिया" के ग्रन्थों मे मिल जायँगी। खलीफाओ के शासनकाल मे काजी को केवल अभियोगो के निर्णय का अधिकार था, किन्तु शनै-शनैः क़ाजियो के जिस प्रकार अधिकार बढते चले गये, अन्य अधिकार भी उन्ही को सौपे जाने लगे। आगे चलकर अभियोगों के निर्णय के अतिरिक्त सर्व साधारण के हित की रक्षा भी उन्ही के सुपुर्द हुई। उदाहरणार्थ, पागलो, अनाथो, दरिद्रों एव मूर्खो की धन-सम्पत्ति की देख-भाल, वसीअतो का पालन, वक्फों का प्रबन्ध, विधवाओं का, यदि उनकी देख-रेख करनेवाला कोई न हो तो, विवाह, मार्गो एव घरो की देख-भाल, दस्तावेजो की जॉच-पडताल, साक्षियो की छान-बीन, अमीनों एव नायबों की देख-रेख और इस विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त करना कि कौन सच्चा है और कौन विश्वास के अयोग्य।

खलीफा लोग पहले काजी को मजालिम[1] के निर्णय का भी अधिकार दिया करते थे। इस प्रकार फौजदारी विभाग का भी उसे हाकिम बनाते थे, हालाँ कि वह एक ऐसा पद है जो एक प्रकार से बादशाह के अधिकारों में सम्मिलित है और

१. ऐसे अभियोग, जिनका शरा में उल्लेख नहीं।

दूसरे प्रकार से काजी के उत्तरदायित्व मे भी। इसके लिए अपार शक्ति की आवश्यकता है ताकि वह अत्याचारी को डाँट-डपट कर, तथा दड देकर उसकी उद्दडता को सर्वदा के लिए समाप्त कर सके। सुल्तान के अतिरिक्त केवल काजी तथा किसी अन्य में इतनी शक्ति कहाँ। काजी का कर्त्तव्य यही समाप्त हो जाता है कि वह गवाही सुने, दोनो पक्षो का इजहार ले, प्रत्येक वस्तु की छान-बीन मे सूझ-बूझ से कार्य करे और यदि सत्य बात का पता न चल सके तो उसे किसी अन्य तिथि पर टाल दे। दोनों पक्षवालो को सधि पर राजी करे, गवाहो से हलफ ले, काजी के अधिक से अधिक ये ही अधिकार है।

भूतकाल के खलीफा लोग क़जा के उत्तरदायित्व को स्वयं सभालते थे। मुहतदी अब्बासी[1] तक यही प्रथा चली आयी। कभी-कभी इस कार्य को वे क़ाजियो को भी सौप दिया करते थे। उदाहरणार्थ, हजरत उमर[2] ने अबू इदरीस खालानी[3] को काजी का पद प्रदान कर दिया था। मामून ने यहया बिन अकमम को क़ाजी नियुक्त किया था और मोतसिम ने इब्ने अबी दाऊद[4] को। कभी-कभी सैनिक दस्ते भी जिहाद हेतु काजी के नेतृत्व मे भेजे जाते थे, मामून के राज्यकाल मे यहया बिन अकसम ने सेनाएँ लेकर रूम[5] के भू-भाग मे कई बार जाकर जिहाद किये। इसी प्रकार काजी मुनजर बिन सईद अब्दुर्रहमान नासिर उमवी उन्दुलस से कई बार मुजाहिदो को लेकर जिहाद के लिए गया। काजी को सेनापति के पद पर नियुक्त करना खलीफाओं, अधिकार-सम्पन्न वजीरों अथवा प्रतापी सुल्तानों के सुपुर्द होता था।

शुर्ता[6]

अब्बासी एवं उन्दुलुस में उमय्या सल्तनत में एवं उबैदीईन के राज्यकाल में मिस्र तथा मगरिब मे अपराधो की देख-भाल एव छान-बीन तथा दड देना साहेबुश् शुर्ता[7] के सुपुर्द होता था। इस प्रकार यह दूसरा धार्मिक पद था जो इन सल्तनतो मे

१. अल-मुहतदी बिल्लाह १४वाँ अब्बासी ख़लीफ़ा (८६९–८७० ई०)।
२. कुछ पोथियाँ के अनुसार हज़रत अली।
३. सम्भवतः उसका पूरा नाम अइज़ल्लाह बिन अब्दुल्लाह था।
४. अहमद बिन अबी दाऊद की मृत्यु २४० हि० (८५४ ई०) में हुई।
५. बैज़न्टाइन।
६. पुलिस।
७. मुख्य पुलिस अधिकारी।

शरा का उत्तरदायित्व समझा जाता था। साहेबुश शुर्ता के अधिकार क़ाजी से कुछ अधिक होते थे। जिन लोगों पर अपराध का सन्देह होता था, उन्हें वह न्यायालय में पेश करता था। अपराधो के पूर्व अपराध की रोक-थाम के लिए वह दंड भी देता था। शरई कानूनों के आधार पर वह लोगों को दड दिला सकता था। जब दंड का आदेश हो जाता तो वह उनको पूरा कराता। क़सास[1] के खून के अपराधियो के हेतु प्रयत्न करता। निरंतर अपराध करने वालो को दंड देना भी उसी के जिम्मे होता था, किन्तु जब खिलाफत का महत्व भुला दिया गया तो कजा एवं साहेबुश् शुर्ता दोनों के पद भी समाप्त कर दिये गये। मजालिम की देख भाल का उत्तरदायित्व सुल्तानों ने स्वयं सँभाला, चाहे खलीफा की अनुमति से अथवा बिना उसकी अनुमति के। साहेबुश् शुर्ता के कर्त्तव्य दो पदों में विभाजित हो गये। एक पद के अधीन अपराधों की छान-बीन, दंड दिलवाना, अपराधियों के शरीर के अंग कटवाना एवं क़सास के मामले आये। इस पद पर एक पूर्णत.पृथक् हाकिम बिठाया गया जो केवल राजनीति की दृष्टि से, न कि शरा की दृष्टि से आदेश जारी करता था। उसको कभी वाली कहते और कभी शुर्ता। दूसरे पद के अधीन उन अपराधों का दड था, जिनका शरा मे उल्लेख नही। कुछ ऐसे भी अपराध इसके अधीन थे जिनका शरा मे उल्लेख है। इस पद की जिम्मेदारी भी काजी की अन्य जिम्मेदारियों मे सम्मिलित कर दी गयी थी। इस प्रकार हमारे समय तक पदो के विभाजन की यही प्रथा चली आ रही है।

अब कजा का पद सल्तनत की "असबियत" से पृथक् हो गया है कारण कि जब तक खिलाफत धार्मिक रही तो कजा की गणना भी धार्मिक कार्यो में होती रही तथा "असबियत" वाले अरब ही कजा के पद को सँभालते अथवा उन लोगों को प्रदान करते थे जो खलीफाओं के सहायक, दास अथवा, आश्रित होने के कारण उन्ही की "असबियत" मे सम्मिलित होते थे। खलीफ़ा को उनका विश्वास होता था कि वे अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभा सकेंगे, किन्तु जब आगे चलकर खिला-फत का गौरव समाप्त हुआ और राज्य एव सल्तनत की उसपर छाप पड़ी तो इस प्रकार के धार्मिक पद ख़िलाफ़त से पृथक् हो गये, कारण कि ये उपाधियाँ बादशाह को शोभा न देती थी और न उसके अनुकूल थी। फिर युग बीतने पर सल्तनत अरबो के हाथ से पूर्णतः निकल गयी और अरबों के अतिरिक्त अन्य लोग सिंहासन के अधिकारी बन गये। उदाहरणार्थ—तुर्क, बरबर इत्यादि। तब तो खिलाफत के ये पद खिलाफ़त

१. खून का बदला खून।

की "असबियत" से पूर्ण रूप से पृथक् हो गये। यह कार्य इस प्रकार सम्भव हुआ कि अरब शरीअत को अपना धर्म समझते थे और जानते थे कि मुहम्मद साहब उन्ही मे पैदा हुए थे और उनके लाये हुए शरीअत के आदेश दूसरी क़ौमों मे प्रचलित है, किन्तु जो लोग अरब न थे उनके विचार ऐसे न थे। वे तो इन पदो को केवल इस लिए महत्त्व देते थे कि वे मुसलमान थे। वे उन पदों को उन लोगों को प्रदान करते थे जिन्हे पिछले खलीफ़ाओं के युग मे इसका अनुभव हो जाता था।

इस प्रकार के क़ाजी समृद्धि मे पले हुए तथा भोग-विलास के आदी हो चुकते थे, बदवियत एव सरल जीवन को पूर्णत. भुला चुकते और शहरी जीवन के पूरे आदी हो चुकते थे । उनकी आदते अमीराना, रग-ढग शाहाना एव वासनाओं से बचने की योग्यता समाप्त हो चुकती थी । सक्षेप मे खिलाफत का युग समाप्त होने के उपरान्त जब सल्तनत का युग प्रारम्भ हुआ तो कजा इत्यादि के पद उपर्युक्त दुर्दशा को प्राप्त नगर वालों के हिस्से में आये, कारण कि वे अपने कुल के महत्त्व को भुला चुके थे और नगर के जीवन की आदतें भी उनमे बहुत बडी सीमा तक आ गयी थी, अत' इन लोगो का सम्मान समाप्त हो गया। उन नगर वासियो के समान जो भोग-विलास एव समृद्धि के आनन्द मे डूबे रहते थे और सल्तनत की "असबियत" से दूरका भी सम्बन्ध न रखते थे, अपितु सल्तनत पर निर्भर होते थे, काजी तथा शरीअत के आलिम भी अपमानित हो गये। सल्तनत मे उनका सम्मान केवल इस कारण होता कि शरा सम्बन्धी आदेश उनके द्वारा प्राप्त होते थे और ये लोग शरा के आदेशो के रक्षक समझे जाते थे, अन्यथा उनको कोई आदर-सम्मान न प्राप्त होता था । शरा सम्बन्धी पदो का कुछ आदर सम्मान शेष था, अत. सुल्तानो की सभाओं में इनका कुछ आदर-सम्मान हो जाता था, किन्तु शासन-प्रबध एव राज्य-व्यवस्था में इन्हे कोई अधिकार प्राप्त न था। प्रथानुसार वे भी दरबारों मे उपस्थित हो जाते थे किन्तु वास्तव में उन्हे कोई महत्त्व हासिल न था। अधिकार सम्पन्न एवं प्रतिभाशाली तो वही होते है जिनके हाथ मे शक्ति हो । जो लोग शक्ति एव अधिकार से शून्य हों उनको शासन प्रबध से क्या मतलब । केवल शरा सम्बन्धी आदेशों की उनसे पूछ-ताछ की जाती थी, फतवे माँगे जाते और बस! उनका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता था।

कुछ लोगों का यह मत है कि वास्तविक बात कुछ और है। वह इस प्रकार कि काजियों एवं धार्मिक आलिमों का सम्मान इस कारण नही घटा कि वे सल्तनत की "असबियत" से सम्बन्ध नही रखते थे,अपितु बादशाहों ने स्वय इन बुजुर्गों को परामर्श गोष्ठियों से पृथक् कर दिया जो वास्तव में बड़ा ही अनुचित कार्य था, कारण कि परा-

मर्श-गोष्ठियों में सम्मिलित होने का उनसे अधिक पात्र कौन हो सकता था जब कि उनके विषय मे मुहम्मद साहब का महत्त्वपूर्ण आदेश वर्त्तमान है "आलिम लोग नबियों के उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये है ।" तो यह समझ लीजिए कि लोगो का यह विचार निराधार है इस कारण कि बादशाहों एव सुल्तानों का शासन पबन्ध सभ्य सिद्धातों पर आधारित होता है । यदि ऐसा न हो तो वे शासन हाथ से खो बैठें । इस प्रकार सभ्यता के नियमो के आधार पर यह परमावश्यक है कि फाकीहों एव काजियों को शासन-प्रबंध एव राज्य-व्यवस्था से पृथक् रखा जाय और उनमे हस्तक्षेप का अधिकार उनको न दिया जाय । जाहिर है कि परामर्श अथवा राज्य-व्यवस्था की अन्य समस्याओ में "असबियत" वाले ही अपने महत्त्व को प्रदर्शित कर सकते है । वे पूर्ण रूप से अधिकार-सम्पन्न होते है और किसी कार्य को करने अथवा न करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है, किन्तु जिसमे "असबियत" नही होती उसे न अपने ऊपर अधिकार होता है और न वह वासनाओ का दमन कर सकता है । जो अन्य लोगो पर भार हो और अन्य लोगो के भरोसे पर जीवित हो, वह परामर्श-गोष्ठी मे बैठकर क्या कर सकेगा और उसका क्या महत्त्व होगा । शरा सम्बन्धी आदेशों पर विचार विनिमय होने लगे और क़ाजी से फ़तवा माँगा जाय तो इस क्षेत्र में वह निःसन्देह महत्त्वपूर्ण योगदान करेगा, किन्तु राजनीति एव शासन-प्रबन्ध से उस बेचारे का क्या सम्बन्ध ? क्यों कि उसमे "असबियत" ही नही और न उसे "असबियत" की आवश्यकताओ एव आदेशों से कोई मतलब होता है । बादशाह एव अमीर उनकी अपने प्रति सद्भावना एव धर्म के प्रति निष्ठा के कारण उनका आदर सम्मान करते है । उनके हृदय मे प्रत्येक उस व्यक्ति का आदर सम्मान होता है जो किसी प्रकार धर्म से अपना सम्बन्ध रखता है ।

रहा मुहम्मद साहब का कथन कि 'आलिम लोग नबियो के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए' है तो यह वास्तव मे आजकल के उन अधिकांश फकीहो के अनुकूल नही जो शरीअत के आदेशों को कठस्थ कर लेते है । उदाहरणार्थ, एबादत किस प्रकार होनी चाहिए, अभियोगों का निर्णय किस प्रकार होना चाहिये इत्यादि बाते जिनका उनसे सम्बन्ध होता है, वे भली-भाँति बता सकते है । आजकल के फ़क़ीहो एव काजियो की योग्यता की अतिम सीमा यही है । उनमे से बहुत कम ऐसे है जो अपने बताये हुए धार्मिक-सिद्धातो का उदाहरण अपनी कृतियो से दे सकते है । भूतकाल के पवित्र लोग धर्म-निष्ठ थे और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे । शरा सम्बन्धी समस्त बातो पर शोध की दृष्टि डाल सकते थे । उनमें स्वयं शरा में वर्णित गुण पाये जाते थे । जिन फ़क़ीहों में यह योग्यता हो कि वे वचन एवं कर्म दोनों से शरा की व्यवस्था कर सके, वे निःसन्देह

नबी के उत्तराधिकारी है। उदाहरणार्थ, अलकुशैरी के रिसाले के लेखक को प्रस्तुत किया जा सकता है। सक्षेप मे जिनमे वचन एव कर्म दोनों ही के उत्तम गुण पाये जाते हों, वे वास्तव में आलिम भी हैं और नबी के उचित उत्तराधिकारी भी। उदाहरणार्थ, ताबेइन, फकीह लोग, भूतकाल के पवित्र लोग या चारो मुजतहिद इमाम अथवा जो भी उन बुजुर्गो के पदचिह्नों पर चले वह नबी का वास्तविक उत्तराधिकारी है। मेरा तो यह दृष्टिकोण है कि जो लोग केवल उपासक है वे उस फकीह से जो उपासक नही नबी का उत्तराधिकारी बनने के अधिक योग्य है, कारण कि उपासक कम से कम एक गुण मे तो उनका उत्तराधिकारी है ही, किन्तु फकीह किसी चीज मे भी नबी का वारिस नही। वह तो केवल जबान का धनी है। कर्म से उसका कोई सम्बंध नही। आजकल के अधिकांश फ़कीहो के विषय मे यह बात सच है।

अदालत

यह भी एक धार्मिक पद है जो कजा के अधीन स्थापित होता है और काजी के अधीन ही रहता है। उस पद का अधिकारी काजी के समक्ष लोगो के अधिकारों के विषय मे प्रमाण प्रस्तुत करता है। जब अदालत एव कजा-विभाग मे गवाही का मामला पेश होता है और मत-भेद हो जाता है तो उसका प्रमाण अटल समझा जाता है। जिसके हक की वह पुष्टि करे यह ठीक है और जिसकी न करे उसे कोई अधिकार प्राप्त नही होता। वह एक पजिका भी रखता है जिसमें लोगो की धन-सम्पत्ति, उनकी इमलाक, उनके ऋण तथा उनके सभी मामलो का सविस्तार विवरण लिखा होता है, किन्तु यह पद उसी के सुपुर्द होता है जो स्वय शरा के अनुसार सच्चा मान लिया गया हो और जिस पर कभी किसी प्रकार का दोष अथवा आरोप न लगा हो। लेन-देन के सभी मामले, दस्तावेज की भाषा एवं तत्सम्बन्धी अन्य बातों की देख-भाल, शरा सम्बन्धी आदेशों की पृष्ठ-भूमि में उनकी जाँच, दस्तावेजों का जारी करना, उसी के हाथ में होना है। क्योंकि ये सब उत्तरदायित्व फिकह की पृष्ठ-भूमि में सम्पन्न होते है, अत उसका फिकह के ज्ञान से परिचित होना भी आवश्यक होता है। इन्ही प्रतिबन्धों अथवा शर्तों की दृष्टि में, अथवा इस पद के उत्तरदायित्व को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए यह कार्य कुछ विशेष लोगों तक सीमित रह गया है और यह समझा जाने लगा है कि वे लोग सच्चाई के ठेकेदार हैं तथा वे ही इस कार्य के विशेष रूप से उपयुक्त है। हालाँ कि तथ्य ऐसा नही है। सच्चाई की शर्त तो उनके साथ केवल यह पद सँभालने के लिए लगा दी गयी।

क़ाजी का कर्त्तव्य है कि वह उनकी छान-बीन करता रहे और उनके स्वभाव एवं उनकी आदतो का निरीक्षण करता रहे ताकि सच्चाई की शर्त किसी समय भी ओझल न हो और उसकी उपेक्षा न की जाने लगे, कारण कि लोगों के हकों की रक्षा करना काजी के ही जिम्मे है और उसी के कधो पर उसका भार है। वही वास्तव मे इन सब खोजों एवं छान-बीन का उत्तरदायी है।

इस पद के बन जाने से काजियो को अभियोगों का निर्णय करने में बड़ी सुगमता होती है कारण कि नगर दूर-दूर तक फैले होते है और जब वहाँ से काजी के समक्ष अभियोग आते है और साक्षियों की सत्यता के विषय मे काजी को कुछ पता नही चल पाता तो काजी उन्ही अधिकारियो पर भरोसा करने पर विवश होता है और उन्ही के द्वारा छान-बीन करके निर्णय करता है। नगरो मे इन अधिकारियो के बैठने के स्थान निश्चित होते है जहाँ वे विधिपूर्वक बैठते है और मामलेवाले अपने लेन-देन उनसे निर्गत कराते है। वे उसे अपनी पजिका में लिख लेते है।

अदालत शब्द का प्रयोग एक तो उसी पद के लिए होता है जिसका सविस्तर उल्लेख ऊपर किया गया है। दूसरी अदालत वह है जो शरा के अनुसार झूठ के मुका-बले मे बोली जाती है। कभी इन दोनो का प्रयोग एक ही अर्थ मे होता है और कभी पृथक्-पृथक्।

हिस्बा

एहतेसाब-विभाग दीनी तथा धार्मिक पद समझा जाता था। एक प्रकार से वह धार्मिक प्रचार का एक विभाग था। इस पद के लिए उचित व्यक्ति की नियुक्ति करने का उत्तरदायित्व मुसलमानो के खलीफा पर होता था। वह जिसको चाहता था, इस कार्य के लिए नियुक्त करता था। फिर वह अपने सहायक नियुक्त कर लेता था और लोगो की कुकृतियों एव दुराचार की खोज में लगा रहता और पता लगाता रहता था। पता लगाने पर उचित दड प्रदान करता था और प्रत्येक बात में लोगों पर प्रतिवन्ध लगाता था कि वे कोई ऐसे कार्य न करें जिनसे सर्व साधारण के हित में कोई बाधा पडे। उदाहरणार्थ, मार्गो पर भीड़ न लगाये, पशुओं एव नौकाओ पर अनु-चित भार न लादे, जिन घरो के गिरने का भय हो उनको घरो के स्वामी स्वय गिरवा दे ताकि वे अचानक गिर जाने से यात्रियो को हानि न पहुँचा सके। पाठशालाओ के गुरु, बालको एव विद्यार्थियों की आवश्यकता से अधिक मार-पीट न करने पाये। सक्षेप मे इसी प्रकार के दायित्व मुहतसिब के कर्त्तव्यो में सम्मिलित थे। मुहतसिब इस

बात की प्रतीक्षा न करता था कि ये सब झगड़े अभियोग के रूप में ही उसके समक्ष प्रस्तुत किये जायँ और तब वह उनपर विचार करे। वह स्वय उन कार्यो की देख-भाल और सब हालात पर कडी दृष्टि रखता था और जो कुछ उसे ज्ञात होता उसके अनुसार वह उचित कार्यवाही करता था। सभी अभियोगो का निर्णय उसके जिम्मे न था, अपितु केवल उन्ही का जो आर्थिक लेन-देन एव कारोबार मे अनुचित व्यवहार से सम्बन्धित होते थे। उदाहरणार्थ, तोल एव वजन मे जो बेईमानी तथा धूर्तता होती उसकी रोक-थाम उसी के जिम्मे थी। ऋण न अदा करने वालो से ऋण अदा करवाना भी मुहतसिब के ही जिम्मे होता था। सक्षेप मे ऐसे समस्त मामले जिनमें न गवाही की आवश्यकता होती है और न कोई विशेष निर्णय करने की, वे सब उसी के सिपुर्द होते थे। इस प्रकार मुहतसिब के हाथ मे ऐसे मामले दिये जाते है, जो प्रायः पेश आते रहते थे और जिनका निर्णय आसान होता था। काजी को उन अभियोगो से पृथक् रखा जाता था। इस प्रकार मुहतसिब, काजी का सहायक होता था और अन्य कार्यो मे उसका हाथ बँटाता था।

इसी कारण बहुत-सी इस्लामी सल्तनतो मे, उदाहरणार्थ—उबैदीईन के राज्य मे, मिस्र तथा मग़रिब मे और उन्दुलुस मे उमय्या शासको के राज्यकाल मे मुहतसिब की नियुक्ति काजी की इच्छानुसार होती थी। फिर जब सल्तनत ने खिलाफत का स्थान ले लिया और राजनीति सम्बन्धी सभी समस्याए सीधे सुल्तान की देख-रेख मे सुलझायी जाने लगी तो एहतिसाब भी उसी के अधीन हो गया। वह जिसे चाहता, मुहतसिब नियुक्त करता था।

सिक्के तथा टकसाल

टकसाल का अधीक्षक प्रचलित सिक्को की देख-भाल रखता था और उसे प्रत्येक खोट एव हानि से बचाता था। प्रचलित सिक्के के सम्बन्ध मे प्रत्येक प्रकार की शिकायत को दूर करना उसी के जिम्मे था, फिर वह इस बात की भी देख-रेख रखता था कि सिक्के पर बादशाह का चिह्न अथवा नाम इत्यादि शाही ठप्पे से खोदा जा रहा है या नही। इसके लिए एक लोहे का ठप्पा होता था जिसपर विशेष चिन्ह खुदे होते थे। दिरहम अथवा दीनार की तोल को ठीक करके ठप्पा उसपर रखा जाता था और हथौड़े से उसपर चोट मारी जाती थी और ठप्पे के पूरे चिन्ह दिरहम अथवा दीनार पर उभर आते थे। ये चिह्न इस बात के द्योतक होते थे कि सिक्का खरा है और लेन-देन मे प्रयोग के योग्य है। सिक्के के खरे होने का माप-

दंड पृथक् स्थापित होता था जिसके अनुसार खरे-खोटे सिक्कों का निर्णय किया जाता था। जब किसी देश अथवा राज्य मे सिक्के के खरे होने का कोई नियत माप दड निर्धारित हो जाता तो वह माप दड एक कसौटी हो जाता था। जो सिक्का उसके अनुसार होता वह खरा और जो कम अथवा बदला होता वह खोटा समझा जाता था और चलने योग्य न रहता था।

इन सब बातों की देख भाल टकसाल के अधीक्षक के सिपुर्द होती थी। क्यों कि यह उत्तरदायित्व आम मुसलमानो के अधिकारो से सम्बन्धित था। अत' यह एक प्रकार से धार्मिक उत्तरदायित्व बन गया था। इसकी गणना खिलाफत के उत्तरदायित्व मे हो गयी थी। इसी आधार पर एक समय काजी इसकी भी देख भाल करता था, किन्तु आजकल हमारे युग मे जिस प्रकार एहतेसाब-विभाग सुल्तान के हाथ मे आया उसी प्रकार टकसाल भी सुल्तान की देख-रेख मे आ गया। यह खिलाफत के उत्तरदायित्व की अन्तिम कड़ी थी, जिसका उल्लेख हुआ।

खिलाफत के कुछ उत्तरदायित्व एव कर्त्तव्यों का इस कारण उल्लेख नही किया गया कि वे अब समाप्त हो चुके है। कुछ ऐसे कार्य है जो सुल्तान के उत्तरदायित्व मे सम्मिलित है। उदाहरणार्थ, विजारत तथा इमारत, युद्ध एव खराज से सम्वन्धित पद तो इनका उल्लेख जिहाद के विवरण के बाद आयेगा। जिहाद से सम्बन्धित पद भी लग भग समाप्त हो गये है और खिलाफत के साथ इनका भी अन्त हो चुका है, किन्तु किन्ही-किन्ही सल्तनतों मे अब भी इनकी कुछ प्रथाएँ शेप है, किन्तु इनके समस्त अधिकार सुल्तानो के हाथ में है। इसी प्रकार वशो की जाँच का विभाग भी खिलाफ़त के साथ समाप्त हो गया। इस विभाग से खिलाफत एव बैतुल माल मे हकों को प्रमाणित करने के लिए काम लिया जाता था। सक्षेप मे आज-कल की समस्त सल्तनतों मे वर्त्तमान राजनीतिक तौर-तरीको ने खिलाफत के उत्तर-दायित्व का पूरा-पूरा स्थान ले लिया है।

(३२) अमीरुल मोमिनीन की उपाधि ख़िलाफ़त के युग की एक प्राचीन यादगार है और इस उपाधि का खिलाफ़त के युग में ही सर्वप्रथम प्रयोग हुआ

हजरत अबू बक्र से बैअत होने के उपरान्त समस्त मुसलमान आपको अल्लाह के रसूल के खलीफ़ा के नाम से पुकारते थे। जब तक आप जीवित रहे यह नाम इसी प्रकार चलता रहा। आप के पश्चात् जब हजरत उमर खलीफ़ा हुए तो प्रारम्भ

में आपको मुसलमान रसूलल्लाह के खलीफ़ा का खलीफा कहने लगे, किन्तु यह उपाधि कुछ लम्बी होने के कारण जबान पर बोझ मालूम होने लगी क्योंकि इसका अधिक प्रयोग होता रहता था, अतः इसका उच्चारण कठिन हो गया। यह भी सोचा गया कि खिलाफतों के परिवर्तन से यदि इसी प्रकार नाम जोड़े जाने लगे तो इस उपाधि का कोई अर्थ न रहेगा और इससे कुछ भी पता न चल सकेगा। अतः मुसलमान लोग इस उपाधि के स्थान पर अन्य उचित उपाधियों का हजरत उमर के लिए प्रयोग करने लगे। जाहिलियत के युग मे अरब लोग मुहम्मद साहब को 'अमीर मक्का' अथवा 'अमीर हिजाज' कहा करते थे। सम्मानित सहाबा साद बिन अबी वक्कास को "अमीरुल मोमिनीन[1]" कहते थे, कारण कि क़ादिसया के युद्ध मे आप मोमिनो के सेनापति नियुक्त हुए थे और यही सहाबा उस समय मुसलमानो में अधिकारवाले समझे जाते थे।

फिर कभी-कभी कुछ सहाबा ने हजरत उमर को अमीरुल मोमिनीन की उपाधि से सम्बोधित किया तो समस्त श्रोताओं ने इस उपाधि को पसन्द किया। कुछ लोगों का मत है कि अब्दुल्लाह बिन जहश[2] ने इस उपाधि का आविष्कार किया, कुछ का मत है कि उमर बिन आस तथा मुगीरा बिन शोबा ने इस उपाधि का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह भी कहा जाता है कि एक दूत किसी इस्लामी दस्ते की विजय के सुखद समाचार लाया और मदीना पहुँचा तो हजरत उमर को पूछने लगा और कहने लगा कि अमीरुल मोमिनीन कहाँ है? धर्मनिष्ठ मुसलमानो ने इस उपाधि को सुना तो बहुत पसन्द किया और इस आविष्कार की प्रशसा करते हुए कहा कि वास्तव मे उसने बड़ी उत्तम उपाधि दी है, हजरत उमर, मोमिनीन के अमीर ही तो है।" तब से सब लोग उन्हे इसी उपाधि द्वारा सम्बोधित करने लगे और इसकी ऐसी प्रसिद्धि हुई कि यह उपाधि एक खिलाफत के उपरान्त दूसरी खिलाफत मे विरासत की भाँति चलती रही। बनी उमय्या के युग मे भी यही उपाधि प्रचलित रही और खलीफाओं को इस उपाधि के अतिरिक्त किसी अन्य उपाधि से सम्बोधित न किया जाता था।

शीआ लोग हजरत अली को इमाम के नाम से पुकारते थे। इस इमामत को उन्होंने खिलाफत के समानान्तर कर दिया और इससे अपने उस धार्मिक विश्वास की ओर

१. धर्मनिष्ठ मुसलमानों का हाकिम।

२. इब्ने जहश की उहुद के युद्ध में ६२५ ई० में मृत्यु हो गयी थी। अतः उनके विषय में यह कहना कि इस उपाधि का आविष्कार उन्होंने किया, ठीक नहीं।

सकेत किया कि हजरत अबू बक्र के मुकाबले में हजरत अली ही नमाज के इमाम बनने के अधिक पात्र थे। हजरत अली को विशेष रूप से इस उपाधि से सम्बोधित करना इन शीओ का आविष्कार है। फिर उनके बाद के उत्तराधिकारियों को वे लोग इमाम के नाम से ही सम्बोधित करते रहे, किन्तु जब इन्होने शासन की बागडोर सँभाली तो इमाम की उपाधि के स्थान पर 'अमीरुल मोमिनीन' की उपाधि का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार शीआ बनी अब्बास का यही आचरण रहा कि इबराहीम[1] तक वे अपने इमामो को इमाम के नाम से सम्बोधित करते थे, किन्तु जब उनका प्रचार खुल्लम-खुल्ला प्रारम्भ हुआ और बनी उमय्या से युद्ध हेतु पताकाएँ एवं झडे सुव्यवस्थित किये जाने लगे और इबराहीम मारे गये तो उनके भाई सफ्फाह को शीओ ने "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि दे दी। इफरीकिया के राफजियो[2] ने भी ऐसा ही किया कि वे इस्माईल की सतान मे सबको इमाम ही कहते रहे। यहाँ तक कि उबैदुल्लाह अल महदी और उसके उपरान्त उसके पुत्र अबुल क़ासिम को भी वे इमाम ही कहते रहे, किन्तु जब उनकी सल्तनत की जड़े दृढ़ हो गयी तो उन्होने अपने इमामो को "अमीरुल मोमिनीन" कहना प्रारम्भ कर दिया। मगरिब मे इदरीसियो ने भी इसी प्रथा का अनुसरण किया। वे इदरीस को इमाम कहते रहे और इसी प्रकार उनके पुत्र छोटे इदरीस को भी।

इसके बाद अमीरुल मोमिनीन की उपाधि खलीफाओ मे प्रचलित हुई और यह उपाधि विशेष रूप से उन शासको के लिए प्रचलित होने लगी जो हिजाज, शाम तथा इराक पर शासन कर रहे थे। ये स्थान अरबो के घर अथवा अरबो के क्षेत्र कहलाते है और वास्तव मे इस्लामी राज्य के केन्द्र है, और वही से इस्लामी विजयो का क्रम प्रारम्भ हुआ। जब सल्तनत की उन्नति हुई तो खलीफाओने पारस्परिक भेद-भाव के लिए अन्य उपाधियो का भी प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, कारण कि अमीरुल मोमिनीन की उपाधि का प्रयोग तो सभी के लिए होता था, अतः इससे किसी प्रकार का कोई भेद-भाव न हो सकता था। उदाहरणार्थ, बनी अब्बास ने सफ्फाह, मनसूर, महदी, हादी तथा रशीद सरीखी उपाधियाँ गढ़ी जिनका एक उद्देश्य यह भी था कि ये उपा-

१. इबराहीम, बिन मुहम्मद, बिन अली, बिन अब्दुल्लाह, बिन अब्बास, प्रथम दो अब्बासी ख़लीफ़ाओं के बड़े भाई थे। अन्तिम उमय्या ख़लीफ़ा मरवान द्वितीय अथवा हिमार ने अक्तूबर ७४९ ई० में उनकी हत्या करा दी।

२. शीओं से तात्पर्य है।

धियाँ उनके नामों के लिए आवरण बन जायँ और सर्व-साधारण एव विशेष व्यक्ति उनके नामों का उच्चारण करके उनका अपमान न करें। इस प्रकार इन्ही विभिन्न उपाधियों की प्रथा इस वश मे चलती रही। यहाँ तक कि मिस्र एव इफरीकिया में उबैदीईन ने भी इसी प्रथा का पालन किया, हालाँ कि इसके पहले पूर्व मे बनू उमय्या ने ऐसी उपाधियों को ग्रहण नही किया, कारण कि उनमे उस समय "बदवियत" एव सरलता पूर्ण रूप से वर्त्तमान थी। अरबी बू-बास एव स्वभाव उनमे बदवियों की तरह ही वर्त्तमान थे। सक्षेप में उन्होने उस समय तक बदवियत को नही त्यागा था, न नगर जीवन के किसी प्रकार आदी हुए थे।

उन्दुलुस में बनी उमय्या ने अपने पूर्वी पूर्वजो के अनुसार उपाधियाँ ग्रहण नही की। वे इस बात को स्वीकार करते थे कि उनके पूर्वजों के समान उन्हें वह सम्मान प्राप्त नही है, कारण कि वे मूल अरब केन्द्र, मिल्लत एव उसकी राजधानी हिजाज देश से जो अरब "असबियत" का स्रोत था, दूर पडे थे, किन्तु यह दूरी उनके लिए शुभ ही रही, कारण कि वे उन खतरो एव ध्वस के शिकार न बने जिसने बनी अब्बास को हडप लिया। जब चौथी शताब्दी[1] हि० के प्रारम्भ मे अब्दुर्रहमान तृतीय अर्थात् अन्नासिर बिन मुहम्मद बिन अल अमीर अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान द्वितीय का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ और अब्बासी खलीफाओ की बडी दुर्दशा हुई तथा यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि अजमवालो को उन लोगों पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया है और खलीफाओ मे अदल-बदल भी हुई और हत्याकाड एव लूट-मार भी प्रारम्भ हो गयी तो अब्दुर्रहमान तृतीय ने भी पूर्व के खलीफाओ की भाँति 'अमीरुल मोमिनीन नासिर ले दीनिल्लाह' की उपाधि धारण कर ली। अब्दुर्रहमान के बाद फिर यह प्रथा चल पड़ी कि खलीफा लोग अमीरुल मोमिनीन के साथ अन्य विशेष उपाधियों का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार यह प्रथा उन्ही से चली। उनके पूर्वजो ने उसका प्र ोग कभी नही किया।

सक्षेप मे अब्दुर्रहमान के उपरान्त उपाधियो का यह क्रम चल निकला। यहाँ तक कि अरबो "असबियत" समाप्त हो गयी और खिलाफत का नाम मिट गया। इधर अजम के दास बनी अब्बास पर, उबैदीईन के आश्रित काहिरा मे उबैदीईन पर, सिनहाजा इफ़रीकिया पर जनाता मग़रिब पर और विभिन्न समूह उन्दुलुस मे बनी उमय्या पर छा गये और राज्यो को परस्पर बाँट लिया। इस्लामी ख़िलाफ़त के छिन्न-

१. १० वीं शताब्दी ईसवी।

भिन्न हो जाने के कारण पश्चिम एवं पूर्व में बादशाहों ने उपाधियों के सम्बन्ध में प्रचलित प्रथा को बदल दिया। सुल्तान के नाम से तो सभी प्रसिद्ध थे, किन्तु पूर्व में अजमी बादशाहो को कुछ विशेष उपाधियाँ अब्बासी खलीफ़ाओ की ओर से प्रदान की जाने लगी जिनसे पता चलता है कि अजम के बादशाह खलीफाओं के वशवद एवं आज्ञाकारी थे। उनकी सल्तनत खलीफाओं की दृष्टि मे प्रशसनीय थी। उदाहरणार्थ, शरफूद्दौला, अजदुद्दौला, रुक्नुद्दौला, मुईज्जुद्दौला, नसीरुद्दौला, निजामुल मुल्क, बहाउद्दौला, जखीरतुल मुल्क इत्यादि। यही हाल उबैदीईन का था कि वे भी सिनहाजा के अमीरों को विशेष उपाधियाँ प्रदान करते थे। फिर जब सिनहाजा ने खिलाफत पर पूर्ण अधिकार जमा लिया तो वे उन्ही उपाधियो से सन्तुष्ट हो गये और खिलाफत की उपाधियों से कोई सम्बन्ध न रखा। इस प्रकार उन्होने खिलाफ़त के प्रति सम्मान का व्यवहार प्रदर्शित किया और यह बता दिया कि खिलाफत की उपाधियाँ खिलाफत के साथ ही सीमित रहेंगी। इसमे किसी अन्य को साझीदार बनने का कोई अधिकार नही। हम यह पहले बता चुके है कि अपहरणकर्त्ताओ एव राज्यों पर जबरदस्ती अधिकार जमा लेनेवालों की यही प्रथा होती है।

पूर्व में अजमवालों ने जब स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया और उनकी सल्तनत के कदम जम गये और दूसरी खिलाफत की "असबियत" का अन्त हो गया तो उन्होने विशेष उपाधियाँ धारण कर ली। उदाहरणार्थ, नासिर एव मसूर इत्यादि। पिछली उपाधियों मे साधारण-सा परिवर्तन करके वे यह प्रकट करने लगे कि मानों उनकी गर्दने खलीफाओं की वशवदता से पूरी तरह मुक्त हो चुकी है। उदाहरणार्थ, दौलत के स्थान पर दीन शब्द का प्रयोग करके, वे इस प्रकार प्रसिद्ध हुए, मलाहुद्दीन, असदुद्दीन, नूरुद्दीन इत्यादि। इधर उन्दुलुस मे मुलूकुत्तवाएफ ने खिलाफत की उपाधियों को आपस मे बाँट लिया, कारण कि उनका प्रभुत्व बहुत अधिक था और वे ख़िलाफ़त के श से सम्बन्धित थे। उन्होंने नासिर, मसूर, मोतमिद, मुजफ्फर इत्यादि उपाधियाँ धारण की। इब्ने शरफ़ ने उनकी निन्दा करते हुए लिखा है—

पद्य

उन्दुलुस के भू-भाग मे मोतसिम एवं मोतजिद के नाम मे मुझे लज्जित होने के लिए विवश होना पड़ता है।
अयोग्य लोगो ने शाही उपाधियाँ धारण कर ली है। उनका उदाहरण इस प्रकार है जैसे बिल्ली फूल कर सिंह का रूप धारण करना चाहती हो।

सिनहाजा के अमीर उन्हीं उपाधियों पर संतुष्ट रहे जो उन्हें उबैदीईन खलीफ़ाओं की ओर से मिला करती थी। उदाहरणार्थ, नसीरुद्दौला, सैफुद्दौला मुईज्जुद्दौला इत्यादि। ये उपाधियां उन्हें उस समय दी गयी थी जब उन्होने अब्बासियो के प्रचार के मुकाबले में उबैदीईन का प्रचार प्रारम्भ किया। फिर वे खिलाफत से बड़ी दूर हो गये और उस युग को भूल गये तो इन उपाधियों के शब्द भी उनके मस्तिष्क से निकल गये और सुल्तान शब्द ही उनके नाम को शोभा देने लगा। यही हाल मगरिब में मगरावह सुल्तानों का हुआ कि उन्होने समस्त उपाधियाँ छोड कर सुल्तान की ही उपाधि को पसन्द किया, कारण कि उनकी "बदवियत" एव सरलता यही चाहती थी।

जब मगरिब मे खिलाफत के चिह्न मिट गये तो लमतूना हाकिम यूसुफ बिन ताशफीन मगरिब के बरबर कबीले मे प्रकट हुआ और उसने समुद्र के दोनो ओर अधिकार जमा लिया। वह सदाचारी भी था और रूढ़िवादी भी। धर्म की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए वह खलीफाओं की आज्ञाकारिता स्वीकार करना चाहता था। इस उद्देश्य की दृष्टि से उसने अब्दुल्लाह बिन अरबी और उसके पुत्र काजी अबू बक्र को जो अशबीलिया के मशायख मे से थे, एक शिष्ट-मडल के साथ मुसतजहिर बिल्लाह अब्बासी के पास बैअत की प्रथा की पूर्ति के लिए भेजा[1] और यह प्रार्थना करायी कि बग्दाद का खलीफा उसको मगरिब का वाली नियुक्त कर दे। उक्त शिष्ट-मडल यह सुखद समाचार ले कर लौटा कि यूसुफ खिलाफत की ओर से मगरिब का नायब नियुक्त हो गया है और उसको अधिकार मिला है कि वह खिलाफत के विशेष चिह्न इत्यादि का प्रयोग करे। खलीफा की ओर से जो फरमान भेजा गया उसमें उसे अमीरुल मोमिनीन की उपाधि प्रदान की गयी। अत. उसने अपनी यही उपाधि रख ली। यह भी कहा जाता है कि यूसुफ बिन ताशफीन को इस घटना के पूर्व भी 'मराबेतीन[2] अमीरुल मोमिनीन' ही कहा करते थे, किन्तु इसके बावजूद अब्बासी खलीफाओं

१. अबू बक्र तथा उसके पिता अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद ४८५ हि० (१०९२ ई०) मे हज के लिए रवाना हुए और दो बार बग़दाद गये। एक बार हज के पूर्व और एक बार हज के बाद। उन्होंने ४८९ हि० (१०९६ ई०) में हज किया। सम्भवतः इब्ने ताशफ़ीन ने १०९७–९८ ई० में ख़लीफ़ा अल मुसतज़हिर १०९४–१११८ ई०) के पास राजदूत भेजे होंगे। यात्रा से लौटने के उपरान्त ४९३ हि० (१०९९ ई०) में अब्दुल्लाह की मृत्यु हो गयी।

२. अलमोराविद्स।

का वह पूरा आदर सम्मान अपने हृदय में रखते थे, कारण कि यूसुफ स्वयं और उसकी क़ौमवाले अर्थात मराबेतीन भी अत्यन्त धर्मनिष्ठ थे, तथा सुन्नत का पालन करते थे।

इसके उपरान्त महदी[1] ने सत्य के प्रचार की पताका बुलन्द की और अशअरिया का समर्थक हो गया। उसने मग़रिबवालों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे इस्लाम के प्रारम्भिक युग के मुसलमानों के पद-चिह्नो पर चले और शरीअत की जाहिरी बाते, उदाहरणार्थ तजमीम की (लाक्षणिक) व्याख्या इत्यादि की समस्याओं को त्याग दे जैसा कि अशाएरा का प्रसिद्ध मत है। उसके अनुयायी मुवह्हेदीन[2] के नाम से प्रसिद्ध है। फिर महदी को यह भी ज्ञात था कि हजरत अली के समर्थक दोषाक्षम[3] इमाम के सिद्धान्त को मानते है और उनका मत है कि प्रत्येक युग में उसका मौजूद होना आवश्यक है ताकि ससार की व्यवस्था भग न हो। महदी भी इसी सिद्धान्त को मानने लगा और इमाम के नाम से प्रसिद्ध हुआ, कारण कि अभी उल्लेख हो चुका है कि शीआ अपने खलीफाओं को इमाम की उपाधि द्वारा ही सम्बोधित करते है, फिर इमाम के साथ मासूम के नाम की भी वृद्धि हो गयी। इस प्रकार इस धार्मिक विश्वास का प्रचार किया गया कि इमाम को मासूम होना चाहिए। उसने अमीरुल मोमिनीन की उपाधि की उपेक्षा की, कारण कि सर्वप्रथम शीओ का प्राचीन धार्मिक विश्वास यही है कि वे अपने ख़लीफाओं को इमाम के नाम से सम्बोधित करते है, दूसरे इसमे यह भी रहस्य था कि कही वे पूर्व के खलीफाओं की सतान के समान न बनने लगे। जब अब्दुल मोमिन[4] उसका उत्तराधिकारी हुआ तो उसने अमीरुल मोमिनीन की उपाधि धारण कर ली और उसकी सतान भी इसी उपाधि से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार उनके बाद आले अबी हफस ने इसी उपाधि को पसन्द किया। इस भावना के वशीभूत होकर कि वे इस उपाधि के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक पात्र है क्यों कि उनका शेखुश शयूख महदी जो सल्तनत का अधिकारी था और उसके हाकिम जो स्वतन्त्र शासक थे, उनमे यही प्रचार किया करते थे। कुरैश की "असबियत" तो समाप्त हो चुकी थी, अतः उनमे उनके पूर्वजों की उत्पन्न की हुई ये ही भावनाएँ मौजूद थी।

१ प्रथम फ़ातेमी ख़लीफ़ा (९०९ से ९३४ ई०) अल-महदी उबैदुल्लाह।

२. कट्टर एकेश्वरवादी।

३. मासूम, जो कोई अपराध कर ही न सके।

४ अब्दुल मोमिन बिन अली, मुवहहिद वंश के राज्य का संस्थापक (जन्म १०९४ ई०, मृत्यु मई-जून ११६३ ई०)।

इसी प्रकार जब मग़रिब की सल्तनत का जोर टूटा और ज़नाता ने उसपर अधिकार जमाया तो ये भी प्रारम्भ में सरलता एवं "बदवियत" के आदी रहे और लम्तूना की भाँति अमीरुल मोमिनीन की उपाधि से पुकारे जाते रहे। किन्तु साथ ही साथ वे खिलाफत का सम्मान करते थे, कारण कि वे इसके आदी हो गये थे। पहले अब्दुल मोमिन के वश के अधीन रहकर और फिर बनी हफस के अधीन रहकर। इसके अतिरिक्त इनके पूर्वज भी इस उपाधि को पसन्द करते रहे यहाँ तक कि अब हमारे इस युग मे भी सुल्तान लोग इसी उपाधि को पसन्द करते है और राज्य की उन्नति एव हुकूमत की तरक्की का इसे एक चिह्न समझते है। "ईश्वर मे अपने आदेशों का पालन कराने की शक्ति है।"

(३३) ईसाई धर्म में पापा एवं बतरक[१] शब्द और यहूदी धर्म में काहन[२] शब्द की व्याख्या[३]

(३४) बादशाहों एवं सुल्तानों की श्रेणियाँ तथा उनकी उपाधियाँ

समझ लीजिए कि जहाँ तक बादशाह का अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध है, वह बड़ा ही शक्तिहीन एव कमजोर होता है। इस कमजोरी के बावजूद एक महत्त्वपूर्ण भार उसके कधो पर डाल दिया जाता है। अत जब तक उसकी कौमवाले उसकी ओर सहायता का हाथ न बढ़ाये तो वह इस भारी बोझ एव महान् उत्तरदायित्व को किसी प्रकार उठा नही सकता। जब उसकी आवश्यकताओं का ही यह हाल है कि वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए अन्य लोगो पर निर्भर होता है तो फिर अपनी जातिवालो पर शासन करने मे वह अन्य लोगों पर निर्भर क्यो न हो, जब कि इस सम्बन्ध मे उसे महत्तर उत्तरदयित्व पूरा करना पडता है। उदाहरणार्थ, प्रजा की पूरी-पूरी देख-भाल, उसके शत्रुओ से उसकी रक्षा, न्याय-युक्त आदेश जारी करना, एक को दूसरे पर अत्याचार करने मे रोकना, एक की धन-सम्पत्ति की दूसरे से रक्षा करना, सक्षेप मे सबको शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाना, अथवा मानवीय जीवन से सम्बन्धि सभी आर्थिक समस्याओ की देख-भाल यानी सामानों के लेन-देन मे नाप-तोल की जाँच ताकि कोई कम न तोलने पाये अथवा प्रचलित सिक्के की परख ताकि

१ Pope एवं Patriarch

२. Kohen

३. इस अंश का अनुवाद नहीं किया गया।

कोई खोटा अथवा जाली सिक्का न चला दे, दंड एवं सजाओं पर नियंत्रण ताकि सब लोग उसके आज्ञाकारी एवं उससे भयभीत रहें, सब उसकी इच्छा के दास हों और उसके आदेशों का पालन करते रहे इन सब बातों की देख-भाल उसे करनी पड़ती है। सम्मान एवं श्रेष्ठता का भी वही अकेला स्वामी होता है। सक्षेप मे बादशाह को सबके हृदय पर अधिकार करने का जो भारी बोझ उठाना पड़ता है, उसका अनुमान करना कठिन है। इसी कारण कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि, "पर्वतो को अपने स्थान से हटा देना सबके हृदय को अधिकार मे कर लेने से सरल है।" फिर यदि एक कुल के सम्बन्धी अथवा प्राचीन आश्रित सहायता हेतु तैयार हो जायें तो उनकी सहायता पूर्णतः प्राप्त होगी, कारण कि ऐसी दशा मे बादशाह एव सहायको के चरित्र एक ही प्रकार के होगे और पारस्परिक सहायता का उद्देश्य पूरा हो जायगा तथा उससे पूरा लाभ होगा। इस प्रकार क़ुरान मे हजरत मूसा के इन शब्दो का उल्लेख है, "हे अल्लाह! मेरे घर मे मेरे भाई को मेरा वजीर बना। उससे मेरी नबूवत को दृढ कर और उसे मेरे कार्य में मेरा सहायक बना दे।"

बादशाह को सर्वदा एक ही प्रकार की सहायता की आवश्यकता नही होती। कभी वह तलवार की सहायता चाहता है, कभी कलम की, कभी परामर्श की, कभी हाजिबों एव दरबानों को नियुक्त करके वह काम चलाता है ताकि लोग भीड न लगा लें और वह उनके मामलो पर ठढे दिल से शान्तिपूर्वक सोच विचार कर सके। उसे ऐसे लोगों की भी आवश्यकता होती है जो समस्त राज्य की देख-भाल कर सके और बादशाह का उन पर पूर्ण विश्वास भी हो। कभी ऐसा होता है कि एक ही मनुष्य कई प्रकार की सहायता हेतु पर्याप्त होता है। कभी विभिन्न लोगो द्वारा ये सहायताएँ प्राप्त होती है। फिर एक प्रकार की सहायता भी विभिन्न किस्मो में विभाजित हो जाती है। उदाहरणार्थ, "अहले क़लम[1]" के विभाग कई भागो मे विभाजित होते है, उदाहरणार्थ पत्र-व्यवहार करनेवाले, फरमान एव दस्तावेज लिखनेवाले, हिसाब-किताब करनेवाले अर्थात राजस्व वेतन के भुगतान तथा अन्य व्यय की देख-रेख करने वाले। "अहले सैफ[2]" का विभाग भी विभिन्न भागो मे विभाजित होता है। उदाहरणार्थ, सेनापति, शुर्ता का मुख्य अधिकारी, डाक का मुख्य अधिकारी एव सीमात की रक्षा करनेवालो का अधिकारी।

१. लिखने-पढ़नेवाले।
२. तलवार चलानेवाले, सैनिक।

फिर यह बात भी भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि इस्लाम में शाही पद एवं ओहदे खिलाफत के अधीन रहते हैं, कारण कि खिलाफ़त धार्मिक तथा सांसारिक दोनो हितो की देख-भाल की जिम्मेदार है। इसी कारण इस्लाम में ऐसे आदेश एव अधिनियम भी मिलेंगे जो सल्तनत से सम्बन्ध रखते है, और वे भी जो खिलाफत के विषय मे उपयोगी आदेश प्रदान करते है। सक्षेप मे दोनों के विषय मे सविस्तर उल्लेख एव पथ-प्रदर्शन उनसे मिलता है। इसका कारण यह है कि शरीअत वास्तव मे मानव-कर्म एव आचरण का ऐसा पूर्ण विधान है जिससे मनुष्य के प्रत्येक सासारिक एवं धार्मिक कर्त्तव्यों का पथ-प्रदर्शन होता है। इस प्रकार फकीह का यह पूर्ण उत्तर-दायित्व है कि राज्य एव सुल्तान के सम्मान की देख-भाल करे और उन शर्तो की भी जॉच पडताल करे, जिनके अधीन वह राज्य सिहासन पर आरूढ होकर सुल्तान कहलाये जाने का पात्र बनता है और वह शर्ते भी उसकी दृष्टि के समक्ष रहे, जिनकी पृष्ठ-भूमि मे उसका सहायक, उसका नायब यानी जन-साधारण की भाषा मे 'वजीर' बन सके।

सक्षेप मे फकीह का यह कर्त्तव्य है कि वह समस्त दीवानी[1] एव फ़ौजदारी के मामलो तथा अन्य राजनीतिक समस्याओ पर, चाहे उन पर कोई प्रतिबन्ध हो अथवा न हो, अपनी कड़ी दृष्टि रखे। नियुक्ति एव पदच्युत करने के कारणो की भी देख-भाल रखे, अपितु राज्य एव सल्तनत के किसी भी मामले को अपने नियत्रण के बाहर न होने दे। इसी प्रकार सल्तनत के ये पद, उदाहरणार्थ विजारत एव खराज तथा शासन-प्रबध के अन्य विभागो की देख-भाल रखे और अपने मतानुसार उनका सचालन करे। इन सबका यह कारण है कि इस्लाम में शरई खिलाफ़त के समस्त आदेश मुल्क मे प्रचलित होना परमावश्यक है। हमारी इस पुस्तक का यह उद्देश्य नही कि हम राज्य एव सल्तनत सम्बन्धी शरई आदेशो का सविस्तर वर्णन करे और उनकी व्याख्या यहा करे। हमारा उद्देश्य केवल इतना ही है कि हम उस राज्य एव सल्तनत के पदो का, जो मानवसमाज के लिए आवश्यक है और जिनकी मानव-आत्मा को जरूरत है, उल्लेख करे और यह बताये कि उनको क्या सम्मान प्राप्त है। हमारा यह उद्देश्य नही कि हम उनसे सम्बन्धित शरई आदेशो का उल्लेख करे, कारण कि ये आदेश बडे विस्तृत रूप से "एहकामे सुल्तानिया" के ग्रथो, उदाहरणार्थ क़ाजी अबुल हसन अल मावर्दी के ग्रथ अथवा अन्य बडे-बड़े फ़क़ीहो की रचनाओं मे लिखे

१. धन-संबंधी (राजस्व, वित्त) मामले।

है। यदि आप इन आदेशों के विषय मे ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो उन ग्रथो का अध्ययन करे। उनसे आपको इस प्रकार की पर्याप्त सूचना मिल जायगी ।

हमने खिलाफत के पदो का पृथक् उल्लेख इस कारण किया है कि सुल्तानी एव खिलाफत के पदो का अन्तर पूर्ण रूप से स्पष्ट हो सके। इसका यह उद्देश्य नही कि साथ-साथ शरा सम्बन्धी आदेशों का उल्लेख एव उनके विषय में शोध कार्य किया जाय, कारण कि ये बातें इस ग्रंथ के विषय से सम्बन्धित नही। हम तो सभ्यता की विशेषता एव मानव-अस्तित्व की आवश्यकताओं को सामने रखकर राज्य एव सल्तनत का उल्लेख करना चाहते है।

विजारत

यह पद समस्त सुल्तानी एवं बादशाही पदों की जड़ तथा आधार है। इसका नाम ही इसके महत्त्व को प्रदर्शित करता है, कारण कि विजारत शब्द या तो "मुआजिरत" से निकला है जिसका अर्थ सहायता है, अथवा "विज्र" से निकला है जिसका अर्थ भार है। मानो इस शब्द से यह सकेत होता है कि सल्तनत का वजीर वह महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी है जो सल्तनत का पूरा भार अपने कन्धों पर रखता है और सभी अधीनस्थ पदाधिकारियो को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान करता है। हम प्रथम खड मे इस तथ्य की ओर सकेत कर चुके है कि सल्तनत की स्थिति एव राज्यव्यवस्था चार बातो मे सीमित है। (१) या तो यह व्यवस्था उन समस्याओ से सम्बन्धित होगी जिनसे मानवसमाज की रक्षा की जा सकती है और उसके लिए साधन उपलब्ध हो सकते है। उदाहरणार्थ, सैनिक व्यवस्था, अस्त्र-शस्त्र की देख-भाल, युद्ध की व्यवस्था एव प्रबध अथवा प्रतिरक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओ का समाधान। जो व्यक्ति इन सब बातो की देख-भाल के लिए बादशाह की ओर से नियुक्त हो, उसको पूर्व की प्राचीन सल्तनतों मे साधारणत: वजीर कहा जाता था, अपितु मगरिब मे अब भी इस अधिकारी को वजीर ही कहते है।

(२) कभी-कभी ये प्रबध पत्र-व्यवहार से सम्बन्धित होते है जो बाहर के शासकों एव पदाधिकारियों के साथ किया जाता है और इसके विषय मे लिखित आदेश दिये जाते है। इस प्रकार का कार्य करने का उत्तरदायित्व साधारणत कातिब[1] पर होता था। 'कातिब' सल्तनत का दूसरा पदाधिकारी होता था। (३) तीसरे पद के

१. सचिव।

अधीन खराज की वसूली एवं व्यय की व्यवस्था की जाती है। इस पद का अधिकारी उसकी पूरी देख-भाल करता है। इस पद के अधिकारी को राजस्व का अधीक्षक 'साहिबुल माल' कहते हैं। पूर्व के देशों मे वह वजीर कहलाता है।

(४) चौथे पदाधिकारी का कर्त्तव्य यह है कि प्राथियो द्वारा बादशाह के पास भीड लगाकर उसे घिरने न दे, ताकि वह शान्तिपूर्वक अपना कार्य कर सके। यह पदाधिकारी 'हाजिब' कहलाता है।

इस प्रकार राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी यही चार पद है जो अन्य पदों की अपेक्षा सर्वोच्च है। इन चार मे भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वही पद है जिसके अधीन बादशाह के सभी पदाधिकारी है, कारण कि इस पद का सँभालनेवाला बादशाह का मित्र एव विश्वासपात्र होता है। शासन-व्यवस्था सम्बन्धी समस्त बातो मे वह बादशाह का साथ देता रहता है। फिर इन साधारण पदो के अधीन भी छोटे-छोटे विशेष पद होते है, जो विशेष लोगो से सम्बन्धित होते है अथवा विशेष शासन सबधी समस्याएँ उनसे सम्बन्धित होती है। उदाहरणार्थ, किसी विशेष दिशा का मुख्य प्रबधक, किसी विशेष खराज के आय-व्यय का मुख्य अधिकारी, खाने-पीने की व्यवस्था का मुख्य निरीक्षक, टकसाल एव सिक्को का निरीक्षक इत्यादि। अतः इन विशेष उत्तरदायित्वो से सम्बन्धित अधिकारी उस बड़े पदाधिकारी के अधीन समझे जाते है जिसकी देख-रेख मे ये सब छोटे पद होते है।

इस्लाम के पूर्व राज्यों में शासनप्रबंध का संचालन इसी प्रकार होता था। इस्लाम के अभ्युदय एव खिलाफत के राज्य का स्थान ले लेने के कारण ये सब पद भी समाप्त हो गये। राज्य-व्यवस्था के चलाने के लिए विचार-विमर्श का प्रयोग होने लगा। यह बात स्वाभाविक एव परमावश्यक थी। मुहम्मद साहब समस्त सहाबियो के साथ बैठकर राज्य की विशेष एव साधारण समस्याओं पर विचार-विनिमय करते और सहाबा से परामर्श करते थे। इसके अतिरिक्त हजरत अबू बक्र से कुछ विशेष समस्याओ पर भी परामर्श लेते थे। इस प्रकार वे अरब, जो किसरा, कैसर एव नजाशी के राज्यो से परिचित थे, वे अबू बक्र को मुहम्मद साहब का वजीर कहा करते थे, यद्यपि इस्लाम की सरलता बादशाहत के वैभव एवं गौरव पर छा गयी थी और वजीर शब्द का मुसलमानो को कोई ज्ञान ही न रहा था। यही संबध हजरत उमर का हजरत अबू बक्र के साथ, हजरत अली का हजरत अमर के साथ तथा हजरत उस्मान का हजरत अली के साथ था।

जहाँ तक ख़राज की प्राप्ति एवं व्यय अथवा हिसाब-किताब के कार्यालय का

संबंध है, ये नियमित एवं सुव्यवस्थित दशा में न थे; कारण कि अरब निरक्षर थे, लिखना-पढना तथा हिसाब-किताब न जानते थे। इसी कारण वे हिसाबी मामलो पर लिखे-पढे व्यक्ति ही नियुक्त करते थे । ऐसा उत्तरदायित्व वे अजमी दासो को, जो उस समय थोडी सख्या मे थे, सौप देते थे । रहे सम्मानित अरब लोग, तो वे इन कार्यो से अत्यधिक दूर थे, कारण कि वे निरक्षर थे । पत्र-व्यवहार का भी उनके यहाँ कोई विशेष विभाग न था, न शाही फरमानों का कोई कार्यालय था । इसका भी यही कारण था कि वे लिखना-पढना न जानते थे । वे ईमानदार थे और लोगो की गोपनीय बातों को गुप्त रखते थे । कारण कि खिलाफत राजनीति के वेष मे न थी, अपितु धार्मिक रूप धारण किये हुए थी। बनावट को कोई महत्त्व न प्राप्त था, अत खलीफा को किसी व्यवस्था की आवश्यकता न थी। उनमे से अधिकांश लोग अपने विचारो को सुन्दर से सुन्दर वाक्यों मे व्यक्त कर सकते थे। जब लिखने की आवश्यकता पडती तो ख़लीफ़ा जिसमे यह योग्यता देखता उसके जिम्मे यह उत्तरदायित्व सौप देता था । जहाँ तक हाजिब के पद का सबध है, इस्लामी शरीअत मे लोगो पर इस प्रकार का प्रतिबध लगाना निषिद्ध था, अतः यह पदाधिकारी होता ही क्यो ?

खिलाफत की स्थापना के समय यह रूपरेखा थी, किन्तु जब खिलाफत सल्तनत में परिवर्तित हुई और शाही उपाधियाँ एव प्रथाएँ देश मे प्रचलित हुई, तब सर्वप्रथम हाजिब की समस्या पर विचार किया गया और लोगों के आने-जाने पर प्रतिबध लगाया गया, कारण कि उस समय बादशाह विद्रोहियों से अत्यधिक आतकित थे। उन्हे भय रहता था कि कोई अचानक उनकी हत्या न कर दे । हजरत उमर, अली, मुआविया, अमर बिन आस एव अन्य सहाबियों के उदाहरण उनके सामने थे। फिर वे क्यो न सावधानी से कार्य करते । इसके अतिरिक्त यह नीति भी थी कि यदि राजप्रासाद के द्वार प्रत्येक साधारण तथा विशेष व्यक्ति के लिए खुल जायँगे तो लोग बादशाह के पास भीड लगा लेगे और हर समय भीड़ लगाये रखेगे। बादशाह को राज्य-व्यवस्था की समस्याओ पर सोच-विचार करने का अवसर न देंगे । इन कठिनाइयो के कारण सुल्तानो ने राजप्रासाद के लिए हाजिब नियुक्त कर दिये । कहा जाता है कि अब्दुल मलिक ने जब अपना हाजिब नियुक्त किया तो तीन व्यक्तियों को छोडकर उसे प्रत्येक खास व आम को रोक लेने का अधिकार दिया । एक अजान देनेवाले को, कारण कि वह अल्लाह की ओर बुलाता है, दूसरे पत्रवाहक को, कारण कि डाक को भी बडा महत्त्व प्राप्त है, तीसरे भोजन लानेवाले को, कारण कि विलम्ब के कारण भोजन नष्ट हो जाता है।

फिर जब सल्तनत के गौरव मे अधिक वृद्धि हुई तो ऐसे व्यक्ति की अत्यधिक आव-

श्यकता पड़ी, जिसकी सहायता एवं परामर्श से कबीलों एव "असबियतो" की समस्याओ का समाधान किया जाय तथा उन्हें प्रसन्न रखा जाय । इस प्रकार के व्यक्ति का नाम वजीर रखा गया। रहा लिखने-पढने तथा हिसाब-किताब का कार्य, यह दासो एव जिम्मियो[१] के हाथ मे ही रहा। एक विशेष व्यक्ति ऐसा छाँटा गया जो आदेशो एव आवश्यक कागजों की लिखाई-पढ़ाई करे और वह राज्य की उन गोपनीय बातो एवं रहस्यों की रक्षा करे जिनके खुल जाने से राजनीति अस्त-व्यस्त हो जाती है। उसकी श्रेणी वजीर से कम होती है,कारण कि लिपिक अथवा मुशी की आवश्यकता पत्र-व्यवहार के लिए होती है, न कि विचार-विमर्श के लिए। प्रत्येक व्यक्ति वाक्पटु एव वाग्मी होता था। इसी गुण के कारण वजीर का भी बडा आदर-सम्मान होता था। सक्षेप मे उमय्या-राज्यकाल मे विजारत का पद सबसे ऊँचा समझा जाता था। वजीर सब पर शासन करता था। वह राज्य की समस्त समस्याओं के समाधान मे उचित उपाय सोचता था। प्रतिरक्षा, देखभाल एव सर्वसाधारण को जो धन अदा करना होता था, उस पर ग़ौर करता था। सेना विभाग पर नियत्रण रखता तथा दान-पुण्य एव वृत्तियो के लिए उचित आदमियो का चुनाव करता था। अन्य बहुत-से उत्तरदायित्व भी वह सँभालता था।

जब अब्बासियो का राज्य प्रारम्भ हुआ और सल्तनत का गौरव एव ऐश्वर्य बढ़ा तो वजीर के अधिकारो में भी वृद्धि हुई। उसका महत्त्व भी अधिक हो गया और राज्य-व्यवस्था मे वह बादशाह के अधिकारो का नायब समझा जाने लगा। फिर तो हर छोटे-बड़े की गर्दन उसके समक्ष झुकने लगी और प्रत्येक व्यक्ति उस पर अवलम्बित एव निर्भर हो गया। दीवानी विभाग सीधे उसकी देख-रेख मे आ गया, कारण कि सेना को जो कुछ प्रदान किया जाता वह उसी के द्वारा दिया जाता था, अत. यह विभाग उसी के अधीन रहा। इसी प्रकार पत्र-व्यवहार एवं डाक विभाग भी वजीर के नियत्रण मे दे दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि राज्य के रहस्यो एव अन्य गोपनीय बातो की लोगो को सूचना न होने पाये और रचना-शैली की सुन्दरता मे भी कोई दोष न आने पाये, कारण कि उस समय सर्वसाधारण की भाषा बिगड़ने लगी थी। बादशाही फरमानो के लिए एक मुहर तैयार की गयी और वह भी वजीर को सौप दी गयी ताकि कोई उसका

१. **मुसलमान शासकों के अधीन अन्य धर्म के लोग, जिनकी रक्षा का उत्तरदायित्व जिजिया अदा करने के कारण मुसलमान शासकों पर होता था। इस्लाम के प्रारम्भिक युग में यहूदी तथा ईसाई ही जिम्मी कहलाते थे।**

दुरुपयोग न कर सके। संक्षेप में वजीर राज्य में तलवार एवं क़लम सम्बन्धी पदों का स्वामी हो गया और सभी विभाग उसके अधीन हो गये। यहाँ तक कि हारूनुर्रशीद के युग मे लोग जाफर बिन यहया को उसके असीमित अधिकारों एवं सल्तनत पर पूर्ण प्रभुत्व के कारण सुल्तान कहा करते थे। शाही पदों में यदि कोई पद वजीर के अधिकारो के बाहर था तो वह हाजिबो का पद था। इसका यह कारण न था कि यह पद वजीर के अधीन न हो सका, अपितु वजीरो ने स्वय ही इस पद को अपने लिए उचित न समझा और इसे अपनी शान से कम समझा।

इसके उपरान्त अब्बासी राज्य का वह युग प्रारम्भ हुआ जब बनी अब्बास वजीर लगभग स्वाधीन हो गये। कभी वे अपने बादशाहो पर अधिकार जमाकर राजसिहासन पर आरूढ हो जाते और कभी उनके बादशाह उन्हे दबा लेते और राजसिहासन पर अधिकार जमाये रहते। वजीर निरकुश अधिकारो का स्वामी होने पर भी खलीफा पर इस बात के लिए निर्भर रहता था कि ख़लीफ़ा उसे अपना नायब नियुक्त करे, ताकि उसके अधीन शरई आदेश प्रथानुसार चलते रहे। इस प्रकार उस समय विजारत दो प्रकार की थी। एक "विजारते तनफीजे[1] एहकाम", जब कि बादशाह के अधिकार उसके हाथ मे रहते थे। दूसरी "विजारते तफवीज"[2], जब कि वजीर बादशाह को अपने अधीन करके स्वतत्र राज्य स्थापित कर लेता था और बादशाह विवश हो जाता था। जिस प्रकार दो इमामों की नियुक्ति पर मतभेद है, उमी कारण इस बात पर भी मतभेद पाया जाता है कि दो वजीर भी नियुक्त किये जा सकते है अथवा नही। बादशाहो एव वजीरों मे यह सघर्ष चलता रहा, यहाँ तक कि अजम के बादशाहो ने राज्य पर अधिकार जमा लिया और खिलाफत के चिह्न मिट गये। अब इन अपहरणकर्ता अजमी बादशाहो ने खिलाफत की उपाधियों का प्रयोग भी अपने लिए उचित न समझा और वजीरो की उपाधियाँ ग्रहण करना भी अपने अनुकूल न पाया, अत. वे अमीर अथवा सुल्तान कहलाये जाने लगे। उनमें जो पूर्ण रूप से स्वाधीन होता वह या तो "अमीरुल उमरा" की उपाधि द्वारा अथवा "सुल्तान" के नाम से सुशोभित होता था। इसके साथ-साथ खलीफा की ओर से भी जो उपाधि उसे प्रदान होती उसका भी वह प्रयोग करता था, इसका प्रमाण उनकी उपाधियों द्वारा मिल जाता है। वजीर का नाम उन्होने शक्तिहीन खलीफाओं के वजीरों के लिए सीमित

१. अधिशासी विजारत या मंत्रित्व।
२. प्रदत्त विजारत या मन्त्रित्व।

कर दिया था। शासन के अन्त तक उनकी यही दशा रही, किन्तु इस बीच मे अरबी भापा बिगड़ गयी और केवल एक कला रूप मे ही सीमित हो गयी। इसके अभ्यास के लिए कुछ लोग विशिष्ट रूप से पृथक् हो गये। भाषा का सम्मान गिर गया। वजीरो ने भी उसे सीखना अपनी शान के अनुकूल न समझा। इसके अतिरिक्त वे अजमी थे। भापा मे अधिक योग्यता की आवश्यकता न रही। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के लोग लिखने-पढ़ने एवं पत्र-व्यवहार के कार्य हेतु चुने जाने लगे। अरबी भापा वजीरो की सेविका बन गयी।

उधर अमीर का नाम सेनापति के लिए सीमित हो गया। कहने को तो वह सेनापति होता, किन्तु उसका अधिकार सल्तनत के सभी पदों पर छाया रहता था और सब पर उसका फरमान चलता था, कभी नायब के रूप में और कभी स्वतत्र रूप में। कुछ समय तक शासनप्रबध इसी प्रकार चलता रहा। अन्त मे जाकर मिस्र में तुर्क सिहासनारूढ हुए। उन्होने देखा कि वजीर एक साधारण एव निम्न प्रकार का प्राणी है और अधिकार-हीन खलीफाओं के कार्य को सँभालना ही उसकी विशेषता समझी जाती है। ऐसा वजीर अमीर का आज्ञाकारी होता है। इस कारण विजारत का महत्त्व उनकी दृष्टि से गिर गया। इसमे उन्हें आज्ञाकारिता एव अधीनता के अवगुण दृष्टिगत हुए, अतः विजारत के काम को उन्होने अपनी शान के विरुद्ध समझा और उससे असतुष्ट रहने लगे। इस युग मे वह व्यक्ति, जिसके आदेशों का सभी पालन करते हो और सेना भी जिसके अधीन रहती है, "नायब" के नाम से प्रसिद्ध होता है, न कि अमीर के या वजीर के नाम से। केवल हाजिब शब्द का प्रयोग अपने मूल-अर्थ के अनुसार होता रहा। वजीर का नाम केवल उस व्यक्ति के लिए सीमित रहा जिसके हाथ मे खराज की व्यवस्था थी।

उन्दुलुस मे बनी उमय्या अपनी सल्तनत के प्रारम्भ मे ही वजीर के पद को उसके मूल अर्थ मे समझते रहे, तदुपरान्त उन्होंने उस पद को कुछ भागो मे विभाजित कर दिया। इनमें से प्रत्येक पदाधिकारी को वजीर कहते थे, उदाहरणार्थ वित्त विभाग का वजीर, पत्र-व्यवहार का वजीर, पीडितो की देख-भाल का वजीर एव सीमात की देख-भाल का वजीर। इन वजीरो के लिए एक विशेष कार्यालय तैयार कराया गया। वहाँ वे कालीनो पर बैठकर शाही आदेश निकाला करते और अपने-अपने कर्त्तव्यो का पालन करते रहते थे। फिर एक व्यक्ति ऐसा नियुक्त हुआ जो खलीफ़ा तथा वजीरो में मध्यस्थ का कार्य करता था। उसे समस्त वजीरो की अपेक्षा उच्च श्रेणी का समझा जाता था, कारण कि वह हर समय सुल्तान के साथ रहता था। अन्य वजीरों की अपेक्षा वह ऊँचे स्थान पर बैठता, उसे हाजिब की उपाधि द्वारा सम्बोधित किया

दुरुपयोग न कर सके। संक्षेप में वजीर राज्य में तलवार एवं क़लम सम्बन्धी पदों का स्वामी हो गया और सभी विभाग उसके अधीन हो गये। यहाँ तक कि हारूनुर्रशीद के युग मे लोग जाफर बिन यहया को उसके असीमित अधिकारों एव सल्तनत पर पूर्ण प्रभुत्व के कारण सुल्तान कहा करते थे। शाही पदो में यदि कोई पद वजीर के अधिकारो के बाहर था तो वह हाजिबों का पद था। इसका यह कारण न था वि यह पद वजीर के अधीन न हो सका, अपितु वजीरों ने स्वय ही इस पद को अपने लिए उचित न समझा और इसे अपनी शान से कम समझा।

इसके उपरान्त अब्बासी राज्य का वह युग प्रारम्भ हुआ जब बनी अब्बास वजीर लगभग स्वाधीन हो गये। कभी वे अपने बादशाहो पर अधिकार जमाकर राजसिहासन पर आरूढ़ हो जाते और कभी उनके बादशाह उन्हे दबा लेते और राजसिहासन पर अधिकार जमाये रहते। वजीर निरकुश अधिकारों का स्वामी होने पर भी खलीफा पर इस बात के लिए निर्भर रहता था कि खलीफा उसे अपना नायब नियुक्त करे, ताकि उसके अधीन शरई आदेश प्रथानुसार चलते रहे। इस प्रकार उस समय विजारत दो प्रकार की थी। एक "विजारते तनफीज़े[1] एहकाम", जब कि बादशाह के अधिकार उसके हाथ मे रहते थे। दूसरी "विजारते तफवीज"[2], जब कि वजीर बादशाह को अपने अधीन करके स्वतत्र राज्य स्थापित कर लेता था और बादशाह विवश हो जाता था। जिस प्रकार दो इमामों की नियुक्ति पर मतभेद है, उसी कारण इस वात पर भी मतभेद पाया जाता है कि दो वजीर भी नियुक्त किये जा सकते हैं अथवा नही। बादशाहो एव वजीरों मे यह सघर्ष चलता रहा, यहाँ तक कि अजम के बादशाहो ने राज्य पर अधिकार जमा लिया और खिलाफत के चिह्न मिट गये। अब इन अपहरणकर्ता अजमी बादशाहों ने खिलाफ़त की उपाधियों का प्रयोग भी अपने लिए उचित न समझा और वजीरो की उपाधियाँ ग्रहण करना भी अपने अनुकूल न पाया, अत. वे अमीर अथवा सुल्तान कहलाये जाने लगे। उनमें जो पूर्ण रूप से स्वाधीन होता वह या तो "अमीरुल उमरा" की उपाधि द्वारा अथवा "सुल्तान" के नाम से सुशोभित होता था। इसके साथ-साथ खलीफा की ओर से भी जो उपाधि उसे प्रदान होती उसका भी वह प्रयोग करता था, इसका प्रमाण उनकी उपाधियों द्वारा मिल जाता है। वजीर का नाम उन्होने शक्तिहीन खलीफाओं के वजीरों के लिए सीमित

१. **अधिशासी विज़ारत या मंत्रित्व।**
२. **प्रदत्त विज़ारत या मन्त्रित्व।**

कर दिया था। शासन के अन्त तक उनकी यही दशा रही, किन्तु इस बीच में अरबी भाषा बिगड़ गयी और केवल एक कला रूप मे ही सीमित हो गयी। इसके अभ्यास के लिए कुछ लोग विशिष्ट रूप से पृथक् हो गये। भाषा का सम्मान गिर गया। वजीरों ने भी उसे सीखना अपनी शान के अनुकूल न समझा। इसके अतिरिक्त वे अजमी थे। भाषा मे अधिक योग्यता की आवश्यकता न रही। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के लोग लिखने-पढ़ने एवं पत्र-व्यवहार के कार्य हेतु चुने जाने लगे। अरबी भाषा वजीरो की सेविका बन गयी।

उधर अमीर का नाम सेनापति के लिए सीमित हो गया। कहने को तो वह सेनापति होता, किन्तु उसका अधिकार सल्तनत के सभी पदों पर छाया रहता था और सब पर उसका फरमान चलता था, कभी नायब के रूप में और कभी स्वतत्र रूप में। कुछ समय तक शासनप्रबंध इसी प्रकार चलता रहा। अन्त में जाकर मिस्र मे तुर्क सिहासनारूढ हुए। उन्होने देखा कि वजीर एक साधारण एव निम्न प्रकार का प्राणी है और अधिकार-हीन खलीफाओं के कार्य को सँभालना ही उसकी विशेषता समझी जाती है। ऐसा वजीर अमीर का आज्ञाकारी होता है। इस कारण विजारत का महत्त्व उनकी दृष्टि से गिर गया। इसमे उन्हें आज्ञाकारिता एव अधीनता के अवगुण दृष्टिगत हुए, अत: विजारत के काम को उन्होने अपनी शान के विरुद्ध समझा और उससे असतुष्ट रहने लगे। इस युग मे वह व्यक्ति, जिसके आदेशो का सभी पालन करते हो और सेना भी जिसके अधीन रहती है, "नायब" के नाम से प्रसिद्ध होता है, न कि अमीर के या वजीर के नाम से। केवल हाजिब शब्द का प्रयोग अपने मूल-अर्थ के अनुसार होता रहा। वजीर का नाम केवल उस व्यक्ति के लिए सीमित रहा जिसके हाथ मे खराज की व्यवस्था थी।

उन्दुलुस मे बनी उमय्या अपनी सल्तनत के प्रारम्भ मे ही वजीर के पद को उसके मूल अर्थ मे समझते रहे, तदुपरान्त उन्होंने उस पद को कुछ भागो मे विभाजित कर दिया। इनमें से प्रत्येक पदाधिकारी को वजीर कहते थे, उदाहरणार्थ वित्त विभाग का वजीर, पत्र-व्यवहार का वजीर, पीड़ितो की देख-भाल का वजीर एव सीमात की देख-भाल का वजीर। इन वजीरों के लिए एक विशेष कार्यालय तैयार कराया गया। वहाँ वे कालीनो पर बैठकर शाही आदेश निकाला करते और अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते थे। फिर एक व्यक्ति ऐसा नियुक्त हुआ जो खलीफ़ा तथा वजीरो में मध्यस्थ का कार्य करता था। उसे समस्त वजीरों की अपेक्षा उच्च श्रेणी का समझा जाता था, कारण कि वह हर समय सुल्तान के साथ रहता था। अन्य वजीरों की अपेक्षा वह ऊँचे स्थान पर बैठता, उसे हाजिब की उपाधि द्वारा सम्बोधित किया

जाता था। बनी उमय्या के अन्तिम काल तक राज्य-व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। इस व्यवस्था के अनुसार हाजिब समस्त पदाधिकारियों की अपेक्षा उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता था। उसके बाद जब मुलूकुत्तवाएफ का युग आया तो उन्होने भी इस उपाधि को प्रशसनीय दृष्टि से देखा और स्वय भी यही उपाधि ग्रहण कर ली। इसी कारण मुलूकुत्तवाएफ हाजिब की उपाधि द्वारा ही प्रसिद्ध हुए।

बनी उमय्या की सल्तनत के उपरान्त शीई सल्तनत[1] ने इफरीकिया एव क़ैरवान मे उसका स्थान लिया। यह शीआ सरलता एव "बदवियत" के रग में रगे हुए थे, अत. उन्होने प्रारम्भ मे इन पदो का अन्तर समझने के विपय में उपेक्षा की और उनके नामो के चुनाव पर ध्यान न दिया। जब यह राज्य नगर की सस्कृति का आदी हुआ तो ये लोग भी उपाधियों के चुनने मे (बनी उमय्या एव बनी अब्बास का) अनुकरण करने लगे। इस बात का पता उनके इतिहास से चलता है। जब उनका राज्य-काल समाप्त हुआ और मुवह्हेदीन के राज्य का अभ्युदय हुआ, तब उन्होने भी बदवियत के कारण पदो की छान-बीन तथा नामो के चुनाव पर ध्यान न दिया। कुछ समय पश्चात् उन्दुलुस के (उमय्या वश) का राज्य-व्यवस्था की समस्त समस्याओं मे अनुकरण होने लगा। वजीर की उपाधि का उसके मूल अर्थ मे प्रयोग होने लगा। उन्होने वजीर की उपाधि उस व्यक्ति के लिए रखी जो सुल्तान के दरबार मे हाजिब का भी कार्य करे और शिष्ट-मडलो एव अन्य उपस्थित गणो को उचित स्थान पर बैठाकर अभिवादन एव सम्बोधन के निर्धारित नियम बताये। इस प्रकार उन्होने हिजाबत के पद को अत्यधिक महत्त्व दे दिया और उसके उत्तरदायित्व के क्षेत्र को बहुत बढ़ा चढ़ा दिया। अब भी उनकी सल्तनत मे विजारत का शब्द इन्ही अधिकारो को व्यक्त करता है।

पूर्व मे तुर्क सुल्तानो के यहाँ ऐसे व्यक्ति को, जो लोगों को शाही दरबार में अभिवादन के नियम बतलाये और शिष्ट मडलों को उचित स्थानो पर वैठाये, उसे "दवादार" कहते है। वह कातिबुस्सिर[2] तथा डाक विभाग के अधिकारियो की भी, जो बादशाह की निकट एव दूर की आवश्यकताएँ पूरी करते है, देख-रेख करता है। इस प्रकार उनमे अब तक यही प्रथा चली आ रही है।

१. फ़ातिमी (उबैदीईन)।
२. वैयक्तिक सचिव।

हिजाबत

हम यह पहले बता चुके है कि उमय्या एवं अब्बासी राज्यकाल में इस उपाधि का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए होता था जो सुल्तान एवं सर्वसाधारण के मध्य में हिजाबत का काम करता था। वह आवश्यकतानुसार जिसके लिए जिस समय चाहता, राजप्रासाद के द्वार खुलवाता अथवा बन्द करवाता था। शाही दरबार मे प्रवेश की अनुमति दे या न दे, किन्तु वह अन्य पदाधिकारियों के अधीन होता था। इस प्रकार वजीर ही जैसा उचित समझता हस्तक्षेप करता रहता था। बनी अब्बास के राज्यकाल मे तो यही प्रथा प्रचलित रही। मिस्र में हाजिब का पद नायब के सर्वोच्च पद के अधीन है।

उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल मे हाजिब की उपाधि उसे प्रदान की जाती थी जो सर्वसाधारण एव विशेष व्यक्तियो को बादशाह से भेट कराता था तथा बादशाह एव वजीरो तथा अन्य अधिकारियो के बीच मे भी मध्यस्थ बनता था। इस प्रकार उनके राज्यकाल मे उसे बड़ा सम्मान प्राप्त था। इसका पता उनके इतिहास से चल जायगा। इब्ने हुदैर[1] इत्यादि उमय्या वश के राज्य में हाजिब के पद पर ही आरूढ़ रहे।

फिर जब बनी उमय्या के राज्य का पतन हुआ तथा अन्य लोगो ने स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिये तो वे भी हाजिब कहलाये, कारण कि उन्दुलुस मे इस उपाधि को विशेष सम्मान प्राप्त था, फलत. मंसूर बिन अबी आमिर तथा उसकी सतान के लिए हाजिब की उपाधि विशेष सम्मान का कारण बनी। अन्त मे जब उनका युग भी समाप्त हुआ और मुलूकुत्तवाएफ शक्तिशाली बने तो उन्होंने भी इस उपाधि को नही त्यागा और इसे वे अपने सम्मान एव अपनी श्रेष्ठता का द्योतक समझते रहे। उन बादशाहो मे जो व्यक्ति अपने ऐश्वर्य एव गौरव की चरम सीमा पर पहुँच जाता था वह अन्य उपाधियों एव शाही नामों के साथ "हाजिब" व "जूल विजारतैन"[2] नामक उपाधियो का प्रयोग अपने सम्मान के लिए अवश्य करता था। हाजिब की उपाधि से उसके उस उत्तरदायित्व का सकेत होता था जो सुल्तान तथा विशेष एवं साधारण व्यक्तियो के मध्य रक्षक एव राज्य के कर्त्तव्य को पूरा करता है

१. अबुल असबग़ बिन मुहम्मद (मृत्यु ३२० हि० । ९३२ ई०)।

२. दो विज़ारतों का स्वामी, अर्थात् क़लम एवं तलवार की विज़ारतों का।

और "जुल विजारतैन" नामक उपाधि का यह उद्देश्य था कि वह तलवार तथा कलम दोनो विभागों का स्वामी है।

इन बादशाहो के उपरान्त इफरीक़िया एव मग़रिब की सल्तनतों में हाजिब की उपाधि त्याग दी गयी, कारण कि उनके स्वभाव मे "बदवियत" पायी जाती थी। वे सीधे-सादे लोग थे। पदों एवं श्रेणियों के भेद-भाव तथा नामों एवं उपाधियो के आविष्कार में उन्हे कोई रुचि न थी।

मिस्र मे उबैदीईन के राज्यकाल में हाजिब के पद का केवल कहीं-कही ही पता चलता है और वह भी बड़े कम समय के लिए। उबैदीईन के बाद मुवह्हेदीन के राज्यकाल में भी सस्कृति एव नगर के जीवन को उन्नति न प्राप्त होने के कारण पदो के पारस्परिक भेद-भाव एव उनके नाम रखने में अधिक नवीनता एव आविष्कार का प्रदर्शन नहीं किया गया। उनके यहाँ केवल एक वजीर का पद था और कातिब[1] को ही वजीर के नाम से सम्बोधित करते थे। वह बादशाह को विशेष समस्याओं के सम्बध मे परामर्श दिया करता था। इब्ने अतीया एव अब्दुस्सलाम कूमी को यही अधिकार प्राप्त थे। यही कातिब हिसाब एव दीवानी विभाग की जाँच करता था। फिर इसके उपरान्त वजीर की उपाधि शाही वश के लोगो के लिए विशेष रूप से प्रयोग मे आने लगी, जैसे इब्ने जामे इत्यादि के लिए, किन्तु "हाजिब" की उपाधि का उनके राज्यकाल मे प्रयोग न होता था।

इफरीकिया में बनू अबी हफस के राज्य के प्रारम्भिक समय मे उच्चतम अधिकार एव परामर्श का हक वजीर को प्राप्त था। उसे ये लोग मुवह्हेदीन का शेख कहते थे। नियुक्ति एव पदच्युत करने के अधिकार उसी के हाथ मे थे। सेना के लिए सेनापति चुनने का अधिकार तथा युद्ध की व्यवस्था उसी के सुपुर्द थी। हिसाब-किताब एव दीवानी के विषयो के लिए एक पृथक् स्थायी पद था, जिसका सर्वोच्चाधिकारी "साहिब-अल-अशगाल"[2] कहलाता था। आय-व्यय का नियत्रण, हिसाब-किताब की जाँच, शेष राजस्व की वसूली और लोगो के दुराचार पर दड देना उसी के अधीन था, किन्तु उसके लिए मुवह्हेदीन के कुल से सम्बधित होना आवश्यक था। किसी अन्य को यह पद नही प्राप्त होता था। क़लम के पद भी मुवह्हेदीन पृथक रखते थे। यह पद उसे प्रदान होता था जो रचना-शैली में दक्ष होता था और राज्य

१. सचिव।
२. वित्त संबंधी मामलों की देख-रेख करनेवाला।

के रहस्यों को गुप्त रखने एवं ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होता था। कारण कि किताबत में मुवह्हेदीन को कोई विशेष योग्यता न प्राप्त थी और पत्र-व्यवहार भी उनकी भाषा मे नही होते थे। इसी कारण उन्होंने इसमे से वंश की शर्त पृथक् कर दी। जब उनकी सल्तनत के प्रभुत्व का क्षेत्र बढ़ा और सल्तनत के पदाधिकारियो की सख्या मे वृद्धि हुई तो बादशाह को ऐसे विशेष पदाधिकारियो की आवश्यकता होती थी जो खास तौर पर से उसके महल की देख-रेख कर सके। राज-प्रासाद के प्रबध को भली-भाँति चला सके। खाने-पीने का प्रबध, उपहारो का वितरण, वस्त्रो की देख-भाल उसके सुपुर्द हो। रसोई एव अश्वशाला का पूरा प्रबन्ध उसके हाथ मे हो। कोष की बहुमूल्य वस्तुओ का भी वही सर्वोच्च अधिकारी हो और इस बात की देख-भाल किया करे कि उसमे कौन-कौन-सी वस्तुएँ आती है और वे किस प्रकार व्यय होती है। सक्षेप मे वह इन विभागो का सर्वोच्च अधिकारी हो। अत उन्होने इसके लिए एक हाकिम चुना और उसका नाम हाजिब रखा। कभी-कभी उस हाजिब को शाही फ़रमानों पर सुल्तान का तुगरा लिखवाने का उत्तरदायित्व सौप दिया जाता था, किन्तु यह उसी समय होता था जब हाजिब रचना-शैली मे पूर्ण रूप से दक्ष हो। कभी इसके लिए पृथक् अधिकारी नियुक्त किया जाता था। कुछ समय तक शासन-व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। आगे चलकर बादशाहो ने लोगो से स्वतत्र रूप से मिलना जुलना बन्द कर दिया तो फिर यही हाजिब बादशाह एव अन्य अधिकारियों के सपर्क का बिचवइया बन गया। सल्तनत के उत्तरार्ध में हाजिब लोग तलवार एव युद्ध सम्बन्धी सभी बातों के अध्यक्ष भी बन बैठे और उनके परामर्श का महत्त्व बढ गया। इस प्रकार जब इस पद का महत्त्व बहुत बढ गया तो हाजिब का पद सर्वोच्च समझा जाने लगा। अबी हफस की सतान मे तो बारहवे सुल्तान के बाद हाजिब ने सुल्तान के समस्त अधिकार छीनकर उसे एक कोने में बैठा दिया और स्वय समस्त अधिकारो के स्वामी बन बैठे। अन्त मे सुल्तान अबुल अब्बास ने पुन. स्वाधीनता प्राप्त की। उसने हाजिब के पद को समाप्त किया और राज्य-व्यवस्था पर पूर्ण रूप से स्वाधिकार जमा लिया। इस प्रकार उन लोगों के राज्य मे अब तक यही प्रथा चली आ रही है।

मगरिब मे जनाता की सल्तनत मे और विशेष रूप से उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण बनी मरीन के राज्य मे हाजिब के पद का कोई पता नही चलता। सेना एव युद्ध का प्रबन्ध वजीर के हाथ मे है। हिसाब-किताब एव पत्र-व्यवहार का विभाग उस व्यक्ति को सुपुर्द किया जाता है जो उसे भली-भाति चला सकता हो। कभी-कभी

यह पद विशेष रूप से आश्रितों को प्रदान किया जाता है और इसके अधिकार उन्ही तक सीमित रहते है, पर कभी-कभी इसका उत्तरदायित्व विभिन्न लोगों मे विभाजित कर दिया जाता है। उनके यहाँ एक ऐसा पदाधिकारी भी होता है जो सर्वसाधारण को बादशाह के पास पहुँचने से रोकता है। उसे मिजवार[1] कहते है। उसको सुल्तान के महल के कर्मचारियो की अफसरी प्राप्त होती है। उसी के मतानुसार शाही आदेश एव हुक्म निकाले जाते और दड प्रदान किये जाते है। बन्दियों की देख-रेख की जाती है। सक्षेप मे शाही द्वार की सभी बातें एव मामले उसके सुपुर्द होते है। वह दरबारे आम मे लोगो को उनके उचित स्थानो पर बैठाने का जिम्मेदार होता है। इस प्रकार मिजवार अपने अधिकारो के अनुसार एक प्रकार का छोटा वजीर होता है।

इसके विपरीत बनी अब्दुल वाद के यहाँ इन उपाधियो एव पदों की कोई चर्चा ही नही, कारण कि उन पर अब तक बदवियत की छाप पड़ी हुई है और नगरों की प्रथाओ के सम्बध मे ये लोग अभी बहुत पीछे है। ये लोग कभी-कभी "हाजिब" उस अधिकारी को कह देते है जो सुल्तान के व्यक्तिगत तथा महल के प्रबधो का जिम्मेदार हो, जैसा कि बनी हफ़स मे प्रथा थी। कभी हिसाब-किताब के विभाग एवं सल्तनत के फरमानों के निर्गत कराने के कार्य भी उसी के सुपुर्द होते है। ये लोग बनी अबी हफ़स के राज्य का प्रारम्भ से ही अनुकरण करते है एव उसके जानशीन होने का दावा करते है, अतः बहुत-सी बातों एव प्रथाओं में वे उसी राज्य की नकल करते है।

उन्दुलुस के वर्त्तमान राज्य में हिसाब-किताब, शाही आदेशों के निकालने एवं माल सम्बधी बातो के विभाग जिस व्यक्ति की देख-रेख मे है, उसे वकील कहते है। वजीर के कर्त्तव्य वही है जो साधारणत: होते है, किन्तु पत्र-व्यवहार का विभाग भी उसके अधीन होता है। सल्तनत के फरमानों पर बादशाह स्वय मुहर लगाता है। अन्य राज्यो की भाँति इसके लिए पृथक् प्रबध नही।

मिस्र के तुर्को के राज्यकाल मे हाजिब के नाम से वह व्यक्ति प्रसिद्ध होता है जो हाकिम कहलाता है। नगर में राज्य के आदेशो को जारी कराना उसी के जिम्मे होता है। इस प्रसिद्ध पद के उत्तरदायित्व को कई लोग, जो आदेशों के निर्गत हेतु नियुक्त होते है, मिलकर पूरा करते है। तुर्को मे हाजिब का पद नायब से नीचे

१. बरबर शब्द, जिसका अर्थ प्रथम है।

होता है, कारण कि नायब ही सल्तनत में ऐसे उच्च अधिकार का, जिसके अन्य अधीनस्थ विभाग आज्ञाकारी होते है, स्वामी होता है। बहुत से पदाधिकारियों की नियुक्ति एव उन्हे पदच्युत करने का अधिकार भी उसी को होता है। वृत्तियो एवं वेतनो में वह आवश्यकतानुसार कमी-बेशी कर सकता है। सक्षेप मे जिस प्रकार वह बादशाह के आदेश जारी करता है, उसी प्रकार वह अपने व्यक्तिगत आदेश जिम्मेदारी से जारी कर सकता है, कारण कि बादशाह की ओर से वह समस्त बातों मे नायब समझा जाता है।

तुर्कों मे भी हाजिब के नाम से एक पदाधिकारी होता है। सर्वसाधारण अथवा कुछ लोगों के मामले जब उसके समक्ष प्रस्तुत किये जाते है तो वह उनका निर्णय करता है। उनके झगड़ों का निपटारा करता है। जो उसके आदेशों का पालन नही करते उन्हें इसके लिए विवश करता है। हाजिब भी नायब के ही अधीन होता है। तुर्कों के राज्य मे वजीर का सम्बध केवल राज्य की आय से होता है, चाहे वह आय खराज एव चुगी की हो चाहे जिजिये इत्यादि की। शाही व्यय एव अन्य निर्धारित मदो पर धन व्यय करने का उसे अधिकार होता है। राजस्व-विभाग के कर्मचारियों की नियुक्ति एव उनको पदच्युत करने का भी उसे अधिकार होता है। सक्षेप मे समय को देखकर जैसा आवश्यक एव उचित होता है, वह करता है। तुर्कों मे यह प्रथा चली आ रही है कि वजीर का पद किबतियों को प्राप्त होता है, जिनके अधीन ख़राज एव माल-विभाग भी होता है।

दीवाने आमाल व ख़राज[1]

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि इस पद की गणना राज्य के उन पदों मे होती है जिनका अस्तित्व राज्य एव सल्तनत के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खिराज[2] एव राज्य की आय के सभी मामले इससे सम्बधित होते है। राज्य के आय-व्यय की देख-रेख की जाती है। सैनिको के नाम, उनकी वृत्तियो एव वेतन की मात्रा इस विभाग मे लिखी रहती है। उनके वेतनों का वितरण भी इसी विभाग मे लिखा जाता है। ये सब कार्रवाइयाँ उन अधिनियमो के अनुसार होती है जिनको राज्य के उच्च पदाधिकारी एव खराज-विभाग के अधिकारी एक पंजिका के रूप में

१. वित्त एवं राजस्व-विभाग।
२. राजस्व, भूमिकर, मालगुज़ारी।

सुरक्षित कर लेते है। इस पजिका में राज्य के आय-व्यय की सविस्तर चर्चा होती है। इसका बहुत बड़ा भाग गणित के ज्ञान से गहरा सम्बन्ध रखता है। वही लोग वास्तव मे इन अधिनियमो के अनुसार कार्य कर सकते है जो इस ज्ञान मे दक्ष है। अधिनियमो की यह पजिका "दीवान" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वे अधिकारी, जिनका इस विषय से सम्बध होता है, जहाँ बैठकर अपना कार्य करते है, उसे भी "दीवान" ही कहते है।

इस नाम का कारण यह बताया जाता है कि एक दिन किस्रा नौशीरवाँ अपने दीवान के मुशियो के पास पहुँच गया। वे सिर से सिर जोड़े हुए हिसाब-किताब में इस प्रकार व्यस्त थे कि मानो बड-बड़ा रहे हो, तो उसके मुँह से निकल गया "देवानेह" अर्थात् ये पागल है। अधिक प्रयोग मे आते-आते बैठने के स्थान का नाम "देवानेह" से दीवान हो गया।

फिर उस पजिका का नाम दीवान पडा जिसमे राजस्वसम्बन्धी अधिनियम एवं हिसाब-किताब का वर्णन हो। कुछ लोगो का मत है कि फारसी मे दीवान शैतानों को कहते है। सचिवो को दीवान इस कारण कहते थे कि उनकी बुद्धि बडी कुशाग्र होती थी और वे प्रत्येक कठिन से कठिन समस्या को तुरन्त समझ लेते थे। गोपनीय एव स्पष्ट बातो को तत्काल ताड जाते थे और छिन्न-भिन्न एव तितर-बितर मामलो मे पलक झपकाने मात्र समय मे उनसे सिद्धान्त एव निष्कर्ष की बात निकाल लेते थे। फिर पजिका के अर्थ मे प्रयोग न होकर दीवान शब्द का प्रयोग उस कार्यालय के लिए प्रयुक्त हुआ, जहाँ राजस्व के कर्मचारी अपने हिसाब-किताब का कार्य सम्पन्न करते है और अब भी दीवान शब्द पजिका एव कार्यालय दोनों के लिए प्रयोग मे आता है।

कभी-कभी इस सपूर्ण विभाग की देख-रेख एक ही अधिकारी के जिम्मे होती है। वह इस विभाग की विभिन्न शाखाओ की देख-भाल करता है। प्रत्येक विभाग के लिए पृथक् अधीक्षक भी नियुक्त किये जाते है। इस प्रकार कुछ सल्तनतो मे सैनिक प्रबध और उनकी जागीरो तथा इनामों का प्रबध अलग-अलग लोगो को बाँट दिया जाता है। सक्षेप मे समय के औचित्य की दृष्टि से एव पिछले लोगो के आचरण को देखते हुए जो कुछ उचित होता है उस पर आचरण होता है। समझ लीजिए कि यह विभाग किसी सल्तनत मे उस समय स्थापित होता है जब उसका प्रभुत्व दूर-दूर तक फैल जाता है और उसकी जड़ एव नीव दृढ हो जाती है और जब इस बात की आवश्यकता होती है कि राजनीति की समस्याओं को विभिन्न भागो मे बाँटकर सल्तनत का कार्य नियमानुसार चलाया जाय।

इस्लामी सल्तनत में दीवान को हजरत उमर ने अपनी खिलाफत के समय प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि जब हजरत अबू हुरैरा[१] बहरैन से अपार धन-सम्पत्ति लाये और उसके विभाजन एव उपहारो तथा इनामो इत्यादि की सुव्यवस्था मे कठिनाई हुई तो खालिद बिन वलीद ने दीवान स्थापित करने का परामर्श दिया और कहा कि "मैने शाम के राज्यो में यही प्रथा देखी है।" हजरत उमर ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया और तदनुसार आचरण किया।

कुछ लोगो का मत है कि दीवान की स्थापना का परामर्श हरमुजान[२] ने दिया था। जब उसने देखा कि सेनाएँ राज्य की विभिन्न दिशाओं में भेजी जा रही है और किसी पजिका मे उनके विषय में कुछ नही लिखा जाता, तो बोला कि "इन सैनिकों मे से कोई कहीं चला जाय तो उसके विषय में किस प्रकार कोई ज्ञान प्राप्त हो सकेगा और जो ग़ायब हो जायगा वह अवश्य ही अपने स्थान को छोडकर व्यवस्था में विघ्न डाल जायगा। इसी कारण याद रखने के लिए एक पजिका तैयार की जाती है और उसके हिसाब-किताब के लिए कुछ लोग नियुक्त किये जाते है, अतः आप भी इसके लिए एक स्थायी विभाग "दीवान" स्थापित कीजिए। हज़रत उमर ने दीवान का सविस्तर विवरण पूछा। हरमुजान ने उसकी व्याख्या की। इस प्रकार दीवान की स्थापना हुई। हजरत उमर ने हजरत अकील बिन अबी तालिब[३], मखरमा बिन नौफल[४] तथा जुबैर बिन मुतइम[५] के जिम्मे दीवान का कार्य सौपा। कारण कि क़ुरैश मे यही लोग कातिब[६] समझे जाते थे। इन बुजुर्गो ने इस्लामी सेना

१. उनको यह नाम एक बिल्ली से अधिक रुचि के कारण हजरत मुहम्मद ने स्वयं दिया था और यह इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोगों को उनके असली नाम का कोई पता नहीं। इनके नाम से मुहम्मद साहब की हदीसें बहुत बड़ी संख्या में प्रसिद्ध है। वे हजरत उस्मान के समय में मक्के के काजी थे। उनकी मृत्यु ६७९ ई० में हुई।

२. अहवज का बादशाह जो इराक़ की विजय के समय बन्दी बनाया गया था।

३. अक़ील बिन अबी तालिब हजरत अली के बड़े भाई थे। इनकी मृत्यु ६८० ई० के लगभग हुई।

४. इनकी मृत्यु ५४ हि० (६७४ ई०) में हुई।

५. इनकी मृत्यु ५६ तथा ५९ हि० (६७५–७६ तथा ६७८-७९ ई०) के मध्य में हुई।

६. सचिव।

की एक पंजिका वंश के अनुसार तैयार करायी। नामों की सूची को मुहम्मद साहब के निकटतम सम्बधियों से प्रारम्भ किया। फिर इसी क्रम से उनसे सम्बध के अनुसार नाम लिखते गये। इस प्रकार सेना के दीवान का अभ्युदय हुआ। अज़्ज़ुहरी ने सईद बिन अल मुसय्यब के आधार पर लिखा है कि दीवान की प्रथा मुहर्रम २० हि० (दिसम्बर ६४०—जनवरी ६४१ ई०) से प्रारम्भ हुई।

अब जहाँ तक दीवाने महासिल[1] एव ख़राज का सम्बन्ध, है तो यह इस्लाम के बाद भी अपनी पूर्व दशा में रहा अर्थात् इराक का दीवान फारसी भाषा में और शाम का दीवान रूमी भाषा में। इसी प्रकार दीवान के कातिब भी रूमी अथवा फ़ारसी होते थे। जब अब्दुल मलिक बिन मरवान का समय आया और खिलाफ़त ने सल्तनत का रूप धारण किया तथा अरब ने बदवियत के वस्त्र को उतारकर नागरिक जीवन का वस्त्र धारण किया तथा निरक्षरता को त्यागकर किताबत में कुशलता प्राप्त की और स्वयं उनमे तथा उनके दासो मे कुशल कातिब एव हिसाब जानने वाले मिलने लगे, तो अब्दुल मलिक ने उरदन[2] के हाकिम सुलेमान बिन साद, के नाम फरमान भेजा कि शाम के दीवानों को अरबी भाषा मे परिवर्तित कर दो। सुलेमान ने एक वर्ष के भीतर इस कार्य को सम्पन्न कर लिया। अब्दुल मलिक के कातिब सरहून ने इस कला मे पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर लेने के उपरान्त रूमी कातिबो से कह दिया कि "क्योंकि तुम लोगो से किताबत का काम लिया जा चुका, अत: अब तुम अपनी जीविका हेतु किसी अन्य व्यवसाय की खोज करो।"

उधर इराक का दीवान फारसी भाषा मे उसी प्रकार चला आता था। हज्जाज का कातिब, सालेह बिन अब्दुर्रहमान, अरबी एव फ़ारसी दोनों भाषाओं मे दीवान का कार्य जानता था। यह उसने हज्जाज के पहले कातिब जादान फरूख से सीखा था। जब जादान की अब्दुर्रहमान बिन अशअस के युद्ध मे हत्या हो गयी[3] तो हज्जाज ने जादान का कार्य सालेह को सौप दिया और साथ-साथ आदेश दिया कि वह फारसी दीवानो का अरबी भाषांतर करे। उसने ऐसा ही किया। फ़ारसी कातिबो को यह परिवर्तन बडा अरुचिकर लगा। अब्दुल हमीद बिन यहया कहा करता था कि, "अल्लाह सालेह का भला करे, उसने अरबी कातिबों का बड़ा उपकार किया।"

१. **विभिन्न प्रकार के कर।**
२. **जार्डन।**
३. ८५ हि० (७०४ ई०)।

उमय्या राज्य के उपरान्त जब अब्बासियों का राज्य प्रारम्भ हुआ तो दीवान का काम वज़ीर द्वारा सम्पन्न होने लगा, जो बड़े विस्तृत अधिकारो का स्वामी हुआ करता था। इस प्रकार बनी बरमक एव बनू सहल बिन नव बख़्त इत्यादि वज़ीर दीवान का काम अपने हाथ में रखते थे।

दीवान से कुछ शरई आदेश भी सम्बन्धित है, उदाहरणार्थ सेना एवं बैतुल माल के आय-व्यय से सम्बन्धित आदेश, अथवा इसकी पहचान कि राज्य के कौन-से भाग सन्धि द्वारा विजित हुए है और कौन-से युद्ध द्वारा, या दीवान के कार्य को कौन सॅभाल सकता है और कौन नहीं, अधीक्षक एव कातिब से सम्बन्धित शर्ते अथवा हिसाब-किताब के सिद्धान्त। इन सब बातो का "एहकामे सुल्तानिया" के ग्रथों में सविस्तर उल्लेख हुआ है। हमारे ग्रंथ से इस विषय का कोई सम्बन्ध नहीं, अतः हम इसे यहाँ नही लिखते। हमारा अभीष्ट तो केवल राज्य के अधिकारों की स्वाभाविक दशा का विवेचन करना मात्र है।

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि दीवान का विभाग राज्य एवं सल्तनत की सुव्यवस्था और शासनप्रबंध के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है, अपितु इसको सल्तनत का तीसरा स्तम्भ समझना चाहिए। कारण कि प्रत्येक सल्तनत में सेना एवं धन की भी आवश्यकता होती है और सैनिक-नामावली की एक सुव्यवस्थित पजिका की भी।

सक्षेप में दीवान का उच्च पदाधिकारी, राज्य के एक बड़े महत्त्वपूर्ण भाग का स्वामी होता है। उन्दुलुस में बनी उमय्या के राज्य-काल एवं मुलूकुत्तवाएफ के समय मे दीवान को यही गौरव एवं सम्मान प्राप्त रहा। मुवह्हेदीन के राज्य-काल मे दीवान का मुख्य अधिकारी मुवह्हेदीन के वंश का कोई ऐसा व्यक्ति होता था, जो धन एकत्र करने एव उसके सुव्यवस्थित रखने पर नियत्रण रखता, वालियो एवं आमिलो से हिसाब-किताब करता और समयानुसार निश्चित कर वसूल कराता था। उसको "साहेबुल अशग़ाल"[१] कहा करते थे। कभी ऐसा भी होता कि किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को यह पद दे दिया जाता जो इसमें भली-भाँति दक्ष होता।

जब बनू अबी हफस इफरीकिया के बादशाह हुए तो वहाँ उन्दुलुस से योग्य एव सम्मानित लोग आने लगे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो उन्दुलुस मे राजस्व विभाग का प्रबध कर चुके थे, उदाहरणार्थ बनू सईद, क़िलआ के, जो ग़रनाता के समीप है, अधिकारी। वे बनू अबिल हसन के नाम से प्रसिद्ध है। इसी कारण बनू अबी हफ़्स

१. वित्त-विषयक मुख्य अधिकारी।

ने राजस्व का प्रबंध उन्हीं के सुपुर्द किया और वे बड़ी योग्यता से राजस्व-विभाग चलाने लगे। वे उन्हें एवं मुवह्हेदीन को बारी-बारी से यह कार्य सौंपते रहे। फिर कातिब एवं हिसाब-किताब जाननेवाले मुवह्हेदीन से पृथक् होकर स्वाधीन हो गये।

इसके बाद जब हाजिब की उन्नति हुई और राज्य की सभी बातों में उसी का आदेश चलने लगा तो दीवान के अधिकारी का यश एवं गौरव भी समाप्त हो गया। वह हाजिब के अधीन समझा जाने लगा। उसके अधिकार बड़े सीमित हो गये। हमारे युग में बनी मरीन की सल्तनत में इनाम एवं खराज का हिसाब-किताब एक ही आदमी सँभालता है। समस्त हिसाबो की जाँच-पड़ताल उसी के सुपुर्द है और सब कागज सुल्तान एव वजीर के पास प्रस्तुत होकर उसी के कार्यालय मे आते है और वही उनका निरीक्षण करता है। जब वह किसी खराज अथवा इनाम के कागज पर हस्ताक्षर कर देता है तो उसके हस्ताक्षर सबके लिए मान्य हो जाते है। यह उन समस्त शाही पदो का सार है जिनके अधिकार राज्य मे विस्तृत है और सुल्तान से सम्बन्धित है।

तुर्को के राज्य मे उपर्युक्त पद का विभाजन हो गया है। सैनिक वेतनो एव वृत्तियों का हाकिम, नाजिरुल जैश[1] एव राजस्व-विभाग का अधिकारी वजीर कहलाता है। यह वजीर ही राज्य की आय एव खराज का प्रबध करता है और उसका पद राजस्व विभाग के उच्चतम पदो में गिना जाता है। तुर्को की सल्तनत चूँकि बड़ी विस्तृत है और नाना प्रकार एव विभिन्न नियमो के अनुसार कर एव खराज की वसूली होती है, अतः अनेक पदाधिकारियो द्वारा राजस्व-विभाग का काम किया जाता है। एक अधिकारी पूरे विभाग का शासन-प्रबध नही कर सकता, चाहे वह कितना ही अनुभवी क्यों न हो। वजीर उन सबकी सामान्य देख-भाल का कार्य करता है और सब पर नियत्रण रखता है। यद्यपि वजीर के अधिकार बड़े विस्तृत होते है, किन्तु वह सुल्तान के किसी निकटतम सम्बधी, सहिबुस् सैफ़[2] के अधीन होता है। वह उसी के सकेतों पर चलता है। तुर्क उसे उस्ताजुद्दार कहते है, कारण कि समस्त सैनिक पद उसी के अधीन होते है।

राजस्व एव हिसाब-किताब से सम्बधित और भी विशेष पदाधिकारी होते है

१. सेना-विभाग का निरीक्षक।
२. तलवार वाले।

जिनके अधिकार अपने-अपने क्षेत्र में सीमित होते है। उदाहरणार्थ नाजिरुल खास, जिसके सुपुर्द व्यक्तिगत शाही आय एवं खालसे तथा अन्य करों का प्रबध होता है। इनका साधारण मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नही होता। यह नाजिर उस्ताजुद्दार के अधीन होता है। यदि सेना मे से कोई विजारत के पद तक पहुँच जाय तो उस पर उस्ताजुद्दार का शासन नही चलता। फिर बादशाह का एक विशेष सेवक खाजिनदार[1] कहलाता है, जो बादशाह का दास होता है और बादशाह की व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति की देख-भाल उसी के सुपुर्द होती है, मानो नाजिर एव खाजिन के पद विशेष रूप से बादशाह के व्यक्तिगत राजस्व से सम्बधित हो। सक्षेप मे पूर्वीय तुर्कों के शासन मे इस विषय से सम्बधित यही विषेष पद है।

दीवाने रसायल एवं मकातेबात[2]

यह राज्य का कोई अधिक आवश्यक विभाग नही है। जिन सल्तनतों पर बदवियत छायी हुई है उन्हें इसकी आवश्यकता ही नही, कारण कि न उनमे नगर की सभ्यता पायी जाती है और न कला-कौशल। इस्लामी सल्तनतो में दीवाने रसायल एव किताबत की आवश्यकता का अनुभव अरबी भाषा की रक्षा के लिए हुआ, ताकि उसकी शैली की सुन्दरता सुरक्षित रहे। इस प्रकार प्रायः ऐसे चुने हुए लोग कातिब नियुक्त किये जाते थे जो अत्यधिक सुन्दर भाषा में अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। कातिब, अमीर तथा सुल्तान के कुल से सम्बधित तथा उनके कबीले के प्रभावशाली व्यक्तियों में से होता था। पिछले ख़लीफाओं एव शाम तथा इराक़ के मुहम्मद साहब के सहाबी अमीरो में यही प्रथा रही। यह शर्त इस उद्देश्य से थी कि ऐसे ही निकटवर्ती सम्बधियो द्वारा गोपनीय बातों एव रहस्यों की रक्षा की आशा की जा सकती है। किताबत, बिना गोपनीय बातों एवं रहस्यो की रक्षा के नहीं चल सकती। जब भाषा का रूप बदला एवं अजम के मेल-जोल से उसमें दोष आने प्रारम्भ हो गये और किताबत एक विशेष कला एव व्यवसाय हो गयी, तो किताबत के पद पर केवल उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाने लगा जिसे भाषा पर पूर्ण अधिकार होता था एव जो रचना-कार्य में दक्ष होता था।

फिर बनी अब्बास ने तो अपने राज्यकाल में इस पद को और भी चार चाँद लगा

१. कोषाध्यक्ष।

२. शाही पत्र-व्यवहार का विभाग।

दिये। समस्त अधिकार कातिब के ही सुपुर्द किये, फ़रमानों पर कातिब स्वयं अपने हस्ताक्षर करता और फिर शाही मुहर लगाता। यह मुहर एक प्रकार की जल में घोली हुई लाल मिट्टी से तैयार की जाती थी और उस पर बादशाह का नाम तथा उपाधि खुदी होती थी। यह मिट्टी मुहर की मिट्टी के नाम से प्रसिद्ध थी। फ़रमान को मोड़कर चिपका दिया जाता था और उसके दोनो ओर मुहर लगा दी जाती थी। आगे चलकर यह प्रथा हो गयी कि फ़रमानों को शाही नाम से जारी किया जाता था। कातिब स्वय फ़रमान के प्रारम्भ अथवा अन्त मे, जैसा उचित होता, अपने हस्ताक्षर बनाता था।

इसके उपरान्त किताबत के पद का सम्मान और घट गया तथा सल्तनत के अन्य पदाधिकारी भी बादशाह के विश्वासपात्र बन गये। सल्तनत के वजीर ने स्वाधीन अधिकार प्राप्त कर लिये। ऐसी दशा मे कातिब के हस्ताक्षर का कोई महत्त्व न रहा। केवल प्रतिभाशाली व्यक्ति के हस्ताक्षरो का ही विश्वास किया जाता था। इस प्रकार हफ़सिया राज्य के अन्तिम काल में यही प्रथा थी। यह समय वह था जब हिजाबत के पद का सम्मान बहुत बढ़ गया और राज्य की समस्याएँ उसी के सुपुर्द हो गयी। हाजिब राज्य के सियाह-सफेद का मालिक-सा हो गया। पिछली प्रथा का पालन करते हुए कातिब हस्ताक्षर अवश्य करता था, किन्तु उसके हस्ताक्षर का कोई महत्त्व न होता था। फिर ऐसा होने लगा कि हाजिब द्वारा कातिब को आदेश दिया जाने लगा कि वह अपने निश्चित चिह्न के साथ अपने हस्ताक्षर फ़रमान पर कर दे।

तौक़ी लिखना भी कातिब के ही उत्तरदायित्व मे से है। इसका सचालन इस प्रकार होता है कि कातिब बादशाह के समक्ष बैठ जाता है। जो अभियोग एव अन्य समस्याएँ बादशाह के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उन पर वह शाही आदेश अत्यधिक सुन्दर भाषा में सक्षिप्त रूप से मिसिल अथवा मिसिल ख़्वानी की पजिका पर लिखता जाता है। इस कला के लिए कातिब मे अत्यधिक योग्यता एव विवेक आवश्यक है। प्रसिद्ध है कि जाफ़र बिन यहया हारूनुर्रशीद के सामने बैठकर शाही निर्णय लिखता और लिख-लिखकर मिसिल पढ़नेवाले के पास फेकता जाता था। उसकी तौकियों को इतना सम्मान प्राप्त था कि देश के विद्वान् एव रचनाशैली के दक्ष लोग बड़े उत्साह से उनकी खोज मे रहते, कारण कि उनमे इतनी गूढ़ बाते पायी जाती थी जो अन्य स्थानों पर नहीं प्राप्त होती थी। यहाँ तक प्रसिद्ध है कि लोग एक-एक तौक़ी को एक-एक दीनार में ले लेते थे। फिर अन्य सल्तनतों में भी यही प्रथा प्रचलित रही।

यह बात भी भली-भाँति स्पष्ट होनी चाहिए कि कातिब के लिए यह भी आवश्यक है कि वह उच्च वश का व्यक्ति हो, सहृदयता एव गौरव का स्वामी हो। ज्ञान में भी अद्वितीय हो, रचनाशैली में भी दक्ष हो। कारण कि शाही दरबारों में जो आदेश जारी होते है, उनकी तह तक पहुँचने और उनके उद्देश्य को समझने के लिए ज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता होती है। फिर बादशाह की गोष्ठी में रहने के लिए उच्चतम शिष्टाचार एवं सौजन्य भी ज़रूरी है। इसी प्रकार यदि फरमान लिखवाये जायँ तो वे साहित्यिक एवं विद्वत्तापूर्ण भी हों।

कुछ सल्तनतों मे किताबत का उत्तरदायित्व किसी तलवार वाले[1] के सुपुर्द किया जाता है। इसका कारण यह होता है कि ये राज्य सीधे-सादे एव ज्ञान से शून्य तथा "असबियत" के पोषक होते है। बादशाह अपनी असबियत वालो को ही सल्तनत के पदों के लिए छाँटता है। राजस्व एव सेना विभाग तथा किताबत का पद सब इन्ही को देने का प्रयत्न करता है। "तलवार वालों" को तो ज्ञान की कुछ अधिक आवश्यकता होती नही, अतः यह विभाग-बिना सकोच "असबियत" के स्वामियों को दे दिया जाता ह। किन्तु राजस्व विभाग एव किताबत में गणित के ज्ञान तथा पांडित्य के बिना काम नहीं चलता, अतः इन विभागों के लिए विवश होकर अन्य योग्य लोगों को चुनना पडता है, किन्तु वह किसी "असबियत" के स्वामी के ही अधीन रहते हैं और लेश मात्र को उसके आदेशों की अवहेलना नही कर सकते। इस प्रकार आजकल पूर्व मे तुर्कों के राज्य मे यही प्रथा प्रचलित है। उनके यहाँ यद्यपि किताबत का कार्य किसी साहित्यिक के सुपुर्द होता है, किन्तु वह सुल्तान के किसी निकट-सम्बन्धी के, जिसे दावेदार कहते है, अधीन रहता है। उस पर बादशाह को पूर्ण विश्वास होता है। सब उसको बादशाह का विशेष विश्वासपात्र समझते हे। फिर वह किसी में विद्वत्ता एव उत्तम रचना-शैली देखकर अथवा उसे राज्य की गोपनीय बातों को गुप्त रखने के योग्य पाकर, कातिब नियुक्त कर देता है।

किताबत के लिए जिन शर्तों पर ध्यान देना आवश्यक एव अनिवार्य है और बादशाह भी कातिब के चुनाव के समय जिन्हें आवश्यक समझता ह, उन शर्तों की सख्या अधिक है। इनमें सबसे उत्तम वे शर्ते है जो अब्दुल[2] हमीद कातिब ने अपने उस पत्र में, जिसे उसने विभिन्न कातिबों के पास भेजा था, लिखी है। पत्र इस प्रकार है—

१. सैनिक।

२. अब्दुल हमीद बिन यहया की १३२ हि० (७५० ई०) में मृत्यु हो गयी। यह पत्र

"हे किताबत की कला के विद्वानो ! ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और अपनी विशेष सहायता द्वारा तुम्हारा पथ-प्रदर्शन एवं उपकार करे। समझ लो कि नबियों, पैग़म्बरों तथा प्रतापी बादशाहों को छोड़कर ईश्वर ने मनुष्यों को विभिन्न क़िस्मों में विभाजित किया है। यद्यपि वास्तव में वे सब एक सरीखे हैं, किन्तु व्यवसाय, नाना प्रकार के आर्थिक धंधों एवं जीविकोपार्जन के विभिन्न तरीक़ों के कारण वे एक-दूसरे से पृथक् हैं। उदाहरणार्थ, ईश्वर ने तुम्हे अत्यधिक विद्वत्ता, योग्यता, मुरव्वत एवं सौजन्य दिया है। तुम्हारे ही कारण ख़िलाफ़त की व्यवस्था भली-भाँति सम्पन्न होती रहती है और उसके समस्त कार्यों की चूलें ठीक बैठती हैं। तुम्हारे ही परामर्श से मानव पर शासन होता है। बादशाह हर समय तुम पर निर्भर रहता है। उसके समस्त कार्य तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। वास्तव में तुम ही बादशाह के कान हो जिनसे वह सुनता है, तुम ही उसकी आँख हो जिनसे वह देखता है, तुम ही उसकी जिह्वा हो जिससे वह बोलता है और तुम ही उसके हाथ हो जिनसे वह छूता है। ईश्वर तुमको अपनी योग्यता द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के अवसर प्रदान करे और जो देन तुमको उसने प्रदान की है, उसे न छीने।

हे साहित्यकारो ! तुममें से प्रत्येक को कलाकार से अधिक उत्तम गुणों एवं आदतों की अधिक आवश्यकता है। यदि इस पत्र में लिखे हुए गुण तुममे पाये जाते हैं तो वास्तव में तुम अच्छे कातिब हो। तुम्हारा स्वामी भी इन्हीं गुणों को देखना चाहता है। सहनशीलता के समय सहनशीलता के गुणों द्वारा सुशोभित हो, निर्णय के समय कुशाग्र बुद्धि का प्रदर्शन करो, जब आगे बढ़ने की आवश्यकता हो तो सबसे आगे निकल जाओ। पीछे हटने के समय रुक जाओ, मर्यादा एवं न्याय के पुतले बनो, गोपनीय बातों को गुप्त रखो, कठिनाई का वीरतापूर्वक मुक़ाबला करते रहो, भविष्य मे पेश आनेवाले ख़तरों का पहले से ही ज्ञान प्राप्त कर लो। अपनी दूरदर्शिता, अपने शिष्टाचार एवं अनुभव से भविष्य में घटनेवाली घटनाओं को समय के पूर्व पहचान लो और ताड़ लो। प्रत्येक समस्या के परिणाम को

जहशियारी के "वुज़रा", इब्ने हमदून के "तज़किरे" तथा क़लक़शन्दी के "सुबहुल आश" में भी दिया हुआ है।

प्रकट होने के पूर्व ही समझ जाया करो और हर एक के लिए पहले से ही तैयार रहो।

हे साहित्यकारो ! नाना प्रकार की योग्यताएँ प्राप्त करने में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करो और मुक़ाबला करो। दीन एवं धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और सर्वप्रथम अल्लाह की किताब एवं धार्मिक कर्त्तव्यों से परिचय प्राप्त करो। फिर अरबी भाषा मे कुशलता प्राप्त करो, कारण कि तुम्हारे लिए भाषा-ज्ञान परमावश्यक है। फिर सुलेख को भी न भूलो। सुलेख किताबत की कला की शोभा है। अरबी पद्यों को कंठस्थ करो और इनमें जो विद्वत्तापूर्ण बातें एवं रहस्य हों, उनके अर्थ भली-भाँति समझो। अरब एवं अजम के इतिहास तथा वहाँ वालों के चरित्र के विषय में भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करो। कारण कि इससे तुमको अपने उस अध्यवसाय की ओर, जिसकी पूर्ति का तुमने संकल्प कर रखा है, अग्रसर होने का अवसर मिलेगा। इसके साथ गणित की कला की भी उपेक्षा मत करो, कारण कि ख़राज के कातिब इसी पर निर्भर होते हैं। लोभ एवं लिप्सा से बचते रहो; चाहे वे वस्तुएँ जिनके तुम लोभी हो, उच्च श्रेणी की हों अथवा निम्न श्रेणी की। लोभ एवं लिप्सा द्वारा मनुष्य अपमानित हो जाता है और उनके कारण "कातिब" के कार्यों मे विशेष रूप से विघ्न पड़ता है। किताबत को कृपणता से बचाये रखो। चुग़ुलख़ोरी एवं पीठ-पीछे लगाने-बुझाने से घृणा करो। अज्ञान के समस्त कार्यों को त्याग दो। अभिमान, घमंड एवं डींग से बचते रहो,कारण कि ये बुरी आदतें अनावश्यक रूप से लोगों के साथ शत्रुता के द्वार खोलती हैं। अपने व्यवसायवालों के साथ केवल ईश्वर के लिए स्नेह एवं प्रेम करो। जो व्यक्ति अपने विद्वान्, न्यायकारी एवं पूज्य पूर्वजों का अनुकरण करने योग्य हो, उसको यह कला सिखाओ और बताओ। यदि कालचक्र से कोई किसी दुर्घटना मे ग्रस्त हो जाय तो उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करो, यहाँ तक कि उसकी दशा पुनः ठीक हो जाय। उसकी दुर्दशा, समृद्धि मे परिवर्तित हो जाय। यदि किसी का अभिमान तथा घमंड अपने भाइयों से भेंट करने में बाधक हो और वह लोगों से मिलने पर नाक-भौं चढ़ाये तो तुम स्वयं उसका आदर-सत्कार करो। उससे परामर्श करो। उसके अनुभव से लाभान्वित हो। यदि तुममे से कोई किसी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता ले तो उसका अपनी संतान एवं भाई-बन्दों से

अधिक उपकार मानो। यदि कार्य में सफलता हो तो उसे सहायता करनेवाले की सहायता का फल समझो। यदि किसी बुराई का सामना करना पड़े तो इसे अपना दोष समझो। यदि स्थिति में परिवर्तन हो जाय तो दुस्साहस एवं शोक अपने हृदय में उत्पन्न मत होने दो।

हे साहित्यकारो! तुम्हारी भूलें बड़ी तीव्र गति से हानि पैदा करती हैं। फिर यह भी जान लो कि यदि तुम में से कोई ऐसे व्यक्ति की संगत एवं संपर्क में आ जाय, जो परोपकार में अपनी जान खपा दे, तो उपकृत व्यक्ति का भी कर्त्तव्य है कि वह उपकार करनेवाले के प्रति निष्ठा, कृतज्ञता, शुभ भावनाएँ एवं उसकी गोपनीय बातों की रक्षा तथा सफलता की इच्छा अपने हृदय में रखे। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो इन भावनाओं को कार्यरूप में परिणत करके भी दिखाए। अल्लाह तुम्हारी सहायता करे। किसी दशा में इस शिक्षा की उपेक्षा न करो, चाहे तुम सुखी हो और चाहे दुखी एवं परेशान, चाहे समृद्ध हो या कष्ट में। कातिब सरीखे सम्मानित व्यवसायवाले के लिए तो यह आदत बड़ी ही अच्छी है।

जब तुममें से कोई हाकिम की श्रेणी पर पहुँच जाय अथवा मनुष्योपयोगी कार्य बड़े पैमाने पर उसके हाथ में आ जायँ, तो ईश्वरपरायणता को वह कभी अपने हृदय से न निकाले। कभी उसकी आज्ञाकारिता से विमुख न हो। निर्बल के साथ नरमदिली का व्यवहार करे। पीड़ित के प्रति न्याय करे, कारण कि सभी मनुष्यों को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। जो व्यक्ति उसकी संतान के साथ नरमी का व्यवहार करे, वह ईश्वर को बड़ा ही प्रिय होता है। निर्देश एवं निर्णय में न्याय की उपेक्षा न करो। सज्जनों को दान-पुण्य द्वारा सम्मानित करो। राज्य की आय में वृद्धि करो और नगरों को आबाद करो। प्रजा को प्रोत्साहन दो और उनको कष्ट न पहुँचाओ। सभा में सौजन्य एवं शिष्टाचार की मूर्ति बने रहो। खराज के पत्रों पर जब दृष्टि डालो अथवा राज्य के अधिकारों की प्राप्ति का जब प्रश्न आये, तो अत्यधिक कोमलहृदयी बन जाओ। जब किसी व्यक्ति का तुमसे सम्पर्क हो तो उसके स्वभाव को भली-भाँति परख लो। जब उसकी भली-बुरी आदतों का पता लग जाय तो उसकी भली बातों में उसकी सहायता करो और बुरी बातों से उसे उचित एवं सुन्दर ढंग पर बरजो।

तुम्हें भली-भाँति ज्ञात है कि चाबुक-सवार जब चाबुक-सवारी के

सिद्धांतों से भली-भाँति परिचित होता है तो वह अपने घोड़े की आदत एवं स्वभाव का पता लगा लेता है। यदि वह दुलत्ती चलाता है तो वह सवारी के समय उसे नहीं भड़काता, अपितु प्यार से एवं पुचकार कर काम लेता है। यदि वह सधा हुआ है तो सावधानी से बाग सँभाले रखता है। यदि मुँहज़ोर और उद्दंड है तो उसके मुँह एवं सिर को दृष्टि में रखता है। यदि बहुत मचलता है तो तसल्ली देकर वश में कर लेता है। यदि उसमें केवल एक ही ओर भागने की आदत है तो वह उसे भी ठीक करता है। चाबुक-सवारी के यही सिद्धान्त उस व्यक्ति का भी पथ-प्रदर्शन करते हैं जो लोगों पर शासन करता है। लोगों के प्रति उसे सद्-व्यवहार करना चाहिए। उनकी देख-भाल करना तथा उनसे मेल-जोल रखना चाहिए। सत्य तो यह है कि कातिब को चाबुक-सवार से अधिक नरमी एवं सुन्दर व्यवहार की आवश्यकता होती है, कारण कि उसकी शिष्टता बड़ी उच्च श्रेणी की होती है और उसकी कला सम्मानित। उसे ऐसे व्यक्तियों से वार्त्ता एवं विचार-विनिमय करना पड़ता है, जिनसे बात करने में उसे नरमी एवं शिष्टाचार की अधिक आवश्यकता होती है। चाबुक-सवार का संबंध तो एक पशु से होता है, जो न तो उत्तर दे सकता है और न अच्छे-बुरे को समझ सकता है। वह अपने सवार की केवल इतनी ही बात समझता है कि वह उसे जिस ओर मोड़ता है वह मुड़ जाय।

हे कातिबो! ईश्वर तुम पर दया करे। तुम नरमी से व्यवहार करो और यथासम्भव समझ-बूझकर कार्य करो। यदि इस शिक्षा का पालन करोगे तो ईश्वरकृपा से जिसके साथ भी तुम रहोगे, उसके अत्याचार एवं ज़ुल्म से सुरक्षित रहोगे। तुम उसके साथ मेल एवं प्रेमपूर्वक व्यवहार करोगे तो वह तुम्हारे साथ भाइयों के समान प्रेमपूर्वक व्यवहार करेगा। स्मरण रहे कि तुममें से कोई भी अपने उठने-बैठने, वेश-भूषा, सवारी, खाने-पीने, रहन-सहन, सेवक एवं परिजनों के विषय में अथवा अन्य बातों में अपनी श्रेणी से आगे क़दम कभी न बढ़ाये, इसलिए कि यद्यपि ईश्वर ने तुमको इस कला द्वारा सम्मानित किया है, किन्तु फिर भी तुम सेवक हो। तुम्हारे लिए सेवा-कार्य की उपेक्षा करना किसी प्रकार उचित नहीं। तुम जिम्मेदार एवं रक्षक हो। अपव्ययिता तुम्हारे लिए किसी प्रकार उचित नहीं। सावधानी की दृष्टि से तुम्हारे लिए यह आवश्यक है कि तुम संयम से कार्य करो। अपव्ययिता एवं भोग-विलास के दुष्परिणाम से हर समय भयभीत रहो,

कारण कि इन आदतों से दरिद्रता तो बढ़ती ही है, साथ ही मनुष्य अपमानित अलग होता है। कातिब साहित्यकार भी होता है और सम्मानित व्यक्ति भी, इन बातों का अधिक ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में संसार की घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, अतः तुम अपने पिछले एवं भूतकाल के अनुभव से अपने कर्म को सुधारो। ऐसे उपाय करो जो स्पष्ट हों, उनके उद्देश्य सच्चे और परिणाम उत्तम हों।

यह भी समझ लो कि यदि कोई योजना बनानेवाला, अपने ज्ञान एवं सूझ-बूझ का उपयोग न करे तो उसकी समस्त योजनाएँ नष्ट हो जाती हैं। अतः तुममें से प्रत्येक के लिए आवश्यक है कि जो कुछ भी जिह्वा से निकालो वह खूब सोच-समझकर और जाँच-तोलकर। प्रारम्भिक एवं उत्तरवर्ती वार्त्ता अथवा पत्र-व्यवहार में अधिक विस्तार में न पड़ो। बात के सब पहलुओं को सामने ले आओ, कारण कि कातिब के कार्य के लिए यह परमावश्यक है। इससे बात को अधिक बढ़ाने एवं लम्बे-चौड़े विवरण से भी बचा जा सकता है। ईश्वर से ही सहायता की इच्छा करते रहो और उससे भय करते रहो कि कहीं ऐसी भूल में न पड़ जाओ, जिससे तुम्हारे शरीर, बुद्धि एवं कला को हानि पहुँचे। यदि तुममें से किसी ने यह कल्पना की, अथवा यह कहा कि मेरी कला की सफलता एवं उन्नति, मेरे उपाय एवं परिश्रम का फल है, तो यह उसकी भूल होगी। ऐसा करके तुम ईश्वर को इस बात का अवसर देते हो कि वह तुम्हे तुम्हारे ऊपर छोड़ दे, जो तुम्हारे कार्यों के लिए कदापि उचित न होगा। इसी प्रकार कोई यह भी न कहे कि वह अन्य लोगों की, जो यह व्यवसाय करते हैं, अपेक्षा अधिक योग्य, समझदार एवं ज्ञानी है, कारण कि यह अहंभाव का द्योतक है। बुद्धिमान् लोग दो व्यक्तियों में अधिक योग्य उसे मानते हैं जो अहंभाव को अपने निकट न आने दे, अपितु अपने साथियों को अपने मुक़ाबले में अधिक योग्य एवं कार्य-कुशल समझे। हर एक के लिए आवश्यक है कि वह ईश्वर की देन एवं उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे। अपनी राय पर अभिमान न करे और न अपनी आत्मा की शुद्धता का गुण-गान करे। तुम अपने भाई, संबंधी, साथी और क़बीलेवालों को अधिक आगे मत बढ़ाओ-चढ़ाओ। ईश्वर की स्तुति प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। यह स्तुति उसी समय सम्भव है जब वह उसकी महानता के समक्ष झुके, उसके ऐश्वर्य के सामने अपने को क्षुद्र एवं हीन समझे, उसकी देनों के प्रति कृतज्ञ हो।

अब मैं अपने पत्र के अन्त में उपर्युक्त शिक्षा पर आचरण करने की प्रार्थना करता हूँ, कारण कि जब शिक्षा स्वीकृति-योग्य होती है तो उस पर आचरण भी परमावश्यक होता है। ईश्वर की स्तुति के उपरान्त मेरे पत्र का सारांश यही है, अतः इस बात का उल्लेख मैंने अपने पत्र के अन्त में किया और इसी पर उसे समाप्त किया है। हे विद्यार्थियो एवं कातिब लोगो ! ईश्वर अपने सदाचारी एवं नेक दासों का साथ तथा आश्रय हमें और तुम्हें प्रदान करे और हमारे ऊपर दया करे।"

अश् शुर्ता

इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी आजकल इफ़रीकिया में "हाकिम", उन्दुलुस में "साहिबुल मदीना" तथा मिस्र के तुर्कों के राज्य मे "वाली" कहलाता है। यह पद राज्य के तलवार के अधिकारी के अधीन होता है। वह अपने आदेशो का पालन उसी से कराता है। यह पद अब्बासियों के राज्यकाल मे बनाया गया था और वास्तव में उस व्यक्ति के लिए बना था जो अपराधों की प्रारम्भिक पूछ-ताछ एवं जाँच करता था। जब जाँच पूरी हो जाती थी तो वह अपराधियों को दड दिलाता था। कारण कि अपराधी पर जो अपराध लगाये जाते थे, उनमे शरीअत की ओर से इस कारण जाँच की जाती थी कि जाँच के उपरान्त उचित दड दिया जा सके। अपराध के प्रमाण एकत्र हो जाने के उपरान्त हाकिम अपराधी से जन-हित की दृष्टि से अपराध स्वीकार कराता था। अतः वह अधिकारी, जो अपराधो की जाँच और अपराध का प्रमाण मिल जाने के उपरान्त, अपराधियो को दड दिलाने का कार्य करता था, क़ाजी के निर्णय का पालन कराता था। ऐसे व्यक्ति को 'साहिबुश् शुर्ता' कहते थे।

कभी-कभी साहिबुश् शुर्ता दंड एव कसास जारी करने मे क़ाजी के अधीन नहीं, अपितु स्वाधीन होता था। इस पद पर नगर के सम्मानित व्यक्तियो एव उच्चश्रेणी वालो की नियुक्ति होती थी और अब भी होती है, किन्तु साहिबुश् शुर्ता के अधिकार हर खास व आम को प्राप्त नही होते। उसके आदेश केवल दुराचारियो, व्यभिचारियो, धूर्तों, जालसाजो एवं निम्न वर्ग के लोगो पर चलते है।

उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल मे यह पद दो विभागों में विभक्त हो गया। एक शुर्ता कुबरा[1] कहलाया और दूसरा शुर्ता सुगरा[2]। जिसे शुर्ता कुबरा का

१. बड़ी पुलिस। २. छोटी पुलिस।

पद प्राप्त होता है वह विशेष सम्मानित व्यक्तियों, सुल्तान के सम्बन्धियों एवं उच्च वर्ग के लोगो के अत्याचारों, अपराधों एवं कुकृतियों का दड देता है। शुर्ता सुग़रा का अधिकारी केवल नगर के साधारण लोगों से सम्बन्धित रहता है और ऐसे ही लोगों को दंड देता है। शुर्ता कुबरा का अधिकारी सुल्तान के द्वार पर आसन ग्रहण करता है। लोग उसके आदेशो का पालन करने के लिए उसके सामने बैठे रहते है। यह पद इतनी उच्च श्रेणी का होता था कि सल्तनत के महान् व्यक्तियों को ही दिया जाता था, यहाँ तक कि अधिकाश लोग इस पद से उन्नति करके वज़ीर अथवा हाजिब भी हो जाते थे।

मगरिब के मुवह्हेदीन के यहाँ भी इस पदाधिकारी को बड़ा सम्मान प्राप्त था और वह पद प्रत्येक ख़ास व आम को नही दिया जाता था, अपितु बड़े-बड़े मुवह्हेदीन ही इसके पात्र समझे जाते थे। किन्तु सल्तनत के सम्मानित लोगो को यह पद न प्राप्त होता था। अब इस पद का महत्त्व इतना घट गया है कि मुवह्हेदीन के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी यह पद प्राप्त होने लगा है और सल्तनत के आश्रित लोग भी इस पद पर नियुक्त होने लगे है। मगरिब मे मरीनी राज्यकाल मे इस समय यह पद मरीनी दासों एवं आश्रितों को प्राप्त है।

पहले तुर्क सुल्तानों के अधीन तुर्क लोग इस पद पर नियुक्त होते थे, अथवा पिछले कुर्द सुल्तान की सतान इसकी पात्र समझी जाती थी। उनकी नियुक्ति इस दृष्टि-कोण से होती थी कि उनके स्वभाव में कठोरता की कितनी मात्रा है, क्योकि वे आदेश देने मे निर्भीक एव निडर होते थे। ऐसे ही लोग उपद्रव के दमन हेतु उपयुक्त होते है और दुराचार एवं व्यभिचार की जड़ काट देते है। व्यभिचारियों के समूह को छिन्न-भिन्न कर देते है और शरा के अनुसार दंड जारी कराते है। यदि ऐसा न हो तो नगर की शान्ति की रक्षा असम्भव हो जाय।

क़यादतुल असातील[1]

मगरिब एव इफ़रीक़िया में इस पद की गणना सल्तनत के बड़े पदो में होती है। यह अधिकारी भी "तलवार के अधिकारी" के अधीन रहता है और उसी के अधीन इसकी व्यवस्था होती है। ये लोग क़ायेदुल असातील को "अलमिलन्द" भी कहते है। यह शब्द फ़िरंग भाषा से लिया गया है।

१. जल-सेना विभाग का मुख्य अधिकारी।

इस पद की प्रथा केवल इफ़रीक़िया एव मग़रिब में इस कारण है कि ये दोनों देश भूमध्य-सागर के दक्षिणीय तट पर स्थित है और दक्षिण में ही बरबरों का देश क्योटा से इस्कन्दरिया तथा शाम तक फैला हुआ है। उत्तरीय तट पर उन्दुलुस, फिरंग एवं सक़ालिया प्रदेश स्थित हैं। यह तट रूम[1] एव शाम तक फैला हुआ है। इस समुद्र के तट पर बसनेवालो के कारण इसका नाम रूम-सागर पड़ गया है और शाम-सागर भी। इस तट के दोनो ओर तथा आस-पास के निवासी जहाज चलाने की कला में अन्य क़ौमों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। रूम, फ़िरंग तथा क़ोत[2] भूमध्य-सागर के उत्तरीय तट पर बसे हुए है। उनका अधिकाश युद्धकार्य एवं व्यापार समुद्र द्वारा ही होता है, इसी कारण वे जहाज चलाने एव समुद्रीय युद्ध में बड़े दक्ष है। जब उन लोगों ने दक्षिणीय तट पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया, जिस प्रकार रूम वालों ने इफ़रीक़िया पर तथा क़ोत ने मगरिब पर अधिकार जमा लिया था, तो वे अपने जहाज़ी बेड़े लेकर पहुँच गये और उन पर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार वे बरबर पर छा गये और राज्य उनके हाथ से निकल गया। वहाँ उन्होंने बड़े-बड़े नगर, उदाहरणार्थ क़रताजना, सबीतला, जलूला, मुरनाक़, शरशाल एवं तनजा इत्यादि आबाद किये। क़रताजना का बादशाह तो इन विजयी लोगो के आने के पहले से ही रूम के बादशाह से युद्ध किया करता और सेना से भरे हुए जहाज़ी बेडे रूम के विरुद्ध भेजा करता था। सक्षेप मे समुद्रतट के निवासी आज से नहीं, अपितु प्राचीन काल से जहाज चलाने एव समुद्रीय युद्ध मे अत्यधिक दक्ष एव निपुण होते चले आये हैं।

जब मुसलमानों ने मिस्र विजय कर लिया तो हजरत उमर बिन खत्ताब ने अमर बिन आस को लिखा कि समुद्र के विषय मे मुझे सूचना भेजो। उसने उत्तर मे लिखा कि "समुद्र एक बड़ा ससार है, जिस पर शक्तिहीन मनुष्य को इस प्रकार फिरना पड़ता है, जिस प्रकार एक लकड़ी पर कीड़े को।" यह सुनकर हजरत उमर ने मुसलमानों को समुद्रीय यात्रा से रोक दिया और फिर अरबो ने इसका साहस ही नही किया। जो लोग हजरत उमर को सूचना दिये बिना समुद्रीय यात्रा हेतु गये उन्हें दड भोगना पड़ा। उदाहरणार्थ, अरफजा बिन हरसमा अल अजदी तथा बजीला का सरदार, जिसने उमान पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी, इनके नाम इस बारे में

१. बैजन्टाइन।
२. गोथ।

लिये जा सकते हैं। हज़रत उमर को जब इसका पता चला तो आपने उसको बहुत फटकारा और उसकी निन्दा की। हज़रत मुआविया के राज्यकाल तक यही दशा रही, पर हज़रत उमर ने इसके बाद जहाज चलाने एव समुद्रीय युद्ध की अनुमति प्रदान की। इस ऐतिहासिक घटना का कारण यह है कि प्रारम्भ में अरब वालों को बदवियत के कारण जहाज चलाने का ज्ञान न था। वे इस कला मे कुशल न थे। इसके विपरीत रूमियों तथा फ़िरंगियो को समुद्र का सर्वदा सामना करना पड़ता था। उसकी यात्रा करते-करते वे जहाज चलाने मे बड़े दक्ष हो गये थे।

जब अरबों का राज्य दृढ़ हो गया, सल्तनत का गौरव बढा और अजमी कौमें उनकी दासता के बधन मे आयी, तो बड़े-बडे कुशल कारीगर उनके पास पहुँच गये। समुद्रीय यात्रा के लिए अरबो ने बाहरी लोगो की सेवाएँ प्राप्त की और फिर उनके साथ रहकर यह लोग जहाज चलाने में दक्ष हो गये। इन्होने अच्छी योग्यता पैदा कर ली। तब इन्होने भी समुद्र में ही जेहाद किये, नौकाएँ एवं जहाज स्वय तैयार किये और सेना एवं अस्त्र-शस्त्रो से भर-भरकर जहाजी बेड़े समुद्र-पार काफिरों से युद्ध हेतु भेजे। इन्होने विशेष रूप से उन देशों एवं राज्यों पर आक्रमण किये जो समुद्रीय तट पर स्थित थे, जैसे कि शाम, इफरीकिया, मग़रिब एवं उन्दुलुस इत्यादि पर।

ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक ने हस्सान बिन नोमान, इफरीकिया के हाकिम को आदेश भेजा कि वह तूनिस मे जहाजो एव समुद्रीय यत्रों का एक कारखाना खोले, कारण कि उसे जेहाद से बडी रुचि थी। उसकी इच्छा थी कि जेहाद की तैयारियाँ बहुत बडे पैमाने पर की जायँ। इस प्रकार जियादतुल्लाह प्रथम बिन इबराहीम बिन अल अग़लब के समय मे, मुख्य मुफ्ती असद बिन फुरात[1] के नेतृत्व मे सिसली विजय हुआ।[2] क़ूसरा[3] पर भी उसी के राज्यकाल मे विजय प्राप्त हुई और असद बिन अल फुरात ने उसे भी विजय किया। मुआविया बिन अबी सुफ़ियान के राज्यकाल में मुआविया बिन हुदैज ने भी सकलिया (सिसली) पर आक्रमण किया, किन्तु उसे विजय न कर सका। यह सौभाग्य ईश्वर ने असद बिन अल फुरात के भाग्य मे लिखा था, जो उसे प्राप्त हुआ।

१. असद का जन्म १४२ हि० (७५८–६० ई०) मे हुआ और मृत्यु २१३ हि० (८२८ ई०) मे हुई।
२. ८२७ ई०।
३. Pantelleria

फिर उबैदीईन एवं (उन्दुलुस के) बनी उमय्या के राज्यकाल में इफ़रीक़िया एवं उन्दुलुस के बेड़े एक-दूसरे पर आक्रमण करते रहे और युद्ध एवं रक्तपात होता रहा। समुद्रीय तटवर्ती प्रदेश नष्ट हो गये। अब्दुर्रहमान नासिर के राज्यकाल में उन्दुलुस के जहाजों की सख्या २०० के लगभग तक पहुँच गयी थी। इफरीक़िया के जहाज भी लगभग इतने ही थे। उन्दुलुस का क़ायेदुल असातील[1] इब्ने रूमाहिस था। बजाया एवं मरिया उन्दुलुस के बेड़ों के बडे-बडे बन्दरगाह थे। प्रत्येक नगर से जहाज़ बनकर यही एकत्र होते थे। प्रत्येक बेड़े का पृथक् निरीक्षक एव अधिकारी होता था जो जहाज चलाने की कला में दक्ष होता था। युद्ध एव अस्त्र-शस्त्र की देख-भाल उसी के सुपुर्द होती थी। जहाज को वायु अथवा डॉडों द्वारा चलाने और बन्दरगाह पर उसके लगर डालने का मामला जहाज के रईस से सम्बन्धित था।

जब जेहाद हेतु प्रस्थान अथवा किसी शाही उद्देश्य हेतु जहाजों के बेडे प्रस्थान के लिए एक स्थान पर एकत्र होते तो बादशाह उनको अपनी सेना, दासो अथवा सेवको से भरता और राज्य के किसी उच्च पदाधिकारी के अधीन उन्हे उनके निश्चित स्थान की ओर भेजता था। फिर सब इस बात की प्रतीक्षा किया करते कि ईश्वर उन्हे विजय, सफलता एवं लूट की धन-सम्पत्ति के साथ वापस लाये। मुसलमान अपने राज्य मे समुद्र के चारो ओर छा गये थे और उनकी सल्तनत को विशेप जोर एव एक खास शान प्राप्त हो गयी थी। समुद्र की दूसरी ओर की ईसाई कौमो के भी बेड़े उनकी टक्कर के न थे। इस प्रकार वे समुद्रीय द्वीप एव तटवर्ती स्थानो को एक-एक करके विजय करते रहे। इतिहास इन विजयो एव लूट की धन-सम्पत्ति का द्योतक है।

इन लोगो ने उन बहुत-से द्वीपो पर भी अधिकार जमा लिया, जो समुद्रीय तट से दूर एक ओर सटे हुए स्थित थे। यानी मुयूरका[2], मनूरका[3], याबसा[4], सरदीनिया[5], सकलिया[6] कूसरा[7], मालता[8], अक़रीतिश[9], क़बरस[10], रूम[11] एव फिरग के अन्य

१. जहाजी बेड़े का अध्यक्ष।
२. Mallorca
३. Minorca
४. Ibiza
५. Sardinia
६. Sicily
७. Pantelleria
८. Malta
९. Crete
१०. Cyprus
११. Byzantine

देश। अबुल क़ासिम शीई[1] और उसके उत्तराधिकारी अपने बेड़ों को महदिया से धर्म-युद्ध के लिए जेनोवा भेजते और वे विजय के सुखद समाचार तथा लूट की धन-सम्पत्ति लेकर लौटते। उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ मे से दानिया के हाकिम मुजाहिद आमरी ने बेड़े भेजकर सरदीनिया द्वीप को ४०५ हि० (१०१४–१५ ई०) में विजय कर लिया, यद्यपि ईसाइयों ने इसे पुनः शीघ्र वापस ले लिया।

संक्षेप मे इस काल में मुसलमानों ने समुद्री तट के अधिकांश भाग पर अधिकार जमा लिया था और हर समय उनके बेड़े समुद्र में आते-जाते दृष्टिगत होते थे। मुसलमान समुद्री बेडों के जरिये जल-मार्ग से महाद्वीप तक, जो रूम-सागर के उत्तरीय तट पर स्थित है, पहुँचने लगे और वहाँ फिरंग प्रदेश को छिन्न-भिन्न करने लगे, जैसा कि बनू अबिल हुसेन[2] सकलिया के बादशाहो के राज्यकाल मे, जो उबैदीईन के प्रचारक एवं समर्थक थे, हुआ। ईसाई अपने बेड़ों को भय के कारण उत्तर-पूर्वी ओर फिरग के समुद्रीय तटों, सक़लिया एवं रूमानिया के द्वीपों तक हटा ले गये और मुसलमान उन पर सिंह की भाँति टूट पड़ने लगे। सक्षेप में समुद्रीय तट के अधिकाश भागो को मुसलमानों ने अपनी सेना एव अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा अपने अधीन कर लिया था। वे कभी संधि के उद्देश्य से और कभी युद्ध के उद्देश्य से समुद्र में घूमते फिरते थ, जब कि ईसाइयों के जहाज दिखाई तक न पड़ते थे।

जब उबैदीईन एव (उन्दुलुस के) बनी उमय्या का राज्य शक्तिहीन हो गया तब ईसाइयो ने भूमध्य-सागर के पूर्वी द्वीपो की ओर हाथ बढ़ाया और सक़लिया (सिसली), अकरीतिश (क्रीट) एवं मालता पर अधिकार जमा लिया। फिर वे लोग शाम के तट की ओर बढ़े और तराबलस[3], असकलान[4], सूर[5] एव अक्का[6] विजय कर लिये और वे शाम के तटो पर छागये। उन्होने बैतुल मुक़द्दस पर भी अधिकार जमाया और वहाँ एक गिरजा

१. दूसरा फ़ातेमी बादशाह, जिसने ९३४ से ९४६ ई० तक राज्य किया। उसके अधिकांश आक्रमण ९३४–३५ ई० में हुए।
२. सिसली के बनी कलब का १०वीं शताब्दी ईसवी के अन्त तथा ११वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ का हाकिम।
३. Tripoli
४. Ascalon
५. Tyre
६. Acco

घर का निर्माण कराया, ताकि वे अपनी धार्मिक प्रथाओं एवं इबादतों को शान्तिपूर्वक कर सकें।

इधर बनू ख़जरून से उन्होंने तराबलस ले लिया और तदुपरान्त क़ाबिस एवं सफ़ाक़िस पर भी विजय प्राप्त करके उन पर जिज़िया लगा दिया। फिर उबैदीईन की ख़ास राजधानी महदिया को भी बुलुग्गीन बिन जेरी के उत्तराधिकारियों के हाथ से छीन लिया। सक्षेप में पाँचवीं शताब्दी[१] हि० में ईसाई पुनः भूमध्य-सागर पर छा गये। मिस्र एवं शाम के राज्यों मे मुसलमानों की समुद्रीय शक्ति कमजोर पड़ गयी और अन्त में समाप्त हो गयी। अब तक मुसलमानों का इस ओर कोई ध्यान नहीं है, यद्यपि उबैदीईन के राज्यकाल में इन्हीं मुसलमानों ने, जैसा कि उनके इतिहास से पता लगता है, समुद्रीय शक्ति को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाया था।

जब जहाजी बेड़ो की चर्चा ही समाप्त हो गयी तो समुद्रीय बेडे के अधिकारी का पद भी न रहा। अब केवल इफ़रीक़िया तथा मग़रिब में ही यह पद मिलता है, किन्तु भूमध्य-सागर का पश्चिमी भाग अब भी शक्तिशाली युद्ध-पोतों से भरा हुआ और शत्रुओं के उत्पात से सुरक्षित है।

लम्तूना के राज्यकाल में बेड़े के अधिकारी का पद क़ादस[२] प्रायद्वीप के सरदार बनू मैमून अपने अधिकार में किये हुए थे। जब लम्तूना ने अब्दुल मोमिन की अधीनता स्वीकार की तो युद्ध का बेड़ा अब्दुल मोमिन के हाथ मे आया और उसी के समय में जहाज़ों की कुल सख्या १०० तक पहुँच गयी।

तदुपरान्त छठी शताब्दी[३] हि० में मुवह्हेदीन को उन्नति प्राप्त हुई और उन्होने समुद्र के दोनों तटों पर अधिकार जमा लिया। उन्होंने अपने समुद्री बेडो की बहुत बड़े पैमाने पर उन्नति की। मुवह्हेदीन के समुद्री बेड़े का अधिकारी अहमद सिक़िल्ली था। उसके पूर्वज सदगियान के निवासी थे, जो सदवीकिश की एक शाखा है, वे जरबा द्वीप मे आकर बस गये थे। ईसाई लोग उसे बन्दी बना ले गये थे और उसका पालन-पोषण उन्ही के पास हुआ। फिर सकलिया के हाकिम[४] ने उसको बन्दीगृह से छुडाकर अपने आश्रय मे ले लिया। जब सकलिया के हाकिम की मृत्यु हो गयी तो उसका पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुछ कारणों से वह अहमद से रुष्ट हो गया, अहमद प्राण के भय से सक़लिया से भागकर तूनुस पहुँचा और बनू अब्दुल

१. ११वीं शताब्दी ईसवी। २. Cadiz.
३. १२वीं शताब्दी ईसवी। ४. रोजर द्वितीय।

मोमिन के हाकिम के यहाँ अतिथि हुआ। उसके बाद यहाँ से भी प्रस्थान करके मराकश पहुँचा। वहाँ खलीफा यूसुफ बिन अब्दुल मोमिन[1] ने उसका भली-भाति स्वागत किया और अत्यधिक इनाम एव दान के उपरान्त बेड़े के सरदार का पद उसे प्रदान कर दिया। जब अहमद को यह पद प्राप्त हुआ तो उसने ईसाइयो से बहुत-से युद्ध किये। मुवह्हेदीन के राज्यकाल के इतिहास से उसके विषय मे पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार का उदाहरण न तो पिछले इतिहासो मे मिलता है और न बाद के।

जब मिस्र एवं शाम के सुल्तान सलाहुद्दीन युसुफ बिन अय्यूब[2] ने अपने राज्यकाल मे शाम के सीमान्त प्रदेशो को ईसाइयो के हाथ से फिर वापस लेना चाहा और बैतुल मुकद्दस से भी उन्हे हटाना निश्चय किया, तो बैतुल मुकद्दस के आस-पास से, जो ईसाइयो के अधीन था, समुद्री बेडे उनकी सहायतार्थ पहुँच गये और अपनी सख्या एव शक्ति से ऐसी सहायता पहुँचायी कि इस्कन्दरिया के जहाज उनका मुकाबला न कर सके थे। कारण कि भूमध्य-सागर के पूर्वी तट के आस-पास ईसाई बहुत समय से अधिकार जमाये हुए थे और उनके बेडे वहाँ बहुत बड़ी सख्या मे पडे थे। उनके विपरीत मुसलमान अपनी समुद्रीय शक्ति, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, बहुत पहले से खो चुके थे। इस कारण सलाहुद्दीन ने मगरिब के सुल्तान याकूब अल-मसूर के पास, जो उस समय मुवह्हेदीन का बादशाह था, अब्दुल करीम बिन मुनक़िज को भेजा। यह अब्दुल करीम शैजर के बनू मनकिज के उस वश से था, जो सलाहुद्दीन के राज्यकाल तक शासन करता चला आया था। सलाहुद्दीन ने अब्दुल करीम द्वारा मगरिब के सुल्तान से युद्ध के बेड़े माँगे, ताकि ईसाइयो की कुमक को रोका जा सके और शाम की सीमा पर मुसलमानों की सहायता हो सके। सलाहुद्दीन ने अब्दुल करीम के हाथ मसूर के नाम एक पत्र भी भेजा जो फ़ाजिल बेसानी[3] का लिखा हुआ था। इस पत्र को एमाद अल इसफ़हानी[4] ने

१. शासनकाल ११६३–११८४ ई०।

२ मलिक अन्नासिर सलाहुद्दीन यूसुफ़ प्रथम बिन अमीर नज्मुद्दीन अय्यूब, सलीबी युद्धों (क्रूसेड) का प्रसिद्ध योद्धा (जन्म तकरीत ११३८ ई०—मृत्यु ११९३ ई०)। यूरोप के साहित्य में वह सलाडिन के नाम से प्रसिद्ध है।

३. अब्दुर्रहमान बिन अली अल-क़ाज़ी अल-फ़ाज़िल बेसानी, जन्म ५२९ हि० (११३५ ई०), मृत्यु ५९६ हि० (१२०० ई०)।

४. मुहम्मद बिन मुहम्मदएमादअल-इसफ़हानी, जन्म ५१९ हि० (११२५ ई०), मृत्यु ५९७ हि० (१२०१ ई०)।

"फ़तहुल क़ुदसी" में उद्धृत किया है। यह पत्र इन शब्दों से प्रारम्भ किया गया था—"अल्लाह हमारे सरदार के लिए सफलताओ एव आशीर्वाद के द्वार खोल दे।" इस पत्र मे मंसूर को "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि द्वारा सम्बोधित न किया गया था, अतः मंसूर को बड़ा बुरा लगा, किन्तु उसने अपनी भावनाओ को छिपाये रखा और राजदूत को बडे स्नेह एवं कृपा-भाव से ठहराया, किन्तु फिर उसे असफल विदा कर दिया गया। इस ऐतिहासिक घटना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल मगरिब के सुल्तान के पास उस समय बडे अच्छे युद्ध के बेडे थे, और यह भी ज्ञात हुआ कि ईसाइयों ने भूमध्य-सागर की पूर्वी दिशा में अपना पूर्ण अधिकार जमा रखा था और मिस्र एवं शाम के राज्यों का कोई ध्यान समुद्रीय शक्ति की ओर न था और आवश्यकता पड़ने पर उन्हे मगरिब की ओर हाथ फैलाना पड़ता था।

जब याकब अल-मसूर की मृत्यु हो गयी और मुवह्हेदीन का राज्य सकट मे पड़ गया तो जलालका[1] ने उन्दुलुस के बडे भाग पर अधिकार जमा लिया। मुसलमान विवश होकर समुद्र तट की ओर खिसक आये और उन्होने भूमध्य-सागर की पश्चिमी दिशा के द्वीपों पर अधिकार जमा लिया। समुद्र पर मुसलमानों की शक्ति पुनः बढ़ गयी। उन्होने बहुत बड़ी संख्या में युद्ध के बेड़े एकत्र कर लिये। संक्षेप मे मुसलमानो ने अपनी खोयी हुई शक्ति पर पुनः अधिकार जमा लिया। अब वे ईसाइयो से बराबर का मुकाबला करने लगे। इस प्रकार सुल्तान अबुल हसन[2] जनाता के बादशाह के राज्य-काल में ऐसा ही हुआ कि जब उसने जेहाद का सकल्प किया और उसके युद्ध के जहाजो का अनुमान लगाया गया तो सख्या एव शक्ति मे वे ईसाई जहाजो से कुछ कम न थे।

इसके उपरान्त मुसलमानों की समुद्रीय शक्ति का पुनः पतन होने लगा। मगरिब मे बदवी आदतो का जोर बढ जाने और साथ-ही-साथ उन्दुलुस की प्रथाओ से अनभिज्ञ होने के कारण वे जहाज चलाने की कला को भूल गये। इसके विपरीत ईसाइयो ने जहाज चलाने की कला में खूब योग्यता पैदा कर ली और अपना अभ्यास पहले से अधिक बढ़ा लिया। उन्होने उन सब कलाओ को सीख लिया जो समुद्रीय युद्ध में प्रभुत्व के लिए आवश्यक है। मुसलमानों में यदि किसी को जहाज चलाने की

१. Galician.

२. अबुल हसन ने १३३१ ई० से १३५१ ई० तक राज्य किया।

कला में दक्षता प्राप्त हुई, तो वे थोड़े-से मुसलमान थे जो तटवर्ती नगरों में बसे थे, किन्तु इन बेचारों को सहायता एवं किसी राज्य के आश्रय की, जो उनको सैनिक संगठन सिखाये तथा नियमित रूप से उस दिशा मे उनकी सेवाएँ प्राप्त करे, अधिक आवश्यकता थी ।

मगरिब की सल्तनत में अब भी समुद्रीय बेड़े के अधिकारी का पद वर्त्तमान है। जहाज बनाने एवं चलाने की प्रथा जारी है। जब कोई संकट आ जाता है और समुद्रीय युद्ध छिड जाता है, तो उस समय के लिए युद्ध के बेड़े तैयार रहते हैं। मगरिब-वालों के मस्तिष्क एवं हृदय में यह विचार आरूढ़ है कि मुसलमानों का समुद्र पार बसनेवाले ईसाइयों पर आक्रमण करके उनके राज्य को विजय करना आवश्यक एवं अनुपेक्ष्य है। इन्ही विचारों के कारण वहाँ के मुसलमान काफ़िरो पर आक्रमण करने के लिए हर समय उद्यत रहते हैं और युद्ध के बेड़ो को तैयार रखते है, कारण कि समुद्रीय युद्ध जंगी जहाजो के बिना किसी प्रकार नही लड़ा जा सकता। "ईश्वर ही धर्म-निष्ठ मुसलमानों का मित्र है।"[1]

(३५) सल्तनतों में तलवारवालों एवं क़लमवालों के पदों का पारस्परिक महत्त्व

समझ लीजिए कि सल्तनत का शासक राज्यव्यवस्था के सचालन में तलवार एवं क़लम दोनों पर निर्भर होता है, किन्तु जिस समय सल्तनतवाले राज्य की नीव डाल रहे हों, उस समय क़लम की अपेक्षा तलवार की अधिक आवश्यकता पड़ती है। कारण कि उस समय क़लम राज्य का एक सेवक मात्र होती है, जिसकी योग्यता इतने पर ही समाप्त हो जाती है कि वह शाही आदेशो को राज्य में जारी करती है। किन्तु तलवार तो सल्तनत की स्थापना में सल्तनतवालों का बराबर का हाथ बटाती है और बराबर की सहयोगी होती है। यही सम्बन्ध तलवार का क़लम से उस समय भी स्थिर रहता है जब "असबियत" शक्तिहीन होकर अपने जीवन के अन्तिम दिन गिन रही होती है। उस समय भी सल्तनत अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए तलवारवालो पर ही अवलम्बित होती है, ताकि वे उसको जीवित रखें और उसकी ओर से प्रत्येक कष्ट एवं संकट दूर करें। इस प्रकार तलवार को क़लम पर सल्तनत

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत ।

के प्रारम्भ एवं अंत दोनों ही कालों में प्राथमिकता प्राप्त होती है। यही कारण है कि प्रारम्भ मे तलवारवाले उच्च पदों पर आरूढ़ हो जाते है और समृद्ध एव बड़े-बड़े जागीरदार बन बैठते है।

सल्तनत के मध्य युग मे सुल्तान एक प्रकार से तलवारवालों की उपेक्षा कर सकता है। सल्तनत की नीव दृढ़ हो चुकती है और उस समय उसका पूरा ध्यान सल्तनत से लाभान्वित होने की ओर आकृष्ट रहता है, उदाहरणार्थ खराज इत्यादि वसूल करना एवं उसे सुव्यवस्थित करना, सल्तनत के ऐश्वर्य को बढाना और प्रत्येक दिशा में उसके आदेश जारी करना। यह सब उद्देश्य कलम द्वारा ही प्राप्त होते है और वही उनकी सहायक होती है। तलवार मियान मे विश्राम करती है। यदि राज्य मे कोई अकस्मात् दुर्घटना हो जाय अथवा देश में अशान्ति फैल जाय तो तलवार पुनः अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है। इन अवसरों के अतिरिक्त तलवार की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः राज्य के मध्य-युग मे क़लमवाले उच्च पदों पर आरूढ़ एव समृद्ध होते है। वे बादशाह के विश्वासपात्र होते है और एकान्त मे उसके पास आते-जाते है। इसका यह कारण है कि क़लम राज्य के लाभो के उपभोग का साधन बनती है। राज्य की विभिन्न दिशाओं को सुव्यवस्थित करती है और सल्तनत के ऐश्वर्य मे वृद्धि करती है। इस प्रकार जो वजीर क़लम के धनी होते है, वे बादशाह के मुँह-लगे हो जाते है। इसके विपरीत उस उमय "अहले सैफ़" की बादशाहो को कोई आवश्यकता नहीं रहती। वे बादशाह के हृदय से दूर, अपितु उसके आतक से हर समय भयभीत रहते है।

अबू मुस्लिम के इस वाक्य में इसी तथ्य की ओर सकेत है। यह वाक्य उसने उस समय कहा था जब मंसूर ने उसको अपने पास बुलवाया था। उसने कहा था—"हमने फ़ारस के दार्शनिको की यह शिक्षा याद कर रखी है कि जब सल्तनत दृढ़ता एवं शान्ति के मैदान मे प्रविष्ट हो जाय तो सल्तनत के वजीर से बहुत भय करना चाहिए, कारण कि ऐसे समय राज्य में उसी को उच्च अधिकार प्राप्त होते है।"

(३६) सल्तनत एवं सुल्तान के विशेष चिह्न

ज्ञात होना चाहिए कि बादशाह के कुछ विशेष चिह्न होते है, जिनकी आवश्यकता उसके शाहाना ठाट-बाट को होती है और जिनके कारण वह अपनी प्रजा, मित्रों एवं राज्य के पदाधिकारियों से पृथक् पहचाना जाता है। उनमें से जो चिह्न

अधिक प्रसिद्ध हैं, उन्हें हम अपनी सूचना के अनुसार लिपिबद्ध करते है। "और उसे सभी विद्वानों से अधिक ज्ञान प्राप्त है।"[१]

आलह[२]

राज्य का चिह्न आलह है, अर्थात् पताका उड़ाना, तबल, तम्बूर, बिगुल एवं शख बजवाना। अरस्तू ने "किताबे सियासत" मे लिखा है कि इन वस्तुओं का उद्देश्य शत्रुओ को युद्ध मे डराना एव आतकित करना होता है, कारण कि भयकर स्वर आत्मा को भयभीत कर देते है। सच पूछिए तो रण-क्षेत्र के ये सब उपकरण उत्तेजनाप्रद गिने जाते है, प्रत्येक व्यक्ति इनसे स्फूर्ति अनुभव करता एवं साहस प्राप्त करता है। अरस्तू का यह दृष्टिकोण यद्यपि कुछ सत्य-सा और एक सीमा तक विश्वसनीय भी है, किन्तु वास्तविक रहस्य कुछ और है। वह रहस्य यह है कि आत्मा सगीत एवं सुखद स्वर सुनने पर एक विशेष प्रसन्नता एव हर्ष का अनुभव करती है और इतनी अचेत हो जाती है कि उसे कठिन से कठिन कार्य भी सरल ज्ञात होने लगते है। ऐसी अचेत दशा मे कभी-कभी मनुष्य अपने प्राण पर भी खेल जाता है। यह उत्तेजना केवल मनुष्य तक ही सीमित नही, मूक पशुओं तक मे वर्त्तमान है, उदाहरणार्थ ऊँट हुदी[३] से मस्त हो जाता है और घोड़ा सीटी से झूमने लगता है। जब ध्वनि सगीत के विशेष सिद्धातो के अनुसार निकलती है तो वह शरीर मे आग लगा देती है, उदाहरणार्थ उत्तम स्वरवाले सगीतज्ञो का सगीत सुननेवालों को लोट-पोट कर देता है। अजम के बादशाह इसी कारण सगीत के यत्र भी अपने साथ रखते थे और सगीतज्ञ शाही सेना के चारो ओर गाते-बजाते और वीरों को ऐसा गरमा देते थे कि वे प्राण त्यागने पर उद्यत हो जाते थे। हमने स्वय देखा है कि अरब के युद्धों में सेना के समक्ष गायक पद्य एव कविताएँ पढते और गाते-बजाते चलते है और वीरों को ऐसा उभार देते है कि फिर उन्हे अपने प्राणो की सुध-बुध नही रहती और वे तत्काल रण-क्षेत्र में कूद पडते है और शत्रु से भिड़ जाते है। इसी प्रकार मगरिब मे जनाता कौम मे यह प्रथा है कि कवि सेना की पक्तियो के समक्ष चलते है और गाते जाते है। वे ऐसे स्वर मे गाते है कि द्वार एव दीवारो को हिला डालते है और कायर को भी वीर बना

१ क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. बादशाही के कुछ प्रमुख चिह्न।
३. अरब के ऊँटवालों का विशेष गाना, जिसे वे ऊँट चलाते समय गाते है।

देते है। वे अपनी भाषा में उस सैनिक गीत को "ताजूगायेत" कहते है। इन घटनाओं एव तथ्यो का रहस्य यही है कि इन उपायो से आत्मा को उत्तेजना एव प्रसन्नता प्राप्त होती है और वीरता की भावनाएँ जागृत होती है।

विभिन्न रग की पताकाओ, उनकी अधिकता एव लम्बाई का उद्देश्य भी शत्रु को भयभीत एव आतकित करना है, किन्तु कभी-कभी भय एव आतक अग्रसर होने की शक्ति को बढा देते है एवं मनुष्य को निर्भय बना देते है, कारण कि मनुष्य की मनोवृत्ति एवं भावनाएँ बडी विचित्र है। मनुष्य की बुद्धि उन्हे समझ नही सकती। फिर सुल्तान एव सल्तनते उपर्युक्त विशेपताओ का प्रयोग करने मे विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। कुछ मे इनकी अधिकता एव बहुतायत होती है और कुछ मे कमी तथा न्यूनता। इनका आधार सल्तनत के छोटे-बडे होने पर है। इनमे झडो की प्रथा का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह युद्धो में आज से नही, अपितु सृष्टि की रचना के समय से है। कौमो ने युद्ध मे झडो के प्रयोग को अपना सैनिक नियम बना रखा है। इस प्रकार स्वय मुहम्मद साहब के शुभ राज्यकाल में सेना मे पताकाओ का प्रयोग हुआ और इसी प्रकार खलीफाओं के काल मे भी।

रहा नक्कारा इत्यादि, तो मुसलमान अपने प्रारम्भिक राज्यकाल मे इसका प्रयोग न करते थे, कारण कि वे सल्तनत की शान व शौकत एव अनावश्यक दिखावे को मिथ्या एव व्यर्थ समझते थे। इनको वे कोई महत्त्व न देते थे। अतः जब सल्तनत ने खिलाफत का स्थान लिया, सासारिक भोग-विलास एव समृद्धि मे मुसलमानो की रुचि बढ़ी और फारस एव रूम की प्राचीन कौमें, जो प्राचीन काल से राज्य करती चली आ रही थी, उनके साथ घुली-मिली और उनको शाही ऐश्वर्य एव गौरव की योजनाएँ समझायी, तो मुसलमानों ने अन्य चीजों के साथ तबला इत्यादि बजाना भी पसन्द किया। बादशाहो ने स्वय भी इस प्रथा का पालन किया और अपने आमिलों को भी यही आदेश भेजे, ताकि इस प्रकार राज्य एव राज्यवालो के ऐश्वर्य तथा गौरव का प्रदर्शन हो। कभी-कभी अब्बासी अथवा उबैदीईन खलीफा सीमान्त के किसी हाकिम अथवा सेनापति के लिए झडे तैयार कराते और उसको उसके कार्य अथवा अभियान पर अपने महल या उस व्यक्ति के घर से उन पताकाओ सहित रवाना करते, फलतः उसका प्रस्थान इस शान से होता कि अत्यधिक सेना तथा पताकाएँ उठानेवाले उसकी सवारी के साथ-साथ होते। वादन-यत्र भी साथ-साथ रहते और इस प्रकार उसके ऐश्वर्य एव गौरव मे वृद्धि कर दी जाती थी। खलीफा तथा आमिल के सैनिक दस्तो मे केवल पताकाओ की सख्या एव रग के आधार पर भेद-भाव किया जा सकता था।

उदाहरणार्थ अब्बासियों की पताकाएँ काले रंग की होती थीं। इस प्रकार वे इस रंग से अपने वंश के शहीदों का शोक मनाते थे और इसे बनी उमय्या की हत्या एवं उनके विनाश की स्मृति का चिह्न समझते थे, अतः अब्बासियों को "मुसव्वेदह्"[1] कहा जाता था।

उसके बाद जब अब्बासी राज्य छिन्न-भिन्न हुआ और अलवियों ने प्रत्येक दिशा से उन पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया, तो अलवियों ने शत्रुता प्रदर्शित करने के लिए अपनी पताकाएँ सफेद रग की बना ली, अतः वे "मुबय्येजह"[2] कहलाये। उबैदीईन के पूरे राज्यकाल में अलवियों में से जिन लोगो ने पूर्व पर आक्रमण किये, उदाहरणार्थ तबरिस्तान, सादा तथा क़रामेता आदि प्रचारक, वे "मुबय्येजह" कहलाते थे।

मामून ने अपने राज्यकाल मे पताकाओं का काला रग त्यागकर हरा रग ग्रहण किया और हरी पताकाएँ बनवा ली। रही पताकाओं की सख्या की बात, तो उसके लिए कोई सीमा निर्धारित न थी। उबैदीईन के शासनकाल में जब अज़ीज निज़ार[3] ने शाम की विजय का संकल्प किया तो उसके साथ ५०० बड़ी पताकाएँ एवं दुन्दुभियाँ थीं। मगरिब में सिनहाजा के बरबर बादशाहों के यहाँ पताकाओं का कोई विशेष रंग निश्चित न था, अपितु वे शुद्ध रंगीन रेशम की होती थीं और उन पर सुनहरा काम रहता था। उनकी ओर से आमिलों को भी पताकाएँ रखने की अनुमति थी। फिर जब मुवह्हेदीन का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ, अथवा उनके बाद जनाता ने शासन की बागडोर सँभाली, तो नक्क़ारों एवं पताकाओं का प्रयोग सुल्तान तक ही सीमित हो गया। अन्य अधिकारियों को उनके रखने का अधिकार न रहा। नक्कारे एवं पताकाएँ ले जाने के लिए एक पृथक् सैनिक दस्ता होता था जो बादशाह के पीछे-पीछे चलता था। उसको साकह कहते थे। इन पताकाओं की सख्या प्रत्येक सल्तनत की प्रथानुसार घटती-बढती रहती थी। कुछ सल्तनतों मे ७ की सख्या रही, कारण कि ७ सख्या शुभ समझी जाती थी। इस प्रकार मुवह्हेदीन के राज्यकाल में ७ पताकाएँ ही रहा करती थी। बनू अल-अहमर ने भी उन्दुलुस मे इसी प्रथा का पालन किया। कुछ सल्तनतों में यह सख्या १० या २० तक पहुँची, उदाहरणार्थ जनाता के राज्यकाल मे। सुल्तान अबुल हसन के राज्यकाल मे छोटे-बड़े नक्क़ारों

१. काले।
२. श्वेत।
३. ३६७ हि० (९७७ ई०)।

एवं पताकाओं को मिलाकर कुल संख्या १००–१५० तक पहुँची। पताकाएँ रंगीन रेशमी कपड़े की होती थी और उन पर सोने के तारों का काम रहता था।

वालियों, आमिलों तथा सेनापतियो को सफ़ेद मलमल की बनी हुई एक छोटी-सी पताका एव एक छोटा-सा नक़्क़ारा रखने की अनुमति थी और वह भी युद्ध के समय। इससे अधिक वे कुछ नहीं रख सकते थे। पूर्व मे तुर्कों के राज्यकाल में यह प्रथा है कि वहाँ केवल एक बड़ी पताका रखी जाती है, जिसके सिरे पर बालों का एक बहुत बड़ा गुच्छा लगा होता है। इसको ये लोग "शालिश" अथवा चत्र कहते हैं। इस बड़े झडे का प्रयोग केवल बादशाह कर सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य पताकाएँ भी होती हैं जिनको ये लोग "सनजक" कहते है। यह अरबी भाषा का "राया" है। नक़्क़ारों की इनके यहाँ कोई सीमा नही। इनको ये "कूस" कहते हैं। प्रत्येक अमीर तथा सेनापति अपने इच्छानुसार जितने नक्कारे चाहे रख सकता है, किन्तु चत्र नहीं रख सकता। यह विशेष शाही चिह्न है।

आधुनिक काल में उन्दुलुस में जलालक़ा के फिरग के जो बादशाह शासन कर रहे है, उनके यहाँ पताकाएँ थोड़ी होती है, किन्तु वे लम्बी होती हैं। उनके साथ आक्रमण के समय साज एवं तम्बूर बजने की भी प्रथा है और राग भी गाये जाते हैं। अजम के अन्य बादशाहों के यहाँ भी यही प्रथा है।

सरीर

सरीर, मिम्बर, सिंहासन, कुर्सी अथवा अरीका बादशाह के बैठने के लिए लकड़ी से तैयार किये जाते हैं, ताकि बादशाह अन्य दरबारवालों की अपेक्षा ऊँचे स्थान पर आसीन हो और उनके बराबर न बैठे। इस्लाम के पूर्व बादशाह लोग दरबारों मे सिंहासन पर आसीन होते थे। अजमी सल्तनतों मे यही प्रथा चलती रही, अपितु अजमवालो ने तो सोने के सिंहासन बनवाये। हजरत सुलेमान एव हजरत दाऊद की कुर्सी तथा सिंहासन दोनों हाथीदाँत एव स्वर्ण से तैयार किये गये थे। किन्तु यह सब उस युग का वर्णन है जब कि हुकूमतों पर शान व शौकत एवं आडम्बर तथा भोग-विलास का रग चढ़ गया था। जब तक हुकूमतें "बदवियत" के युग से गुजरती रही, इस प्रकार ठाठ-बाट एवं भेद-भाव की इच्छा ही उत्पन्न न हुई थी।

इस्लामी राज्यकाल में सर्वप्रथम अमीर मुआविया ने अपने लिए राज-सिंहासन का निर्माण कराया और लोगों को यह कारण बताया कि क्योंकि मैं भारी हो गया हूँ, अतः सिंहासन के बिना मेरा काम नहीं चल सकता। लोगो ने कोई आपत्ति न की।

बाद मे आनेवाले अन्य इस्लामी बादशाहों ने भी इसी प्रथा का पालन किया। राज-सिंहासन सल्तनत की शान का एक चिह्न बन गया। अमर बिन आस जब मिस्र मे अपने राज-प्रासाद की गोष्ठियों मे सर्व-साधारण के साथ भूमि पर बैठते और मिस्र का बादशाह मुकौकस उनके पास उपस्थित होता तो उसके बैठने के लिए लोग सोने का सिंहासन उठाये हुए आते और वह बादशाहों की भाँति अमर बिन आस के समक्ष सिंहासन पर आसीन होता। मुकौकस जिम्मी था। जिम्मियों से प्रतिज्ञा की जाती है और प्रतिज्ञा का पालन भी इस्लाम मे आवश्यक है, अतः उसके इस व्यवहार पर कोई मुसलमान आपत्ति प्रकट न करता था। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि उस समय तक मुसलमान जाहिरी ऐश्वर्य एव वैभव तथा शान व शौकत को कोई महत्त्व न देते थे। इसके उपरान्त अब्बासियों, उबैदीईन तथा अन्य इस्लामी सुल्तानों ने पूर्व तथा पश्चिम मे ऐसे-ऐसे राज-सिंहासन, मिम्बर एव कुर्सियाँ बनवायी कि उनके समक्ष क़ैसर एव किसरा के भी राज-सिंहासन एव मिम्बरो का कोई मूल्य न रहा।

टकसाल

एक लोहे का ठप्पा होता है, जिस पर चित्र अथवा कुछ वाक्य उलटे खुदे होते है। जब उसे प्रयोग मे आनेवाले दिरहम तथा दीनार पर रखकर हथौड़े से चोट मारी जाती है तो उसके उलटे वाक्य दिरहम तथा दीनार पर सीधे उभर आते है। किन्तु ठप्पा लगाने के पूर्व दिरहम तथा दीनार को कसौटी पर कसकर देख लिया जाता है कि वह खरा है अथवा खोटा। उसके ठीक वजन की भी जाँच कर ली जाती है कि वह कम है अथवा अधिक, अथवा बराबर। इस प्रकार दिरहम एव दीनार जब टकसाल से निकलते है तो लोग गिन-गिनकर उन्हे अपने प्रयोग मे लाते है। यदि उनके वजन की परख नही हो सकती तो फिर तोलकर उनसे कारोबार चलता है।

सिक्का शब्द वास्तव मे लोहे के ठप्पे के लिए बना था। फिर उन चिह्नों को कहने लगे जो दिरहमो एव दीनारो पर दृष्टिगत होते है। फिर इससे भी हटकर उस पद को सिक्का कहने लगे जिसके अधीन दिरहम एव दीनार के समस्त प्रबध सम्पन्न होते है। इस प्रकार अब इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे होता है। यह सल्तनत का परमावश्यक पद है, कारण कि इसी के द्वारा खरा अथवा ख़ालिस सिक्का चलता है और लोग खोटे सिक्के से बचते है। अजम के बादशाहों के सिक्कों पर समकालीन बादशाह, किसी क़िले अथवा पशु का चित्र होता था। अजमी सल्तनत के अन्तिम

काल तक यही प्रथा रही। जब इस्लामी राज्य प्रारम्भ हुआ तो मुसलमानों ने कुछ इस्लामी सरलता से प्रभावित होकर और कुछ अरबी "बदवियत" के कारण सिक्के के प्रबध की ओर से उपेक्षा की। ये लोग सोने और चाँदी को तोलकर आपस के लेन-देन में काम में लाते थे। फारस के दिरहम एव दीनार भी इनके यहाँ प्रचलित थे और ये उन्हे तोलकर लेते और अपना काम चलाते, किन्तु शासन की उपेक्षा के कारण जाली एवं खोटे सिक्के प्रचलित हो गये। विवश होकर अब्दुल मलिक ने हज्जाज को आदेश दिया कि टकसाल स्थापित की जाय, जैसा कि सईद बिन अल मुसय्यब एवं अबूज् जिनादे के कथन से पता चलता है। यह ७४ हि० (६९३–९४ ई०) अथवा मदाएनी[2] के अनुसार ७५ हि० (६९४–९५ ई०) की घटना है। फिर ७६ हि० (६९५–९६ ई०) में यह फरमान जारी किया गया कि इसी टकसाल के दिरहमों एवं दीनारों का प्रयोग किया जाय। इस सिक्के पर "अल्लाहो अहदुन, अल्लाहो समदुन"[3] खुदा हुआ था। फिर यजीद बिन अब्दुल मलिक के राज्यकाल में जब इब्ने हुबैरा इराक़ का वाली हुआ तो उसने सिक्के में अन्य सुधार किये। फिर खालिद अल क़सरी एव यूसुफ बिन उमर ने अपने-अपने समय मे और भी सुधार किये।

कहा जाता है कि इस्लामी शासन में सर्वप्रथम मुसाब बिन जुबैर के आदेशानुसार इराक़ मे दिरहम एव दीनारों पर ७० हि० (६८९–९० ई०) में ठप्पा लगाया गया। यह कार्य उनके भाई अब्दुल्लाह के, जो उस समय हिजाज के वाली थे, आदेशानुसार हुआ। इस सिक्के के एक ओर "बरकतुल्लाह"[4] और दूसरी ओर अल्लाह का नाम खुदा था। फिर एक वर्ष उपरान्त हज्जाज ने इस सिक्के को बदल डाला और उस पर "अल्लाह के नाम से––हज्जाज" खुदवाया और सिक्के का वही वजन निर्धारित किया जो हजरत उमर फारूक के काल मे निश्चित हो चुका था।

वजनों का प्रामाणिक विवरण इस प्रकार है––इस्लाम के प्रारम्भ में दिरहम का वजन ६ दाँग था। एक मिस्काल का वजन १$\frac{3}{7}$ दिरहम, अतः १० दिरहम का वजन ७ मिस्क़ाल होता था। फ़ारस के दिरहमो का वजन इससे भिन्न था। कोई मिस्काल

१. अब्दुल्लाह बिन जकवान, मृत्यु १३० हि० तथा १३२ हि० (७४७–४८ ई० तथा ७४९–५० ई०) के मध्य में।

२. इस्लाम के प्रारम्भिक काल का प्रसिद्ध इतिहासकार।

३. अल्लाह एक है और अल्लाह समद (श्रेष्ठ, पूज्य) है।

४. अल्लाह का आशीर्वाद।

वज़न पर २० कीरात[1] का था और कोई १२ या १० का। ज़कात अदा करने के समय जब मुसलमानो को दिरहम का वजन निश्चित करना पड़ा, तो उन्होंने बीच के वज़न का दिरहम निश्चित किया, जो १४ कीरात का होता था। मिस्काल का वजन वही १$\frac{3}{7}$ दिरहम रहा। यह भी कहा जाता है कि बगली दिरहम का वजन ८ दाँग, तबरी का ४ दाँग, मगरिबी का ३ दाँग और यमनी का १ दाँग था। हजरत उमर ने आदेश दिया कि अधिक प्रचलित दिरहम का पता लगाया जाय। इस प्रकार उपर्युक्त हिसाब से बगली तथा तबरी दिरहम दोनों मिलकर १२ दाँग के बराबर होते थे। फिर अरबी औसत निकालकर ६ दाँग का वजन निश्चित किया गया, जिसमें $\frac{3}{7}$ दिरहम यदि और बढ़ाया जाता तो मिस्काल बन जाता था। यदि मिस्काल मे से ३।१० कम कर दिया जाता तो दिरहम रह जाता था।

अब्दुल मलिक ने जब इस आशय से सिक्का बनाने का विचार किया कि सोना व चाँदी के सिक्के, जो मुसलमानों के लेन-देन के प्रयोग मे आ रहे थे, खोट से बचाये जा सके, तो उनका वजन वही निश्चित किया जो हजरत उमर के राज्यकाल मे निर्धारित हो चुका था। फ़िर सिक्के पर केवल वाक्य लिखवाये, चित्र नही, क्योंकि अरब स्वाभाविक रूप से वाक्यो मे रुचि रखते थे, चित्रो मे नही। इसके अतिरिक्त इस्लामी शरीअत मे चित्रकारी निषिद्ध थी, अत. दोनो कारणो से चित्रों की उपेक्षा की गयी। अब्दुल मलिक का यह कार्य इस्लामी सल्तनत मे एक उदाहरण बन गया और सब लोगों ने इसी नियम का पालन किया।

दिरहम एव दीनार गोल टिकियों के रूप में बनाये गये और उन पर समानान्तर वृत्तों मे लिखाई की गयी। एक ओर ईश्वर की प्रशसा एव दरूद के वाक्य और दूसरी ओर ठप्पे की तिथि एव समकालीन खलीफ़ा का नाम खोदा गया। अब्बासी, उबैदीईन एव (उन्दुलुस के) उमय्या राज्यकाल मे इसी प्रकार के सिक्के चलते रहे। सिनहाजा ने अपना सिक्का अपने राज्यकाल के अन्त मे चलाया। इब्ने हम्माद[2] के इतिहास से पता चलता है कि बजाया के अधिकारी मसूर ने सर्वप्रथम अपना सिक्का चलाया।

जब मुवह्हेदीन का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ तो महदी ने दिरहम के सिक्के को गोलाकार के स्थान पर चौकोर आकार मे परिवर्तित कर दिया। गोल दीनार में

१. Carats

२. मुहम्मद बिन अली इब्ने हम्माद ने अपने इतिहास की रचना ६१७ हि० (१२२० ई०) के लगभग की।

चौकोर खुदाई करवायी। उसके एक ओर ईश्वर के प्रशंसा सम्बन्धी वाक्य लिखवाये और दूसरी ओर अपना तथा अपने वली अहद का नाम लिखवाया। इस प्रकार मुवह्हेदीन के राज्यकाल में यही प्रथा चलती रही। अब तक उनके यहाँ के सिक्के इसी रूप के होते हैं। कहा जाता है कि महदी का प्रभुत्व प्रारम्भ होने के पूर्व ही भविष्यवाणी करनेवाले महदी की चर्चा "साहिबुद्दिरहमुल मुरब्बा"[1] की उपाधि द्वारा करते थे। आजकल पूर्वी सल्तनत में उनके सिक्के का कोई निश्चित रूप नहीं। वे दिरहम एव दीनार को तोलकर अपने लेन-देन में काम में लाते हैं। वे अपने सिक्के पर मगरिबवालो की भाँति ईश्वर की प्रशंसा एवं दरूद के वाक्य तथा खलीफा इत्यादि के नाम खुदवाते[2] हैं।

सिक्के का वर्णन समाप्त करने के पूर्व हम शरई दिरहम एवं दीनार की वास्तविकता और उसके वजन को भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। संसार भर के विभिन्न देशों, प्रान्तो तथा नगरो मे विभिन्न तोल के सिक्के प्रचलित हैं। इस्लामी शरीअत मे भी इनका उल्लेख है और अनेक विपयो यानी जकात निकाह एवं हुदूद[3] इत्यादि के शरई आदेशों का उनसे सम्बन्ध है। इस स्थिति मे शरीअत के लिए आवश्यक हुआ कि शरई दिरहम एवं दीनार की वास्तविकता स्पष्ट की जाय और उनका वह वजन निश्चित किया जाय, जो शरई आदेशो के अनुसार इन दिरहमों एव दीनारों का होना चाहिए, उनसे कम न अधिक।

यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि इस्लाम के प्रारम्भ, सहाबा एवं ताबेईन के समय से इस पर इजमा हो चुका है कि शरई दिरहम वह है कि जिसके १० दिरहमो का वजन ७ मिस्काल सोने के बराबर हो। एक ओकिया[4] सोने में ४० दिरहम बनते हैं जब कि एक शरई दिरहम ७।१० दीनार का माना जाता है। एक मिस्काल का वजन ७२ औसत दरजे के गेहूँ के दाने के बराबर होता है। इसलिए एक दिरहम का वजन जो ७।१० मिस्काल के बराबर होता है, ५५ जौ दाने के बराबर हुआ। ये वजन सबके सब इजमा से प्रमाणित हैं।

जाहिलियत के युग मे दिरहम कई प्रकार के होते थे। इनमें सबसे खरा तबरी था जो ८ दाँग का होता था। बगली भी खरा माना जाता था, जो ४ दाँग का होता

१. चौकोर दीनार का अधिकारी।
२. कुछ पोथियों के अनुसार नहीं खुदवाते।
३. शरई दंड।
४. लगभग १ औंस।

था। शरई दिरहम दोनो के मध्य का निश्चित हुआ, अर्थात् ६ दाँग का। इस प्रकार १०० दिरहम बगली और तबरी पर ५ दिरहम शरई जकात के निश्चित हुए। अब इसमे लोगों का मतभेद है कि शरई दिरहम का उपर्युक्त वजन अब्दुल मलिक ने निश्चित किया अथवा इसके उपरान्त लोगों ने इस पर इजमा किया है। खत्ताबी[1] ने "किताब मआलिमुस् सुनन" एव मावर्दी ने "एहकाम अस्सुल्तानिया" मे इस विषय की चर्चा की है। आधुनिक काल के विद्वानो ने इसे इस आधार पर रद्द कर दिया है कि इससे यह प्रमाणित होता है कि हजरत मुहम्मद, सहाबा एव बाद के राज्यकाल में दिरहम एव दीनार की शरई स्थिति एव वजन अज्ञात रहा होगा, यद्यपि जकात, निकाह एव हुदूद इत्यादि मे बहुत से शरई आदेश इनसे सम्बन्धित है। यदि इनका वजन निश्चित न होता तो आदेश कैसे निर्गत होते। विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है और यह सत्य भी है कि हजरत मुहम्मद एव सहाबा के राज्यकाल में दिरहम एव दीनार का वजन ज्ञात था और इसी वजन के अनुसार हक़ सम्बन्धी शरई आदेश उन पर निर्भर होते थे। इनका मुसलमानो को भली-भाँति ज्ञान था।

जब इस्लामी सल्तनत ऐश्वर्य एव वैभव के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुई तो नवीन स्थिति के आवश्यकतानुसार शरा के आधार पर दिरहम एव दीनार का खास वजन निश्चित करना इस कारण जरूरी हो गया कि लोग अनुमान एवं अटकल की कठिनाई से बच जायें। इस प्रकार वजन निश्चित हुआ। इस युग मे अब्दुल मलिक राज्य कर रहा था। उसी ने वजन निश्चित कराये। जो शरई वजन लोगो को ज्ञात था, उसका ध्यान रखा गया, अर्थात् उससे घटने-बढने नही दिया गया। उसने सिक्के पर ईश्वर के नाम एव दुरूद के उपरान्त अपना नाम तथा तिथि भी खुदवायी। जाहिलियत के सिक्को का प्रयोग बन्द करा दिया। जो उस समय के सिक्के प्रचलित थे उनको वर्त्तमान सिक्को के रूप मे ढाल लिया गया। इस ऐतिहासिक तथ्य को कोई अस्वीकार नही कर सकता। फिर इसके बाद सल्तनतों मे शरई तोल से कम अथवा अधिक वज़न के सिक्के चलने लगे। प्रत्येक देश एवं सल्तनत ने अपना अलग-अलग सिक्का बना लिया। जब यह दशा हुई तो लोगों ने उनके उस शरई वजन का ध्यान रखा जो इस्लाम के प्रारम्भ मे प्रचलित था और फिर हर एक अपने-अपने राज्य के विशेष सिक्के से दिरहम एव दीनार के शरई वजन को मिलाकर देखता और उसकी कमी-बेशी को समझकर जितना अन्तर होता उसके अनुसार शरई हक अदा करता।

१. हम्द (अहमद) बिन मुहम्मद, ३१९ हि० (९३१) से ३८६ हि० अथवा ३८८ हि० (९९६ ई० अथवा ९९८ ई०)।

दीनार के वजन के विषय में विद्वान् लोग पूर्णरूप से सहमत हैं कि वह औसत दर्जे के ७२ गेहूँ के दाने के बराबर होता है, केवल इब्ने हजम ने इससे मतभेद किया है। उसके अनुसार एक दीनार ८४ दाने के बराबर होता है। काजी अब्दुल हक[1] ने भी उसका यही कथन उद्धृत किया है, किन्तु शोधकों ने इब्ने हजम के मत का खंडन किया है और उसको गलत बताया है। वास्तव में शोधकों का मत ही ठीक है। यही ऊकिया के विषय में कहा जा सकता है। उसका वजन भी विभिन्न देशों में अलग-अलग है। उसका शरई वजन जो हम बता चुके हैं, सबको ज्ञात है। किसी का इसमें मत-भेद नहीं।

मुहर

यह भी शाही विशेषता एवं राज्य के चिह्नों में से एक है। इस्लाम के पूर्व एवं बाद में फरमानों पर मुहर लगाने की प्रथा प्रचलित रही। सहीहैन[2] में उल्लेख है कि जब मुहम्मद साहब ने क़ैसर[3] को पत्र लिखना निश्चित किया तो लोगों ने निवेदन किया कि अजमवाले उस पत्र को, जिस पर मुहर नहीं लगी होती, कोई महत्त्व नहीं देते। आपने चाँदी की अँगूठी तैयार करायी और उसमें "मुहम्मदुर्रसूलल्लाह"[4] खुदवाया। इमाम बुख़ारी का कथन है कि आपकी मुहर पर मुहम्मद, रसूल तथा अल्लाह के तीन शब्द अलग-अलग तीन पंक्तियों में खुदे थे, अतः आपने पत्र पर मुहर लगायी और साथ-साथ आदेश दे दिया कि कोई अन्य इस प्रकार की मुहर न बनवाये। इमाम बुखारी का यह भी कथन है कि हजरत अबू बक्र, हजरत उमर तथा हजरत उस्मान ने अपनी-अपनी खिलाफत के युग में इसी मुहर का प्रयोग किया। फिर हजरत उस्मान के हाथ से वह अरीस नामक कुएँ में गिर पड़ी। मुहर गिरने के समय यद्यपि कुएँ में जल कम था, किन्तु मुहर गिरने के बाद जल की थाह न मिल सकी। हजरत उस्मान को अँगूठी खो जाने का बड़ा शोक हुआ और आपने इस घटना को अपने राज्य हेतु एक अपशकुन समझा। फिर आपने उसी प्रकार की एक अन्य अँगूठी बनवा ली।

१. सम्भवतः अब्दुल हक़ बिन अब्दुर्रहमान अल-इशबीली, (५१०–५८१ हि०, १११६—११८५ ई०)।
२. सहीह मुस्लिम तथा सहीह बुख़ारी।
३. बैज़न्टाइन शाहंशाह।
४. हजरत मुहम्मद, ईश्वर के दूत।

मुहर की खुदाई तथा मुहर लगाने के कई नियम प्रचलित हैं। वास्तव में ख़ातम[१] उस वस्तु को कहते हैं जो अँगुली में पहनी जाती है। उससे भी मुहर लगायी जाती है। किसी वस्तु के उद्देश्य तथा अन्त को भी ख़ातम कहते हैं। इस प्रकार जब किसी कार्य को अन्त तक पहुँचा दिया जाय तो कहा जाता है "ख़तम्तुल अम्र"[२], "खतम्तुल क़ुरान"[३] भी इसी से है। "ख़ातमुन् नबीईन"[४] एवं "खातमुल अम्र"[५] का प्रयोग भी इसी अर्थ मे होता है। बरतनों एव मटकों के ढक्कन के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग होता है, किंतु उन्हे खिताम बोलते हैं। जिस प्रकार कुरान शरीफ मे है—"खितामुह मिस्कुन"[६]; इसकी टीका मे लोगो का मत है कि "खिताम का अर्थ अत एव समाप्ति है और भाव यह है कि स्वर्गीय मदिरा के अन्त मे कस्तूरी की सुगंधि मिलेगी" किन्तु यह मत ठीक नही, कारण कि यहाँ "ख़िताम" का अर्थ ढक्कन है। प्रथा यह है कि मदिरा को मटके मे भरकर मिट्टी इत्यादि से उसे बन्द कर दिया जाता है, ताकि उसमें सुगधि उत्पन्न हो जाय और वह स्वादिष्ठ भी हो जाय। इसी कारण ईश्वर ने स्वर्ग की मदिरा की प्रशसा की है और फ़रमाया है कि इसका ढक्कन भी कस्तूरी का बना होगा, न कि मिट्टी इत्यादि का। इस प्रकार जब "ख़ातम" का प्रयोग उपर्युक्त अर्थानुसार ठीक है तो नक़्शे ख़ातम में भी खातम का वही अर्थ होगा। इसका रूप यह होता है कि मुहर में वाक्य अथवा चिह्न खुदे होते हैं। जब उसको मिट्टी अथवा मसी से भिगाकर कागज के पृष्ठ पर रख दिया जाता है तो उसका चिह्न काग़ज के पृष्ठ पर उभर आता है। इसी प्रकार यदि उसको किसी भी नरम वस्तु,उदाहरणार्थ मोम इत्यादि पर रखकर दबाया जाता है तो उसके खुदे हुए अक्षर नरम वस्तु पर उभर आते हैं।

मुहर के वाक्य जिस प्रकार खोदे जाते हैं उसके उलटे उभरते तथा पढ़े जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि वे मुहर पर दायें से बाये सीधे लिखे गये हैं तो इसके विपरीत बाये से दायें पढ़े जायँगे। यदि वे मुहर पर उलटे खोदे गये हैं तो सीधे पढ़े जायँगे। इस प्रकार खुदे हुए अक्षर कागज़ पर उतरने के उपरान्त अपनी मूल दशा के प्रतिकूल

१. मुहर।
२. मैंने कार्य को पूरा कर दिया।
३. मैंने पूरा कुरान पढ़ डाला।
४. नबियों में अन्तिम नबी।
५. मामले का अन्त।
६. कस्तूरी का ढक्कन अथवा डाट।

हो जाते हैं। यह भी सम्भव है कि काग़ज के पृष्ठ पर उभरे हुए चिह्नों के लिए ख़ातम शब्द का प्रयोग "अन्तिम" के अर्थ मे होता हो, कारण कि पत्र इसी चिह्न से प्रामाणिक माना जाता और स्वीकृत होता है। इस प्रकार इस चिह्न के बिना पत्र अधूरा एव स्वीकार न करने योग्य होता है।

कभी यह मुहर वाक्य के रूप में होती है, जो पत्र के प्रारम्भ अथवा अन्त में ईश्वर की स्तुति के रूप मे उद्धृत किया जाता है। अथवा उसमे बादशाह, अमीर या कातिब का नाम लिखा होता है, अथवा उसके कुछ गुणो का भी उल्लेख होता है। यह लेख भी पत्र को प्रामाणिक एवं स्वीकार करने योग्य बनाता है। इसको साधारण अर्थ मे चिह्न कहते हैं और "खतम" भी एवं "खातम आसिफ़ी," आसिफी चिह्न के अनुरूप होने के कारण। "ख़ातम काजी" का भी यही अर्थ है, जिसे वह वादी-प्रतिवादी के पास भेजता है। वह उसका चिह्न समझा जाता है अथवा वह लेख जिससे उसके आदेश जारी होने के योग्य होते हैं। "खातम सुल्तान" तथा "ख़ातमे खलीफा" का भी यही अर्थ है। इस प्रकार यह उनके आदेशों के पहचानने का एक चिह्न होता है।

जब हारूनुर्रशीद ने फ़जल के स्थान पर उसके भाई जाफर को अपना वजीर बनाना चाहा तो वह उसके पिता से कहने लगा—"पिताजी ! मै चाहता हूँ कि अपनी अँगूठी को सीधे हाथ से उलटे हाथ मे बदल लूँ।" यहाँ उसने अँगूठी अथवा मुहर से विजारत की ओर सकेत किया है, कारण कि पत्रों अथवा फरमानों पर हस्ताक्षर करना वजीर का ही कर्त्तव्य था। उस युग मे यही प्रथा थी। इस तथ्य का प्रमाण उस ऐतिहासिक घटना से भी मिलता है जिसको तबरी ने उद्धृत किया है कि मुआविया ने हजरत हसन को सधि हेतु राजी कर लेने के उपरान्त सादे कागज के अन्त पर मुहर लगाकर भेज दिया और यह लिख दिया कि "आप मेरे इस मुहर के पत्र पर जो शर्त चाहे लिख भेजे, वह स्वीकार की जायगी।" यहाँ मुहर लगाने का तात्पर्य पत्र के लेख के अन्त पर हस्ताक्षर कर देना है।

यह भी संभव है कि किसी नरम वस्तु पर मुहर लगायी जाती हो और वह जब उस पर उभर आती हो तो पत्र को लपेटकर सुरक्षित स्थान में रख दिया जाता हो। ख़त्म का प्रयोग यहॉ ढक्कन अथवा डाट के अर्थ में किया जाता है। दोनों दशाओं मे तात्पर्य मुहर से ही है।

पत्रों पर मुहर लगाने की प्रथा सर्वप्रथम मुआविया ने निकाली, कारण कि जब उन्होंने ज़ियाद के नाम जो, उस समय कूफ़े मे था, आदेश भेजा कि अमर बिन अज़्

जुबैर को एक लाख दिरहम दे दिये जायँ, तो बीच में पत्र को खोलकर एक लाख के दो लाख बना दिये गये। जब जियाद की ओर से हिसाब प्रस्तुत किया गया, तब मुआविया के समक्ष दो लाख की धन-राशि आयी। मुआविया ने उसे स्वीकार न किया और अमर से शेष एक लाख की रकम माँगी और उसको बन्दी बना दिया। अन्त मे उसके भाई अब्दुल्लाह ने इस माँग को पूरा किया। इस घटना के उपरान्त मुआविया ने मुहर का दीवान स्थापित किया। यह कहानी तबरी ने उद्धृत की है और लिखा है कि पत्र को डोरी से बाँधकर उस पर मुहर लगाने की प्रथा उसी समय से चली। इससे पूर्व पत्र बाँधे नही जाते थे।

मुहर के दीवान कुछ सचिव होते है, जिनके जिम्मे शाही पत्रों का जारी करना और उन पर मुहर लगाना है, चाहे उनको लपेटकर उन पर मुहर लगायी जाय चाहे अन्य प्रकार से। कभी-कभी सचिवों के बैठने के स्थान अथवा कार्यालय को भी दीवान कहते हैं। इसका उल्लेख हमने दीवाने आमाल के सम्बन्ध मे किया है।

फिर पत्रों को बन्द करने के भी दो नियम है। कभी पत्रों मे छेद करके तागे से बाँध दिया जाता है, जैसी कि मगरिब में प्रथा है, और कभी पत्र के अन्तिम भाग को लपेटकर उसे चिपका देते है। पूर्ववालों के यहाँ यही प्रथा है। बाँधने अथवा चिपकाने के स्थान पर हस्ताक्षर बना देते है, जिससे पत्र को खोलकर पढ़ लेने का भय जाता रहता है। मगरिबवाले बाँधने के स्थान पर थोड़ा-सा चपड़ा लगाकर उस पर मुहर लगा देते हैं। पूर्व मे भी सर्वदा से यही प्रथा है कि पत्र की अतिम लपेट पर पत्र को चिपकाने के उपरान्त उस पर मुहर लगा दी जाती है। मुहर एक प्रकार की लाल मिट्टी पर लगायी जाती है जिसका प्रयोग विशेष रूप से इसी कार्य के लिए होता है। अब्बासियो के राज्यकाल मे इसे मुहर के काम मे आनेवाली मिट्टी कहते थे। यह सीराफ़[1] से लायी जाती थी। पता चलता है कि यह मिट्टी वही मिला करती थी। संक्षेप मे मुहर का उत्तरदायित्व चाहे पत्र के चिह्न से सम्बंधित हो और चाहे चिह्न बनाये हुए ढक्कन अथवा लिफ़ाफ़े मे बन्द पत्र से, वह दीवानुर्रसाएल के अधीन है। अब्बासियों के राज्यकाल मे यह कार्य वजीर की देखरेख में होता था। फिर जब इस प्रथा मे परिवर्तन हुआ तो यह कार्य प्रत्येक उस व्यक्ति को मिलने लगा, जिसकी देखरेख में पत्र-व्यवहार का विभाग एवं दीवाने किताबत[2] होता था।

१. दक्षिणी मेसोपोटामिया से कर में मुहर की मिट्टी भी ली जाती थी।
२. सचिवों का विभाग।

इसके उपरान्त मग़रिब मे मुहर बादशाह का विशेष चिह्न समझी जाने लगी, जिसे बादशाह अपनी अँगुली मे पहनता था। यह सोने की होती थी और इस पर याक़ूत अथवा फ़ीरोज़ा या जमर्रुद इत्यादि का नग जड़ा होता था। बादशाह इसको अपना विशेष चिह्न समझकर पहनता था। इसे सुल्तान के विशेष चिह्नों मे उसी प्रकार समझा जाता था जिस प्रकार अब्बासियो के राज्यकाल मे मुहम्मद साहब की कबा एवं लाठी और उबैदीईन के राज्यकाल मे छत्र को।

तिराज़

इसे भी शाही ऐश्वर्य एवं गौरव का विशेष द्योतक समझा जाता है। इसके विषय मे सल्तनतो की यह प्रथा चलती रही है कि या तो सुल्तानों के नाम इस पर बिनावट मे काढ़े जाते है, अथवा कोई अन्य चिह्न, जो केवल सुल्तान तक सीमित होता है, उस पर बनाया जाता है। यह शुद्ध रेशम अथवा अन्य प्रकार के रेशमों का होता है। इसके ताने-बाने मे ही कलाबत्तू से लिखाई की जाती है। यदि कलाबत्तू से कार्य नही लिया जाता तो किसी अन्य रगीन धागे का प्रयोग किया जाता है, जो वस्त्र के रंग से भिन्न रग का होता है। संक्षेप मे कारीगर बिनावट की दृष्टि से जो उपाय उचित समझते हैं, उसी का प्रयोग करते हैं। इस शानदार कढ़ाई से वस्त्र इस योग्य बनता है कि शाही पोशाक बनकर सुल्तान के ऐश्वर्य एव वैभव तथा गौरव मे वृद्धि करे। कभी यह कपडा उस व्यक्ति के सम्मान को चार चाँद लगा देना है, जिसको बादशाह विशेष ख़िलअत द्वारा सम्मानित करता है, अथवा जिसको किसी विशेष उच्च पद द्वारा सम्मानित करके शाहाना पोशाक प्रदान करता है।

इस्लाम के पूर्व अजम की सल्तनतों मे यह प्रथा थी कि इस वस्त्र पर बादशाहों के चित्र अथवा अन्य चित्र, जो राज्य की ओर से निश्चित होते थे, काढ़े अथवा बुने जाते थे। जब इस्लाम आया तो इस्लामी सुल्तानों ने चित्रों का प्रयोग बन्द कर दिया और वस्त्रो पर अपने नाम तथा अन्य वाक्य, जिनको वे अपने लिए शुभ समझते थे, तुगरा लिपि मे लिखवाने लगे। इस प्रकार बनी उमय्या तथा अब्बासियों के राज्य-काल में इसे बड़े गर्व का विषय समझा जाता था। इस प्रकार के वस्त्र के बुनने के लिए शाही राजप्रासाद मे एक कारख़ाना स्थापित होता था जिसको वे "दारुत्तराज़" अथवा कपड़ा बुनने का कारखाना कहते थे। इसके लिए एक अधिकारी नियुक्त होता था जिसे वे "साहिबुत्तराज" कहते थे। उसका कर्त्तव्य रँगाई तथा बुनाई के कारीगरों की देखभाल होता था। वह उनके वेतन एव मजदूरी का वितरण करता यत्रों को उपलब्ध करने तथा कार्यो को सुगमतापूर्वक चलाने मे सुविधा पैदा करत

था। कारखाने के अधिकारी का पद राज्य के किसी बहुत बड़े सम्मानित व्यक्ति को दिया जाता, अथवा किसी विशेष शाही दास को प्रदान होता था। उन्दुलुस मे बनी उमय्या की सल्तनत एव उसके उपरान्त मुलूकुत्तवाएफ़ मे यही प्रथा रही। मिस्र मे उबैदीईन के राज्यकाल अथवा उनके समकालीन पूर्वी अजम के बादशाहों के यहाँ यही प्रथा रही, किन्तु जब बड़ी-बड़ी सल्तनतों की शक्ति टुकड़े-टुकड़े हो गयी और वे विभिन्न भागो मे विभाजित होकर बनावट एवं आडम्बर को भूल गयी तो सल्तनतों में न तो ये कारखाने ही शेष रहे और न इनके अधिकारी।

इसके उपरान्त मुवह्हेदीन ने मगरिब में बनी उमय्या के स्थान पर शासन की बागडोर सँभाली तब छठी शताब्दी हि०[1] का प्रारम्भ ही था। उन्होने भी प्रारम्भ मे ऐसे कारखानों की ओर कोई ध्यान नही दिया, कारण कि वे उस समय सरल एवं धार्मिक जीवन के आदी थे, जिसको उन्होने अपने इमाम मुहम्मद तूमर्त-अल-महदी से उत्तराधिकार मे पाया था। अत. वे लोग रेशम के एव सुनहरे वस्त्र धारण करने से बचते रहते और उनके यहाँ तिराज नामक पद का अस्तित्व ही न था। उनके बाद की आनेवाली सतानों ने ऐसे कारखानो की ओर कुछ ध्यान दिया, किन्तु प्राचीन सल्तनतों के स्तर तक वह भी न पहुँच सकी और हमारे इस युग मे मरीनियों के राज्य ने अपनी युवावस्था को प्राप्त होकर तिराज के कारखानो को धूम-धाम से प्रारम्भ किया है। इसमें उन्होंने अपने समकालीन राज्य इब्ने-अल-अह्मर का, जो उन्दुलुस मे स्थापित है, अनुकरण किया। उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ ने भी उन्ही का अनुगमन किया।

समकालीन मिस्र एव शाम के तुर्कों के राज्य मे प्रत्येक राज्य अपने महत्त्व के अनुसार तिराज की उन्नति करता है, किन्तु उनके यहाँ तिराज का कारखाना राजप्रासाद मे नही स्थापित होता और न उसके अधिकारी का पद सल्तनत के पदो में सम्मिलित है, अपितु जब कभी सल्तनत को "तिराज" की आवश्यकता पड़ती है तो रेशम अथवा कलाबत्तू का काम करनेवाले कारीगरो को बुलवाकर उनसे काम ले लिया जाता है। इसका नाम उनके यहाँ "जरकश" है, जो कि फारसी भाषा का शब्द है। कारीगर बड़ी कुशलता एव सुन्दरता से सुल्तान एव अमीर का नाम काढ़ अथवा बुन देते हैं।

ख़ेमागाह एवं ख़रगाह

रेशमी, ऊनी तथा सूती खेमे एवं खरगाह[2] भी सल्तनत के ऐसे विशेष चिह्न है जो उसकी समृद्धि के द्योतक है। बादशाह उनको यात्राओ मे अपने साथ रखते

१. १२वीं शताब्दी ईसवी। २. बड़े ख़ेमे।

है और उनमें नये आविष्कारों का समावेश कराते रहते है। ये रंग-बिरंगे भी होते है और छोटे-बड़े भी। सक्षेप मे सल्तनत की समृद्धि एव पतन से इनका गहरा सम्बन्ध होता है। सल्तनत जब प्रारम्भ में अपने कदम जमाती है तो प्रभुत्ववाली क़ौमे शुरू मे वैसे ही खेमों मे रहती-बसती है, जिनमे वे पहले से रहती आयी है। इस प्रकार अरब खलीफ़ा, बनी उमय्या के प्रारम्भिक राज्यकाल तक अपने प्राचीन ऊनी खेमों में निवास करते रहे, अपितु इस समय तक भी रेगिस्तानों मे निवास करनेवाले अरब कुछ लोगों को छोड़कर ऊनी खेमो में ही जीवन व्यतीत करते थे, जिस प्रकार आज भी अरबो में यह प्रथा है। प्राचीन काल में भी अरब जब युद्धो के लिए कूच करते तो अपने परिवार एव कुटुम्ब तथा क़बीले सबको साथ लेकर निकलते। इसीलिए वे जब कही पडाव करते तो दूर-दूर तक फैल जाते थे। एक-दूसरे से काफी दूर होकर उतरते, यहाँ तक कि कभी-कभी एक कबीले का पड़ाव दूसरे कबीले की दृष्टि से ओझल हो जाता था। अब्दुल मलिक के प्रारम्भिक राज्यकाल मे भी पडाव की यही प्रथा अरब में प्रचलित थी। फिर जब रौह बिन जिम्बा[1] के खेमे व डेरे जल जाने की दुर्घटना घटी तो उसी के परामर्श से साका[2] की नियुक्ति हुई। साका वह सैनिक दस्ता होता था जो सबको एकत्र करके बादशाह के सामने कर देता और बादशाह के प्रस्थान की सबको सूचना देता रहता था। अब्दुल मलिक ने साका की सरदारी के लिए हज्जाज को नियुक्त किया।

खेमे जल जाने की दुर्घटना इस प्रकार घटी कि अब्दुल मलिक ने यात्रा मे एक स्थान पर पडाव किया। कबीले प्रथानुसार ऐसे बिखरकर ठहरे कि एक-दूसरे की दृष्टि से ओझल हो गये। प्रात.काल अब्दुल मलिक ने कूच किया, किन्तु रौह बिन जिम्बा को दूरी के कारण अब्दुल मलिक के प्रस्थान का पता न लग सका और वह अपने कबीले के साथ शान्तिपूर्वक ठहरा रहा। दुष्टों ने अवसर पाकर आक्रमण कर दिया और रौह बिन जिम्बा के शिविर जला डाले। इस दुर्घटना के उपरान्त रौह ने अब्दुल मलिक को परामर्श दिया कि जब तक साका न नियुक्त होगा, इस प्रकार की कठिनाइयाँ नित्य-प्रति सहन करनी पड़ेगी। अब्दुल मलिक ने परामर्श को पसन्द किया और साक़ा नियुक्त करके हज्जाज को उसका अफसर बनाया।

१. रौह अब्दुल मलिक का मुख्य परामर्शदाता बताया जाता है। उसकी मृत्यु ८४ हि० (७०३ ई०) में हुई।
२. सेना के पीछे के भाग के रक्षक।

इस घटना से इस बात का भी पता चलता है कि हज्जाज को अरबो में कितना अधिक सम्मान प्राप्त था, कारण कि अरबों को यात्रा के लिए तैयार करना प्रतिभाशाली व्यक्ति का काम है और उसका, जिसको "असबियत" की शक्ति प्राप्त होती हो, ताकि कबीले के दुष्ट लोग आज्ञा के जारी करने मे कोई रोक-टोक न कर सके। हज्जाज "असबियत" की शक्ति का स्वामी होने के कारण एक विशेष सम्मान का पात्र था। इसलिए अब्दुल मलिक ने उसका इस पद के लिए चुनाव किया।

जब अरब सल्तनत पर भी सभ्यता एव सस्कृति का रग चढ़ा और नगर-जीवन से वे अधिक प्रभावित हो गये तो उन्होंने जगलो एवं मैदानो को त्याग दिया और नगरो एव कसबो को अपना निवासस्थान बनाया। वे ख़ेमो मे रहना-बसना त्यागने लगे और राजप्रासादो मे निवास करने के आदी हुए, ऊँटो की सवारी छोड़ी और घोड़ो के शहसवार बने। इस प्रकार के परिवर्तन के कारण उनकी यात्रा के ढग मे भी परिवर्तन होने लगा। अब वे लोग ऊन इत्यादि के खेमों के स्थान पर रेशमी खेमे यात्रा मे रखने लगे। वे उनसे विभिन्न प्रकार के घर तैयार कर लेते थे। खेमे गोल भी होते थे और लम्बे अथवा चौकोर भी। उन्ही खेमो मे वे शानदार एवं आश्चर्यचकित कर देनेवाली सभाएँ करते थे। अमीर तथा सेनापति का खेमा सज्जा मे अद्वितीय होता था। इन खेमो को मगरिब के बरबर अपनी भाषा मे अफराग[१] कहते थे। मगरिब मे अफराग केवल बादशाहो तक ही सीमित होते थे, और किसी को उन्हे रखने का अधिकार न था। पूर्व मे नि सन्देह प्रत्येक अमीर अफराग रख सकता है, चाहे वह बादशाह से कितना ही कम क्यों न हो।

नगर के जीवन के प्रभुत्व के कारण अरबो मे जब आरामपसन्दी की भावनाएँ उत्पन्न हुई तो युद्ध हेतु प्रस्थान करते समय स्त्रियो एव बालको को महलो एव राजप्रासादो में छोड़ने की प्रथा निकली। इससे वे यात्रा में हलके-फुलके भी हो गये और पडाव मे एक-दूसरे के निकट ठहरने लगे, कारण कि अब परदे की कठिनाई का अन्त हो गया। बादशाह एव सेना एक ही स्थान पर पड़ाव करती और रग-बिरगे खेमो के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण एक अत्यन्त हृदयग्राही एव सुन्दर दृश्य दिखाई देता। फिर आगे चलकर सल्तनत जितनी ही उन्नत होती गयी उतने ही खेमो में सज्जा एव दिखावे के नये-नये उपाय निकाले जाने लगे। मुवह्हेदीन की भी यही दशा रही। वे अपने प्रारम्भिक राज्यकाल मे उन्ही खेमो को लेकर यात्रा

१. ऐसे ख़ेमे जो गोलाई में लगते हों।

किया करते थे, जिनमें वे राज्य की प्राप्ति के पूर्व रहा करते थे। जब वे समृद्धि एवं भोग-विलास के जीवन मे प्रविष्ट हुए एवं महलों तथा राज-प्रासादों की हवा खायी तो उन्होंने भी प्रदर्शन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। जिसकी वे कल्पना भी न कर सकते थे, उसे भी उन्होंने कर डाला। रण-क्षेत्र में सेना एक ही स्थान पर एकत्र होकर ठहरती है, ताकि एक ही आवाज में सब जाग जायँ। इसका यह भी कारण है कि इन्हे अपने परिवार की भी कोई चिन्ता नही होती। यदि परिवार भी साथ हो तो सेनावालों का प्राण त्यागना तो कठिन हो ही जाय, उसकी रक्षा हेतु उचित प्रबंध की अलग आवश्यकता हो।

नमाज़ के लिए मक़सूरह एवं ख़ुत्बे

यह दोनों चीजे खिलाफत एवं इस्लामी सल्तनत की विशेषताएँ है। गैर इस्लामी सल्तनतो मे इनका अस्तित्व नही मिलता। नमाज के मकसूरे का विवरण इस प्रकार है कि मेहराब पर एक ओट अथवा रोक स्थापित की जाती है जो बाजू के स्थान को घेर लेती है और एक कोठरी-सी बन जाती है। मुआविया[१] पर जब खारजी ने आक्रमण किया और उसका वार चूक गया, तब उन्होने इसका आविष्कार किया। कुछ लोगो का कथन है कि जब एक यमन-निवासी ने मरवान बिन हकम पर तलवार का वार किया, तब से उसने मकसूरह का आविष्कार किया।[२] सक्षेप में इन दोनों के उपरान्त इस्लामी खलीफाओं ने इस प्रथा को प्रचलित रखा। इस प्रकार बादशाह अन्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ बनकर खडा होता है।

यह सब शाहाना ठाट-बाट की बातें सल्तनतों मे साधारणत. उसी समय से प्रचलित होती है, जब सुल्तान लोग अपना प्रभुत्व बढाने के उपरान्त ऐश्वर्य एव गौरव की अभिलाषा करने लगते है। उन्हे जाहिरी आन-बान की इच्छा होने लगती है। फिर समस्त इस्लामी सल्तनतो में मकसूरह का यही रूप रहा। उदाहरणार्थ, अब्बासियो के राज्यकाल मे जब वे छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गये तब मकसूरह की यही प्रथा जारी रही। तदुपरान्त उबैदीईन ने और फिर उन आमिलों ने जो उबैदीईन

१. ख़ारजियों ने हज़रत अली, अमर बिन आस एवं मुआविया की ४० हि० (६६१ ई०) में एक साथ हत्या कर देने का षड्यन्त्र रचा था, जिसमें केवल हज़रत अली की हत्या हो सकी।
२. मरवान पर यमन-निवासी ने ४४ हि० (६६४–६५ ई०) में आक्रमण किया था।

की ओर से मगरिब पर आमिल हुए, अर्थात् सिनहाजा में से बनू बादीस ने क़ैरवान मे और बनू हम्माद ने क़लआ मे मकसूरे का यही रूप रखा। इसके बाद जब मुवह्हेदीन समस्त मगरिब एव उन्दुलुस पर छा गये तो उन्होने "बदवी" स्वभाव के कारण इस बनावट की प्रथा को समाप्त कर दिया। जब वे भी बनावट के आदी हो गये और उनका तीसरा बादशाह अबू याकूब मंसूर सिहासनारूढ हुआ तो उसने पुनः मकसूहा का निर्माण कराया। फिर मग़रिब एव उन्दुलुस के बादशाहों के यहाँ भी यही प्रथा चल निकली और अन्य इस्लामी सल्तनतो ने भी इसी को प्रचलित रखा।

मिम्बर[1] से ख़ुत्बे[2] की प्रार्थना

इसका ऐतिहासिक तथ्य यह है कि इस्लाम के प्रारम्भ मे खलीफा लोग स्वयं नमाज की इमामत किया करते थे। इन बुजुर्गो की यह प्रथा रही कि नमाज के उपरान्त मुहम्मद साहब पर दूरूद भेजते और सहाबा के लिए ईश्वर की सतुष्टि की प्रार्थना किया करते। अमर बिन आस ने ही सर्वप्रथम मिस्र मे जामा मस्जिद का निर्माण कराया और उसमे मिम्बर बनवाया। हजरत इब्ने अब्बास वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने खलीफ़ा के लिए मिम्बर पर प्रार्थना की। वे जब बसरे मे आमिल के पद पर नियुक्त थे तो उन्होने अपने खुत्बे मे हजरत अली के विषय मे इस प्रकार प्रार्थना की––"हे ईश्वर! सत्य के सम्बन्ध मे हजरत अली की सहायता कर।" फिर यही प्रथा चल पडी।

हजरत उमर को जब समाचार प्राप्त हुए कि अमर बिन आस ने मिम्बर का निर्माण कराया है तो आपने उनको लिखा कि "मुझको पता लगा है कि तुमने एक मिम्बर बना लिया है और इस प्रकार तुम अपनी गरदन मुसलमानो की गरदनों से ऊँची उठाते हो। क्या तुम्हारे लिए यह पर्याप्त न था कि तुम खुत्बे के समय खडे रहते और मुसलमान तुम्हारे चरणो मे बैठे होते। मै तुमको शपथ दिलाता हूँ, किन्तु तुम फिर भी मिम्बर को न तोड़ोगे।"

१. मस्जिद का मंच।
२. जुमा की नमाज़ एवं दोनों ईदों की नमाज़ के समय पढ़ा जानेवाला प्रवचन, जिसमें ईश्वर की वन्दना, मुहम्मद साहब, उनके घरवालों एवं सहायकों की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना के साथ समकालीन बादशाह की भी चर्चा होती है।

बाद में इस्लामी सल्तनत में बनावट अधिक बढ़ गयी और खलीफा लोगों ने कुछ रुकावटों के कारण नमाज़ एव खुत्बे मे सम्मिलित होना बन्द कर दिया। उन्होंने दोनों कामों के लिए अपने-अपने सहायक नियुक्त किये। खतीब[1], खुत्बे में समकालीन खलीफा का नाम आदरपूर्वक लेते और उसके लिए शुभकामनाएँ करते, कारण कि ईश्वर ने लोकहित का अधिकार उन्ही को प्रदान कर रखा है, और फिर प्रार्थना की स्वीकृति की ऐसे अवसर पर अधिक सम्भावना होती है। प्राचीन काल की प्रथाओं से यह भी सिद्ध होता है कि जो कोई शुभ कामना करे वह समकालीन सुल्तान के लिए ही करे। इस प्रकार खलीफ़ा ही अकेला शुभकामनाओं का पात्र समझा गया है। इसके उपरान्त जब बादशाहों के अधिकार छिन गये और अपहरण-कर्त्ताओं ने अधिकार का अपहरण कर लिया, तब खलीफा के बाद उनके नाम भी जोड़े जाने लगे और उन्हे भी शुभकामनाओ की प्रार्थना में सम्मिलित किया जाने लगा। जब खिलाफत पूर्णतः समाप्त हो गयी तो फिर मिम्बरों पर केवल सुल्तानो के लिए ही प्रार्थना की जाने लगी और किसी अन्य का नाम लेना उचित न समझा गया।

जब तक सल्तनत सरलता एव बदवियत के युग से गुजरती है और दिखावट एवं आडम्बर की ओर से उपेक्षा होती रहती है, तो देशवाले सूक्ष्म रूप से बिना नाम अथवा बिना किसी व्यक्ति की चर्चा के मुसलमानों के वाली के लिए खुत्बों में शुभ कामनाएँ करते है और उसको अब्बासिया खुत्बा कहा जाता है। कारण कि पहले सूक्ष्म शुभकामना अब्बासी खलीफाओं के विषय में ही की जाती थी और नाम लिए अथवा नाम निर्धारित किये बिना खुत्बों में उन्ही की प्रशसा एव उन्ही के लिए शुभ कामनाएँ की जाती थी। कहा जाता है कि जब अबू जकरिया यहया बिन अबी हफस ने अब्दुल वाद वंश के सस्थापक यग़मरासिन बिन जय्यान से तलमसान का राज्य छीन लिया, तो उसने चाहा कि यगमरासिन को तलमसान का राज्य पुनः सौंपे, तो उसने कुछ शर्ते लगायी। उनमे से एक शर्त यह थी कि उसके राज्य मे खुत्बे मे अबू जकरिया का नाम लिया जाय। यगमरासिन ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ मिम्बर लकड़ी के ऐसे टुकडे समझे जाते है जिन पर जिसका नाम चाहते है, ले लेते है। इस पर कोई प्रतिबध नही।

इसी प्रकार बनी मरीन राज्य के संस्थापक याक़ूब बिन अब्दुल हक़ के पास जब तूनुस (ट्यूनिस) से खलीफ़ा मुस्तसिर का, जो बनी अबी हफस का तीसरा ख़लीफ़ा हुआ है,

१. खुत्बा पढ़नेवाला।

राजदूत आया तो अपने निवास-काल में एक बार जुमे की नमाज में देर से सम्मिलित हुआ। याकूब तक यह सूचना पहुँचायी गयी कि यतः राजदूत के खलीफ़ा का नाम खुत्बे में नही पढ़ा जाता, इसलिए वह जुमे की नमाज में सम्मिलित नही हुआ। याकूब ने आदेश दिया कि खुत्बे मे खलीफा मुस्तंसिर के लिए शुभकामना की जाय। इस प्रकार उस समय से बनी मरीन मुस्तंसिर के प्रचारक बने।

सक्षेप मे सल्तनतें जब तक सरलता एव "बदवियत" का वस्त्र धारण किये रहती है, दिखावे की बातो को भूली रहती है और जब देश की राजनीति पर नयी-नयी बाते अपना प्रभाव डालने लगती है, तो देशवासी देश की उन्नति एव समृद्धि पर ग़ौर करते है और उसकी सभ्यता, सस्कृति तथा गौरव को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा देते है। एसी बातों को देश मे प्रचलित करते है जिनसे भेद-भाव बढाया जा सके। इनसे आविष्कार एवं ईजाद का काम लेते है और फिर उनको उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा देते है। यदि राज्य में यह बातें न हों तो इनके अभाव के कारण व्याकुल एव दुखी रहते है एवं उनके प्रचलन का अनथक प्रयत्न करते है।

(३७) युद्ध एवं विभिन्न क़ौमों के युद्ध के ढंग, पंक्तियों की सुव्यवस्था के नियम

सृष्टि की रचना से लेकर आज तक मनुष्यो मे युद्ध, सग्राम एवं रक्तपात होता रहा है। इसमें प्रतिकार की भावनाओं का हाथ होता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से बदला लेना चाहता है। हर "असबियत" वाला अपनी "असबियत" के प्रति पक्षपात प्रदर्शित करता है। जब दोनो शक्तियाँ एक-दूसरे के मुकाबले में आती है तो एक बदले की भावना लेकर उठती है और दूसरी प्रतिरक्षा की भावना लेकर युद्ध के लिए आती है। इस प्रकार लड़ाई ठन जाती है। संक्षेप मे युद्ध मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक बात है, जिससे कोई कौम अथवा कबीला बच नही सकता। वास्तव मे प्रतिकार की भावनाओं के, जो युद्ध की जड़ है, अधिकांश चार कारण होते हैं; मर्यादा एव अहंभाव, शत्रुता, ईश्वर के लिए और धर्म की रक्षा हेतु उत्साह एवं क्रोध का प्रदर्शन, राजनीतिक उद्देश्यों एवं सल्तनत की प्राप्ति के सम्बन्ध में क्रोध की भावनाओं का भड़क जाना। प्रथम बात पास-पास के कबीलो तथा वशो में युद्ध का कारण बनती है। दूसरी बात उन वहशी क़ौमों में युद्ध एवं रक्तपात का कारण बनती है जो जंगलों एवं बियाबानों में मारी-मारी फिरा करती है। उदाहरणार्थ, अरब, तुर्क, तुर्कमान कुर्द अथवा उन सरीखी अन्य क़ौमें, कारण कि ये भाले की नोक

से अपना जीविका प्राप्त करती है। अन्य लोगों के हाथों में जो कुछ ह उसे ये अपनी जीविका का साधन समझती है। जो अपनी सम्पत्ति को इनके हाथ से बचाते है उनसे युद्ध करने पर उद्यत रहती है। इन विचारो के अतिरिक्त इनका कोई अन्य लक्ष्य नही होता। इन्हें किसी राज्य पर अधिकार जमाने की इच्छा नहीं होती। इनका पूरा ध्यान इसी ओर आकृष्ट रहता है और इनका दृष्टिकोण सर्वदा यही होता है कि किसी प्रकार अन्य लोगों के हाथ से धन-सम्पत्ति छीनी अथवा ऐंठी जाय। तीसरी बात को हम जेहाद कहते है। चौथी बात उन युद्धों का कारण है जो विद्रोहियो एव उपद्रवियों के साथ किया जाता है। इस प्रकार ये युद्ध की चार किस्में हुई। इनमे से प्रथम दो विद्रोह एव उपद्रव के युद्ध कहे जाते है और बाद के दो युद्धो को जेहाद एव न्याय के युद्ध कहते है।

सृष्टि की रचना के पूर्व से मनुष्यों मे युद्ध के दो नियम प्रचलित है। एक वह युद्ध जिसमें नियमित रूप से पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके शत्रु पर आक्रमण अथवा चढाई हो। दूसरी वह जिसमें वीरों की टोलियाँ एक-एक करके शत्रुओं पर छापे मारे और फिर अपनी सेना में वापस लौट जायें। अजम प्रथम प्रकार के युद्ध के आदी है और दूसरे प्रकार का युद्ध अरब अथवा बरबर लड़ा करते है। पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके जो युद्ध किया जाय वह अधिक भरोसे का युद्ध माना जाता है और शत्रु के लिए उस युद्ध की अपेक्षा, जिसमें बारी-बारी से अचानक छापे मारे जायें, अधिक विनाश-कारक होता है। कारण कि इसमें नमाज की पक्तियो के समान पक्तियाँ सुव्यवस्थित की जाती है और फिर पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके ही पूरी सेना आगे बढ़ती है। इस प्रकार प्रत्येक को वीरता के साथ युद्ध करना पडता है और प्रत्येक अपनी वीरता को भली-भाँति प्रदर्शित कर सकता है। पूरी सेना कदम जमाकर युद्ध करती है, जी भरकर युद्ध एव रक्तपात होता है और यह शत्रु के लिए भी अधिक खौफनाक सिद्ध होती है। सेना एक लम्बी दीवार है अथवा एक दृढ किले के समान अपने पाँव जमाये खड़ी रहती है, जिसे शत्रु अपने स्थान से नही हिला सकता। इस प्रकार क़ुरान शरीफ मे लिखा है कि "ईश्वर उन्हे निःसन्देह प्रिय समझता है जो उसके मार्ग मे पक्ति बाँधकर युद्ध करते है, मानो सीसा पिलायी हुई दीवार हो।"[1] हदीस मे लिखा है—"एक मोमिन दूसरे मोमिन के लिए एक दीवार के समान दृढ़ता का साधन होता है, जिस प्रकार दीवार का एक भाग दूसरे भाग को दृढ बनाता है, इसी प्रकार एक मोमिन

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

दूसरे मोमिन को अपने अस्तित्व से दृढ़ रखता है।" इसी तथ्य पर शरीअत का यह आदेश आधारित है कि "रण-क्षेत्र में दृढ़ता अनिवार्य है और पीठ दिखाकर भागना हराम है।" कारण कि पवितयों का उद्देश्य एक सुव्यवस्था स्थापित रखना है जो सैनिको के स्थान को छोड़ देने पर अस्तव्यस्त हो जाती है। अब जिस सैनिक ने शत्रु को पीठ दिखायी तो उसने मानो पक्तियो की व्यवस्था में विघ्न डाला और बड़ी गड़बड़ी पैदा की। यदि पराजय हो गयी तो यह पाप भी उसने अपने सिर पर लिया, अपितु कहा जा सकता है कि मानो उसने शत्रु को मुसलमानो के विरुद्ध साहस दिलाया, शत्रु की उन पर शक्ति बढायी और ऐसे उत्पात का कारण बना, जिसने धर्म को छिन्न-भिन्न कर दिया। इन्ही कारणो से इस कुकर्म को बहुत बड़ा पाप माना गया है और इसकी गणना गुनाहे कबीरा[1] मे होती है। इस वर्णन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि पक्ति बाँधकर युद्ध करना शरीअत की दृष्टि से शत्रु के लिए विनाश का साधन एवं घातक है।

जहाँ तक दूसरे प्रकार के युद्ध अर्थात् टोलियो के रूप में शत्रु पर छापे मारना और फिर अपनों मे पहुँचकर शरण लेने का सम्बन्ध है, वहाँ तक इसमे न शत्रु के लिए अधिक हानि है और न अपनी पराजय का भय। इसके विपरीत पहले प्रकार के युद्ध मे दोनो भय होते हैं। यद्यपि इसमे भी कुछ सेना पंक्तियाँ सुव्यवस्थित किये तैयार खडी रहती है कि छापा मारनेवाले खतरे की दशा मे उसकी ओर शरण के लिए पहुँच जाते हैं। यह पक्ति उनके लिए युद्ध के किले का काम देती है। इसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

प्राचीन बड़ी-बडी सल्तनतों में, जिनके पास सेना भी अधिक संख्या में होती थी और जिनका राज्य भी विस्तृत होता था, यह प्रथा प्रचलित थी कि रण-क्षेत्र मे वे अपनी सेना का कुछ भागो मे विभाजन कर देती थी। इसका कारण यह था कि सल्तनत मे सेना की सख्या जब बहुत बढ़ जाती थी और सेनाएँ दूर-दूर की दिशाओ से सिमटकर अगणित हो जाती थी, तो इस बात का बड़ा भय रहता था कि रण-क्षेत्र में एक स्थान पर एकत्र होकर आपस मे सब इस प्रकार न मिल-जुल जायँ कि एक-दूसरे को पहचान भी न सके और शत्रु के स्थान पर अपने साथियो की ही धोखे मे हत्या कर डाले। अत: इसी भय से बचने के उद्देश्य से सेना को कई भागों में विभाजित कर दिया जाता था और ऐसी व्यवस्था की जाती थी कि उसका प्रत्येक दस्ता अपने साथी दस्ते

१. घोर पाप।

को पहचानता रहे। चार दिशाओं के अनुसार सेना को चार बड़े-बड़े भागों में विभाजित कर दिया जाता था और सेना का सरदार, सुल्तान अथवा सेनापति सेना के मध्य मे स्थान ग्रहण करता था। इस व्यवस्था को वे "ताबेआ" व्यवस्था कहते थे। फ़ारस, रूम, इस्लाम के प्रारम्भिक काल एव बनी उमय्या तथा बनी अब्बास की सल्तनतों मे यही प्रथा प्रचलित थी। सेना का स्थायी भाग अलग कर दिया जाता था, जो बादशाह के समक्ष पक्तियाँ जमाकर खड़ा होता था। इसका एक सरदार होता था और एक पताका। इसमे अन्य विशेषताएँ भी पायी जाती थी। सेना के इस भाग को मुकद्दमा[1] कहा जाता था। फिर बादशाह की दायी एव बायी ओर भी सेना के दस्ते होते थे जिनको मैमना[2] तथा मैसरा[3] कहते थे। बादशाह के पीछे भी सेना का एक भाग होता था जिसको साका[4] कहते थे। बादशाह तथा उसके साथी सेना के उपर्युक्त चारों भागो के मध्य मे अपना स्थान ग्रहण करते थे और उनके स्थान को क़ल्ब[5] कहा जाता था।

जब दोनो ओर से यह व्यवस्था पूर्ण हो जाती और जहाँ तक दृष्टि जाती, सेना जमी खड़ी होती, अथवा इतनी दूर तक सेना को जमाना पड़ता कि दोनो सेनाओं के मध्य मे एक अथवा दो दिन चलने तक की दूरी होती, तो सेना की सख्या की कमी अथवा अधिकता को देखते हुए युद्ध प्रारम्भ किया जाता। यह सब बाते इस्लामी विजयो के विवरणों मे वर्णित मिलेगी, अथवा बनी उमय्या एवं बनी अब्बास की सल्तनतो के इतिहास मे इनका पता चलेगा। उनसे यह भी पता चल जायगा कि अब्दुल मलिक के समय मे "ताबेआ" व्यवस्था के दूर-दूर तक फैले होने के कारण सेना के कुछ भाग बादशाह की कूच से अनभिज्ञ रहकर पीछे ही रह जाते थे, अत. साका के नाम से सेना का एक पीछे का भाग नियुक्त किया गया, जो पूरी सेना को बादशाह की कूच की सूचना देकर उसको बादशाह के साथ रवाना करता था। उसका सरदार सर्वप्रथम हज्जाज बिन यूसुफ को, जैसा कि उल्लेख हो चुका, नियुक्त किया गया। उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल मे भी यही प्रथा थी, किन्तु इनका कोई सविस्तर उल्लेख हमारे पास नही, कारण कि हमने तो उन्ही सल्तनतों का युग देखा है जिनकी सेनाएँ इतनी

१. अग्र भाग।
२. सेना का दायाँ भाग।
३. सेना का बायाँ भाग।
४. सेना का पीछे का भाग।
५. सेना का मध्य भाग।

कम होती है कि उनमें एक दूसरे को न पहचानने का भय ही नही उत्पन्न होता। अपितु हम देखते है कि दोनो सेनाएँ एक स्थान तथा एक नगर मे उतर जाती है और प्रत्येक अपने सामनेवाले को जानता-पहचानता रहता है और उसके नाम एव उपाधि से रण-क्षेत्र मे उसको पुकार लेता है, तो इस दशा मे "ताबेआ" व्यवस्था की आवश्यकता क्यों पड़ने लगी।

छापेवाले युद्ध मे सेना के पीछे कोई दृढ़ रोक एवं पशुओ की एक पक्ति रखी जाती है और उसको आक्रमणकारियो के आगे बढने अथवा पीछे हटने के समय शरण का साधन बनाया जाता है। इस उपाय से युद्ध अधिक देर तक चलाया जा सकता है और शत्रु पर प्रभुत्व प्राप्त करने की भी उसमें अधिक सम्भावना होती है। जो लोग पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते है, वे भी कभी-कभी दृढ़ता एव एक स्थान पर जमे रहने की दृष्टि से इसी उपाय का पालन करते है और सेना के पीछे पशुओं की एक पक्ति खड़ी कर लेते है। फ़ारस वालो के विषय में कहा जाता है कि यद्यपि वे पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते थे, किन्तु फिर भी अपने साथ हाथियो की पक्ति रखते थे, इन हाथियो पर लकड़ी के हौदे होते थे। प्रत्येक हौदे मे वीर सवार रहते थे और हथियार तथा साज व सामान उन पर लदा होता था। सेना की पताकाएँ भी इन्ही पर होती थी। फिर इन हाथियो को पक्ति के रूप मे सेना के पीछे जमाकर उनको अपनी रक्षा हेतु एक सुरक्षित किला समझा जाता था। इस उपाय से उनके दिलों को पर्याप्त ढाँढस रहता था और उनका साहस बढ़ जाता था।

कादिसिया के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलेगा कि युद्ध के तीसरे दिन जब ईरानी, मुसलमानो पर टूट पड़े और उधर से मुसलमान वीर भी उन पर झपटे और एक-दूसरे के साथ पूर्ण-रूप से गुँथ गये तो मुसलमानो ने तलवार से हाथियो की सूँडे काटनी प्रारम्भ कर दी। हाथी भड़ककर उलटे पाँव भागने लगे और सीधे मदाएन की ओर चल दिये। ईरानी सेना के छक्के छूट गये और अन्त मे चौथे दिन वह बुरी तरह पराजित हो गयी।

उन्दुलुस के कोत एव रूम के सुल्तान तथा अधिकांश अजमी कौमे सिहासनो से यह काम लेती है। बादशाह का सिहासन रणक्षेत्र मे बिछाया जाता है। उसके सेवक, परिजन एवं उस पर प्राण त्यागनेवालो के दस्ते उसके राज-सिहासन को चारो ओर से घेर लेते है। सिहासन के आस-पास पताकाएँ लगायी जाती है। फिर उसके इधर-उधर धनुर्धारियों की एक पक्ति तथा पैदल सेना खड़ी की जाती है। इस प्रकार राज-सिहासन सुरक्षित भी रहता है और वीरो के लिए रक्षा का एक उत्तम स्थान बन जाता

है। क़ादिसिया के युद्ध में भी फारसवालो ने ऐसा ही किया था । रुस्तम को एक राज-सिहासन पर आरूढ किया गया था । जब उनकी सेना में भगदड़ मची और अरब उनकी सेना के मध्य मे घुसकर उसके सिहासन तक पहुँच गये तो रुस्तम फ़ुरात की ओर भाग निकला, किन्तु मार्ग में ही मौत के घाट उतार दिया गया ।

अरब तथा अन्य "बदवी" क़ौमे, जो दूसरे प्रकार के युद्ध की आदी है, अपनी सेना के पीछे ऊँटों की पक्तियाँ खडी करती है, जिनके कजावों[1] मे उनके परिवारवाले होते है। यह पक्ति उनके लिए रक्षा का काम देती है और वे इसको "मजबूदह" कहते है। सक्षेप मे प्रत्येक कौम युद्ध मे इसी उपाय का पालन करती है और इसे युद्ध के दाव-घात के लिए एक भरोसे की चीज समझती है और पराजय से रक्षा हेतु शान्ति का चिह्न जानती है। फिर यह कोई काल्पनिक चीज नही, अपितु रात-दिन की प्रयोग में आयी हुई और देखी-भाली चीज है। हमारे युग की सल्तनते इस ओर से उपेक्षा कर रही हैं। वे लद्दू जानवर और खेमों से सेना का साका तैयार करती है जो हाथी एवं ऊँट के साका का कदापि काम नही दे सकते। इसी कारण सेनाएँ पराजित हो जाती है और रण-क्षेत्र से भाग खड़ी होती है। इस्लाम के प्रारम्भ मे पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध होता था, यद्यपि अरब छापामार युद्ध के ही आदी थे। केवल दो कारणो से अरबो ने अपना नियम एवं ढग बदल दिया था। एक तो इसलिए कि उनके शत्रु भी इसी प्रकार के युद्ध के आदी थे, अतः विवश होकर वे भी इसी प्रकार युद्ध करने लगे। दूसरा कारण यह था कि उनके धार्मिक विश्वास एव धैर्य ने उनको सचाई सिखायी थी, जो इसी प्रकार के युद्ध मे प्राप्त हो सकती थी।

सर्वप्रथम पक्तियो को सुव्यवस्थित करके युद्ध करना त्यागकर ताबेआ का युद्ध मरवान बिन हकम ने प्रारम्भ किया। उसने जह्हाक खारजी तथा खैबरी से इस विधि से युद्ध किया था। तबरी लिखता है कि जब खबरी की पराजय के समाचार प्रसिद्ध हुए और खारजियो ने शैबान बिन अब्दुल अजीज अल यशकूरी को, जिसकी उपाधि अबुद् दलफा थी, अपना सेनापति बनाया और मरवान ने खारजियों के मुकाबले में पाँव जमाये, तो उसी दिन से उसने पक्तियों के युद्ध को त्यागकर "ताबेआ" की व्यवस्था प्रारम्भ करायी। फिर जब इस्लामी सल्तनते समृद्ध एव सुखी हो गयी तो सेना के पीछे रक्षा के दस्ते रखने की प्रथा भी समाप्त हो गयी। जब तक सल्तनत पर "बदवियत" का रग चढ़ा रहा और लोग खेमो मे जीवन व्यतीत करते रहे, तब उनके

१. ऊँट का हौदा।

पास ऊँट बड़ी अधिक संख्या म होते थे और यात्राओं मे वे अपने ऊँटों पर अपने परिवार को साथ रखने के आदी थे। जब "बदवियत" का युग समाप्त हुआ और लोग शहरी जीवन एवं राजप्रासादों तथा महलो के निवास के आदी हुए तो यात्राओं में अकेले निकलने लगे। स्त्रियो एव परिवार वालों को घर पर ही छोड़ने लगे। समृद्धि ने उनको सुन्दर ख़ेमे-डेरे रखने का आदी बना दिया। वे युद्ध में जाते तो केवल बोझ ढोने के पशुओ को अपने साथ ले जाते, जो उनके खेमे-डेरे इत्यादि भी उठाते थे एवं अन्य सामान भी। किन्तु युद्ध का यह नवीन ढग युद्ध के प्राचीन ढंग की अपेक्षा कुछ अधिक लाभदायक सिद्ध न हुआ, कारण कि इस प्रकार सेनावाले जान तोडकर युद्ध नही करते एवं वीरता तथा पौरुष प्रदर्शित करते हुए शत्रु के मुकाबले मे न जमते थे। साधारण-सी बात मे उनके पॉव उखड़ जाते थे और उनकी पक्तियाँ टूट जाती थी।

इस बात को ध्यान में रखते हुए छापा-मार युद्ध करनेवाले अपने पीछे प्रतिरक्षा के दस्ते खड़े करते है। मगरिब के बादशाह जो छापा-मार युद्ध लड़ने के आदी है, फिरगियो का एक रक्षक दल अवश्य अपनी सेना के पीछे रखते है, ताकि सामने की लडाई लड़नेवालो के लिए वे रक्षक बन सके। उन्होने फिरगियो को पीछे के दस्ते के लिए इस आशय से छॉटा कि वे लोग पक्तियॉ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते है। इस उद्देश्य हेतु ऐसी ही कौम के लोग चुने जाते थे जिनके कारण आगे की सेना की पीठ दृढ रहे। यदि कही ऐसी क़ौम के लोग इसमे भरती कर लिये जायें जो छापा मार युद्ध के आदी है, तो अपनी आदत के अनुसार जरा-से दबाव मे पीछे के दस्ते के लोग भी अपना स्थान छोड भागेगे और फिर आगेवाली सेना के भी पाँव उखड़ जायेंगे। यद्यपि इस प्रकार से काफिरो से सहायता लेनी पडती है, किन्तु बादशाहों ने इस बात को कोई महत्त्व नही दिया, कारण कि यदि किसी अन्य क़ौम से सहायता ली जाय, जो छापा-मार युद्ध की आदी हो, तो बादशाहो को उनकी ओर से अपना स्थान छोडकर हट जाने का भय होता है। यह भय फिरगियो के विपय मे नही पैदा होता, कारण कि वे तो सर्वदा जमकर और एक स्थान पर डटकर युद्ध करने के आदी है। वे लोग अपना स्थान कभी नही छोड़ते, अत: उनसे अधिक इस उद्देश्य के लिए कौन उपयुक्त हो सकता है। फिर यह भी है कि मग़रिब के बादशाह फ़िरगियो से इस प्रकार की सहायता जेहाद के अतिरिक्त अन्य लड़ाइयो मे, जो कि उनसे तथा अरब एव बरबर से ठनती है, लिया करते है। किन्तु जेहाद मे उनसे इस भय से सहायता नही लेते कि वे कही मुसलमानो पर न पलट पड़े। मगरिब मे आजकल ऐसा ही हो रहा है और उसके कारण वही है जिनका हमने उल्लेख किया।

तुर्क इस समय बाणों से युद्ध करते है एव सेना की व्यवस्था पक्तियो द्वारा करते हैं। सेना के आगे-पीछे तीन पक्तियाँ बनाते है। युद्ध के समय घोड़ो से उतरकर पैदल हो जाते है और सामने की दिशा मे बाणो की वर्षा करते है। हर पिछली पक्ति अगली पक्ति की रक्षा करती है और शत्रु से उसे बचाती है। वे अन्त तक इसी प्रकार युद्ध करते है, जब तक कि किसी एक पक्ष की विजय न हो जाय। इनके युद्ध का ढग वास्तव मे बड़ा विचित्र है।

प्राचीन काल के लोगों का युद्ध-नियम यह था कि वे रण-क्षेत्र के निकट सेना के चारों ओर इस भय से खाई खोद लेते थे कि शत्रु रात्रि के समय छापा न मारे। अँधेरी रात्रि एक तो पहले ही भयानक होती है, फिर रात्रि के छापे का कष्ट झेलना और भी दुखदायी होता है। ये दोनो ही कष्ट सेना को भागने पर विवश करते है और रात्रि के अँधेरे मे सेनावाले लज्जावश इधर-उधर कही सुरक्षित हो जाते है। ऐसी घबराहट एव बेचैनी में यदि पक्तियाँ ठीक करने का प्रयत्न किया जाय तो भी सैनिकों के पांव नही जमते और वे भागते दीख पड़ते है। इससे बडी भारी पराजय का सामना करना पड़ता है। इन्ही खतरों से बचने के लिए पिछले समय के लोग पड़ाव के वक़्त अपनी सेना के आस-पास खाई खोद लिया करते थे कि यदि शत्रु छापे मारने का प्रयत्न करे तो वह स्वयं ही उसमे गिरकर समाप्त हो जाय। पिछले जमाने में इस योजना के अनुसार सुगमतापूर्वक कार्य हो सकता था। वे प्रत्येक पड़ाव पर बहुत बडी सख्या मे मजदूर एकत्र कर लेते थे। देशों की जनसख्या भी अधिक थी और सल्तनतों के प्रभुत्व का क्षेत्र भी विस्तृत था। इस समय जब कि राज्यो की जनसख्या कम हुई, सल्तनते कमजोर पड़ी, सेनाओ की सख्या घटी और मजदूर अप्राप्य हो गये, तब खाई खोदने की प्रथा भी ऐसी मिटी कि मानो थी ही नही।

सिफ्फीन के सग्राम के समय[1] हजरत अली ने अपने साथियों को उभारने के लिए जो बहुमूल्य परामर्श दिये, उनसे युद्ध के अनेक बहुमूल्य सिद्धान्त प्राप्त होते है। हजरत अली से बढकर युद्ध मे कुशल कौन था? उन्होंने कहा है—"एक सीसा पिलायी हुई दीवार के समान पक्ति बनाकर खड़े हो जाओ। जिरह पहननेवाले आगे रहे और जिनके पास जिरह न हो वे पीछे रहे। दाँतो को किटकिटाकर बन्द कर लो, ताकि यदि सिर पर तलवार पड़े तो उचट जाय। भालो पर झुक जाओ, ताकि वे टूटने से सुरक्षित रहे। आँखे नीचे रखो, ताकि हृदय मजबूत रहे और हृदय मे घबराहट का

१. ३७ हि० (६५७–५८ ई०)। यह युद्ध हजरत अली एवं मुआविया में हुआ।

स्थान न रहे। मंद स्वर में बोलो, ताकि शक्तिहीनता तुम तक न पहुँच सके और तुम्हारा सम्मान हाथ से न जाय। पताकाओं को सीधा रखो और उन्ही के हाथ में दो जो वीरता मे अद्वितीय हों। सत्यता एव धैर्य को कभी मत त्यागो, कारण कि ईश्वर की सहायता धैर्य से ही प्राप्त होती है।..................

निम्नांकित पद्य भी युद्ध की नीति पर प्रकाश डालता है।

पद्य

मै तुम्हारे समक्ष युद्धकला की कुछ गूढ़ समस्याएँ प्रस्तुत करता हूँ, कारण कि तुमसे पूर्व फ़ारस के बादशाह इनका पर्याप्त पालन कर चुके है। यह इसलिए नहीं कि मै इनको अधिक जानता हूँ, अपितु इनकी स्मृति मोमिनों के लिए बड़ी लाभप्रद होगी और उनको उभारेगी।

रण-क्षेत्र में दोहरी ज़िरह, जो तलवार के कारीगरों का एक कारनामा है, पहनो। तेज़ धारवाली हिन्दी तलवार बाँधो, कारण कि वह ज़िरह की लड़ियों को तेज़ी से काट देती है।

सामान से लदे आगे बढ़नेवाले घोड़ों पर सवार हो, जो उस सुरक्षित क़िले की भाँति हों जिससे कोई निकल न सके।

सेना के पड़ाव के चारों ओर खाई खोद लो, चाहे तुम विजयी होकर शत्रु का पीछा कर रहे हो, अथवा वह तुम्हारा पीछा कर रहा हो।

और नदी को पार न करो अपितु उसके उस पार उतरो ताकि वह तुम्हारी सेना एवं शत्रु के बीच में रोक एवं दीवार बन सके।

यथासम्भव शत्रु से रात्रि मे मुक़ाबला करो और सेना के पिछले भाग में सच्चे वीरों को नियुक्त करो। इस उपाय से खतरे से बचाव अधिक हो सकता है।

संग्राम के समय जब सकरे रणक्षेत्र में सेनाएँ न समा सकें तो भालों की नोक उनको चौड़ा कर सकती है।

शत्रु पर प्रथम बार ही टूट पड़ो, उसे सँभलने न दो, क्योंकि ज़रा सी कायरता एवं झिझक मनुष्य को नष्ट कर देती है।

सेना के अगले भाग मे महान् योद्धाओं को रखो, जिनके स्वभाव में विश्वासघात न करनेवाली सचाई पायी जाती हो।

जब झूठे लोग परेशान करनेवाले समाचार फैलायें तो उन पर कान न धरो, कारण कि झूठे लोगों के कर्म एवं वचन का कोई विश्वास नहीं।

यह कथन कि "अचानक शत्रु पर टूट पड़ना चाहिए, सोच-विचार एवं झिझक उचित नही," लोगो के साधारण दृष्टिकोण के विरुद्ध है। हजरत उमर ने जब अबू उबैद बिन अल मसऊद सक़फ़ी को फ़ारस एव इराक का सेनापति बनाया तो उनसे कहा कि "देखो ! मुहम्मद साहब के सहाबियो की बात को ध्यान से सुनो और उसको कार्यान्वित कराओ। उनसे अपने कार्यो में सहायता लिया करो और उन पर विचार करते रहो। जब तक अवसर को भली-भाँति न जाँच लो और ऊँच-नीच को समझ न लो, तब तक शत्रु से मत भिड पड़ो, कारण कि यह युद्ध है। इसमे धैर्य धारण करनेवाला मनुष्य उपयुक्त रहता है, जो अवसर पाकर अग्रसर होने अथवा रुके रहने के महत्त्व को भली-भाँति जानता हो।" फिर कहा कि "यदि सलीत मे जल्दबाजी न होती तो मै उसी को सेनापति बनाता, किन्तु युद्ध मे जल्दबाजी करने मे हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नही। युद्ध के लिए वही मनुष्य उपयुक्त है जो धैर्य धारण कर सके और सोच-विचार की प्रवृत्ति रखता हो।" हजरत उमर का यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि युद्ध मे तेजी की अपेक्षा धैर्य रखना अच्छा है। धर्य तेजी से उत्तम है ताकि युद्ध का उचित रग-ढग स्पष्ट हो जाय। अत: यह कथन सैरफी के दृष्टिकोण का खडन करता है। यदि सैरफी के कथन की इस प्रकार व्याख्या की जाय कि एकाएकी आक्रमण सम्बन्धी परामर्श उस समय के लिए है, जब कि सोच-विचार एव ग़ौर के उपरान्त यह पूर्ण रूप से उचित ज्ञात हो जाय कि इस समय क्षण भर का विलम्ब उचित नही। ऐसी अवस्था मे तो उसका कथन अपने स्थान पर नि सन्देह ठीक है।

युद्ध मे सफलता एव विजय साज व सामान की बहुतायत एव सैनिकों की सख्या पर अवलम्बित नही, अपितु उसका आधार भाग्य एव सयोग पर है। कभी-कभी विजय के बाह्य कारण एक-एक करके ज्यादा से ज़्यादा आ उपस्थित होते है। कभी सेना की सख्या अधिक होती है, हथियार पूरे और नये ढग के उपलब्ध होते है, वीरो की अधिकता होती है, सेना एव पक्तियो को बड़े अच्छे ढग से सुव्यवस्थित किया जाता है, सक्षेप मे युद्ध के समस्त सिद्धातो की पूरी-पूरी व्यवस्था होती है, किन्तु सफलता दूसरे पक्ष को ही प्राप्त होती है। विजय एव सफलता के रहस्य दो प्रकार के होते है। एक वे, जिनमें मनुष्य के कर्म-भोग का हाथ होता है, उदाहरणार्थ धूर्तता, जालसाजी, युद्ध की युक्तियाँ, निराधार समाचार उडाकर शत्रु को अपमानित करना, शत्रु से ऊँचे स्थान पर ठहरकर इस प्रकार युद्ध करना कि शत्रु नीचे की ओर होने के कारण शीघ्र पराजित हो जाय। झाड़ियो, घाटियों एव छिपने के स्थानो मे बैठकर शत्रु को एकदम घेर लेना कि शत्रु को बुरी तरह घिरकर भागते ही बने, अथवा इसी प्रकार के अन्य उपाय काम में लाना।

दूसरे गुप्त रहस्य वे है, जो मनुष्य की शक्ति के बाहर है और जिनमें केवल ईश्वर का हाथ होता है। उदाहरणार्थ, एक पक्षवाले के हृदय में ऐसा आतंक एवं रोब छा जाना कि एका-एकी उसके पाँव उखड़ जायें और उसे पराजित होना पड़े। इन गुप्त कारणों का विजय तथा पराजय मे बड़ा हाथ होता है, अतः प्रत्येक पक्षवाला विजय के लोभ मे यह सब खेल खेलता है और उनका स्पष्ट प्रभाव देखता है। इसी कारण मुहम्मद साहब ने कहा है—"युद्ध धूर्तता का नाम है।" अरब मे यह प्रसिद्ध है कि "कभी-कभी कबीले की अपेक्षा युक्ति से अधिक काम निकल आता है।" हमारे इस वर्णन से यह बात स्पष्ट हो गयी कि विजय एव सफलता में गुप्त कारणो का बहुत बड़ा हाथ होता है, जाहिरी कारणो का स्थान गौण। इन्ही गुप्त कारणो को दूसरे शब्दो मे भाग्य तथा सयोग कहते है।

ऐसे गुप्त कारणों के, जिनका सबंध केवल ईश्वर की लीला से है, प्रभाव का प्रमाण भी हमे मुहम्मद साहब की शुभ वाणी द्वारा मिलता है। उनका कथन है कि "मै अपने शत्रु से एक मास की दूरी पर रहता हूँ, ताकि उसके हृदय पर मेरा आतक व्यापक हो जाय। अन्त मे यही मेरी सफलता का कारण बनता है।" मुहम्मद साहब अथवा उनके बाद के युग मे भी इसी का प्रमाण मिलता है कि इन दैवी कारणो ने कभी-कभी आश्चर्यजनक प्रभाव प्रदर्शित किये है और विजय प्रदान की है।......

प्रत्यक्ष कारणो को महत्त्व देते हुए तुरतूशी लिखता है कि युद्ध मे यदि एक ओर प्रसिद्ध वीरों एव नामी शहसवारो की दूसरे पक्ष की अपेक्षा कुछ अधिकता है तो उसको सफलता प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ, एक पक्ष मे १० अथवा २० वीर है और दूसरे मे ८ या १६, तो अधिक सख्यावाले पक्ष को अवश्य विजय प्राप्त होगी। किंतु उनका यह दृष्टिकोण ठीक नही। जाहिरी कारणो मे जिस चीज का वास्तव मे बहुत बडा प्रभाव होता है, वह है "असबियत"। जिस पक्ष मे सब "असबियते" एक ही "असबियत" मे लीन हो गयी हों, वह उस पक्ष पर, जिसमें "असबियते" विभिन्न एवं अधिक सख्या मे हो, विजय प्राप्त करेगा। क्योंकि "असबियत" के अधिक सख्या में होने की वजह से प्रत्येक क़बीला अपनी-अपनी डफ़ली अलग बजाता है और अपनी मनमानी चलाता है तथा अवसर पड़ने पर साथ छोड़ देता है। इसके विपरीत यदि समस्त "असबियते" मिलकर एक हो गयी हों तो भिन्न-भिन्न शरीरो के बावजूद सब योद्धा एक-जान हो जाते है। हर एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करता है। इस प्रकार "असबियत" को ही हम जाहिरी कारणों में विजय के लिए कुछ महत्त्व दे सकते है, न कि सख्या को, जिसकी ओर तुरतूशी झुक गया है। इस भ्रम का कारण

वास्तव में यह है कि अल्लामा को "असबियत" के प्रभाव का ज्ञान न था। उनकी दृष्टि केवल विभिन्न लोगो अथवा समूहो पर थी। उनकी दृष्टि में "असबियत" एव कुल का कोई महत्त्व न था। इसका सविस्तर उल्लेख इससे पूर्व किया जा चुका है। तुरतूशी ने जो कारण बताया है उसे हम केवल जाहिरी कारणो मे गिन सकते है। अन्य जाहिरी कारण है सेना का साज व सामान, अस्त्र-शस्त्रों की अधिकता, वीरो की सख्या का आधिक्य इत्यादि। हम यह बता ही चुके है कि प्रभुत्व एव विजय मे इनका कोई हाथ नही। वह तो पूर्ण रूप से गुप्त कारणो---धूर्तता, धोखे, एव दैवी बातो पर निर्भर होती है। यदि आप भौतिक ससार के इस रहस्य को ध्यानपूर्वक देखे और समझेगे तो आपको इस रहस्य का पता चल जायगा।

युद्ध मे प्रभुत्व एव विजय की प्राप्ति प्रसिद्धि-प्राप्ति की साधना से पूर्णतः मिलती-जुलती है। उसके भी कुछ गुप्त कारण होते है जो दृष्टि से ओझल रहते है। बहुत-से बादशाह, आलिम, पवित्र लोग एव सिद्ध पुरुष ऐसे है, जो वास्तव में प्रसिद्धि के पात्र है किन्तु देश मे उनकी प्रसिद्धि नही होती, और यदि होती भी है तो सयोग से निन्दा मिश्रित ही। वास्तव में उनके लिए यह कदापि ठीक नही। बहुत से ऐसे व्यक्ति है जो बिलकुल अप्रसिद्धि की भेट हो जाते है, यद्यपि वे प्रसिद्धि के सबसे अधिक पात्र होते है। कभी ऐसा भी होता है कि प्रसिद्धि भी होती है और प्रसिद्ध व्यक्ति वास्तव मे इसका पात्र भी होता है। इस पूरे गोरखधधे का रहस्य है कि प्रसिद्धि एव नामवरी प्रचार द्वारा प्राप्त होती है और प्रचारित समाचारों मे प्रायः न्याय्य उद्देश्यों की उपेक्षा की जाती है और उनमे पक्षपात का पुट दिया रहता है। उनसे भ्रम एवं सदेह भी उत्पन्न हो जाता है। समाचारो के वर्णन को वास्तविकता से मिलाने की चेष्टा बहुत कम की जाती है और झूठ एव बनावट का आवरण उन पर चढा दिया जाता है। कभी-कभी वर्णन देनेवाले की अज्ञानता इसका कारण होती है। अधिकाश ऐसा होता है कि लोग सांसारिक सम्मान प्राप्त लोगो एव उच्च पदवालों का गुण गान करने लगते है और उनको प्रसिद्धि देते है, ताकि उनकी आड़ में वे सांसारिक यश प्राप्त कर सके। इस प्रकार अधिकाश लोग यश एव समृद्धि पर मरने लगते है और उसी को मूल उद्देश्य समझते है। वास्तविक योग्यता एव निपुणता से उनका कोई सम्बन्ध नही होता। दूसरी ओर उच्च पदवाले अनुचित प्रशसा के प्रति असतोष प्रकट नही करते, अपितु प्रसन्न होते है और फूले नही समाते।

अब आप स्वय ग़ौर करें कि जब ऐसी अनुचित बातें प्रसिद्धि के कारण स्वीकार की जाने लगे तो वास्तविक प्रसिद्धि कितनी अप्राप्य होगी। अतः इन्ही गुप्त कारणो

से सच्ची प्रशंसा दुष्प्राप्य हो जाती है और तथ्य अन्य ही रूप धारण कर लेता है, अपितु यह कह सकते हैं कि सत्य झूठ का जामा पहन लेता है। जब प्रसिद्धि भी गुप्त कारणों से होने लगी तो मानो सौभाग्य एवं संयोग ही उसके आधार हुए। इससे पूर्व ही यह कथन किया जा चुका है कि गुप्त कारणों को सौभाग्य एवं संयोग कहा जाता है।

(३८) खराज एवं उसकी कमी-बेशी के कारण

सल्तनत के प्रारम्भ मे खराज की मात्रा कम एवं वसूली का योग अधिक होता है। सल्तनत के अन्तिम काल मे इसका उलटा होता है। खराज की मात्रा बढ जाती है और वसूली का योग कम हो जाता है। इस तथ्य का कारण यह है कि यदि हुकूमत इस्लामी सिद्धांतों पर स्थापित है तो सदकों, ख़राज एव जिजिये इत्यादि की समस्त वसूली शरा के अनुसार निर्धारित मात्रा मे होती रहती है और वह सब कम मात्रा मे होते है। यदि धन की जकात होगी तो वह भी कम और यदि अनाज एव पशुओ की जकात होगी तो वह भी कम। यही हाल जिजिये एव खराज का है कि वह भी कुछ अधिक न होंगे। सक्षेप मे इन सब शरई करों की सीमाएँ निर्धारित है जिनमे वृद्धि की सम्भावना नही। जब सल्तनत प्रभुत्व एव "असबियत" पर आधारित होगी तो उसका प्रारम्भ भी "बदवियत" से ही होगा, जिसका प्रमाण हम पहले अध्यायो मे दे चुके है। "बदवियत" कृपा, नम्रता, शुभचिन्ता, सद्व्यवहार, असग्रह और अपरिग्रह एव प्रजा से उचित सीमा तक कर की वसूली की अपेक्षा रखती है। इसी कारण "बदवियत" की छाया मे प्रजा को जो कुछ कर एव ख़राज अदा करना पड़ता है, वह कम होता है। जब देशवासियो पर लगानों का भार कम होता है तो वे प्रसन्नतापूर्वक कार्यो मे तल्लीन रहते है और मुल्क की आबादी दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ने लगती है। कारण कि लगान की मात्रा कम होने के कारण लोग दूर-दूर से आकर वहाँ बस जाते है। राज्य की जनसख्या मे वृद्धि होने के कारण हर प्रकार की वसूलियाँ बढ़ जाती है और ख़राज में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

जब राज्य इसी प्रकार दीर्घ काल तक चलता रहता है और बादशाह निरतर राज्य प्राप्त करते रहते हैं, तो उनमें धन एकत्र करने की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और बदवियत की सरलता, सौजन्य एवं रवादारी की भावनाएँ भी समाप्त हो जाती है। अब इस प्रकार अत्याचार पर आधारित राज्य एवं नगर का जीवन प्रारम्भ होता है, जिसमे बादशाहों में धन एकत्र करने एव धन की माँग की भावनाएँ उन्नति पर होती

है। उनके चरित्र बिगड़ते हैं और उनकी आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं। इस अवस्था को प्राप्त होकर वे भोग-विलास एव नाज-नखरो के शौकीन बनते हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी आवश्यकताएँ भी साथ-साथ अधिक हो जाती हैं। इस परिस्थिति से घिरकर उनको अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने का केवल एक यही साधन दृष्टिगत होता है कि व्यापारी, कृपक एव अन्य प्रजा पर कर की मात्रा दुगुनी, चौगुनी अथवा उससे भी अधिक बढा दे। व्यापारिक माल के आयात एवं निर्यात पर चुगी लगायें और इस प्रकार अपने राज्य की आय बढ़ाकर अपने हर प्रकार के उचित एव अनुचित व्यय पूरे करे। फिर जैसे-जैसे बादशाहो के भोग-विलास की आदत बढती है, वैसे-वैसे उनके व्यय में भी अपार वृद्धि होती है। राज्य के कर भी इसी प्रकार बढ़ते जाते हैं, यहाँ तक कि लगानो एव विभिन्न करो का भार बेचारी प्रजा की कमर तोड़ देता है, किन्तु यह भार शनैः-शनै. बढता है, इसलिए प्रजा इसकी आदी हो जाती है और फिर उसको यह भी ज्ञान नही रहता कि प्रारम्भ मे किसने करो मे वृद्धि की थी और वह किस प्रकार इस सीमा तक पहुँचा, किन्तु प्रजा की जनसख्या पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। लोग जब अपने लाभ एव करो की तुलना करते हैं और अपनी सारी दौड़-धूप की प्राप्ति पर दृष्टि डालते हैं तो उनकी लाभ कमाने की भावनाएं ठडी पड़ जाती हैं। उनका साहस टूट जाता है। उनका उत्साह मन्द पड़ जाता है। वे काम-काज से हाथ खीचने लगते हैं। भूमि का उपयोग कम हो जाता है। जब यह दशा हो जाती है तो ख़राज की मात्रा बहुत ही घट जाती है। सल्तनतवाले राज्य की आय को घटता देखकर लगानो एव करो इत्यादि की मात्रा में और वृद्धि करते है ताकि कमी की पूर्ती करें, यहाँ तक कि इस शनैः-शनैः की वृद्धि से कर एव खराज इस सीमा तक पहुँच जाते हैं कि कारोबारी लोगो एव कृपको का लाभ उसमे लुप्त हो जाता है। सभ्यता एव सस्कृति के कार्यो पर अत्यधिक व्यय करना पड़ता है और साथ-साथ खराज एव लगान भी भारी-भारी मात्रा मे लगाने पड़ते हैं, किन्तु उन्हे उससे कोई व्यक्तिगत या सार्वजनिक लाभ नही दृष्टिगत होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने लाभ के पीछे अपनी जान खपाता है, अतः जब लोगो को लाभ दृष्टिगत नही होता तो वे देश छोड़ने लगते हैं। सभ्यता एव सस्कृति का पतन होने लगता है और इसका दड राज्य को स्वय ही भोगना पड़ता है।

सक्षेप मे किसी देश की सभ्यता इस बात पर निर्भर है कि देशवालों पर नाना प्रकार के करों का भार यथासम्भव हलका रखा जाय, ताकि वे प्रसन्नतापूर्वक अपने कार्यों मे अपने प्राण खपाये और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करें।

(३९) सल्तनत के अन्तिम युग में चुंगी एवं मार्गीय करों की प्रथा प्रारम्भ होती है

पहले ही बताया जा चुका है कि प्रारम्भ में सल्तनत पर "बदवियत" का रंग चढ़ा होता है। राज्यवाले भोग-विलास से अनभिज्ञ एव वासनाओ की तृप्ति से दूर होते हैं। इसी कारण उनकी आवश्यकताएँ कम होती है। वे कम कमाते तथा कम व्यय करते है। राज्य से जो कुछ खराज एव लगान प्राप्त होता है वह उनकी आवश्यकताओ के लिए न केवल पर्याप्त होता है, अपितु उसमे से कुछ बच भी रहता है। फिर शनैः-शनैः सल्तनत "बदवियत" से निकलकर नगर के जीवन एव सस्कृति की ओर अग्रसर होती है और अन्य सभ्य सल्तनतो के मार्ग पर चलने लगती है। सस्कृति अपने साथ अधिक से अधिक व्यय लाती है। बादशाह के व्यक्तिगत व्यय एव दान-पुण्य इतने अधिक हो जाते है कि राज्य की आय से यह व्यय पूरा नही हो पाता। सल्तनत को इस बात की आवश्यकता होती है कि कर एव खराज मे वृद्धि की जाय ताकि राज्य की बढती हुई सेना सम्बन्धी आवश्यकताओं की भी उनसे पूर्ति हो और बादशाह का खर्च भी चल सके। राज्य के करों मे वृद्धि का यह पहला कदम होता है। फिर जब सल्तनत वाले भोग-विलास की ओर अधिक आगे बढते है और इस सम्बन्ध मे उनके व्यय में वृद्धि होती है तथा सेना के व्यय बढ जाते है, तो राज्यकर भी अधिक बढ़ाना पडता है, यहाँ तक कि सल्तनत अपने जीवनकाल की अन्तिम साँसे लेने लगती है। "असबियत" मे शक्ति नही रहती कि राज्य के विभिन्न भागों से कर प्राप्त कर सके। फलतः राज्य की आय गिर जाती है।

इधर सांस्कृतिक आवश्यकताएँ बराबर बढ़नी रहती है और सैनिक व्यय भी साथ-साथ अधिक होता जाता है, अत. शासक को इस समस्या के समाधान का एक यही मार्ग दृष्टिगत होता है कि वह व्यापारिक माल पर नाना प्रकार के कर लगाये। बाजारों मे जो कुछ भी बिके और नगर मे व्यापारिक माल से जो कुछ आय हो उसमें से राज्य का कर भी वसूल किया जाय। किन्तु इस अनुचित आचरण से भी बादशाह की भूख नही मिटती और वह हर प्रकार की वसूली के लिए चिंतित एवं व्याकुल रहता है। देशवाले भोग-विलास के कारण अपना व्यय बढा लेते है। इस प्रकार वे सल्तनत से अधिक-से-अधिक इनाम की आशा करते है, ताकि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। फिर ऐसी दशा में सेना की सख्या में भी वृद्धि हो जाती है। उसके वेतन एव उसकी वृत्ति का बोझ भी सल्तनत पर बढ जाता है। सल्तनत के अन्तिम युग में तो करों की इतनी अधिकता हो जाती है कि व्यापार की ओर से लोगो की

आशाएँ टूट जाती है और राज्य के बाजार एवं मंडियाँ फीकी पड़ जाती है। देश की जनसख्या घटने लगती है और इसकी हानि भी सल्तनत को ही भुगतनी पड़ती है। उसके आर्थिक ताने-बाने कमजोर पड़ जाते है।

इतिहास से पता चलता है कि पूर्व में अब्बासी एव उबैदीई सल्तनतों के अन्तिम युग मे ऐसा ही हुआ कि देशवालों पर नाना प्रकार के भारी-भारी कर लगाये गये, यहाँ तक कि हाजी को भी हज के दिनों में भारी-भारी कर अदा करने पड़ते थे। अन्त में सलाहुद्दीन इब्ने अय्यूब ने इन कुप्रथाओं को मिटाया और इनके स्थान पर परोपकार एव भलाई की प्रथाएँ चलायी। इसी प्रकार उन्दुलुस में विभिन्न समूहों के समय भी यही प्रथा रही। फिर मुराबेतीन के अमीर यूसुफ बिन ताशफ़ीन शासकों ने इन कुप्रथाओ का अन्त किया। हमारे इसी युग मे इफरीक़िया में जरीद के नगरो पर जब से वहाँ के हाकिमों ने अधिकार प्राप्त किया है, नाना प्रकार के कर लगा दिये है। "ईश्वर अपने सेवकों पर कृपा करता है।"[1]

(४०) सल्तनत का व्यापार प्रजा को हानि पहुँचाता है और देश के राजस्व को नष्ट कर देता है

यह बात भली-भाँति जाननी चाहिए कि देश मे भोग-विलास के बढ़ जाने और नाना प्रकार के प्रदर्शनों की प्रथाओं के प्रचलित हो जाने से जब देश के व्यय मे अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और राज्य का कर उन हानियो एवं कमियो की पूर्ति नही कर पाता तथा राज्य देश की कर-व्यवस्था मे वृद्धि करके राज्य की आय बढ़ाने पर तुल जाता है, तो चीजों के आयात-निर्यात पर चुगी लगायी जाती है और बाजारी व्यापारिक माल की आय पर कर लगाया जाता है। यदि चुगी की प्रथा पूर्व से चल रही हो तो उसकी सख्या में वृद्धि कर दी जाती है। कभी आमिलो एव खराज वसूल करनेवालो को इस सम्भावना के कारण निचोडा एवं चूसा जाता है कि वे लोग ख़राज का अत्यधिक माल खा गये होगे, जो जाँच मे नही आया है।

इस प्रकार खराज की आड़ में सल्तनत व्यापार एव कृपि का कारोबार प्रारम्भ करती है। सल्तनतवालों के मस्तिष्क मे यह बात समा जाती है कि चूँकि व्यापारी एव कृपक थोडी-सी पूँजी से अत्यधिक लाभ एव अनाज प्राप्त करते है तो सल्तनत इसमे क्यों पीछे रहे, जब कि उसके पास पूँजी भी अधिक है। अतः उसे अधिक से

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

अधिक लाभ की आशा होती है, कारण कि कारोबार में लाभ की कमी अथवा जियादती पूँजी की कमी एव जियादती पर निर्भर होती है। अतः सरकार मवेशी तथा अनाज सस्ते से सस्ते मूल्य पर क्रय करती है और बाजारों में लाकर भारी मूल्य पर बेचती है और समझती है कि इस प्रकार खराज बढ़ेगा और खूब लाभ होगा, हालाँ कि यह उसका भ्रम होता है। इस प्रकार कई तरह से प्रजा का विनाश हो जाता है।

सर्वप्रथम हानि यह होती है कि व्यापारी एवं कृषक पशुओ एवं अन्य व्यापारिक सामग्री के क्रय-विक्रय में झिझकने लगते है, कारण कि प्रजा तो धन-सम्पत्ति में एक-दूसरे के बराबर अथवा एक-दूसरे के निकट होती है। एक व्यापारी अथवा कृपक दूसरे के मुकाबले में आ सकता है, किन्तु यदि सुल्तान स्वय व्यापार एवं कृपि मे हाथ डाल दे तो चूँकि उसके पास पूँजी अधिक होती है, अतः प्रजा मे से कोई भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। सुल्तान के मुकाबले मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी असफलता एव अपने काम में घाटा देखता है। इसी दु ख मे उसके पाँव आगे बढने के स्थान पर पीछे हटते है। फिर बादशाह की खरीदारी की यह स्थिति होती है कि कभी वह डरा-धमकाकर धन-सम्पत्ति छीन लेता है और कभी कम से कम मूल्य पर प्राप्त करता है। कारण कि कोई अन्य व्यक्ति तो उसका मुकाबला कर नही सकता और न मूल्य बढने की सम्भावना होती है, फलतः व्यापारी को बहुत कम लाभ प्राप्त होता है। परेशान व्यापारी जब अनाज, रेशम, मधु, शक्कर तथा अन्य खाने-पीने की वस्तु प्राप्त करते है अथवा नाना प्रकार का व्यापारिक माल लाते है, तो उनको बाजारो मे ले जाने अथवा बाजार के भावों को देखने की प्रतीक्षा नही करनी पड़ती, अपितु जिस मूल्य पर सौदा पट जाता है, वे माल को निकाल देते है, कारण कि माल को रोके रखने पर अथवा उसको बाजार में ले जाने पर उन्हे सल्तनत का भय होता है। यदि इच्छानुसार लाभ प्राप्त करने के लोभ मे वे माल रोके रखते है तो उनका सारा माल पत्थर की भाँति बिना किसी लाभ के पड़ा रहता है और वह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। तब उनके जीविकोपार्जन का कोई साधन नही रहता, क्यों कि व्यापारियो की रोजी तो माल के लेन-देन एव उलट-फेर पर ही निर्भर है। यदि उनको नकद धन की आवश्यकता पड़ जाती है तो वे बाजारभाव से गिराकर सस्ते मूल्य पर भी माल निकाल देते है। जब इस प्रकार की हानियाँ व्यापारियो एव कृषकों को बार-बार उठानी पड़ती है, तो उनकी पूँजी शीघ्र ही समाप्त हो जाती है और इस प्रकार वे अपने व्यापार से हाथ धो बैठते है। सक्षेप मे इस प्रकार व्यापारियों

के निरन्तर हानि उठाने से और लाभ नष्ट होने से उनके उत्साह में कमी हो जाती है। वे अपने व्यापार से हाथ खीच लेते है। फलतः खराज में बड़ी शोचनीय दशा तक कमी हो जाती है, कारण कि देश का खराज अधिकांश व्यापारियो एवं कृषको द्वारा ही प्राप्त होता है। यह दुर्दशा तब और भी महत्त्वपूर्ण होती है जब चुगी की प्रथा भी चला दी जाय और उससे खराज की वसूली में वृद्धि की आशा की जाय। जब कृषक खेती से और व्यापारी व्यापार से अलग हो जाते है तो खराज या तो पूर्णतः समाप्त हो जाता है, या बड़ी खतरनाक सीमा तक उसमे कमी हो जाती है। बादशाह जब खराज की आय तथा अपने व्यापार की आय की तुलना करने बैठता है तो उसकी आँखे खुल जाती है, क्योकि दोनों आयो में बहुत बडा अन्तर है।

मान लिया जाय कि व्यापार बादशाह के लिए लाभदायक है, किन्तु इसमें भी तो सन्देह नही कि क्रय-विक्रय में कठिनाइया अलग उठानी पड़ती है और खर्च अलग बरदाश्त करना पड़ता है। इधर राज्य की आय का बहुत कुछ भाग उसके हाथ से निकल जाता है। कर, जिसकी धन-राशि व्यापार से कहीं अधिक होती है, हाथ से जाता रहता है। यदि व्यापार दूसरे के पास हो तो कर की धन-राशि बिना किसी कठिनाई, परिश्रम एवं दौड़-धूप के प्राप्त होती रहती है और वह भी व्यापार के लाभ से अधिक होती है। अतः इसमें सन्देह नही कि बादशाह के व्यापार मे हाथ डाल देने से राज्यवाले नष्ट एवं दुर्दशा को प्राप्त हो जाते है और अन्त में सल्तनत भी विनाश से नही बच सकती, कारण कि जब लोगों को कृषि एवं व्यापार से कोई लाभ नही प्राप्त होता तो उनकी आर्थिक दशा बुरी तरह गिर जाती है। तब खर्च ही खर्च रह जाता है, आय नही होती। इस प्रकार जनता बरबाद हो जाती है। जब देशवासी नष्ट हुए तो सल्तनत का पता कहाँ मिल सकता है।

फारसवालों का तरीका यह था कि वे उसी व्यक्ति को बादशाह बनाते थे जो शाही वश से सम्बन्धित होता था और धर्मनिष्ठता, दान-पुण्य, वीरता, पौरुष सरीखे उत्तम गुणो से सुशोभित होता था। न्याय के गुण को दृष्टि मे रखकर वे उसके साथ यह भी शर्त लगाते थे कि वह किसी ऐसी कला में हाथ न डालेगा जो उसके पड़ोसियों को हानि पहुँचाये तथा ऐसा व्यापार न प्रारम्भ करेगा जिससे मूल्य बढ़ने की आशका हो। न वह दासो से सेवा लेगा, कारण कि उनसे भलाई एव हित सम्बन्धी परामर्श की कोई आशा नही होती।

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि बादशाह के धन की वृद्धि और उसके प्राणो का सुख खराज की ही वसूली पर निर्भर है। खराज की वसूली इस बात

पर निर्भर है कि बादशाह अपने अधीनस्थ धनी लोगों के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करे। उन पर दया एवं कृपा की दृष्टि रखे। इससे उनकी आशाएँ बढ़ेगी, उत्साह मे वृद्धि होगी और फिर लोग खुले दिल से पूँजी को कार-बार में लगाकर उससे लाभ प्राप्त करेगे और उन्हे बढ़ायेगे। इस प्रकार शाही आय मे वृद्धि होगी। इसके विपरीत आय-वृद्धि के साधन के रूप मे राज्य का व्यापार में हाथ डालना अथवा कृषि कराना देश एवं देशवासियों के लिए लाभजनक होने के स्थान पर हानि का कारण होता है। उससे प्रजा नष्ट हो जाती है। खराज की वसूली कम हो जाती है और देश उजड़ने लगता है।

कभी व्यापार एवं कृषि करनेवाले अमीर लोग एवं अपहरणकर्ता ऐसा करने लगते है कि वे बाहरी व्यापारियों एवं कृषकों से व्यापारिक माल अथवा अनाज जिस भाव पर चाहते हैं क्रय कर लेते है, और उसे फिर अपनी अधीन प्रजा को जिस भाव पर चाहते है, बेच देते है। व्यापार का यह प्रकार पहले प्रकार से भी अधिक हानिकारक है और प्रजा को शीघ्रातिशीघ्र विनाश के घाट उतार देता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक कुशल व्यापारी, जो आजीवन व्यापार ही करता रहा है या एक पेशेवर किसान, जो बाल्यावस्था से खेती ही करता चला आ रहा है, बादशाह को चक्कर में डाल देता है और उसको समझाता है कि साझे मे व्यापार किया जाय और उसमे एक भाग उसका भी हो। इससे उसका उद्देश्य बादशाह की आड़ मे लाभ कमाना होता है। इस प्रकार चुगी एव अन्य करों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यही बाते व्यापार की कमर तोड़ दिया करती है। इस प्रकार धोखा देकर लोग अपना खेल खेलते हैं, किन्तु यह नही समझते कि इस प्रकार बादशाह का खराज कितना घट जायगा और उसे लाभ के स्थान पर कितनी हानि होगी। अतः बादशाह को ऐसे स्वार्थी चापलूसों से बचना चाहिए एवं अपने खराज की आय को इस प्रकार के दुराचार से ठेस न लगानी चाहिए।

(४१) बादशाह एवं उसके विश्वासपात्रों की धन-सम्पत्ति सल्तनत के मध्य युग में बढ़ती है

सल्तनत के प्रारम्भिक युग में खराज इत्यादि की रकम बादशाह के कबीले एवं "असबियत" वाले आपस मे बाँट लेते है। इसका कारण यह है कि वही राज्य के संस्थापक होते है और राज्य की नीव वही डालते है, अतः वे उसका लाभ भी क्यों न उठायें। प्रारम्भ मे तो उन्हें कदापि नही भुलाया जा सकता। बादशाह का पूरा

ध्यान ख़राज इत्यादि से हटकर अपनी निरंकुशता एव शक्ति को दृढ़ बनाने की ओर होता है। "असबियत" वालों से ही उसे सम्मान प्राप्त होता है और उन्ही पर वह अपने आप को निर्भर समझता है। बादशाह की इस अपेक्षा के कारण खराज एवं कर का उतना ही भाग उसे प्राप्त होता है जितना उसकी आवश्यकताओं को बड़ी कठिनाई से पूरा करने के लिए पर्याप्त होता है। जब बादशाह की यह दशा हुई तो उसके विश्वासपात्र और वे, जो उससे सम्बधित है, उदाहरणार्थ वजीर, कातिब, दास इत्यादि, प्रायः खाली हाथ ही रहते है और उनका जीवननिर्वाह अधिकतर चाप-लूसी एवं चाटुकारी द्वारा होता है। उनका सम्मान एव पद निम्न कोटि का और अनिश्चित-सा होता है, कारण कि उनका स्वामी स्वय "असबियत" वालो के प्रभाव मे ग्रस्त तथा उनसे दबा रहता है। उसके अधिकार भी सीमित होते है, अतः उसे इन लोगों के उभारने का अवसर कहाँ और किस प्रकार मिल सकता है। इस स्थिति की समाप्ति के उपरान्त जब सल्तनत की नीव दृढ होती है और सुल्तान को अपनी कौम पर स्वतत्र अधिकार प्राप्त होते हैं तो वह वसूली की अधिक रकम "असबियत" वालों के हाथ नही लगने देता। उनको उतना ही देता है जितना अन्य लोगो को मिलता है। इस प्रकार उनकी आय घट जाती है और सल्तनत के नौकर-चाकर एवं आश्रित सल्तनत को दृढ़ रखने तथा शासन चलाने मे उनके बराबरके साझीदार समझे जाते है। इस वातावरण के उत्पन्न हो जाने पर बादशाह समस्त ख़राज अथवा उसका अधिकाश भाग स्वयं दबा लेता है। सल्तनत की धन-सम्पत्ति को अपने अधिकार मे रखता है और विशेष अवसरों के लिए वह धन एकत्र किये रहता है। इस प्रकार उसकी धन-सम्पत्ति बढ़ जाती है। खजाना माला-माल हो जाता है। उसके अधिकार बहुत बढ जाते है। सक्षेप मे पूरी क़ौम मे वही आदर एव सम्मान का स्वामी दृष्टिगत होता है।

जब बादशाह यह रूप धारण कर लेता है तो उसके विश्वासपात्र, सहायक, वज़ीर, हाजिब, कातिब, दास, अधिकारी एवं सेनावाले भी अपना रंग पलटते है। उनको महत्त्व प्राप्त होता है। उनके अधिकार बढ़ते है। वे धन एकत्र करने की चिन्ता मे लगते है। सल्तनत का यह मध्य युग भी जब विनाश की ओर अग्रसर होता है और शासन की युवावस्था समाप्त होकर वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगत होते हैं तो "असबियत" समाप्त हो चुकती है और सल्तनत के संस्थापकों का अन्त हो चुका होता है। इस समय सल्तनत विरोधियों एवं विद्रोहियों के जाल में फँसती है और राज्य का बुरा चाहनेवाले प्रत्येक दिशा से उस पर टूट पड़ते है। ऐसी अवस्था में

बादशाह को विवश होकर नये सहायक तैयार करने पड़ते है और सल्तनत के गिरते हुए सम्मान को बचाना पड़ता है, अतः वह अब खराज का उपयोग अपने सहायकों के हित के लिए प्रारम्भ कर देता है और उन्हे खिलाता-पिलाता है। ये सहायक "तलवारवालो" एवं उनकी "असबियत" से सम्बंधित होते है, जिन पर वह अपने खजाने लुटाता एवं धन-सम्पत्ति न्योछावर करता है, किन्तु इस दशा में दान-पुण्य एवं व्यय भी उसे अधिक करना पड़ता है। खराज मे, जैसा कि हम बता चुके है, कमी होने लगती है। खराज की कमी से बादशाह की धन-सम्बन्धी आवश्यकता और बढ़ती है। वह इसी चिन्ता मे ग्रस्त रहता है कि राज्य की आय किस प्रकार बढ़ायी जाय, जिससे राज्य का व्यय पूरा हो सके। बादशाह की चिन्ता के कारण उससे सम्बंधित लोग, उदाहरणार्थ हाजिब, कातिब इत्यादि भी समृद्ध एवं धन-धान्यसम्पन्न नही रह पाते। उनका सम्मान कम हो जाता है।

फिर सल्तनत के अन्तिम युग मे कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि इधर तो बादशाह के विश्वास-पात्र एवं इष्ट-मित्र अपने पूर्वजों की संचित धन-सम्पत्ति का अपव्यय प्रारम्भ कर देते है और उधर बादशाह "और भी अधिक" व्यय करने की इच्छा करने लगता है। वह सोचता है कि इस धन का, जिसे मेरे विश्वास-पात्र निःसंकोच व्यय कर रहे है, वास्तविक उचित पात्र मै ही हूँ, कारण कि मेरे ही पूर्वजों की कृपा एवं उन्ही के प्रयत्नो से इनके पूर्वजों ने यह धन-सम्पत्ति एकत्र की है। इसी विचार से बादशाह उनमे से एक-एक को शनैः-शनैः निचोड़ने लगता है और शासन उनका विरोधी हो जाता है। जब बादशाह के विश्वास-पात्र नष्ट होने लगते है और समृद्ध एवं धनी लोग समाप्त हो जाते हैं, तो इसका परिणाम भी बादशाह को ही भोगना पड़ता है। इस प्रकार वह भव्य भवन, जिसका निर्माण बादशाह के पूर्वजों द्वारा हुआ था, एकाएक भूमि पर आ रहता है। इस तथ्य के प्रमाण मे इतिहास से अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं, उदाहरणार्थ अब्बासियों के राज्यकाल मे बनू क़हतबा, बनी बरमक, बनू सहल और बनू ताहिर सरीखे वजीरो के साथ इसी प्रकार का व्यवहार हुआ। इसी प्रकार उन्दुलुस मे बनी उमय्या के अन्तिम राज्यकाल मे मुलूकुत्तवाएफ़ के बनू शुहैद, बनू अबी अबदह, बनू हुदैर, तथा बनू बुर्द इत्यादि के साथ ऐसा ही व्यवहार किया गया, अपितु हमारे युग मे भी यही सब कुछ हो रहा है।

इन्ही घटनाओं एव तथ्यों के कारण बहुत से अधिकारी एवं सल्तनत के ओहदेदार, जब धन-सम्पत्ति एकत्र कर लेते है तो अपने पदों एवं ओहदों को त्याग-कर अन्य

देशों को चले जाने के विषय में सोचने लगते हैं और बादशाह के हाथों से बचने का प्रयत्न करते है। वे सोचते है कि अन्य देशों मे पहुँचकर अपनी सचित धन-सम्पत्ति को शान्ति से इच्छानुसार व्यय करें एवं लाभान्वित हो, यद्यपि यह बड़ा अनुचित कदम एवं झूँठा विचार है जो उनकी सांसारिक दशा पर बड़ा बुरा प्रभाव डालता है। समझ लीजिए कि इन पदों मे उलझने के उपरान्त फिर उनसे मुक्ति कठिन ही नही, अपितु असम्भव है। यदि बादशाह स्वयं भी देश से निकल भागना चाहे तो न प्रजा ही उसको निकलने के लिए क्षण भर का अवसर देगी, न उसकी "असबियत" वाले अनुमति देंगे, अपितु उसे घेरे रहेंगे और उसके बहुत-से विचारो मे बाधा डालते रहेंगे। यदि बादशाह के इस संकल्प का पता चल जाय तो राज्य का तो उसके हाथ से निकल जाना आवश्यक ही है, किन्तु उसके प्राण भी ख़तरे मे पड़ते है। समय की गति-विधि कुछ इस प्रकार की है कि राज्य का फंदा एक बार गले मे पड़ने के उपरान्त फिर निकाले नही निकलता, विशेष रूप से जब सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गयी हो। उसमे अराजकता बुरी तरह फैल गयी हो और देश मे दुराचार एवं व्यभिचार ने सौजन्य, सहृदयता एवं सच्चरित्रता का स्थान ले लिया हो। ऐसी दशा मे यदि बादशाह के विशेष सेवकों, विश्वास-पात्रों एवं राज्य के सम्मानित लोगो मे से कोई निकल भागने की योजना बनाये तो उसको भी नही छोड़ा जाता। इसके कई कारण हैं।

(१) बादशाह यह जानते है कि उनके सहायक एव अधीन अपितु उनकी समस्त प्रजा, उनके वे दास एवं ममलूक है जो उनके गुप्त भेदो से परिचित हैं। इस भय से कि कही वे उसके रहस्य एवं गुप्त भेद अन्य लोगों को न बता दे, उन्हे दासता की बेडियो से छूटने नही दिया जाता। इसके अतिरिक्त उनकी मर्यादा भी उन्हे इस बात की अनुमति नही देती कि अब तक जो उनकी सेवा एव दासता मे रहे हों वे किसी अन्य स्थान पर पहुँचकर दूसरों के सेवक एवं दास कहलाये और अन्य लोगों की दासता मे प्रविष्ट हों।

इस प्रकार उन्दुलुस मे बनी उमय्या अपने अधिकारियों को हज तक के लिए इस भय से जाने की अनुमति न देते थे कि कही वे बनी अब्बास के चगुल मे न फँस जायें। इसी कारण बनी उमय्या के राज्यकाल मे उनके पदाधिकारी हज तक न कर सके और बनी उमय्या के राज्यकाल के अन्त मे मुलूकुत्तवाएफ के राज्यकाल मे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकी और वे हज कर सके।

दूसरा कारण यह है कि यदि बादशाह अपने विश्वासपात्रों को अपनी दासता

से किसी न किसी प्रकार मुक्त भी करना चाहें तो वे इस बात को किसी प्रकार स्वीकार नही कर सकते कि वे उनके राज्य से कमायी हुई धन-सम्पत्ति भी ले जायँ। इस कारण बादशाह उनकी धन-सम्पत्ति को छीन लेते है और उन्हे खाली हाथ निकालते है। यह मान लिया जाय कि यदि वे किसी प्रकार छिप-छिपाकर एवं नजर बचाकर धन-सम्पत्ति ले भागे, तो यह होता भी बहुत कम है, और दूसरे देश के बादशाह उनको नही छोड़ते, अपितु उन्हे अपने लाभ का साधन समझकर डरा-धमकाकर किसी आड़ मे या खुल्लम-खुल्ला उनकी लायी हुई धन-सम्पत्ति छीन लेते है और उनको बुरी तरह चूस लेते है। उनका दृष्टिकोण यह होता है कि जो धन-सम्पत्ति उन लोगो के पास है, वह खराज का धन है जो सर्व-साधारण के हित पर व्यय होना चाहिए, किसी एक अथवा दो व्यक्तियों को अपने इच्छानुसार उसे व्यय करने का अधिकार नही है। वास्तव मे बादशाहों के दूरदर्शी नेत्रो से कोई धन-सम्पत्ति किस प्रकार बच सकती है? ये लोग जब लोगों के गाढे पसीने की कमायी हुई धन-सम्पत्ति को नही छोडते तो खराज एवं सल्तनत के इस्तेमाल मे क्यों चूकेंगे, जहाँ शरा एवं प्रथा दोनों के ही अनुसार उन्हे हस्तक्षेप का अधिकार है।.......[1]

सक्षेप मे धन-धान्यसम्पन्न लोगों का बादशाह के पंजे से निकल भागने का विचार केवल मिथ्या है। वे अधिक से अधिक अपने प्राण ही बचा सकते हैं, किन्तु धन-सम्पत्ति ले भागना और किसी अन्य देश मे पहुँचकर उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करना उनकी बहुत बड़ी भूल है। जीविकोपार्जन एवं रोजी के लिए उनको प्राचीन शाही सेवाएँ पर्याप्त है जो उन्हे शाही वृत्ति का पात्र बनाती है और उनके आदर-सम्मान को भी सुरक्षित रखती है। यदि वे व्यापार एव कृषि मे हाथ डालें तो उनमे भी उन्हे सफलता प्राप्त हो सकती है, किन्तु इसके लिए उन्हे संतोष एवं धैर्य की आवश्यकता है।

(४२) बादशाह के दान-पुण्य में कमी ख़राज की कमी की द्योतक है

इसका कारण यह है कि सल्तनत, संसार के लिए एक बड़े बाज़ार के समान है और आबादी एवं सस्कृति इसी पर अवलम्बित है। यदि बादशाह धन एवं खराज को रोक ले और आवश्यक मदों पर व्यय न करे अथवा उसके पास धन तथा खराज

१. यहाँ मग़रिब के इतिहास के कुछ उदाहरण दिये गये है, जिनका अनुवाद नहीं किया गया।

हो ही नही, तो ऐसी दशा में बादशाह के सहायक एवं उसकी सेनावाले धन से रहित हो जाते है। फिर उनसे उनके सम्बधियो एवं सेवकों को जो कुछ आय होती है वह भी बन्द हो जाती है, कारण कि जब उनके व्यय मे कमी हुई तो उनसे सम्बधित सभी खर्चो मे कमी हो जाना परमावश्यक है। जब देश का समृद्ध वर्ग, जो शालीनता की जान होता है और जिस पर बाजारो की समृद्धि वास्तव मे निर्भर होती है, दान-पुण्य से वचित होने लगता है तो दरिद्रता का युग प्रारम्भ हो जाता है। व्यापारियो के लाभ मे कमी होने लगती हैं और फिर ख़राज मे भी कमी आ जाती है। ख़राज एव कर की वसूली के लिए यह आवश्यक है कि देश मे लेन-देन एव कारोबार का जोर हो। उद्योग-धधे तेजी से चल रहे हों। बाजारो मे रौनक एवं चहल-पहल हो। लोग लाभ के लोभ मे अधिक से अधिक पूँजी लगा रहे हों। यदि इस समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता मे कमी होती है तो समस्त हानि राज्य को सहन करनी पडती है। सल्तनत की आय शोचनीय दशा तक घट जाती है, कारण कि खराज की वसूली कम हो जाने पर सल्तनत की आय कम हो ही जानी चाहिए।

हम कह चुके है कि राज्य, संसार के लिए एक बडे बाजार के समान है। वह बाजारो की जड़ एवं नीव है और स्वय अपने आय-व्यय पर जीवित रहता है। यदि वह कगाल हो जाय और उसके व्यय घट जायें तो बाज़ार इत्यादि, जो उसी पर निर्भर है, ठडे पड़ जायेंगे। वास्तव मे प्रजा एवं बादशाह के बीच में धन-सम्पत्ति का उलट-फेर होता रहता है। धन-सम्पत्ति बादशाह से प्रजा तक पहुँचती है और फिर प्रजा द्वारा बादशाह तक आती है। यदि बादशाह कुछ व्यय न करे तो प्रजा अवश्य ही दरिद्र हो जायगी।

(४३) अत्याचार सभ्यता के विनाश का द्योतक है

लोगों की धन-सम्पत्ति का अपहरण उनकी आशाओं का अन्त कर देता है। उनकी धन-सम्पत्ति एकत्र करने की समस्त अभिलाषाएँ समाप्त हो जाती है। कारण कि वे समझ लेते है कि इधर माल हाथ लगा और उधर लुटा, मानो धन की प्राप्ति का फल निराशा हो। इसी प्रकार जब उनकी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं एव अभिलाषाएँ ठंडी पड़ जाती हैं तो वे धन कमाने से हाथ खीच लेते है। परिश्रम एवं प्रयत्न से पीछे हटते हैं। अत्याचार एवं शोषण यदि बड़े विस्तृत क्षेत्र मे हो रहा हो तो उसका प्रभाव भी विस्तृत होगा। लोग जीविकोपार्जन के समस्त साधनों की ओर से निराश

होकर बैठ रहेगे। इसके विपरीत यदि अत्याचार कम होगा तो उसका कुप्रभाव भी उसी के अनुसार कम तथा हलका होगा।

इधर यह भी सत्य है कि सभ्यता की उन्नति धन की अधिकता, बाजार एवं मडियो की चहल-पहल, लोगो का उद्योग-धधों मे व्यस्त होकर जीविकोपार्जन करने का प्रयत्न, परिश्रम एव दौड़-धूप पर निर्भर है। जब लोग जीविकोपार्जन की ओर से निराश एवं बद-दिल होकर, थककर बैठ जायें और धन-सम्पत्ति पैदा करने की ओर से हाथ खीच ले तो बाजार ठडे पड़ जाते है और देश की दशा शोचनीय हो जाती है। लोग जीविकोपार्जन एवं रोजी कमाने के लिए अन्य देशों को निकल जाते है। फलत: देश उजड़ने लगता है। नगर एवं क़सबे बसनेवालों से खाली हो जाते है। जब देश की दुर्दशा हो जाती है तो सल्तनत भी विनाश से बच नही सकती, कारण कि उसका अस्तित्व सभ्यता की उन्नति पर निर्भर है। यदि देश मे उपद्रव होता है और खराबी पैदा होती है तो इससे देश की सभ्यता शीघ्र एवं अवश्य ही प्रभावित होती है।

इस प्रसंग में मसऊदी की वह कहानी शिक्षाप्रद है, जो उसने फारसवालों के विषय मे लिखी है। इसमें मोबेजान (फ़ारस वालो का मुख्य धार्मिक नेता) दार्शनिक बहराम बिन बहराम को उल्लू की एक कहानी सुनाकर अत्याचार से रोकता है तथा असावधानी से चेताता है। वह लिखता है कि एक दिन बहराम ने एक उल्लू की आवाज सुनकर मोबेजान से पूछा कि "तुम समझते हो कि यह क्या कह रहा है?" उसने उत्तर दिया कि "जी हॉ! एक नर उल्लू किसी मादा उल्लू से विवाह करना चाहता है। वह अपने महर मे २० उजड़े हुए ग्रामों की माँग करती है। नर उल्लू इस शर्त को स्वीकार करते हुए कहता है कि यदि बहराम बादशाह का राज्य कुछ दिन और रह गया तो तू जो २० वीरान ग्राम ही चाहती है, मै तुझे सहस्रो वीरान गाँव दे दूँगा।" यह सुनकर बहराम एक दम चौक पड़ा और मोबेजान से एकान्त में पूछने लगा कि "बताओ, तुम्हारा इससे क्या तात्पर्य है?" उसने उत्तर दिया— "बादशाह! याद रखो कि देश की उन्नति, आदर-सम्मान एव उसका अस्तित्व धर्म के नियमों के पालन पर निर्भर है। इसका सम्बन्ध ईश्वर की आज्ञाकारिता पर कटिबद्ध होने और उसके आदेशों के अनुसार जीवन निर्वाह करने पर निर्भर है। धर्म के नियमों का अस्तित्व बादशाह के कारण है। बादशाह की इज्जत प्रजा पर निर्भर है। प्रजा का जीवन, धन-सम्पत्ति से है और धन-सम्पत्ति देश की आबादी एवं रौनक़ से प्राप्त होती है। आबादी न्याय एवं इंसाफ के सिद्धान्तों पर जिन्दा

रहती है। न्याय एवं इंसाफ एक तराज़ू का नाम है जिसको ईश्वर ने प्राणियो के लिए सिरजा है और उसकी नाप-तोल के लिए बादशाह को नियुक्त किया है। अब हे बादशाह! तुम जरा सोचो कि तुमने भूमि के स्वामियों को उनकी उन भूमियों से, जो उनको आबाद रखती थी और जो खराज अदा करके देश की आय में वृद्धि किया करती थी, वचित कर दिया है। तुमने उनकी भूमि को उनसे छीनकर अपने सेवकों, दासों एवं विश्वास-पात्रों को दे दिया है। उन लोगो ने भूमि को नष्ट किया और उजाड दिया। तुमने इसके दुष्परिणाम की ओर से उपेक्षा की और भूमि के सुधार की ओर कोई ध्यान न दिया। फिर उनसे इस कारण कि वे बादशाह के दरबारी एवं विश्वास-पात्र थे, खराज की वसूली मे भी उपेक्षा की। खेद है कि जो लोग खराज अदा करते तथा भूमि को आबाद करते थे, वे बेचारे अपनी भूमियों से वंचित होकर देश छोड-कर भाग गये और उन्होने वीरानो मे स्थान ग्रहण किया और वही जाकर बस गये। इस कारण देश की जनसख्या कम हुई। जमीने परती पड़ी रह गयी और उजड़ती गयी। देश की आय घट गयी। सेना एवं प्रजा नष्ट हो गयी। अन्त मे फ़ारस के आस-पास के राजाओ ने फ़ारस पर लालच की दृष्टि डालनी प्रारम्भ कर दी है, कारण कि वे समझ गये है कि फ़ारस के राज्य की नीव खोखली हो गयी है।"

बहराम ने जब यह करुणामय घटनाएँ सुनी तो वह अपने देश की दशा पर गौर करने लगा। उसने अपने विश्वासपात्रों को प्रदान की हुई जमीने छीनकर उनके प्राचीन स्वामियो को दे दी और प्राचीन प्रथाओं का पुनरुद्धार किया। जब भूमि के प्राचीन स्वामियो को उनकी भूमि मिल गयी तो वे उसे पुनः समृद्ध करने मे लग गये। उनमे से जो भूमि छिन जाने के कारण दरिद्र हो गये थे, वे सपन्न एव धनी बन गये। भूमि आबाद हो गयी। देश हरा-भरा एवं उन्नत हो गया। खराज वसूल करनेवालो के पास धन-सम्पत्ति के ढेर लग गये। सेना एव लश्कर के वैभव मे उन्नति हो गयी। शत्रु हताश हो गये। सीमातो पर सेनाओ के पहरे लग गये। बादशाह शान्तिपूर्वक अपने कार्यो मे व्यस्त हो गया। इस प्रकार बादशाह की भी दशा सुधरी और उसका राज्य सुव्यवस्थित हो गया, अतः इस कहानी से स्पष्ट रूप में यह निष्कर्ष निकलता है कि अत्याचार सभ्यता की जड़ काटता है, परिणामतः विनाश की विपत्ति सल्तनत पर टट पड़ती है और वह नष्ट हो जाता है।

चूँकि कभी-कभी बडे-बडे नगरों पर राज्य की ओर से घोर अत्याचार होने पर भी वे नष्ट नही होते, अतः इससे कोई भ्रम न हो जाना चाहिए। इसका कारण इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि अत्याचार एवं पीड़ित बस्तियों में विशेष सम्बन्ध होता

है। यदि नगर बहुत बड़ा और जनसंख्या अधिक होती है और उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला होता है, तो उस पर हुए अत्याचारों का प्रभाव कम दृष्टिगत होता है। सभ्यता में कमी तो प्रारम्भ हो ही जाती है, किन्तु शनैः-शनैः, क्योंकि नगर के मामले बहुत विस्तृत होते है और उसके कारोबार की संस्थाएँ देश के बहुत बड़े क्षेत्र तक पहुँची होती हैं, अतः देश की वीरानी के स्पष्ट चिह्न अधिक समय उपरान्त ही वहाँ दृष्टिगत होते है। कभी-कभी ऐसा होता है कि नगर मे विनाश के चिह्न गुप्त रूप से प्रारम्भ हो जाते है, किन्तु इससे पूर्व कि अत्याचारी सल्तनत के हाथों नगर पूरी तरह नष्ट हो, स्वयं सल्तनत नष्ट हो जाती है और दूसरी सल्तनत उसका स्थान ले लेती है। यह दूसरी सल्तनत आबादी मे नयी जान डालती है और वह उन दोषों एवं ख़राबियों को, जो दृष्टि से ओझल होकर नगर की जड़े काट रही थी, दूर करती हैं। इस प्रकार विनाश के गुप्त चिह्नों पर आवरण ही पड़ा रह जाता है और नगर देखते-देखते अपनी खोयी हुई शोभा पुनः प्राप्त कर लेता है। लोग समझते है कि नगर अपनी पहली दशा में ही चल रहा है। संक्षेप मे अत्याचार का प्रभाव सभ्यता पर अवश्य पड़ा करता है और फिर उसकी विनाशक लपटे राज्य को भी छू लेती हैं।

साथ-साथ यह भी याद रखना चाहिए कि अत्याचार किसी की धन-सम्पत्ति छीन लेने और किसी की भूमि पर अकारण अधिकार जमाकर उसे भूमि से वचित कर देने तक ही सीमित नही होता, अपितु उसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता है। किसी का दूसरे की सल्तनत एवं हुकूमत को छीन लेना, अपहरण, अनुचित माँग, किसी को वह उत्तरदायित्व सौप देना जिसकी अनुमति शरीअत द्वारा नही प्राप्त है, यह सब अत्याचार के विभिन्न रूप है। जिसने यह सब कुछ किया उसने अत्याचार किया। इसी प्रकार जिसने अकारण किसी पर कर लगाया, अथवा इस सम्बध मे अनुचित रूप से कठोरता प्रदर्शित की, उसने अत्याचार किया। जिसने किसी का माल लूटा-खसोटा, उसने अत्याचार किया, जिसने किसी के न्याय की प्राप्ति मे विघ्न डाला, उसने भी अत्याचार किया। साधारणतः लोगों की धन-सम्पत्ति का अपहरण करनेवाला अपहरणकर्त्ता ही है। इन सबके सभी दुष्कर्मो का दुष्परिणाम राज्य को भोगना पडता है, कारण कि उनसे सभ्यता मिटती है, लोगों की आशाओ एव अभिलाषाओं पर पानी फिर जाता है, तथा लोगो के जोश एवं उत्साह ठडे पड़ जाते है। जब सभ्यता मिटती है तो सल्तनत भी, जिसकी शोभा एव अस्तित्व उसी पर आधारित है, नष्ट हो जाती है।

शरीअत ने जो अत्याचार को हराम कर दिया है, तो उसमें भी यही रहस्य है कि यदि अत्याचार ससार मे प्रचलित होता है तो ससार की सभ्यता मिटती है, वीरानी फैलती है और मानव जाति की वे जड़े, जिनकी रक्षा का शरीअत ने प्रत्येक प्रकार सेध्यान रखा है, कटती है। विशेष रूप से पाँच आवश्यक उद्देश्यो, अर्थात् धर्म, आत्मा, जीवन, बुद्धि, संतान एव धन की रक्षा से भी इस सिद्धात का विशेष सम्बन्ध है। जब ज्ञात हो गया कि अत्याचार संसार की सभ्यता को मिटाकर मानव-जाति के विनाश का कारण बनता है, तो उसे बड़ा ही ख़तरनाक समझना चाहिए। इसी प्रकार उसका दड भी बहुत बड़ा होता है। क़ुरान शरीफ एवं हदीस दोनों उसकी बुराइयों एवं तत्सम्बन्धी दड से परिपूर्ण हैं। अत्याचार एवं अन्य पापों मे अन्तर है, अतः उसके सम्बन्ध में शरीअत के आदेश भी पृथक् है। इसी प्रकार परस्त्री-गमन, हत्या एवं मदिरापान के अपराध के लिए अलग-अलग दंड निश्चित किये गये है, कारण कि इन अपराधो पर प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार प्राप्त है और अत्याचार तो वही कर सकता है जिसमे कुछ शक्ति भी हो। शक्तिहीन किसी पर क्या अत्याचार करेगा। वह उस अत्याचार का, जो उस पर हो रहा हो, निराकरण नही कर सकता। इसी दृष्टिकोण से अत्याचार की घोर निदा की गयी है और उसके लिए कठोर दड निश्चित किये गये हैं, ताकि प्रत्येक व्यक्ति, जिसमे शक्ति हो, अत्याचार की ओर कदम बढ़ाते हुए कॉपे।

हमने जो इस तथ्य का उल्लेख किया तो इस पर यह सन्देह न किया जाय कि शरीअत ने युद्ध एवं हत्याकांड के लिए कठोर दंड निश्चित किये है, हालॉ कि युद्ध एव हत्याकाड शक्तिशाली लोगों के अत्याचार है। इस सन्देह का उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है। एक यह कि शरीअत की ओर से केवल उस आचरण पर दड दिया जाता है जिससे किसी व्यक्ति अथवा किसी के धन का विनाश हो। इस्लाम के अधिकांश आलिमो का यही मत है और यह स्थिति उस समय हो सकती है जब कि अपराध हो चुका हो। युद्ध मे यह बात नही होती, अत. इसके लिए दड किस प्रकार निश्चित हो सकता है। दूसरी तरह से उत्तर यह है कि युद्ध करनेवाले को अधिकार-सम्पन्न नही कहा जा सकता। अधिकार-सम्पन्न अत्याचारी तो वह है जो बिना किसी रोक-टोक के किसी पर पूरा अधिकार रखता हो और यही अधिकार वास्तव मे सभ्यता के उजड़ने का कारण बनता है। युद्ध करनेवाले मे यह शक्ति नही होती। वह तो केवल डरा-धमकाकर धन ऐठना चाहता है और शरा के अनुसार उससे रक्षा की प्रत्येक को शक्ति प्राप्त है, अतः उसकी शक्ति सभ्यता के विनाश का कारण नही बन सकती।

सभ्यता को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए सबसे बड़ा अत्याचार प्रजा से बेगार में काम लेना है। रोजी के अध्याय मे हम इस बात को स्पष्ट करेंगे कि लोगो के काम-काज तथा व्यापारिक कारोबार उनके लिए धन-सम्पत्ति एवं जीविकोपार्जन के आवश्यक साधन है। इसे इस प्रकार समझ लीजिए कि लोगो को जो कुछ भी रोजी मिलती है वह उनके काम-काज एव कारोबार का मूल्य है। बस्तियो मे लोग परिश्रम एव मजदूरी करके ही जीविकोपार्जन करते है। जब उनकी मेहनत एवं मजदूरी का उनको कोई बदला अथवा पारिश्रमिक न मिले तो उनके जीविकोपार्जन के द्वार बन्द हो जाते है और उनके प्रयत्न एव परिश्रम व्यर्थ हो जाते है। जीविकोपार्जन एव रोजी से उनके हाथ खाली हो जाते है। उनकी समस्त धन-सम्पत्ति छिन जाती है और वे बरबाद हो जाते है। यदि इसी प्रकार का व्यवहार उनसे बार-बार किया जाय तो उनकी आशाएँ एव अभिलाषाएँ समाप्त हो जाती है।

इससे भी बडे अत्याचार का उदाहरण, जो सभ्यता को भी नष्ट करे और सल्तनत को भी तबाह करे, यह है कि सल्तनत लोगो की धन-सम्पत्ति को राज्य के दबाव द्वारा सस्ते मूल्य पर क्रय करे और फिर जबरदस्ती अधिक से अधिक मूल्य पर उनको दे डाले। कभी ऐसा होता है कि सस्ते मूल्य पर चीजे क्रय करके देश मे चारो ओर बॉट दी जाती है और एक निश्चित अवधि पर उनका मूल्य लोगों को अदा करना पडता है। जब लोग राज्य द्वारा अधिक मूल्य पर क्रय किये हुए माल को बाजार मे लाते है तो वह बाजार के भाव पर कम मूल्य मे बिकता है। इस प्रकार राज्य के अत्याचार के कारण व्यापारी हर प्रकार से हानि उठाते है, अर्थात् मॅहगा लेते है और सस्ता बेचते है। इस तरह उनकी मूल पूँजी भी समाप्त होने लगती है। कभी-कभी यह कष्ट बहुत व्यापक होता है। प्रत्येक स्थानीय व्यापारी, चाहे वह दूकानदार हो चाहे बाहर का खरीदार, मेवा बेचनेवाला हो चाहे अनाज-बेचनेवाला, शिल्पकार हो अथवा कोई अन्य व्यवसायवाला, इस अत्याचार से नही बचता। इस प्रकार निरन्तर कष्ट मे फॅसे रहने के कारण बेचारे व्यापारियों की मूल पूँजी की ही हानि होने लगती है। अब उनके लिए व्यापार बन्द कर देने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही रहता। उनकी आशाओ का सहारा उनकी मूल पूँजी थी। जब तक वह बाकी रही, लाभ की आशा मे वे उसे बार-बार कारोबार मे लगाते रहे और हानि उठाते रहे, किन्तु जब पूँजी ही समाप्त हो गयी, तो विवश होकर कारोबार से हाथ उठा लेना पड़ता है। उधर बाहरी व्यापारी भी लेन-देन मे हानि उठाकर उस ओर मुख नही करते। फलतः देश मे निराशा फैल जाती है।

प्रजा का रोजगार नष्ट हो जाता है, कारण कि प्रजा की जीविका का साधन क्रय-विक्रय एव व्यापारिक लेन-देन है। जब बाजार एव कारोबार मे हानि होने लगती है तो सल्तनत का खराज भी कम हो जाता है और धीरे-धीरे वह पूर्णत: समाप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि सल्तनत के मध्य-युग अथवा उसके बाद के युग मे खराज का अधिकाश भाग चुगी अथवा करो द्वारा प्राप्त होता है। जब खराज को भी ठेस लगती है तो सल्तनत के ताने-बाने ढीले पड जाते है और वह नष्ट हो जाती है। उधर सभ्यता नष्ट-भ्रष्ट होती है। फिर ये सारे विघ्न एव हानियाँ शनै.-शनै. परदे के पीछे अपना कार्य करती रहती है और हुकूमत एवं सभ्यता की जडे खोखली करती रहती है, और किसी को इनका ज्ञान तक नही होता। यह विनाश उस समय होता है जब सल्तनत कमाने के साधन एकत्र करके प्रजा की धन-सम्पत्ति लूटने-खसोटने लगती है और उनको नगा एवं कगाल कर देती है। यदि वह अकारण अत्याचार एवं जुल्म द्वारा लोगों की धन-सम्पत्ति छीनने-झपटने पर तुल जाय, उनके अन्त पुर का अपमान करे, उनके प्राणों को नष्ट करे, उनकी मर्यादा को ठेस पहुँचाये, तो सल्तनत मे क्षण भर मे विघ्न पड़ जाता है और देखते-देखते राज्य का तख़्ता उलट जाता है। देश मे ऐसी अशान्ति फैल जाती है जो रोके नही रुकती। इस प्रकार इन्ही विनाशकारक खतरो को दृष्टि मे रखते हुए शरीअत ने उपर्युक्त अत्याचारो का निराकरण किया है और उन्हे हराम बताया है। क्रय-विक्रय मे लोगो की धन-सम्पत्ति पर अनुचित रूप से अधिकार जमाने का निषेध किया है, ताकि उन खतरो की रोक-थाम हो सके जो सभ्यता को नष्ट करते है एव अर्थव्यवस्था की जड़ काटते है।

अब रही यह बात कि बादशाह लोगों की धन-सम्पत्ति को अकारण क्यो ऐठने एव उन्हे चूसने लगता है, तो इसका कारण यह है कि बादशाहों की धन-सम्पत्ति एकत्र करने की लिप्सा बढ जाती है। वे धन के भूखे हो जाते है। उनका भोग-विलास उनके व्यय को दुगुना-चौगुना कर देता है, जिसे चलाने के लिए उन्हे अधिक से अधिक खराज की आवश्यकता होती है। उनकी सीमित आय से उनका जीवन-निर्वाह नही होता। विवश होकर वे ऐसे उपाय सोचते एव ऐसे मार्ग टटोलते है जिनसे उनकी आय उनके बढ़ते हुए व्यय को पूरा कर सके, किन्तु उनकी विलासप्रियता किसी एक केन्द्र एव सीमा पर नही ठहरती, अपितु नित्य-प्रति बढती रहती है। इसी के साथ-साथ वे खराज मे भी वृद्धि करते रहते है और अधिक से अधिक धन की इच्छा किया करते है। वे जितना प्रजा को धन की वसूली के लिए निचोड़ते है,

उतना ही राज्य मे विघ्न बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि राज्य एक दिन समाप्त हो जाता है और कोई शत्रु उसको हड़प कर लेता है।

(४४) सल्तनतों में बादशाह के पास पहुँचने पर किस कारण प्रतिबन्ध लगता है और सल्तनत के पतन की ओर अग्रसर होने पर यह प्रथा किस प्रकार जोर पकड़ती है

ज्ञात होना चाहिए कि सल्तनत प्रारम्भ मे अधिक आडम्बरों एवं बनावट से दूर तथा अछूती रहती है, कारण कि सल्तनत को शुरू मे अपने पॉव जमाने एव अपना सम्मान तथा प्रभुत्व फैलाने के लिए "असबियत" की अत्यधिक आवश्यकता होती है तथा "असबियत" "बदवियत" चाहती है और "बदवियत" आडम्बरो एवं सास्कृतिक दिखावटी कार्यो से दूर ही रहती है। यदि सल्तनत धार्मिक सिद्धान्तो पर पूर्णतः स्थापित है तो धार्मिक आवश्यकताओं के कारण, वह देश के सास्कृतिक अधिनियमों से बचती ही रहती है। यदि सल्तनत केवल अपहरण एवं अन्य देशों को विजय करने के सिद्धान्तों पर खड़ी है, तो उस समय "बदवियत" ही बाधक होती है और उसको टेढ़े विधानो एवं नियमों मे नही उलझने देती, अतः जब तक सल्तनत, "बदवियत" के युग से गुजरती है, सुल्तान सीधा-सादा बदवी रहता है। लोगों से बिना किसी दिखावे के मिलता-जुलता है। बादशाह के पास लोगों के आने-जाने की आम इजाजत होती है। इसके बाद जब बादशाह कुछ आदर-सम्मान प्राप्त कर लेता है तो साधारण लोगों से पृथक् रहने लगता है और केवल अपने विश्वास-पात्रो तथा दरबारियो से ही खुलकर मिलता-जुलता है। वह साधारण लोगों के साथ मिलने की ओर से उपेक्षा करने लगता है और जहॉ तक होता है, उनसे बचने का प्रयत्न किया करता है। द्वार पर पहरे बैठाता है और एक द्वारपाल रखता है, जिसका कर्तव्य यह होता है कि ऐसे लोगों को द्वार मे न घुसने दे जिन पर बादशाह को विश्वास न हो, चाहे वे उसके मित्र हों अथवा उच्च पदाधिकारी।

जब सल्तनत उन्नति करती हुई आगे बढ़ती है तो अपने लिए शासन-विधान एवं राज्य के सिद्धान्त बनाती है। बादशाह भी अपना रग बदलता है। बड़े-बड़े सुल्तानों के समान आदते पैदा कर लेता है। शाहाना आन-बान एवं विशेष नियमो तथा आदतों से घिर जाता है। शाही दरबार के शिष्टाचार के नियम निश्चित होते है। शाहाना अभिवादन एवं वार्तालाप के नियमों एवं सिद्धातों का आविष्कार किया जाता है और फिर उन पर बड़ी कठोरता से आचरण होता है। उनका बाल-बराबर भी विरोध

नहीं किया जाता। यदि किसी ने भूलकर भी तत्सम्बन्धी नियमों एवं आदेशों की अवहेलना की, तो बादशाह के हृदय मे अत्यधिक क्रोध उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी वह बदला लेने तथा कष्ट पहुँचाने तक के लिए उद्यत हो जाता है। अतः बादशाह के विशेष मित्र ही इन नियमों से भली-भाँति परिचित होते है और उनकी भूल-चूक की सम्भावना नही रहती। इस कारण अन्य लोगों को बादशाह के पास उपस्थित होने से रोका जाता है कि कहीं कोई बादशाह के पास पहुँचकर असभ्य रूप से व्यवहार न कर बैठे और फिर बादशाह के कोप एवं रोष का पात्र न बने। अतः इस भेद-भाव के लिए भी एक हाजिब नियुक्त होता है जो पहले प्रकार के हाजिब से पृथक् होता है और उसका विशेष उत्तरदायित्व रहता है।

प्रथम हाजिब बादशाहों एवं सुल्तानो के पास उनके विश्वास-पात्रों को भीतर प्रविष्ट होने की अनुमति देता है और अन्य लोगों को द्वार पर ही रोक लेता है। दूसरा हाजिब उस स्थान पर खड़ा रहता है जहाँ राज्य के उच्च पदाधिकारी आसीन होते है। वह इस दरबार में उनके अतिरिक्त किसी साधारण व्यक्ति को प्रविष्ट नहीं होने देता। प्रथम प्रकार का हाजिब सल्तनत के प्रारम्भिक युग मे होता है, जब कि वह आडम्बरपूर्ण तथा बनावटी रूप नही धारण करती।

मुआविया, अब्दुल मलिक एव बनी उमय्या के खलीफाओं के युग मे इसी प्रथम हाजिब का पता चलता है और शब्दकोश एव शब्दोत्पत्ति के अनुसार इसी को वास्तव मे हाजिब कह सकते हैं। इसके उपरान्त जब बनी अब्बास का प्रमुख प्रभुत्व प्राप्त हुआ और उन्होने शाहाना ऐश्वर्य एवं गौरव तथा ठाट-बाट का प्रयोग शुरू किया, तो खलीफाओ मे बादशाहों सरीखी आदतें पैदा हुई और दूसरा हाजिब भी रखा गया। फिर अब्बासी राज्यकाल मे दरबार के लिए दो भवन निश्चित हुए। एक विशेष व्यक्तियों के लिए और दूसरा सर्वसाधारण के लिए।

फिर सल्तनतो मे एक तीसरा हाजिब भी नियुक्त हुआ, जिसका कर्त्तव्य उपर्युक्त हाजिबो से पृथक् था। यह प्रथा उस समय प्रारम्भ हुई जब बादशाह के अधिकार छीनकर उसे एक कोने मे बैठा देना निश्चित कर लिया गया और जब बादशाह के विश्वासपात्र एव उच्च पदाधिकारी उसके किसी वंशज को नाम के लिए सिंहासनारूढ़ करके उस पर पूरा-पूरा अधिकार रखना चाहते थे। वे सर्वप्रथम उसकी संतान, मित्रो एव विश्वासपात्रो को बादशाह के पास जाने से रोक देते हैं और उनके प्रवेश पर कठोर प्रतिबंध लगा देते है। वे बादशाह को यह समझा देते है कि यदि आप इन लोगों से स्वतंत्रतापूर्वक मेल-जोल रखेंगे तो आपका सम्मान एवं आपका आतंक

लोगों के हृदय से समाप्त हो जायगा और अनुशासन सम्बन्धी नियमों में बड़ा विघ्न पडेगा। इस युक्ति का उद्देश्य यह होता है कि बादशाह अन्य लोगों से भेट न कर सके और उसे एकान्तवास की ऐसी आदत पड़ जाय कि उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन न हो सके।

इस प्रकार उन्हे अपने उद्देश्यों में सफलता मिल जाती है और वे सब पर स्वतत्र रूप मे अधिकार प्राप्त कर लेते है।

तीसरी हिजाबत प्रभुत्व एवं स्वतंत्र अधिकार प्राप्त करने का साधन होती है। अधिकांश सल्तनतो का जब अन्तिम काल प्रारम्भ होता है, तो यह प्रथा भी प्रारम्भ होती है। यह प्रथा इस बात का खुला चिह्न है कि राज्य अब अपनी वृद्धावस्था मे प्रविष्ट हो गया है और समाप्त होनेवाला है। बादशाह को स्वय ऐसी दशा मे अपने प्राण का भय होता है, कारण कि जब सल्तनत कमजोर पडती है और बादशाह की सतान का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है तो राज्य के उच्च पदाधिकारी एवं विश्वासपात्र राज्य की बागडोर सँभाल लेते है और पूर्ण रूप से स्वाधीनता का दावा करने लगते है। स्वाधीनता की आदत स्वाभाविक रूप से सभी को होती है। वे इससे किसी प्रकार नही बच सकते, और फिर ऐसी दशा मे, जब कि प्रभुत्व एव स्वतत्र अधिकार प्राप्त करने के सभी साधन एकत्र हों।

(४५) एक सल्तनत का दो सल्तनतों में विभाजित हो जाना

यह बात ज्ञात रहनी चाहिए कि सल्तनत का दो भागो मे विभाजित हो जाना उसकी कमजोरी के चिह्नो की प्रथम कडी है। जब सल्तनत की अत्यधिक उन्नति हो जाती है और भोग-विलास एव समृद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो बादशाह समस्त गौरव एव श्रेष्ठता तथा माहात्म्य की मूर्ति बन जाता है और किसी को अपना साझीदार नही समझता। किसी अन्य का लेश मात्र भी सहायक बनना उसे रुचिकर नही होता। वह उन साधनो की जड काटने लगता है जो किसी समय बराबरी का दावा कर बैठते है। उधर उन्ही लोगो मे से कोई व्यक्ति ऐसी प्रतिकूल दशा देखकर बादशाह के पास से भाग निकलता है और देश के किसी दूरस्थ भाग मे पहुँचकर उन लोगो से मिल जाता है जो उसी की श्रेणी मे सम्मिलित होते है, अर्थात् बादशाह उनकी ओर से भयभीत होता है और वे बादशाह की ओर से। ये सब एक भावनाओं एव एक ही विचार के लोग राज्य के दूरस्थ भागों मे अपना प्रभाव एवं प्रभुत्व जमाने लगते है और केन्द्रीय राज्य का क्षेत्र संकीर्ण होने लग जाता है। फलतः बादशाह का

यह निकल भागनेवाला निकटवर्ती सम्बन्धी अपना एक स्थायी राज्य स्थापित कर लेता है और अपने प्रभुत्व को बढ़ाते-बढाते बादशाह के राज्य के टुकड़े कर डालता है और कुछ भागों पर स्वय अधिकार जमा लेता है।

देख लीजिए कि एक समय अरबी-इस्लामी सल्तनत की पूरी शक्ति बनी हुई थी। उसकी हुकूमत दूर-दूर तक फैली हुई थी। अब्द मनाफ़ की "असबियत" समस्त मुजर क़बीलो पर अपने अधिकार जमाये हुए थी। उस समय किसी को खिलाफत के विरुद्ध साँस लेने की शक्ति न हो सकी। केवल खारजियो ने कुछ सिर उठाया था और वह भी देश एव राज्य की अच्छाई मे नही, किन्तु उनकी भी दाल नही गली, कारण कि उनके मार्ग मे ऐसी "असबियत" बाधक थी जिसका वे मुकाबला न कर सकते थे। उसने इनका दमन कर दिया। इसके बाद जब बनी उमय्या के हाथ से राज्य निकलकर बनी अब्बास के हाथ मे पहुँचा, तो वे दीर्घ काल तक बड़े ऐश्वर्य एव गौरव से राज्य करते रहे। अन्त मे उन्होने शाही आडम्बर एवं प्रदर्शन को उनकी चरम सीमा पर पहुँचा दिया, उनकी सल्तनत सीमान्त से केन्द्र की ओर सिमटने एव सिकुड़ने लगी और नित्य-प्रति उनके प्रभुत्व का क्षेत्र कम होता गया। अब्दुर्रहमान प्रथम अद्दाखिल ने उन्दुलुस पर अधिकार जमा लिया और एक स्थायी राज्य की नीव डाली। फिर बढते-बढते उसने पूरी सल्तनत के आधे भाग पर अधिकार जमा लिया और एक इस्लामी राज्य के स्थान पर दो राज्य स्थापित हो गये। मगरिब मे इदरीस ने अपना अधिकार जमाया और राज्य की नीव डाली। उसके उपरान्त उसके पुत्र ने अवरबह, मगीलह एव जनाता बरबरो पर अधिकार जमाकर दोनो मगरिबो[1] को अपने अधीन कर लिया। फिर अब्बासी राज्य का क्षेत्र और भी सीमित हुआ और इफरीकिया मे अगालेबा ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली। उसके बाद शीआ[2] उठ खड़े हुए और कुतामा एव सिनहाजा ने उनकी सहायता की और सब मिलकर इफरीकिया, मगरिब, फिर मिस्र, शाम तथा हिजाज पर छा गये और इदरीसियों पर भी अधिकार जमा लिया। इस प्रकार उन्होने सल्तनत के तीन भाग कर डाले।

अब्बासियो की सल्तनत तो अरब के केन्द्रीय स्थान एव उनके मूल स्थान पर स्थापित रही, किन्तु उधर बनी उमय्या ने उन्दुलुस मे अपने प्राचीन राज्य के नमूने पर नये राज्य की रूपरेखा तैयार की। उबैदीईन ने इफरीक़िया, मिस्र, शाम एव हिजाज़

१. मोराको तथा अलजीरिया।
२. फ़ातेमी (उबैदीईन)।

पर अपना अधिकार जमाया। ये तीनों सल्तनतें कुछ दिन तो इसी प्रकार स्थापित रही, फिर अन्त मे एक साथ अथवा कुछ आगे-पीछे समाप्त हो गयी।

इसी प्रकार अब्बासियों के राज्य के अन्य टुकड़े हुए। हमदानियों ने अपना पृथक् राज्य स्थापित किया। बनू उक़ैल जजीरे तथा मोसल में उनके उत्तराधिकारी बने। मिस्र एवं शाम मे तूलूनी तथा उनके उत्तराधिकारी बनू तुगश (इखशीदी) हुए, सुदूर पूर्व मे मावरउन्नहर तथा खुरासान में सामानी हुए, अलवी[१] दैलम तथा तबरिस्तान मे हुए। अन्त मे दैलम ने फ़ारस, दोनों इराकों, यहाँ तक कि बगदाद तथा ख़लीफा तक पर अधिकार जमा लिया। फिर सलजूक आये। उन्होने उस पूरे भू-भाग पर अधिकार जमा लिया। बाद मे उन्नति के शिखर पर पहुँचकर, जैसा कि इतिहास से पता चलता है, उनकी सल्तनत के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये।

मग़रिब एवं इफरीकिया के सिनहाजा राज्य की भी यही दशा हुई। जब बादीस बिन मसूर के समय मे यह चरम सीमा को पहुँच गयी तो बादीस के चाचा हम्माद ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मगरिब को अवरास पर्वत, तलेमसान तथा मालवीया नदी से पृथक् करते हुए अपना राज्य अलग स्थापित कर लिया। उसने कुतामह पर्वत मे मसीलह के समीप कलआ बसाया और वहाँ निवास करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही तित्तेरी पर्वत के अशीर पर भी अधिकार जमा लिया। इस प्रकार बादीस से अलग होकर उसका राज्य चला। बादीस का वश क़ैरवान तथा उसके आस-पास राज्य करता रहा, यहाँ तक कि दोनों की शक्ति नष्ट हो गयी।

मुवह्हेदीन के राज्य की भी यही दशा रही, वह भी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचने के उपरान्त जब सिकुड़ने लगा तो इफरीकिया मे बनू अबी हफ़स ने विद्रोह करके अपना स्थायी राज्य स्थापित कर लिया और भावी संतानो के लिए उसके आस-पास अपना प्रभाव बढ़ाया। जब उनका गौरव चरम सीमा पर पहुँच गया तो दूर-दूर तक उन्ही का डंका बजने लगा। उन्ही की संतान मे से, अबू जकरिया यहया बिन अस्सुल्तान अबी इसहाक इबराहीम, उनके चौथे खलीफा ने पश्चिमी प्रान्तो पर अधिकार जमा लिया और बजाया कान्सटैन्टाइन एवं आस-पास के स्थान मिलाकर अपना राज्य अलग स्थापित कर लिया। इस प्रकार राज्य दो भागों मे विभाजित हो गया। फिर बजाया के हाकिमों ने तूनुस को भी अपने प्रभुत्व के अधीन कर लिया। इसके उपरान्त राज्य उसकी संतान मे विभाजित हो गया।

१. ज़ैदिया।

कभी-कभी सल्तनत दो-तीन से भी अधिक भागों में बँट जाती है। जिस प्रकार उन्दुलुस मे मुलूकुत्तवाएफ के प्रभुत्व के समय राज्य के कई भाग हो गये, वही दुर्दशा पूर्व मे अजम के बादशाहों एवं इफरीकिया मे सिनहाजा की सल्तनतों की हुई। सिन-हाजा के राज्य की तो इतनी दुर्दशा हो गयी कि अन्त में इफरीकिया के प्रत्येक किले में एक स्वतत्र शासक होने लगा। यही दुर्दशा इफरीकिया मे जरीद एवं ज़ाब की हुई जिसका अध्ययन आप आगे के पृष्ठों मे करेंगे।

सक्षेप मे प्रत्येक सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचकर कमजोरी एव पतन के गर्त की ओर बढ़ती है और अपना दामन केन्द्र की ओर समेटने लगती है। राज्य के निवासियों मे से कोई न कोई व्यक्ति उठ खड़ा होता है और उसके कुछ भागों पर अधिकार जमाकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है।

(४६) सल्तनतों में कमज़ोरी पैदा होने के उपरान्त अटल हो जाती है

हम पहले के पृष्ठों मे उन समस्त कारणो का एक-एक करके उल्लेख कर चुके है जो सल्तनत के पतन एव उसकी अन्तिम नाजुक दशा के सूचक होते है। साथ ही साथ यह भी लिखा जा चुका है कि ये कारण सल्तनत म स्वत: एव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते है। इस प्रकार सल्तनत मे शक्तिहीनता उत्पन्न होना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि प्राणियो के लिए वृद्धावस्था। यह ऐसा रोग है जिसका उपचार असम्भव है, कारण कि यह स्वाभाविक बात है और स्वाभाविक बात अटल है और उसका उपचार सम्भव नही। कुछ बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ अपने विवेक से ताड़ जाते है कि सल्तनत मे शक्तिहीनता उत्पन्न होने लगी है और वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था मे प्रविष्ट हो रही है। वे इस बात को समझकर कि इस कमजोरी का अन्त किया जा सकता है, उसके दूर करने एव सुधार करने का प्रयत्न करने लगते है। उन्हे यह भ्रम रहता है कि सल्तनत की शोचनीय दशा पूर्वगामी सुल्तानों की अपेक्षा असावधानी का परिणाम है हालाँ कि उनके इस विचार मे कोई तथ्य नही होता और इस ओर सुधार के प्रयत्न करने से भी कोई लाभ नही होता, कारण कि सल्तनत की कमज़ोरी एव पतन स्वाभाविक होता है। इस कार्य मे किसी का कोई हाथ नही होता और उसे रोकने मे वे आदते बाधक होती है जो पूर्ण रूप से राज्य या व्यक्ति की प्रकृति का अश बन जाती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति अपने पिता एवं पितामह को रेशम एवं दीबा धारण करते हुए पाता है और सुनहरे अस्त्र-शस्त्र, जड़ाऊ ज़ीन का प्रयोग करते हुए देखता है, तो वह उन बातों से कैसे बच सकता है और अपने पूर्वजों के चलन

के विरुद्ध किस प्रकार कोई कार्य कर सकता है। वह लोगों से मेल-मिलाप का व्यवहार एवं मोटे तथा साधारण वस्त्रो का प्रयोग किस प्रकार कर सकता है। यदि वह प्रचलित प्रथाओ का विरोध करते हुए साधारण वस्त्र धारण करे, लोगो से मेल-मिलाप रखे, तो उसके मार्ग मे उसके वश की परम्पराएँ बाधक होगी और इन अस्वाभाविक कार्यो के कारण लोग उसे पागल समझने लगेगे। उसकी सल्तनत पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। नबी एवं पैगम्बर लोगो की प्राचीन आदतो एव प्रथाओं को उस समय तक किसी प्रकार न बदल सकते थे, जब तक कि दैवी सहायता उनके साथ न होती।

कभी-कभी शाही "असबियत" अपना जोर खो चुकती है और उसके साथ बादशाह का ऐश्वर्य एव गौरव भी लोगो के हृदय से मिट जाता है। ऐसी अवस्था मे प्रजा सुल्तान के प्रति धृष्टता प्रदर्शित करने लगती है और विरोध पर तुल जाती है। सल्तनत अपने गौरव की रक्षा का यद्यपि अत्यधिक प्रयत्न करती है, किन्तु वह मिट जाती है। कभी-कभी पतन के समय उसमे कल्पनातीत अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे भ्रम होता है कि उसकी कमजोरी समाप्त हो गयी और शोचनीय दशा का अन्त हो गया, किन्तु तथ्य कुछ और ही होता है। उसकी असामयिक शक्ति-वृद्धि उसके अन्त की द्योतक होती है। इस प्रकार सल्तनत एकाएक शक्ति एव प्रभुत्व दिखाकर सर्वदा के लिए समाप्त हो जाती है। इसकी तुलना उस दीपक से की जा सकती है जो बुझने के समय एकाएक चमक उठता है। भ्रम होता है कि वह तेजी से जल उठा, किन्तु वास्तव में बुझ रहा होता है। इस प्रकार उसकी यह चमक उसके बुझने का चिह्न होती है।

(४७) सल्तनत के विभाजित होने के कारण

सल्तनत का स्थायित्व दो कारणो पर निर्भर होता है। प्रथम, उस ऐश्वर्य एवं "असबियत" पर, जिसे सेना के नाम से सम्बोधित किया जाता है, द्वितीय, धन पर जो सेना के अस्तित्व का आधार है। बादशाह अपने जीवन की उन्नति भी इसी से करता है और इससे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मे भी सहायता प्राप्त करता है। जब सल्तनत का अन्त होनेवाला होता है तो ये दोनों ही आधार खोखले हो जाते है।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, सल्तनत की नीव "असबियत" के आधार पर पडती है और उसी के द्वारा वह अपने पाँव जमाती है। यह "असबियत" भी वह मुख्य "असबियत" होती है जिसमे सब "असबियते" आकर लीन हो जाती है। सब छोटी-छोटी "असबियतो" का सगम यही बड़ी तथा व्यापक "असबियत" होती है।

इस व्यापक 'असबियत' को हम शाही वंश की "असबियत" कह सकते हैं। जब सल्तनत सरलता के क्षेत्र से निकलकर बनावट एवं समृद्धि के क्षेत्र मे प्रविष्ट होती है और बादशाह को अपने स्थायित्व की चिन्ता होने लगती है, तो वह सर्वप्रथम अपने वश-वालो, निकटवर्तियों एवं सम्बंधियों पर हाथ डालता है, जो उसके साथ बराबरी का दावा करते है और अपने आपको उसका साझीदार समझते है। वह सल्तनत में उनके पद छीनता है, उनका सम्मान घटाता है और उनकी शक्ति को तोड़ता है। इस प्रकार बादशाह के वश के लोग दो घातक रोगों से ग्रस्त हो जाते है। सर्वप्रथम वे भोग-विलास एवं आराम की इच्छा करने लगते है, फिर वे बादशाह के क्रोध की दृष्टि का लक्ष्य वन जाते है। अन्त में बादशाह जरा-जरा-से बहाने पर उनकी हत्या कराने लगता है। इसका कारण यह है कि प्रारम्भ मे बादशाह के सम्बन्धी राज्य के बड़े-वड़े पदो पर अधिकार जमा लेते है और प्रमुख अधिकारी बन जाते है। उनके हृदय मे यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि उनके समान कोई अन्य व्यक्ति नही है। उन्हे अपने ऊपर अभिमान हो जाता है। बादशाह उनका यह रग-ढंग देखकर खटक जाता है और भय करने लगता है कि कही ऐसा तो नही कि एक दिन वे राजसिहासन पर भी हाथ डालने लगे, अत. वह उनके विनाश का प्रयत्न करने लगता है। उनका अपमान भी प्रारम्भ कर देता है। उनसे उनकी धन-सम्पत्ति भी छीनता है और भोग-विलास से, जिसके वे दीर्घ काल से आदी हो चुके होते है, वंचित करता है, फलतः शाही वंश के बहुत-से लोग नष्ट हो जाते है और उनकी संख्या पर्याप्त रूप से घट जाती है। शाही "असबियत" का भी पतन होने लगता है। यही वह "असबियत" थी जो किसी समय समस्त "असबियतो" को अपने मे लीन कर लेती थी, वे सब उसी के अधीन एवं वशवर्ती थी। अब उसका ताना-बाना ढीला पड़ जाता है तो उसकी शक्ति एवं उसका बल छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो जाता है। फिर बादशाह अपने इष्ट मित्रो एवं आश्रितो तथा उपकृत लोगों से पृथक् एक नयी "असबियत" स्थापित करता है, किन्तु उसमे पहली "असबियत" के समान शक्ति नही होती, कारण कि न ये लोग खून के रिश्ते से वचित एवं अजीजदारी के सम्बन्ध से दूर होते है।

हम पूर्व मे उल्लेख कर चुके है कि "असबियत" का पूरा ऐश्वर्य एवं गौरव अज़ीज़-दारी एव खूनी रिश्ते से उत्पन्न होता है। ईश्वर ने इस सम्बन्ध को वह शक्ति प्रदान की है जो किसी अन्य सम्बन्ध को नही, अतः बादशाह अपने वश से पृथक् होकर प्राकृतिक सहायको एवं मित्रों से वंचित हो जाता है। जब अन्य "असबियत" वाले वशों को इसका पता चलता है तो वे धृष्ट हो जाते है और बादशाह के विश्वासपात्रों एवं सहचरों

को दबाने लगते हैं। बादशाह के समक्ष इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रह जाता कि एक-एक करके वह उनकी भी हत्या करा दे और उनके पद अन्य पदाधिकारियों को प्रदान कर दे। उस समय वे लोग भी दो ओर से बड़ी गम्भीर परिस्थितियो मे घिर जाते हैं। सर्वप्रथम उनके भोग-विलास का जीवन ही उनको कुछ कम नष्ट नही देता, फिर बादशाह का निष्ठुर हाथ उनको विनाश के घाट उतारता है, यहाँ तक कि उनकी "असबियत" की शक्ति एवं उनका सम्मान दोनों ही समाप्त हो जाते हैं और वे दीन एवं विवश हो जाते हैं। उनकी सख्या अलग घट जाती है, फलत: राज्य की विभिन्न दिशाओं एव सीमान्तों में प्रतिरक्षा के साधन कमजोर पड़ जाते हैं। फिर उनकी रक्षा का उचित प्रबंध नही हो सकता। प्रजा यह देखकर किसी-न-किसी सल्तनत का दावा करनेवाले के नेतृत्व में विद्रोह की पताका बुलन्द करती है और विद्रोही सल्तनत की विभिन्न दिशाओं को अपने उपद्रवों के केन्द्र बना लेते हैं, कारण कि वे यह समझ लेते हैं कि उन दिशाओं मे राज्य की प्रतिरक्षा के साधन कम हैं और केन्द्र से अधिक सेना पहुँचने की संभावना नही, और न इसकी कि उसकी एक आवाज़ पर सब लोग दौड़ पड़ेंगे और सब उसकी पताका के नीचे आ जायँगे।

इस प्रकार राज्य के दूरस्थ भाग विद्रोहियों के अधिकार मे आते जाते हैं और केन्द्रीय राज्य का क्षेत्र सीमित होता जाता है। यहाँ तक कि कभी-कभी विद्रोही केन्द्र के समीप पहुँच जाते हैं। इस प्रकार सल्तनत अपने विस्तार एवं ऐश्वर्य के अनुमार कभी दो सल्तनतो मे और कभी तीन अथवा इससे भी अधिक टुकड़ों मे बँट जाती है। बादशाही "असबियत" के अतिरिक्त कोई अन्य "असबियत" राज्य की बागडोर सँभाल लेती है तथा अपनी वीरता का लोहा सबसे मनवाकर उन्हे पराजित कर देती है।

एक समय जब इस्लामी राज्य की शक्ति बढी तो उसकी सीमाएँ उन्दुलुस एव हिन्द तथा चीन तक पहुँच गयी थी। उधर बनी उमय्या के नाम का डका पूरे अरब में बजता था। बनी अब्द मनाफ की "असबियत" बड़ी ही व्यापक थी। उनका आदेश अरब के प्रत्येक भाग पर चलता था, यहाँ तक कि एक बार सुलेमान बिन अब्दुल मलिक ने दमिश्क से आदेश निकाला कि करतबा[1] मे अब्दुल अजीज बिन मूसा इब्ने नुसैर का वध कर दिया जाय, तो किसी को भी उसकी आज्ञाओ के उल्लंघन का साहस न हुआ। जब बनी उमय्या भोग-विलास मे ग्रस्त रहने लगे और उनकी "असबियत" कमजोर हुई तो सल्तनत एव प्रभुत्व ने उनका साथ छोड़ा और बनी अब्बास ने उनका स्थान ले

१. कारडोवा।

लिया। उन्होंने बनी हाशिम की संख्या को कम करना प्रारम्भ किया और सैयिदों एवं अलवियों की हत्या शुरू कर दी, यहाँ तक कि अब्द मनाफ़ की "असबियत" का किसी को पता भी न रहा। अरबों ने उन पर आक्रमण कर दिया और राज्य के दूरस्थ भागो मे बहुत-से अन्य दावा करनेवाले लोग राज्य के अधिकाश प्रदेश दबा बैठे। बनी अग़लब ने इफ़रीकिया में अपने पाँव जमा लिये और उन्दुलुस में बनी उमय्या स्वाधीन हो गये। इस प्रकार सल्तनत के कई टुकड़े हो गये। बनू इदरीस ने मगरिब पर छापा मारा और बरबर उनकी सहायतार्थ उठ खड़े हुए, कारण कि उन्हें उनकी "असबियत" पर पूरा भरोसा था। उन्हे ज्ञात था कि केन्द्र से उन पर आक्रमण सम्भव ही नही। सक्षेप मे "असबियत" की कमजोरी पर राज्य के दूरस्थ भागों मे राज्य के विभिन्न प्रतिस्पर्धी खड़े हो जाते हैं और वे सल्तनत के सीमान्तों पर अधिकार जमा लेते है। उनका प्रभुत्व वहाँ जम जाता है। इस प्रकार सल्तनत विभिन्न भागों मे विभाजित हो जाती है। एक शक्ति कई शक्तियों मे बँट जाती है। कभी-कभी सल्तनत के बहुत अधिक टुकड़े हो जाते हैं और मूल सल्तनत राजधानी तक ही सीमित होकर रह जाती है। इधर सल्तनत के विश्वासपात्र समृद्धि एवं भोग-विलास मे डूबे हुए तथा अमीरी के नशे मे चूर, विनाश के गर्त में पड़े रहते हैं। सल्तनत टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन की अन्तिम साँस लेती रहती है।

कभी ऐसा होता है कि शक्तिहीनता के बावजूद सल्तनत का जीवनकाल बढ़ जाता है और उसको अपने अस्तित्व के लिए "असबियत" की कोई आवश्यकता नहीं होती, कारण कि अमीरों एवं वालियों के हृदय मे उसके ऐश्वर्य एवं गौरव का सिक्का बैठ जाता है। सैकड़ों वर्षो की अधीनता मे वे बादशाहों की आज्ञाकारिता के आदी हो चुकते है। उनमे किसी को यहाँ तक पता नही होता कि उनकी अधीनता कब से प्रारम्भ हुई। वे होश सँभालते ही अपनी ग्रीवा को बादशाह के सामने झुकते देखते हैं। ऐसी दशा मे बादशाह को "असबियत" की कोई आवश्यकता नही होती। वह राज्य-व्यवस्था एव शासनप्रबध के संचालन मे अनुशासित एवं अव्यवस्थित, दोनो प्रकार की सेनाओ का प्रयोग कर लेता है। आज्ञाकारिता की जो भावनाएँ प्रजा के स्वभाव में प्रविष्ट हो जाती हैं उनसे उसे बड़ी सहायता मिलती है। किसी को आज्ञाओं के उल्लंघन का साहस नही होता और विद्रोह के लिए कोई सिर नही उठा सकता। यदि कोई अल्पदर्शी ऐसा कर भी बैठे तो सब लोग उसके विरोध पर उद्यत हो जाते है और बादशाह से पहले ही वे उसे दबा देते है। ऐसी अवस्था में कोई ऐसी कल्पना ही नहीं करता और यदि कोई ऐसा विचार करे तो उसका साहस उसका साथ नही देता।

सक्षेप मे अधीनता एवं आज्ञाकारिता का कुछ ऐसा वातावरण फैल जाता है कि सल्तनत विद्रोह एव राजनीतिक झगड़ों से सुरक्षित होकर अमन व चैन की वंशी बजाती रहती है। किसी के हृदय में उसके विरोध की कल्पना तक नही होती, अतः जिस प्रकार "असबियत" एवं खानदानी ज़ोर व शक्ति से सल्तनत शान्ति एव चैन का जीवन व्यतीत करती है, उसी प्रकार इस समय भी उपद्रव, विद्रोह एवं राजनीतिक अशान्ति से सुरक्षित होकर चलती चली जाती है। किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आखिर हर चीज का जीवन-काल निश्चित होता है। एक समय ऐसा आता है कि यह सल्तनत पतन की अवस्था मे ही चलते-चलते समाप्त हो जाती है और किसी बाहरी शक्ति को इसे समाप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को भोजन न मिले तो उसकी प्राकृतिक गरमी समाप्त होती जायगी और उसकी मृत्यु हो जायगी, उसी प्रकार सल्तनत की व्यक्तिगत कमज़ोरी अन्त में उसे एक दिन नष्ट कर देती है और मृत्यु को पहुँचा देती है।

अब रही यह बात कि सल्तनत की आर्थिक दशा क्यों गिर जाती है, तो इसका यह उत्तर है कि प्रारम्भ में सल्तनत पर "बदवियत" का रग चढा होता है। प्रजा के साथ नरमी का व्यवहार किया जाता है। व्यय के सम्बन्ध मे संयम से काम लिया जाता है। लोगो की धन-सम्पत्ति के अपहरण के विषय मे सावधानी का बरताव किया जाता है। खराज एव कर की वृद्धि की चिन्ता नही की जाती। धन-सम्पत्ति एकत्र करने के लिए सोच-विचार नही करना पड़ता। वालियों एव आमिलों से हिसाब लेने मे बाल की खाल नही निकाली जाती। अपव्यय से दूर रहा जाता है। इस दशा में सल्तनत को अधिक धन की आवश्यकता नही पड़ती। किन्तु जब "बदवियत" का युग समाप्त होता है और उसके साथ उसके प्रभाव का अन्त हो जाता है और सल्तनत को ऐश्वर्य एव गौरव हासिल हो जाता है, तो आडम्बर एवं भोग-विलास भी देश मे प्रचलित हो जाते हैं। बादशाह एव प्रजा के व्यय मे भी वृद्धि होने लगती है। धन पानी के समान बहाया जाने लगता है। ऐसी अवस्था मे इस बात की आवश्यकता होती है कि सेना तथा राज्य के पदाधिकारियों के वेतनों एव वृत्ति मे पर्याप्त वृद्धि की जाय। क्योंकि आडम्बरों की कोई सीमा नही होती और वे बढ़ते ही रहते हैं, अतः साथ-साथ लोगो का व्यय भी बढता है। बादशाह एवं राज्य के पदाधिकारी तो सर्वप्रथम इस क्षेत्र मे प्रविष्ट होते ही है, किन्तु प्रजा भी अपव्ययिता से नही बच सकती, कारण कि प्रजा अपने शासकों का अनुकरण करती है। इस कारण बादशाह बाजार की चीजों पर कर लगाता है, ताकि आर्थिक कमी की पूर्ति कर सके। एक ओर तो उसको राज्य के बढ़ते हुए व्यय

एवं सेना के बढ़े हुए वेतन को पूरा करने की चिता होती है और दूसरी ओर वह अपनी प्रजा को विलास-प्रिय पाकर समृद्ध समझने लगता है। फिर वह उनसे किस कारण हाथ खीचे ? आडम्बरो एवं भोग-विलास की और भी वृद्धि हो जाती है। तब करों एवं चुंगियों की आय भी अपर्याप्त मानी जाती है। यह समय वह होता है जब सल्तनत दूर-दूर तक फैली हुई होती है। उसका गौरव अपनी चरम सीमा पर होता है। इसी कारण प्रजा किसी बात का विरोध नही कर सकती, अतः बादशाह नाना प्रकार से प्रजा की धन-सम्पत्ति लूटने लगता है—व्यापारिक करो से भी और अन्य अच्छे-बुरे साधनों से भी। साधारण से साधारण सन्देह पर वह बडी-बडी रकमे वसूल कर लेता है। सेना सल्तनत को "असबियत" मे कमजोर पाकर उद्दड हो जाती है। बादशाह विवश होकर अत्यधिक दान एव धन-सम्पत्ति प्रदान करके उसको दबाये रखता है कि वह सिर न उठाये। उधर दीवानी के पदाधिकारियों एवं कर तथा खराज वसूल करनेवालो की धन-सम्पत्ति उनके पास से भागती जाती है, कारण कि खराज बहुत बड़ी सख्या मे प्राप्त होता है और वह सब उन्ही के हाथो मे पहुँचता है। उनका सम्मान बढ़ा हुआ होता है, अतः सुल्तान उन पर भी अपने दाँत तेज करता है और उनको निचोड़ने की चिन्ता मे लगता है। वे ईर्ष्यावश एक-दूसरे की चुगली खाते हैं और इस प्रकार एक-एक करके लुटते एव नष्ट होते जाते हैं। जब वे दीन एवं दरिद्र हो जाते हैं तो सल्तनत की रौनक भी समाप्त हो जाती है। सल्तनत जब उनको चूस चुकती है तो अन्य धनी लोगो पर लालच की दृष्टि डालती है और उन्हे चूसने लगती है।

उस समय सल्तनत शक्तिहीन हो जाती है और उसके ऐश्वर्य एव गौरव मे पर्याप्त अन्तर पड़ जाता है, अतः उनके सुधार हेतु बादशाह अधिक से अधिक धन व्यय करता है। वह समझ लेता है कि सल्तनत की शोचनीय दशा मे 'तलवार वाले' ही सल्तनत की अधिक से अधिक सहायता कर सकते हैं, अतः वह अपने सैनिको पर विशेष दृष्टि डालता है। सेना के इनाम, वृत्ति एव वेतन हेतु उसे धन की हर समय लिप्सा रहती है। वह उसको प्रसन्न रखना तथा उससे काम लेना चाहता है, किन्तु उसकी यह राजनीति व्यर्थ सिद्ध होती है और उसके उद्देश्य की पूर्ति मे उसकी सहायक नही होती। सल्तनत उसी प्रकार शक्तिहीन होती जाती है। सल्तनत के दूरस्थ भागो के लोग उपद्रव एव विद्रोह प्रारम्भ कर देते हैं और सल्तनत से बात-बात पर झगड़ा करने लगते हैं। उधर सल्तनत की हर चाल असफल और हर युक्ति व्यर्थ सिद्ध होती है। नित्य-प्रति उसकी बात बिगडती जाती है, यहाँ तक कि वह विनाश के गर्त मे पहुँच जाती है। यदि कोई सल्तनत का प्रतिस्पर्धी खड़ा हो जाता है तो उसको वह सुगमतापूर्वक छीन लेता है, अन्यथा इसी

प्रकार घुलते-घुलते वह समाप्त हो जाती है, जिस प्रकार दीपक की बत्ती तेल समाप्त होने के उपरान्त स्वतः ठंडी हो जाती है। उसे किसी बुझानेवाले की आवश्यकता नही होती।[1]

(४८) नयी सल्तनतों की स्थापना

एक प्राचीन जमी-जमायी सल्तनत जब कमजोरी की साँस लेकर समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर दूसरी नयी सल्तनत स्थापित होती है, तो उसकी स्थापना अधिकाश दो प्रकार से होती है। एक तो इस प्रकार कि जब सल्तनत कमजोर पड़ने लगती है तो उसके दूर के स्थानों के आमिल एवं वाली अपने-अपने स्थान पर स्वतंत्र शासक बन जाते हैं और प्रत्येक अपने प्राप्त किये हुए छोटे-से राज्य को अपनी क़ौम, सतान और अपने सहायकों मे चलाता है। फिर उनके राज्य के भाग शनैः-शनैः बढ़ते जाते हैं और उनके शासन को शक्ति प्राप्त हो जाती है। कभी ऐसा होता है कि यह सब आमिल एव वाली एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं। अब इनमे जो अधिक शक्तिशाली होता है वही बाजी ले जाता है और दूसरे के राज्य पर अधिकार जमा लेता है। इस प्रकार जब बनी अब्बास की सल्तनत कमजोर पड़ी और राज्य के दूर के भागों पर उसका प्रभाव कम होता गया, तो बनू सामान ने मावराउन् नहर मे, बनू हमदान ने मोसल एव शाम मे और बनू तूलून ने मिस्र मे स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिये। इसी प्रकार उन्दुलुस मे जब बनी उमय्या का राज्य छिन्न-भिन्न हुआ तो विभिन्न समूहों के राज्य स्थापित हो गये। वालियों एवं आमिलों ने स्वाधीनता प्राप्त करके राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर उनके राज्य उनकी संतान एवं सम्बंधियों में एक के बाद दूसरे मे पहुँचते रहे।

इस दशा में प्राचीन हुकूमतों और नयी हुकूमतो मे संघर्ष नही होता। युद्ध एवं रक्तपात का द्वार नही खुलता, अपितु हर आमिल एवं वाली अपने-अपने स्थान पर दासता त्यागकर स्वाधीनता के वस्त्र धारण कर लेता है। उसके हृदय मे कभी यह लोभ

१. **कुछ पोथियों में इसके बाद एक अन्य अध्याय है जो संभवतः बाद में जोड़ा गया है। उसका शीर्षक है—"एक सल्तनत का अधिकार सर्वप्रथम अपनी अन्तिम सीमा तक फैल जाता है और फिर शनैः-शनैः सिकुड़ने लगता है, यहाँ तक कि सल्तनत घुलकर समाप्त हो जाती है।" इस नये अध्याय में पिछले अध्यायों की पुनरावृत्ति की गयी है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।**

नहीं पैदा होता कि आक्रमण करके असली राज्य को अपने अधीन बना ले और समस्त देश पर प्रभुत्व प्राप्त कर ले। ये आमिल केवल केंद्रीय शासन की कमजोरी से लाभ उठाते हैं। जब दूर के स्थान केंद्र के प्रभाव से निकल जाते है और वहाँ तक सैनिक-शक्ति नही पहुँच सकती, तो आमिल केवल अपने-अपने स्थान पर स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए इसको सुनहरा अवसर समझते हैं।

नये राज्य के स्थापित होने का दूसरा रूप यह है कि सल्तनत के आस-पास की कौमे अथवा क़बीले कोई धार्मिक भावना लिये हुए और मजहबी प्रचार के बल-बूते पर अथवा प्रभुत्व एवं "असबियत" की अपार शक्ति अपने साथ लिये हुए वर्त्तमान राज्य के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं और देश को अपने अधीन करना चाहते है। उधर तो उनकी व्यक्तिगत शक्ति एव प्रभुत्व की भावनाएँ उनके हृदय मे समायी रहती है, इधर सल्तनत की शोचनीय दशा उनकी दृष्टि के सामने होती है। संक्षेप मे ये दोनो बाते उनके आक्रमण का कारण बनती है। अन्त मे वे एक दिन सल्तनत के स्वामी बन जाते हैं।

(४९) सतत प्रयत्न द्वारा, न कि अचानक छापा मारकर, नयी सल्तनतें प्राचीन जमी-जमायी सल्तनत पर अधिकार प्राप्त किया करती हैं

अभी-अभी उल्लेख हुआ था कि नया राज्य दो प्रकार से स्थापित होता है। एक यह कि देश के दूरवर्ती स्थान छोटे-छोटे राज्यों मे विभाजित हो जाते है। वाली एव आमिल अपने-अपने स्थान पर हाकिम बन बैठते है। उनका उद्देश्य यह नही होता कि वे पूरी सल्तनत पर अधिकार जमा लें, अपितु वे उस प्रदेश को, जो उनके अधीन होता है, स्वतंत्र रूप से अधिकार में कर लेना ही पर्याप्त समझते है और उसी से संतुष्ट होकर बैठ रहते है। दूसरा रूप सल्तनत का दावा करना एव विद्रोह करना होता है। इसमें आक्रमणकारी खुल्लमखुल्ला हुकूमत का दावा करके उठते हैं। उनकी सहायता हेतु प्रभुत्व एवं "असबियत" की अपार शक्ति होती है, जो उन्हे युद्ध के लिए प्रेरित करती है। उसी के बल-बूते पर वे डटकर युद्ध करते है। विजय एवं पराजय की तराजू के पलड़े डगमगाते रहते हैं। यहाँ तक कि उन्हे विजय प्राप्त हो जाती है। वैसे यदि वे जान तोड़कर अचानक आक्रमण कर दे तो उन्हे कभी भी विजय प्राप्त नही हो सकती, पराजय निश्चत रहती है।

जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, इसका कारण यह है कि युद्ध में सफलता आकस्मिक घटनाओं पर निर्भर होती है। सेना की सख्या, अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध की कुशलता कितनी ही संतोषजनक क्यों न हो, वे सब विजय हेतु हुई आकस्मिक घटनाओं का

मुकाबला नहीं कर सकती। इसी कारण युद्ध के लिए धूर्तता एवं विश्वासघात बड़े लाभदायक होते है। हदीस मे उल्लेख हुआ है—"युद्ध चालबाजी एव धूर्तता का नाम है।" यह बात बार-बार स्पष्ट की जा चुकी है कि समस्त प्रजा प्राचीन सल्तनत की आज्ञाकारिता एवं अधीनता की आदी हो जाती है। यह बात नये राज्य की स्थापना मे बाधक होती है,कारण कि उसके समर्थको के विचार भिन्न होते है। नये राज्य के विश्वास-पात्र उसकी आज्ञाकारिता को परम कर्त्तव्य समझते है। किन्तु सर्वसाधारण की तुलना मे उनकी सख्या ही कितनी होती है कि उनकी आज्ञाकारिता से कोई अच्छा निष्कर्ष निकल सके। अधिकाश सख्या ऐसे लोगों की होती है जिनका मत एकनिष्ठ एवं सगठित होता है, कारण कि वे दीर्घकाल से प्राचीन सल्तनत के आज्ञाकारी रह चुके होते है, अतः उनके विरुद्ध उनका पॉव तेजी एव वीरता से नही उठता। इसी कारण नये राज्य की स्थापना करनेवाला शत्रु पर एक बारगी आक्रमण नही करता, अपितु धैर्य से कार्य लेता है और उस समय तक आक्रमण को टालता रहता है जब तक कि शनैः-शनैः प्राचीन सल्तनत कमजोर एवं सुस्त न पड़ जाय। जब बादशाह की कौम तथा कबीलेवालो का विश्वास अपनी सल्तनत से उठ जाता है और नयी दावेदार हुकूमत के साथ उनकी सहानुभूति स्थापित हो जाती है, तब निःसन्देह नये राज्य की विजय एव सफलता का मार्ग खुलता है और उसको पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त नये राज्य के सस्थापक को एकाएक सफलता न प्राप्त होने का एक कारण यह भी है कि प्राचीन सल्तनत धन-सम्पत्ति एव खाद्य सामग्री से मालामाल रहती है। क्योकि राज्य दीर्घकाल से चला आता है, उसे समृद्धि एवं भोग-विलास का जीवन प्राप्त होता है, कर एवं खराज अधिक-से-अधिक हासिल होते है, जो अन्य सल्तनतों को प्राप्त नही होते। अतः अच्छे-से-अच्छे घोड़ों से उनकी अश्वशाला भरी रहती है, उत्तम प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो से शस्त्रागार परिपूर्ण होते है, देश एवं राज्य का ऐश्वर्य तथा गौरव चरम सीमा पर होता है, बादशाह की ओर से कभी प्रसन्नतापूर्वक और कभी अप्रसन्न होकर निरन्तर दान-पुण्य होता रहता है। इन सब बातों से शत्रु उस सल्तनत से आतंकित एवं भयभीत रहता है और एकाएक उस पर हाथ डालने से डरता है। उधर नये राज्य के सस्थापकों का हाल सुनिए। वे इन उपर्युक्त समृद्धि एवं सस्कृति सम्बन्धी विषयों से अपरिचित एव अनभिज्ञ होते हैं। वे दरिद्रता, फाके एवं सरलता के आदी होते हैं, अतः जब प्राचीन सल्तनत की आन-बान एवं गौरव देखते अथवा सुनते है, तो एकदम हतोत्साह हो जाते हैं और खुलकर युद्ध एवं संग्राम से जान चुराने लगते हैं। अतः शनैः-शनैः सल्तनत को वे छोटी-छोटी झड़पों से सताने लगते है, यहाँ तक कि

प्राचीन सल्तनत का दीपक स्वतः बुझने लगता है। वह एक वृद्ध की भाँति अपने जीवन की घड़ियाँ गिनने लगती है और "असबियत" के जोर एवं खराज की वसूली मे अत्यधिक कमी आ जाती है। फिर इस सुनहरे अवसर को नया राज्य हाथ से नही जाने देता और अधिक प्रतीक्षा के उपरान्त तत्काल ही प्राचीन सल्तनत पर अधिकार जमा लेता है।

नये राज्य के तुरन्त सफल न होने का एक कारण यह है कि दोनों सल्तनतो के अनुयायियो के वश एव परिवार के चरित्र एव स्वभाव मे जमीन-आसमान का अन्तर होता है। नये राज्य के पदाधिकारियो को अपने उद्देश्यो मे जो सफलता प्राप्त होती है अथवा उसकी आशा होती है तो उस पर वे बडा गर्व करते हैं और फूले नही समाते। इस प्रकार दोनो पक्षों मे बाह्य एवं आतरिक रूप से बड़ी दूरी एव वैमनस्य रहता है। इसी कारण से चढाई करनेवालों को प्राचीन राज्य की गुप्त तैयारियो एवं प्रयत्नों का पता नही चल पाता और उन्हे एकदम कोई निर्णय करने का साहस नही होता, अतः वे शनैः-शनैः सल्तनत की जड़े खोदते रहते है और उसके जोर को धीरे-धीरे तोडते रहते है, यहाँ तक कि सल्तनत के पतन के आदेश ईश्वर की ओर से आ जाते है और उसकी प्राकृतिक दशा समाप्त हो जाती है। हर दिशा से उसमे कमजोरी एव विघ्न दृष्टिगत होने लगते है। अब नये राज्य के सहायकों को प्राचीन सल्तनत की कमजोरी का पता चलता है और उनमे साहस पैदा होता है। फिर वे सल्तनत के विभिन्न इलाके एव भाग दवाकर अपनी शक्ति और बढा लेते हैं। तदुपरान्त उनका साहस इतना अधिक बढ जाता है कि वे अन्तिम युद्ध के लिए भी तैयार हो जाते है और साधारण छेड-छाड को समाप्त कर देते है, कारण कि अब शत्रु की शक्ति के निराधार विचार उनके सकल्प को कमजोर नही करते। अन्त मे वे तत्काल पूरी सल्तनत पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते है।

इस प्रकार बनी अब्बास के इतिहास मे आप पढ़ेगे कि कब से उनसे सहानुभूति रखनेवालों एव उनके सहायकों ने खुरासान मे खिलाफत का प्रचार प्रारम्भ कर रखा था और अपनी मॉगो का नारा लगा रहे थे,किन्तु अन्त मे १० वर्ष अथवा उससे भी अधिक समय के उपरान्त उन्हे सफलता प्राप्त हुई और वे उमय्या राज्य पर छा गये। अलवियों[1] को देखिए कि उन्होंने तबरिस्तान मे दैलमियो को अपना पक्षपाती बनाकर बनी अब्बास के विरुद्ध कब से खिलाफत का दावा कर रखा था, किन्तु काफी अधिक समय के उपरान्त इनको वहाँ आस-पास मे सफलता प्राप्त हुई। इसी प्रकार जब ये समाप्त हुए और दैलम

१. जैदियों।

फ़ारस एवं दोनों इराक़ों की ओर अग्रसर हुए तो वर्षों प्रयत्न के उपरान्त इसफ़हान एवं फ़ारस पर अधिकार जमा लेने मे सफल हुए और फिर बाद में ख़लीफ़ा को भी दबा लिया।

यही दशा उबैदीईन की हुई कि कुतामा बरबरों में अब्दुल्लाह् शीई ने उनका प्रचार दस वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया था। इस अवधि मे इफरीकिया मे बनी अगलब का प्रभाव बढ़ता रहा, यहाँ तक कि उबैदीईन अन्त मे पूरे मगरिब को दबा बैठे, फिर मिस्र की ओर बढ़े और लगभग ३० वर्ष तक उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करते रहे। बार-बार उन पर आक्रमण होते और बगदाद एव शाम से उनकी प्रतिरक्षा हेतु जल तथा स्थल मार्ग से सेनाएँ पहुँचती। फिर कही उन्होंने इस्कन्दरिया, फ़ुय्यूम तथा मिस्र के ऊपरी भाग पर अधिकार जमाया। तदुपरान्त उनका प्रचार हिजाज तक पहुँचा और मक्के-मदीने मे भी उनके दूत कार्य करने लगे। इसके उपरान्त उनके सरदार जौहर कातिब ने अपार सेना लेकर मिस्र पर आक्रमण किया और उस पर भी अधिकार जमाया तथा बनू तुगश की सल्तनत की भी नीव खोद डाली एवं क़ाहेरा की स्थापना की। तत्पश्चात् उनका ख़लीफा मुइज़्ज़-ले-दीनिल्लाह् सिहासनारूढ़ हुआ और वह इस्कन्दरिया पर अधिकार के ६० वर्ष बाद तक राज्य करता रहा।

इसी प्रकार सल्जूक मावराउन् नहर पहुँचकर सामानियों पर एकाएक अधिकार न जमा सके, अपितु ३० वर्ष तक निरन्तर सुबुक्तिगीन[१] के वंश से खुरासान मे युद्ध करते रहे और फिर कही जाकर उन पर अधिकार जमा सके। उन्होंने वहाँ से बगदाद की ओर अपनी बागे फेरी और बहुकालिक सघर्ष के उपरान्त बगदाद विजय किया।

तातारियों को भी इसी स्थिति का सामना करना पडा। ६१७ हि० (१२२०–२१ ई०) मे उत्तरी जगलों से उनका तूफान उठा और ४० वर्ष के दीर्घकाल के संघर्ष के उपरान्त वे बगदाद की सल्तनत को विजय कर सके।

मगरिब के लम्तूना ने भी मुराबेतीन के साथ मिलकर दीर्घकाल के उपरान्त मग़रावा के बादशाहो को अपने अधीन किया। फिर मुवह्हेदीन लम्तूना के विरुद्ध उठ खड़े हुए और लगभग ३० वर्ष के घोर युद्ध के उपरान्त उनकी राजधानी मराकश पर मुवह्हेदीन ने अपना झडा गाड़ा। तत्पश्चात् जनाता में से बनी मरीन मुवह्हेदीन

१. नासिरुद्दीन सुबुक्तिगीन ९७७ ई० मे ग़ज़नी का बादशाह हुआ। उसने हिन्दुस्तान पर भी आक्रमण किया। इस प्रकार पंजाब के पश्चिमी भाग से ख़ुरासान तक के भाग उसके राज्य मे सम्मिलित हो गये। उसकी मृत्यु ९९७ ई० में हुई।

के विरुद्ध उठ खड़े हुए और ३० वर्ष अथवा उससे कुछ कम या अधिक अवधि मे फ़ास पर अधिकार जमाकर उनको राज्य से पृथक् कर सके। फिर युद्ध मे ३० वर्ष और व्यतीत किये, तब कही जाकर वे मुवह्हेदीन की राजधानी मराकश पर अधिकार जमा सके। इन सब बातों का वर्णन उन सुल्तानों के इतिहास मे लिखा हुआ है।

सक्षेप में किसी नये राज्य की स्थापना एवं पुराने राज्य के उखाडने तथा नष्ट करने में बहुत अधिक समय लगता है। इस अवधि मे आक्रान्त लोग पूर्ण प्रयत्न कर चुकते हैं तब कही जाकर देश मे उनके पाँव जमते हैं। किन्तु इस्लामी विजयों का उदाहरण प्रस्तुत करके जिस तथ्य का हमने प्रतिपादन किया है, उसका खडन न किया जाय। यह सत्य है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के तीन-चार वर्ष उपरान्त ही मुसलमानों ने फारस एव रूम[1] का विनाश कर डाला और उनके विस्तृत राज्य का समूल उच्छेदन कर दिया, किन्तु यह सब मुहम्मद साहब का चमत्कार था कि इधर तो मुसलमान अपने धर्म की सत्यता पर संतुष्ट होने के कारण इतने उत्तेजित हो गये कि जेहाद मे प्राण त्यागने को एक साधारण बात समझने लगे और दूसरी ओर मुसलमानो के शत्रुओ के हृदय मे आतक एवं साहसहीनता उत्पन्न हो गयी। अतः इन्ही कारणो से यह अस्वाभाविक एवं असाधारण घटना घट सकी और देखते-देखते मुसलमानों ने दृढ़ राज्यों को धूल मे मिला दिया तथा साधारण प्रथानुसार उन्हे अपने पाँव जमाने मे अधिक समय नही लगा। जब यह अचानक विजय असाधारण प्रकार से प्राप्त हुई तो इसे चमत्कार ही कहा जायगा और मुहम्मद साहब का मोजजा। स्वाभाविक विधियों की तुलना चमत्कारों से नही की जा सकती और न उन्हे सामने रखकर चमत्कारों की आलोचना ही की जा सकती है।

(५०) सल्तनत के अन्तिम काल में देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है, संक्रामक रोग फैलते है और अकाल पड़ते हैं

यह बात स्पष्ट हो गयी कि सल्तनत अपने आदिम काल मे राज्य मे नरमी से काम लेती है और सबके साथ बड़ा ही उत्तम व्यवहार करती है। यदि सल्तनत धार्मिक दृष्टिकोण पर स्थापित है, तो धार्मिक आवश्यकताओं के वशीभूत होती है, किन्तु "बदवियत" सल्तनत के लिए प्राकृतिक रूप से बड़ी सहायक रहती है। वह उसे सद्-व्यवहार एव सदाचरण पर स्थापित रखती है। जब सल्तनत का व्यवहार प्रजा के प्रति प्रशसनीय होता है तो प्रजा के हृदय मे आशाएँ बढ़ जाती है और वह प्रसन्नतापूर्वक देश भर

१. बैजण्टाइन।

मे फैल जाती है। देश की जनसंख्या घनी हो जाती है। संतान की सख्या बढ़ जाती है, किन्तु यह सब कुछ शनैः-शनैः होता है। एक अथवा दो शताब्दियों मे जनसख्या बहुत अधिक हो जाती है। जब दो शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती हैं तो सल्तनत की स्वाभाविक स्थिति अन्तिम सीमा को प्राप्त हो जाती है। देश की जनसख्या बहुत ही अधिक हो जाती है और नित्यप्रति उसमे वृद्धि होती रहती है।

हमने इससे पूर्व जो वर्णन किया, उसे सामने रखते हुए यह सन्देह न कीजिए कि जब राज्य के अन्तिम दिनों मे सल्तनत की ओर से प्रजा पर अत्याचार बढ़ता है ओर कठोरता प्रारम्भ होती है, तो जनसख्या किस प्रकार बढेगी। पिछला वर्णन निःसन्देह ठीक है और दोनों में कोई विरोध नहीं। वास्तव मे जब राज्य की ओर से देश की जनसख्या पर अत्याचार होने लगते हैं और फिर ख़राज मे कमी होना प्रारम्भ होता है तो जनसंख्या निःसन्देह कम होने लगती है। किन्तु इस कमी के चिह्न अधिक समय बाद दृष्टिगत होते हैं, क्योकि कमी शनैः-शनैः होती है, एकदम नही कि उसका पता चल जाय। इसका यह कारण है कि प्राकृतिक घटनाओं का आगम धीरे-धीरे ही होना परमावश्यक है।

सल्तनत के अन्तिम काल में अकाल इतने बढ़ जाते हैं कि लोग कृषि करना छोड़ देते है, अधिकांश तो इस कारण कि राज्य के करो एव खराज की वसूली मे अत्याचार प्रारम्भ हो जाते हैं, और कुछ इस वजह से कि सल्तनत की शक्तिहीनता के कारण विद्रोह प्रारम्भ हो जाते हैं, प्रजा नष्ट-भ्रष्ट एव शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाती है और जनसख्या घटने लगती है। अनाज के भंडार भी कम हो जाते हैं। वास्तव मे कृषि एव फसल तो सम दशा मे रहती ही नही। उसकी अच्छाई-बुराई एव कमी और ज्यादती का सबध वर्षा की कमी एव अधिकता पर है। वर्षा कभी कम होती है, कभी अधिक, कभी हलकी, कभी तेज। सक्षेप मे, वह एक दशा पर नही रहती। इसी प्रकार कृपि एव फसल भी अपनी दशा बदलती रहती हैं। कभी उनकी उत्पत्ति कम होती है, कभी अधिक, कभी हलकी, कभी तेज। ज्यादातर लोग अनाज-भडारो पर निर्भर रहते हैं और उन्ही पर दृष्टि रखकर जीवित रहते हैं। जब अनाज का भडार कम हो जाता है तो लोगो को अकाल का भय हो जाता है। अनाज का मूल्य बाजार मे अधिक हो जाता है। दीन एवं दरिद्र भूखो मरने लगते हैं और किन्हो वर्षो में तो भंडार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। फिर धनी-दरिद्र, समृद्ध एव दीन सभी मौत के शिकार हो जाते हैं।

सक्रामक रोगों के अधिक होने एवं हत्याकांड अथवा लूट-मार की अधिकता के विभिन्न कारण हैं। एक कारण तो उपर्युक्त अकाल ही है। लोग अनाज की कमी

अथवा अभाव के कारण नष्ट हो जाते है, दूसरा कारण है सल्तनत की शोचनीय दशा, जिसके फलस्वरूप देश मे विद्रोह एवं उपद्रव अधिक सख्या मे होने लगते है और हत्या-काड, मार-काट बहुत होती है। देश में लाशो के ढेर लग जाते है और क़ब्रस्तान पट जाते है। तीसरा कारण सक्रामक रोग होते है। इन रोगो के फैलने का कारण प्रायः जनसख्या की वृद्धि से दूषित वायुमंडल है। जब वायुमंडल दूषित होता है तो प्राणियों की प्राकृतिक दशा मे भी दोष आ जाता है। यदि वायु अधिक दूषित हो जाय तो महा-मारी फैल जाती है। कभी-कभी व्यापक प्रकार का ज्वर फैल जाता है और लोग मरने लगते है। इन सब बातों का कारण जनसख्या की अधिकता है जो सल्तनत के अन्तिम युग मे होती है।

स्वास्थविज्ञान के सिद्धान्तो के अनुसार यह परमावश्यक है कि आबादी के बीच-बीच मे जगल एव खुले मैदान छोडे जायें, ताकि लोगो की घनी आबादियो के कारण वायुमडल दूषित न हो सके। खुली हवा इसका निराकरण करती है और स्वच्छ एव स्वास्थ्य प्रद हवा प्रविष्ट होती है। यही कारण है कि जो नगर बड़े घने है, उदाहरणार्थ पूर्व मे मिस्र और मगरिब मे फास, इनमे सक्रामक एवं घातक रोग बहुत बड़ी सख्या मे फैलते है और वे बडे ही विनाशकारी सिद्ध होते है। जो आबादियाँ खुली-खुली बसी है, उदाहरणार्थ ग्राम अथवा छोटे क़सबे, उनमे ऐसे रोग बहुत ही कम सुनने मे आते है।

(५१) मानव-सभ्यता के लिए राजनीतिक नेतृत्व परमावश्यक है, ताकि उसके अधीन मानवजाति का कार्यकलाप सुव्यवस्थित हो सके

यह तथ्य बार-बार स्पष्ट किया जा चुका है कि मनुष्य के लिए सामाजिक जीवन अनुपेक्ष्य है। इसे हम "सभ्यता" कहते है। समाज के लिए एक न्यायकारी शासक की आवश्यकता होती है, ताकि लोग अपने झगड़े उसकी सेवा मे प्रस्तुत कर सके और उसी से न्याय की याचना करे। उस शासक के निर्णय का आधार कभी तो दैवी शरीअत होती है, जिसका पालन करके मनुष्य पुण्य एवं उपकार का भाजन होता है और उसका उल्लघन करने पर उसे दड भोगना पड़ता है। कभी शासक के निर्णयों का आधार राजनीति एवं मानव द्वारा तैयार किये हुए वे विधान होते है जिनके पालन मे मनुष्यों को सांसारिक लाभ दृष्टिगत होता है। इसी लाभ की दृष्टि से अधिनियम बनाये जाते है। शरई नियम इस लोक तथा परलोक दोनों के ही हित से सबधित होते है, क्यों-कि इस्लाम की शरा बनानेवाले परलोक के हित से भली-भाँति परिचित होते हैं और

अपने विधान में परलोक के सौभाग्य का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। इसके विपरीत बुद्धि पर आधारित राजनीति से केवल इस लोक के लाभ पर ही दृष्टि रखी जाती है।

जिस चीज को "सियासये मदनीयह"[१] कहते हैं, वह इससे संबंधित नही है। उसका सम्बन्ध तो दार्शनिको के अनुसार उस राजनीति से है जिसके अधीन मानव समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा एवं अपने चरित्र का इस प्रकार सुधार करता है कि शासकों की आवश्यकता ही नही रहती। इसको दार्शनिक लोग "आदर्श राजनीति"[२] कहते हैं। जिन अधिनियमों का इस मानव-संगठन में ध्यान रखा जाता है उनका नाम "सियासये मदनीयह" रखा गया है। वे नियम जो सर्वसाधारण के हित को दृष्टि मे रखकर सगठन हेतु बनाये जाते हैं और जिनका परिचय हमने बुद्धि पर आधारित राजनीति के नाम से कराया है, उनको विद्वान् लोग "सियासये मदनीयह" नही कहते। फिर "मदीनये फ़ाजेला" का अस्तित्व भी असम्भव है, अपितु इस सम्बन्ध मे उनका पूरा वाद-विवाद काल्पनिक एवं आकस्मिक है।

बुद्धि पर आधारित राजनीति दो प्रकार की होती है, एक वह जिसमें साधारण मनुष्यों के हित का ध्यान रखा जाय और बादशाह के विशेष हितों का भी। यानी इस बात का कि उसका राज्य ठीक आधार पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। यह राजनीति दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित होती है और फ़ारसवाले इसी राजनीति का पालन करते हैं। किन्तु ईश्वर ने हमे इस्लामी शरीअत से सम्मानित कर दिया है एवं ख़िलाफत हमारी पथप्रदर्शक है, अतः हमे फारस की राजनीति की आवश्यकता नही रही। कारण कि शरई आदेशों में लोक-परलोक के सभी विशेप हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है और समस्त राजनीतिक आदेश उसमे सम्मिलित हैं, फिर हमको पृथक् विधान बनाने की आवश्यकता ही क्या है।

बुद्धि पर आधारित राजनीति की दूसरी किस्म सुल्तान के विशेष हितों से संबंधित होती है। उसमे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सल्तनत आतक द्वारा किस प्रकार स्थापित रह सकती है। लोक-हित के सबध मे इसमे भी विवेचन किया जाता है, किन्तु केवल साधारण रूप से, न कि मौलिक रूप से। आजकल भी बिना धार्मिक भेद-भाव के समस्त बादशाह इसी दूसरे प्रकार की राजनीति से काम लेते है, किन्तु मुसलमान बादशाह यथासम्भव इस्लामी शरीअत की आवश्यकताओं को नही भूलते। प्रत्येक

१. राजनीतिक स्वर्ग (यूटोपिया)।
२. आदर्श नगर, "मदीनयेफ़ाज़ेला।"

नियम मे उनका ध्यान अवश्य रखते है। इसी कारण उनके शासनविधान में शरई आदेश भी मिलते है और नैतिक अनुशासन भी और वे नियम भी, जिनकी मानवसमाज को आवश्यकता होती है। इनके अधिनियमो मे प्रभुत्व एव "असबियत" की आवश्यकताओं का भी विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। इनमे शरीअत का पालन परम कर्त्तव्य माना जाता है। उसके बाद दार्शनिकों के अधिनियमों का स्थान है और तदुपरान्त पिछले बादशाहों के चरित्र एवं परम्पराओं के अनुसरण का।

इस विषय मे सर्वोत्कृष्ट जो लेख हमे उपलब्ध है वह ताहिर बिन हुसेन का पत्र है, जिसमे उसने अपने पुत्र[1] अब्दुल्लाह बिन ताहिर को, जब वह मामून द्वारा रक्का, मिस्र एवं उनके मध्यवर्त्ती भाग का वाली नियुक्त किया गया था, सम्बोधित किया है। इस पत्र मे ताहिर ने अपने पुत्र को ऐसी वह प्रत्येक शिक्षा दी है जिसकी उसे अपने शासन-काल मे आवश्यकता पड़ने की सम्भावना थी, अर्थात् धार्मिक, नैतिक, शरई एवं राजनीति संबंधी अधिनियम। इसमे उसने उत्कृष्ट आचरण एवं नैतिकता तथा सच्चरित्रता की ओर उसे विशेष रूप से प्रेरित किया है, क्योंकि इनकी एक बड़े से बड़े बादशाह को भी आवश्यकता हो सकती है और इनकी उपेक्षा नही की जा सकती। एक साधारण मनुष्य को भी इनकी आवश्यकता होती है। पत्र जो तबरी के इतिहास से उद्धृत है, इस प्रकार है—

"देखो, उस ईश्वर का भय करो जो अकेला है और कोई उसका साथी नहीं। उसके क्रोध एवं कोप से काँपते रहो। रात-दिन अपनी प्रजा की देख-भाल एवं चिन्ता रखो। स्वास्थ्य एवं समृद्धि की दशा मे परलोक को कभी न भूलो। उस समय का स्मरण रखो जो तुम पर आनेवाला है। उन बातों को ध्यान में लाओ, जिनके कारण तुम से पूछ-ताछ की जायगी। केवल उनका ध्यान ही न रखो, अपितु उन पर आचरण भी करो। समस्त पुण्य कर्तव्यों का पालन करो। ईश्वर (इस प्रकार) तुम्हें अपनी रक्षा में रखेगा और परलोक में अपने क्रोध एवं दारुण वेदना से सुरक्षित रखेगा। जान लो कि ईश्वर ने तुम्हारा बड़ा

१. इसकी रचना २०५–६ हि० (८२१ ई०) में हुई होगी। यह ९वीं शताब्दी ईसवी के ताहिर तैफ़ूर के बग़दाद के इतिहास मे भी दिया हुआ है। सम्भवतः इब्ने ख़लदून को इस ग्रंथ का पता न था। अन्य इतिहासों में भी यह पत्र उद्धृत हुआ है, किन्तु सभी में तथा इब्ने ख़लदून के ग्रंथ की विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में थोड़ा-बहुत अन्तर है।

कल्याण किया है और तुम पर बड़ी कृपा की है कि अपने दासों की देखभाल तुम्हारे हाथ में रखी है। तुम्हारे लिए यह परमावश्यक है कि तुम न्यायपूर्वक व्यवहार करो और ईश्वर के बताये हुए मार्ग पर अग्रसर रहो। लोगों के कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। उनके सम्मान, मर्यादा, पदों, प्राणों एवं वंशों की पूरी-पूरी रक्षा करो। संक्षेप में उनके आराम के जिम्मेदार बन जाओ। तुम्हें स्मरण रहे कि ईश्वर तुमसे उन नियमों के विषय में पूछ-ताछ करेगा, जिनका पालन तुम्हारा कर्त्तव्य है और फिर बाद में उनके विषय में तुम्हें पुरस्कृत करेगा। अतः उपर्युक्त बातों का पालन करने के लिए तुम अपनी बुद्धि, समझ एवं विवेक को पूर्ण रूप से खपा दो। तुम्हारा किसी भी कार्य में व्यस्त होना इसमें बाधक न हो सके। समझ लो कि यह तुम्हारा चोटी का कार्य है। यह कार्य तुम्हारे जीवन को सुधारनेवाला है। सर्वप्रथम तुमसे इसी विषय में प्रश्न किया जायगा। तुमको चाहिए कि सर्वप्रथम अपने आपको पाँचों समय की नमाज़ का आदी बनाओ। जमाअत की नमाज़ें पढ़ते रहो। सुन्नतें[१] भी मत छोड़ो, उदाहरणार्थ वज़ू भली-भाँति करो। वज़ू में धोया जानेवाला कोई अंग सूखा न रखो। उसको अल्लाह के नाम से प्रारम्भ करो। क़ुरान ठहर-ठहरकर पढ़ो। रुकू[२], सिज्दा[३] एवं तशहुद[४] में जल्दी मत करो, अपितु शरीर को स्थिर करो और नमाज़ में अपना हृदय लगा दो। जो तुम्हारे सहचर अथवा तुम्हारे अधीन हों उन्हें भी इसी सदाचरण का आदी बनाओ, कारण कि इसी से प्रत्येक बुराई एवं अनुचित आचरण से बचाव होता है।

इस अनिवार्य आचरण पर अमल करने के उपरान्त मुहम्मद साहब की सुन्नतों का पालन किया करो। उनके-जैसा चरित्र अपना भी बना लो। फिर हज़रत के बाद जो पवित्र व्यक्ति हुए हैं उनके पद-चिह्नों पर चलो। जब तुम्हें

१. वे बातें जो अनिवार्य नहीं हैं, किन्तु इस कारण कि हज़रत मुहम्मद उनका ध्यान रखते थे, वे बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।
२. नमाज़ में घुटने के बल झुकना।
३. नमाज़ में भूमि पर मत्था रखना।
४. ईश्वर के एक होने एवं मुहम्मद साहब के उनके रसूल होने से सम्बन्धित वाक्य का पाठ।

किसी कठिनाई का सामना करना पड़े तो इस्तिख़ारा[1] करो। पवित्र जीवन व्यतीत करो। क़ुरान शरीफ़ में जो आदेश दिये गये हैं और जिन कार्यों के करने से रोका गया है, तदनुसार आचरण करने से बाल-बराबर भी विचलित न हो। फिर मुहम्मद साहब की हदीस को भी कभी न भुलाओ। जो क़दम उठाओ वह ईश्वर की प्रसन्नता के लिए हो। जो बातें पसन्द करो अथवा रद्द करो उनमें न्याय को हाथ से न जाने दो। इसमें किसी के प्रति पक्षपात मत करो। फ़िक़ह सीखो एवं फ़िक़ह-वेत्ताओं का आदर-सम्मान करो। धर्म की शिक्षा ग्रहण करो और धार्मिक लोगों का आदर-सम्मान करो। अल्लाह की किताब का अध्ययन करो, उसे समझो और उसका ज्ञान रखनेवालों का हृदय से आदर करो। जान लो कि मनुष्य को सबसे अधिक सम्मानित करनेवाला गुण यही है कि वह फ़िक़ह के ज्ञान को सीखे-सिखाये, पढ़े-पढ़ाये एवं उसके अध्ययन में लगा रहे। वह प्रत्येक ऐसी बात में लगा रहे जो उसको अल्लाह के निकट पहुँचा दे। यही चीज़ उसके उपकार का चिह्न है और भलाई की ओर उसे ले जाती एवं उसका पथ-प्रदर्शन करती है। यही उसे पाप तथा विनाश से बचाती है। यदि ईश्वर की सहायता मनुष्य के साथ हो तो उसके ज्ञान के द्वार मनुष्य के लिए खुल जाते हैं। उसका गौरव हृदय में समा जाता है। वह परलोक में उच्च श्रेणी पाने का अधिकारी बनता है, अपितु इस लोक में भी जब तुम्हारी सच्चरित्रता प्रकट होगी तो संसार तुम्हारे आदेशों को सिर-आँखों पर रखेगा और तुम्हारे क्रोध से डरेगा। लोग तुमसे स्नेह बनाये रखेंगे। तुम्हारे न्याय पर उनको पूरा-पूरा भरोसा होगा। संयम से कार्य करो, कारण कि यह अधिक लाभदायक, शान्ति एवं रक्षा का ज़िम्मेदार और गौरव तथा श्रेष्ठता का चिह्न है। संयम ही मनुष्य को भलाई एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। उपकार दैवी सहायता का चिह्न है। दीन एवं मुहम्मद साहब की सुन्नत का आधार यह संयम ही है। संसार का उपकार भी इसी पर निर्भर है। अपना परलोक का जीवन सुधारने में लेश मात्र भी उपेक्षा न करो। पुण्य को हाथ से न जाने दो। सदाचार, सद्व्यवहार, सच्चरित्रता, शुभाकांक्षा एवं दूसरों की सहायता, सहानुभूति और अधिक-से-अधिक

१. किसी कार्य के करने के पूर्व अल्लाह की इच्छा ज्ञात करने की विधि। इसके विभिन्न नियम हैं।

भलाई के लिए यत्न करने की आदत डालो। अपने प्रत्येक व्यवहार में ईश्वर की प्रसन्नता एवं उसकी इच्छा का ध्यान रखो। क्या तुमको इतना ज्ञान नहीं कि सांसारिक बातों में संयम करने से सम्मान प्राप्त होता है, पापों से रक्षा होती है। इससे तुम्हारे कार्यो का सुधार प्रत्येक हितैषी एवं शुभचिन्तक की अपेक्षा अधिक होता है, अतः संयम को अवश्य ग्रहण करो। उससे शिक्षा प्राप्त करो। तुम्हारे समस्त कार्य बनते चले जायँगे। तुम्हारे अधिकार बढ़ेंगे। तुम्हारी विशेष एवं साधारण महत्त्वाकांक्षाएँ सुधर जायँगी। ईश्वर पर भरोसा रखो। तुम्हारी प्रजा की गरदन तुम्हारे समक्ष झुकी रहेगी। समस्त कार्यो में अल्लाह की ओर ही देखो। तुम पर जो उसकी देन है, वह बाक़ी रहेगी। जिसको तुम कोई कार्य सुपुर्द करो तो उस पर उस समय तक,जब तक कि ख़ूब पूछ-ताछ न कर लो, कोई दोष न लगाओ। कारण कि पवित्र लोगों को दोष लगाना एवं उनके विषय मे कोई शंका रखना सबसे बड़ा पाप है, अतः अपने साथियों के विषय में सद्भावनाएँ रखो, दुर्भावनाओं को अपने हृदय से निकाल दो, ताकि वे अपने उत्तरदायित्व को परिश्रम एवं शान्ति से पूरा करे। ईश्वर के शत्रु शैतान को मार्ग भ्रष्ट करने का अवसर न दो। वह तुम्हारी साधारण कमज़ोरी से लाभ उठाकर तुम्हारे हृदय में शंकाएँ उत्पन्न कर देता है और तुम्हारे जीवन के आनन्द को नष्ट कर देता है। याद रखो कि सद्भावना द्वारा तुम शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करोगे, जिससे तुम्हारे कार्य तुम्हारे इच्छानुसार ठीक हो जायँगे और लोग तुमसे प्रेम करने पर विवश होंगे और समस्त कार्य भली-भाँति सम्पन्न होंगे।

अपने साथियों के प्रति सद्भावना प्रकट करने और अपनी प्रजा के साथ दया एवं कृपा-पूर्ण व्यवहार करने का यह अर्थ नहीं कि उनके विषय में कोई जाँच अथवा पूछ-ताछ ही न की जाय और मित्रों के कारोबार से कोई सम्बन्ध ही न रखा जाय, अथवा प्रजा की आवश्यकताओं की ओर से उपेक्षा की जाय या प्रजा के विषय में कोई ध्यान ही न दिया जाय। प्रजा के उत्तरदायित्व का भार तुम्हारे लिए अन्य कर्तव्यों–भारों से हलका होना चाहिए, क्योंकि यह बोझ धर्म के तथ्य को भी जीवित रखता है और सुन्नत भी इससे जीवित रहती है। फिर एक बार और सुन लो कि इन सब कार्यों में निष्ठा परमावश्यक है। निष्ठा के बिना कुछ सम्भव नहीं। अपनी आत्मा के सुधार में इस प्रकार लग जाओ कि मानो परलोक में केवल तुमसे ही तुम्हारे आचरण के विषय में प्रश्न किया जायगा। तुम्हारे अच्छे कार्यों से तुम्हें पूर्ण लाभ होगा और बुरे कार्यों के लिए दंड दिया जायगा।

ईश्वर ने तुम्हें दीन (इस्लाम) की रक्षा एवं सम्मान का साधन बनाया है। जो तुम्हारे अधीन अथवा देख-रेख में हों उनको भी दीन के मार्ग पर चलाओ और स्वयं अपने आप को भी न भुलाओ। अपराध करने का पेशा करनेवालों को अपराध के अनुसार दंड दो। न दंड की ओर से उपेक्षा करो, न दिये हुए दंड को माफ़ करो, न उसमें नरमी दिखाओ और न उसको टालो, कारण कि उसमें कमज़ोरी दिखाना तुम्हारी सद्भावनाओं में विघ्न डालेगा। अपने सभी कार्यों में मुहम्मद साहब की सुन्नत का पालन करो और बिदअतों एवं सन्देह से बचो। इससे तुम्हारा धर्म भी सुरक्षित रहेगा और पौरुष तथा मर्यादा भी। वचन का पालन करो। सदाचरण की ओर सर्वदा प्रेरित रहो। दुर्व्यवहार का बदला नेकी से दो। अपनी प्रजा की भूलों की ओर से उपेक्षा करो। जिह्वा को झूठ बोलने से बचाओ। तुम्हारे इस लोक तथा परलोक के कार्यों के विनाश का प्रथम चिह्न यह है कि तुम झूठों को पास बैठाओ तथा झूठ का उनको साहस दिलाओ। झूठ से वास्तव में पाप प्रारम्भ होता है और चुग़ली एवं झूठे इलज़ाम से वह चरम सीमा पर पहुँच जाता है। चुग़ली सुननेवाला मित्र से वंचित होता है और चुग़ली करनेवाला सहायकों से। उसका कोई काम नहीं बनता। योग्य एवं सच्चे लोगों का हृदय से आदर करो। शरीफ़ लोगों का सम्मान करो। कमज़ोरों को साहस दिलाओ और सम्बन्धियों के साथ दयापूर्वक व्यवहार करो। इस विषय में ईश्वर की प्रसन्नता का ध्यान रखो। उसके आदेशों का पालन करो। उससे परलोक में पुण्य की आशा करो। दुर्भावनाओं एवं अत्याचार से पृथक् रहो। उनकी ओर कोई ध्यान न दो, अपितु अपनी प्रजा से कह दो कि तुम अत्याचार की किसी प्रकार अनुमति नहीं दे सकते। दंड देते समय न्याय को मत त्यागो और समस्त बातों में सत्य के समर्थक रहो। उस ज्ञान को प्राप्त करो जो तुम्हें सन्मार्ग पर ले जा सके। क्रोध के समय अपने को वश में रखो। सहनशीलता एवं धैर्य को कभी मत त्यागो। जब कोई कार्य प्रारम्भ करो तो स्वेच्छाचार, क्रोध एवं तेज़ी से काम न लो। सावधान रहो।

किसी विषय में यह न कहना कि मुझे इसके निर्णय का पूर्ण अधिकार है, मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। कारण कि यह कथन तुम्हारे विचारों की कमज़ोरी और ईश्वर पर तुम्हारे विश्वास न होने का खुला चिह्न है। अपने उद्देश्यों में कोई कपट मत रखो। ईश्वर पर भरोसा रखो। यह जान लो कि समस्त राज्य अल्लाह का ही है। वह जिसको चाहता है देता है और जिससे चाहता है

ले लेता है।[१] तुम किसी समृद्ध से उसकी धन-सम्पत्ति इतने शीघ्र छिनती हुई न देखोगे और न ईश्वर की ओर से क्रोध होता हुआ पाओगे, जितने शीघ्र सुल्तानों एवं उच्च पदाधिकारियों से उनका पद छिन जाता है और वे ईश्वर के क्रोध का निशाना बनते हैं। यह इस प्रकार होता है कि वे अल्लाह की देन एवं उपकारों के प्रति कृतघ्नता प्रकट करने लगते हैं और अल्लाह ने उन पर जो कृपा की है उसका अनुचित लाभ उठाने लगते हैं। लोभ एवं लिप्सा से बचते रहो। उपकार एवं पवित्र जीवन को ही तुम अपना पथ-प्रदर्शक समझो। प्रजा का उपकार, देश की समृद्धि, प्रजा की देखभाल, उनके प्राणों की रक्षा एवं पीड़ितों की सहायता को ही अपनी सारी सम्पत्ति समझो। यह बात अपने ध्यान में रख लो कि धन-सम्पत्ति जब ख़ज़ानों मे जमा कर ली जाती है तो बढ़ती नहीं। जब उसको प्रजा की भलाई एवं उपकार में लगा दिया जाता है तो इससे उसका कल्याण होता है। उसके ख़तरों को उससे यदि दूर कर दिया जाता है तो प्रजा का संचित धन बढ़ता और शुद्ध होता है। देश उन्नति करता एवं समृद्ध होता है। ज़माने में ख़ुशहाली फैलती है और सम्मान एवं लाभ के मार्ग खुलते हैं। तुम्हारा ख़ज़ाना इस्लाम के प्रचार एवं मुसलमानों के उपकार में व्यय हो। तुमसे पूर्व जो "अमीरुल मोमिनीन" हुए हैं उनके समय के अधिकारियों का पूरा-पूरा ध्यान रखो। उनको जो प्राप्त हो रहा हो उसमें कमी मत करो। उनकी तथा उनकी आर्थिक दशा की देखभाल रखो। यदि तुमने ऐसा किया तो वर्त्तमान समृद्धि स्थायी रूप से चलती रहेगी और अल्लाह की ओर से अधिक-से-अधिक देन प्राप्त होती रहेगी। तुम सुगमतापूर्वक ख़राज एवं प्रजा की अन्य धन-सम्पत्ति वसूल कर सकोगे। जब सबकी गरदनें तुम्हारे न्याय एवं उपकार के कारण झुकी होंगी तो वे तुम्हारे दास हो जायँगे। जो कुछ तुम चाहोगे उसे वे प्रसन्नतापूर्वक करेंगे।

संक्षेप में इन सब उचित बातों में जो सीमाएँ हमने निर्धारित कर दी हैं उन पर दृढ़तापूर्वक जमे रहो। उनसे अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करो। यह भली-भाँति जान लो कि स्थायी वही धन है जो ईश्वर के मार्ग में व्यय किया जाय। कृतज्ञ लोगों का अधिकार पहचानो और उन्हें वह दे दो। देखो, संसार एवं उसकी समृद्धि तुम्हें परलोक के भयंकर दंड से असावधान न बना दे और तुम अपने कर्त्तव्यों के पालन में शिथिलता एवं काहिली न करने लगो। कारण

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

कि शिथिलता कर्त्तव्य-पालन में बाधक होती है, जिससे हर प्रकार के कष्ट सिर पर आ जाते हैं। जो कार्य करो अल्लाह के लिए करो और उसी से पुण्य की आशा रखो, कारण कि ईश्वर तुम्हारा अत्यधिक उपकार करता है। उसकी देनों के प्रति कृतज्ञ रहो और लेश मात्र न डगमगाओ। अल्लाह तुम्हारे प्रति अपनी दया एवं देन में वृद्धि कर देगा। अल्लाह की यह आदत है कि वह अपने कृतज्ञ बन्दों की कृतज्ञता के अनुसार उनके उपकार में वृद्धि करता रहता है। किसी पाप को साधारण न समझो। किसी ईर्ष्यालु की ओर ध्यान न दो। किसी दुराचारी पर दया मत करो। किसी कृतघ्न से मेल न करो। किसी शत्रु की उपेक्षा न करो। किसी चुग़ली करनेवाले को सच्चा न समझो। किसी विश्वासघाती पर भरोसा न करो। किसी व्यभिचारी से मित्रता मत करो। किसी मार्गभ्रष्ट का अनुसरण मत करो। धूर्त की प्रशंसा मत करो। किसी मनुष्य को क्षुद्र मत समझो। किसी भिखारी को कुछ दिये बिना वापस मत करो। झूठी बात को अच्छी दृष्टि से मत देखो। विद्वेषकों की ओर ध्यान न दो। विश्वासघात, अभिमान एवं क्रोध से कार्य न लो। किसी की आशाएँ भंग न करो। अकड़कर न चलो। परलोक सुधारने में कोई कमी न करो। चुग़ली खानेवाले की ओर आँख उठाकर भी न देखो। किसी अत्याचारी की, उससे भयभीत होने के कारण उपेक्षा मत करो। परलोक का पुण्य इस लोक में न माँगो।

फ़क़ीहों[1] से परामर्श करो। अपने आपको धैर्य का अभ्यस्त बना लो। अनुभवी लोगों, बुद्धिमानों एवं विवेकपूर्वक कार्य करनेवालों से कुछ सीखो। अपने परामर्श में विलासियों एवं कृपणों को सम्मिलित न होने दो, न उनकी बात सुनो, कारण कि उनके द्वारा जो हानि पहुँच सकती है, वह लाभ से अधिक है। याद रखो कि कृपणता से बढ़कर प्रजा के कार्यों में शीघ्र ख़राबी पैदा करने-वाली कोई आदत नहीं। भली-भाँति समझ लो कि जब तुम लोभी होगे तो अधिक लोगे, कम दोगे। जब तुम्हारी यह दशा होगी तो तुम्हारे काम बहुत ही कम बनगे और अधिकांश बिगड़ेंगे। कारण कि प्रजा तुम्हारे प्रति उसी समय तक स्नेह करती रहेगी जब तक तुम इसकी धन-सम्पत्ति को हानि न पहुँचाओगे और अत्या-चार न करोगे। अपने सच्चे मित्रों के प्रति दयापूर्ण व्यवहार करो और दान-

१. फ़िक़ह-वेत्ताओं।

पुण्य करते रहो। कृपणता से बचते रहो, इसलिए कि कृपणता ही वह पहला पाप है जिसमें मनुष्य ईश्वर की अवज्ञा करता है। पापी की मित्रता वैसी ही है जैसी कि अग्नि एवं उसकी लौ की। ईश्वर का आदेश है कि जो लोग कंजूसी से बचते हैं, उनका उपकार होगा, अतः उचित अवसरों पर दान करो। समस्त मुसलमानों का भला करो और विश्वास रखो कि मनुष्य के कार्यों में दान-पुण्य को बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त है, अतः दान-पुण्य की आदत डालो। उस पर आचरण करो और उसी को अपना धार्मिक विश्वास समझो।

सेना के कार्यालयों एवं पदों की जाँच पड़ताल करो। उनको दिल खोलकर रोजी दो। उनके वेतन में वृद्धि करो। इससे ईश्वर उनकी दरिद्रता एवं बुभुक्षा को भी दूर करेगा और तुम्हारे काम भी उनसे ख़ूब निकलते जायँगे। वे सच्चे हृदय से एवं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगे। बादशाह के लिए यह क्या कम सौभाग्य की बात है कि वह अपनी सेना एवं प्रजा पर दया एवं कृपा करता हो, उनसे न्याय-पूर्वक व्यवहार करता हो और दान-पुण्य का हाथ उन पर खोले रहता हो। जब अच्छाई एवं बुराई के विषय में तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो जाय तो राजनीति के उत्तम पहलुओं को अपनी दृष्टि के समक्ष रखो और उन पर आचरण करो। बुराई से बचते रहो। यदि ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें सफलता प्राप्त होगी और तुम्हारा उपकार होगा। यह भी ख़ूब समझ लो कि जहाँ बाह्य साधनों से सफलता नहीं मिलती, वहाँ केवल ईश्वर की कृपा से सफलता प्राप्त हो जाती है, कारण कि संसार में वही ऐसी तराज़ू है जिससे लोगों की कृतियाँ तोली एवं परखी जाती हैं। कर्म एवं निर्णय में न्याय पर ध्यान रखना प्रजा की दशा सुधार देता है। मार्गों पर शान्ति हो जाती है। पीड़ित को न्याय प्राप्त हो जाता है। लोग अपने-अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। जीवन सँवरता है। ईश्वर की ओर से शान्ति प्राप्त होती है। धर्म दृढ़ता-पूर्वक स्थापित रहता है। सुन्नत एवं इस्लामी शरा का पालन होता है। ईश्वर के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करो। उपद्रव से बचते रहो। सहसा करने की आदत मत डालो। अशांति, चिंता एवं परेशानी को पास न आने दो। अपने भाग्य से संतुष्ट रहो। अपने अनुभव से लाभ उठाओ। तुम्हारा मौन रहस्यमय हो। तुम्हारी वार्ता सीधी-सच्ची हो। शत्रु के साथ न्याय करो। संदेह के अवसर पर ख़ूब सोच-समझ लो। दलीलों एवं प्रमाणों पर भली-भाँति ध्यान दो। प्रजा के कार्यों में किसी की मित्रता एवं रवादारी की परवाह न करो। किसी निन्दा करनेवाले की निंदा का भय मत करो। सहनशील

रहो। धैर्य धारण करो। सोच-विचार से काम लो। देखो, सोचो, समझो एवं शिक्षा ग्रहण करो। अपने ईश्वर के समक्ष झुको।

अपनी प्रजा से प्रेम रखो। हत्या कराने में शीघ्रता से कार्य न करो, कारण कि किसी की अकारण हत्या करा देना ईश्वर के निकट बहुत बड़ा पाप है। ख़राज की पूरी देख-भाल रखो। प्रजा की कमर उसी से मज़बूत होती है। अल्लाह ने उसे इस्लाम के लिए सम्मान एवं समृद्धि का साधन बनाया है, ख़राज के स्वामियों को उसके द्वारा समृद्धि एवं प्रतिरक्षा की शक्ति प्रदान की है। ईश्वर एवं मोमिनों के शत्रुओं के लिए उसे जलने एवं कुढ़ने का साधन बनाया है। उसको काफ़िर शत्रुओं के अपमान का ज़रिया बनाया है। अतः अपने सहचरों में उसे बाँटते समय न्याय एवं बराबरी के सिद्धांत को अपनी दृष्टि के समक्ष रखो। किसी शरीफ़ को उसकी शराफ़त, किसी धनी को उसकी धन-सम्पत्ति, किसी कातिब को उसकी किताबत के कारण अथवा किसी विश्वासपात्र को उससे वंचित न करो। किसी पर इतना बोझ न लादो जिसे वह सहन न कर सके। सबको न्यायपूर्वक अपने-अपने स्थानों पर बनाये रखो। इससे वे शान्ति के साथ रहेंगे और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे।

ख़ूब समझ लो कि जबसे तुम वाली बने हो, तुम सबके ख़ज़ांची भी हो, रक्षक एवं आश्रयदाता भी हो। जो लोग तुम्हारे अधीन हैं उन्हें रैयत इसी कारण कहा गया है कि तुम उनके लिए गड़रिये के समान हो। जो धन उनकी आवश्यकता से अधिक हो और उसमें से जो कुछ वे तुमको दें, वह लो और उसको उन्हीं के कार्यों के ठीक करने एवं उन्हीं के उपकार में व्यय करो। उन पर ऐसे लोगों को शासक एवं हाकिम नियुक्त करो जिनमें विवेक हो, जो अनुभवी एवं ज्ञानी हों, शासन-प्रबंध एवं राजनीति से भली-भाँति परिचित हों, क्रियात्मक दृष्टि से भी कुशल एवं अनुभवी हों। उनके लिए रोज़ी के द्वार खोल दो। राज्य की ओर से जिन कर्त्तव्यों का तुम्हें पालन करना चाहिए, उनकी व्यवस्था करना तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है। इनमें उपर्युक्त विषयों को बड़ा महत्व प्राप्त है, अतः कोई कार्य एवं व्यस्तता तुम्हें इस कार्य से न रोके। यदि तुमने इसका निर्धारण कर लिया और उसको भली-भाँति सम्पन्न कर लिया, तो तुम अपने ईश्वर की ओर से अधिक देन के पात्र बनोगे। तुम्हारे कार्य चलते चले जायँगे। प्रजा तुम पर प्राण न्योछावर करेगी और तुम्हें पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होती रहेगी, फलतः तुम्हारा नगर समृद्ध एवं धनधान्य-सम्पन्न हो जायगा। उसकी सीमा का

विस्तार बढ़ेगा, ख़राज में वृद्धि होगी और फिर इससे तुम्हारी सेना की हालत भी सुधर जायगी। साधारण लोग तुमसे प्रसन्न रहेंगे, कारण कि तुम्हारे द्वारा उन पर धन-सम्पत्ति की वर्षा होगी। शत्रु भी तुम्हारी राजनीति एवं तुम्हारे न्याय का गुणगान करेंगे। संक्षेप में तुम्हारे प्रत्येक कार्य में न्याय दृष्टिगत होगा और शक्ति दिखाई पड़ेगी, अतः बड़ी रुचि एवं साधना से इस शिक्षा पर आचरण करो और इसे हर चीज से अधिक महत्त्व दो। ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारे कार्यों का अच्छा फल मिलेगा।

अपने राज्य के प्रत्येक नगर में एक अमीन[१] नियुक्त करो, जो तुम्हारे आमिलों[२] के आचरण एवं कार्यों से तुम्हें ऐसा अवगत रखे मानो तुम अपने प्रत्येक आमिल के कार्य को स्वयं देख रहे हो। अपने आमिलों को जो भी आदेश दो उसे भली-भाँति सोच लो। यदि उसमें लोगों की कुशलता एवं उपकार पाओ और उससे कोई कष्ट टलता एवं कुछ भला होता हुआ देखो, तो उसे जारी करो, अन्यथा आदेश को रोके रखो। बुद्धिमान् लोगों से इसके विषय में परामर्श करो। फिर जो बात निश्चय हो वह करो। कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्य एक बात को सोचता है, तौलता है और फिर अपने मतानुसार उस पर आचरण करता है, किन्तु उसमें धोखा दृष्टिगत होता है। अतः यदि परिणाम पर दृष्टि न रखी जाय तो विनाश का सामना करना पड़ता है और कार्य अलग बिगड़ता है। अतः जिस बात का संकल्प करो उसमें अपनी पूरी समझ से काम लो और फिर ईश्वर से सहायता माँगते हुए पूरी शक्ति एवं भरोसे से उसमें लग जाओ। अपने समस्त कार्यों में इस्तिख़ारा किया करो। आज का काम आज ही कर लो। उसको कल पर न छोड़ो। कार्य स्वयं करो। आज का काम यदि तुमने कल पर टाला तो कल के लिए पृथक् कार्य होंगे जो टाले हुए कार्य को न करने देंगे। यदि दोनों कार्य करोगे तो थककर रुग्ण हो जाओगे। जब हर रोज का काम रोजाना कर लोगे तो शरीर को भी सुख प्राप्त होगा, हृदय को भी शान्ति मिलेगी और तुम्हारी शक्ति भी बनी रहेगी। जिन शरीफ़ तथा सम्मानित व्यक्तियों के स्वभाव एवं चरित्र की जाँच-पड़ताल कर चुको और जो तुम्हारे प्रति स्नेहपूर्वक व्यवहार करें और तुम्हें उचित परामर्श दें, तुम्हारे कार्यों की देख-भाल करें तो अपनी

१. विश्वस्त अधिकारी।

२. पदाधिकारियों।

मित्रता के लिए उन्हें छाँट लो। उनका उपकार करो और उन पर दया की वर्षा करो। उनमें से आवश्यकता-ग्रस्त लोगों की आवश्यकता पूरी करो। उनके बोझ को स्वयं वहन करो। उनका सुधार करो, ताकि उन्हें किसी अन्य मित्र की आवश्यकता न रहे। दीन, निर्धन तथा ऐसे निःसहाय लोगों की, जो अपनी फ़रियाद तुम तक न पहुँचा सकें, अथवा उन लोगों की, जिन्हें अपने अधिकारों का स्वयं ज्ञान न हो देख-रेख में पूरी शक्ति लगा दो। तुम्हारी प्रजा में से जो लोग सदाचारी हों उनको इस कार्य हेतु नियुक्त करो कि वह इस प्रकार के निर्धनों की आवश्यकताएँ तुम तक पहुँचाये, ताकि तुमको उनके उपकार का अवसर प्राप्त हो सके।

अनाथों, विधवाओं और दुखी लोगों का पता लगाओ। 'अमीरुल मोमिनीन" के आचरणानुसार बैतुल माल से उनकी वृत्ति निश्चित करो ताकि, उन पर ईश्वर की दया प्रदर्शित हो सके। इससे ईश्वर उनके जीवन को भी सुखी कर देगा और तुम्हारी धन-सम्पत्ति में भी वृद्धि करेगा। अंधों एवं अपाहिजों के लिए बैतुल माल से वृत्तियाँ निश्चित करो। वृत्तियों की सूची में "हाफ़िज़ों"[१] को प्राथमिकता प्रदान करो। उन्हें अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक वृत्ति दो। मुसलमान रोगियों के लिए चिकित्सालय खोलो। रोगियों के लिए दयाभाव रखनेवाले सेवक एवं कुशल चिकित्सकों का प्रबंध करो जो उनका सच्चा उपचार करें। उनकी आवश्यकताओं की व्यवस्था करो, किन्तु इस बात का ध्यान रखो कि बैतुल माल पर अपव्यय का बोझ न पड़ने पाये, कारण कि जब लोगों के अधिकार एवं उनकी बड़ी-से-बड़ी इच्छाएँ पूरी कर दी जाती हैं तो वे इस पर भी प्रसन्न नहीं होते और जब तक अपने वालियों के समक्ष अपनी आवश्यकताओं का वर्णन न करें, संतुष्ट नहीं होते। उन्हें और अधिक प्राप्त करने तथा अधिक उदारता का सर्वदा लोभ रहता है। कभी-कभी लोगों की ओर से उचित एवं अनुचित प्रार्थनाएँ इतनी अधिक संख्या में होती हैं कि अधिकारी वर्ग थककर परेशान हो जाता है। जो व्यक्ति न्याय की ओर इस कारण प्रेरित होता है कि वह उसका लाभ इस लोक में एवं पुण्य परलोक में पाये, तो वह उस व्यक्ति की तुलना में, जो केवल ईश्वर के निकट पहुँचने के लोभ एवं उसकी दया की अभिलाषा से न्याय करता है और इसके अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं होता, बराबर तो क्या, कम ही होता है।

१. जिन्हें पूरा क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ होता है।

लोगों को अपने समक्ष उपस्थित होने की आम अनुमति दो और उनसे बेरोक-टोक खुलकर मिलो। उनसे मिलते समय अपने होश-हवास ठीक रखो। उनके समक्ष नम्र बने रहो और प्रसन्नचित्त रहो। प्रश्नोत्तर एवं वार्त्तालाप में मीठे बोल बोलो। दान-पुण्य से उन्हें लाभ पहुँचाओ। जब लोगों को कुछ देना चाहो तो दिल खोलकर एवं प्रसन्नचित्त होकर प्रदान करो। केवल नैतिक दृष्टि-कोण एवं पुण्य का ध्यान रखो। उनको असंतुष्ट न करो, न उन पर एहसान जताओ, कारण कि यह ऐसा लाभदायक व्यापार है जो ईश्वर ने चाहा तो लाभ पहुँचाकर रहता है। प्राचीन काल में तथा प्राचीन क़ौमों में जो सुल्तान एवं अमीर हुए हैं उनके इतिहास से शिक्षा ग्रहण करो। फिर अपनी समस्त बातों में केवल अल्लाह पर ही भरोसा रखो। उससे प्रेम का सम्बन्ध रखो। उसकी भेजी हुई शरीअत एवं मुहम्मद साहब की सुन्नत का पालन करो। उसके दीन एवं उसकी किताब का संसार में प्रचार करो। उनके विरुद्ध ऐसे कार्य कदापि न करो जो ईश्वर के क्रोध को भड़काएँ।

तुम्हारे आमिल जो धन एकत्र करते हैं और जो कुछ व्यय करते हैं, उसकी देख-भाल रखो कि वह धन कहाँ-कहाँ से आता है और कहाँ-कहाँ चला जाता है। तुम न हराम कमाई करो और न अपव्यय। आलिमों की गोष्ठियों में अधिक उठा-बैठा करो। उनकी परामर्श-गोष्ठियों एवं सभाओं में सम्मिलित हुआ करो। तुम्हारे मित्र ऐसे होने चाहिए कि यदि वे तुममे कोई दोष पायें तो तुम्हें उसकी सूचना देने में तुम्हारा आतंक उनको न रोक सके, अपितु गुप्त रूप से अथवा खुल्लम-खुल्ला वे तुमको टोकें और तुम्हारी त्रुटियों को बतायें। तुम्हारे इस प्रकार के मित्र वास्तव मे तुम्हारे हितैषी एवं शुभचिंतक होंगे। अपने आमिलों एवं कातिबों के कार्य की देख-भाल रखो। उनमें से प्रत्येक के लिए विशेष समय निश्चित कर दो ताकि वे उस समय सल्तनत एवं प्रजा की समस्त बातें तुम्हारी सेवा मे प्रस्तुत करें और तुमको पढ़कर सुनायें। तुम उस समय पूर्ण रूप से सावधान होकर बैठो और जो बातें प्रस्तुत हों उन पर बार-बार ग़ौर करो। उनके विषय मे पूरा विचार करके संतुष्ट हुआ करो। तुम जो भी उपकार करो उसका कोई एहसान न प्रजा पर जताओ और न किसी अन्य पर। किसी से निष्ठापूर्वक व्यव-हार के अतिरिक्त कुछ आशा मत करो। संयम से कार्य करो और मुसलमानों के कार्यो में उनकी सहायता करते रहो। इसी उद्देश्य से दया एवं उपकार के कार्य करो।

मेरे इस पत्र पर ग़ौर करो और इसकी शिक्षाओं पर सदा आचरण करो। अपने समस्त कार्यों में अल्लाह पर भरोसा रखो और उसी से कुशलता एवं भलाई की इच्छा करते रहो, कारण कि ईश्वर सदाचारियों का सर्वदा साथ देता है। तुम्हारी सबसे बड़ी इच्छा यह हो कि ईश्वर तुमसे संतुष्ट रहे। धार्मिक शासन संसार में स्थापित हो। धर्मनिष्ठ लोगों को सम्मान प्राप्त हो। काम में न्याय, सदाचरण एवं सच्चरित्रता का संचार हो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर तुम्हारी सहायता करे, तुम्हारे प्रति दया का व्यवहार करे और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे एवं तुम्हें भाग्यशाली बनाये।"

इतिहासकारों का कथन है कि जब यह पत्र प्रकाशित हुआ तो लोगों को बड़ा पसन्द आया। जब यह मामून के समक्ष पढ़ा गया तो मामून ने कहा कि वास्तव में ताहिर ने कोई बात नही छोड़ी जिसके विषय में शिक्षा न दी हो। सांसारिक, धार्मिक, देश एवं प्रजा सभी के उपकार के उपाय बताये है। सल्तनत एवं खिलाफ़त की स्थापना, रक्षा के नियम एव खलीफाओं की आज्ञाकारिता, सभी बातों पर जोर दिया है। फिर मामून के आदेशानुसार उसकी प्रतियाँ सभी दिशाओं के आमिलों के पास इस आशय से भेजी गयी कि वे इसका अक्षरशः पालन करे और इसकी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस पत्र से बढ़कर राजनीति के सिद्धान्तों की शिक्षा देने-वाला कोई अन्य लेख नहीं है।

(५२) इमाम महदी, उनके विषय में लोगों के विचार एवं महदवियत की वास्तविकता

शताब्दियों से मुसलमानों में यह भविष्यवाणी प्रचलित है कि संसार के अन्तिम काल मे "अहले बैत"[१] से एक ऐसा व्यक्ति संसार में पैदा होगा जो ईश्वर के दीन को ससार में स्थापित करेगा, न्याय फैलायेगा, मुसलमान उसका साथ देगे और वह समस्त इस्लामी राज्यों को अपने अधिकार में कर लेगा। उसका नाम महदी होगा। फिर महदी के बाद दज्जाल[२] आयेगा एवं क़यामत के अन्य चिह्न दृष्टिगत होंगे। जैसा कि

१. हज़रत मुहम्मद के घर के लोग।

२. वह झूठा, जो क़यामत के पूर्व ख़ुदा होने का दावा करेगा। कहा जाता है कि वह काना होगा।

प्रामाणिक हदीसों में उल्लेख है, हज़रत ईसा उतरेंगे और दज्जाल की हत्या करेंगे। अथवा हजरत ईसा भी हज़रत महदी के साथ प्रकट होंगे और दज्जाल की एक-दूसरे की सहायता से हत्या करेंगे। हजरत ईसा इमाम महदी के पीछे नमाज पढ़ेंगे। इन विश्वासों के सम्बन्ध में मुसलमान उन हदीसों से प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिनको हदीस के विद्वान् उद्धृत करते हैं। जिनका इसके विरुद्ध विश्वास है वे इन हदीसों में संदेह प्रकट करते हैं और कुछ हदीसें इसके विरुद्ध बताते हैं। पिछले युग के सूफी लोग इमाम महदी के प्रकट होने की समस्या का अन्य प्रकार से समाधान करते हैं। उनके तर्क का नियम और ही है। वे इसमें कश्फ[1] से कार्य लेते हैं जो उनका मूल नियम है।

अनेक आलिमों ने महदी के विषय में हदीसें प्रस्तुत की हैं, जिनमें तिरमिजी,[2] अबू दाऊद,[3] अल-बज्जार,[4] इब्ने माजह,[5] अल-हाकिम,[6] अत्तबरानी,[7] अबू यला अल मौसिली[8] प्रमुख हैं।......[9]

१. सूफ़ियों की वह शक्ति जिससे वे गुप्त बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।
२. मुहम्मद बिन ईसा "तिरमिजी" की मृत्यु २७९ हि० (८९२ ई०) में हुई।
३ सुलेमान बिन अल अशऊद २०२–२७५ हि० (८१७–१८–८८९ ई०)। उनकी रचना का नाम सुनन है।
४. अहमद बिन अमर अल-बज्जार की मृत्यु २९२ हि० (९०४–५ ई०) में हुई। उनकी रचना का नाम मुसनद है।
५. मुहम्मद बिन यजीद २०९–२७३ हि० (८२४–२५–८८७ ई०)। उनकी रचना का नाम सुनन है।
६. अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-हाकिम अन्-नीशापूरी, ३२१–४०५ हि० (९३३–१०१४ ई०)। उनकी रचना का नाम मुस्तदरक है।
७. सुलेमान बिन अहमद अत्तबरानी, २६०–३६० हि० (८७३–९७१ ई०)।
८. अहमद बिन अली अबू यला यला मौसिली की मृत्यु ३०७ हि० (९१९–२० ई०) में हुई।
९. इसके उपरान्त हदीसों का उल्लेख है जिनका अनुवाद नहीं किया गया। हदीसों के उपरान्त सूफ़ियों के मतों की भी चर्चा की गयी है। इसका अनुवाद भी छोड़ दिया गया है।

(५३) सल्तनत एवं क़ौमों का अभ्युदय

तथा

भविष्यवाणियाँ एवं जफ़र[1]

मानव की यह स्वाभाविक विशेपता है कि उसे अपने कार्यो के परिणाम की चिता रहती है और वह अपने जीवन एवं मृत्यु के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया करता है। भविष्य मे घटनेवाली अच्छी-बुरी घटनाओं की जानकारी में उसे बड़ी रुचि होती है। उदाहरणार्थ, वह पता लगाया करता है कि ससार का जीवन-काल अब कितना रह गया है? सल्तनते अपना प्रभुत्व कब तक स्थापित रख सकेंगी? उनमें से सबसे पहले कौन-सी सल्तनत समाप्त होगी और बाद मे कौन-सी? संक्षेप में इन बातों की खोज मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, इसी कारण आप अनेक लोगों को देखेगे कि वे स्वप्न द्वारा भविष्य मे घटनेवाली घटनाओं के परिणाम का पता लगाने का प्रयत्न किया करते है। यह बात तो हम साधारणत: देखा ही करते है कि बादशाह एवं सर्वसाधारण भी काहनो[2] के पास जा-जाकर भविष्य की घटनाओं का पता लगाया करते हैं। यही कारण है कि बड़े-बड़े नगरों मे कुछ लोग भविष्यवाणी के व्यवसाय द्वारा रोज़ी कमाते है। इसका कारण यह है कि उन्हे ज्ञात है कि लोगों की इसमें बड़ी दिलचस्पी होती है, फिर वे इसे जीविकोपार्जन का साधन क्यों न बनाये। वे काहन मार्गो में बैठ जाते है अथवा दूकाने लगा लेते है और उनसे जो प्रश्न किया जाता है, उसका उत्तर देने के लिए उद्यत रहते है। अत: स्त्रियों, बालको एव मूर्खो की प्रात.काल से सायंकाल तक उनके पास भीड़ लगी रहती है। एक आता है और एक जाता है। कोई अपनी कमाई एवं पद के विषय मे पूछता है तो कोई अपनी आर्थिक एव सामाजिक समस्याओं के विषय मे प्रश्न करता है। कोई शत्रुता एव मित्रता की समस्याओं का समाधान चाहता है।

जो इन प्रश्नो का उत्तर रमल[3] के चिह्नो से देते है उन्हे मुनज्जिम (ज्योतिषी) कहा जाता है, जो लोग छोटे-छोटे कंकड़ों एव अनाज के दानो से भविष्यगणना करते है,

१. भविष्यवाणी की एक विधि।

२. शकुन विचारनेवाले।

३. शून्य की बिन्दियों द्वारा भविष्यवाणी की एक विधि।

उन्हें "हासिब"[१] कहते हैं। दर्पण अथवा जल देखकर भविष्यवाणी करनेवाले 'ज़ारिबुल मन्दल'[२] कहलाते हैं।......[३]

१. हिसाब लगानेवाले।

२. वृत्त खींचनेवाले।

३. इसके उपरान्त भविष्यवाणी के विभिन्न नियमों एवं इस्लामी सल्तनतों की अवस्था के विषय में भविष्यवाणियों की चर्चा की गयी है।

अध्याय ४

देश एवं नगर

नगर सम्बन्धी सभ्यता की विभिन्न क़िस्में, नगरों की दशा, उसका विवेचन

(१) सल्तनत का अभ्युदय नगर एवं आबादियों के पूर्व होता है

बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतों एवं भव्य भवनों का निर्माण सभ्यता एवं संस्कृति का ही परिणाम होता है। भोग-विलास तथा आराम-चैन, राज्य की खुशहाली एवं समृद्धि के द्योतक होते हैं। इसका प्रमाण हम पिछले पृष्ठों मे दे चुके हैं। सस्कृति अपना यह प्रभाव उस समय जमाती है जब "बदवियत" एवं उसकी आवश्यकताओं का युग समाप्त हो चुकता है और शहर का जीवन उसका स्थान ले चुकता है। उस समय तक कोई शक्तिशाली सल्तनत स्थापित हो चुकती है। इसके अतिरिक्त शहरों एव नगरों का तात्पर्य उन्ही बस्तियो से होता है जिनमे सब लोगों के लिए न कि विशेष लोगो के रहने-बसने के लिए, बड़े-बड़े भवन हों। यह बात उसी समय सम्भव है जब कि लोग बड़ी सख्या मे मिल-जुलकर रहे और एक दूसरे की सहायता करें। किसी एक व्यक्ति अथवा छोटे-से समूह द्वारा यह सम्भव नही कि वह ऐसे भवन बना ले। फिर यह कार्य उन परमावश्यक कार्यो मे नही आता जिनके करने के लिए मनुष्य स्वाभाविक रूप से बाध्य होता है। यह जरूरी नही कि वह बिना किसी दबाव के ऐसी वस्तियो के बसाने मे व्यस्त हो जाय। वास्तविक वस्तुस्थिति तो यह है कि सल्तनत अपने दवाव, धौस और राज्य की शक्ति द्वारा साधारण लोगों से निर्माण कार्य कराती है। अधिक से अधिक मजदूरियाँ देकर भव्य भवनों का निर्माण कराया जाता है और इस प्रकार एक शानदार नगर बस जाता है। यह बात स्पष्ट है कि अधिक से अधिक मजदूरियाँ देना अथवा जबरदस्ती काम लेना सल्तनत एवं राज्य द्वारा ही सम्भव है। अतः यह भी स्पष्ट है कि नगर बसाने एवं बड़ी-बडी इमारतों के निर्माण के लिए सल्तनत का अस्तित्व अनिवार्य एवं अपरिहेय होता है।

नगरो को बसाने के इच्छुक शासन एवं मल्तनत के दृष्टिकोण तथा अध्यवसाय के अनुसार और दैवी घटनाओ के अधीन जब नगर बसकर पूर्ण हो जाता है तब उसकी परिस्थितियाँ एव जीवन-अवधि सल्तनत की जीवन-अवधि से सम्बन्धित होती हैं। वे उसी के साथ चलती और समाप्त होती हैं। यदि सल्तनत का जीवन काल कम होता है और कुछ दिन जमने के बाद वह समाप्त होने लगती है तो बसा-बसाया नगर भी उजड़ना प्रारम्भ हो जाता है और वहाँ विनाश एवं शोक का वातावरण छा जाता है।

यदि सल्तनत की आय अधिक होती है तो नगर की समृद्धि भी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति करने लगती है। बड़े-बड़े कारख़ाने खुलते हैं। लम्बे-चौड़े भव्य भवनों का निर्माण होता है। नित्यप्रति उनकी संख्या बढ़ती है। खुले बाजार बन जाते हैं। चौड़े मार्ग बनाये जाते हैं। यहाँ तक कि मीलों के क्षेत्रफल मे चमकीला, दमकीला नगर बस जाता है। बग़दाद सरीखे भव्य नगरों का उदाहरण हमारे समक्ष है।

ख़तीब बग़दादी[1] ने अपने इतिहास मे लिखा है कि मामून के राज्यकाल मे बग़दाद में ६५,००० स्नानागार थे। चालीस से अधिक आबादियाँ मिलकर बगदाद नगर बसा था और उसकी जन-संख्या इतनी अधिक हो गयी थी कि वह किसी चहारदीवारी में न घेरी जा सकती थी। इस्लाम के प्रारम्भ में क़ैरवान, क़रतबा एवं महदिया की आबादियाँ ऐसी ही फैल गयी थी। उनके उपरान्त काहिरा का ऐश्वर्य एवं गौरव भी इतना बढ़ गया था। कभी-कभी नगर बसानेवाली सल्तनतें नष्ट हो जाती है, किन्तु जो पर्वत एवं मैदान नगर को घेरे होते है, वे उसकी सभ्यता के अन्तः-प्रवाह के साधन बन जाते है। इस प्रकार नगर राज्य के समाप्त हो जाने के उपरान्त भी जीवित रहता है और बाहरी स्थानों से अपनी जनसंख्या की कमी पूरी कर लेता है। मग़रिब मे फ़ास (फेज) एवं बजाया तथा पूर्व मे इराक़ और अजम के नगर इसी प्रकार अपनी आबादी को सुरक्षित रख सके और उनके आस-पास की बस्तियों ने उनकी जनसंख्या को गिरने नही दिया। इसका कारण यह है कि बदवी लोगों की आदत होती है कि जब वे लोग समृद्धि एवं सुख सम्पन्नता की हालत में प्रवेश करते हैं तो सुख-चैन एवं नाज़ व नेमत के जीवन के आदी हो जाते है और नगरों में जाकर बस जाते हैं तथा स्थायी रूप से वही निवास करना प्रारम्भ कर देते है। अब यदि इस बसे हुए नगर के इर्द-गिर्द बदवी बस्तियाँ नही है अथवा कम है तो संस्थापिका सल्तनत का विनाश नगर की वीरानी एवं विनाश का द्योतक होता है। इधर वह सल्तनत मिटी, उधर उस नगर की आबादी घटनी प्रारम्भ हुई। यहाँ तक कि उसके निवासी तितर-बितर हो जाते है और एक भरा-पूरा नगर एकदम उजाड़ नजर आता है। मिस्र बग़दाद, कूफ़ा, क़ैरवान, महदिया तथा बनी हम्माद इत्यादि के क़िलो की यही दशा हुई।

कभी-कभी ऐसा होता है कि संस्थापिका सलतनत के समाप्त होने के उपरान्त तुरन्त ही कोई दूसरी सल्तनत उसका स्थान ले लेती है और उस नगर को अपनी राजधानी बना लेती है। उस सल्तनत का विचार यह होता है कि जब एक बना-बनाया

१. सम्भवतः अल-ख़तीब-अल बग़दादी, 'तारीख़े बग़दाद' का लेखक।

तथा बसा-बसाया नगर प्राप्त हो रहा है, तो उसे नया नगर बसाने की आवश्यकता ही क्या है ? इस दशा में उस नगर को और भी रौनक प्राप्त हो जाती है और उसकी रौनक को चार-चाँद लग जाते हैं। घर बहुत बड़ी संख्या में बनते हैं, कारखाने खुलते है। सक्षेप में, नया राज्य जैसे-जैसे उन्नति करता है नगर भी अपना रंग-रूप बदलता है, मानो नया जीवन प्राप्त करता हो। फ़ास और काहिरा के शहर इसी तरह उन्नत हुए हैं।

(२) सल्तनत की स्थापना के पश्चात् सल्तनतें नगरों में पाँव जमाना चाहती हैं

जब किसी कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है तो वह आस-पास के नगरों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए विवश होती है। इसके दो कारण है। एक तो यह कि सल्तनत स्थापित होने पर लोगों मे आराम की आदत एवं विलास-प्रियता बढ़ जाती है और वे अपने कार्य-भार को हलका करने की चिन्ता करने लगते हैं। सभ्यता की जो आवश्यकताएँ अपूर्ण एव अधूरी रहती हैं, उनकी पूर्ति भी सल्तनत करना चाहती है। संक्षेप मे ये आवश्यकताएँ एवं उद्देश्य नगर मे ही पूरे हो सकते है, अतः सल्तनत नगर में ही अपने पाँव जमाना चाहती है। दूसरा कारण यह है कि नगरों पर अधिकार कर लेने के उपरान्त शत्रुओं का खटका मिटता है,कारण कि सीमा के समीप का नगर कभी-कभी शत्रु के लिए शरण का स्थान बन जाता है। वह उसमे ठहरकर दृढतापूर्वक युद्ध करता है। नये राज्य का पौरुषपूर्वक मुकाबला करता है और चाहता है कि नयी शक्ति का नितान्त विनाश कर दे। इस संघर्ष मे नगर उसके शत्रु के लिए कवच का काम करता है और उसकी योजनाओं को सहायता पहुँचाता है। तब उस नगर को विजय कर लेना बड़ा कठिन हो जाता है।

नगर मे प्रतिरक्षा के साधन बहुत अधिक होते हैं। वहाँ दृढ क़िले तथा चहारदीवारियाँ होती है, अतः नगर मे रहकर युद्ध करने के लिए थोड़ी-सी सेना भी बहुत बड़ी सेना का काम देती है। नगर मे "असबियत" की आवश्यकता भी अधिक नही होती, कारण कि खुले मैदानों मे उनकी आवश्यकता उस समय होती है जब शत्रु टूटकर गिरता है। ऐसी अवस्था मे "असबियत" एव एक दूसरे की सहायता के भरोसे पर ही शत्रु का डटकर मुकाबला किया जाता है। किन्तु नगर में दृढ़ एवं मज़बूत शहरपनाहे "असबियत" तथा सेना के आधिक्य की आवश्यकता बहुत कुछ पूरी कर देती है। संक्षेप में

किले, चहार-दीवारियाँ एवं शहरपनाहें खुले मैदान में युद्ध करनेवाली शक्ति का साहस शीघ्र समाप्त कर देती है और उसके प्रभुत्व की योजनाओं को मिट्टी में मिला देती है। इस परिस्थिति के कारण नयी सल्तनतों के लिए आस-पास के नगरों का विजय कर लेना अपने जीवित रहने के लिए परमावश्यक होता है ताकि वे इस भय से सदा के लिए मुक्त हो जायँ। यदि आस-पास नगर न हो तो सल्तनत को स्वयं नये नगर बसाने की चिन्ता होती है, ताकि सभ्यता की उन्नति हो सके और धन-सम्पत्ति को इधर-उधर लिये फिरने से मुक्ति प्राप्त हो जाय। यह उद्देश्य भी सामने होता है कि यदि कोई "असबियतवाला" क़बीला अथवा समूह उन पर आक्रमण कर दे तो उससे अपनी रक्षा करने के लिए एक दृढ़ स्थान मिल सके, अतः इस वाद-विवाद द्वारा यह सिद्ध होता है कि सल्तनत की स्थापना के उपरान्त नगर मे निवास करना एवं उस पर अधिकार जमाना परमावश्यक होता है।

(३) बड़े-बड़े नगरों एवं भव्य भवनों का निर्माण शक्तिशाली सल्तनतें ही करती हैं

यह हम पहले स्पष्ट कर आये है कि नगर की इमारतों, भवनों, एवं गृहों का बड़ा-छोटा होना सल्तनत की शक्ति एवं निर्बलता पर निर्भर है। इसका यह कारण है कि नगर का निर्माण मज़दूरों, कारीगरों एव मेमारों की अधिकता और बहुतायत पर निर्भर है। जब सल्तनत बड़ी होती है और उसके इलाके एवं सीमाएँ दूर-दूर तक फैली होती हैं तो वह अपने राज्य के आस-पास से मजदूर एवं कारीगर अधिक संख्या में एकत्र कर लेती है और वे मिल-जुलकर देखते-देखते भूमि को दृढ भवनों से ढँक देते हैं। कभी-कभी निर्माण-कार्य मे नाना प्रकार की मशीनों एव चरखियों आदि से भी काम लेते हैं। कुछ लोग जब प्राचीन नगरों के आश्चर्यजनक भग्नावशेषों, किसरा के ऐवान, मिस्र के एहरामो, मल्गा (कार्थेज) एवं शरशाल की मेहराबों आदि को देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते है। वे यह सोचने पर विवश होते है कि जैसे विशाल प्राचीन लोगों के ये भव्य भवन है, वैसे सम्भवतः उनके डील-डौल भी लम्बे-चौड़े ही रहे होंगे, हालाँ कि ऐसा सोचना एक भूल एव गलती है और उनकी उन मशीनों एवं चरखियों के प्रयोग से परिचित न होने का प्रमाण है जो भूतकाल मे उन्होने भवनों के निर्माण के लिए ईजाद कर रखी थी और जिनकी सहायता से वे इन गगनचुम्बी भवनों का निर्माण कर गये। यदि किसी को विश्वास न हो तो अजम के देशों मे जाकर देख ले कि भारी बोझ उठाने के लिए उन्होंने कैसे-कैसे यन्त्रों का आविष्कार किया था।

प्रायः लोग जब भव्य एवं प्राचीन भवनों को देखते हैं तो कह दिया करते हैं कि ये आद जाति के बनाये हुए है, कारण कि उन्होंने यह धारणा बना ली है कि इस क़ौम का डील-डौल असाधारण था और यह देवरूपी क़ौम थी, हालाँ कि यह विचार निराधार है। हमको अनेक प्राचीन आश्चर्यजनक भवन ऐसे लोगों के भी मिलेंगे जिनके डील-डौल के विषय मे हमे विश्वस्त रूप से ज्ञात है कि वे हम-जैसे ही अथवा हमसे कुछ अधिक डील-डौल के न थे। उदाहरणार्थ, फ़ारस मे किसरा का ऐवान, इफ़रीक़िया मे उबैदीईन के भवन, बनी हम्माद के कलए मे सिनहाजा के भग्नावशेष, क़ैरवान मस्जिद मे अग़ालबा के भग्नावशेष, रबातुल फ़तह मे मुवह्हेदीन के गगन-चुम्बी भवन, रबाते अबू सईद इत्यादि। इनके निर्माताओ का हाल चाहे वे हमारे युग के समीप के हों और चाहे पहले के, हमे विश्वास के साथ ज्ञात है और हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि वे किसी असाधारण डील-डौल के व्यक्ति न थे। यह केवल कहानी कहनेवालों की कपोलकल्पित बाते है जो उन्होने आद, समूद तथा अमालका जातियो के बारे मे गढ़ी है। उदाहरणार्थ, समूद के तराशे हुए पत्थरों के घर उसी रूप मे अबतक वर्त्तमान हैं। प्रामाणिक हदीसो से भी सिद्ध होता है कि ये घर उन्ही के है। हिजाजी काफले रातदिन उनकी ओर से गुजरते है और उनको देखते है कि लम्बाई तथा चौड़ाई मे वे साधारण घरों के समान हैं। वास्तव मे इन क़ौमो के विषय मे मस्तिष्क मे गलत धारणाएँ बैठ गयी है और उन धारणाओ के कारण यह निराधार किस्से भी गढ़ लिये गये है। अतः बड़ी-बड़ी शानदार इमारते, कारीगरो के डील-डौल की द्योतक नही, अपितु उस सल्तनत के ऐश्वर्य एव वैभव की द्योतक है जिसके राज्यकाल मे उनका निर्माण हुआ।

"ईश्वर जो चाहता है वह पैदा करता है[1]।"

(४) बड़े-बड़े भवन एक ही सल्तनत नही बना सकती

इसका कारण वही है जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके है कि भव्य भवनो के निर्माण हेतु बहुसख्यक मनुष्यों का मिल-जुलकर काम करना और पारस्परिक सहयोग से कार्य की मात्रा बढाना नितात आवश्यक है, कारण कि कुछ भवन इतन बड़े होते है कि उनका निर्माण एक अथवा दो या दस-बीस या सौ-पचास मनुष्यो के बस की बात नही होती। बहुत बड़ी मशीनों से भी यह काम सम्भव नही होता। इसके लिए सैकड़ो की सख्या मे मनुष्यो की सगठित शक्ति की आवश्यकता होती

(१) क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

है। इसी एक ही सल्तनत के समय में शानदार इमारतों का निर्माण नहीं होता, अपितु प्रत्येक सल्तनत अपने-अपने शासन काल में निर्माण-कार्य जारी रखती और उसमें वृद्धि करती रहती है। इस प्रकार विभिन्न सल्तनतों के बाद इमारते पूरी होती है। कार्य एक सल्तनत प्रारम्भ करती है और बाद में आनेवाले राज्य अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उसे आगे बढ़ाते और उच्चतर करते रहते है। यहाँ तक कि कुछ समय मे एक आश्चर्यजनक गौरव की वस्तु सबके समक्ष आ जाती है। देखनेवाले समझते है कि यह एक ही सल्तनत अथवा एक ही बादशाह का कारनामा है।

इसके प्रमाण में इतिहास मारिब के बाँध का उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। इसका निर्माण सबा बिन यशजुब ने प्रारम्भ कराया और उसमें ७० नदियों को लाकर मिलाया था, किन्तु पूरा होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गयी। बाद के आनेवाले हिमयरी बादशाहों ने अपनी-अपनी बारी से उसे पूरा कराया। इसी प्रकार करताजन्ना[२] बना और उसकी अद्वितीय नहर एव आद के (पुलों के) मेहराब बहुत अधिक समय में बनकर तैयार हुए। विभिन्न बादशाहो ने अपने-अपने राज्यकाल मे उस पर धन-सम्पत्ति व्यय की और अन्त में उसे पूर्ण कर दिया। अधिकाश प्राचीन बड़े-बड़े भवन इसी प्रकार शनैः-शनैः वर्तमान रूप धारण कर सके जिसे देखकर हम आश्चर्यान्वित हो जाते है। हम अधिक दूर क्यों जायँ। अपने ही युग के बादशाहों को देखिए कि एक बादशाह एक भव्य भवन की नीव डालता है और उसका निर्माण-कार्य उच्च स्तर पर प्रारम्भ करता है, किन्तु यह कार्य उसके जीवन-काल में पूर्ण नहीं होता। वह उसे अधूरा छोड़कर ससार से चल बसता है फिर उसके बाद दूसरे बादशाह उसकी ओर ध्यान नही देते। फलत. वह भवन अपूर्ण एव अधूरा रह जाता है।

इस तथ्य को हम एक अन्य प्रकार से सिद्ध कर सकते है। हम बहुत-से भवनों को इतना दृढ पाते है कि सल्तनते उनका खडन एव विनाश नही करा पाती, यद्यपि तोड़ना बनाने से और गिराना निर्माण से कही अधिक सरल है, कारण कि तोडने से चीज अपने स्रोत अथवा शून्य की ओर जाती है। अतः जब उनका एक अथवा कई सल्तनतें खंडन नहीं करा सकतीं, जो बहुत सरल है, तो उनको एक सल्तनत बना कैसे सकती है ? इतिहासों मे लिखा है कि जब हारूनुर्रशीद ने किसरा के ऐवान का खंडन

१. **दक्षिणी-पश्चिमी अरब का एक नगर तथा** Sabacan **(साबी) बादशाहों की राजधानी।**

२. Carthage.

कराना चाहा और इस विषय में यहया बिन ख़ालिद से जो उस समय बन्दीगृह में था, परामर्श किया तो उसने कहा, "अमीरुल मोमिनीन ! ऐसा न कीजिए। इनको इसी दशा में छोड़ दीजिए। अनन्त काल तक य आपके पूर्वजों के, जिन्होंने इस भव्य भवन के निर्माता से राज्य छीना था, ऐश्वर्य एव गौरव के द्योतक रहेंगे।" हारूनुर्रशीद समझा कि, "है तो अजमी ही ! अजम के नाम को बनाये रखना चाहता है" और शपथ लेकर कहा "मै इनका खंडन करके रहूँगा।" अत: खडन कार्य प्रारम्भ हुआ और बहुत बड़ी संख्या मे मजदूर एकत्र कराये गये। इस विचार से कि भवन के जोड खुल जायें और वह सुगमतापूर्वक टूट-फूट सके, सिरका छिड़क कर आग लगा दी जाती थी, किन्तु वह भवन न टूटा। जब हारुनुर्रशीद ने देखा कि वह उसके तुड़वाने मे असमर्थ है और अब काम अधिक जारी रखने से और भी अपमान होगा तो यहया से पुन: परामर्श किया कि, "क्या भवन इसी प्रकार बिना तुड़वाये छोड दूँ ?" तो उसने उत्तर दिया, नही ! अब काम जारी रखिए अन्यथा लोग यह कहेंगे कि देखो अजम के बनवाये हुए भवन का अरब बादशाह अमीरुल मोमिनीन खंडन भी न करवा सके।" रशीद समझ गया कि, उसने व्यंग किया है, किन्तु वह कर ही क्या सकता था। अत: उसको कार्य बन्द कराना पड़ा।

इमी प्रकार की घटना मामून के समय मे घटी जब कि उसने मिस्र के एहरामो[१] को ढाना चाहा। उसने बहुत बडी सख्या मे मजदूर एकत्र किये। उन्होंने इमारत तोडना प्रारम्भ किया। जब बाहर की दीवार थोड़ी-बहुत टूट गयी तो भीतर से खाली स्थान दृष्टिगत हुआ जिसके पीछे अन्य दीवारे थी। यह देखकर मामून के भी छक्के छूट गये और उसने काम वही रुकवा दिया। यह छेद अब तक उसी प्रकार बाकी है। लोगों का विचार है कि यहाँ से मामून को कोई गड़ी हुई धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। यही हाल (मलगा) करताजा[२] के मेहराब का है कि अब तक खड़ा है। कुछ ही दिनों की बात है कि तूनुसवालों को इमारत के लिए पत्थर की आवश्यकता हुई और इस पुल का पत्थर पसन्द किया गया। बहुत समय तक उसके खडन का प्रयत्न किया गया, तब कही जाकर थोड़ा-सा गिरा। मेरी बाल्यावस्था थी जब कि लोग उस पुल के गिराने का प्रयत्न कर रहे थे और इस विषय मे परामर्श गोष्ठियाँ किया करते थे।

"ईश्वर को सभी बातों पर शक्ति प्राप्त है।"

१. पिरामिड।

२. कारथेज।

(५) नगर बसाने में ध्यान देने योग्य बातें तथा उनकी उपेक्षा के दुष्परिणाम

जब किसी क़ौम को भोग-विलास, समृद्धि एवं सुख-सम्पन्नता प्राप्त होती है तो उसमे आराम करने एवं शरीर को कष्ट न देने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में वह नगरों की ओर प्रस्थान कर देती है। वहाँ बसकर भव्य भवनो एव ऊँचे-ऊँचे महलों के निर्माण की उसे चिन्ता हो जाती है। शान्तिदायक स्थान की इच्छा वह करने लगती है। अतः उसके लिए आवश्यक होता है कि नगर मे रहकर वह हानि से बचने और लाभ प्राप्त करने के साधन एकत्र करे। अर्थात् बाहरी आक्रमणो से बचने के उचित उपाय सोचे, आबादी के चारों ओर शहरपनाह बनाये और नगर को ऐसे स्थान पर बसाये जहाँ वह शत्रु के आक्रमण से अधिक से अधिक सुरक्षित रह सके यानी किसी ऊँचे टीले अथवा पहाड़ी की चोटी पर या किसी ऐसे स्थान पर जहाँ आस-पास नदी अथवा नहर बहती हो, ताकि शत्रु आक्रमण के समय उसे सुगमता-पूर्वक पार न कर सके और पुल इत्यादि पर होकर उसे पार करना पड़े। शत्रु के मार्ग को रोकने के लिए नहर निकालने की बात भी सोची जाती है।

इसी प्रकार दैवी दुर्घटनाओं से भी नगर की रक्षा परमावश्यक है। उदाहरणार्थ, नगर ऐसे शुद्ध-स्वच्छ अथवा खुले मैदान मे बसाया जाय जहाँ का जलवायु स्वास्थ्य-प्रद हो और नगर की जनता रोगो एव बीमारियों से सुरक्षित रह सके, कारण कि जब कही से स्थानाभाव के कारण हवा निकल नही पाती तो रुकी रहती है और खराब हो जाती है। यदि आबादी के पास बदबूदार हवा होती है अथवा गदे-गदे तालाब होते हैं तो उनकी दुर्गंध वायु को दूषित कर डालती है। प्राणियों में नाना प्रकार के रोग फैल जाते है। आबादी विविध प्रकार के रोगों का केन्द्र बन जाती है। हमने इसे देखा है कि जिन नगरो मे वायु की शुद्धता पर ध्यान नही रखा जाता, वे प्रायः रोगो के केन्द्र बने रहते है। इफरीक़िया के क़ाबिस नगर के विपय मे प्रसिद्ध है कि उस स्थान की दूषित वायु के कारण कोई यात्री अथवा स्थानीय निवासी एक विशेष प्रकार के ज्वर से सुरक्षित नही रह सकता। कुछ लोगों का मत है कि उस नगर की वायु अब दूषित हुई है, पहले न थी। इसका कारण अल-बकरी[1]

१. अब्दुल्लाह बिन अब्दुल अजीज प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता हुआ है। उसने अपना अधिकांश जीवन कारडोवा में व्यतीत किया। उसकी मृत्यु अक्तूबर-नवम्बर १०९४ ई० में हुई।

ने यह लिखा है कि किसी समय वहाँ खुदाई में एक ताँबे का मुहर बन्द बरतन मिला जिस पर सीसे की मुहर लगी हुई थी। उसकी मुहर जब खोली गयी तो उसमें से धुँवा उठा और वह वायुमडल मे फैल गया। उसी समय से ज्वर का वह रोग व्यापक हो गया। बकरा का इस कहानी को उद्‌धृत करने का उद्देश्य यह है कि इस बरतन मे जादू के जोर से वायु के समान कोई ऐसा पदार्थ बन्द कर दिया गया था जो मुहर के हटाने से वायुमडल में फैल गया जिससे ज्वर का रोग फैल गया। यद्यपि जन-साधारण ऐसी कहानियाँ गढ़ा करते है और उन्ही के विचार इस प्रकार से निराधार हुआ करते है। यतः बकरी स्वयं कोई विद्वान् न था, अत. ऐसी निराधार कहानी की आलोचना करने के स्थान पर उसने जैसा कुछ सुना वैसा ही अपने ग्रन्थ मे उद्‌धृत कर दिया। इसमे तथ्य केवल इतना है कि वायु के अधिकाशतः एक ही स्थान पर ठहरे रहने से वायुमंडल दूषित हो जाता है और ज्वर फैल जाता है। जब वायु को इधर-उधर चलने का अवसर प्राप्त होता है तो उसकी दुर्गन्ध कम हो जाती है और प्राणियों को रुग्ण नही करती। अतः जब कोई नगर घना बसा होता है और उसमें हर समय हलचल मची होती है, तो वायु मे भी हर समय लहरें पैदा होती रहती हैं। हवा को ठहरने का अवसर नही मिलता, अपितु हर समय लहराव के कारण बुरी हवा निकल जाती है और स्वच्छ ताजी हवा आ जाती है। इसके विपरीत नगर की आबादी जब घटती है तो हवा की लहरें कमजोर पड़ जाती है। वायु एक स्थान पर ठहरी रहती है और ठहरकर सड जाती है। इस गदी वायु का हानिकर प्रभाव आबादी इत्यादि पर पड़ने लगता है। काबिसनगर की दशा भी ऐसी ही हुई। जिस समय वह नया-नया बसा था और आबादी घनी थी तो लोगों के चलने-फिरने से उसकी वायु मे हर समय कॅपकॅपी रहती थी। इस प्रकार वहाँ स्वास्थ्य-हानि की आशं-काएँ बहुत कम थी। न तो वायु में दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी और न उसके कारण बीमारी का खटका होता था। अब जब उसकी आबादी घटी तो उसकी वायु स्थिर होने के कारण सड़ गयी और उससे पूरा नगर रोग का केन्द्र बन गया। अतः रोग के उत्पन्न होने का ठीक कारण यही है।

कभी इसका उलटा भी होता है कि एक नगर जब प्रारम्भ मे बसाया जाता है और वायु को स्वच्छ रखने के वहाँ कोई साधन भी नही होते तो आबादी की कमी के कारण वहाँ बहुत-से रोग फूट पड़ते है। जब आबादी बढती है तो दशा उसके विरुद्ध हो जाती है। रोग एक-एक करके नष्ट होने लगते है। आज हमारे सामने राजधानी फास जो नवीन नगर के नाम से प्रसिद्ध है, इस तथ्य का खुला उदाहरण

है। यही नही संसार में आप जिस नगर पर दृष्टि डालेंगे, तो जिस तथ्य का हमने निरूपण किया है, उसे शत-प्रतिशत ठीक पायेंगे।

वे साधन जिनसे आबादी को लाभ पहुँचाया जा सकता है, निम्नांकित है। पहले तो जल पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय अथवा नगर नहर के किनारे बसाया जाय, या उसके निकट ही मीठे जल के झरने हों कारण कि जब जल आबादी के समीप ही होता है तो आबादी को बड़ी शाति एवं आराम मिलता है। उसकी जल की आवश्यकता शीघ्र पूरी हो जाती है। जल की आवश्यकता प्रत्येक जीव को कितनी है, वह स्पष्ट है। इसी प्रकार आबादी के समीप मवेशियों के लिए हरी-भरी चरागाहों का प्रबन्ध भी परमावश्यक है, कारण कि प्रत्येक आबादी में बच्चे लेने, दूध प्राप्त करने, एवं सवारी करने के लिए पशुओं का होना परमावश्यक है। जब चरागाहे समीप होगी तो लोग अपने मवेशियों को चराने के लिए दूर ले जाने के कष्ट से बच जायेंगे और जब चाहेंगे पास ही चरा लाया करेंगे। इसके साथ खेती-बारी भी नगर के निकट ही होनी चाहिए। ईधन की आवश्यकता से भी लोगों को मुक्ति नहीं मिल सकती, कारण कि वे इससे आग जलाते है, तापते है और भोजन भी बनाते है। लोगो को घर की छतों एव अन्य आवश्यकताओं के लिए लकड़ी की भी आवश्यकता होती है। नगर बसाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह समुद्र तट के समीप हो, ताकि दूरस्थ नगरों से सुगमतापूर्वक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो सके। किन्तु इसे उपर्युक्त अन्य बातों की अपेक्षा कम महत्त्व प्राप्त है। इन सब बातों की जितनी अधिक सुविधा नगरवासियो को होती है, नगर का महत्त्व उतना ही अधिक बढ़ता जाता है।

कभी-कभी तो नगर के सस्थापक नगर बसाते समय उसकी प्राकृतिक स्थिति पर दृष्टि नही रखते। वे यदि किसी बात पर दृष्टि रखते भी है तो प्रायः अपनी, एवं अपनी क़ौम की सुविधा पर ही, न कि सर्वसाधारण की सुविधा पर। इस प्रकार जब अरबों ने इस्लाम के प्रारम्भ मे इराक़ एवं इफरीक़िया मे नगरों की स्थापना की तो अपने पालतू जानवरों एवं ऊँटों की चरागाहों का पर्याप्त ध्यान रखा और नगर ऐसे स्थानों पर बसाये जहाँ उनके लिए चारा भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सके एव खारा जल भी। किन्तु उन्होंने मीठे पानी, खेती-बारी, जलाने एवं भवन-निर्माण के काम में आनेवाली लकड़ी, तथा ऊँटों के अतिरिक्त अन्य मवेशियों की चरागाहों पर कोई ध्यान नहीं दिया। क़ैरवान, कूफा, बसरा अथवा इस प्रकार के अन्य नगर इस तथ्य के खुले प्रमाण हैं। यही कारण है कि जब तक नगरों के निर्माण में नैसर्गिक सुविधाओं का ध्यान नही रखा जाता तब तक वे विनाश की ओर ही बढ़ते रहते है।

जो नगर समुद्र तट पर स्थित है उनके लिए यह भी आवश्यक है कि वे या तो पर्वत के अचल मे बसे हों अथवा बहुसंख्यक क़बीलों की बस्तियों से घिरे हों, ताकि यदि किसी समय शत्रु अचानक नगर पर टूट पड़े तो समस्त क़बीले सहायतार्थ सिमट आये और एक ही आवाज पर सब एकत्र हो जायँ। इसका कारण यह है कि भले ही कोई नगर समुद्रतट पर स्थित हो, लेकिन उसकी सहायता हेतु "असबियत" वाले क़बीले उसके चारों ओर यदि न हों और न वह पर्वत के आँचल में स्थित हो तो उसे सर्वदा शत्रु के नैश आक्रमणों तथा उसके समुद्री बेड़े का भी भय रहेगा क्योंकि शत्रु जानता है कि नगर के रक्षार्थ न तो कोई "असबियत" ही मुकाबला करने को है न नगरवासी ही जो आराम के जीवन एवं भोग-विलास के आदी हो चुके है, इतना साहस कर सकते है कि मुकाबला कर सके। वे लोग तो स्वयं ही नगर सस्थापको के कधों के लिए भारस्वरूप होते है। पूर्व मे इस्कन्दरिया, मग़रिब मे तराबलस,[१] और बोना[२] एव सलामती,[३] "असबियत" वाले कबीलो से ऐसे घिरे हुए है कि एक आवाज लगा दी जाय तो सब सहायता के लिए टूट पड़ें। फिर उन तक पहुँचने के मार्ग भी इतने कठिन है कि शत्रु को उन पर अचानक आक्रमण करने का साहस नही होता, कारण कि वे मार्ग पर्वत की ऊँचाइयों एवं घाटियों की नीचाइयों मे छिपे होते है अथवा यह कहिए कि शहर ऐसे किलेबन्द है कि शत्रु या तो मार्ग की कठिनाई का विचार करके साहसहीन हो जाता है या यह सोचकर कि नगर की सहायता हेतु सभी क़बीले सहमत होकर सहायता के लिए टूट पड़ेगे, वह आक्रमण हेतु अग्रसर नही होता। सब्तह,[४] बजाया[५] तथा क़ुल[६] यद्यपि छोटे-छोटे तटवर्ती नगर है, पर वे अपनी भौगोलिक स्थिति के आधार पर शत्रु के साहस को दलित किये रहते है। इसी कारण अब्बासियो के राज्यकाल मे इस्कन्दरिया सीमांत के प्रदेशो मे गिना जाता था यद्यपि उनका प्रभुत्व बरका एव इफरीकिया तक फैला हुआ था। क्योंकि वह समुद्रतट पर स्थित था और शत्रु के आक्रमण का हर समय खटका रहता था, इस कारण इसे सीमान्त के स्थानो की भाँति अत्यन्त दृढ़ किया गया था।

१. Tripoli, त्रिपोली।
२. Bone, बोन।
३. Sale, सेल।
४. Ceuta, क्योटा।
५. Bougie, बोग।
६. Collo, कोल्लो।

शत्रुओं ने इस्कन्दरिया एवं तराबलस पर इस्लामी राज्यकाल में अनेक बार अचानक आक्रमण किये।

(६) संसार के सर्वोत्कृष्ट पूजागृह एवं मस्जिदें

ईश्वर ने भूमि के किन्ही-किन्ही भागो को विशेष सम्मान एव खास गौरव प्रदान किया है और वहाँ की गयी उपासनाओ का पुण्य अन्य स्थानो की अपेक्षा बहुत अधिक बताया है। अपने दासो के प्रति कृपा प्रदर्शित करते हुए एव उनके लिए सौभाग्य के मार्ग प्रशस्त करते हुए उसने उन स्थानो की विशेषताओ एव प्रसादों को अपने पूज्य रसूलो एव नबियो की वाणी द्वारा प्रकट किया है। ससार के समस्त पूजागृहो एव मस्जिदो मे प्रामाणिक हदीसों के अनुसार तीन मस्जिदें सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है, अर्थात् मक्के की मस्जिद, मदीने की मस्जिद एव बैतुल मुकद्दस। मक्के की मस्जिद "बैतुल हराम" का निर्माण हजरत इबराहीम ने ईश्वर के आदेशानुसार कराया। तदुपरान्त वहाँ हज करने का ससारवालो को आदेश दिया। हजरत इबराहीम ने स्वय एव उनके पुत्र हजरत इस्माईल ने अपने पवित्र हाथो से ईश्वर के इस पवित्र एवं सम्मानित घर का निर्माण किया और ईश्वर के आदेश का पालन किया। कुरान शरीफ़ में इस घटना का इसी प्रकार उल्लेख हुआ है। काबे के निर्माण के उपरान्त हजरत इस्माईल अपनी माता हजरत हाजेरा एव जुरहुम क़बीले सहित जीवन पर्यन्त वही निवास करते रहे। उनका मजार भी वही है।

बैतुल मुकद्दस के निर्माण का आदेश ईश्वर की ओर से हजरत दाऊद एव हजरत सुलेमान को मिला था। इन्ही दोनो महानुभावों ने आदेश का पालन किया और वहाँ की मस्जिद एवं हयाकिल का निर्माण कराया। उसके आसपास हजरत इस्हाक की सतान के बहुत-से नबियो के रौजे है।

मदीने मे हमारे नबी हजरत मुहम्मद हिजरत करके पहुँचे थे। ईश्वर की ओर से आपको हिजरत का तथा मदीने को अपने धर्म के प्रचार का केन्द्र बनाने का आदेश मिला था। आपका मजार भी इसी पुण्य भूमि मे है।

हम भी चाहते है कि इन तीनो मस्जिदो का कुछ ऐतिहासिक वर्णन प्रामाणिक सूत्रो की पृष्ठ भूमि मे दे और बताये कि ये किस प्रकार प्रारम्भ हुई और किस प्रकार शनैः-शनैः उन्नति कर सकी ......[१]

१. इब्ने ख़लदून ने इन तीनों का सविस्तर उल्लेख किया है। इस भाग का अनुवाद नहीं किया गया।

(७) इफ़रीक़िया एवं मग़रिब में नगरों की संख्या कम है

इसका कारण यह है कि इस्लाम के सहस्रों वर्ष पूर्व इस देश में बरबर जाति के लोग बसते थे जो बदवी जीवन व्यतीत करते थे। नगर के जीवन एवं संस्कृति से न तो उनका दूर का भी सम्बन्ध था और न सभ्यता के प्रभाव मे आकर वे अपनी आबादियों को नगरों का रूप ही देते थे। यहाँ आकर आबाद होनेवाली फिरंग एवं अरब कौमों को राज्य करने के लिए बहुत कम समय मिल सका और वे अपने कदम अधिक न जमा सकी, न नगरों के निर्माण की व्यवस्था ही कर सकी। अतः बरबर अपनी मूल "बदवी" दशा में ही मस्त एव मगन रहे और इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर बसते रहे। इसके अतिरिक्त बरबर कला-कौशल से दूर एव उनसे अनभिज्ञ भी थे। वे "बदवियत" के आदी थे जब कि कला-कौशल के लिए नगर के जीवन की आवश्यकता होती है। उन्हें न भवन-निर्माण की कला मे कुशलता प्राप्त थी और न उन्हें इस बात से रुचि थी कि वे भव्य भवनों का निर्माण करायें तथा बड़े-बड़े नगर बसायें। तीसरे वे "असबियत" वाले थे एव वश तथा कुल के लिए प्राण त्याग करनेवाले। "असबियत" एवं नसब परस्ती "बदवियत" की ही पृष्ठ पोपक है। नागर जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नही होता। नगर निवासी आराम तलब एव विलासप्रिय होते है। वे अपने शासकों पर बोझ होते है। इसी कारण "बदवी" लोग नगर-निवास से बचते है और उसे पसन्द नही करते। नगर की ओर तो उसी का हृदय आकृष्ट होता है जो विलासप्रिय हो और जिसके पास धन-सम्पत्ति की अधिकता हो।

इस प्रकार इफरीकिया एवं मगरिब की सब अथवा अधिक जनसख्या "बदवी" है जो खेमों, डेरों एव पर्वत की गुफाओं मे निवास करने की आदी है। इसके विपरीत अजम की आबादियाँ, उदाहरणार्थ इन्दुलुस, शाम, मिस्र, एव इराक इत्यादि के निवासी सबके सब सभ्यता एवं नगर के जीवन के आदी है। इसका कारण यही है कि वे वश को अधिक महत्त्व नही देते, न उसकी शुद्धता की रक्षा की चिता करते है। वे अपने कुल का गुण-गान नही किया करते और न उस पर अभिमान ही करते है। दूसरी ओर "बदवियों" को देखा जाय तो पता चलेगा कि वे कुल ही पर मिटे जाते है और उसकी रक्षा मे रक्त बहाने पर उद्यत रहते है। इस कारण उनमें "असबियत" सीमातीत होती है और इस "असबियत" एवं कुल मर्यादा की चिन्ता ही उन्हे बदवी जीवन की ओर आकृष्ट किया करती तथा नागर जीवन से दूर रखती

है, कारण कि नगर में रहकर तो वे अपनी कठोरता, अक्खड़पन एवं वीरता आदि सभी गुणों को भूल जाते है। वे दूसरों की सहायता करने के स्थान पर दूसरों पर बोझ हो जाते है। अतः आप इस ऐतिहासिक तथ्य को भली-भाँति समझ लीजिए और संसार की सभ्यता को इसी सिद्धान्त की कसौटी पर परखिए।

(८) प्राचीन सल्तनतों की अपेक्षा इस्लामी ऐश्वर्य एवं गौरव की तुलना में इस्लामी सल्तनतों के भव्य भवनों की संख्या कम है

इसका कारण वही है जो हम बरबरों के सम्बन्ध में लिख चुके है कि अरब क्योकि पूरे बद्दू थे और कला-कौशल से अनभिज्ञ थे, अतः वे लोग नागर जीवन से अपरिचित रहे और इस्लाम के पूर्व जिन देशो पर इन्हें प्रभुत्व प्राप्त हुआ वहाँ वे लोगों से अलग-अलग रहे, उनमें घुले-मिले नही। जब इस्लाम के उपरान्त उन्हे विजय प्राप्त हुई तो उन्होने एक जगह जमकर अधिक समय नही व्यतीत किया जिससे वे सभ्यता एवं नागर जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचाते और भव्य भवनों का निर्माण कराते। फिर अन्य लोगों के बनवाये भवन एवं आराम के निवास-स्थान मिल गये तो उन्होंने स्वयं अपने भवनों के निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनका दीन एवं धर्म भवन-निर्माण में अपव्ययता की घोर निन्दा करता था और उतने ही भवन बनवाने की अनुमति देता था जितने निवास हेतु आवश्यक एवं अनिवार्य थे। इसका प्रमाण हमें इस ऐतिहासिक घटना से मिलता है कि जब कूफे के बाँसो के घर नित्यप्रति जलने लगे तो लोगो ने विवश होकर हजरत उमर से पत्थर के भवनों के निर्माण की अनुमति माँगी ताकि आग लगने के भय से मुक्ति प्राप्त हो जाय। हजरत ने अनुमति तो दे दी, किन्तु आदेश दिया कि "कोई भी तीन से अधिक कमरो का घर कदापि न बनवाये और न भवनों पर किसी प्रकार का अपव्यय करे, अपितु सुन्नत के मार्ग का ध्यान रखे। सौभाग्य सर्वदा उसका साथ देगा।" साथ-साथ एक शिष्ट-मंडल कूफे भेजा और आदेश दिया कि वह लोगों को चेतावनी देता रहे कि वे अपने भवनों को आवश्यकता से अधिक बलन्द न करे। जब हज़रत उमर से प्रश्न किया गया कि आवश्यकता का प्रतिबंध लगाने की क्या ज़रूरत है तो उन्होने आदेश दिया कि न तुम अपव्यय करो और न कष्ट उठाओ।

जब धर्मनिष्ठा एव ईश्वरीय भय का युग समाप्त हुआ और अरबवाले शहंशाहियत एव भोग-विलास के चक्कर में आ गये तथा फ़ारसवालो से सेवाएँ कराने लगे तो उनसे अरबों ने कला-कौशल एवं भवन-निर्माण कला मे कुशलता प्राप्त कर ली

और वे भी आरामतलबी एवं विलासिता की ओर आकृष्ट हो गये। उन्होंने बड़े-बड़े भवनों का निर्माण कराया। किन्तु इस समय उनकी सल्तनत अपने जीवन की अंतिम साँसें ले रही थी। उनको अवसर ही न मिल सका कि और कुछ समय तक वे शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते, अधिक से अधिक संख्या में महल बनवा पाते एवं भव्य नगरों तथा क़स्बों का निर्माण कराते।

अन्य क़ौमों के साथ ऐसा नही हुआ। उदाहरणार्थ, फारसवालो का राज्य सहस्त्रों वर्ष तक जमकर चला। इसी प्रकार किब्त, नब्त, रूम इत्यादि के राज्य भी सदियों तक चलते रहे। आद, समूद, अमालक़ा एवं तबाबेआ लोग भी दीर्घकाल तक राज्य करते रहे। इन सभी ने कला-कौशल की उन्नति की और अपने लम्बे राज्यकाल में उन्होंने संसार के आश्चर्यजनक भवनों का बहुसंख्यक निर्माण कराया जो सहस्रो वर्ष के बाद आज भी वर्त्तमान है। जब आप क़ौमों का इतिहास पढ़ेंगे तो जिन तथ्यों का हमने उल्लेख किया है उन्हें शत-प्रति-शत ठीक पायेंगे।

(६) एक-आध को छोड़कर अरबों के बनवाये हुए भवन शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं

इसका कारण वही है जो अभी बताया जा चुका कि अरब लोग ठेट बद्दू थे और कला-कौशल से अपरिचित थे। अतः उनके भवन मजबूत, दृढ़ एवं स्थायी नहीं होते थे। एक कारण और भी था जिसकी ओर हम इससे पूर्व भी सकेत कर चुके है कि उन्होंने जब कभी नगर बसाये, बस्तियाँ आबाद की तो प्राकृतिक आवश्यकताओं का ध्यान नही रखा, न औचित्य की ओर दृष्टिपात किया। स्थान की सुन्दरता, जलवायु का स्वास्थ्यप्रद होना, मीठे एवं स्वादिष्ठ जल की निकटता, खेतों एवं चरागाहों के सान्निध्य आदि सुविधाओ की ओर से वे प्रायः असावधान रहते थे। नगर एव बस्ती के गुण एव अवगुण, तथा आबादी की सुन्दरता एव विशेषता इन्ही प्राकृतिक दशाओ पर निर्भर है। किन्तु अरबों ने उनसे कोई सम्बन्ध न रखा। वे तो अपने ऊँटो की चरागाहो का ध्यान रखते थे अर्थात् जल मीठा है अथवा खारा, कम है अथवा अधिक। वे इस बात की खोज न करते कि यहाँ की भूमि कृषि के लिए उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त, वायु स्वास्थ्यप्रद है अथवा नही। इन बातों की वे चिन्ता करते भी क्यो? कारण कि वे तो एक स्थान पर ठहरते ही न थे, नित्यप्रति चलते-फिरते रहते थे। आज यहाँ है तो कल वहाँ। वे दूर-दूर से अनाज ले आते। ऐसी अवस्था में उन्हें खेती-बारी हेतु भूमि ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्या थी। वे

किस लिए इस विषय में परिश्रम करते। वे मैदानों एवं जंगलों में पड़ाव करते थे। जब कभी एक स्थान पर निवास करने के कारण जलवायु दूषित हो जाता तो तत्काल वहाँ से चल पड़ते और कहीं अन्यत्र जाकर ठहर जाते थे।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि कूफ़ा, बसरा एवं क़ैरवान को जब अरबों ने बसाया तो केवल अपने ऊँटों की चरागाहों का ध्यान रखा, जंगल के सामीप्य पर दृष्टि रखी और यातायात के मार्गों के विषय मे सोच-विचार किया। इसके अतिरिक्त नगर बसाने के लिए जिन प्राकृतिक सुविधाओं का होना अनिवार्य है उनकी उन्होंने उपेक्षा की। उन्होंने उन आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया जिनसे नगर की जनमख्या बढ़ती है और घटने नही पाती। हम बता चुके है कि प्रत्येक स्थान आबादी के लिए उपयुक्त नही होता। फिर यह भी आवश्यक है कि नगर के आस-पास ऐसी क़ौमे आबाद हों जो आबादी को घटने तथा कम न होने दें। अरबों ने इस बात पर कभी ध्यान नही दिया। फलतः जब उनके राज्य का जोर टूटा और "असबियत" समाप्त हुई तो अचानक बस्तियाँ वीरान हो गयी और एसी उजड गयी कि मानो थीं ही नही। यदि उनके आस-पास अन्य कौमे होती तो आबादी की गिरती दशा को थाम लेती और उन्हे नष्ट होने से बचा लेती।

"ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय में परिवर्तन नही कर सकता।"[१]

(१०) नगरों के विनाश का प्रारम्भ

नगर जब बसाये जाते है तो प्रारम्भ मे उनकी आबादी कम होती है। भवन-निर्माण हेतु सामग्री, पत्थर, चूना इत्यादि भी कम प्राप्त होते है। इसी प्रकार भवनों की सज्जा, सामग्री, नरम पत्थर, मीनाकारी एवं पिच्चीकारी हेतु शीशे, काँच एवं सीसा इत्यादि उपलब्ध नही होते। विवश होकर घर "बदवी" ढाँचे के बनते है और सीधे-सादे होते है। जब जनसंख्या मे वृद्धि होती है, नगर निवासियों की सख्या बढती है तब कला-कौशल की चर्चा होती है, अच्छे-अच्छे कारीगर एवं शिल्पकार पैदा होते है, भवनो के निर्माण एव सज्जा हेतु सुन्दर वस्तुएँ ढूँढ कर लायी जाती है और भवन-निर्माण के नये-नये यत्र ईजाद किये जाते है। ऐसी स्थिति बस्ती

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

की युवावस्था होती है, किन्तु जब इसका पतन होने लगता है तो नगरवालों की जन-संख्या कम हो जाती है। कला-कौशल का पतन हो जाता है, भवन-निर्माण में सुन्दरता का ध्यान कम रखा जाता है और वह कार्य ऐसी परिपाटी का रूप धारण कर लेता है जिसका पालन कठिनाई से होता है क्योंकि जनसख्या की कमी के कारण न तो मजदूर ही मिलते है, न अन्य वस्तुएँ। अब जो नये भवन बनते है उनके लिए वीरान, एव उजड़े हुए महलों, घरों तथा कारखानो को तोड़-फोडकर पत्थर एव चूना प्राप्त किया जाता है। एक भवन का सामान दूसरे भवन मे लगाया जाता है। एक भवन उजड़ता है तो दूसरा बसता है, एक मिटता है तो दूसरा बनता है। इस प्रकार बसा बसाया नगर ग्राम का रूप धारण करने लगता है और अन्त मे ग्राम बनकर ही रह जाता है अथवा पूर्णतः वीरान हो जाता है।

"ईश्वर अपने प्राणियों से इसी प्रकार व्यवहार करता है।"

(११) नगरों में खाद्य सामग्री की बहुतायत और बाज़ारों की चहल-पहल तथा रौनक़ नगर की सांस्कृतिक अवस्था पर निर्भर है

सत्य तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य अकेला ही अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को कदापि पूरा नही कर पाता। आपस मे मिल-जुलकर तथा एक दूसरे की सहायता से ही सब लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करते और जीवन निर्वाह करते है। अनाज को ही ले लीजिए, चूँकि प्रत्येक मनुष्य अपना भोजन अकेले स्वय तब तक प्राप्त नही कर पाता जब तक कि उसके साथी उसका साथ नही देते। एक अनाज बोता है, एक खेत काटता है, एक लोहारी का, एक बढईगीरी का पेशा करता है, सक्षेप मे जब कार्य का इस प्रकार विभाजन होता है तभी व्यक्ति के मुँह में भोजन जाता है। इसके साथ यह भी सत्य है कि सब लोग जब काम पर लगते है और अपने-अपने कार्यो के फल का उपभोग करते है तो वह उनकी आवश्यकताओ से कही अधिक पाया जाता है। कृषक जो अनाज पैदा करता है वह उसकी आवश्यकता से कही बहुत अधिक होता है। जुलाहा जो कपडा बुनता है वह उसकी जरूरत से कही ज्यादा होता है। जब नगरवाले अपने कार्यो द्वारा अपनी आवश्यकताओ से अधिक चीजें पैदा करते है तो विवश होकर उन्हें उन वस्तुओं को दूसरे नगरो मे जाकर बेचना पड़ता है और अधिक से अधिक धन उन्हे मिलता है। इस प्रकार वे नित्यप्रति धनी होते जाते है। क्योकि धन-सम्पत्ति अपने साथ भोग-विलास का चसका लाती है। अतः ये विलास-प्रिय एवं नाज-नखरों के शौक़ीन हो जाते है।

यह हम पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्य के व्यवसाय उसके उद्योग के परिणाम हैं। मनुष्य जितना अधिक उद्योगी एवं कार्यकुशल होता है धन-सम्पत्ति की उतनी ही उन्नति होती है। जब लोगों में विलास-प्रियता उत्पन्न होती है तो उसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ता है। आवासों का रग ढंग बदलता है। वस्त्र शानदार होने लगते हैं। विचित्र प्रकार के बर्तन तैयार कराये जाते हैं। प्रत्येक कार्य के लिए सेवक नौकर रखे जाते हैं। आडम्बर-पूर्ण सवारियों की व्यवस्था की जाती है। यह सब चीजें उसी समय उपलब्ध हो सकती है जब देश में अच्छे से अच्छे शिल्पकार पैदा हों और नाना प्रकार की वस्तुओं का आविष्कार किया जाय। वे बाजारों में आये और बाजारों की रौनक़ तथा चहल-पहल बढे। बाजारों की आबादी से नगर के आय-व्यय मे वृद्धि होती है। लोगो मे समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता का संचार होता है। सभ्यता नित्यप्रति बढ़ने लगती है। सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ ही कामों की बहुतायत होती है और लोगों में विलास-प्रियता फलती है। उनकी आदतें रग पलटती जाती है और उनकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती है। फिर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नाना प्रकार के कला-कौशलों का आविष्कार किया जाता है। धन-सम्पत्ति की बहुतायत होती है और बाजार की रौनक़ बढ़ जाती है, कारण कि केवल जीविकोपार्जन के लिए ही सघर्ष किया जाता है और वह ही वास्तविक शहरी आचरण का प्रतीक होता है। इससे विलास-प्रियता नहीं बढ़ती। उसमें जो दौड़-धूप करनी होती है, वह धन-धान्य सम्पन्नता एव विलास-प्रियता का कारण बनती है।

जिस नगर की सभ्यता जितनी बढ़ती है उसके निवासियों मे प्रत्येक व्यवसाय एवं कला-कौशल के कलाकार तथा विभिन्न वस्तुओं में रुचि रखनेवाले आदमी भी उसी अनुपात से अधिक सुखसम्पन्न होते है। किसी बड़े नगर का क़ाजी, व्यापारी, कारीगर, अमीर एव पुलीस का अधिकारी छोटे नगर के क़ाजी, व्यापारी, कारीगर, अमीर एवं पुलिस के अधिकारी की अपेक्षा कही अधिक ख़ुशहाल एवं समृद्ध होता है। उदाहरण के लिए, फास सरीखे आबाद नगर को ले लीजिए। उसकी दशा में तथा बजाया, तलमसान एवं सिब्ता के इन्हीं लोगों की दशाओं में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। फ़ास के हर पेशेवाले, कारीगर एव कलाकार की उन नगरो के पेशेवालो, कारीगरों एव कलाकारों से तुलना करे तो उनकी समृद्धि मे बड़ा अन्तर मिलेगा। यदि तलमसान की तुलना वहरान[1] अथवा अलजायर[2] से की जाय तो यही अन्तर मिलेगा।

१. Oran. २. Algiers.

यदि तलमसान एवं अलजायर की तुलना कम आबाद नगरों के कारीगरों से की जाय तो यही अन्तर होगा। आप छोटे से छोटे गाँव तक मे यही अन्तर पायेगे। इस अन्तर का यही कारण है कि लोगों के कार्य एव धधे भिन्न, कम अथवा अधिक होते रहते है। इस प्रकार सभ्यताएँ काम काज का बाजार है। लोगो की जितनी आय होती है, उतना ही व्यय भी होता है। फ़ास के क़ाजी की यद्यपि आय अधिक है, किन्तु उसका व्यय भी उतना ही अधिक है। यही हाल तलमसान के क़ाजी का है कि जितनी उसकी आय है उतना ही उसका व्यय भी है। जहाँ आय-व्यय दोनों ही अधिक हों वहाँ के लोगों की दशा अच्छी होगी। वे विलास-प्रिय एव नाज-नखरे के शौक़ीन भी होगे। फ़ास मे कारोबार की अधिकता एव शोरगुल तथा नगरवासियों के आय-व्यय सभी अधिक है, अत: उनमें उसी अनुपात से विलास-प्रियता एव कृत्रिमता भी पायी जाती है। यही दशा वहरान, कान्सटैन्टाइन, अलजायर एव बिसकरा की है कि जितनी ही इनमे अन्योन्य कारबार की कमी होती है, उतना ही यहाँ के आय-व्यय में अन्तर आता जाता है। यहाँ तक कि एक साधारण से साधारण नगर तक में जिसको बडी कठिनाई से नगर कह सकते है और जिसमे कार-बार और धधे केवल आर्थिक आवश्यकताओं का समाधान कर सकते है, आप इसी तथ्य को प्रत्यक्ष होता पायेंगे। यही कारण है कि इन छोटे-छोटे नगरो के निवासी, परेशान, दरिद्र एवं दीन होते है। उनके धधे कठिनाई से उनकी आर्थिक आवश्यकताओं का समाधान कर पाते है। न वे अपनी कमाई मे से कुछ बचा सकते है और न उनकी आय मे कुछ वृद्धि हो सकती है। अत: मुश्किल से ही उनमें कोई खाता-पीता दिखाई देता है। अधिकाश लोग दीन, दरिद्र एव परेशान ही रहते है।

उपर्युक्त वर्णन में आपने छोटे-बड़े नगरों के ऊँचे एवं मध्यवर्गों म जो अन्तर देखा है वही अन्तर आप साधारण से साधारण वर्ग तक में पाते चले जायेंगे। देख लीजिए कि फास का फकीर तथा भिखारी तलमसान एव वहरान के भिखारी की अपेक्षा अच्छी दशा में होगा। मैने स्वय देखा है कि फास मे भिखारी ईदुज़्जुहा के अवसर पर क़ुरबानी की खालों का मूल्य माँगते घूमते है। वे भोजन हेतु, मांस, घी, मलाई इत्यादि एव पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र और अच्छे-अच्छे बरतन छलनी इत्यादि माँगते है। यह बात उनकी समृद्धि की द्योतक है। यदि तलमसान एव वहरान में कोई भिखारी इस प्रकार की प्रार्थना करे तो उसे लोग विचित्र समझकर झिड़क देंगे।

आज हम स्वयं क़ाहिरा एवं मिस्र की धन-धान्य सम्पन्नता तथा समृद्धि देखकर दंग रह जाते है। यहाँ तक कि मग़रिब से बहुत-से फ़क़ीर मिस्रवालों की समृद्धि की

कहानियाँ सुनकर मिस्र चले जाते है। साधारण लोगों का मत है कि मिस्रवाले बड़े त्यागी है और ईश्वर ने उन्हे धनी भी बनाया है। दान-पुण्य मे उन्हे बड़ी श्रद्धा है, अतः दान के भूखे लोग मिस्र पहुँचते है। किन्तु इस विचार में कोई तथ्य नही है। इस बात का उल्लेख तो हम ऊपर कर ही चुके है कि मिस्र एव क़ाहिरा की जनसख्या अन्य नगरो की अपेक्षा कही अधिक है। इसी कारण वहाॅ के निवासी समृद्ध है और वे सर्वदा दान-पुण्य किया करते है, अन्यथा आय-व्यय सब नगरो मे लगभग बराबर होता है। जब आय मे वृद्धि होती है तो साथ ही साथ व्यय मे भी वृद्धि होती है। इस प्रकार व्यय का बढ़ना आय की वृद्धि का द्योतक है। जब किसी नगर मे आय-व्यय दोनो बढे हों तो वहाॅ के निवासी सुखी, समृद्ध एव उदार होते है और नगर की आबादी दूर-दूर तक फैल जाती है। अतः जब कभी आपको किसी नगर के निवासियो के विषय मे दान-पुण्य के असाधारण समाचार प्राप्त हो तो आप उनका खडन न करे और समझ ले कि इसका आधार वहाॅ की जनसख्या की अधिकता है। आबादी की अधिकता से व्यवसाय एव धधों मे वृद्धि होती है और तब वहाॅ लोगो मे दान-पुण्य एव उदारता की भावनाएँ बढती है।

लोगो की समृद्धि एव कष्टो का प्रभाव मनुष्यो पर ही नही, अपितु पशुओ तक पर भी दृष्टिगत होता है। जो लोग समृद्ध एव धनी होते है और अन्य लोगो को भोजन इत्यादि कराते रहते है तथा अनाज, दाने अथवा भोजन के टुकड़े उनके यहाॅ हर तरफ बिखरे रहते है वहाॅ चीटियाॅ असख्य पक्तियों मेउ नके घरो मे रेगती फिरती है। उनके भवनो पर पक्षियो के झुड के झुड उडते दृष्टिगत होते है। पक्षी प्रात काल भूखे आते है और सायकाल पेट भरकर जाते है। दूसरी ओर दीन दरिद्रो को देखिए कि उनके यहाॅ न कोई चीटी रेगती दृष्टिगत होती है और न उनके घरों पर कोई पक्षी उडता दिखाई पडता है और न ही उनके मकानो के कोनो मे चूहे तथा बिल्लियाँ फिरती दिखाई पडती है। जब वे स्वय भोजन के लिए तरसते है तो जानवरो के लिए भोजन कहाॅ से लाये।

सक्षेप में इस विषय मे मनुष्यो एव जानवरो की एक ही दशा है। क्योंकि अमीरो तथा धनी लोगो के पास हर चीज की बहुतायत होती है, अत वे स्वय निश्चिन्त होकर उड़ाते-खाते है और अन्य लोगों को भी खिलाते-पिलाते है। मनुष्य भी उनके यहाॅ से मालामाल होकर जाते है और जानवर भी पेट भरकर लौटते है। सक्षेप मे नगर की आबादी जितनी अधिक होती है उतना ही वहाॅ के निवासी खुशहाल, समृद्ध, दानी एव उदार होते है।

(१२) शहरों में चीजों के भाव

वैसे तो बाजारो मे मनुष्यों की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती है, किन्तु आवश्यक वस्तुओं के मूल्यो मे बडा अन्तर होता है। उदाहरणार्थ, अनाज, गेहूँ इत्यादि अथवा सब्जियो जैसे पियाज, लहसुन इत्यादि के मूल्यो में कुछ ऐसी वस्तुएँ है जो जीवन को सुखी एव आनन्दमय बनाने के काम आती है। उदाहरणार्थ, स्वादिष्ठ मेवे, उत्तम वस्त्र, उच्च कोटि के बरतन, शानदार सवारियाँ अथवा जीवन की अन्य विलासिताएँ। जब किसी नगर की आबादी बढती है तो केवल भोजन की वस्तुओं का भाव सस्ता होता है और अन्य आडम्बर की वस्तुओं का मूल्य महँगा हो जाता है। इसके विपरीत जब नगर की जनसख्या कम होती है तो इससे उलटी बात होती है कि आवश्यकता की वस्तुओ का मूल्य अधिक एव अनावश्यक वस्तुओ का मूल्य कम होता है। इसका कारण यह है कि भोजनोपयोगी वस्तुओं, अनाज इत्यादि की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता होती है। वह एक साल अथवा कम से कम एक मास का अनाज भर लेना चाहता है क्योकि इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नही होता। अतः सभी नगरवाले अथवा सब नही तो अधिकाश लोग इन आवश्यक वस्तुओं को सग्रह करने के प्रयत्न मे लग जाते है, चाहे वे वस्तुएँ उसी नगर से प्राप्त होती हों अथवा उसके आस-पास से।

हम यह बता चुके है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पैदा की हुई जिन्स उसकी तथा उसके घरवालो की आवश्यकता से कही अधिक होती है और बहुत-से लोगो की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। अत. नगर की पैदावार नगर की आवश्यकता से कही अधिक होती है। इसलिए इन चीजो का भाव प्राय. कम होता है। परन्तु आकस्मिक दुर्घटनावश नि सन्देह भाव चढ़ जाता है। यदि लोग आकस्मिक दुर्घटनाओं के भय से अनाज का भडार एकत्र न करे तो कभी-कभी पैदावार इतनी अधिक हो जाती है कि बिना मूल्य के भी बॉटी जा सकती है। जहाँ तक आवश्यकता से अधिक वस्तुओ का प्रश्न है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि न तो सब लोगो को उनकी आवश्यकता ही होती है और न सब लोग अथवा अधिकाश व्यक्ति पैदावार के काम मे व्यस्त ही होते है। जब किसी नगर की आबादी बढ़ती है और समृद्धि एव आडम्बर का सचार होता है तो इन वस्तुओं की हर ओर से मॉग होती है और प्रत्येक समृद्ध व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार अधिक से अधिक मात्रा में उनकी मॉग करता है। इस कारण उनकी उत्पत्ति नगर की आवश्यकता के लिए पर्याप्त नही होती। चीज़

थोड़ी होती है और उसके इच्छुक अधिक होते है। एक पर एक गिरता है। धनी लोग अधिक से अधिक मूल्य पर वस्तुओं को लेने को तैयार होते है। फलतः ऐसी वस्तुओ का मूल्य अधिक रहता है।

अधिक आबाद नगरों मे कला-कौशल, मजदूरी एवं नौकरी का मूल्य बढ़ चढ जाता है। इसके तीन कारण है। एक यह कि नगर मे समृद्धि एव खुशहाली फैली हुई होती है। अतः अधिकांश लोग कारीगरों, मजदूरो एवं सेवकों पर निर्भर होते है। दूसरा कारण यह है कि सेवकों एव मज़दूरों की आर्थिक आवश्यकताएँ सुगमतापूर्वक पूरी हो जाती है और उनकी ओर से उन्हें कोई चिन्ता नही होती, अतः वे अपनी सेवाओं के बदले अधिक से अधिक वस्तु माँगते है और उसमें किसी प्रकार की कमी पसन्द नही करते। उधर समृद्ध नगरनिवासी स्वय अपना कार्य करने से बचते है। सेवकों के बिना वे कुछ नही कर सकते। इस कारण वेतन एवं मजदूरी बढ जाती है। तीसरे नगर मे धनी एवं अमीर लोगों की सख्या अधिक होती है और ये अपना काम करना नही जानते। बात-बात पर दूसरों की सहायता चाहते है। अतः वे हर मूल्य पर कारीगरों, मजदूरो एव सेवको को स्वीकार कर लेते है और उनसे काम लेते है। इस भय से कि कही अन्य लोग उनकी सेवाएँ न प्राप्त कर लें, वे मजदूरी बढाकर उनसे काम लेने का प्रयत्न करते है। इस प्रकार कारीगरो एवं मजदूरो के दिमाग़ भी आसमान पर चढ़ जाते है। वे अपने कार्यो का मूल्य बढा देते है, अतः इन्ही मार्गो से नगरवालो का धन तथा उनकी दौलत बिखरती और बढ़ती रहती है। प्रत्येक दिशा में धन की वर्षा होती देख पडती है।

दूसरी ओर छोटे-छोटे नगरों को देखिए तो उनमें आबादी की कमी के कारण चीजो की पैदावार कम होती है और वे कम मात्रा मे प्राप्त होती है। कमी के कारण लोग अकाल की आशंका से उनका सग्रह कर लेते है। अतः वे और भी अप्राप्य हो जाती है। उनका भाव चढ़ जाता है। अब रहीं अनावश्यक वस्तुएँ, मेवे इत्यादि वे नगर के निवासियो को जो सख्या मे कम और दीन-दुखी भी होते है उनकी आवश्यकता नही होती। अतः इन चीजो का बाजार ठडा ही रहता है। जब उनके ग्राहक कम होते है तो उनका मूल्य भी सस्ता रहता है।

कभी-कभी बड़े नगरो में चीजो की महँगाई चुगी एवं नाना प्रकार के भारी, करों पर जिन्हे राज्य अपने अतिम चरण मे लगाया करते है निर्भर रहती है। इस प्रकार व्यापारियों एवं प्रजा की कमर टूटती है। हर चीज का भाव चढ़ जाता है और एक आम महँगाई की लहर दौड़ जाती है। छोटे-छोटे नगरों में चुगी या तो होती ही

नहीं और होती भी है तो बहुत थोड़ी-सी, अत: चीजें सस्ती रहती हैं। कहीं-कहीं भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए नगरवालों को अत्यधिक व्यय करना पड़ता है। इसका प्रभाव मूल्यों पर पड़ता है जो प्राय: चढ जाते हैं।

उन्दुलुस की आजकल यही दशा है। ईसाइयों ने जब उन्दुलुसवालों को कृषि के अयोग्य, बजर एव खारी भूमि की ओर ढकेल दिया और स्वय हरी-भरी एव उपजाऊ भूमियों पर अधिकार जमा लिया तो उन्दुलुसवालों को भूमि को कृषि योग्य बनाने मे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और इस सबंध में धन के लिए भी बड़ा कष्ट भोगना पडा और अत्यधिक धन भी व्यय करना पडा। उन लोगो ने बहुत अधिक मात्रा मे खाद एकत्र की और हर प्रकार से प्रयत्न करके भूमि को कृषि योग्य बनाया। फिर इन सबका प्रभाव भावों पर पडा और पैदावार महँगी हो गयी। उन्दुलुस महँगाई का केन्द्र हो गया। यह सब ईसाइयों का कुप्रभाव है कि उन्होंने मुसलमानो को ऐसे अनुचित भूमि के टुकड़े पर बसने के लिए विवश किया। लोग जब उन्दुलुस की महँगाई के विषय मे सुनते है तो समझते है कि सम्भवत: वहाँ अनाज कम पैदा होता है, यद्यपि वास्तव मे ऐसा नही है। उन्दुलुस का भू-भाग, जहाँ तक हमे ज्ञात है, अनाज की उपज मे सबसे बढ़कर है और वहाँ के लोगों को कृषि मे बड़ी कुशलता प्राप्त है। कुछ कारीगरो, मजदूरो एवं बाहर से आनेवाले मुजाहिद[1] लोगो को छोडकर बादशाह से लेकर साधारण बाजारी जन तक कृषि में रुचि रखते है और यही उनका व्यवसाय है। मुजाहिद लोग खेती से इस कारण अलग रहते है कि शासन की ओर से उनको जीविका-साधन एव भोजन प्राप्त हो जाते है। अत: उन्दुलुस की महँगाई का वही कारण हुआ जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

अब बरबर देशों को देखिए। वहाँ सब कुछ उलटा है। उनकी भूमि कृषि के लिए बड़ी उपयुक्त है, अत: उनको कृषि के सम्बन्ध मे अधिक कठिनाई नही भोगनी पड़ती। धन भी अधिक व्यय नही होता और उसके साथ-साथ वहाँ यह व्यवसाय सभी लोग करते हैं। अत: वहाँ अनाज का भाव इत्यादि बहुत सस्ता रहता है।

(१३) बदवी लोग अधिक आबाद (सभ्य) नगरों में नहीं बस सकते

पिछले वर्णन में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि अधिक सभ्य नगरों के लोगों में विलास-प्रियता बढ़ जाती है और इसके साथ-साथ उनकी आवश्यकताओं की मात्रा

१. जिहाद करनेवालों।

भी अधिक से अधिक हो जाती है। नाज-नखरों का शौक़ उन्हें इधर-उधर भटकाता है और आराम की चीजो को वे हर मूल्य पर लेने के लिए तैयार होते हैं। अतः नगर में आवश्यक वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाता है। महँगाई का दूसरा कारण है राज्य की ओर से बाजारो के व्यापार पर कर लगाया जाना। इससे नगर की व्यापारिक वस्तुएँ महँगी हो जाती हैं। मजदूरियाँ बढ़ जाती है और लोगों के समय का मूल्य चढ़ जाता है। अतः नगर-वासियो का व्यय दुगुना-चौगुना हो जाता है। उनको अपनी तथा अपने परिवारवालों की जीविका के लिए बहुत-से धन की आवश्यकता होती है। थोडे धन मे उनका जीवन निर्वाह नही हो पाता। दूसरी ओर बेचारे बदवियो की आय कम होती है। वे ऐसे स्थानो मे रहते है जहाँ के बाजार इतने मंदे होते है कि उनमें ऐसे कारोबार एव धधे ही नही मिलते जिनकी आड़ मे उन्हे कुछ धन प्राप्त हो जाय और वे समृद्ध हो जायँ। अत. बदवी लोग खाली हाथ रहते हैं। उनके लिए यह सम्भव नही होता कि वे नगर मे जाकर निवास करे और वहाँ के खर्च उठायें। वे तो ऐसे ग्रामो मे रहने के आदी होते है जहाँ थोडे-से काम से वे अपना पेट भर लेते है, कारण कि आडम्बर एव नाज-नखरों से जिनके लिए अधिक धन की आवश्यकता होती और अधिक कार्यो मे अपने आपको फँसाना पड़ता है वे अनभिज्ञ होते है। यदि कोई बदवी ऐसा कर भी बैठता है और रेगिस्तान के जीवन को त्यागकर किसी बड़े नगर मे बस जाता है तो शीघ्र ही वह वहाँ के जीवन से घबरा उठता है और अपना निवास-स्थान बदलने पर पछताता और लज्जित होता है।

केवल वही बदवी जो धन-सम्पत्ति एकत्र करके और आवश्यकता से अधिक धन लेकर नगर मे बस जाता है एवं नाज-नखरे तथा आडम्बर पसद करने लगता है, नगर में निवास कर सकता है कारण कि वह स्वभाव, चरित्र एव आचार-विचार मे नगरवासियों के समान हो जाता है और उनके साथ घुल-मिल जाता है। इस प्रकार नगरो की आबादियाँ प्रारम्भ होती हैं और बदवी का स्वभाव धन-सम्पत्ति की अधिकता के कारण नगर-वासियों सरीखा बन जाता है। वह नगर बसाने लग जाता है।

(१४) देशों और नगरों की दीनता, दरिद्रता एवं समृद्धि का अन्तर

जिन देशों की सभ्यता उन्नत होती है और जिनमें अनेक क़ौमें बसी होती हैं उनके निवासी समृद्ध एव धनी होते हैं। बडे-बड़े नगर उन देशों में बसे होते हैं और वहाँ की सल्तनत का ऐश्वर्य एव गौरव भी अधिक होता है। इन सबका कारण ऊपर लिखा है। वहाँ कारीगरों एव धंधों की अधिकता होती है जो समस्त देश को धन-धान्य सम्पन्न

कर देते है। लोग अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करके धन बचा लेते है। फिर देश की सभ्यता जितनी उन्नत होती है उतना ही वहाँ धन का बाहुल्य होता है। सक्षेप मे धन की अधिकता से देश में समृद्धि एव खुशहाली फैलती है । लोगो मे विलास-प्रियता पैदा होती है। बाजारों मे चहल-पहल बढती है और बाज़ारो की रौनक से सल्तनत की आय दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ जाती है। उसके ऐश्वर्य एव गौरव मे वृद्धि होती है। दृढ़ एव भारी-भारी किलो का निर्माण होता है। बड़े-बड़े नगरो की नीव पड़ती है और बड़ी शान से वे बसाये जाते है।

देख लीजिए कि पूर्व के देशो में मिस्र, शाम, इराक, अजम, हिन्द, चीन एव अन्य पूर्वीय देश सभ्यता की दृष्टि से कितने उन्नत एव धन-धान्य सम्पन्न है। उनकी सल्तनते बहुत बड़ी है। नगरों की सख्या और आबादी भी बेहद बडी है। व्यापार जोरो पर चल रहा है। सक्षेप मे सभी बाते ईर्ष्या योग्य है। आज हम उन ईसाई व्यापारियो को क्यो न देख ले जो मगरिब के मुसलमानो मे आते-जाते है अथवा उनमे बस जाते है। .उनकी समृद्धि का क्या ठिकाना है और उनका गुणगान किस प्रकार सम्भव है। यही दशा सुदूर पूर्व इराक-अजम, हिन्द एव चीन के व्यापारियों की है जिनकी धन-सम्पत्ति की कहानियाँ हम आने-जानेवालों से नित्यप्रति सुनते रहते है। कभी-कभी तो हम उन पर विश्वास ही नही करते।

साधारण लोगों का तो इस विषय मे यह कहना है कि उनकी यह समृद्धि उनकी धन-सम्पत्ति के बाहुल्य के कारण है अथवा उनके यहाँ सोने-चाँदी की खाने अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है या पिछली कौमो द्वारा सचित खजाने उनको प्राप्त हो गये होगे। यद्यपि इनमे से कोई भी बात सत्य पर आधारित नही है क्योकि सोना इत्यादि तो सूडान से आता है जो मगरिब के निकटतम है। फिर पूर्ववाले अपने देश की पैदावार अन्य देशों मे व्यापार के उद्देश्य से ले जाते है। यदि वे स्वय धनी होते तो फिर ऐसा क्यो करते और धन की चिन्ता मे क्यों इधर-उधर मारे-मारे फिरते, अपितु सब लोगों की उपेक्षा करके अपने स्थान पर बैठे रहते।

ज्योतिषियो ने जब पूर्ववालो की समृद्धि एव धन-सम्पत्ति की यह कहानियाँ सुनी तो इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया कि नक्षत्रो का प्रभाव एव कृपा पश्चिम की अपेक्षा पूर्व पर अधिक है। इसी कारण वहाँ पैदावार का बाहुल्य है। यह अनुमान एक सीमा तक ठीक है, कारण कि भूमि पर घटनेवाली घटनाएँ नक्षत्रो से प्रभावित होती है, किन्तु ज्योतिषियों का दिमाग भूमि-सम्बन्धी उस कारण की ओर नही गया जिनका प्रभाव इस कार्य पर अत्यधिक पड़ता है। वह कारण है पूर्व की बेहद उन्नत

सभ्यता जिसे प्राथमिकता प्राप्त है। जब वहाँ की आबादी अधिक हुई तो वहाँ के कारोबार एवं धधे भी बढ़ गये और उनके कारण देश में धन का संचार होने लगा। इस प्रकार इन स्थानों की समृद्धि का कारण नक्षत्र ही नहीं, अपितु भूमि सबधी अन्य परिस्थितियाँ भी है। उदाहरणार्थ, वहाँ की जनसख्या एव कारोबार की अधिकता।

यही हाल इफरीक़िया एवं बरक़ा का है कि जब उनकी सभ्यता घटी तो उनकी दशा भी शोचनीय हो गयी। वे दरिद्रता एव फ़ाक़े के शिकार हो गये। देश का खराज कम हो गया, आय घट गयी। यद्यपि इससे पूर्व शीआ[1] सल्तनत एव सिनहाजा के राज्य-काल मे लोगो की खुशहाली खराज की अधिकता एव लोगो की समृद्धि उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी। यहाँ तक कि मिस्र के वाली के व्यय हेतु क़ैरवान से ही धन जाया करता था। सल्तनत इतनी धनी थी कि जब महदी का सेनापति जौहर अल-कातिब मिस्र विजय हेतु रवाना हुआ तो माल से भरे हुए १००० बोझ ऊँटों पर लदे थे ताकि सेना के वेतन का भुगतान किया जा सके और मुजाहिदो के व्यय में काम आये। यद्यपि उस युग में भी मग़रिबवाले इफरीक़िया से कम थे, किन्तु धन-सम्पत्ति की कुछ कमी न थी। मुवह्हेदीन के राज्य काल में तो समृद्धि का वातावरण चारो ओर व्याप्त था और खराज बड़ी अधिक सख्या मे प्राप्त होता था। आजव ही मगरिब बड़ी दुर्दशा को प्राप्त हो गया है और उसकी जनसंख्या बेहद घट चुकी है। बरबर कौम तो उस क्षेत्र में रही ही नही। चारो ओर वीरानी छाई हुई है और सम्भव है कि उसकी दशा और भी शोचनीय हो जाय। एक वह समय था जब भूमध्य-सागर से लेकर सूडान तक, सूस से लेकर बरका तक के प्रदेश सभ्यता मे उन्नति पर थे। अब वहाँ सब जंगल ही जंगल दृष्टिगत होता है। केवल समुद्रीय तट और उसके आस-पास की ऊँचाई पर कुछ आबादी रह गयी है।

(१५) नगरों में भूमि और गृहों की प्राप्ति में कठिनाई, महर्घता और लाभ

नगरवासी, भूमि, जायदाद एवं जागीरो के स्वामी अचानक और एकदम नहीं हो जाते क्योकि उनके पास इतना धन नही होता जिसे व्यय करके वे बड़ी बड़ी जागीरें खरीद सके। जागीरे शनैः-शनैः प्राप्त होती है और वे भी दो प्रकार से। एक तो बाप-दादा अथवा पूर्वजों की भूमि या जागीर उत्तराधिकार में प्राप्त करके और उसमें वृद्धि

१. फ़ातेमी।

करते-करते उसे बढ़ाकर और दूसरे किन्हीं जमीनों, घरों एवं जागीरों पर प्रभुत्व जमाकर। बाजारों के रंगढंग बदलने के समय भी जायदाद पैदा की जा सकती है। यह इस प्रकार पैदा की जा सकती है—जब कोई सल्तनत अपना जीवन-काल समाप्त करके स्थान छोड़ने लगती है और उसकी सेना कम हो जाती है तथा समस्त व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है; वहाँ के नगर विनाश एवं वीरानी की ओर अग्रसर होने लगते हैं और लोगों की हालत गिर जाने के कारण व्यापार में लाभ कम प्राप्त होता है, प्रत्येक वस्तु का महत्त्व कम हो जाने के कारण लोग अपनी जागीरें और घर कौड़ियों के मोल बेचने लगते हैं और उन्हें साधारण वस्तु के समान फेकने लगते हैं। तब कुछ लोग इस अवसर से लाभ उठाकर जागीरों एवं घरों को साधारण मूल्य पर क्रय कर लेते है और साधारण धन व्यय करके बड़ी जागीरों के स्वामी बन जाते हैं। फिर जब दूसरे नये राज्यों की स्थापना होती है तो नगरो में भी नवस्फूर्ति का संचार होने लगता है। हर चीज पर रौनक आने लगती है। तब जागीरो का मूल्य भी बढ़ जाता है और उनको वही महत्त्व प्राप्त हो जाता है जो पहले कभी उन्हें प्राप्त था। उस समय उनको कौडियों के मूल्य पर क्रय करनेवाला नगर के चोटी के धनी लोगों में गिना जाने लगता है। किन्तु उसकी यह सम्पन्नता उसके प्रयत्नों का फल नहीं होती, अपितु राजनीतिक परिवर्तन, सल्तनतो एवं नगरों की उथल-पुथल के फलस्वरूप उसको यह पदवी प्राप्त होती है।

नगरवालों की धन-सम्पत्ति एवं जागीरें उनके विलासमय जीवन के लिए पर्याप्त नही होतीं, न वे उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकती हैं। हमने पूज्य व्यक्तियों से सुना है कि जागीर एवं सम्पत्ति बनाने का उद्देश्य केवल यह होता है कि आगामी संतान होश सँभालने और कमाने योग्य होने तक उनसे जीविका प्राप्त कर सके। जब वह स्वयं अपने पाँव पर खड़े होने योग्य हो जाय तो उनमें वृद्धि करके अपने बाद आनेवाली सतान के लिए वह उसे छोड़ जाय। कभी-कभी ऐसा होता है कि मरते समय किसी का बालक अल्पवयस्क ही रह जाता है और बुद्धि की कमी एवं शारीरिक दोष के कारण जीविकोपार्जन योग्य नही होता। ऐसी अवस्था में जागीर उसके लिए संतोष का साधन बन जाती है और उसकी जीविका का सहारा होती है। धनी लोगों का जागीर बनाने का उद्देश्य यही होता है कि धनी होकर वे भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर सकें।

ऐसा अवसर बहुत कम और वह भी उस समय जब कि राज्यों में परिवर्तन के कारण बाजारों का रंग पलटता है और क्रय की हुई वस्तु का मूल्य अचानक चढ़ जाता है, तभी आता है कि हज़ारपति लखपति और लखपति करोड़पति बन जाय। किन्तु

इस प्रकार अचानक धनी बन जानेवाले लोग अन्य धनी लोगो की दृष्टि में बहुत खटकते है और हाकिमो की भी निगाहे उन पर पडती रहती है। वे उनको नही छोड़ते, अपितु किसी न किसी प्रकार उनसे जागीरे छीन लेते हैं अथवा साधारण मूल्य पर उन लोगों से क्रय कर लेते है।

(१६) नगरों में पूँजीपतियों को हानि से बचने के लिए प्रभुत्व एवं संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है

जब किसी नगरवासी की धन-सम्पत्ति बढती है और वह जायदाद का स्वामी बन जाता है तो पूरे नगरवालो की दृष्टि उस पर केन्द्रित होने लगती है। वह भोग-विलास एव समृद्धि के वातावरण मे पलने लगता है। अमीर एव हाकिम लोग लोभ के कारण उस पर टूट पडते है और प्रत्येक व्यक्ति किसी न किमी उपाय से उसकी धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमाना चाहता है। इसके लिए वे एक उपाय यह भी करते है कि उसे किसी शाही क्रोध मे फाँसकर उसकी धन-सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने का प्रयत्न करते है। यत: आजकल की राजाज्ञाएँ न्याय पर आधारित नही होती और उन्हे स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया जा सकता है। राजाज्ञाओ का न्यायाधारित्व शरई खिलाफत की ही विशेषता थी जो हजरत मुहम्मद के उपरान्त शीघ्र ही समाप्त हो गयी। इस विषय में मुहम्मद साहब का यह कथन प्रसिद्ध है कि, "मेरे उपरान्त खिलाफत तीस वर्ष रहेगी, तदुपरान्त निरकुश शासन स्थापित हो जायँगे।"

जब यह स्थिति हो जाती है तो नगर के प्रसिद्ध धनी लोगों को अपने सहायक एव समर्थक रखने पड़ जाते है और बादशाह के किसी निकटतम सम्बन्धी, विश्वास-पात्र अथवा "असबियत" वाले से उन्हे अपना मेल-जोल बढाना पड़ता है ताकि उसके द्वारा वे बादशाह की छत्र-छाया मे शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सके और लोगों के अत्याचार से अपनी रक्षा कर सके। यदि वे इस उपाय से कार्य न ले तो शासक एव अन्य अत्याचारी लोग उन पर अत्याचार प्रारम्भ कर दे और सब मिलकर उनकी धन-सम्पत्ति को बाँट ले।

(१७) नगरों की संस्कृति सल्तनतों द्वारा आती है और जब तक सल्तनत अपने पाँव जमाये रखती है तब तक ही उनकी सभ्यता भी बनी रहती है

नगर की सस्कृति की एक ही दशा हरदम नही रहती। समृद्धि एव कौमो के घटने-बढ़ने के साथ-साथ उसमे भी परिवर्तन होता रहता है। जब नगर का जीवन अपनी

प्रवीणता पर आ जाता है तो कलाओं की उन्नति होती है । नाना प्रकार के कुशल एवं योग्य कलाकार तथा शिल्पकार पैदा होते है जो अपनी कला से नगरवालों के जीवन एव स्वभाव मे परिवर्तन कर देते है । अब जैसे-जैसे सस्कृति के प्रभाव से लोगो की रुचि मे परिवर्तन होता है उसी तरह नाना प्रकार की कलाएँ पैदा होती है और उन्हें उन्नति प्राप्त होती है । जब कुछ समय तक यही स्थिति रहती है तो अभ्यास के कारण कलाकार अपनी-अपनी कलाओं मे दक्ष हो जाते है । उनका अभ्यास नित्यप्रति उन्नति करता रहता है । यह उसी दशा मे सम्भव होता है जबकि नगर की जनसख्या बढ रही हो और नगरवाले भोग-विलास मे पल रहे हो । यह सल्तनत की वजह से होता है, कारण कि वह प्रजा से धन-सम्पत्ति वसूल करके अपने विश्वासपात्रो एव आश्रितो पर व्यय करती है और वे बड़े-बड़े पद प्राप्त करके समृद्ध होते जाते है । फिर उनकी समृद्धि उनके विश्वास-पात्रों एव आश्रितो को प्रभावित करती है और उनकी धन-सम्पत्ति मे नित्यप्रति वृद्धि होती रहती है । उनमे विलास-प्रियता उत्पन्न हो जाती है । सस्कृति एव नगर के जीवन के विभिन्न पहलुओ मे वे रुचि लेने लगते है । उनकी रुचि के परिवर्तन के कारण नाना प्रकार की कलाओ का आविष्कार होता है और नगर नाना प्रकार की कलाओं के प्रदर्शन का केन्द्र बन जाता है । इसी वातावरण को हम हजरियत अथवा नगर का जीवन या सस्कृति कहते है ।

इसी कारण उन नगरों पर जो हुकूमत से दूर एक कोने मे आबाद होते है उनकी जन-संख्या अधिक होने के बावजूद, बदवियतों पर जो छायी रहती है और वे नगर के वातावरण से अपरिचित रहते है । इसके विपरीत जो नगर शासन-केन्द्र के समीप होते है, उन्हें बादशाह की निकटता प्राप्त होती है और वे उसकी धन-सम्पत्ति द्वारा उसी प्रकार सर्वदा लाभान्वित हुआ करते है जिस प्रकार जल अपने बहाव के स्थान को भी हरा-भरा रखता है और उसके आस-पास के स्थान को भी । सक्षेप में जहाँ तक जल की तरी का प्रभाव रहता है, खुश्की नही आती, हरियाली ही दृष्टिगत होती है । हम पूर्व पृष्ठो मे यह भी उल्लेख कर चुके है कि बादशाह तथा उसका शासन ससार के लिए बाजार सरीखा होता है । माल व अस्बाब बाजार में मिलता है अथवा उसके आस-पास । उससे दूर जाइए तो कुछ न मिलेगा । यह बादशाह एव सल्तनत का हाल है । समीप रहने पर सब कुछ मिलेगा, दूर रहने पर कुछ न प्राप्त होगा ।

इसके अतिरिक्त सल्तनत का जीवन-काल जितना अधिक होगा और बादशाह एक-एक करके सिहासनारूढ़ होते रहेगे, नगर की सस्कृति भी उतनी ही पूरी शान से चमकती ही न रहेगी, अपितु नित्यप्रति बढ़ती रहेगी । जब शाम में यहूदियो की सल्त-

नत जम गयी और १४०० वर्ष तक चलती रही तो नगर की संस्कृति भी उनमें जड़ पकड़ गयी। उनकी नस-नस मे सभ्यता एवं सस्कृति की लहर दौड़ गयी और खाने-पीने, वस्त्र एव रहन-सहन के विषयो मे उन्होने ऐसी-ऐसी कलाओं का आविष्कार किया जो आज तक प्रचलित है। इस प्रकार हम शाम मे जो नगर की सस्कृति देखते है वह उन्ही की अथवा उन रूमवालो की यादगार है जिनका शासन ६०० वर्ष तक जमा रहा।

यही हाल किब्तियों का रहा कि उनकी राज्य सत्ता भी ३००० वर्ष तक स्थापित रही और नगर की सस्कृति उनकी नस-नस में प्रविष्ट हो गयी। मिस्र नगर सस्कृति का केन्द्र बन गया। इसके बाद यूनान एवं रूमवालो ने उनका स्थान लिया तथा वे उन्ही के पद-चिह्नों पर चले। किन्तु इस्लाम ने शहर के जीवन का तख्ता पलट दिया और नगर की सस्कृति की जड़ काट दी।

यही हाल यमन का हुआ। वहाँ अरबों का शासन अमालक़ा एवं तबाबेआ के राज्यकाल से सहस्रो वर्ष तक स्थापित रहा। अतः नगर की संस्कृति ने भी वहाँ अपने पाँव जमाये।

इराक की भी यही दशा रही कि जब नब्त एवं फारसवालों के राज्य वहाँ स्थापित हुए और कलदानी[१], कियानी[२], किसरवी[३] और बाद में अरब सहस्रो वर्ष तक शासन करते रहे, तब नगर की सस्कृति ने वहाँ वह जोर पकड़ा कि इतिहास उसका दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करने में असमर्थ है। इस प्रकार आज भी शाम, इराक़ एवं मिस्र का नाम नगर की सस्कृति को प्रसिद्धि देनेवालों की प्रथम श्रेणी मे है।

उन्दुलुस में देखिए कि जब उसमें क़ूत[४] और उनके उपरान्त बनी उमय्या के राज्य सहस्रों वर्ष तक स्थापित रहे तो सभ्यता एव सस्कृति को वहाँ भी अत्यधिक उन्नति प्राप्त हुई।

इफरीकिया एवं मगरिब की स्थिति इन सबसे पृथक् है। इस्लाम के पूर्व इफरीकिया मे कोई बड़ा राज्य स्थापित नही हुआ। कुछ समय तक रूमियों[५] तथा फिरगियों ने इफरीकिया के तटों को अपने अधीन रखा, किन्तु बरबर भी उनसे कभी

१. Chaldaeans.
२. Kayyanids (Achaemenids)
३. Sassanian (al-Kisrawiyah)
४. Gothic.
५. Byzantine.

न दबे। वे किलों एवं दूरस्थ मैदानों में स्वतत्र रहे। मग़रिबवाले तो राज्य के समीप भी न पहुँचे। ये लोग कूतों को खराज अदा किया करते थे। जब इस्लाम का अभ्युदय हुआ और इफरीक़िया एवं मगरिब पर अरबो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो प्रारम्भ मे उनको भी जमकर राज्य करने का अवसर न मिला। फिर अरबवाले स्वयं नगर के जीवन से अपरिचित थे, अत: ये लोग नगर की सभ्यता क्या फैलाते? इफरीक़िया एव मगरिब मे जो सल्तनते स्थापित भी हुई तो उनको नगर की सस्कृति का कोई ऐसा प्राचीन उदाहरण नहीं मिला जिसके आधार पर वे अपनी सभ्यता को उन्नति देते। कारण कि उनकी अधीन प्रजा बरबर थी जो जन्मजात "बदवियत" में रँगी थी। नगर की सस्कृति से उसका दूर का भी सम्बन्ध न था।

हिशाम बिन अब्दुल मलिक के राज्य काल में जो सुदूर मगरिब से आये बरबरों मे कुछ सभ्यता अवश्य पायी जाती थी, किन्तु फिर वहाँ अरब न जम सके और शीघ्र ही बरबर लोगों ने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और इदरीस से बैअत करके राज्य पर अधिकार जमाया। अरब नाममात्र को थे। न उनकी कोई सख्या थी और न प्रभाव। केवल इफरीक़िया मे अगालेबा के राज्य के साथ अपनी सस्कृति को उन्नति देते रहे और देश की समृद्धि एव क़ैरवान की जनसख्या की अधिकता के कारण सस्कृति को आश्रय प्रदान किया। फिर कुतामा और उनके बाद सिनहाजा भी इसी परम्परा का अनुसरण करते रहे। उन्होंने बहुत बड़ी सीमा तक सस्कृति को उन्नति दी, किन्तु अभी सस्कृति ने अपनी अवस्था के ४०० वर्ष भी पूरे न किये थे कि वे स्वय समाप्त हो गये और जैसे ही उनकी सल्तनत का अन्त हुआ, नगर की सस्कृति का भी अन्त हो गया। हिलाली नामक अरब बदवियों ने उन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया।

नगर की संस्कृति के अवशेष केवल किन्ही-किन्ही स्थानो पर रह गये। अब भी उन लोगो मे जो क़लआ, क़ैरवान एव महदीया मे कभी निवास कर चुके है, सभ्यता एव सस्कृति के चिह्न पाये जाते है। उनके रहन-सहन एव जीवन के अन्य पहलुओं में नगर की सस्कृति एवं "बदवियत" दोनों मिलकर चमकती है जिसे विवेकवाले नगरवासी साफ़ पहचान लेते है। इसी प्रकार इफरीकिया के अधिकांश नगरों में प्राचीन सस्कृति के अवशेष अब तक मिलते है, किन्तु मगरिब मे तो चिह्न भी नही पाये जाते कारण कि इफरीकिया में अगालेबा के समय से शीओ एव सिनहाजा के राज्य-काल तक सस्कृति का जोर रहा।

मगरिब मे मुवह्हेदीन के राज्य के साथ सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। क्योंकि मुवह्हेदीन की सल्तनत को उन्दुलुस मे बड़ा गौरव प्राप्त था और वहाँ सभ्यता सामान्य

रूप से फैल चुकी थी। अतः वहाँ के लोगो ने मगरिब में पहुँचकर अपनी संस्कृति का प्रतिबिम्ब डाला और ईसाइयों ने पूर्वी उन्दुलुस से मुसलमानो को निकाला तो वे विवश होकर इफरीक़िया मे निवास करने लगे और उन्होंने वहाँ अपनी सस्कृति फैलायी। इधर तो उन्दुलुस की सस्कृति इफरीकिया मे अपना प्रभाव डाल रही थी, उधर मिस्र-निवासी मगरिब एव इफरीक़िया मे पहुँचकर अपना रग जमाने लगे। इस प्रकार मिल-जुलकर मगरिब एव इफरीकिया मे अच्छी खासी सभ्यता फैल गयी। किन्तु जब मगरिब की सल्तनत शक्तिहीन हुई और नगरो की सभ्यता छिन्न-भिन्न हो गयी तो बरबर अपनी मूल दशा पर पलट आये। उनमे वही "बदवियत" एवं कठोरता आ गयी। संक्षेप मे इस समय मगरिब की तुलना मे इफरीकिया मे सभ्यता के अधिक चिह्न पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि मगरिब की अपेक्षा वहाँ देर तक विभिन्न सल्तनतें रहीं। इसके अतिरिक्त वहाँ के निवासियों मे मिस्रवालो के चरित्र की छाप पडने की अधिक सम्भावना थी।

इस रहस्य को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि संस्कृति की न्यूनता एवं अधिकता का आधार सल्तनत की शक्ति तथा कमजोरी, क़ौम की अधिकता एवं कमी, नगर की छोटाई-बड़ाई एवं धन-सम्पत्ति की कमी तथा अधिकता पर निर्भर है।

इस प्रकार सल्तनत सस्कृति का एक ढाँचा है। नगर एव नागर सभ्यता उसका मांस एव खाल है और राजस्व एवं खराज, कला-कौशल और व्यापार उसकी नसो में सचारित वह रक्त है जो शरीर की उन्नति का कारण होता है। इस प्रकार जब बादशाह सहायता के पात्रों एव अपने आश्रितों को धन-सम्पत्ति प्रदान करता है तो वह चल-फिर कर प्रजा में पहुँच जाती है और कर एव खराज की आड में उनके पास से पुनः राजकोष मे पहुँचकर अन्य रूप मे सचरणहेतु तैयार हो जाती है। अत. सल्तनत के गौरव के अनुसार प्रजा धनी रहती है और प्रजा के धन-धान्य सम्पन्न होने के कारण सल्तनत का खजाना भरा एव मालामाल रहता है। इन दोनों धन-सम्पत्ति एव गौरव का कारण सभ्यता की उन्नति है। अतः इस तथ्य को सामने रखकर यदि आप सल्तनतों की हालत को जाँचेगे तो हमारे कथन को शत-प्रतिशत ठीक पायेगे।

(१८) नगर की संस्कृति उसकी सभ्यता का मूल, उसकी प्रौढ़ अवस्था की समाप्ति का चिह्न तथा उसके पतन का भी द्योतक है

हम पूर्व पृष्ठो में उल्लेख कर चुके है कि देश एवं सल्तनत "असबियत" की अतिम सीमा है और नगर की सस्कृति "बदवियत" की। सभ्यता चाहे जिस प्रकार की हो

"बदवी" हो अथवा नगर की, शहंशाहियत हो अथवा सर्वसाधारण से सम्बन्धित, उसकी एक आयु उसी प्रकार होती है जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की। बुद्धि एव लोगो के कथनानुसार मनुष्य का विकास और उसकी उन्नति ४० वर्ष पर समाप्त हो जाती है और फिर वह थोड़े से अवकाश के उपरान्त पतन की ओर अग्रसर होती है। नगर के जीवन एव सस्कृति की भी यही स्थिति है। उनकी भी एक अतिम सीमा होती है जिससे वे आगे नही बढ़ती और वहाँ से वे पतन की ओर अग्रसर होने लगती है। इसका यह रूप होता है कि जब लोगो को सुख एव समृद्धि प्राप्त होती है तो वे स्वाभाविक रूप से सस्कृति के समस्त मार्गो की ओर अग्रसर होते और उनके आदी हो जाते है, भोग-विलास एव ऐश व आराम के नये-नये उपाय सोचते है। फिर इसके साथ-साथ कला-कौशल को उन्नति प्राप्त होती है। जीवन के प्रत्येक पहलू मे कला एव आविष्कार की तरक्की होने लगती है। भोजन, वस्त्र, पोशाक, भवन-निर्माण, फर्श, बरतन, रहन-सहन एव जीवन निर्वाह के समस्त नियमों मे नित्य ऐसे नये आविष्कार होने लगते है कि "बदवियत" के युग मे उनकी कल्पना भी नही हो सकती। जब नगर का जीवन इस सीमा को पहुँच जाता है तो लोग कामुकता के वश मे हो जाते है फिर वे ऐसी अवस्था मे पहुँच जाते है कि न वे इस लोक के रहते है, न परलोक के। धर्मनिष्ठता हाथ से निकल जाती है और कुकर्म उन्हे इस ओर नही जाने देते। ससार इस कारण हाथ से निकल जाता है कि अधिक से अधिक आवश्यकताएँ एव महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने के लिए आय पूरी नही पडती।

यह स्पष्ट है कि जब नगर मे सस्कृति की संचार होता है तो नगरवालों के व्यय बढ़ जाते है। तब जैसे-जैसे आबादी अधिक होती है, वैसे-वैसे ही सस्कृति की भी उन्नति होती है। दोनो साथ-साथ चलते है। यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि बड़े-बड़े नगरो के बाजारों मे जीविका सबधी आवश्यकताओं का मूल्य अधिक होता है और चीजो का भाव चढ़ा हुआ होता है। कर (टैक्स) एव चुगी के प्रतिबध भाव मे और भी वृद्धि कर देते है, कारण कि सस्कृति का अभ्युदय उसी समय होता है जब सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर होती है। यही वह युग है कि इसमे शासन को चुगी लगाने के उपाय सूझते है। जब उसके व्यय मे वृद्धि हो जाती है तो उसको पूरा करने के लिए उसे इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय दृष्टिगत नही होता कि चुगी वसूल की जाय। चुगी लगने का परिणाम यह होता है कि चीजो का मूल्य बढ जाता है और भाव चढ़ जाते है। यह बात स्पष्ट है कि बाजार के व्यापारी, व्यापारिक सामग्री का मूल्य निश्चित करते समय समस्त व्यय, यहाँ तक कि अपने परिश्रम एव कष्ट का मूल्य भी लगा

लेते हैं। ऐसी अवस्था में वे चुंगी की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते हैं, अतः जब असली मूल्य पर चुगी का धन बढ़ता है तो चीजों का मूल्य कही से कही पहुँच जाता है और नगरवासियों के व्यय बढ़ जाते है और वे विवश होकर संयम त्यागकर अपव्यय का आश्रय लेते हैं। उनके पास इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता। उनकी आदते पहले से ही बिगड़ चुकी होती है। वे कामुकता एव वासनाओं के वश मे होते है। अपने व्यय को घटा न सकने के कारण वे जो कुछ कमाते है सब का सब उड़ा डालते है। जीवन की इस सीमा को प्राप्त होकर वे दीनता एवं दरिद्रता के शिकार हो जाते है। बाजारो मे चीजों का विक्रय एव माँग कम होने लगता है। बाजार ठडे पड़ जाते है और नगर की दुर्दशा हो जाती है।

ये समस्त दोष संस्कृति के विस्तार से उत्पन्न होते है, फिर यह तो वे दोष हैं जो नगर के आम बाजारों एवं आबादी मे दृष्टिगत होते है। नगरवासी स्वयं भी खराबियों से सुरक्षित नहीं रह सकते। वे विवश होकर अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति में अत्यधिक प्रयत्न करते है और इस दिशा में किसी भी उचित एव अनुचित उपाय को नही छोड़ते। इस प्रकार उनकी आत्मा नित्यप्रति अपमानजनक आदतें एव स्वभाव अपने मे उत्पन्न कर लेती है। दुराचार, व्यभिचार, दुष्टता, छल, धूर्त्तता अथवा जिस प्रकार सम्भव होता है वे जीविकोपार्जन करते है। वे सदा यही सोचते रहते है कि किसी न किसी चाल से रोजी कमायी जाय। इसी कारण आप देखेगे कि ऐसे सभ्य नगरवासी झूठ, जुएबाजी, धोखेबाजी, चालबाजी, चोरी, झूठी गवाही तथा ब्याज खाने में बड़े दक्ष होते है। दुराचार एवं व्यभिचार के सभी मार्ग उनके सामने खुले होते हैं जिनमे से किसी को ग्रहण करने मे उन्हे कोई संकोच नही होता और न इस विषय में उन्हे कोई लज्जा ही आती है चाहे किसी निकटतम सबधी का ही मामला क्यों न हो, वे किसी को क्षमा करना नही जानते, यद्यपि "बदवियत" उन्हें अपमानजनक भावनाओं से बाज रखती है। फिर इन नगरवासियो को ऐसी युक्तियाँ एव ऐसे उपाय भी खूब आते है जिनसे वे शासन के अत्याचार, कठोरता एव आतक से सुरक्षित भी रह सकते है।

सक्षेप मे सभ्यता के वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति इन्ही कुकर्मों में ग्रस्त रहता है। केवल ईश्वर ही जिसे बचाये, वह बचा रहता है। इस प्रकार यह समझना चाहिए कि नगर गुडो एव दुराचारियो का एक समुद्र होता है जो हर समय लहरे मारा करता है। वे बालक जो शाही वंश अथवा अन्य शरीफ़ एव सम्मानित वंशों से सम्बन्धित होते है, शिक्षा-दीक्षा की साधारण-सी उपेक्षा के कारण नगर की आवारगी के

[ुरी तरह शिकार हो जाते हैं, कारण कि जहाँ तक मनुष्यों का सम्बन्ध है, सभी मनुष्य एक समान होते है। इनका पारस्परिक भेद-भाव और उनकी एक दूसरे पर प्राथमिकता, उनकी योग्यता एवं श्रेष्ठता तथा अपमानजनक कार्यो से बचने की इच्छा पर निर्भर है। जिसे दुष्कर्म की आदत पड़ जाती है, उसके लिए कुल एव वश की शुद्धता का कोई मूल्य नही होता और वह उसे अन्य लोगो की दृष्टि मे अच्छा प्रामाणित नहीं कर सकती। आप बहुत-से अच्छे वश एव कुल के लोगो तथा शाही वश से सम्बन्ध रखनेवालों को पायेगे जो ऐसी ही आवारगी मे डूबे रहकर जीविकोपार्जन हेतु अत्यन्त अपमानजनक व्यवसाय करने से नहीं चूकते। इसका कारण केवल यह है कि नगर के विषैले वातावरण से उनके चरित्र बिगड़ चुकते है और दुष्टता एव बदमाशी का उन पर पूरा-पूरा रग चढ़ चुकता है। जब नगर अथवा क़ौम मे साधारणतः मानवता को कलक लगानेवाले ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो जाते है तो ईश्वर उनके विनाश का आदेश दे देता है। वह स्वयं कहता है, "जब हम किसी बस्ती को नष्ट करना चाहते है, तो हम वहाँ के निवासियों को जो भोग-विलास के आदी होते है, दुराचार मे ग्रस्त हो जाने का आदेश दे देते है। अतः आदेश पूरा हो जाता है और हम उसे नष्ट कर देते है।"[१]

इसका कारण यह होता है कि नगरवासियों की आय उनकी बढ़ती हुई इच्छाओ, एवं आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नही होती। इस सम्बन्ध में वे अपनी आय के साधन औचित्य पर ध्यान दिए बिना बढाते है और उनके चरित्र एव आचरण मिट्टी मे मिल जाते है। जब नगरवासियों की वैयक्तिक दशा बिगड़ जाती है तो पूरी शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है और वे विनाश को प्राप्त हो जाते है। अतः आप कुछ विशेष लोगों को यह कहते हुए सुनेगे कि नगर मे जब नारगी के वृक्ष अधिक सख्या मे बोये जाते है तो वह नगर नष्ट हो जाता है। इसी विचार के अधीन साधारण लोग नारगी का वृक्ष अपने घरो मे लगाने से बचते है और उसे अशुभ समझते है। इसका यह तात्पर्य नही कि नारगी के वृक्ष मे यह प्रभाव है कि वह नगर अथवा घर को नष्ट कर देता है, अपितु इस कथन का उद्देश्य केवल यह है कि उद्यानों का लगाया जाना और उनमे नहरों का निकालना नगर की संस्कृति एवं नगर के जीवन की उन्नति के द्योतक है। नारगी, नीबू एवं सरो के वृक्षों के लगाने का हरियाली के अतिरिक्त कोई अन्य उद्देश्य नही। उनमे कोई

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

ऐसा विशेष स्वाद अथवा लाभ नही जिस से उनको बोया अथवा लगाया जाय। इस प्रकार का भोग-विलास नगरवालो की विलासिता एव ऐशपसन्दी का चिह्न है। यही वह सीमा है जहाँ पहुँचकर नगर विनाश का प्रिय भोजन बन जाता है। इसी प्रकार का कथन कनेर के विषय मे प्रसिद्ध है। वह भी विनाश का कारण होता है। इसका उद्देश्य केवल यही है कि इस प्रकार के वृक्ष केवल सुन्दरता एव सजावट के लिए लगाये जाते है। उनके लगाने का उद्देश्य यह होता है कि उनके लाल-लाल एव सफ़ेद-सफेद फूलो से दृष्टि को आनन्द एव हृदय को प्रसन्नता हो। यह आदते अनावश्यक विलासिता की चिह्न है जो विनाश का द्योतक है।

नगर की सस्कृति के दोषो मे से एक दोप यह भी है कि वह कामुकता मे वृद्धि करता है और भोग-विलास मे रुचि पैदा करता है। इसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक अग मे दृष्टिगत होता है। खाने-पीने मे उत्तम वस्तुओ से रुचि होती है। स्वादिष्ठ भोजनों के बिना जीवन निर्वाह नही हो पाता। जब शरीर मे उत्तम भोजन पहुँचने लगते है तो नाना प्रकार के दुष्कर्म सूझते है जिनसे मानव का विनाश हो जाता है। सक्षेप मे सभ्यता की उन्नति की चरम सीमा नगर का जीवन एव सस्कृति है और जब उन्हे पूर्ण उन्नति प्राप्त हो जाती है तो पतन प्रारम्भ हो जाता है। उनकी स्थिति पशुओं के समान होती है। जिस प्रकार वे अपनी युवावस्था को प्राप्त होकर वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होते है उसी प्रकार सभ्यता भी। हम यहाँ तक कह सकते है कि नगर की सस्कृति विनाश की ओर नही ले जाती, बल्कि वह स्वय विनाश है। वह ऐसे चरित्र का आधार है जो पूर्णत. विनाश है। अत स्पष्ट हो गया कि मनुष्य वह है जिसमे अपने लाभ को प्राप्त करने एव हानि को रोकने की योग्यता हो और जो इस दिशा मे उचित प्रयत्न कर सके।

नगरवासी अपनी आवश्यकताएँ स्वय पूरी नही कर सकता। वह लाभ प्राप्त करने मे असमर्थ होता है। कुछ तो वह इस बात की योग्यता ही खो बैठता है, कारण कि वह विलास-प्रिय एव आराम का अभिलाषी हो जाता है और स्वय अपना कार्य करने का आदी नही रहता, प्रत्येक बात मे अन्य लोगो पर निर्भर होता है। कुछ यह भी कि समृद्धि एव भोग-विलास मे पल-बढकर अपना काम अपने हाथ से करने मे नाक-भौ चढाने लगता है और इसमें अपना अपमान समझता है। यह दोनों आदते बडी बुरी है। इसी प्रकार नगरवासी अपनी हानियो का भी निराकरण नही कर सकता। इस दिशा में उचित प्रयत्न एव परिश्रम करने का साहस खो बैठता है कारण कि ऐश व आराम के जीवन मे पलकर एव नगर के अनुशासन मे जीवन व्यतीत

वह सौजन्य से शून्य हो जाता है। अपनी हानि के निराकरण के सम्बन्ध मे सेना
ा भरोसा करने से उसके कधों पर बोझ हो जाता है। प्रत्येक कष्ट मे सैनिक शक्ति
र उसकी दृष्टि रहती है। फिर उसमे इस कारण भी दोष आ जाते हैं कि उसकी
खराब हो जाती हैं। स्वभाव मे अधीनता एव आज्ञाकारिता की भावनाएँ
हो जाती हैं। वह प्रत्येक हानि को भुगतने का आदी बन जाता है। उसमें अपनी
की रक्षा की भावनाएँ नही रहती। इस प्रकार जब नगरवासी नगर मे बस
तो अपने चरित्र की ही रक्षा कर पाता है न अपनेध र्म की तो वह वास्तव
ावता से शून्य हो जाता है और केवल नाम मात्र को मनुष्य रह जाता है।
इस वर्णन का निष्कर्ष यह निकला कि नगर की सस्कृति, सभ्यता एव सल्तनत
ए वह युग है जिसे हम मनुष्य के जीवन मे उन्नति की चरम सीमा कहते हैं।
प्रकार इस सीमा को प्राप्त होकर मनुष्य पतन एव विनाश की ओर अग्रसर
है उसी प्रकार सभ्यता एव सल्तनत नगर की सस्कृति के बाद शीघ्र ही विनाश
ाप्त हो जाती है।

१) जब राज्य का पतन तथा अन्त होता है तो राजधानी उसके साथ-साथ नष्ट हो जाती है

जब किसी राज्य में विघ्न पड़ता है और बिगाड़ उसकी नस-नस में घुस जाता है
जधानी अपना जीवन नही सँभाल सकती और शीघ्र नष्ट हो जाती है। इस
के विभिन्न कारण हैं। एक यह कि जब किसी प्राचीन सल्तनत का विनाश होता
र उसके स्थान पर नयी सल्तनत प्रारम्भ होती है तो उस पर "बदवियत" छायी
है। वह लोगों की धन-सम्पत्ति को लूटने की ओर से हाथ खीचे रहती है। प्रजा
राजस्व का और न खराज का अधिक बोझ डालती है और न भारी-भारी कर
ी है। इसी प्रकार जब आय नही बढ़ती तो व्यय का बोझ भी हल्का रहता है। अप-
ा एव भोग-विलास की ओर उसका कदम नही बढ़ता। जब नयी सल्तनत इस रंग-
ी स्थापित होती है तो उसके कारण राजधानी में बनावट एवं दिखावे का वातावरण
त हो जाता है। प्रजा शासक का अनुकरण करने लगती है, कारण कि यह स्वा-
क ही है कि प्रजा, राजा के पद-चिह्नों पर चला करती है चाहे, वह अपनी इच्छा
(क्योकि प्रत्येक अधीनस्थ व्यक्ति अपने हाकिम एव स्वामी का अधीन होता
अथवा अपनी इच्छा के विरुद्ध (कारण कि जब शासक भोग-विलास से रुचि नही
ा, अपितु घृणा करता है तो प्रजा को भी उससे पृथक् रहना ही पड़ता है)। इस

प्रकार दिखावे एव बनावट के समाप्त हो जाने के उपरान्त नगर संस्कृति एवं नागर जीवन की जड़ कट जाती है और नगर अपनी चहल-पहल तथा रौनक़ खो बैठता है। इसे हम विनाश एव वीरानी कहते हैं।

दूसरा कारण यह है कि एक सल्तनत का दूसरी सल्तनत पर प्रभुत्व उसकी पहले की गहरी शत्रुता एवं उसकी वजह से युद्ध तथा मारकाट का परिणाम होता है। इस प्रकार जब तक शत्रुता, युद्ध एवं मारकाट की सभी श्रेणियाँ पार न कर ली जायँ, एक शक्ति दूसरी शक्ति पर विजय नही प्राप्त कर सकती। शत्रुता का आधार पारस्परिक घृणा एव आदतो का विरोध होता है। अतः जब एक शक्ति दूसरी पर प्रभुत्व प्राप्त करती है तो मिटनेवाली शक्ति की हर आदत और स्वभाव प्रत्येक रग-ढग एवं आचार-व्यवहार नयी शक्ति की दृष्टि मे अत्यन्त निद्य प्रतीत होता है। वह उसका समूलोच्छेदन करके नयी प्रकार की सस्कृति एव नागरिक जीवन की नीव डालती है और अपनी राज-व्यवस्था नये ढग से करती है। इस प्रकार इसी परिवर्तन एवं उलट-फेर से राजधानी एक बार उजड़ एव वीरान होकर पुनः शनैः-शनैः आबाद होने और शोभा प्राप्त करने लगती है। इसी मध्य युग को हम वीरानी एव विनाश का युग कहते हैं।

तीसरा कारण यह है कि प्रत्येक कौम का एक विशेष वतन होता है जहाँ से उसकी सल्तनत का प्रादुर्भाव होता है। फिर जब वह अपनी विजयो को बढ़ाती है और दूर-दूर के देश अपने अधिकार-क्षेत्र मे ले आती है तो उसके अधीनस्थ इलाके उसकी मूल राजधानी के अधीन एव उपांत समझे जाते हैं और विजित नगर असल राज्य से सम्बन्धित समझे जाते हैं। इस कारण कि राजधानी सल्तनत के मध्य मे होनी चाहिए सल्तनत अपनी प्राचीन राजधानी को ही अपने राज्य का केन्द्र बनाये रखती है और विजित राजधानी के निवासी, सुल्तान की निकटता के लोभ मे केन्द्र की ओर बढ़ने लगते हैं। फलतः भरा-भराया एवं सभ्य नगर उजड़ने लगता है। जब सभ्यता का पतन होने लगता है तो नगर के जीवन का अन्त हो जाता है क्योकि नगर का जीवन एव आबादी साथ-साथ बढ़ती है और साथ ही मिटती है, इस प्रकार विजित राजधानी वीरान हो जाती है।

इतिहास इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है। जब सलजूकियों को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो उन्होने इसफ़हान को अपनी राजधानी बनाया और बग़दाद ने अपनी शोभा खो दी और उसकी प्राचीन रौनक़ समाप्त हो गयी। अरब ने अपने राज्य-काल में मदाएन को छोड़कर कूफा एवं बसरा को राजधानी बनाया तो मदाएन

पर वीरानी छा गयी। बनी अब्बास ने अपने राज्य-काल में दमिश्क को छोड़कर बग़दाद को राजधानी बनाया और बनी मरीन ने मगरिब मे मराकश को छोड़कर फास को राजधानी बनाया तो प्राचीन राज्य-केन्द्र उजड़ते एव वीरान होते गये। नये नगरो की आबादी प्राचीन नगरो के विनाश का कारण बनने लगी। इसका निष्कर्ष यही निकला कि राज्य का एक नये स्थान को शासन केन्द्र बनाने का अर्थ प्राचीन राजधानी का विनाश होता है।

चौथा कारण यह है कि नया शासन, पिछले शासन के हितैषियों, एव शुभ-चिन्तकों को उनके मूल निवास स्थान से दूर दूसरे स्थान पर स्थानातरित कर देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है ताकि उनके खतरो से पूर्ण-रूप से रक्षा हो सके। प्राचीन राजधानी मे जो लोग रहते, बसते हैं उनमे विजित शासन के हितैषियो की अधिकता होती है और वे विभिन्न रूप में शासन से सम्बन्धित होते हैं। अधिकांशतः तो शासन के आश्रित होते हैं। उसके प्रति अपनी आस्था को किस प्रकार भुला सकते है प्रभुत्व एव "असबियत" से वे भले ही वचित हो चुके हो, किन्तु हृदय से अपनी निष्ठा के कारण पिछले शासन के साथ होते हैं। उधर नये शासन का यह दृष्टिकोण होता है कि जिस प्रकार उसके द्वारा पिछली हुकूमत मिटी है उसी प्रकार उसके अवशेष एव चिह्न तक मिट जायँ। अतः उसके लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता कि प्राचीन शासन से सहानुभूति रखनेवालो को भी अपनी राजधानी मे स्थानातरित कर ले। कुछ को बन्दी बना कर, कुछ पर कृपा दृष्टि प्रदर्शित करके अपने पास बुला ले। प्राचीन राजधानी मे इस प्रकार जन-साधारण, श्रमिको एवं कृषको के अतिरिक्त कोई अन्य नही रह जाता। जो लोग निकल कर चले जाते है उनके स्थान पर नगर की रक्षा हेतु सेना रखी जाती है। जब राजधानी इस प्रकार प्राचीन राज्य के समर्थकों से रिक्त हो जाती है तो आबादी मे अत्यधिक विघ्न पड़ जाता है।

फिर नये राज्य के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह अपनी श्रेणी एवं दृष्टि-कोण के अनुसार कोई नवीन सभ्य नगर बसाये। इसका उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि जिस तरह किसी आदमी के पास किसी विशेष प्रकार का एक घर हो और जब उसके दिन फिर जायँ और वह वर्त्तमान आवश्यकताओ एव रुचि के अनुसार उसका निर्माण कराना चाहे तो फिर उसके लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता कि वह उसे तुडवा कर दूसरे नये घर का निर्माण कराये और उसे नवीन प्रकार से तैयार कराये। ससार के इतिहास से पता चलता है कि राजधानियों मे इस प्रकार के परिवर्तन बार-बार होते रहते हैं। हम ने इसे स्वय अपनी आँखों से देखा है।

एक सल्तनत के मिटने पर उसकी राजधानी के नष्ट होने का स्वाभाविक कारण यह है कि सल्तनत का सभ्यता से वही सम्बन्ध है जो सभ्यता का धातु से। धातु का रूप उसे तत्सम्बन्धी विशेष दृष्टि के सहारे सुरक्षित रखता है। यह निश्चय हो चुका है कि धातु एव रूप एक दूसरे से पृथक् नही हो सकते। इसी प्रकार सल्तनत के अस्तित्व की सभ्यता के बिना कल्पना नही हो सकती, कारण कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से अत्याचार एव उद्दडता, दुराचार और धूर्तता लेकर पैदा हुआ है जिसका निराकरण किसी राज्य-सत्ता तथा न्यायकारी के बिना सम्भव नही। हाकिम अपनी राजनीति द्वारा शासन करना चाहता है, चाहे वह सल्तनत शरा के अनुसार हो और चाहे देश के हितानुसार। सक्षेप मे सभ्यता के लिए सल्तनत का अस्तित्व अनिवार्य है। अब यह ज्ञात हो गया कि सभ्यता तथा सल्तनत दोनो का अस्तित्व एक दूसरे के बिना नही हो सकता, एक का अस्तित्व दूसरे का अस्तित्व है और एक का विनाश दूसरे का विनाश है। यदि इनमे से एक मे विघ्न पड़ जाय तो दूसरे मे विघ्न पडना अनिवार्य होता है। यदि सल्तनत की नीव हिल जाय तो देश अपने अस्तित्व को किसी प्रकार स्थापित नही रख सकता। इस प्रकार रूम, फारस, एवं अरब तथा बनी उमय्या एव बनी अब्बास की सल्तनतों की यही दशा हुई। वैयक्तिक सल्तनत के पतन के विषय में उपर्युक्त सिद्धांत लागू नही किया जा सकता। उदाहरणार्थ, नौशीरवाँ, हरकुल[1], अब्दुल मलिक बिन मरवान तथा रशीद की सल्तनते जब अपने-अपने समय पर बदली तो क़ौमी प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नही पड़ा और सभ्यता उसी प्रकार की रही, कारण कि बाद मे आनेवाला प्रत्येक बादशाह सभ्यता के अस्तित्व का रक्षक एवं उसकी स्थापना के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ। राज्य के नियमों एवं सिद्धांतों में अगले-पिछले बादशाह एक दूसरे से मिलते-जुलते रहे। अतः उनका परिवर्तन सभ्यता को कुछ अधिक प्रभावित न कर सका। इसका भी कारण यह है कि सल्तनत जो वास्तव मे सभ्यता को प्रभावित करती है, और उसके अस्तित्व का कारण है, पूर्ण रूपसे प्रभुत्व एव "असबियत" पर अवलम्बित है। वह शखसी बादशाहों के परिवर्तन से नही बदलती, अपितु उसी प्रकार वर्त्तमान रहती है। यदि एक "असबियत" मिट कर, दूसरी "असबियत" उसका स्थान ले और पहली "असबियत" वाली क़ौम पूर्ण रूप से नष्ट हो जाय तो नि.सन्देह देश मे बहुत बडी उथल-पुथल हो जाती है और सभ्यता का स्थान वीरानी ले लेती है। ईश्वर मे जो वह चाहे करने की शक्ति है। "यदि वह उन्हे नष्ट करना

१. Heraclius.

चाहे तो वह नष्ट कर देता है और नये प्राणियों का सर्जन कर देता है। ईश्वर के लिए यह कठिन नही[१]।"

(२०) कुछ कलाएँ विशेष रूप से नगरों मे पायी जाती हैं

यह एक खुला तथ्य है कि नगरवालो के कर्त्तव्य एव आचरण एक दूसरे की सहायता के बिना जन्म नही पा सकते, कारण कि मनुष्यो की सभ्यता स्वाभाविक रूप मे पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है। जिन कार्यो की जन-साधारण को अधिक आवश्यकता होती है, उनके लिए कुछ लोग अपने आपको विशेष रूप से पृथक् कर लेते है। वे उनमे कुशलता एव दक्षता पैदा कर लेते हैं और उन्ही उद्योग-धधों को अपनी जीविकोपार्जन का साधन समझते है, कारण कि वे जानते है कि नगर की सभ्यता का अस्तित्व उन कार्यो के बिना हो ही नही सकता। जिन उद्योग-धधो की नगरवालों को साधारणतः आवश्यकता नही होती वे बडी शोचनीय दशा में रहते है। कोई उनकी ओर ध्यान नही देता। दरजी, बढई, लोहार इत्यादि ऐसे पेशेवाले है कि नगर का कार्य इनके बिना चल ही नही सकता। अब रहे ऐसे पेशे जो केवल मनोरजन एव तफरीह के साधन होते है, और आर्थिक आवश्यकता के समाधान मे उनका कोई स्थान नही होता। वे ऐसे नगरों में पाये जाते है जो सभ्यता की चरम सीमा पर होते है और नगर के जीवन एव सस्कृति के केन्द्र होते है। उदाहरणार्थ, शीशा बनानेवाले, सुनार, इत्र बेचनेवाले, भटियारे, नानबाई, फर्राश, इत्यादि। फिर ये पेशे भी प्रत्येक सभ्य नगर मे एक प्रकार से नही पाये जाते। नगर की संस्कृति जितनी उन्नति करती है, नगर के इस प्रकार के पेशो को उतनी ही उन्नति प्राप्त होती है और वे बढते जाते है। अतः यह हो सकता है कि एक नगर मे ये पेशे कम हो और एक मे अधिक।

देख लीजिए कि हम्माम[२] बडे सभ्य एव आबाद नगरो मे ही पाये जाते है, कारण कि लोगो की समृद्धि एव खुशहाली के साथ-साथ इनका अस्तित्व परमावश्यक हो जाता है, किन्तु एक औसत आबादी के नगर मे हम्माम कम सख्या मे मिलेगे। वहाँ यदि किसी बादशाह अथवा हाकिम ने हम्माम बनवा भी लिया तो इस कारण कि साधारण आबादी को इनकी आवश्यकता नही होती, वे शीघ्र ही टूट-फूट कर नष्ट हो

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

२. सार्वजनिक स्नानगृह अथवा गरम जल के स्नानगृह।

जाते है और उनके प्रबंधक लाभ न होने के कारण उनका प्रबंध छोड़कर भाग जाते है। "ईश्वर अपने हाथ दृढ़तापूर्वक बन्द रखता है, किन्तु उन्हे खोल भी देता है'।"

(२१) नगरों मे "असबियत", एक दूसरे पर प्रभुत्व

मनुष्य स्वाभाविक रूप से आपस में एक दूसरे के साथ मेल-जोल एव मेल-मिलाप रखने का आदी है भले ही कुल का सम्बन्ध उनमे न हो। किन्तु कुल के सम्बन्ध के आधार पर जो मेल-जोल होता है वह बड़ा दृढ़ होता है और कुल के बिना कमजोर। सक्षेप मे यद्यपि कुल का सम्बन्ध न भी हो तो भी एक प्रकार की "असबियत" अवश्य पैदा होती है। नगरवालों मे से बहुत से लोग वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा जुड़ जाते है और एक खून एवं एक रिश्ते के हो जाते है। फिर उनमे वही शत्रुता एव सत्यता की भावनाएँ पायी जाती है जो विभिन्न क़बीलों एवं समूहों मे मिलती हैं। उनकी अलग-अलग टोलियाँ बन जाती है और प्रत्येक "असबियत" पृथक् हो जाती है। जब सल्तनत में वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगत होने लगते है और राज्य की विभिन्न दिशाओं मे उसका प्रभाव समाप्त होकर उसकी शक्ति राजधानी मे ही सीमित हो जाती है, तब नगर-वाले इस चिन्ता मे ग्रस्त हो जाते है कि उनका प्रभुत्व किस प्रकार स्थापित रखा जा सकता है और उनके नगर की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है। वे परस्पर एक दूसरे से परामर्श करते है और साधारण एव श्रेष्ठ तथा ऊँच-नीचका भेद-भाव करने लगते है। यतः मनुष्य मे स्वाभाविक रूप से यह भावनाएँ पायी जाती है कि वे दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते है। अतः देश के प्रतिष्ठित लोग शक्तिशाली बादशाह को न पाकर अपना पृथक् स्वतत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करने लगते है और इस उद्देश्य हेतु परस्पर लड़ते-झगड़ते है। प्रत्येक अपने दासो, आश्रितों एव सहायकों के बल पर उठता है और नगर के दुष्टों को धन-सम्पत्ति देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार एक दूसरे से गुथकर अन्त मे एक दूसरे पर अधिकार जमा ही लेता है। फिर वह अपने साथियों एव हितैषियों को कृपा एवं दया द्वारा सम्मानित करता है और शत्रुओं को मौत के घाट उतारता अथवा निर्वासित करता है, ताकि विरोधियों के जोर-शोर एवं शक्ति को पूर्ण रूप से कुचल दे और फिर किसी को सिर उठाने की शक्ति न हो। अतः इस प्रकार विजयी शक्ति को नगर मे स्वतत्र

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

राज्य स्थापित करने का अवसर मिल जाता है और फिर सल्तनत एक नस्ल से दूसरी नस्ल में चलती रहती है।

इस नयी सल्तनत को स्वयं उन्हीं हालतों का सामना करना पड़ता है जिनका एक बड़ी सल्तनत को। उदाहरणार्थ, वह बाल्यावस्था से युवावस्था अथवा उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त होती है। तदुपरान्त वृद्धावस्था की ओर और फिर विनाश की तरफ अग्रसर होती है।

कभी-कभी ऐसी छोटी सल्तनतें बडी सल्तनतों के रग-ढंग पर चलने लगती है और उनका बादशाह उन बड़े बादशाहों की बराबरी का दावा करता है जो क़बीलों एव समूहो के स्वामी तथा "असबियत" वाले होते है, जो महान् युद्ध करता है और जिसका राज्य दूर-दूर तक के देशो तक फैला होता है। यह इस प्रकार होता है कि नया बादशाह भी सिहासनारूढ होता है, सशस्त्र सेनाएँ राज्य की विभिन्न दिशाओं मे भेजता है, शाही फरमानो के लिए मुहरे तैयार होती हैं, लेखा एव निरीक्षण-विभाग स्थापित होते है, इनशा[1] एवं दीवानी विभागों की स्थापना होती है। सक्षेप मे उसका रग-ढंग कुछ ऐसा बदल जाता है कि उसको देखकर शिक्षा प्राप्त होती है एव आश्चर्य होता है कि प्राचीन सल्तनत का जोर टूट जाने और कुछ सम्बन्धियो के आपस में मिलकर "असबियत" पैदा करने से नयी सल्तनत क्या से क्या हो गयी। कभी-कभी ऐसा होता है कि नयी सल्तनत सरलता को ही अगीकार किये रहती है और अपने आपको ससार के समक्ष व्यग का विषय नही बनाती।

इस प्रकार इफरीक़िया मे जब हफसिया राज्य शक्तिहीन हो गया और अन्त में उसकी ऐसी दुर्दशा हो गयी कि बीसियों वर्षो तक वह सँभल न सकी तो जरीद, तराब्लस, गेब्स, तोजर, नफता, कफसा, बिस्करा एव जाब सरीखे नगरों मे ऐसी ही अराजकता स्थापित हो गयी। प्रत्येक नगर मे पृथक् हाकिम का राज्य था। वही अपने परगने एव एलाक़े का शासन-प्रबंध करता और राजस्व तथा कर वसूल करता था। यद्यपि वे लोग प्राचीन सल्तनत की अनुयायिता का भी दावा करते थे, किन्तु अपनी मृत्यु के समय वे अपनी सतानों को अपना उत्तराधिकारी बना गये जिन्होंने कुछ ही दिनों में अत्याचार एवं कठोरता से लोगो को तग कर डाला और मलिकों एव सुल्तानों की सतानों के उसी प्रकार के चरित्र एव नियमो पर चलकर अशान्ति उत्पन्न कर दी। वे अपनी दशा को भूलकर सुल्तान कहलाने लगे। अततोगत्वा "अमीरुल मोमिनीन"

१. पत्र-व्यवहार का विभाग।

अब्बास ने इस उपद्रव को शांत किया और जो स्थान उनके अधिकार में आ गये थे, उन्हे उनसे छीन लिया।

सिनहाजा की सल्तनत के अन्तिम युग मे जरीद के एलाक़ों मे भी विभिन्न स्थानों पर अव्यवस्था फैल गयी थी और सल्तनत का प्रभाव पूर्णतः समाप्त हो गया था। यहाँ तक कि शेखुल मुवह्हेदीन और उनके बादशाह अब्दुल मोमिन ने उन्हें देश एव राज्य से निर्वासित करके मग़रिब की ओर भगा दिया और जरीद के पूरे एलाके से उनके प्रभाव को समाप्त कर दिया। इसी प्रकार बनी अब्दुल मोमिन के अतिम राज्य काल मे सिब्ता[1] की यही दशा हुई थी कि वहाँ भी अमीरो एव रईसो ने अत्यधिक उद्दडता प्रदर्शित की थी और अपने आपे से बाहर निकल गये थे।

यह आपने उन उच्च वशवाले रईसों एव अमीरो के प्रभुत्व का हाल सुना जो नगर मे सम्मानित एव प्रतिष्ठित होते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नगर के निम्न वर्ग के एव दुष्ट तथा दुराचारी लोग विद्रोह कर देते है और अपने कुछ साथियो के सहयोग के जोर पर एव उनकी "असबियत" की सहायता से ऐसा जोर पकड लेते है कि नगर के सम्मानित एव प्रतिष्ठित लोग भी उनसे दब जाते है, कारण कि उनकी "असबियत" तो समाप्त ही हो चुकती है, अत मुकाबले की शक्ति वे पैदा ही कहाँ से कर सकते है।

"ईश्वर मे अपने आदेशो को मनवा लेने की शक्ति है"[2]

(२२) नगरवालों की भाषा

नगरवाले प्राय. उस कौम की भाषा का अनुसरण करते है जो उस पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तक के सभी इस्लामी नगरो मे अरबी भाषा आज तक प्रचलित है, यद्यपि मूल मुजर अरबी भाषा एव उसके एराब[3] दोनो मे दोष आ चुके है। इसका कारण यही है कि इन नगरो मे बसनेवालो के धर्म पर इस्लामी सल्तनत का जब प्रभुत्व स्थापित हुआ तो अधीनस्थ कौमे अपनी भाषाएँ भुला बैठी और इस्लामी भाषा अरबी के अधीन हो गयी। यह बात स्पष्ट है चूँकि मुहम्मद साहब अरबी थे, अत. इस्लाम धर्म भी अरबी भाषा मे आया और जो क़ौमे इस धर्म

१. Ceuta.

२ क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

३. जबर, जेर और पेश।

को स्वीकार करती गयी वे अपनी भाषाओं को छोड़कर अरबी भाषा को स्वीकार करती गयी।

हज़रत उमर ने अजमियों मे प्रचलित महाविरो के प्रयोग का निषेध कर दिया था। आपका कथन था कि यह "खिब" अथवा छल एव धूर्तता है। जब धर्म ने अजमी भाषाओं की पूर्णतः उपेक्षा की और मुसलमानों की भाषा अरबी हो गयी तो अजमी भाषाएँ स्वतः मिट गयीं, कारण कि प्रजा अपने आचार-व्यवहार एवं धर्म में अपने बादशाह का अनुसरण करती है, अतः अरबी भाषा इस्लामी राज्यो मे प्रविष्ट हो गयी और अरब की आज्ञाकारिता का चिह्न समझी जाने लगी। समस्त इस्लामी नगरो एव देशो मे प्राचीन भाषाएँ पूर्णतः नष्ट हो गयी और प्रत्येक दिशा मे अरबी की ही चर्चा होने लगी। स्थानीय भाषाओ को विदेशी भाषाओ का स्थान प्राप्त हो गया, किन्तु इसके साथ-साथ अरबी भाषा भी दोषो एव परिवर्तनो से सुरक्षित न रह सकी। अन्य भाषाओ के शब्द इसमे सम्मिलित हो गये। वाक्यो के रूप मे परिवर्तन होने लगा। फिर इस मिश्रित भाषा का नाम हज़री[1] भाषा रखा गया, कारण कि समस्त इस्लामी नगरो मे यही प्रचलित और इसी को उन्नति प्राप्त थी।

एक कारण यह भी है कि आज तक इस्लामी नगरो मे उन्ही अरबो की सताने रहती-बसती चली आयी है जिन्होने उन पर अधिकार जमाया और जिनका जीवन सभ्य जीवन है, कारण कि वे अजमियो की भूमियो एव देशो के स्वामी बनकर समृद्ध हो चुके थे। फिर उनके उपरान्त उनकी भाषा उनकी सतान मे विरासत के रूप में आयी और उनकी भावी सतानें अपने पूर्वजों की भाषा बोलती-चालती रही, यद्यपि उसमे कुछ अजमी शब्द मिश्रित हो गये। सक्षेप मे अरबी ही प्रचलित रही। इस प्रकार अरबी सर्वदा नगरवासियो एव हज़रियो की भाषा समझी गयी। इसको हज़री भाषा की उपाधि प्राप्त हुई। बदवी भाषा पूर्व की भाँति अजमी शब्दो के मिश्रण से सुरक्षित रही।

जब पूर्व मे देलम एव सल्जूकियों को प्रभुत्व प्राप्त हुआ और पश्चिम मे जनाता एव बरबर ने अपना अधिकार जमाया और इस्लामी देशों मे उन्ही को प्रभुत्व प्राप्त हो गया तो अरबी भाषा मे अत्यधिक दोष उत्पन्न हो गये और वह नष्ट ही हो जाती यदि मुसलमान किताब[2] एव सुन्नत जो धर्म के स्रोत है की आड मे अरबी भाषा की रक्षा अपना परम कर्त्तव्य समझ कर उसकी रक्षा के लिए हर प्रकार से कटिबद्ध

१. नगरवालों की।
२. क़ुरान शरीफ़।

न हो गये होते। जब समय के परिवर्तन से तातारियों एवं मुगलों को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो इस्लाम से उनके अपरिचित होने के कारण किताब एव सुन्नत की आड़ भी समाप्त हो गयी और फिर अरबी भाषा का सभी स्थानों से अन्त हो गया। इस्लामी देशों, इराक़, खुरासान, फ़ारस, हिन्द, सिन्ध, मावराउन्नहर, शाम एवं रूम के देशों में भी उसका दबदबा समाप्त हो गया। कविताओ एव पद्यो में भी अरबी का प्रयोग समाप्त हुआ। केवल कही-कही पाठ्यक्रमों मे अरबी भाषा सम्मिलित रह गयी और वह भी उन्ही लोगो तक जिन्हे ईश्वर ने उससे रुचि प्रदान की। धर्म (इस्लाम) के साथ-साथ मिस्र, शाम, उन्दुलुस एव मग़रिब मे अरबी भाषा को कुछ स्थायित्व प्राप्त हुआ है। अन्य इस्लामी देशो मे तो अरबी भाषा का चिह्न तक मिट गया। यहाँ तक कि पांडित्य-पूर्ण ग्रथ अजमी[1] भाषा में लिखे जाने लगे है और पठन-पाठन में भी अजमी भाषा प्रचलित है।

१. ग़ैर अरबवालों की।

अध्याय ५

जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन

(लाभकर कार्य, कला-कौशल और तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ)

(१) जीविकोपार्जन तथा लाभ के वास्तविक अर्थ, लाभ ही मनुष्य के परिश्रम का मूल्य है

मानव स्वभावतः खाद्य सामग्री एकत्र करना अनिवार्य समझता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक वह क्षण भर के लिए भी अपनी इस आवश्यकता की उपेक्षा नही कर सकता और वास्तव मे सग्रह की उपेक्षा करना ईश्वर का ही गुण है। मनुष्य को नाना प्रकार की आवश्यकताओ के लिए दूसरों का मुँह देखना पडता है। मनुष्य की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखकर ही ईश्वर ने समस्त प्राणियो को उसके लाभार्थ पैदा किया है और कुरान शरीफ मे जगह-जगह पर इस परोपकार का उल्लेख किया गया है। वह कहता है, "उसने जमीन तथा आसमान मे जो कुछ है वह सब तुम्हारे लिए पैदा किया है। उसने सूर्य तथा चन्द्रमा को तुम्हारे अधीन किया है। उसने समुद्र को तुम्हारे अधीन किया[१]। उसने आकाश-मडल को तुम्हारा वशवद किया और पशुओं को तुम्हारे अधिकार मे किया।" मनुष्य को ईश्वर ने अपना उत्तराधिकारी बनाया है। अतः उसको ससार की समस्त वस्तुओ पर प्रभुत्व भी उसने प्रदान किया है, किन्तु केवल एक मनुष्य सब पर अधिकार नही जमा सकता, अपितु सब मिल-जुलकर ससार की वस्तुओ का अपने लाभार्थ प्रयोग करते है। जो वस्तु एक मनुष्य को प्राप्त हो जाती है दूसरा बिना उसका मूल्य चुकाये हुए उसे नही हासिल कर सकता। अतः जब मनुष्य निर्बलता के चक्र से निकल कर कुछ शारीरिक शक्ति प्राप्त करता है तथा जीविकोपार्जन के लिए हाथ-पाँव मारता है तो वह जो कुछ इस प्रकार कमाता है उसको अपने आवश्यकतानुसार व्यय करता है तथा चीजो का मूल्य चुकाता है। ईश्वर ने कहा है कि "ईश्वर से ही रोजी माँगो।"[१] कुछ वस्तुएँ ऐसी भी है जो बिना मूल्य मिल जाती है। उदाहरणार्थ, वर्षा का जल, कृषि एव अन्य कार्यो के लिए बिना मूल्य ही प्राप्त होता है। किन्तु केवल यह जल ही रोजी के लिए उस समय तक पर्याप्त नही होता जब तक मनुष्य उसके साथ अपना प्रयत्न एव उद्योग भी सम्मिलित न करे। यदि इस परिश्रम से मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ, जिनके बिना उसका जीवन असम्भव

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

है, पूरी हो जायँ तो इस प्रकार के परिश्रम के मूल्य को लाभ कहा जाता है और यदि आवश्यकता से अधिक एकत्र हो जाय तो उसे पूँजी कहते है ।

मनुष्य जो जीविकोपार्जन करता है उससे यदि वह केवल अपने आपको लाभ पहुँचाये और उसे व्यय करके वह स्वय उससे लाभ कमाये, उसे अपनी आवश्यकताओं पर व्यय करे तो यह लाभ वास्तव मे उसके लिए रोजी कहलायेगा । मुहम्मद साहब ने कहा है कि "तुम्हारी धन-सम्पत्ति वास्तव में वही है जिसे तुम खाकर समाप्त कर देते हो अथवा पहिनकर फाड़ डालते हो या दान में देकर व्यय कर देते हो।" यदि कमानेवाला अपनी कमाई से लाभ न उठाये और उसे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति मे व्यय न करे तो वह उसके लिए रोजी नही, केवल उसके परिश्रम का मूल्य है जो कि उसके प्रयत्न से प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, 'तरके' को ले लीजिए, यह मरनेवाले के लिए लाभ है रोजी नही, कारण कि वह उससे कोई नफ़ा नही उठा सकता । जब उमके उत्तराधिकारी उससे लाभान्वित होंगे तो वह उनके लिए रोजी बन जायगा । सुन्नी मुसलमान उसी को रोजी कहते है । मोतजेला रोजी के लिए वे यह शर्त लगाते है कि उस पर उचित रूप से अधिकार प्राप्त हुआ हो, यदि ऐसा नहीं है तो वह उनके निकट रोजी नही । इसी कारण उन्होने अपहरण की हुई एवं हराम वस्तुओं को रोजी के क्षेत्र से निकाल दिया है और वह उन्हे रोजी नहीं मानते, यद्यपि ईश्वर अपनी कृपा तथा दया द्वारा अपहरणकर्त्ता, जालिम, धर्मनिष्ठ मुसलमान तथा काफ़िर सभी को रोजी पहुँचता है, किन्तु वे इसके लिए बहुत-सी दलीले भी देते है जिनके उल्लेख का यह उपयुक्त स्थान नही है ।

लाभ के लिए परिश्रम एव उद्योग की आवश्यकता पड़ती है। रोजी कमाने के लिए प्रयत्न, परिश्रम, कोशिश तथा दौड़-धूप की अत्यधिक आवश्यकता होती है। ईश्वर का आदेश है कि, "ईश्वर से ही रोजी माँगों[१] ।" क्योकि प्रयत्न इन आदेशों तथा दैवी प्रेरणा से सम्बन्धित है और उसी पर निर्भर है। अतः प्रत्येक कार्य ईश्वर की ही शक्ति से सम्पन्न होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि मनुष्य हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाय । इसके लिए मनुष्य को कार्य करने की भी आवश्यकता पड़ती है । यदि किसी कला-कौशल को जीविकोपार्जन का साधन बनाया जाय तो स्पष्ट है कि उसमें अन्ततः कार्य करना ज़रूरी रहेगा । यदि कोई पशुओं, वनस्पतियों अथवा खनिज

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

पदार्थ आदि का स्वामी है तो उसके लिए भी परिश्रम करना परमावश्यक होता है, अन्यथा उसे किसी प्रकार का कोई लाभ नही हो सकता।

फिर यह भी अपने स्थान पर सत्य है कि खनिज पदार्थों में सोना-चाँदी को ईश्वर ने पूँजी का मूल्य प्रदान किया है। संसारवाले प्रायः इसी से भंडार भरते हैं। यदि इसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का वे सग्रह करते है तो उसका उद्देश्य भी यही होता है कि उससे सोना चाँदी प्राप्त हो सके कारण कि यह दो उत्तम खनिज पदार्थ ऐसे हैं जो बाजार के उतार-चढ़ाव तथा बाज़ार के खतरों से भी मुक्त रहते हैं। अतः यही कमाई का मूल उद्देश्य एवं भंडार तथा खज़ाने की वास्तविक सम्पत्ति है। जब यह सब तथ्य सामने आ गये तो यह समझ लिया जाय कि मनुष्य जिस वस्तु को लाभदायक जानकर जमा करता तथा प्राप्त करता है, यदि वह केवल कला-कौशल की किस्मों मे से है तो उसमे लाभ, प्रयत्न एवं परिश्रम द्वारा प्राप्त होगा, कारण कि कला-कौशल मे उद्योग के अतिरिक्त और है ही क्या। यदि कला-कौशल के साथ कोई और भी वस्तु सम्मिलित हो, उदाहरणार्थ बढ़ई और जुलाहे की कला में लकड़ी तथा सूत का भी हाथ हो, तो उसमे मूल्य अधिकांश परिश्रम का ही होगा। यदि लाभ कला-कौशल की क़िस्मों में से नही है तो उसमे भी परिश्रम का हाथ होगा क्योंकि उद्योग के बिना लाभ का अवसर ही प्राप्त नही हो सकता।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी परिश्रम का हाथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है और पूँजी मे उसका हिस्सा चाहे कम हो चाहे अधिक, लगाया अवश्य जाता है। कभी परिश्रम का बाह्य रूप से हाथ नहीं दिखाई देता, उदाहरणार्थ अनाज इत्यादि के भावों मे जिनमे पूँजी तथा परिश्रम दोनों पर ध्यान रखा जाता है। किन्तु जिन देशों में सुगमतापूर्वक कृषि हो जाती है वहाँ परिश्रम का भाग उसके भाव मे दृष्टिगत नहीं होता। बहुत कम लोग ही समझते है कि अनाज के भाव मे परिश्रम भी सम्मिलित है। अतः इस वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लाभ सब का सब या उसका अधिकांश भाग परिश्रम का ही मूल्य है। साथ ही साथ यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि परिश्रम एवं रोजी का वास्तविक तथ्य क्या है, जो वस्तु लाभदायक सिद्ध हो वही रोजी बन सकती है।

जिन नगरों की जनसख्या कम होती है उनमे क्योंकि मानव के परिश्रम की कमी होती है, अत. उसी अनुपात से रोजी की भी कमी हो जाती है। जिन नगरो की आबादी अधिक होती है उनमे उसी अनुपात से रोजी का बाहुल्य होता है, लोग सुखी एवं धन-धान्य सम्पन्न होते हैं। इसका यही कारण है कि जब किसी नगर की जनसंख्या

घटने लगती है तो साधारण लोग कहा करते है कि वहाँ अब रोजी का द्वार बन्द हो गया। वहाँ की बहती हुई नहरे तथा उबलते हुए झरने सूख जाते है, कारण कि नहरों तथा झरनों के लिए खुदाई एवं सफ़ाई की आवश्यकता होती है। जब जनसख्या ही कम हो गयी तो यह कार्य कौन करे ? यदि उन बड़े नगरो को देखा जाय जिनमे किसी समय बड़ी घनी आबादी थी तो पता चलेगा कि उनमे हर तरफ नहरो के जाल बिछे हुए थे। जब वे उजड़े तो उन नहरों का पानी भी सूख गया और समस्त भू-भाग सूखा मैदान दिखाई पड़ने लगा।

'ईश्वर ही रात्रि तथा दिन का निर्धारक है"[१]

(२) जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन तथा उनकी किस्में

जीविकोपार्जन रोजी की इच्छा एव उसके लिए प्रयत्न एव परिश्रम को कहते है। मआश[२] शब्द "ऐश[३]" से निकला है जिसका अर्थ जीवन है। क्योंकि जीवन जीविकोपार्जन एव परिश्रम तथा उद्योग पर निर्भर है, इसी कारण उसको "मआश" कहा गया।

१—जीविकोपार्जन के कई साधन है। उनमे से पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त होने पर राज्य के विधान के अधीन अन्य लोगों से कर तथा खराज के रूप मे कुछ द्रव्य या वस्तु प्राप्त करना जिसे कर या खराज कहा जाता है, सर्वप्रथम साधन है।

२—जल, तथा स्थल के पशुओं का शिकार करके जीविकोपार्जन करना। शिकार को व्यवसाय कहा जाता है। यह दूसरा साधन है।

३—पालतू जानवरो से लाभदायक चीजे प्राप्त करना और उनको रोजी का साधन बनाना। उदाहरणार्थ, दूध देनेवाले जानवरों से दूध प्राप्त करना, रेशम के कीडो से रेशम और मधुमक्खी से मधु सग्रह करना आदि, तीसरे प्रकार के साधन है।

४—कृपि से अनाज और वृक्षो से फल प्राप्त करना जीविकोपार्जन का मुख्य साधन होता है। इसका नाम कृषि है।

५—मनुष्य के उद्योग द्वारा जीविकोपार्जन भी अन्य प्रधान साधन है। यह दो प्रकार से सम्भव होता है। प्रथम तो विशेप कार्य एव व्यवसाय द्वारा, उदाहरणार्थ किताबत, बुनाई, घुडसवारी, बढ़ई, दर्जी इत्यादि के पेशो अथवा किसी अन्य विशेष पेशे द्वारा जिसमे हर प्रकार का श्रम आ जाता है।

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. जीविकोपार्जन।
३. जीवन।

६—दूसरे पूँजी तथा धन-सम्पत्ति लगाकर लाभ-प्राप्ति द्वारा। सामान या माल असबाब क्रय करके इधर-उधर नगरों मे लिये फिरना, उसे विभिन्न बाजारों में बेचना अथवा माल क्रय करके अपने पास इस आशय से रखे रहना कि बाज़ार का भाव चढ़ जाने पर उसे बेचा जाय आदि, इसके अन्तर्गत आते हैं। यह सब व्यापार के रूप हैं और कुछ लोगों के जीविकोपार्जन का साधन यही व्यापार है।

सक्षेप में उपर्युक्त सब बाते जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन है। विद्वानों एवं दार्शनिकों उदाहरणार्थ हरीरी[1] एव अन्य लोगों के मस्तिष्क मे यही बात थी जब उन्होने कहा कि "हमे जीविका राज्यसत्ता, व्यापार, कृषि तथा उद्योग-धधे द्वारा प्राप्त होती है।" राज्यसत्ता जीविकोपार्जन का प्राकृतिक साधन नही है। हम उसका उल्लेख इस स्थान पर नही करेगे। इससे पूर्व राज्य, करो एव राज्यसत्ता के विषय में दूसरे अध्याय मे कुछ कहा जा चुका है। कृषि, कला-कौशल एवं व्यापार जीविकोपार्जन के प्राकृतिक साधन हैं।

कृषि को सभी साधनो के ऊपर प्राथमिकता प्राप्त है, कारण कि यह सरल तथा प्राकृतिक साधन है। इसके लिए अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। इसी कारण इसे हजरत आदम[2] का आविष्कार बताया जाता है। कहा जाता है कि उन्होंने ही कृषि का पाठ मानव को पढ़ाया और कृषि करना सिखाया। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि कृषि जीविकोपार्जन का प्राचीनतम साधन है और प्राकृतिक परिस्थितियों के निकटतम है।

कला-कौशल कृषि के बाद है। इनमे ज्ञान की भी आवश्यकता होती है और सोच-विचार की भी। इसी कारण आप देखेगे कि कला-कौशल केवल नगरवासियों मे प्रचलित होते हैं, बदवियो मे नही। कहा जाता है कि कला-कौशल का आविष्कार हजरत इदरीस[3] ने किया जो कि मानव के दूसरे पिता कहे जाते है। कहा जाता है कि उन्होने भावी नस्लों के लिए दैवी प्रेरणा द्वारा इसका आविष्कार किया।

व्यापार भी लाभ कमाने का प्राकृतिक साधन है, किन्तु व्यापार मे प्राय युक्ति, सूझबूझ, एव धूर्त्तता की आवश्यकता होती है। इसमें बहुत-से उपाय करने पड़ते

१. सम्भवतः "मक़ामात" का लेखक अल-क़ासिम बिन अली (४४६–५१६ हि०। १०५४–५५ से ११०२ ई०)
२. वे मुसलमानों तथा ईसाइयों इत्यादि के अनुसार सबसे पहले पुरुष माने जाते हैं।
३. एक पैग़म्बर।

है ताकि क्रय-विक्रय के समय मूल्यों के घटने-बढ़ने से लाभ हो, हानि न हो। यद्यपि वे उपाय जुए के प्रतिरूप होते है, किन्तु शरीअत ने व्यापारिक उलट-फेर का निषेध नहीं किया है, कारण कि इसमें जुए के समान दूसरे की धन-सम्पत्ति पर, मूल्य अदा किये बिना अधिकार नहीं जमाया जाता, अतः व्यापार में शरा के अनुसार कोई हानि नहीं, किन्तु जुआ हराम बताया गया है।

(३) नौकरी जीविकोपार्जन का प्राकृतिक साधन नहीं

सल्तनत के विभिन्न विभागो के लिए सेवकों की नियुक्ति करना बादशाह के लिए अनिवार्य होता है। उनके बिना उसका कोई काम नही चल सकता। उदाहरणार्थ, बादशाह सैनिकों द्वारा सेना एवं पुलिस विभाग की व्यवस्था करता है और सचिवों से किताबत-विभाग चलाता है। इसी प्रकार अन्यवि भाग चलाये जाते है, परन्तु प्रत्येक कार्य के लिए ऐसे विशेषज्ञ की खोज की जाती है जो तत्सम्बन्धी कार्य कर सके। इन सेवकों के वेतन शाही खजानो से अदा किये जाते है। वे सेवक एक प्रकार से राज्य के स्तम्भ होते है। राज्यव्यवस्था उन्ही पर आधारित होती है। बादशाह एक झरने के समान होता है और वे उसकी छोटी-छोटी नहरे।

इनके अतिरिक्त भी अन्य सेवाएँ होती है। इसका कारण यह है कि विलासप्रिय एवं धन-धान्य सम्पन्न लोग अपना काम स्वय अपने हाथ से नही करना चाहते। वे इसमे अपनी मानहानि समझते है। इसके अतिरिक्त भोग-विलास मे पलकर बडे होने के कारण वे कार्य करने की सामर्थ्य खो बैठते है। सक्षेप मे वे अपने कार्यो के लिए सेवकों को नियुक्त करने पर विवश होते है। अपनी आय से उनके वेतन का भुगतान करते है, किन्तु यह पौरुष के सिद्धान्त को देखते हुए अनुचित कार्य है, कारण कि अपने कार्य का भार दूसरे के कन्धों पर डालना अपनी अयोग्यता एव विवशता को स्वीकार करना है और इससे व्यय भी बढ़ जाता है। साहसी पुरुष कभी इस प्रकार विवश नही होते कि वे स्वय अपना काम न कर पाये और बात-बात मे अन्य लोगों से अपना काम निकाले। क्योंकि मनुष्य अपनी आदत एव परिस्थितियो पर निर्भर होता है, अतः धन-धान्य सम्पन्न होने के उपरान्त वह ऐसी अपमानजनक आदतें अपने अन्दर उत्पन्न कर लेता और अपनी कौम तथा कुल को भूल जाता है।

इसके अतिरिक्त ऐसे सेवक भी बहुत कम ही है जो कार्य करने के योग्य भी हों और भरोसे के भी क़ाबिल, कारण कि सेवक चार प्रकार के हो सकते है। एक वे जो केवल अपने कार्य में निपुण हों, किन्तु भरोसे के योग्य न हों। दूसरे वे जो भरोसे के

योग्य हों, किन्तु कार्य के योग्य न हों। तीसरे वे जो कार्य में भी निपुण हों और भरोसा एवं विश्वास भी उनमे पूरा हो । चौथे वे जो न कार्य के ही योग्य हों और न भरोसे के ही। इनमें ऐसे सेवकों को जिनमें दोनों गुण पाये जाते हों अर्थात् वे योग्य भी हों और उन पर भरोसा भी किया जा सकता हो, प्रत्येक व्यक्ति अपने यहाँ नहीं रख सकता । जिसकी आय कम है वह तो उनकी सेवा से लाभ उठा ही नहीं सकता । वे इतना अधिक वेतन माँगते हैं कि कम आयवाले उन्हे किसी प्रकार नहीं रख सकते। वे केवल बड़े-बड़े अमीरों तथा रईसो के यहाँ ही नौकरी करते हैं और वे लोग ही उन्हें नौकर रख भी सकते हैं। ऐसे सेवकों को जिनमे दोनों गुणों में से कोई भी गुण न हो अर्थात् जो अयोग्य हों और जिन पर भरोसा अथवा विश्वास भी न किया जा सकता हो कोई बुद्धिमान् अपनी सेवा मे रखने ही क्यों लगा, कारण कि वे काम भी बिगाडेगे तथा अपहरण एव चोरी भी करेंगे। ऐसे सेवक स्वामी के लिए बड़ा भारी रोग बन जाते हैं।

• अब सेवको की केवल दो ही किस्मे रह जाती हैं। एक तो वे जो कार्य योग्य भी हों, किन्तु विश्वास के योग्य न हो अथवा विश्वास के योग्य हों, किन्तु कार्य योग्य न हों। इनमे एक को दूसरे पर प्राथमिकता देने के विषय पर बुद्धिमानों में मतभेद है और प्रत्येक अपनी-अपनी दलीले प्रस्तुत करता है। हम पहले प्रकार के सेवकों को स्वीकार कर सकते हैं, कारण कि उनकी ओर से कार्य बिगड़ने का कोई भय न होगा, किन्तु यदि कड़ा नियन्त्रण रखा जाय तो चोरी और अपहरण से भी बचा जा सकता है, परन्तु वह नौकर जो काम बिगाडे, किन्तु भरोसे के योग्य हो प्रायः कार्य को हानि ही पहुँचाता है। अतः हमने जिस सिद्धांत की व्याख्या की है उसे भली-भाँति समझ लेना चाहिए और फिर सेवक नियुक्त करते समय उसका ध्यान रखना चाहिए।

"ईश्वर जो कुछ चाहता है उसे करने की उसमें शक्ति है।"

(४) भूमिष्ठ निधि एवं धन-सम्पत्ति की खोज जीविकोपार्जन का स्वाभाविक साधन नहीं

नगरो के अधिकांश मूर्ख इस लोभ मे फिरते रहते है कि कही से उनको गड़ा हुआ खजाना मिल जाय और वे उस पर जीवन निर्वाह कर सके। उनका यह भी विश्वास होता है कि पिछली कौमों ने जो धन-सम्पत्ति भूमि के नीचे गाड दी है उस पर जादू की मुहर लगा दी है। इसको वही व्यक्ति खोल सकता है जो जादू-मंत्र से अवगत हो और धूनी रमाकर, कुछ भेट चढ़ाकर तथा मंत्र जपकर, मुहर तोड़ दे और संपत्ति प्राप्त कर ले।

इफरीक़िया के निवासियो का विचार है कि इफरीक़ियों ने इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व बहुत-सी धन-सम्पत्ति ज़मीन में गाड़ दी थी और ग्रन्थों में उनके विषय में सकेत कर दिये थे ताकि उन सकेतों के आधार पर उनकी ठीक खोज की जा सके। इसी प्रकार पूर्व के निवासी किब्त, रूम तथा फ़ारस की क़ौमों के विषय में इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते है कि वे लोग भी बहुत कुछ भूमि मे गाड गये है। वे इन गड़े हुए भण्डारो के सम्बन्ध मे ऐसी बे-सिरपैर की कहानियो का विभिन्न सूत्रो से उल्लेख करते रहते है जो निराधार है। उदाहरणार्थ, वे कहते है कि कुछ लोगो ने जादू से अनभिज्ञ होने के कारण जब वह गडी हुई धन-सम्पत्ति खुदवायी तो उन्हे कुछ न मिला अथवा उन-स्थानो को कीड़े-मकोड़ों से भरा हुआ पाया और यदि कभी वहाँ धन-सम्पत्ति एव सोने तथा जवाहिरात से परिपूर्ण बर्तन देखे भी तो उनके रक्षको को नंगीतल वारे निकाले हुए वहाँ खड़ा पाया अथवा भरे हुए खजाने उनके सामने भूमि के नीचे धँस गये । इसी प्रकार की अन्य निराधार बातें भी कही जाती है।

मग़रिब मे ऐसा भी देखा गया है कि कुछ लोग जब जीविकोपार्जन के सहज साधनो से ऊब जाते है तो कुछ जाली एव बनावटी अभिलेख तैयार कर लेते है और यह प्रकट करते है कि वे अभिलेख गड़ी हुई धन-सम्पत्ति के स्वामियो के आज्ञापत्र है। फिर उनको लेकर वे किसी सम्मानित एव धनी व्यक्ति के पास पहुँचते है और कहते है कि, "क्योंकि शासकों के हस्तक्षेप का भय है और दण्ड का डर है, अतः बिना आपकी सहायता के गडी हुई धन-सम्पत्ति की खुदाई का कार्य सम्पन्न नही हो सकता।" इस धूर्तता का उद्देश्य यही होता है कि वे इस प्रकार कुछ धन प्राप्त कर लें और उसे चटकर जायें। इन धूर्तो मे कुछ लोग जादू के कुछ करतब भी जानते है जिनके आधार पर वे अपने झूठे दावो को सच्चा सिद्ध करने का प्रयत्न करते है। हालाँ कि वे जादू के विषय मे कोई बात नही जानते, किन्तु मूर्ख लोग उनके जाल मे फँसकर मजदूरो को एकत्र कर लेते है और रात्रि के अँधेरे मे खुदाई का कार्य प्रारम्भ कराते है ताकि किसी को पता न चले और उनके सिवा कोई अन्य व्यक्ति गड़ी हुई धन-सम्पत्ति मे हिस्सा न बँटा सके। जब खजाना प्राप्त नही होता तो वे धूर्त कहते है कि जिस जादू के अधीन यह धन-सम्पत्ति गाडी गयी थी उसका ठीक पता न चल सका और इस प्रकार असफल रहना पडा। इस तरह वे लोभी लोगों को उनके अनुचित लोभ का खूब मजा चखाते है और इस आड़ मे अपना उल्लू सीधा करके उनको हानि पहुँचाते है। इसका कारण यह है कि वे धूर्त स्वयं अनपढ होते है और उस पर जीविकोपार्जन के प्रकृत-साधन यानी व्यापार, धधा, कला-कौशल तथा कृषि से धन कमाना भी नही जानते। बिना

किसी परिश्रम के, बैठे-बिठाये धन कमाने की इच्छा उन्हें होती रहती है। उनकी यह आकांक्षा होती है कि वे बिना हाथ-पाँव हिलाये भूमि से रोजी हासिल कर लें, पर वे इतना नही समझते कि इस प्रकार के अनुचित उपायों में जितनी बुद्धि खपानी होती है और जितना परिश्रम करना पड़ता है उतना जीविकोपार्जन के प्रकृत साधनों की उपासना मे नही लगता। इसके अतिरिक्त उन्हे कभी-कभी दड भी भोगना पड़ता है। इन समस्त अनुचित कार्यो का कारण यह है कि नगरवासियों में अपव्ययिता एव उड़ाने-खाने की आदत होती है। बढे हुए खर्चो एव अपव्ययीपन के कारण जीविकोपार्जन के प्रकृत साधनों से उनका काम नही चल पाता। वे इस बात की इच्छा करते रहते है कि बिना हाथ-पाँव हिलाये कही से अत्यधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त कर लें और उससे भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते रहे। इसी कारण आप देखेगे कि नगर के धनी लोग ही बिना मूल्य की धन-सम्पत्ति के ऐसे भूखे होते है कि सभ्यता एवं नगर के जीवन के वातावरण मे पलकर वे भोग-विलास की स्थिति मे आगे बढ़ते हैं। उन्हें धुन लगी रहती है कि मुफ्त की धन-सम्पत्ति कही से हाथ आ जाय। वे लोग ही कीमिया[१] की शिक्षा प्राप्त करने के चक्कर मे मारे-मारे फिरा करते है।

मिस्रवालों के विषय में सुना गया है कि वे मगरिबवालों से पता लगाते फिरते है कि खजाना तथा गड़ी हुई धन-सम्पत्ति कहाँ-कहाँ है। वे इस बात की उधेड़-बुन मे रहते हैं कि नील नदी का पानी किसी प्रकार सूख जाय, कारण कि उनका मत है कि नील नदी के बहाव मे खजानें दफन है। अतः जब तक जल न हटेगा, खजानो पर अधिकार नही जमाया जा सकेगा। उनको यही धोखा दिया जाता है कि नदी के वहाव मे खजाने इस कारण गाडे जाते है कि पानी की वजह से किसी को उन पर अधिकार न प्राप्त हो सके और वे सर्वदा छिपे पड़े रहें। सुननेवालो के हृदय में इससे लालच पैदा हो जाता है कि जादू इत्यादि के जोर से नदी के जल को अपने मार्ग से हटाया जाय। जादू की चर्चा तो वहाँ है ही और वह भी आज से नही, अपितु सहस्रों वर्षो से। फिरऔन की कहानियाँ इसी का प्रमाण हैं। मगरिब निवासी एक कसीदे का भी पाठ किया करते है जिसके विषय मे कहा जाता है कि वह पूर्व के दार्शनिकों की रचना है, जिसमे जादू के प्रभाव से जल के सुखाने के उपाय की ओर सकेत किया गया है।.......[२]

१. ताँबे अथवा पीतल से सोना-चाँदी बनाने की कला।

२. क़सीदे का अनुवाद नहीं किया गया।

अब यदि यहाँ यह प्रश्न किया जाय कि खजाने इत्यादि यदि भूमि में दफ़न नही किये गये तो पिछली क़ौमो की वह अपार धन-सम्पत्ति, जिसका उल्लेख प्रायः किया जाता है, कहाँ गयी ? इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि सोना-चाँदी, जवाहिरात और धन-सम्पत्ति कमायी हुई वस्तुएँ है और लोहे, ताँबे, सीसे तथा अन्य खनिज पदार्थो से भिन्न नही है। वे सभ्यता एव मनुष्य के परिश्रम के घटने-बढ़ने से घटती-बढ़ती रहती है और कम तथा अधिक होती रहती है। लोगों के अधिकार मे जो कुछ कमाई आती है वह एक दूसरे के हाथो मे चलती-फिरती रहती है। इसमे तरक्के का क्रम भी चलता है। आज यदि एक देश मे धन-सम्पत्ति का बाहुल्य है तो कल वह देश धन-सम्पत्ति से शून्य होगा और वही धन-सम्पत्ति दूसरे देश मे पहुँच जायगी। सक्षेप मे सभ्यता मे यही परिवर्तन नित्यप्रति होते रहते है। उदाहरणार्थ, यदि मग़रिब तथा इफरीकिया मे धन-सम्पत्ति की कमी है तो इसका यह अर्थ नही कि सक़ालिया एवं यूरोप के देशों मे भी इसका अभाव है। यदि मिस्र तथा शाम मे धन-सम्पत्ति की कमी है तो इससे यह निष्कर्ष नही निकलता कि हिन्दुस्तान तथा चीन मे भी इसका अभाव है। संक्षेप मे हमारी कमाई हुई धन-सम्पत्ति एक स्थान पर नही ठहरती। वह आज किसी के हाथ मे है तो कल किसी दूसरे के हाथ मे होगी। आज एक अमीर है तो कल कोई दूसरा। सभ्यता यही खेल खेला करती है।

इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थ एव उससे सम्बन्धित अन्य वस्तुएँ भी नष्ट हुआ करती है। मोती एवं जवाहिरात तो सब चीजों की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार सोना-चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा इत्यादि भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते है।

अब मिस्र के खजानो का हाल सुनिए। वहाँ किब्तियो का राज्य सहस्रो वर्ष तक रह चुका था। पिछली क़ौमो के समान उनके यहाँ भी यह प्रथा चली आ रही थी कि जब वे अपने मुर्दे को दफन करते तो उसकी जो कुछ धन-सम्पत्ति, सोना-चाँदी तथा जवाहिरात इत्यादि होते वे सब उसी के साथ दफन कर दिये जाते थे। जब किब्तियों का राज्य नष्ट हुआ और फ़ारसवालों ने मिस्र पर अधिकार जमाया तो उन्होंने कबरें खोद-खोदकर अपार धन-सम्पत्ति निकाली। देख लीजिए कि मिस्र के एहराम[1] से जो वास्तव मे बादशाहों की कब्रे है कितनी अधिक धन-सम्पत्ति निकाली जा चुकी है और निकाली जा रही है। फ़ारसवालों के उपरान्त यूनान-वालो ने भी कब्रो को खुदवाया और अत्यधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त की। आज तक लोग

१. पिरामिड।

इन क़ब्रों को धन-सम्पत्ति का भंडार समझते है और प्राय: उनमें गड़ी हुई धन-सम्पत्ति मिल भी जाती है। क़िब्ती अपने मुर्दों के सामान मे धन-सम्पत्ति के साथ सोने-चाँदी के बर्तन भी रख दिया करते थे । इसी लोभ मे मिस्रवासियों मे से बहुत से लोगों ने क़ब्र खोदने का व्यवसाय ग्रहण कर लिया। राज्य के अन्तिम युग में जब इन व्यवसायवालों पर कर लगाया जाने लगा तो उन्होंने कर भी अदा किया और खुदाई भी करते रहे। उनकी देखा-देखी बहुत से लालची मूर्ख यह कार्य करने को दौड़ पड़े और शासन को कर के रूप मे भारी-भारी धनराशि देकर खुदाई कराते रहे, किन्तु उन्हें असफल रहना पडा। हानि के अतिरिक्त उन्हें कुछ न प्राप्त हुआ। अत: ऐसे मूर्ख लोभियों को हम यही परामर्श देंगे कि वे ईश्वर के लिए जीविकोपार्जन मे शिथिलता एवं काहिली से काम न लें और ईश्वर से उसी प्रकार शरण माँगें जिस प्रकार मुहम्मद साहब ने माँगी थी कि ईश्वर उनको शैतानी कल्पनाओं से मुक्ति प्रदान करे। इस प्रसग मे वे जो निराधार एवं झूठी कहानियाँ सुनते चले आये है उन्हें कदापि स्वीकार न करें।

"ईश्वर जिसे चाहता है उसे बिना हिसाब के रोजी प्रदान करता है।"

(५) पद एवं श्रेणी धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए लाभदायक हैं

यह हमारा अनुभव है कि समस्त आर्थिक मामलों में उच्चश्रेणी के लोग ही अधिक धनी होते है। इस तथ्य का रहस्य यह है कि धनी पदाधिकारियो के पीछे सदा चापलूस लोग लगे रहते है और उनके प्रत्येक आवश्यक तथा अनावश्यक कार्य बिना किसी मूल्य अथवा पारिश्रमिक के करते रहते हैं ताकि उनकी प्रसन्नता से वे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। इस प्रकार उच्च पदस्थ लोगों के बहुत से कार्य बिना-किसी मूल्य के पूरे हो जाते हैं और उनका बहुत-सा धन बच जाता है। उनकी धन-सम्पत्ति नित्यप्रति बढ़ती रहती है और शीघ्र ही वे चोटी के धनी लोगो में गिने जाने लगते हैं। यही कारण है कि उच्चाधिकारो को भी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक साधन माना गया है। अब दूसरी ओर उस धनी को देखिए जिसे कोई पद अथवा सम्मान प्राप्त नही है। उसका धन उतना ही बढ़ेगा जितनी उसकी पूँजी है अथवा जितना उसका प्रयत्न तथा परिश्रम। इस प्रकार व्यापारियों की दशा यह है कि वे अपनी सम्पत्ति एव प्रयत्न के अनुपात में नित्यप्रति धनी होते जाते है, बिना मूल्य के उनका कोई काम नही होता और वह हो भी किस प्रकार तथा किस लोभ के कारण हो सकेगा? पदाधिकारियों की पद-शक्ति द्वारा लोगों के सैकडों काम निकलते है, किन्तु

पूँजीपति के पास पूँजी के अतिरिक्त होता ही क्या है ? ऐसी अवस्था मे कोई मुफ्त मे उसका कार्य क्यो करने लगा ?

इसका प्रमाण यह भी है कि फ़कीहो, आलिमो तथा दीन (इस्लाम) के सम्मानित लोगों के प्रसिद्ध हो जाने पर जब सब लोग उनके भक्त हो जाते है और लोग यह समझने लगते है कि वे वास्तव मे बडे पहुँचे हुए है तो उनके सासारिक कार्य बिना मूल्य दिये ही हो जाते है। प्रत्येक व्यक्ति बिना कुछ प्राप्त किये उनकी सहायता हेतु कटिबद्ध रहता है, फलत. दीन के उन प्रसिद्ध लोगो की धन-सम्पत्ति तेजी से बढ़ने लगती है, कारण कि कार्य का मूल्य तथा मजदूरी उन्हे नही अदा करना पडती। वे बिना परिश्रम एव अधिक धन व्यय किये शीघ्र धनी हो जाते है। नगरो मे भी हमको इस प्रकार के सम्मानित व्यक्ति मिलते है और ग्रामो मे भी। ग्रामो मे लोग उनकी ओर से कृषि एव व्यापार का कार्य करते है और वे सम्मानित लोग स्वय घर मे एकान्त-वास ग्रहण किये रहते है, फलतः उनका धन बढता रहता है और आय मे वृद्धि होती रहती है। बिना किसी प्रयत्न अथवा परिश्रम के उनकी गणना धनी लोगो मे होने लगती है। यहाँ तक कि जो लोग उनके अचानक धनी हो जाने के रहस्य को नही समझते, वे उनको देखकर आश्चर्य किया करते है और यह नही समझते कि वास्तव मे इसका कारण क्या है।

"ईश्वर जिसे चाहता है उसे रोजी देता है और बिना किसी हिसाब के देता है[1]।"

(६) दीनता प्रकट करनेवालों और चाटुकारी करनेवालों को अधिकांश लाभ एवं सम्पन्नता प्राप्त होती रहती है

हम पहले सिद्ध कर चुके है कि मानव जो कुछ कमाता है वह उसके परिश्रम का मूल्य होता है। यदि मनुष्य काम से बिलकुल हाथ उठा ले तो कमाई से भी खाली हो जायेगा। फिर कार्य जितनी उच्च श्रेणी का होता है लोग उसकी उतनी ही अधिक चिन्ता करते है। उतना ही उसका सम्मान एव मूल्य अधिक हो जाता है और इसी अनुपात से आय भी बढ़ती है। यह भी पिछले पृष्ठो मे सिद्ध किया जा चुका है कि पद एवं श्रेष्ठता धन को बढ़ाने मे सहायक होती है क्योकि लोग सम्मानित व्यक्तियों का विश्वासपात्र बनने के लिए बिना कोई मूल्य लिये हुए उनके कष्टो का निवारण करते रहते है तथा उनको लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया करते है। वे इसमे तन-मन-

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

धन बलिदान करने मे कोई कसर नही उठा रखते, किन्तु उनका यह आचरण त्याग पर आधारित नही होता। वे अपने हृदय मे अच्छी और बुरी सभी प्रकार की भावनाएँ छिपाये रहते है। उनकी यह इच्छा होती है कि इस चाटुकारी से उनके सम्मान एवं पद मे अधिक से अधिक वृद्धि हो जाय। सक्षेप मे, सम्मानित लोगो के विषय मे इन चापलूसों की यह चाटुकारी तथा त्याग अपना प्रभाव दिखाता है और वे उसे शीघ्र ही धनी बना देते है और देखते-देखते वे उच्च श्रेणी को प्राप्त हो जाते है।

इसके अतिरिक्त श्रेष्ठता का माप भी विभिन्न श्रेणियों मे विभाजित है। कोई ऊँचा होता है और कोई नीचा। ऊँचे से ऊँचा सम्मान बादशाह को प्राप्त होता है, उससे ऊँचा कोई मनुष्य नही। सबसे निम्न वर्ग मे वह दरिद्र होता है जो न किसी-को हानि पहुँचाने के योग्य होता है और न कोई लाभ। इन दोनो श्रेणियों के मध्य मे अनेक श्रेणियाँ है और ईश्वर जिसे चाहता है उसे उस श्रेणी मे रखता है। इन्हीं श्रेणियों के अनुपात से मानव की आर्थिक व्यवस्था आँकी जाती है, और उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं तथा उन्हें स्थायित्व प्राप्त होता है कारण कि मानव का स्थायित्व पारस्परिक सहयोग एवं सहायता पर निर्भर है। अत: यदि कोई ऐसी परिस्थिति की कल्पना करे जिसमे परस्पर सहयोग न प्राप्त हो सके तो मनुष्य का स्थायित्व भी सम्भव न हो सकेगा। फिर यह सहयोग बडी कठिनाई से प्राप्त होता है। उसमे किसी के अधिकार या इच्छा का कोई स्थान नही होता, कारण कि कुछ लोग ऐसे भी है जो मानव-हित से अपरिचित होते हैं, और दूसरों के सहयोग से हाथ खीच लेते हैं। अत: एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो कि उन्हें सहयोग देने के लिए विवश कर सके और मनुष्य को नष्ट होने से बचा सके। साथ ही साथ यह बात बुद्धि एवं विवेक से सम्बन्ध रखती है, स्वभावत: प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के कार्य करने के लिए तैयार नही होता, अत: कुछ लोग दूसरों से सहयोग करने से मुँह फेर लेते हैं। इसी तथ्य की ओर "आयत"[1] में सकेत किया गया है। "हमने इनमे से कुछ लोगों को विभिन्न श्रेणियों मे रखा है ताकि वे दूसरों से जबरदस्ती काम न ले सके। तुम्हारे पालने-वाले की दया उससे कही अधिक है जो वे कमाते है।"

इस उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो गयी कि सम्मान उस शक्ति का नाम है जिसके अधीन एक मनुष्य अपने अधीनस्थ मनुष्यों पर अधिकार प्राप्त करता है। वह जो काम चाहता है उसका आदेश देता है, किसी वस्तु का निषेध करता है, सबको अपने प्रभुत्व

१. क़ुरान शरीफ़ के वाक्य।

के अधीन रखता है और शरा के आदेशो तथा राजनीति के सिद्धान्तो के अनुसार मानव का न्याय करता है। एक को दूसरे पर अत्याचार करने पर नही, अपितु लाभ पहुँचाने पर विवश करता है और इसके साथ-साथ अपने उद्देश्य भी अपने अधीनस्थ लोगों से पूरे कराता है। किन्तु प्रथम उद्देश्य अर्थात् मानव का लाभ मूल उद्देश्य है और ईश्वर की इच्छा भी यही है। दूसरा उद्देश्य सम्मानित व्यक्ति का व्यक्तिगत लाभ है। जिस प्रकार दैवी आदेशों मे भी थोड़ा बहुत दोष होना आवश्यक है, कारण कि संसार मे कोई भी भलाई बिना बुराई के नही हो सकती और थोड़ी बहुत बुराई अधिक भलाई के अस्तित्व मे बाधक नही होती, इसी कारण कहा जाता है कि ससार म थोड़ा-बहुत अत्याचार होना चाहिए और होता है।

चाहे कोई नगर हो अथवा देश उसमे प्रत्येक प्रकार के उच्च वर्ग का निम्नवर्ग पर अधिकार होता है। निम्न वर्गवाले उच्च वर्गवालों के सम्मानित व्यक्तियों से सहायता प्राप्त करते हैं। सम्मानित व्यक्तियो का धन उनकी सहायता से बढ़ता है। जितनी ही वे उनसे सहायता लेते है उतना ही उनके धन मे वृद्धि होती है। उच्च पद उनकी आर्थिक उन्नति के द्वार खोल देता है। जितनी ही सम्मानित व्यक्ति की श्रेणी ऊँची होती है उतना ही उसका प्रभाव भी विस्तृत होता है। इसी आधार पर सम्मानित व्यक्ति का धन बढ़ता-घटता रहता है। यद्यपि कोई व्यक्ति उच्च सम्मान से वंचित हो तो चाहे वह धनी ही क्यो न हो उसका धन उसके उद्योग एवं परिश्रम तथा धन के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। उदाहरणार्थ, व्यापार, कला-कौशल तथा कृषि करनेवालो का धन। जब वे लोग अपने व्यवसाय के लाभ पर ही जीवन-निर्वाह करते है और कोई पद नही रखते तो वे प्रायः दरिद्रता एवं फ़ाकों मे ग्रस्त रहते है। उनकी धन-सम्पत्ति बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है। अधिकांश ये लोग अपनी स्थिति से संघर्ष ही करते रहते है और कभी-कभी भोग-विलास का आनन्द भी उठा लेते है।

जब यह बात सिद्ध हो गयी कि उच्च पद ऊपर की श्रेणियों मे बँटा हुआ है और उच्च पद से लाभ एवं सौभाग्य के द्वार खुलते है तो समझ लेना चाहिए कि उसका दान-पुण्य भी बहुत बड़ा सौभाग्य है और सम्मानित व्यक्ति बहुत बड़ा धनी। वह अपने अधीनस्थ वर्गो के लिए दान-पुण्य के द्वार खोलता है। उसके अधीनस्थ लोग उस पर निर्भर होते है। ऐसी अवस्था मे जिसे भी सम्मान की इच्छा होगी वह अवश्य ही नम्रता दिखाने एवं चाटुकारी करने पर विवश होगा, ताकि उसे इस प्रकार का सम्मान प्राप्त हो। यदि वह ऐसा न करेगा तो सर्वदा दबा रहेगा और सम्मानित पद तक न पहुँच सकेगा। इसी कारण हमने लिखा कि दीनता एव चाटुकारी

ाम्मान की प्राप्ति के साधन है और सम्मान एव सौभाग्य धन कमाने के साधन। ासार मे ऐसे बहुत-से उदाहरण मिलेगे कि बहुत-से धनी लोग चाटुकारी के कारण ाड़े-बड़े पदों पर पहुँच गये और उन्होने अत्यधिक सम्मान प्राप्त कर लिया। उन्हीं ी तुलना मे ऐसे लोग भी मिल जायँगे जो स्वाभिमान के कारण सर्वदा सम्मान से ंचित रहते हैं। उनकी जीविका केवल उनके परिश्रम पर निर्भर रहती है और वे अधिकांश दरिद्रता एव फाको का शिकार बने रहते हैं।

अभिमान तथा घमंड की गणना यद्यपि चरित्रहीनता मे है, किन्तु यह उस समय ंदा होते है जब मनुष्य को अपने उच्च पद का भरोसा होता है और इस बात का भी के लोगो के लिए उसकी योग्यता अनुपेक्ष्य है। उदाहरणार्थ, किसी बहुत बड़े विद्वान्, कुशल कातिब तथा उच्च श्रेणी के कवि को देखा जा सकता है। उच्च कुल से सम्ब-न्धित व्यक्ति भी स्वाभिमानी हो जाते हैं, किसी बादशाह एव बड़े आलिम की संतान इसके उदाहरण हैं। जब वे अपने पूर्वजो के विषय मे सुनते हैं कि वे बहुत बड़े गौरव एवं श्रेष्ठता के स्वामी थे तो वे अपने आपको भी बहुत बड़ा सम्मानित व्यक्ति सम-झने लगते हैं, किन्तु यह गौरव केवल ऐसी वस्तु पर होता है जिसका कोई मूल्य नही। पूर्वजो के बड़े होने से उनकी सतान बड़ी नही हो जाती, जब तक कि वह स्वयं गौरव एवं सम्मान के कार्य न करे। इसी प्रकार उन लोगों को भी अभिमानी पाया गया है जो धूर्त्त, चालाक, सूझ-बूझवाले एव अनुभवी होते हैं। वे भी अपने बराबर किसीको नही समझते। ऐसे लोगों के विषय मे देखा गया है कि वे किसी अन्य सम्मानित व्यक्ति के समक्ष नही झुकते और अपने बड़े के साथ कोई चाटुकारी का व्यवहार नही करते, अपितु अन्य लोगों को अपने आपसे निम्न श्रेणी का समझते हैं और उनके समक्ष दीनता प्रकट करना अच्छा नही समझते, क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से उनके सम्मान में कमी हो जायगी और वे अपमानित हो जायँगे। यह मूर्खता का चिह्न है।

अब जितना वे अपने आपको अन्य लोगों से श्रेष्ठ समझते हैं उसीके अनुसार वे लोगों से व्यवहार करते हैं। यदि कोई उनको उच्च श्रेणी का नहीं समझता तो वे उससे जलने लगते हैं और इसी चिन्ता में घुलते रहते है कि किस प्रकार हमारी श्रेष्ठता अन्य लोग स्वीकार कर लें। दूसरी ओर लोग उनके इस व्यवहार को बहुत बुरी दृष्टि से देखते हैं, कारण कि मनुष्य की प्रकृति मे यह बात है कि वह अकारण किसी की श्रेष्ठता एवं गौरव को स्वीकार नही करता जब तक कि गौरव एवं सम्मान को देखकर उसे स्वीकार करने पर विवश न हो जाय। इन अभिमानी लोगों के पास उच्च पद न

होने के कारण कोई ऐसा साधन नही होता कि वे अन्य लोगों को दबा सके, लोगों की गर्दनें अपने सामने झुका सके, फलतः लोग उनके शत्रु हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग उच्च श्रेणीवालो से लाभ उठाने से वंचित रहते है। उनको कभी कोई सम्मान नही प्राप्त होता और न कोई लाभ। जब वे सबको निम्न वर्ग का समझकर सबसे पृथक् रहते हैं और किसीको मुँह नहीं लगाते तो फिर उनको किस तरह लाभ प्राप्त हो सकता है? इसी कारण उनकी आर्थिक दशा भी गिरती जाती है। वे सर्वदा दरिद्रता एवं फ़ाके मे ग्रस्त रहते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि कला-कौशल के कारीगर लोग सासारिक लाभ से वचित होते हैं और रोजी का लाभ उनको उनकी कला में प्राप्त हो जाता है, किन्तु वे अपनी कला मे ही मस्त रहते हैं। सल्तनतों मे सदाचरण के ही आधार पर लोगों को विभिन्न सम्मान प्राप्त होते हैं।

प्रायः कमीने तथा चरित्रहीन लोग चापलूसी एव चाटुकारी करके बड़े-बड़े पद प्राप्त कर लेते हैं और उच्च सम्मानवाले एव कुलीन लोग उन्नति नही कर पाते। इसका कारण यह है कि सल्तनत जब उन्नति के शिखर पर पहुँचकर जोर पकड़ जाती है तो प्रभुत्व केवल बादशाह को ही प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त सब लोग उसके अधीन रहते हैं। बादशाह के सामने समस्त प्रजा सेवकों एव दासों के समान होती है। बादशाह की दृष्टि मे छोटे-बड़े का कोई अन्तर नही रहता। जो उसकी सेवा अधिक करते हैं और उसके निकट पहुँचने का प्रयत्न करते हैं उन्हें वह उच्च पदों द्वारा सम्मानित करता है। ऐसी अवस्था में बाजारी लोग बादशाह के निकट पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। नाना प्रकार से उसकी सेवा करके उसे प्रसन्न करते हैं और उसके प्रत्येक आदेश के समक्ष सिर झुकाये रहते हैं। वे नम्रता एव चाटुकारी मे कोई कमी नही करते यहाँ तक कि बादशाह के विश्वासपात्रों की भी चाटुकारी करते रहते हैं और उसके सम्बन्धियों के भी दास बने रहते हैं। अन्त में बाजारियों को भी इस धूतता के कारण बादशाह के सहचरों मे सम्मिलित कर लिया जाता है और फिर वे सांसारिक धन-सम्पत्ति से लाभ उठाने लगते हैं और धन-धान्य सम्पन्न हो जाते हैं।

इसके विपरीत राज्य के सच्चे हितैषी अपने उन पूर्वजो के कारनामों पर जिन्होंने सल्तनत का बुरा चाहनेवालों को नष्ट करके सल्तनत की बुनियाद डाली थी अकडते रहते हैं। वे अपने पिछले इतिहास का स्मरण करके बादशाह के समक्ष जरा भी नही झुकते, अपितु बराबरी का दावा करते हैं और अपने आपको उसीके बराबर समझते हैं। बादशाह जब उनका यह रंग-ढंग देखता है तो वह उनसे जलने लगता है, उनको दूर रखता है और केवल अपने निम्न वर्ग के इन आश्रितों को मुँह लगाता है जो भूत-

काल पर दृष्टि नही रखते, अभिमान एव गर्व नही करते, अपितु नम्रता एव चाटुकारी से कार्य करते है। फलत: इन्ही निम्न वर्ग के लोगो का सम्मान बढ़ जाता है। वे बड़े-बड़े पद प्राप्त कर लेते है। जब अन्य लोग उन्हे बादशाह का विश्वासपात्र पाते है तो उनका हृदय भी उन्ही की ओर आकृष्ट हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति उन्हीको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगता है। इधर इन कमीनो का यह सम्मान और उधर राज्य के हितैषियो की ऐसी दुर्दशा कि बादशाह उनको अपने पास नही फटकने देता, न उनको मुँह लगाता। यह दोनो ही बाते सल्तनत का नाश कर देती है।

(७) काज़ी, मुफ़्ती[१], मर्दरिस[२], इमाम, ख़तीब[३] एवं मुअज्जिन[४] इत्यादि धार्मिक लोग प्रायः धनी नहीं होते

इसका कारण वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कि धन-सम्पत्ति परिश्रम का मूल्य है। परिश्रम का मूल्य लोगों की आवश्यकतानुसार घटता-बढ़ता रहता है। जो कार्य सभ्यता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है और जिसकी सर्व-साधारण को बहुत ही जरूरत होती है उसका मूल्य भी अत्यधिक बढ़ जाता है। परन्तु जिस वस्तु की सर्वसाधारण को आवश्यकता न हो उसका सम्मान और मूल्य भी अत्यधिक बढ़ जाता है, भले ही उससे अधिक से अधिक लाभ होता हो। उपर्युक्त धार्मिक व्यक्तियो से सर्व साधारण व्यक्तियों का सरोकार प्रायः नही रहता। उनकी आवश्यकता तो केवल उन्ही लोगो को होती है जो थोड़ी-बहुत धर्मनिष्ठता की ओर आकृष्ट होते है।

इनमे मुफ़्तियो तथा काजियो की आवश्यकता अभियोगों का निर्णय करने के लिए होती है, किन्तु वह भी उन्हीको जो विवश होते है। सब लोगो को इनकी आवश्यकता नही होती। इसीलिए सर्वसाधारण लोग इन धार्मिक लोगों की चिन्ता नही करते। सल्तनत के स्वामी का कर्तव्य सर्वसाधारण के हितों की देखभाल एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। इसी कारण वह उनकी आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए उनके लिए कुछ वृत्ति निश्चित कर देता है, किन्तु इतना नही कि वे अन्य

१. फ़तवा (व्यवस्था) देनेवाला।
२. शिक्षक।
३. ख़ुत्बा पढ़नेवाला।
४. अज़ान देनेवाले।

कला-कौशलवालों तथा सम्मानित व्यक्तियों का मुकाबला कर सके। अतएव इन लोगों के हिस्से मे बहुत थोड़ा-सा धन आता है जिससे वे बड़ी कठिनाई से ही जीवन-निर्वाह कर पाते हैं। क्योंकि उनका धार्मिक कार्य बड़ा सम्मानित समझा जाता है, अतः सर्वसाधारण के हृदय में उनका बड़ा आदर-सम्मान होता है और वे बड़े सम्मान की दृष्टि से उनको देखते हैं। इसी कारण वे लोग कभी ससार के सामान्य व्यक्तियो के समक्ष नहीं झुकते और उनके सामने तक नही फटकते। यदि वे स्वयं आये तो उन्ही-को कुछ लाभ पहुँच जाय, किन्तु वे धर्म के सम्मानित कार्यों में हर समय मग्न रहने के कारण इतना समय नही निकाल पाते कि राज्य के उच्च पदाधिकारियों की सेवा मे उपस्थित हों और उनकी धन-सम्पत्ति में से कुछ पाने की आशा लगायें। इसके अतिरिक्त वे अपने व्यवसाय को इतना श्रेष्ठ एव सम्मानित समझते है कि उनकी आत्मा यह सहन नहीं कर सकती कि वे संसारवालों की चाटुकारी मे अपना समय नष्ट करें और अपने आपको तथा अपने व्यवसाय को अपमानित करे। इन्ही कारणों से धार्मिक लोगों की आर्थिक दशा कभी नहीं सुधरती।

इसी बात पर एक विद्वान् से मेरा वाद-विवाद हो गया। वे मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुए। संयोग से उन्ही दिनों मामूनूर्रशीद के हिसाब-किताब के कुछ फटे-पुराने काग़ज़ मुझे प्राप्त हो गये जिनमें उसके राज्य की आय-व्यय का लेखा दिया हुआ था। क़ाजियों, इमामों तथा मुअज़्ज़िनों के वेतन की सख्या भी उसमे दी हुई थी। मैंने यही काग़ज उपर्युक्त विद्वान् को दिखा दिये और अन्त मे उन्हे सहमत होना पडा कि वास्तव मे मेरा शोध शत-प्रतिशत सत्य था और जो कुछ मै कहता था वह ठीक था।

(८) कृषि शक्तिहीन शान्तिप्रिय लोगों का व्यवसाय है

कृषि क्योंकि वास्तव में एक भौतिक एवं सरल कार्य है, अतः सुखी एवं धन-धान्य सम्पन्न नगरवासी कभी इस कार्य में हाथ नहीं डालते और इसी कारण कृषक दरिद्रता एवं अपमान में ग्रस्त रहते हैं। एक बार हजरत मुहम्मद ने किसी अनसारी[1] के घर में हल रखा हुआ देखा तो कहा कि जिस घर में भी यह आता है, अपमान साथ-साथ आते है। इमाम बुख़ारी ने इन वाक्यों की व्याख्या करते हुए लिखा कि, "कृषि मे अत्यधिक संलग्न रहने के कारण मनुष्य इस सीमा को प्राप्त हो जाता है"। "कृषि" के

१. वे मदीनावासी जिन्होंने हज़रत मुहम्मद के मदीना पहुँचने के उपरान्त उनकी सहायता की।

अध्याय में इस हदीस की व्याख्या करते हुए इसका कारण यह बताया है कि "बेचारे किसान को सर्वदा भारी-भारी कर देने पड़ते हैं और वह अधिकारियों की कठोरता सहन किया करता है। इस कारण उसकी मर्यादा की भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और वह अपमान सहने का आदी हो जाता है।" हजरत मुहम्मद ने कहा है कि "कयामत उस समय तक न आयेगी जब तक कि जकात जुर्माने का रूप न धारण कर लेगी" अर्थात् कयामत आने के पूर्व अत्याचारी, आतकमय एवं निरकुश बादशाहों का राज्य आयेगा जो मनुष्य के अधिकारों की कोई परवाह न करेंगे और उन पर भारी-भारी जुर्माने लगाया करेंगे। इसी प्रकार जकात भी जुर्माने का रूप धारण कर लेगी।

'ईश्वर जो चाहे वह कर सकता है।'

(९) व्यापार की व्याख्या एवं उसकी क़िस्में और विधियाँ

व्यापार में पूँजी बढ़ाकर लाभ कमाया जाता है। हरएक माल जैसे—आटा, अनाज, पशु अथवा वस्त्र इत्यादि सस्ता क्रय करके महँगा बेचा जाता है। पूंजी पर जो अधिक धन प्राप्त होता है वह लाभ कहलाता है। लाभ प्राप्त करने के लिए व्यापारी या तो माल को रोके रखता है और बाजार का भाव चढ़ने की प्रतीक्षा करता रहता है ताकि उसको अधिक मूल्य पर बेचकर खूब लाभ कमाये अथवा माल को अपने नगर से क्रय करके दूसरे किसी नगर में ले जाता है जहाँ उसे अधिक मूल्य मिलता है। इस प्रकार व्यापारी को अधिक लाभ होता है। कुछ लोगों ने व्यापार की व्याख्या दो ही वाक्यों मे भली-भाँति की है और इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि "व्यापार सस्ता खरीदने और महँगा बेचने का नाम है।" यह कथन भी हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

(१०) किस प्रकार के लोगों को व्यापार करना चाहिए और किन लोगों को नहीं

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि व्यापार माल के क्रय-विक्रय द्वारा धन बढाने का नाम है। इस प्रकार सस्ते मूल्य पर एक वस्तु क्रय करके अपने ही नगर के बाजार मे भाव चढ़ने पर बेच दी जाती है अथवा दूसरे नगर मे ले जाकर अधिक मूल्य पर बेची जाती है और लाभ कमाया जाता है। इसको व्यापार कहते हैं। इसका दूसरा रूप एक चीज को उधार लेकर अधिक मूल्य पर बेचना है। अब इन साधनों से जो

लाभ प्राप्त होता है वह बहुत थोड़ा होता है, किन्तु यदि पूँजी अधिक हो तो यह लाभ भी बहुत अधिक होगा, कारण कि बहुत-सी वस्तुओ मे से यदि थोड़ी-थोडी चीज भी मिले तो वह बहुत होती है। फिर व्यापार मे माल के उलट-फेर एव क्रय-विक्रय से खरीदने तथा बेचनेवाले दोनो ही का सम्बन्ध रहता है। आजकल ससार मे सदाचारियो का बड़ा अभाव है, अत. हर प्रकार का धोखा खा जाने का भय रहता है। यदि बेचनेवाला धूर्तता कर जाता है तो पूँजी घट जाती है और व्यापारी माल के क्रय मे ठग लिया जाता है। यदि खरीदार मूल्य के भुगतान मे धूर्तता करता है तो लाभ से हाथ धो बैठना पड़ता है। क्रय करनेवाले ने यदि मूल्य के भुगतान मे टाल-मटोल की और उसमे समय लगा दिया तो माल की वृद्धि रुक जाती है। माल केवल उलट-फेर से ही बढ़ता है। जब मूल्य ही प्राप्त न होगा या देर से प्राप्त होगा तो नये माल का क्रय न हो सकेगा। जब नये माल का क्रय रुक जायेगा तो लाभ समाप्त हो जायेगा। यदि खरीदार मूल्य अदा करने से इनकार कर दे तो असल पूँजी भी चली जाती है। यह उसी दशा मे सम्भव है जब कि ऋण की लिखा-पढ़ी न हो और उसका कोई साक्षी न हो। रहा सल्तनत का हाकिम तो वह इन झगड़ों मे अधिक लाभदायक नही होता। क्योंकि वह तो जो बात प्रत्यक्ष होती है उसके अनुसार निर्णय कर देता है। उसे वास्तविक बात की कोई सूचना नही होती। इस उलझन में बेचारे व्यापारी को बडी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। या तो वह बड़ी कठिनाई से लाभ प्राप्त करता है या कष्ट सहन करने पर भी लाभ हासिल नही कर पाता, अपितु जितना लगाता है, उसे उतना ही मिल पाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लाभ तो दूर रहा, मूलधन से भी उसको हाथ धोना पडता है। अब यदि संयोग से व्यापारी, लड़ाका, गणितवेत्ता एव हाकिमो तक पहुँचवाला हुआ तो वह अपने इन गुणों के कारण हानि से बच जाता है और व्यापार मे सिर पकडकर कभी नही रोता। यदि कोई स्वय सम्मानित व्यक्ति है तो उसके भय से क्रय-विक्रय करनेवाले धूर्तता नही कर सकते और यदि मामला हाकिमो तक पहुँच भी जाता है तो वे भी उसके प्रभाव से उसीके पक्ष मे निर्णय करते है। ऐसे व्यक्ति के प्रति लोग कभी धूर्तता नही कर पाते। ऐसी दशा मे उसका व्यापार उन्नति करता रहता है और उसे लाभ होता रहता है। जो व्यक्ति न साहसी हो और न उसे कोई सम्मान ही प्राप्त हो तो उसे चाहिए कि वह कभी भूलकर भी व्यापार मे हाथ न डाले अन्यथा वह अपनी धन-सम्पत्ति खो देगा और लोग उसे हड़प कर लेगे तथा फिर उसके विषय मे कोई भी कुछ न सुनेगा। क्योंकि निम्न वर्ग के लोगों को माल के अपहरण का लोभ होता है और यदि शासन

का हाथ उनके सिर पर न हो तो लोगों की धन-सम्पत्ति क्षण भर में नष्ट हो जायेगी और किसीको कोई लाभ न होगा।

(११) व्यापारियों के चरित्र सम्मानित व्यक्तियों एव उच्च पदाधिकारियों के चरित्र की अपेक्षा गिरे हुए होते हैं

व्यापारी क्रय-विक्रय के बखेडों में फॅसकर बडा कष्ट भोगते रहते हैं, अतः उनमे कृपणता उत्पन्न हो जाती है जो मर्यादा के विपरीत समझी जाती है और उच्च पदाधिकारी एवं सम्मानित लोग उसे बुरा समझते है। निम्न वर्ग के लोगो के समुख उनका चरित्र और भी पतित हो जाता है तथा बात-बात पर झगडा करना, धोखा देना, झूठ बोलना, चीजों के मूल्य के लेन-देन मे झूठी शपथ लेना आदि आदते उनमे पैदा हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में उनकी गणना भी वास्तव मे निम्न वर्ग मे होने लगती है। यही कारण है कि सम्मानित व्यक्ति व्यापार की ओर से उपेक्षा करते हैं ताकि उनका चरित्र न बिगडने पाये। हमारा यह अभिप्राय नही कि सभी व्यापारी चरित्रहीन होते हैं, अपितु कुछ ऐसे व्यापारी भी होते है जो चारित्र्यहीनता से मुक्त होते है, किन्तु उनकी सख्या बड़ी ही कम होती है।

(१२) व्यापारियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाना

कुशल एवं अनुभवी व्यापारी वही माल बाहर ले जाते है जिनकी अमीरों, गरीबों, बादशाह और सर्व साधारण को भी आवश्यकता होती है, कारण कि ऐसे माल की निकासी बहुत होती है। जिस माल की आवश्यकता कुछ ही लोगों को हो और अन्यो को न हो उसके बिकने में कभी-कभी बाधा पड जाती है। यदि किसी विशेष वर्ग ने किसी कारण वश क्रय न किया तो लाभ तो अलग रहा, मूल पूँजी का सँभालना मुश्किल हो जाता है। इसी प्रकार कुशल व्यापारी बाहर मध्यम वर्ग की चीजें ले जाते हैं। यदि केवल उत्तम वस्तुएँ ले जायँ तो उनके क्रय करनेवाले केवल थोड़े लोग ही निकलेगे, कारण कि उनकी सख्या कम होती है, अतः यह भय होता है कि वे क्रय करे अथवा न करें। सर्वसाधारण तो औसत दर्जे के माल पर गिरते है। अतएव उसका बाजार बड़ी मुश्किल से मंदा पड़ता है, अपितु उसका संपूर्ण क्रय-विक्रय प्राय. हो जाता है। बुद्धिमान् व्यापारी भी व्यापारिक माल ऐसे नगरों मे ले जाते हैं जिनके मार्गो मे खतरे होते हैं अथवा जो दूरस्थ स्थानों पर स्थित होते हैं। इन परिस्थितियो के कारण नगरों में माल कम पहुँचने की वजह से एवं लोगो के अधिक आवश्यकताग्रस्त होने के कारण वहाँ

माल का आयात आवश्यक होता है और बहुत ऊँचे दामों मे निकलता है तथा व्यापारी को खूब लाभ होता है। यह माना हुआ सिद्धान्त है कि जब कम वस्तुएँ प्राप्य होती हैं और उनकी आवश्यकता लोगों को अधिक होती है तो दाम बढ़ जाता है और वह बहुत अधिक मूल्य पर मिला करती है। इसके विपरीत यदि व्यापारी नगर के निकट कही अपना माल ले जाय तो अधिकांश व्यापारियो के वहाँ माल लेकर पहुँचते रहने के कारण माल का भाव गिरा रहता है। इस प्रकार हमारे यहाँ जो व्यापारी सूडान से माल लाते हैं वे बड़े धनी होते हैं। इसका कारण यह है कि सूडान यहाँ से बहुत दूर है, मार्ग में निर्जन जगल पड़ते हैं जिनमें लुट जाने का भी भय होता है और प्यासे मर जाने का भी। पानी दूर-दूर तक नही मिलता, यदि मिलता है तो विशेष स्थानो पर जिनका पता केवल विशिष्ट व्यापारियों को ही होता है। ऐसे व्यापारी कम ही होते हैं जो इन सब खतरो का सामना करके वहाँ से माल लायें। जो इन खतरों का सामना कर लेते हैं वे धन-धान्य सम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ सूडान का माल बहुत अधिक मूल्य पर बिकता है और इसका भाव सर्वदा चढा रहता है। यही दशा हमारे माल की है जो हमारे यहाँ से सूडान भेजा जाता है, वह अधिक मूल्य पर बिकता है। इस प्रकार माल के इधर-उधर ले जाने मे व्यापारियों की पूँजी बढ़ जाती है और वे शीघ्र ही धन-धान्य सम्पन्न हो जाते हैं। यही हाल उन यात्रियों का है जो हमारे नगरो से निकलकर दूरस्थ स्थानों की यात्रा करके पूर्व में पहुँचते हैं। वे भी खूब कमाते हैं। जो भय के कारण एक ही देश में घूमते-फिरते रहते हैं और दूर जाने का साहस नही करते उनको सर्वदा कम लाभ प्राप्त होता है।

(१३) माल को महँगाई के लोभ में भरे रखना

बुद्धिमान् एवं अनुभवी लोगो मे यह बात प्रसिद्ध है कि अनाज को इस लोभ मे रोक रखना कि मँहगाई ही में निकाला जाय, बड़ा ही अशुभ कार्य है और बाद में लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है। इसका कारण यह है कि लोग अपना भोजन प्राप्त करने के लिए विवश होते हैं, इसके कारण वे अधिक से अधिक मूल्य अदा करने की भी परवाह नही करते, किन्तु आवश्यकता से अधिक मूल्य का भुगतान करने पर उन्हे अत्यधिक क्षोभ होता है और वे यह अनुभव करते हैं मानो उनसे रक़म व्यर्थ में ले ली गयी। इस क्षोभ का पाप अधिक मूल्य पर बेचनेवाले उस व्यक्ति पर पड़ता है जो उनकी आवश्यकता से अनुचित लाभ उठाता है और उनको व्यर्थ में लूट लेता है। सम्भवतः यही कारण है कि इस्लामी शरीअत में व्यापार के इस नियम को अनुचित

रूप से लोगो का माल खाना बताया गया है, कारण कि विवशता की दशा में लोगो के हाथ दुगुने-चौगुने मूल्य पर माल बेचना और लोगो का विवश होकर उसे क्रय करना ऐसा ही है कि मानो अधिक मूल्य पर बेचनेवाले व्यापारी ने लोगों की सम्पत्ति बिना किसी बदले के ऐंठ ली हो। खाद्य-सामग्री के अतिरिक्त अन्य चीजो के क्रय करने पर लोग विवश नही होते, अपितु वे उसे स्वेच्छा से क्रय करते है, किसी विवशता के कारण नही, अतः इन चीजों के क्रय के बाद उनके हृदय मे कोई दु ख नही पैदा होता और उसका पाप व्यापारी पर नही होता। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि महँगाई के समय अनाज को सोने के भाव बेचना लोगों के दुःखों को बढ़ाना और लोगों की हाय लेना है। इस प्रकार अधिक मूल्य पर बेचने से व्यापारी को जो लाभ होता है वह उसके विनाश का कारण बन जाता है।

इसी समय मुझे एक हास्यप्रद कहानी का स्मरण हो आया जो हमारे शेख अबू अब्दुल्लाह अल-अबीली ने सुनायी थी। उन्होने बताया कि "सुल्तान अबू सईद के राज्यकाल मे फ़कीह अबुल हसन अल-मलीली फ़ास के काजिउल-क़ुज्जात के पास पहुँचे। उनसे पूछा गया कि आप अपनी वृत्ति के लिए किस वस्तु के कर को अधिक पसन्द करते है।" उन्होंने सोचकर कहा कि "मदिरा के कर को।" समस्त उपस्थितगण हँस पड़े और पूछने लगे कि इसमे क्या रहस्य है ? उन्होने कहा कि "जब सल्तनत के समस्त राजस्व एवं कर हराम हो गये तो मैने वृत्ति के लिए वह वस्तु पसन्द की जिसमे धन व्यय करने से हृदय को कष्ट नही पहुँचता। मदिरा क्रय करनेवाले मदिरा की खरीद मे अपना धन खुशी-खुशी फेंका करते है और व्यय के उपरान्त न पश्चात्ताप करते है और न दु.ख।" वास्तव मे यह एक बड़ा विचित्र रहस्य है जिस पर ग़ौर करना चाहिए।

(१४) चीज़ों का मूल्य सस्ता होना व्यापारियों के लिए हानिकारक है

यह बात स्पष्ट हो चुकी कि कला-कौशल एवं व्यापार जीविकोपार्जन के ऐसे साधन है जिनसे मनुष्य अपना पेट पालता है और जीवन-निर्वाह करता है। माल व असबाब को क्रय करके बाजार मे ले जाना और अधिक मूल्य पर बेचकर लाभ प्राप्त करना और उसीको अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाना ही असली व्यापार कहलाता है। व्यापारी लोग इसी प्रकार अपनी रोजी कमाते है। जब भोजन एवं वस्त्र से सम्बन्धित सामग्री बाजार मे सस्ती हो जाती है तो व्यापारियों को व्यापारिक माल में लाभ मिलना बन्द हो जाता है। बाजार ठडा पड जाता है। वे अपना धंधा छोड़कर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है, अपितु उनकी मूल पूँजी भी समाप्त होने लगती है। इस प्रकार केवल व्यापार की ही हानि नही होती, अपितु कला-कौशल से जीविको-

पार्जन करनेवाले के कार्यों मे भी विघ्न पड़ जाता है। उदाहरणस्वरूप, अनाज को ले लिया जाय। जब अनाज का भाव अधिक समय तक गिरा रहता है तो अनाज की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जितने कला-कौशल मे भाग लेनेवाले होते है उन सबका कार्य फीका पड जाता है। लाभ न मिलने के कारण सब अपने कार्य से हाथ खीचने लगते है। व्यापारी माल बढाना बन्द कर देते है अथवा वह बहुत कम बढ़ता है, जिसमे उनका जीवन-निर्वाह नही हो पाता। विवश होकर वे अपनी मूल पूँजी खाने लगते है। उनकी दशा शोचनीय हो जाती है। उन्हे रोजी तक नही प्राप्त होती। वे दरिद्रता मे जीवन व्यतीत करने लगते है। उनके साथ-साथ अन्य व्यवसायवाले भी प्रभावित होते है। उनके काम भी ठडे पड़ जाते है। उदाहरणार्थ, आटा पीसनेवाले अथवा बावरची इत्यादि। उनके धधे भी रुकने लगते है। सेना की दशा भी गिरने लगती है। सेना के वेतन का गाँव की आय से भुगतान होता है। अतः आय कम हो जाने के कारण सिपाहियों का जीवन-निर्वाह नही हो पाता और उनकी दशा शोचनीय हो जाती है।

इस प्रकार यदि शक्कर एवं मधु का भाव बहुत समय तक गिरा रहेगा तो जो लोग इन चीजों का व्यवसाय करते है वे सब नष्ट हो जायँगे। संक्षेप में जो वस्तु अधिक समय तक सस्ती रहती है उससे सम्बन्धित जितने पेशेवाले होते है वे सबके सब हानि उठाते है और सबकी दुर्दशा हो जाती है। यह दशा केवल अल्प-मूल्यता तक ही सीमित नही रहती। महँगाई में भी विभिन्न व्यवसाय करनेवालों की ऐसी ही दुर्दशा हो जाती है। लोगो को सुख, शान्ति तो उस समय प्राप्त होती है जब कि चीजों का भाव न तो बहुत अधिक हो और न बहुत सस्ता तथा चीजे सुगमतापूर्वक प्राप्त होती रहें। बिकनेवाली वस्तुओ में अनाज की अल्पमूल्यता अच्छी समझी जाती है, कारण कि धनी तथा दरिद्र सभी को इसकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। साधारण लोग इसीसे जीवित रहते है। अनाज ही एक ऐसी वस्तु है जिसका सस्ता होना व्यापार के नष्ट होने पर भी अच्छा माना गया है।

(१५) व्यापारियों के चरित्र सामान्यतः अन्य लोगों से घटिया होते हैं और वे मुरव्वत नही करते[१]

१. इस खंड में उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति की गयी है जिनका उल्लेख खंड ११ में हो चुका है। अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

(१६) कला के लिए शिक्षा परमावश्यक है

कला किसी विषय से सम्बद्ध कर्म मे चिन्तन-शक्ति के विनियोग का नाम है। उसका कर्म से सम्बन्ध भौतिक होता है और ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसका निरीक्षण हो सकता है। जो विषय वस्तुएँ भौतिक रूप मे ज्ञानेन्द्रियो द्वारा देखी जा सकती है उनका उचित ढंग से और कुशलतापूर्वक अभ्यास किया जा सकता है। उपयुक्त उत्साह होने पर उन्हे सीखा जा सकता है। अभ्यास इसके लिए बड़ा आवश्यक होता है।

आदत एक प्रकार का स्थायी गुण है जो कि किसी कार्य को बार-बार करने से प्राप्त होती है। यहाँ तक कि कार्य का वह रूप भी स्थायी बन जाता है। आदत उस मौलिक कार्य का रूप है जिससे वह बनती है। ऐसी बातों का सिखाना जिन्हे मनुष्य ने स्वयं अपनी आँखों से देखा हो उन बातों के सिखाने से जिन्हे किसीने सीखा है, अधिक सरल होता है। वह आदत जो कि व्यक्तिगत निरीक्षण के ऊपर आधारित है उस आदत से जो किसीकी शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है, अधिक पूर्ण एव दृढ होती है। जो विद्यार्थी किसी कला मे कुशलता प्राप्त करता है और जो आदत वह सीखता है वह गुरु की आदत एवं उसकी शिक्षा के अनुसार होती है।

इसके अतिरिक्त कुछ कलाएँ साधारण है और कुछ जटिल। साधारण कलाएँ जीवन की आवश्यकताओ से सम्बन्धित होती है तथा जटिल कलाएँ आनन्दमय जीवन की आवश्यकताओं से। साधारण कलाएँ सर्वप्रथम इसलिए सिखायी जाती है कि वे साधारण होती है और जीवन की आवश्यकताओं से उनका सम्बन्ध होता है। उनके सीखने की बड़ी माँग होती है, अतः उनकी शिक्षा को प्राथमिकता प्राप्त होती है, किन्तु यह शिक्षा निम्न श्रेणी की होती है।

बुद्धि हर प्रकार की कलाओं को जिनमे जटिल कलाएँ भी सम्मिलित है, सीखने से बाज नही आती, कारण कि एक के बाद दूसरी वस्तु का पता चलता रहता है, यहाँ तक कि मनुष्य को पूर्ण कुशलता प्राप्त हो जाती है। यह सफलता एक ही बार में नही प्राप्त होती। इसकी प्राप्ति मे समय लगता है, यहाँ तक कि पीढ़ियाँ बीत जाती है। किसी ऐसी वस्तु की जिसकी कल्पना की जा सकती है, अनायास अस्तित्व मे आना सम्भव नही, विशेष रूप से कला-सम्बन्धी बातो का, अत. इसमें समय लगना अनुपेक्ष्य है। इस कारण छोटे-छोटे नगरों मे कलाएँ उच्च श्रेणी नही प्राप्त कर पाती और केवल साधारण कलाओं का ही प्रयोग होता है। जब इन नगरों में नगर सम्बन्धी सस्कृति की उन्नति होती है तथा सुख-सम्पन्नता के साधनों की आवश्यकता

होती है तो कलाओं तथा कारीगरी की भी उन्नति होती है और वे सम्भावित स्थिति से वास्तविक स्थिति में आती है।

कलाओं का विभाजन अन्य प्रकार से भी होता है। उदाहरणार्थ, एक वह कला जो मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित हो चाहे वह आवश्यक हो अथवा अनावश्यक। उदाहरणार्थ, जुलाहे का काम, बढ़ई का काम, लुहार तथा कसाई का काम। इसके अतिरिक्त वे कलाएँ है जो मनुष्य की चिन्तनशक्ति से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, किताबत, जिल्दसाजी, सगीत, कविता, शिक्षा। दूसरी वह कला है जिसका सम्बन्ध राजनीति से है। उदाहरणार्थ, सेना का कार्य।

(१७) नगर के जीवन एवं संस्कृति के बढ़ने पर ही कला-कौशल की उन्नति होती है

इसका कारण यह है कि जब तक नगर की सभ्यता पूर्ण रूप से उन्नत न हो जाय तथा नागर जीवन एवं सस्कृति का पूर्ण रूप से विकास न हो जाय तब तक लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं ही में उलझे रहते है अर्थात् उनको केवल भोजन प्राप्त करने की चिन्ता होती है, उदाहरणार्थ अनाज की पैदावार की ओर उनका पूरा ध्यान लगा रहता है। फिर जब नगर में सस्कृति की उन्नति होती है तो हर प्रकार के कार्य की भी उन्नति होने लगती है। लोगों को अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की चिन्ता नही रहती। ऐसी अवस्था में उनका ध्यान अनावश्यक एवं ऐसी वस्तुओं की ओर आकृष्ट होता है जो भोग-विलास से सम्बद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त कला एवं ज्ञान मनुष्य की उस चिन्तनशक्ति द्वारा जन्म पाते है जिनके कारण वह पशुओं से पृथक् किया जाता है। क्योकि भोजन की प्राप्ति मनुष्य की वह पाशविक आवश्यकता है जिसे मानवता पर प्राथमिकता प्राप्त है, अतः मनुष्य की चिन्तनशक्ति सम्बन्धी कलाओं एवं ज्ञानों पर भी उसका प्रभुत्व होता है। सभ्यता के क्षेत्र मे नगर जितनी ही उन्नति करता है, कलाओं मे उतनी ही बारीकियाँ निकलती आती है। उनकी विभिन्न शाखाएँ बन जाती है, कारण कि लोग सस्कृति की वजह से आडम्बर एवं दिखावा पसन्द करने लगते है। इस कारण कलाओं की उन्नति अनिवार्य होती है। जिस नगर की सभ्यता निम्नस्तरीय हो और वह केवल बदवी वर्ग की ही हो तो उसमे उन्ही आवश्यक कलाओ की जरूरत होगी जिनका सम्बन्ध जीविका-निर्वाह मात्र से है, यानी दर्जी, जुलाहे, कसाई इत्यादि के कला-कौशल की। किन्तु इन लोगों की कलाएँ साधारण श्रेणी की ही होती है जिनसे केवल जीवन की आवश्यकताएँ ही पूरी

होती है। उन पर किसी प्रकार के नवाविष्कार का आवरण नही चढा होता। जब नगर की सभ्यता उन्नति करती है और लोगों को प्रत्येक वस्तु मे कुशलता प्राप्त करने की इच्छा होती है तो कलाएँ भी विभिन्न नमूने की ईजाद होती है। जो कलाएँ पहले से प्रचलित होती है वे उन्नति के शिखर तक पहुँच जाती है, कारण कि सुख-सम्पन्नता एवं विलास-प्रियता लोगों पर गहरा प्रभाव डालती है। पुरानी कलाओ के उन्नति के शिखर पर पहुँचने के साथ ही नित्य नये आविष्कार होते हैं। उदाहरणार्थ, कसाई, चमड़े एवं कपड़े के रँगनेवाले भी मिलने लगते हैं। सभ्यता जब और भी अधिक बढ़ती है तो कलाओं एव कारीगरियो मे नये-नये आविष्कार होने लगते है। नगर-निवासी इन नयी-नयी कलाओं से भली-भाँति खाते-कमाते है और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते है, उदाहरणार्थ कोई अत्तार होता है तो कोई ठठेरा, कोई स्नान कराता है तो कोई बावरची बनता है, कोई मोमबत्ती बेचता है तो कोई हरीसा।[१] कोई संगीत नृत्य सिखाने लगता है और कोई तबला बजाना। कुछ लोग किताबत को अपना व्यवसाय बनाते ह और कुछ जिल्दसाजी को। सक्षेप में यह बातें समृद्धि एवं सुख-सम्पन्नता के साथ-साथ है। इनमे मानव-चिन्तन की अधिक आवश्यकता होती है।

इस प्रकार जब मिस्र में नगरों का जीवन उन्नति के शिखर पर पहुँचा तो वहाँ ऐसे लोग भी निकल आये जो पक्षियों को बोलियाँ बोलना सिखाते, और पशुओ को ऐसा वश में कर लेते है कि देखनेवाले चकित रह जाते है। वे शिकारी पक्षियों को शिक्षा देकर हवा में नचाते है और हवा में ही डोरों पर चलाते है। पशुओ और पत्थरों को उठवाते है। संक्षेप मे उनके ऐसे-ऐसे करतब देखने मे आते है जिनकी मगरिब-वाले कल्पना भी नहीं कर सकते। इसका कारण केवल यह है कि मगरिब अभी सभ्यता एव संस्कृति में मिस्र और काहेरा की बराबरी नही कर सकता।

(१८) नगरों में संस्कृति जितनी दृढ़, स्थायी एवं पुरानी होती है उतनी ही वहाँ कलाएँ भी दृढ़ एवं स्थायी होती हैं

इसका कारण यही है कि कलाओ का जन्म सभ्यता की उन्नति से होता है। जब वे दीर्घकाल तक किसी सभ्य नगर मे प्रचलित रहती है और अधिक समय तक लोगों मे उनका चलन रहता है तो वे दृढ एव स्थायी रीतियो का रूप धारण कर लेती है

१. एक प्रकार की लप्सी।

और फिर बड़ी कठिनाई से ही मिटती है। इतिहासों से पता चलता है कि जब सभ्य नगरों का पतन हुआ और वे उजड़ने लगे तो उनमे सस्कृति सम्बन्धी कलाएँ मिटते-मिटते भी इतनी बच गयी है कि नये सभ्य नगर उनकी बराबरी नही कर सकते। इसका कारण यही है कि उजड़नेवाले नगरो में कलाएँ हाल में ही प्रचलित नही होती कि शीघ्र मिट जायँ, अपितु शताब्दियों से प्रचलित रहती है और दृढ़ हो चुकती है। इसके विपरीत नये सभ्य नगरो मे हाल मे ही कलाएँ प्रचलित होती है तो उनका प्राचीन नगरों से मुकाबिला हो ही नही सकता।

समकालीन उन्दुलुस मे ही देख लिया जाय कि यद्यपि उसकी सभ्यता पूर्व की अपेक्षा बहुत घट चुकी है, किन्तु सभ्य नगरो के समान सभी कलाएँ पायी जाती है और वे मिटाने से भी नही मिटी है। वहाँ अब भी अत्यन्त कुशल अभियन्ता, बावरची, संगीतज्ञ एवं नृत्य करनेवाले मिल जायेंगे। वहाँ के महल सर्वोत्तम फर्शो से सुसज्जित होते है। भवन बड़े ही सुव्यवस्थित रूप से एव योजनानुसार बनाये जाते है। खाने-पीने एवं अन्य प्रयोग के बर्तन एक से एक उत्तम तथा उत्कृष्ट धातुओं के होते है। विवाह एवं अन्य समारोहों के अवसर पर दर्शनीय प्रबन्ध होते है। सक्षेप मे इस प्रकार की समस्त प्रथाएँ एव प्रभुत्व तथा ऐश्वर्य एव गौरव की वस्तुएँ इतनी उत्तम दशा मे अब भी वर्त्तमान है कि हाल का कोई सभ्य नगर मुश्किल से ही उसका मुकाबिला कर सकता है। इसका कारण वही है जिसका हम उल्लेख कर चुके है कि यहाँ बनी उमय्या तथा कूत[1] के राज्यकाल मे यहाँ तक कि मुलूकुत्तवाएफ के समय के शासको के राज्यकाल मे भी सस्कृति इतनी उन्नति पर रही जितनी आज भी किसी देश मे नहीं है। इराक, शाम तथा मिस्र मे भी कलाओ की ऐसी ही उन्नति रही और दीर्घकाल तक यह कला-कौशल का केन्द्र बने रहे और अब भी यही समझा जाता है कि जब तक उनकी सभ्यता पूर्णतः नष्ट न हो जायगी वहाँ की कलाएँ नही समाप्त हो सकती। तूनुस (ट्युनिस) का उदाहरण भी आपके समक्ष है। इसमे भी सिनहाजा एव मुवह्हेदीन की सल्तनत के समय मे नगर का जीवन एव सस्कृति के साथ-साथ कलाओ को भी बडी उन्नति प्राप्त हुई थी। यद्यपि उन्दुलुस की अपेक्षा तूनुस (ट्युनिस) कला-कौशल मे पीछे रहा, किन्तु फिर भी वहाँ कला-कौशल की बड़ी चर्चा थी। कुछ इस कारण कि मिस्र वहाँ से निकट था और वही के निवासी प्रतिवर्ष मिस्र जाया करते थे जहाँ रहकर वे वहाँ की आदते स्वभाव तथा कला को जो-जो उन्हे रुचिकर होती, सीख लेते थे और फिर

१. गोथिक वंश।

अपने देश मे आकर उनको प्रचलित करते थे। इस प्रकार मिस्र तथा तूनुस (टयुनिस) कला-कौशल एवं संस्कृति मे अद्वितीय हो गये। कुछ इस कारण कि ७वी शती (१३वी शती ई०) में जब मुसलमान उन्दुलुस से निर्वासित हुए तो वे तूनुस (टयुनिस) मे ही जाकर बसे। यद्यपि अब तूनुस (टयुनिस) की सभ्यता पतनशील है, किन्तु वहाँ की संस्कृति ने अभी तक अपना रंग नही बदला। कैरावान, मराकश, क़लात इब्ने हम्माद की भी यही दशा है। यद्यपि वे विनाश को पहुँच चुके है, किन्तु प्राचीन कला-कौशल तथा सस्कृति एव सभ्यता के अवशेष वहाँ अब भी उसी प्रकार वर्तमान है जो भूतकाल के इतिहास का स्मरण दिलाते रहते है।

(१९) कला-कौशल की जब देश में माँग होती है तो उनकी उन्नति भी होती है और नये-नये आविष्कार भी होते रहते हैं

यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य कोई कार्य बिना किसी मूल्य अथवा पारिश्रमिक के नही करता। कार्य ही उसके लिए लाभ एव जीविकोपार्जन का साधन है। यदि वह बिना मूल्य के कार्य करने लगे तो उसका जीवन-निर्वाह कैसे हो सकता है।[1] इसी तथ्य के आधार पर जब किसी कला की नगर अथवा देश मे माँग होती है और वह सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है तो वह एक व्यापारिक सामग्री के समान होती है जिसको प्रसिद्धि प्राप्त होती है और वह बिकने के लिए हर समय प्रस्तुत की जा सकती है। लोग ऐसी कलाओं को सीखने के लिए बड़ी रुचि दिखाते है, ताकि उसको जीवन-निर्वाह का साधन बना सके। जब किसी कला की देश अथवा नगर मे माँग ही न हो, बाजार मे उसका कोई मूल्य ही न हो तो कोई भी उसके सीखने के लिए तैयार नहीं होता और उसकी ओर दृष्टिपात नही करता। इसी आधार पर हजरत अली का यह कथन प्रसिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य उसका वह कार्य है जिसको वह भली-भाँति सम्पन्न कर सकता है[1]। अन्य शब्दो मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि कला ही मनुष्य का अथवा उसके कार्य का मूल्य है जो उसके जीविकोपार्जन का साधन है।

इस सम्बन्ध मे एक अन्य तथ्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि "सल्तनत की दृष्टि से कला-कौशल का मूल्य घटता-बढता रहता है। जिस कला की सल्तनत

१. इस कथन के हवाले बहुत-से स्थानों पर मिलते है, देखिए इब्नेक़ुतैबह, "उयूनुल अख़बार", सालेबी, "एजाज" तथा इब्ने बस्साम, "जख़ीरह"।

में माँग होती है, उसके गुणों की बेहद प्रशसा होती रहती है। बाजारों में भी उसी-से रौनक़ होती है और प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में वही उत्तम दीखती है। सल्तनत जिस कला की प्रशसा न करे और नगरवाले उसे पसन्द न करें तो उसका मूल्य शेप नही रहता, कारण कि सल्तनत एक बडे बाजार के समान है जिसमें प्रत्येक वस्तु चाहे थोड़ी हो अथवा बहुत, खप जाती है। जिस चीज का चलन सल्तनत के बाजार मे हो उसीका सर्वसाधारण मे भी ज्यादा चलन होता है। सर्वसाधारण यदि किसी कला को पसन्द नही करते तो सामान्य रूप से उसकी माँग कम होती और बाजार भी उसको अधिक स्वीकार नही करता।

(२०) नगर जब उजड़ने लगते हैं तो वहाँ की कलाएँ भी कम होने लगती हैं

इसका कारण यह है कि कला को उस समय तक उन्नति प्राप्त होती है जब तक उसकी माँग अथवा आवश्यकता होती है। जब नगर की दशा शोचनीय हो जाती है और उसका जीवनकाल युवावस्था को समाप्त करके वृद्धावस्था मे प्रविष्ट होता है तो उसकी सभ्यता का भी पतन हो जाता है। वहाँ का भोग-विलास भी समाप्त हो जाता है और लोग केवल अपनी मूल आवश्यकताओ की प्राप्ति मात्र का प्रयत्न करते रहते हैं। जब यह स्थिति हो तो कलाओ का पतन हो जाता है। इसका कारण यह है कि कलाओं का देश के भोग-विलास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे एक दूसरे से पृथक् नही हो सकती। यह बात स्पष्ट है कि जब कलाकार का पेट अपनी कला से नही भरेगा तो वह उसे छोड़ भागेगा और किसी अन्य कला को स्वीकार कर लेगा। यदि वह ऐसा न करे तो उसे अपना विनाश दृष्टिगत होने लगेगा। इस प्रकार से कलाएँ एक-एक करके कम होती चली जायेंगी और धीरे-धीरे सब नष्ट हो जायेगी। अतः बड़े-बडे नगर जब नष्ट होने लगते है तो वहाँ न कोई शिल्पकार मिलता है न नक्काश, न सुनार न कातिब, न सुलेख लिखनेवाले। सक्षेप में संस्कृति संबधी समस्त कलाओं का समूलोच्छेदन हो जाता है।

(२१) अरब लोग कलाओं से सब क़ौमों की अपेक्षा अधिक दूर रहते हैं

इसका कारण यह है कि अरब बदवी जीवन व्यतीत करते है। वे नागर जीवन, नगर की संस्कृति तथा कला-कौशल से अपरिचित होते है। इनकी तुलना में अजम उदाहरणार्थ, पूर्ववाले एव वे ईसाई क़ौमें जो भूमध्य-सागर के तट पर आबाद है, सस्कृति

एवं सभ्यता में बड़ी उन्नति कर गयी है। वे बदवियत से अनिभिज्ञ है। यहाँ तक कि उनके यहाँ ऊँट तक जो अरबों को रेगिस्तान मे खीच ले गया और जिसने उनको बदवी बना दिया, वहाँ नही होता। न अजम के यहाँ चरागाहे होती है और न ऊँटों के पलने एवं बढ़ने के लिए रेगिस्तान। इस प्रकार बदवियत की अन्य विशेषताओं एव आवश्यकताओ को सभ्यता एव सस्कृति मे पलनेवाले लोग नही जानते।

इसी कारण अरब की बस्तियो मे तथा उन स्थानो मे जिन्हें इन लोगों ने विजय किया, कला-कौशल की चर्चा बहुत ही कम रही। उधर अजम के प्रदेश चीन, हिन्द, तुर्किस्तान, एवं फ़िरगिस्तान[1] कला-कौशल मे बडी उन्नति कर गये यहाँ तक कि अन्य क़ौमें वहाँ से कला-कौशल सीख-सीख कर जाती है और अपने देशों में उन्हे प्रचलित करती है।

मगरिब की बरबर कौम की दशा भी अरब-जैसी है। शताब्दियो से बदवी एव सरल स्वभाव के होने के कारण उनमे कला-कौशल का कोई नाम नही जानता। उनके देश में नगरों की संख्या बहुत कम है। वहाँ यदि कोई कला है भी तो वह ऊन और खाल की। वहाँ ऊन की बुनाई और चमडे की रँगाई अच्छी होती है। उनके देश की कुल सम्पत्ति यही दोनों वस्तुएँ है जिनकी सबको आवश्यकता होती है और देश में इनकी अत्यधिक माँग भी है। पूर्व मे फ़ारसवालों नब्त, किब्त, बनी इस्राईल, यूनान तथा रूम मे प्राचीन कौमो के युग से लेकर आज तक नागर जीवन एव सस्कृति की चर्चा है। इसी के साथ-साथ हर प्रकार की कला देश मे प्रचलित है। स्थायी रूप से एक स्थान पर रहने के कारण उनके यहाँ कलाएँ इतनी पुष्ट हो गयी है कि देश नष्ट हो गया, किन्तु कलाएँ अब तक पूरी तरह नही मिट सकी।

अब रहे यमन, बहरैन, उमान तथा जजीरा तो वे यद्यपि अरबो के ही अधीन है, किन्तु वहाँ आद, समूद, अमालका, हमीरी, तबाबेआ तथा अजवा[2] सरीखी सभ्य कौमे सहस्रों वर्ष रही। देश उनके कारण सभ्यता एव सस्कृति का केन्द्र बन गया और कला-कौशल को दृढ़ता प्राप्त हो गयी। इस कारण यद्यपि उनकी सल्तनें मिट गयीं, किन्तु कलाएँ वहाँ से नहीं मिटने पायी और अब तक उनमे आविष्कार होते रहते है। वहाँ की कढ़ाई एवं रेशम की बुनाई तो अब तक प्रसिद्ध चली आ रही है।

"ईश्वर ही पृथ्वी का स्वामी है और जो कुछ पृथ्वी पर है सब उसका है।"

१. फ़ैक्स के देश।
२. दक्षिणी अरब के शासक।

(२२) जिसको एक कला में कुशलता प्राप्त हो जाती है वह बड़ी कठिनाई से दूसरी कला में कुशलता प्राप्त कर पाता है

इसका यह कारण है कि यदि किसी दर्जी को अपने व्यवसाय में ही दक्षता प्राप्त हो जाय और हृदय से वह उसमे मग्न रहने लगे तो फिर वह कुशल बढ़ई अथवा भवन-निर्माण करनेवाला नही हो सकता। इसका कारण यह है कि कुशलता मनोवैज्ञानिक गुण है। उसका एक रंग है जो काम करते-करते कारीगर पर चढ जाता है। अब जिस प्रकार दो गुणों की ओर एक ही समय में किसी मनुष्य का झुकाव नही हो सकता, जिस तरह दो रग भी किसी वस्तु पर एक ही समय में नही चढ़ सकते, उसी प्रकार दो तरह के व्यवसायो मे कुशलता एक ही समय मे एक व्यक्ति को नही प्राप्त हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति पृथक् होती है। कोई किसी व्यवसाय मे कुशलता प्राप्त करता है और कोई किसी मे। जब किसी को एक व्यवसाय में कुशलता प्राप्त हो जाती है तो दूसरे व्यवसाय में उतनी कुशलता नही प्राप्त हो पाती। हमारा अनुभव कि यद्यपि एक कुशल कारीगर दूसरी कारीगरी की ओर आकृष्ट भी होगा तो वह बड़ी कठिनाई से उसमे कुशलता प्राप्त कर सकेगा इस बात का प्रमाण है। यदि उसने कुशलता प्राप्त कर भी ली तो वह उस श्रेणी की कुशलता कदापि न होगी जैसी कि पहली कला मे उसे प्राप्त थी। यही सिद्धान्त उन कार्यो का भी है जिनमे सोच-विचार से कार्य करना पडता है। यदि किसी विद्वान् ने एक विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली तो उसे उतनी सफलता दूसरे ज्ञान मे नही प्राप्त होगी। इसका यही कारण है कि जब मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के अनुसार एक कला की गहरी छाप पड जाती है तो दूसरी कला की छाप नही पड़ पाती और यदि पड़ती भी है तो उसका अधिक प्रभाव नही होता। इसी को हम कुशलता कहते है।

(२३) मुख्य कलाएँ

जिस प्रकार ससार में मनुष्यो के कार्य असख्य है उसी प्रकार कलाएँ भी अगणित है, किन्तु इनमे कुछ ऐसी आवश्यक है जिनके बिना मनुष्य का कार्य नही चल सकता और वे सम्मानित भी समझी जाती है, कुछ उनके विपरीत है। यहाँ हम केवल आवश्यक एव श्रेष्ठ कलाओ का ही उल्लेख करेगे, अन्यो का नही। कृषि, भवन-निर्माण कला, बढईगीरी इत्यादि आवश्यक कलाएँ है। दाई का कार्य, किताबत[1] का कार्य, संगीत,

१. लिखने की कला।

तबीबों के कार्य सम्मानित गिने जाते है। इनमें से सभ्यता के युग में दाई के कार्य की बहुत अधिक आवश्यकता पडती है, कारण कि इस पर बालकों का जीवन तथा उनका स्वास्थ्य निर्भर होता है। दाइयों को बालको तथा उनकी माताओं की शुश्रूषा करने की शिक्षा प्रदान की जाती है। चिकित्सको के व्यवसाय में मनुष्य के स्वास्थ्य तथा रोग के निराकरण के उपाय बताये जाते हैं। सक्षेप मे इस विषय का क्षेत्र मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित है। किताबत एव वर्राकी[१] की कलाएँ कई दृष्टि से बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य को भूल-चूक से बचाती है, उसके हार्दिक विचारों को अन्य मनुष्यों तक पहुँचाती है तथा मानवबुद्धि के बहुमूल्य आविष्कारो को विद्या के भडार ग्रन्थों के रूप मे सुरक्षित रखने का साधन बनती है। सगीत ध्वनि को कानो के लिए रोचक बनाता है, उससे ध्वनि-सौदर्य की वृद्धि होती है और उसमें चार चाँद लगते है। इनमें से अन्तिम तीन कलाएँ बादशाहो के दरबारो तथा एकान्त गोष्ठियों के गौरव एवं सम्मान का साधन बनती है। बादशाहो की दृष्टि मे इनका बड़ा महत्त्व होता है, अतः इनको अन्य कलाओं पर श्रेष्ठता प्राप्त होती है। उनके महत्त्व को देखते हुए अन्य कलाएँ उनसे निम्न श्रेणी की गिनी जाती है। सब कलाओं का मूल्य एव महत्त्व समय की आवश्यकता के अनुसार घटता बढ़ता रहता है।

(२४) कृषि

(२५) भवन-निर्माण

(२६) बढ़ई का काम

(२७) बुनाई तथा सिलाई

(२८) दाई का कार्य

(२९) चिकित्सा-शास्त्र एवं बड़े-बड़े नगरों तथा आबाद बस्तियों में उसकी आवश्यकता और उजाड़ स्थानों में उसकी अनावश्यकता

१. इब्ने ख़लदून न वर्राक़ी के अध्याय में लिखा है कि प्राचीन काल में वर्राक़ी के अन्तर्गत काग़ज़ बनाना, किताबत और जिल्दसाज़ी तीनों पेशे समझे जाते थे।

(३०) मानवीय कलाओं में लिखने की कला का महत्त्व

(३१) वर्राक़ी (पुस्तकों की तैयारी) का व्यवसाय

(३२) संगीत

(३३) प्रत्येक कला के अभ्यास से विशेषतया लिखने तथा गणित की कलाओं से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है।[1]

१. उपर्युक्त खंडों (२४–३३) के अनुवाद यहाँ नहीं दिये गये हैं।

अध्याय ६

ज्ञान की विभिन्न क़िस्में, शिक्षा-विधि, तत्सम्बन्धी शर्तें

(१) शिक्षा मानव सभ्यता की एक प्रकृत आवश्यकता है

यह खुला हुआ तथ्य है कि मानवेन्द्रियों की तुष्टि के निमित्त खाने के लिए भोजन और निवास हेतु किसी-न-किसी प्रकार के स्थान की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं के विषय में मनुष्य तथा अन्य पशुओ मे कोई भेद नही है। मनुष्य को पशुओं से पृथक् करनेवाली वस्तु है उसका विवेक एव बुद्धि, जो उसके जीविकोपार्जन के मार्ग निकालती है, एक मनुष्य को दूसरे के साथ मिल-जुलकर बसना सिखाती है, पवित्र नबियों की शिक्षा से अवगत कराती है एव परलोक के मार्ग दिखाती है। प्रतिक्षण अथवा प्रतिपल मनुष्य सोच-विचार किया करता है। उसकी यही चिन्तनशक्ति एवं विवेक ज्ञान-विज्ञान तथा कलाओ के स्रोत हैं। जब वह अपने शरीर की स्वाभाविक आवश्यकताओं के कारण विवश होता है तो वह ऐसे लोगों की खोज मे लग जाता है जो उससे अधिक बुद्धिमान् होते है अथवा उससे अधिक ज्ञानवान् और उससे श्रेष्ठ भी। वह उनसे ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता है और फिर आगे चलकर स्वय भी तथ्यों को एक-एक करके पहचानता और उनसे सम्बन्धित कारणो का भी ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार दीर्घ काल तक अभ्यास करते-करते उसे तथ्यों और उनके कारणो का पता चल जाता है और उनमे उसे विशेष कुशलता प्राप्त हो जाती है। भावी संतान जब उसको इस प्रकार कुशल देखती है तो उसके समक्ष झुक जाती है। शिक्षा का क्रम इसी से प्रारम्भ होता है। इस सक्षिप्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि शिक्षा-दीक्षा मनुष्य के लिए स्वाभाविक है।

(२) वैज्ञानिक शिक्षा भी एक प्रकार की कला है

जब तक किसी विद्वान् को किसी ज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों एवं अन्य नियमों पर पूरा-पूरा अधिकार न प्राप्त हो जाय और उसको समस्त समस्याओ से परिचय प्राप्त करके मूल सिद्धातो से निष्कर्ष निकालने का अभ्यास न हो जाय उस समय तक उसे उस विद्या मे कुशल नही कहा जा सकता और वह पूर्ण रूप से उस ज्ञान की जानकारी नहीं प्राप्त कर सकता। यह कुशलता सिद्धान्तो तथा समस्याओ को रट लेने मात्र से या उन्हे समझ लेने मात्र से नही प्राप्त होती, कारण कि हम देखते है कि कई सिद्धान्तों को साधारण

मनुष्य भी समझ लेता है और विद्वान् भी, जाहिल भी और कुशल आलिम भी, पर प्रारम्भिक ज्ञानवाले व्यक्ति को अथवा जाहिल को उसके प्रयोग की कुशलता नही प्राप्त हो पाती। अतः यह सिद्ध हो गया कि कुशलता समस्याओ के मूल सिद्धातों को समझ लेने या उन्हे रट लेने मात्र से नही प्राप्त होती। इसका कारण यह है कि हम देखते है कि कई सिद्धान्तों को साधारण मनुष्य भी समझ लेता है और विद्वान् भी, जाहिल भी और कुशल आलिम भी, पर प्रारम्भिक ज्ञानवाले व्यक्ति को अथवा जाहिल को उसके प्रयोग की कुशलता नही प्राप्त हो पाती। अत॰ यह सिद्ध हो गया कि कुशलता समस्याओ के मूल सिद्धांतों को समझ लेने तथा याद कर लेने से अधिक बड़ी चीज है और वह केवल कुशल आलिमों को ही प्राप्त होती है। यहाँ यह भी सिद्ध हो जाता है कि कुशलता चाहे शारीरिक कार्य सबधी गुण हो अथवा बुद्धि एव विवेक सम्बन्धी, शारीरिक ही होती है। परन्तु ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तु के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि ससारवाले प्रत्येक ज्ञान तथा कला को उनके कुशल विद्वानो से सम्बन्धित करते है चाहे वे किसी कौम अथवा किसी राष्ट्र में हुए हों। फिर यह भी स्पष्ट है कि वैज्ञानिक शिक्षा एक कला है। वैज्ञानिक शिक्षा-शास्त्रियों का इस विषय में बडा ही अधिक मतभेद है। प्रत्येक प्रसिद्ध विद्वान् का पारिभाषिक शब्दकोष पृथक् होता है जो दूसरे विद्वान् से अलग रहता है। कला मे ऐसा ही होता रहता है कि प्रत्येक कला दूसरे से पृथक् होती है। यदि हम पारिभाषिक शब्दकोष को विज्ञान मानें तो सबका पारिभाषिक शब्दकोष एक ही होना चाहिए। यदि विज्ञान एक ही है तो पारिभाषिक शब्दकोप का एक होना अनिवार्य है। उदाहरण-स्वरूप कलाम के ज्ञान को ले लीजिए। जहाँ तक उसके पारिभाषिक शब्दो का सम्बन्ध है, प्रारम्भिक काल तथा उसके बाद के विद्वानो में अत्यधिक मतभेद है, यद्यपि सब आलिमों का ज्ञान एक ही है। यही दशा फ़िक़ह, अरबी भाषा साहित्य एव अन्य ज्ञानो की है। इस विवाद से यह निष्कर्ष निकला कि विज्ञान चाहे एक ही हो किन्तु शिक्षा के पारिभाषिक शब्द कला की भाँति भिन्न-भिन्न है।

जब से मग़रिब की सभ्यता में विघ्न पडा और सल्तनत का सम्मान घटा तो अन्य कलाओं के साथ-साथ वैज्ञानिक शिक्षा का भी वहाँ से अन्त होने लगा। एक वह युग था जब कि क़ैरवान, करतेबा तथा मगरिब एव उन्दुलुस की राजधानी सभ्यता का केन्द्र थी, विज्ञान तथा कला का बाजार वहाँ गरम था, वैज्ञानिक शिक्षा की हर ओर चर्चा रहती थी। नगर के जीवन तथा नगर की सस्कृति के भी वे केन्द्र थे। जब वहाँ वीरानी एवं विनाश का प्रारम्भ हुआ तो शिक्षा का भी मग़रिब से अन्त हो गया। केवल

मराकश में मुवह्हेदीन के आश्रय में शिक्षा की कुछ चर्चा है। शिक्षा को वहाँ इस कारण उन्नति न प्राप्त हुई कि मुवह्हेदीन पर बदवियत छायी रही और वे नगर की संस्कृति मे अनभिज्ञ रहे। ऐसी अवस्था में वहाँ शिक्षा का कैसे जोर होता। जब मुवह्हेदीन ने अपना रहा-सहा प्रभुत्व भी खो दिया तो उनके यहाँ से वैज्ञानिक शिक्षा की चर्चा भी समाप्त हो गयी। इसी युग में इफरीकिया से काजी अबुल क़ासिम[1] बिन जैतून ७वीं शताब्दी[2] हि० के मध्य में विद्याध्ययन के लिए इफरीकिया से पूर्व की ओर रवाना हुए और इमाम इबनुलखतीब[3] के शिष्यों से शिक्षा ग्रहण करने लगे और अकली[4] तथा नकली[5] ज्ञानो मे अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली। तदुपरान्त वे अपने वतन तूनुस (ट्यूनिस) मे वापस आ गये। उसके उपरान्त अबू अब्दुल्लाह इब्न शुयेब अद्दक्काली[6] मगरिब से मिस्र विद्याध्ययन हेतु रवाना हुए और पूर्ण रूप से शिक्षा ग्रहण करके तूनुस लौट आये। फिर इन्ही बुर्जुगों के शिष्य विभिन्न सतानों को शिक्षा प्रदान करते रहे, यहाँ तक कि काजी मुहम्मद बिन अबदुस्सलाम,[7] इब्नुल हाजिब[8] के टीकाकार तथा शिष्य का युग आया। इब्नुल इमाम तथा उसके शिष्यो द्वारा उनकी विद्वत्ता का प्रभाव तूनुस से तलमसान पहुँचा। इब्नुल इमाम, काजी मुहम्मद बिन अबदुस्सलाम के सहपाठी तथा गुरुभाई थे। दोनो ने एक ही गुरु तथा शेख से शिक्षा प्राप्त की थी। तूनुस में इब्ने अबदुस्सलाम के शिष्य तथा तलमसान में इब्नुल इमाम के कुछ शिष्य अब भी बचे खुचे रह गये है, किन्तु उनकी सख्या इतनी कम है कि इस बात का भय है कि कही दोनों विद्वानो का प्रभाव पूर्ण रूप से समाप्त न हो जाय।

१. अबुल क़ासिम बिन अबी बक्र (जन्म ६२१ हि० १२२४ ई०, मृत्यु ६९१ हि० १२९२ ई०) ने पूर्व के देशों की १२५१ ई० तथा १२५८ ई० में यात्रा की।

२. १३वीं शती ई०।

३. सम्भवतः इमाम फ़ख़रूद्दीन राजी से तात्पर्य है।

४. बुद्धि अथवा तर्क सम्बन्धी ज्ञान।

५. नक़ल (हजरत मुहम्मद के परम्परागत कथन) पर आधारित ज्ञान।

६. मुहम्मद बिन शुऐब अल हस्कूरी (मृत्यु ६६४ हि०, १२२५ ई०)।

७. वह स्वयं इब्नुल हाजिब का शिष्य न था।

८. अबू अमर उस्मान बिन अल-हाजिब (मृत्यु ६४६ हि०, १२४९ ई०) अरबी व्याकरण का बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् हुआ है। इब्ने खलदून ने भी उसके ग्रंथों का अध्ययन किया था।

७वी शती हि० के अन्त में जवावह से अबू अली नासिरुद्दीन[१] अलमः
की ओर पहुँचा और अबी अमर बिन अलहाजिब के शिष्यो से शिक्षा ग्रहण व
उसने तथा शिहाबुद्दीन अब क़राफ़ी[२] ने साथ-साथ शिक्षा पायी थी। संक्षेप
तथा नक़ली ज्ञानो मे परिपूर्ण कुशलता प्राप्त करके वह मग़रिब की ओर
बिजाया में ठहर गया। वही उसका शिक्षा-कार्य चलता रहा। फिर उसका
इमरान अल-मशद्दाली[३] तलमसान मे पहुँचा और वही शिक्षा-दीक्षा प्रारम्
उसके शिष्य बिजाया तथा तलमसान मे अब भी मिलते हैं, किन्तु उनकी
बड़ी कम है।

जब से क़रतेबा तथा कैरवान में वैज्ञानिक शिक्षा की चर्चा समाप्त हुई
का उत्साह ठंडा पड़ा तो फास एव मगरिब के समस्त नगर भी विद्वानो से शून्
शिक्षा समाप्त हो गयी। अब वहाँ के निवासियो के लिए वैज्ञानिक शिक्षा
के द्वार लगभग बन्द हो गये हैं।

किसी विद्या मे कुशलता प्राप्त करने का सरलतम साधन यह है कि विद्य
वादविवाद का अभ्यास कराया जाय। तत्सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर
विचार-विनिमय हो। विभिन्न विषयों पर वार्त्ता की जाय और विद्यार्थी उन
पूर्वक भाग ले। शिक्षा के इस नियम द्वारा कुशलता शीघ्र प्राप्त हो जाती है अ
देखते विद्यार्थी अपने विषय मे दक्ष हो जाते है, किन्तु आज हमारे युग मे शि
ही दूसरा हो गया है। शिष्य लोग वर्षो विद्वानो की गोष्ठियो मे मौन बैठे रह
वादविवाद नही करते। वे ज्ञान की विभिन्न समस्याओं को प्रायः रटते रहते
कारण किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करके भी वे दक्ष नही हो पाते और
शोध की योग्यता ही पैदा हो पाती है। वे केवल ऊपरी बातें रट लेते है। शिक्ष
कर लेने पर भी इन्हे किसी प्रकार की कोई कुशलता प्राप्त नही होती। न वे
कर सकते है, न विचार-विनिमय और न उस विषय की शिक्षा ही दे सकते हैं
एक-मात्र कारण यह है कि एक तो उनकी शिक्षा ठीक तरह से नही होती

१. मनसूर बिन अहमद (लगभग ६३२ हि०) १२२५ से (७३१ हि०) ३१ ई०।

२. अहमद बिन इदरीस (मृत्यु ६८४ हि०, १२८५ ई०)।

३. इमरान बिन मूसा (६७० हि० १२७१-७२ ई० से ७४५ हि० १३४४- नासिरुद्दीन का शिष्य तथा जामाता।

उन्हें कुशल आचार्य भी नहीं मिल पाते। अन्यथा विभिन्न ज्ञान विषयक समस्याएँ कण्ठस्थ कर लेने मे वैसे वे सबसे आगे होते है, कारण कि रटाई को ही वे अपनी शिक्षा का ध्येय समझते है और उसे ही तद्विषयक दक्ष ज्ञान की पराकाष्ठा भी।

इसका परिणाम यह है कि मग़रिब मे विद्यार्थी के लिए शिक्षा प्राप्त करने की अवधि १६ वर्ष रखी गयी है और तूनुस में केवल ५ वर्ष जो साधारण विद्यालयों की प्रथा को देखते हुए किसी ज्ञान में कुशलता प्राप्त करने की न्यूनतम ही नही, अपितु सम्भवत: अपर्याप्त अवधि भी है। इसका कारण यह है कि मगरिब की शिक्षा-विधि ठीक नही है। इसीलिए उसका अभ्यास-काल बढ़ गया है। सच पूछा जाय तो इतने समय मे भी जैसी योग्यता होनी चाहिए वह पैदा नही हो पाती।

उन्दुलुस मे दो सौ वर्ष से जब से मुसलमानों की सभ्यता का पतन प्रारम्भ हुआ, वैज्ञानिक शिक्षा का भी अन्त हो गया है। वहाँ वैज्ञानिक शिक्षा की ओर अब कोई ध्यान नही दिया जाता, केवल अरबी साहित्य की कुछ चर्चा शेप है। उनके ज्ञान की सपूर्ण पूँजी उतनी ही है जितनी से उन्हे उनके पिछले इतिहास का स्मरण दिलाया जाता है। फिकह इससे भी कम प्रचलित है और अकली ज्ञानों का तो कोई नाम ही नही लेता। इसका कारण केवल यही है कि मुसलमानों के पतन तथा शत्रुओ के प्रभुत्व के कारण वैज्ञानिक शिक्षा मे कुशल वश समाप्त हो गये और उनके उत्तराधिकारियो के चिह्न मिट गये। समुद्र तट पर मुसलमानों की सभ्यता किसी अश मे पायी जाती है, लेकिन वह भी नाम मात्र की ही है। वे लोग प्राय. अपनी आर्थिक समस्याओ मे ही उलझे रहते है और अन्य बातो की ओर कोई ध्यान ही नही दे पाते।

"अपना आदेश पूरा करने की शक्ति ईश्वर मे ही है।"[१]

पूर्व मे वैज्ञानिक ढग की शिक्षा अब भी प्रचलित है। वहाँ प्रत्येक दिशा में शिक्षा की चर्चा है। कारण यह है कि नगरो मे सभ्यता का संचार है। विद्वानो के वश पहले-जैसे ही चले आ रहे है और विज्ञान की परम्पराएँ भी वैसी ही। यद्यपि वहाँ के बड़े-बड़े नगर, जैसे बगदाद, बसरा एव कूफा जो किसी समय ज्ञान-विज्ञान के बहुत बड़े केन्द्र थे नष्ट-भ्रष्ट हो चुके है, किन्तु उनका स्थान अन्य नगरो ने ले लिया है। इस प्रकार विज्ञान पूर्व मे अजम के खुरासान से लेकर मावराउन्नहर तक और पश्चिम मे क़ाहेरा तथा आस-पास तक फैला हुआ है। इनकी सभ्यता भी उन्नति पर है और शिक्षा-कार्य भी। सक्षेप मे पूर्ववाले ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे अत्यधिक अनुभव के स्वामी भी है और उन्होने इस दिशा मे

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

अत्यधिक अभ्यास भी प्राप्त कर लिया है। अन्य कलाओं में भी उन्हें अत्यधिक कुशलता प्राप्त है, यहाँ तक कि मग़रिबवाले जब विद्याध्ययन के लिए वहाँ जाते है तो उनकी धारणा यह होती है कि पूर्ववाले उनसे अधिक बुद्धिमान् एवं प्रतिभाशाली होते हैं। उनका विचार यह होता है कि पूर्ववालो की बुद्धि एव विवेक स्वाभाविक रूप से अधिक कुशाग्र होते है। वे पूर्ववालों को अपने से इतना ऊँचा समझते है मानो वे किसी विचित्र प्रकार की मानव-जाति से सम्बन्धित हों। इसका केवल यही कारण है कि मग़रिब-वाले ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल मे पूर्ववालो की कुशलता देखकर अत्यधिक प्रभावित हो जाते है और फिर उनके विषय मे इतनी उच्च धारणाएँ बनाने पर विवश हो जाते हैं, यद्यपि इसमे कोई तथ्य नही। पूर्व एव पश्चिम के देशों में प्राकृतिक रूप से इतना अन्तर नही कि उनको दो पृथक् वस्तु समझ लिया जाय। भौगोलिक दृष्टि से नि सन्देह प्रथम तथा सातवी इकलीमों में बड़ा अधिक अन्तर है, फलत: वहाँ के निवासियो के स्वभाव एवं प्रकृति मे बहुत बडा फ़र्क दृष्टिगत होता है और इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। पर जहाँ तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है कि पूर्व तथा पश्चिमवालो मे इतना अधिक अन्तर क्यो होता है, तो उसका कारण वही है जिसका उल्लेख हमने कलाओ के प्रकरण मे किया है अर्थात् जिस स्थान पर सस्कृति को जितनी उन्नति प्राप्त रहती है, वहाँ के निवासियों की बुद्धि भी उसी हिसाब से अधिक तीव्र होती है। अब हम इस तथ्य का और अधिक विश्लेषण करते है।

जिन लोगों को सभ्यता मे उन्नति प्राप्त हो जाती है वे अपने समस्त मामलों में चाहे वे आर्थिक हों, चाहे निवास-स्थान से सम्बन्धित, इस लोक से सम्बन्धित हों चाहे परलोक से, कुछ ऐसे विशिष्ट अनुशासन एव नियमोंका पालन करते है जिनकी वे लेश-मात्र भी अवहेलना नही करते। जिस अनुशासन अथवा जिस नियम का उन्हे पालन करना होता है उसका वे पालन करते है। जो बाते पालन योग्य नही होती उनकी वे उपेक्षा करते जाते तथा उन्हे त्यागते जाते हैं। इस प्रकार वे कुछ विशिष्ट सीमाओं के भीतर अपना जीवन व्यतीत करते है। उनकी ये सब बातें एक कला का रूप धारण कर लेती है जिसको उनके बाद के आनेवाले उनसे सीखते रहते है।

साथ ही साथ इस तथ्य की भी उपेक्षा नही की जा सकती कि प्रत्येक कला का अभ्यास बुद्धि को तेज करता और एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक शक्ति उत्पन्न करता है और उसमे दूसरी कला को सीखने की भी योग्यता उत्पन्न हो जाती है, कारण अभ्यास से विवेक की शक्ति बढ जाती है। फलत. प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान सुगमतापूर्वक सीखा जा सकता है। इस प्रकार मिस्रवालो ने शिक्षा सम्बन्धी विज्ञान को उन्नति के शिखर

पर पहुँचा दिया और ऐसी-ऐसी बातें कर डाली, जिन्हें देखकर अकल दग रह जाती है। उदाहरणार्थ, जगली गधो एव पशुओ को ऐसे ऐसे शब्द रटा देते है और ऐसे कार्य एवं करतब सिखा देते है जिन्हे देखकर मनुष्य आश्चर्य मे रह जाता है और मगरिब-वाले तो इन बातो को समझ ही नही पाते। इसका कारण यही है कि शिक्षा एव ज्ञान-विज्ञान में अभ्यास पैदा कर लेने तथा उन्हें अपनी आदत मे सम्मिलित कर लेने से बुद्धि मे तेजी एव चितन-शक्ति मे जाग्रति पैदा हो जाती और प्रबुद्ध प्रतिभा के कारण विद्वत्ता के ऐसे चमत्कार दृष्टिगत होने लगते है कि सर्वसाधारण ऐसे विद्वानो को अपने से पृथक् समझने लगते है, यद्यपि बात ऐसी नही होती।

यदि आप नगरवासियो तथा बदवियों की तुलना करे तो यह भली-भाँति ज्ञात हो जायगा कि नगरवासी अपनी बुद्धि एव सूझ-बूझ के कारण हर बात की तह को पहुँच जाता है और वास्तविक तथ्य का पता लगा लेता है। बदवी जब उसे देखता है तो समझता है कि इसमे कोई और ही रहस्य है हालाँकि बात केवल इतनी ही होती है कि नगरवासियो को ज्ञान-विज्ञान का अभ्यास होता है और नगर की सभ्यता तथा नागर जीवन से वे भली-भाँति परिचित होते है और बदवी इन बातों से अनभिज्ञ होता है। इस विचार मे भी कोई तथ्य नही कि नगरवासियो में असाधारण बुद्धि पायी जाती है और बदवियो मे वह बुद्धि नही पायी जाती। हमने बहुत से बदवियों को देखा है जो असाधारण बुद्धि एव विवेक के स्वामी होते है, केवल अन्तर इतना होता है कि नगर-वासियों की बुद्धि एवं विवेक पर ज्ञान-विज्ञान की छाप पडी रहती और उसकी आत्मा हर प्रकार से पूर्ण हो जाती है। एक साधारण बदवी इन बातो से अनभिज्ञ होता है, अतः उसकी बुद्धि एवं समझ अपनी ज्ञान-सीमा तक ही परिमित रहती है, आगे कदम नही बढ़ा पाती। इसी तथ्य को मगरिबवाले तथा पूर्ववाले लोगों को सामने रखकर जाँचिए तो पता चलेगा कि सभ्यता के पथ पर अग्रसर पूर्ववाले क्योंकि शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में सबके आगे थे और मगरिबवाले नगर की सस्कृति से अनभिज्ञ और बदवियत के निकटतम थे। अतः नासमझ मगरिबवासी, पूर्ववालों को अपने से वास्तव में पृथक् समझते थे और उनका विचार था कि वे अन्य प्रकार के मनुष्य है और हम अन्य प्रकार के। उनकी यह बात तथ्य से अनभिज्ञ होने का प्रमाण है।

"ईश्वर अपने किसी प्राणी को इच्छानुसार अन्य प्राणियों से अधिक दे डालता है।"[1]

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

(३) सभ्यता की जितनी ही उन्नति होती है और नगर की संस्कृति का जितना ज़ोर होता है, ज्ञान-विज्ञान की चर्चा ही अधिक होती है

पहले बताया जा चुका है कि वैज्ञानिक ढग से शिक्षा प्राप्त करना भी अन्य कलाओ के समान एक कला है और यह भी कि नगरो की सभ्यता जितनी घटती-बढ़ती है और उनमे नगर की सभ्यता एव सस्कृति की चर्चा जितनी कम अथवा अधिक होती है उसी हिसाब से कलाओ का चलन भी कम अथवा अधिक होता है और उनकी अच्छाई एव श्रेष्ठता मे अन्तर आता रहता है। इसका कारण यह है कि ये कलाएँ जीविकोपार्जन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने के बाद की चीजे है। जब जीविकोपार्जन की चिन्ता से मनुष्य मुक्त हो जाता है तो उसे ज्ञान-विज्ञान एव कलाओ की चिन्ता होती है। यदि कोई किसी ग्राम अथवा असभ्य नगर में पैदा हो और उसे शिक्षा प्राप्त करने मे रुचि हो तो उसे विवश होकर सभ्य नगर की ओर जाना पड़ेगा, कारण कि वही उसकी प्यास बुझ सकती है और उसकी इच्छा पूरी हो सकती है। छोटे-छोटे स्थानों पर वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा की ऐसी सस्थाएँ नही होती जहाँ वह अपनी इच्छा की पूर्ति कर सके।

बग़दाद, क़रतेबा, कैरवान (कारडोवा), बसरा तथा कूफा के इतिहास का अध्ययन कीजिए कि इस्लाम के प्रारम्भ मे जब वहाँ नगर सस्कृति एवं नागर जीवन को उन्नति प्राप्त हुई और ज्ञान-विज्ञान का सागर लहरा उठा, नाना प्रकार के विज्ञानो एव कलाओ का आविष्कार हुआ, नये-नये वैज्ञानिक शोध होने लगे तो वास्तव मे उन्होने पूर्वकालीन लोगों को भुला दिया और उनसे कही आगे निकल गये। जब इतिहास ने करवट बदली और युग परिवर्तन हुआ तथा इन उपर्युक्त नगरो की सभ्यता का पतन हुआ तो वहाँ के निवासियो की बडी दुर्दशा हो गयी और वे छिन्न-भिन्न हो गये। वैज्ञानिक शिक्षा का भी अन्त हो गया और वह अन्य इस्लामी नगरो मे अपनी चमक-दमक दिखाने लगी।

हमारे इस युग मे मिस्र का काहेरा नगर विज्ञान एव वैज्ञानिक शिक्षा मे अद्वितीय है, कारण कि वह आज से नही, अपितु सहस्रो वर्षो से उच्च सभ्यता का केन्द्र रहा है और नागर संस्कृति मे भी वह सर्वोच्च रहा है। अत कलाओ की जड़े वहाँ दृढ हो गयी है और उनके साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का भी बड़ा जोर है। यह जोर विशेष रूप से पिछले २०० वर्षो में जब से कि तुर्को का राज्य वहाँ प्रारम्भ हुआ अर्थात् सलाहुद्दीन बिन अय्यूब के समय से और भी बढ़ गया है। यह एक विशेष ऐतिहासिक तथ्य है कि

तुर्की अमीर अपनी सन्तान के लिए बडे चिन्तित रहा करते थे, कारण कि उनके बादशाहों की यह प्रथा थी कि वे अपने अमीरो के मरते ही उनकी धन-सम्पत्ति छीन लेते थे, क्योंकि अमीर लोग उनके दास तथा सेवक ही तो होते थे। वे अपने अमीरो के धन को अपनी सम्पत्ति समझते थे। फलत अमीरो की सन्तान उनकी मृत्यु के उपरान्त दरिद्र हो जाती थी। इस भय से बचने के लिए अमीरों ने यह उपाय निकाला कि अत्यधिक धन लगाकर मदरसे खोले तथा सराये बनवा दे। सन्तान के नाम पर वे अत्यधिक आय के वक़्फ पृथक् कर देते थे जिनकी आय से वे सर्वदा चलते रहते थे और इन वक्फो का मुतवल्ली अथवा प्रबधक वे अपनी सन्तान को कर देते थे। इस कार्य के दो लाभ थे, एक तो यह कि वे बहुत बडे पुण्य के कार्य थे और उससे लोगों को निरन्तर लाभ पहुँचता रहता था तथा उस दान से बढकर कोई अन्य दान भी नही होता था। दूसरा लाभ यह था कि उन वक़्फो की आड़ मे उनकी सन्तान का जीवन-निर्वाह होता रहता था और वे भूखे नही मर पाते थे। उधर सुल्तानों के अपहरण के द्वार भी बन्द हो जाते थे। इस प्रकार वक़्फो की सख्या बहुत बढ गयी थी। विद्यार्थी एव शिक्षक बहुत बडी सख्या मे मिलने लगे। विद्यार्थियो एव शिक्षकों को बहुसख्यक वृत्तियाँ भी निश्चित होने लगी। जब यह दशा हो गयी तो फिर इराक एव मगरिब से विद्यार्थियो की बहुत बड़ी सख्या वहाँ पहुँच गयी। ज्ञान-विज्ञान की माँग बढ़ गयी और उन्हे उन्नति प्राप्त होने लगी।

"ईश्वर जो चाहता है वह पैदा करता है।"[१]

(४) समकालीन सभ्यता के विभिन्न विज्ञान

वे सभी ज्ञान-विज्ञान जो मानव-समाज के अध्ययन और अभ्यास के विषय हैं, दो प्रकार के होते है। एक प्राकृतिक जिनकी ओर उसका चिन्तन स्वतः आकृष्ट होता है, और दूसरे नकली[२] जिन्हे वह उनके आविष्कर्ताओं से सुनकर जानता है।

प्रथम प्रकार के ज्ञान मे दर्शन-सम्बन्धी विषय है। उनको सीखने के लिए मनुष्य स्वयं अपनी चिन्तन-शक्ति का प्रयोग करता है। वह स्वय अपनी बौद्धिक शक्ति से उनके विषयों, समस्याओं, तर्क एव शिक्षाविधि का ज्ञान प्राप्त करता है। संक्षेप में वह स्वयं अपनी बौद्धिक शक्ति से काम लेकर इन ज्ञानों मे कुशलता प्राप्त करता है। उनसे सम्बन्धित प्रत्येक उचित एवं अनुचित बात के विषय में शोध करता है। नकली

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

२. नक़ल (हज़रत मुहम्मद के परम्परागत-कथन) पर आधारित ज्ञान।

ज्ञान का आधार शरा के नियमो एवं शरा के स्रोत की बतायी हुई रवायतो पर है। मनुष्य की बुद्धि का उसमे इसके अतिरिक्त कोई हाथ नही कि मूल सिद्धान्तो के आधार पर साधारण प्रकार के निष्कर्ष निकाले जायें और उनका मूल सिद्धांत से समाधान कराया जाय। जो बाते नित्यप्रति विस्तार से पेश आती रहती है उनका उल्लेख मूल सिद्धान्त के रूप मे अलग से नही हो सकता। उनका किसी-न-किसी प्रकार तुलनात्मक तर्क द्वारा समाधान करना पड़ता है, किन्तु इस तुलनात्मक तर्क का आधार भी नकल[1] ही है, कारण कि वे मूल सिद्धान्त जिनमे परिवर्तन सम्भव नही नकल पर ही आधारित है। इस प्रकार तुलनात्मक तर्क भी वास्तव मे नकल ही पर आधारित हुआ।

नकली ज्ञान का स्रोत अल्लाह की किताब[2] तथा हजरत मुहम्मद की सुन्नते है जिन पर इस्लामी शरा आधारित है। इस्लाम (धर्म) इन्ही पर अवलम्बित है। जिस विद्या द्वारा हमे अल्लाह की किताब तथा मुहम्मद साहब की सुन्नत के समझने मे सहायता मिले, वह नक़ली ज्ञान मे सम्मिलित समझी जाती है, यहाँ तक कि अरबी साहित्य जो अरबवालो तथा कुरान शरीफ़ की भाषा है, इसी नकली ज्ञान मे गिनी जाती है। जब नकली ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया तो अन्य सभी प्रकार की विद्याएँ भी इसी के अन्तर्गत आ जाती है, कारण कि प्रत्येक मुसलमान का जिसके लिए शरा का पालन अनिवार्य है, कर्त्तव्य है कि वह उन दैवी आदेशो का ज्ञान प्राप्त करे जो अल्लाह की किताब एवं हजरत मुहम्मद की सुन्नत पर आधारित है।

इस प्रकार यह परमावश्यक है कि अल्लाह की किताब के शब्दो तथा उसके अर्थ को भली-भाँति समझा जाय और उनकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाय। ऐसी विद्या जिससे उपर्युक्त बोध होता है तफसीर[3] कहलाती है। फिर यह भी आवश्यक है कि अल्लाह की किताब के शुद्ध उच्चारण के विषय मे हजरत मुहम्मद के जो कथन बताये जाते है उनका ज्ञान प्रमाण सहित प्राप्त हो। जिस विद्या द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है उसे किरअत कहा जाता है। यह भी आवश्यक है कि हजरत मुहम्मद की हदीस के प्रमाणों का पता लगाया जाय और अन्तिम काल के हदीस का उल्लेख करनेवाले लेखको के विषय में भी छान-बीन की जाय और यह भली-भाँति देख लिया जाय कि वे सच्चे है अथवा झूठे, ताकि उन कथनो एव सूत्रो द्वारा जो शरा सम्बन्धी आदेश प्राप्त

१. हज़रत मुहम्मद के परम्परागत कथन।
२. क़ुरान शरीफ़।
३. क़ुरान शरीफ़ की टीका।

हो, उसकी प्रामाणिकता पर पूर्ण विश्वास हो जाय। जिस ज्ञान में इस प्रकार का शोध होता है उसे हदीस कहते है। फिर यह भी आवश्यक है कि दैवी आदेशों से विशेष नियम एव मूल सिद्धान्त निकाले जायँ ताकि उनकी सहायता से नाना प्रकार की दैनिक प्रयोग मे आनेवाली बातो एव घटनाओ का वैधानिक रूप से ज्ञान प्राप्त हो सके। जिस ज्ञान मे इस प्रकार का तर्क-वितर्क एव शोध होना है उसे फिकह के सिद्धान्त कहते है। अन्त मे यह बात भी आवश्यक है कि उपर्युक्त ज्ञानों द्वारा जो शरा के आदेश मुसलमानों के लिए प्राप्त हों वे एक स्थान पर ज्ञान-विज्ञान के रूप में सकलित हों। अत: जिस ज्ञान के अधीन ये आदेश आ जाते है, वे फिक़ह कहलाते है।

जहाँ तक (मुसलमानों के) कर्त्तव्यों का सबध है, वे दो प्रकार के है—शरीर सम्बन्धी तथा हृदय सम्बन्धी। इनका सम्बन्ध मुसलमानो के धार्मिक विश्वास से है, अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व एव गुणो से सम्बन्धित, क़यामत के विषय मे अथवा स्वर्ग के सुख एव नरक के दड तथा ईश्वर की शक्ति के बारे मे। जिस ज्ञान मे उपर्युक्त विश्वासों पर तर्क-वितर्क किया जाता है उसको कलाम कहते है।

साथ ही साथ कुरान शरीफ एव हदीस को समझने के लिए भाषा सम्बन्धी ज्ञानों की भी उपेक्षा सम्भव नही। भाषा सम्बन्धी ज्ञान कई प्रकार के है। उदाहरणार्थ, शब्दकोष सम्बन्धी ज्ञान, व्याकरण, वाक्य-रचना, साहित्य इत्यादि। इन सब ज्ञानों के विषय मे आगे चलकर विस्तार से उल्लेख किया जायगा।

उपर्युक्त नकली ज्ञान केवल मुसलमानो के लिए आवश्यक है, यद्यपि अन्य धर्मो मे भी इसी प्रकार की चीजे पायी जाती है। इस्लाम के नकली ज्ञान इस दृष्टि से अन्य धर्मवालो के ज्ञानो के कुछ-न-कुछ अनुरूप है कि शरीअतवाले पैगम्बरो[1] को ही उनके प्रचार का दैवी आदेश हुआ था, किन्तु दोनों मे अन्तर यह है कि पिछले आदेश (ईश्वर द्वारा) रद्द कर दिये गये है और केवल इस्लामी विधान के पालन का (ईश्वर की ओर से) आदेश हुआ है। मुसलमानो के लिए उनके विषय मे विचार करने का (ईश्वर की ओर से) निषेध हुआ है। हजरत मुहम्मद ने कुरान शरीफ़ के अध्ययन के अतिरिक्त अन्य दैवी ग्रथों के अध्ययन से रोका है और इस बात का निषेध किया है। हजरत मुहम्मद का कथन है कि "अहले किताब को न सच्चा समझो और न झूठा ही" अपितु यह कहो कि "हम ईमान लाये उस चीज पर भी जो हम पर उतरी और उस पर

१. **ईसाइयों, तथा यहूदियों के पैग़म्बरों को, इन पैग़म्बरों के अनुयायी "अहले किताब" कहते है।**

भी जो तुम पर उतरी और हमारा-तुम्हारा खुदा एक है।[१]" एक बार हज़रत मुहम्मद ने हज़रत उमर के हाथ मे तौरीत[२] के कुछ अश देख लिये। वे इतने क्रोधित हुए कि उनके मुँह पर क्रोध के चिह्न झलकने लगे। उन्होने कहा, "क्या मै तुम्हारे लिए स्पष्ट, तथा खुला हुआ कुरान अथवा दीन[३] नही लाया हूँ। ईश्वर की शपथ है, यदि मूसा भी आज मेरे युग में जीवित होते तो उनके लिए भी मेरे अनुसरण के सिवा कोई अन्य उपाय न होता।"

उपर्युक्त शरा सम्बन्धी नकली ज्ञान आज मुसलमानो मे इतने प्रकार के प्रचलित हो गये है कि उनका उल्लेख सम्भव नहीं। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के पारिभाषिक शब्द निश्चित है और प्रत्येक शब्द का सकलन वैज्ञानिक रूप मे हुआ है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि प्रत्येक विद्या की भली-भाँति शिक्षा-दीक्षा हो रही है। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का कोई-न-कोई ऐसा कुशल विद्वान् मौजूद है जिसके पास समस्त संसार भाग-भागकर पहुँचता रहता है। एक समय मे, पूर्व तथा पश्चिम दोनो मे समस्त ज्ञान-विज्ञान प्रचलित थे, किन्तु आजकल मगरिब की सभ्यता का पतन हो चुका है, अत: ज्ञान-विज्ञान की वहाँ उतनी चर्चा नही है। पूर्व के विषय मे नही कहा जा सकता कि वहाँ की क्या दशा है, किन्तु वहाँ की सभ्यता अभी तक उसी रूप मे है और नागर जीवन एवं संस्कृति का वहाँ बड़ा जोर है। अत: विश्वास तो यही है कि वहाँ भी नकली ज्ञान भली-भाँति प्रचलित होगे। वहाँ वक्फ़ों की संख्या भी अधिक है और उनसे विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक वृत्तियाँ भी मिलती रहती है।

(५) क़ुरान की टीका तथा उसका शुद्ध रूप से पाठ
(६) हदीस
(७) फ़िक़ह, उसकी शाखाएँ
(८) तरके के क़ानून
(९) फ़िक़ह के सिद्धांत तथा तत्सम्बन्धी वाद-विवाद
(१०) कलाम[४]
(११) क़ुरान तथा सुन्नत में अस्पष्ट वर्णन तथा उनके कारण मुसलमानों में विभिन्न मतों का पैदा होना

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
२. वह दैवी पुस्तक जो मूसा पैग़म्बर (मोज़ेज़) पर उतरी।
३. इस्लाम धर्म।
४. देखिए पूर्व पृष्ठ ४६१।

(१२) तसव्वुफ़
(१३) स्वप्नफल प्रकाशन विद्या
(१४) अक़ली ज्ञान तथा उसकी क़िस्में
(१५) संख्या का ज्ञान, गणित अंकगणित तथा तरका
(१६) रेखागणित, भूमापन
(१७) ज्योतिष-विद्या
(१८) तर्क-शास्त्र
(१९) भौतिक-शास्त्र
(२०) चिकित्सा-शास्त्र
(२१) कृषि-शास्त्र
(२२) आत्मविद्या
(२३) जादू-टोने
(२४) अक्षरों के रहस्य का ज्ञान
(२५) कीमिया
(२६) दर्शन-शास्त्र एवं उसके दोष तथा उसका खंडन
(२७) फलित ज्योतिष से हानियाँ, उसके दोष एवं उसका खंडन
(२८) कीमिया का अस्तित्व असम्भव है तथा उसके द्वारा जो हानियाँ होती हैं
(२९) रचनाओं का मूल उद्देश्य जो हमेशा सामने रखना चाहिए[1]
(३०) ग्रंथों की अधिकता ज्ञानोपार्जन में बाधक होती है

ग्रथो की अधिकता, शिक्षा विषयक पारिभाषिक शब्दो की विभिन्नता, उनके नियमो तथा सिद्धान्तो का बाहुल्य ज्ञानोपार्जन में अत्यन्त बाधक होता है, कारण कि विद्यार्थी एव शिक्षक को विवश किया जाता है कि वह समस्त रचनाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करे, अन्यथा उसका ज्ञान अधूरा समझा जायगा और उसे विश्वस्त विद्वान् न समझा जा सकेगा। अत: वह सब विद्याओ को रटता है, उनके विभिन्न पारिभाषिक शब्दो को याद करता है और अपना पूरा जीवन इसी कार्य म लगा देता है, किन्तु फिर भी

१. उपर्युक्त खंडों (५–२९) का अनुवाद नहीं किया गया।

उसका ज्ञान पूरा नहीं हो पाता और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उदाहरण हेतु फ़िक़ह के ज्ञान को ले लीजिए और इसमे भी मालिकी फिकह की शाखा को। उसके "मुदव्वनह" नामक ग्रथ पर टीकाओं के ऊपर टीकाएँ तथा टिप्पणियाँ लिखी गयी है उदाहरणार्थ इब्ने यूनुस, अल्-लखमी, तथा इब्ने बशीर के ग्रथ एव उनकी टिप्पणियाँ, कुजियाँ तथा प्रस्तावनाएँ। इसके अतिरिक्त "उत्बीयह" और उसी विषय पर लिखे गये "अलब्यान वत्तहसील" नामक ग्रथ को ले लीजिए या इब्नुल हाजिब के ग्रथ तथा उसके विषय में जो ग्रथ लिखे गये, उन्ही को ले लीजिए। केवल यही नही अपितु इन सबको रटने के उपरान्त विद्यार्थी से यह आशा रखी जाती है कि वह कैरवान, करतेबा, बगदाद एव मिस्र के विभिन्न सिद्धान्तों मे भेद कर सके और उनको भली-भाँति समझ सके। जब उसे इन सब पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है तब कही जाकर उसे फतवे लिखने की अनुमति दी जाती है, हालाँ कि वास्तव मे उपर्युक्त सब ग्रथ एक ही विषय पर है और उनमे केवल रचना-शैली का अन्तर है।

विद्यार्थी इन्ही को रटने में अपना जीवन समाप्त कर देता है। इसके बजाय यदि शिक्षक विद्यार्थियों को धर्म के सिद्धान्त समझा देते तो कही अच्छा होता। शिक्षा-कार्य भी सरल हो जाता और ज्ञान भी शीघ्र प्राप्त हो जाता। किन्तु अब किया क्या जाय क्योकि यह दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति हमारे यहाँ प्रचलित हो चुकी है और उसने एक पक्की आदत का रूप धारण कर लिया है जिसमें कोई परिवर्तन करना असम्भव है।

इसी प्रकार अरबी भाषा-विज्ञान का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमे "सीबावै" नामक ग्रथ है। इस पर अगणित पुस्तके लिखी गयी है। विद्यार्थियो का यह कर्त्तव्य है कि वे उन्हे रटे भी और बसरे, कूफे, बग़दाद तथा उन्दुलुसवालो के सिद्धान्तो को समझे और भूत काल एव आधुनिक काल के विद्वानो के मतो उदाहरणार्थ इब्नुल हाजिब तथा इब्ने मालिक के ग्रथों को और उन ग्रथों से सम्बन्धित जो साहित्य है, उसे पढ़े। इसी में विद्यार्थी का जीवन समाप्त हो जाता है, अत: कोई व्यक्ति बड़ी कठिनाई से ही इन पर अधिकार पा सकता है। इस समय एक ही उदाहरण हमारे सामने है और वह मिस्र के भाषा-विज्ञान के विद्वान् इब्ने हिशाम का है। मग़रिब में हमे उसकी रचनाएँ प्राप्त हो गयी हैं। उसने भाषा-विज्ञान में इतनी कुशलता प्राप्त कर ली है जो सीबावै तथा इब्ने जिन्नी सरीखे विद्वानों से भी श्रेष्ठ है। उसे इस विद्या के सिद्धान्तों पर पूर्ण अधिकार तथा योग्यता प्राप्त है। उसने यह बात सिद्ध कर दी है कि विद्वत्ता केवल प्राचीनकाल के लोगों तक सीमित नहीं, किन्तु ऐसे लोग बिरले ही मिलेगे। साधारणत: तो यही बात है कि यदि कोई अपना पूरा जीवन-काल अरबी भाषा-विज्ञान

के सीखने मे लगा दे तब भी बडी कठिनाई से उसे इस पर अधिकार प्राप्त हो सकेगा। लोग ज्ञानोपार्जन के साधनों को ही सीखने मे अपना जीवन समाप्त कर देते है और उन विद्याओं के मूल उद्देश्यों को तो वे प्राप्त ही नही कर पाते।

(३१) शिक्षा के लिए विभिन्न विद्याओं के सारग्रन्थ या कुंजियाँ भी हानिकारक होती हैं

बहुत-से आधुनिक विद्वान् ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थो को सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करने लगे है। प्रत्येक विद्या की विस्तृत समस्याओं, कठिन एव गूढ विवरणों को वे सूची के रूप मे प्रस्तुत कर देते है, जो देखने मे तो कुछ नही, किन्तु समझने पर बहुत कुछ हैं। इस प्रकार उन्होने कम शब्दो में अधिक अर्थ का भडार प्रस्तुत कर दिया है और विद्यार्थियों के लिए अत्यधिक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी है। मोटे-मोटे ग्रथों, कुरान की टीका एवं अन्य विद्याओं के ग्रथो के खुलासे इसलिए तैयार कर डाले है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति सुगमतापूर्वक उन्हे याद कर सके।

इब्न अल-हाजिब ने फिकह् मे, इब्ने मालिक ने अरबी भाषा-विज्ञान में और अल खूनजी ने तर्कशास्त्र में इसी सिद्धान्त का पालन किया है। रचना के इस ढग से शिक्षा को बड़ी हानि हुई और ज्ञानोपार्जन में बडा विघ्न पड़ा। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की रचनाओ मे नये विद्यार्थी के मस्तिष्क पर विद्या की उन अन्तिम समस्याओ के समझने का बोझ लादा जाता है, जिनके समझने के योग्य वह नहो होते। शिक्षा का यह बडा ही दोष-पूर्ण ढग है। इस विधि के कारण विद्यार्थी मूल समस्याओ के समझने की उपेक्षा करके कठिन शब्दो को समझने में लीन हो जाता है। उनके बडी कठिनाई से समझ में आनेवाले शब्दो के अर्थ का पता चलाकर उनके द्वारा समस्याओ का समाधान करता है, कारण कि यह माना हुआ सिद्धान्त है कि आप यदि किसी बात को अत्यधिक संक्षिप्त रूप से कहेगे तो आपके शब्द बहुत ही कठिन हो जायँगे और समझ में न आयँगे। इस विधि से विद्यार्थी का बहुत-सा समय शब्दों के अर्थ समझने मे निकल जाता है।

फिर यदि इस ओर से भी उपेक्षा कर ली जाय और यह स्वीकार कर लिया जाय कि किस प्रकार इन खुलासों पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया जाय तो भी वह कुशलता नही प्राप्त होती, जो विस्तृत एवं बड़े-बड़े ग्रंथों के अध्ययन से होती है। इसका कारण यह है कि बड़े-बड़े ग्रंथों में ज्ञान-विज्ञान की समस्याओं का बार-बार विस्तार से उल्लेख होता है और इस प्रकार पूर्ण योग्यता प्राप्त हो जाती है।

इन खुलासो से केवल समस्याओ के नाम बार-बार आते है, जिसके कारण पूर्ण योग्यता नही प्राप्त होती और ज्ञान अधूरा रह जाता है। इस प्रकार खुलासा तैयार करनेवालो का उद्देश्य तो यह था कि समस्याओ को सुगमतापूर्वक याद किया जा सके, किन्तु इस प्रकार ज्ञान को जो हानि पहुँची उसकी ओर से उन्होंने पूर्ण रूप से उपेक्षा प्रदर्शित कर दी।

(३२) ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की उचित एवं लाभदायक विधि

ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की सर्वोत्तम विधि यह है कि विद्यार्थियों को थोड़ा-थोड़ा करके समझाया जाय। उदाहरणार्थ, जब किसी विशिष्ट ग्रन्थ की शिक्षा देनी हो तो उसके प्रत्येक अध्याय की मूल समस्याओं का पहले उल्लेख करें और सक्षेप में उनकी व्याख्या भी करते जायें। विद्यार्थी की बुद्धि एव उसकी योग्यता को अवश्य ध्यान में रखा जाय, ताकि जो बात बतायी जाय वह उसकी बुद्धि ग्रहण करती रहे। इसी प्रकार पूरे ज्ञान की शिक्षा दी जाय, तो उस ज्ञान में विद्यार्थी को एक विशेष अभ्यास हो जायगा। यद्यपि उसकी योग्यता साधारण तथा निम्न श्रेणी की होगी, किन्तु उसका मस्तिष्क इस योग्य अवश्य हो जायगा कि वह उस ज्ञान की समस्याओं को संक्षिप्त रूप से समझ सके।

अब शिक्षक को पुनः प्रारम्भ से उस ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए और इस बार शिक्षा का स्तर कुछ ऊँचा कर देना चाहिए, यानी विषय को सक्षिप्त रूप से न समझाकर विस्तार से समझाया जाय और साथ ही साथ समस्याओं की पारस्परिक तुलना भी समझायी जाय और विरोध का कारण भी बताया जाय। इसी विधि से पूरे ज्ञान की शिक्षा दे देनी चाहिए। इस बार भी विद्यार्थी को अभ्यास होगा, जो पूर्वाभ्यास से उत्तम एव पक्का होगा।

अब फिर तीसरी बार उस ज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ से देनी चाहिए और इस बार प्रत्येक कठिन समस्या को उचित व्याख्या एव टीका-टिप्पणी के साथ समझाया जाय। जब इस विधि से भी शिक्षा पूरी हो जाय तो विद्यार्थी अपने ज्ञान मे कुशल एव अभ्यस्त समझा जा सकेगा। सक्षेप मे शिक्षा की उत्तम एव लाभदायक विधि यही है।

इस प्रकार तीन बार की शिक्षा से ज्ञान मे बड़ी अच्छी योग्यता प्राप्त हो जाती है। कुछ ऐसे भी समझदार एव बुद्धिमान् विद्यार्थी होते है जो तीन से भी कम यानी केवल दो बार मे ही पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेते है।

बड़े खेद का विषय है कि आज तक हमने जितने भी शिक्षक देखे उनमें से अधिकांश शिक्षा-विधि के ज्ञान से अनभिज्ञ एवं अपरिचित निकले। उन्हे इसके लाभो का ज्ञान न था। उनकी शिक्षा-विधि यह है कि वे सर्वप्रथम विद्यार्थियों को कठिन समस्याएँ पढ़ाते और सिखाते है और उनके समाधान का भारी बोझ उनके कमजोर दिमाग पर डालते है, और समझते है कि यह शिक्षाविधि ठीक है और लाभदायक भी। फिर वे ज्ञान की अन्तिम समस्याओ को प्रारम्भिक समस्याओ मे मिलाकर गड़बड़ कर देते है और जो समस्याएँ बाद मे पढ़ानी चाहिएँ उन्हे प्रारम्भ मे ही रटाने लगते है। वे इतना नही जानते कि किसी विद्या को समझने की योग्यता शनै:-शनै पैदा होती है। प्रारम्भ मे विद्यार्थी समस्त समस्याओ को समझने के योग्य नही होता और वह जो कुछ समझता भी है तो सक्षिप्त रूप से और वह भी क्रियात्मक उदाहरणों द्वारा, किन्तु उसकी योग्यता धीरे-धीरे ही बढ़ती है। ज्ञान की समस्याओं के बार-बार पढने से ही वह बढ़ती है, यहाँ तक कि उसे उस ज्ञान की समस्त समस्याओं की योग्यता प्राप्त हो जाती है। अब यदि यह भूल की जाय कि अन्तिम समस्याओ का बोझ प्रारम्भ से ही विद्यार्थी पर डाल दिया जाय, जब कि उसकी समझ एव बुद्धि कमजोर हो और उसमे योग्यता की भी कमी हो, तो उसकी बुद्धि उन्हे समझ नही पाती। उसको यह भ्रम होता है कि यह विद्या बड़ी कठिन है और उसकी योग्यता के बाहर है। अतः वह ज्ञानोपार्जन मे उपेक्षा बरतने लगता है और विद्याध्ययन से जी चुराने लगता है, अपितु उसका अभ्यास छोडने के उपाय ढूंढ़ता है। ये दुष्परिणाम अनुचित शिक्षा-विधि से उत्पन्न होते हैं।

फिर यह भी अनुचित बात है कि विद्यार्थी चाहे प्रारम्भिक शिक्षा ही प्राप्त कर रहा हो और उसने जिस पुस्तक को अपनी योग्यतानुसार शुरू कर रखा है, शिक्षक उसे उस पुस्तक को पढ़ाते समय उससे ऊपर की पुस्तकों की समस्याओं को पढ़ाने या सिखाने लगे। इससे उसकी समझ एव बुद्धि पर ऐसा बोझ पडेगा जिसे वह उठा न सकेगा। जब तक विद्यार्थी किसी ग्रथ को आद्योपान्त भली-भाँति समझ न ले और वह उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके इतना दक्ष न हो जाय कि अन्य पुस्तको के अध्ययन मे अपनी इस योग्यता से काम ले सके, तो ऐसी अवस्था मे उसका ध्यान कदापि न बँटाना चाहिए, कारण कि जब विद्यार्थी को किसी ग्रन्थ या विषय का कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो उस ग्रन्थ के शेष भागों को समझने की उसमे स्वतः योग्यता उत्पन्न हो जाती है और उनको समझने की इच्छा भी उसमें प्रकट होती रहती है, जो उसे शनै:-शनैः ज्ञान के मूल उद्देश्य तक पहुँचा देती है। अन्त में एक दिन उस विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि इसके विरुद्ध शुरू से ही प्रारम्भिक एवं चरम

समस्याओ का भेद-भाव समाप्त कर दिया जाय तो विद्यार्थी की कमजोर बुद्धि समस्याओ के समझने के योग्य न रहेगी और मद पड़ जायगी। वह निराश हो जायगा और अपने आपको ज्ञानोपार्जन मे असमर्थ समझकर ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न छोड़ देगा तथा शिक्षा प्राप्त करने से हाथ धो लेगा।

शिक्षा देते समय इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि एक ही विषय की शिक्षा बीच में अधिक समय का अन्तर देकर न प्रदान की जाय, कारण कि इस प्रकार क्रम तोड़ देने से भूल-चूक का अधिक भय हो जाता है। ज्ञान की विभिन्न समस्याओ की शिक्षा मे क्रम एव सम्बन्ध पर ध्यान न देने से सीखी हुई बाते भी मस्तिष्क से निकल जाती है और अभ्यास प्राप्त करना कठिन हो जाता है। इसके विरुद्ध जब प्रारम्भिक एवं अन्तिम समस्याओं को क्रम एव एक-दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाय तो इसमें भूलने का भी भय कम होता है और अभ्यास भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाता है, कारण कि अभ्यास के लिए किसी कार्य का क्रम से तथा लगातार होना परमावश्यक है। जब पिछले भाग को भुला दिया जाय तो अभ्यास कैसे हो सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा-विधि मे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि दो विषय एक ही समय पर न पढ़ाये जायँ, अन्यथा किसी मे भी कोई योग्यता न प्राप्त हो सकेगी, कारण कि इस प्रकार विद्यार्थी की बुद्धि एवं उसका ध्यान बँट जायगा। वह एक को छोडकर दूसरे की ओर जायगा और दूसरे को छोड़कर पहले की ओर आयेगा, फलतः दोनो से वचित रहेगा और दोनो मे से कोई भी ज्ञान उसे प्राप्त न हो सकेगा। अन्त मे वह दोनो विषयों को कठिन समझकर निराश हो जायगा। यदि वह एक ही विषय पर पूरा ध्यान देगा तो उसमे कुछ कर दिखायेगा।

अब यहाँ हम विद्यार्थियो को उनके एक बड़े लाभ की बात बताते है, जिसे उन्हे भली-भॉति समझ लेना चाहिए और जो उनके लिए बडी उपयोगी सिद्ध होगी, किन्तु इससे पूर्व निम्नलिखित प्रस्तावना को समझ लेना उचित होगा।

ईश्वर ने सोचने की शक्ति मनुष्य को विशेष प्राकृतिक देन के रूप मे दी है। उसने उसका उसी प्रकार सर्जन किया है जिस प्रकार अन्य अनेक वस्तुओं का। यह शक्ति मन मे क्रिया तथा गति के रूप मे मस्तिष्क के बीच के छिद्र की एक प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। कभी-कभी (इस विचार-शक्ति द्वारा) मनुष्य के सुव्यवस्थित एव क्रमवद्ध कार्य प्रारम्भ होते है। कभी-कभी इसका अर्थ यह होता है कि किसी बात का ज्ञान, जो पूर्व से प्राप्त न था, प्राप्त होना प्रारम्भ हो गया है। सोचने की योग्यता का कोई-न-कोई लक्ष्य होता है, जिसके दोनो अन्तिम सिरो का अनुभव करके किसी बात को स्वीकार

अथवा अस्वीकार किया जाता है। (विचार-शक्ति द्वारा) मध्य का मार्ग तत्काल निकाल लिया जाता है। यदि मध्य के मार्ग एक से अधिक है तो फिर इनमें से एक उचित मार्ग को चुनने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। सोचने की योग्यता की विधि यही है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया। इसी शक्ति के कारण मनुष्य अन्य पशुओ से भिन्न है।

तर्कशास्त्र का उद्देश्य यही है कि वह विचारपूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति को भूल से बचाये रखे। यह प्रवृत्ति यद्यपि सत्य की खोज में ही रहती है, किन्तु कभी-कभी इसे भी ठोकर लग जाती है और वह सन्मार्ग से विचलित हो जाती है और वह दोनों सिरों की कल्पना तथ्य के विरुद्ध कर बैठती है। तब समस्याओं की व्यवस्था एव उनका क्रमबन्धन सन्दिग्ध हो जाते है। तब तर्कशास्त्र ही इस विषय में उसका पथ-प्रदर्शक बनकर धोखे एव भूल से उसे बचाता है, मानो तर्कशास्त्र एक कला है जो विचार-शक्ति को सन्मार्ग पर खीच लाती है और उससे उचित कार्य करा लेती है। क्योकि यह एक कला है और विज्ञान भी, अतः कभी-कभी इसकी आवश्यकता नही भी पड़ती। हमने स्वयं अनेक विद्वान् ऐसे देखे है जिन्हें अपनी विद्या मे कुशलता प्राप्त होती है, किन्तु तर्कशास्त्र से उनका परिचय तक नही होता, फिर भी उन्हे सफलता मिलती है, विशेष रूप से जब उद्देश्य भी ठीक हो और ईश्वर की कृपा पर उन्हें भरोसा भी हो। ऐसी अवस्था मे उन्हें इन विज्ञानों की कोई आवश्यकता नही होती और यह होना भी न चाहिए, कारण कि कहाँ ईश्वर की कृपा और उसकी देन और कहाँ मनुष्यो के बनाये हुए ज्ञान-विज्ञान। तर्कशास्त्र की चिन्ता किये बिना बुद्धिमानो का विवेक स्वतः सन्मार्ग पर चलता है और मध्य मार्ग का पता लगाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थी के लिए एक कठिनाई यह भी है कि वह शब्दों के अर्थ समझे और उनके तात्पर्य को अपने दिमाग मे रखे। जब कोई शब्द किसी पुस्तक मे देखे अथवा किसी से सुने तो उसके शुद्ध अर्थ को अपने मस्तिष्क मे बिठा ले। विद्यार्थी को इन सब कठिनाइयो को सुलझाकर अपनी सोचने की शक्ति को लक्ष्य की ओर लगाना चाहिए।

सर्वप्रथम लेख बोले जानेवाले शब्दों को प्रकट करते है। इन्हे समझना सरल होता है। फिर बोले जानेवाले शब्दो द्वारा विचार व्यक्त किये जाते है। •इसके अतिरिक्त विचारो को उचित रूप से व्यवस्थित करने के अलग नियम होते है, जिनका पता तर्क-शास्त्र की कला से चलता है और इन्ही से निष्कर्ष निकाले जाते है। अन्त में सुव्यव-

स्थित विचारो द्वारा चितन-शक्ति की सहायता से ईश्वर पर भरोसा करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति इन कठिनाइयो एवं रुकावटों को तेजी से तथा सुगमतापूर्वक नही पार कर सकता। बहुत-से लोगो की बुद्धि शब्दो के गोरख-धधे मे फँसकर रह जाती है अथवा दलीलों के मध्य मे ठोकर खाने लगती है और विभिन्न मतों एव सन्देहो की शिकार हो जाती है। इससे थककर वह व्यक्ति अपने उद्देश्य को नही प्राप्त कर पाता। ईश्वर ही जिसका पथ-प्रदर्शन करे वही इन कठिनाइयो को झेलता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।

यदि विद्यार्थी को कही ये रुकावटे पेश आ जायँ या वह अपनी समझ के अनुसार चलकर धोखा खा जाय, या उसका मस्तिष्क सन्देहों के कारण भटकने लगे, तो ऐसी अवस्था में उसको चाहिए कि शब्दो की उलझन से अपने आपको मुक्त करके सन्देहों से बचकर निकल जाय। समस्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों को त्यागकर स्वाभाविक चिन्तन-शक्ति से काम ले। मस्तिष्क मे जो विचार उत्पन्न हो रहे हों उन्हें त्यागकर ध्यान को केवल वाछित लक्ष्य की ओर, जैसा कि बड़े-बड़े विचारक करते रहे हैं, लगाये। यदि विद्यार्थी हमारे बताये हुए नियमो का पालन करेगा तो विजय एवं सफलता के द्वार उसके लिए उसी प्रकार खुल जायँगे, जिस प्रकार भूतकाल के लोगों के लिए खुले थे। जिस प्रकार वे लोग अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके उसी प्रकार वह भी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगा। उसकी चिन्तन-शक्ति उस सन्मार्ग को स्वतः पा लेगी जिसका निर्देश ईश्वर प्रत्येक उचित चिन्तन शक्तिवाले के लिए किया करता है। जब वह इस अवस्था को प्राप्त हो जाय तो विचारों को दलीलों के साँचे में ढालने का उसे प्रयत्न करना चाहिए और तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा उन दलीलों की जाँच करनी चाहिए। फिर शब्दो के वस्त्र पहनाकर अपने विचारों को व्यक्त करना चाहिए।

यदि विद्यार्थी उस तथ्य को न समझ सका, जिसका हमने उल्लेख किया है और वह मतभेदों एवं सदेहों के कारण दलीलों के जाल में उलझा रहा तथा झूठ एव सच के बीच झूलता रहा, तो इन सिद्धान्तों के वैज्ञानिक एवं पारिभाषिक होने के कारण इनके विभिन्न रूप एक ही प्रकार के दृष्टिगत होगे और एक-दूसरे के समान एवं अनुरूप होने के कारण सत्य एवं असत्य मे भेद न किया जा सकेगा। इस प्रकार सन्देह बढता जायगा और वास्तविक उद्देश्य तिरोहित होता जायगा। अन्त में विचारक थककर बैठ रहेगा। इस प्रकार आधुनिक काल के वाद-विवाद करनेवालों एवं विचारकों को इसी समस्या का सामना करना पड़ता है और उनमें भी उनको, जो प्रारम्भ में फ़ारसी

भाषा-भाषी थे, अथवा जिनको तर्कशास्त्र से अत्यधिक रुचि थी, यह बाधा अधिक सताती थी। वे तर्कशास्त्र को ही सत्य एव असत्य की कसौटी समझते थे। ऐसे लोग दलीलों एवं सन्देहों मे पूर्णतः खो जाते थे और उनकी मुक्ति बडी कठिनाई से हो पाती थी। वे इस तथ्य से अनभिज्ञ होते थे कि सत्य की खोज स्वाभाविक चिन्तन-शक्ति द्वारा उस समय हो सकती है जब उसे भ्रमों से मुक्त कर लिया जाय। सोचनेवाले की दृष्टि ईश्वर की कृपा की ओर लगी रहती है। तर्कशास्त्र का काम तो केवल इतना है कि वह इसी चिन्तन-शक्ति को विकसित तथा स्पष्ट करता है।

अब इस विषय को समाप्त करने के पूर्व हम यह आग्रह अवश्य करेंगे कि आप हमारी बातों पर विश्वास एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखे और जब कभी समस्याओं के समझने में कठिनाई हो तो ईश्वर की कृपा पर भरोसा रखे। ईश्वर ने चाहा तो दैवी प्रकाश एव प्रेरणा के द्वार आपके लिए खुल जायेंगे और सत्य एव असत्य का मार्ग आपके लिए प्रकट हो जायगा।

"ईश्वर ही अपनी कृपा द्वारा पथ-प्रदर्शन करता है। ज्ञान केवल ईश्वर द्वारा ही प्राप्त होता है।"

(३३) सहायक विद्याओं को शिक्षा देते समय अधिक न पढ़ाना चाहिए और उनकी विभिन्न क़िस्में विस्तार से न पढ़ानी चाहिएँ

प्रचलित ज्ञान-विज्ञान दो प्रकार का है। एक वह जो स्वतः सिद्ध और मूलोद्देश्यीय है, जैसे शरा सम्बन्धी क़ुरान की टीकाएँ, हदीसे, फिकह कलाम अथवा दर्शन-शास्त्रीय भौतिक विज्ञान एव आत्मविद्या। दूसरा वह ज्ञान जो उपर्युक्त विषयो के ज्ञान की प्राप्ति मे सहायक एव साधन होता है। सहायक विषयों मे अरबी भाषाशास्त्र, गणित एव वे सब अन्य विषय भी जो शरा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्तकर ने मे सहायक होते हैं, शामिल है। तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र के ज्ञान के लिए सहायक होता है। आधुनिक काल के विद्वान् तो इसे कलाम एव फिकह के सिद्धान्तो के ज्ञान के लिए भी सहायक बताते है।

अब इनमे से जिन विद्याओ को मूल विज्ञान की श्रेणी प्राप्त है, यदि इन विषयों को सविस्तर समझाया जाय और समस्याओं की शाखा-प्रशाखाएँ निकाली जायँ, उनकी विभिन्न किस्में समझायी जायँ, दलीलो एव प्रमाणो की प्रचुरता हो, तो इसमे कोई आपत्ति नही, अपितु लाभ ही है,कारण कि इस प्रकार उन विज्ञानो मे रुचि रखनेवालों को उनका अभ्यास हो जाता है और बारीकियाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। इसके विपरीत

अरबी भाषाशास्त्र, तर्कशास्त्र इत्यादि सहायक विषयों का अध्ययन सरसरी तौर पर होना चाहिए अर्थात् वह इतना ही हो कि जिससे अन्य विज्ञान सीखने मे उससे सहायता मिल सके। न तो उन विषयो का अधिक विस्तार करना उचित है और न समस्याओ की शाखाओ की शाखाएँ निकालना। यदि हम ऐसा करेगे तो हम उन्हें मूल विज्ञान की श्रेणी प्रदान करेगे, न कि सहायक विद्या की। जब सहायक विद्या की श्रेणी उन्हें प्राप्त न रही तो उनका मूल उद्देश्य अपने स्थान से हट जाता है और उन विषयों का अध्ययन अनावश्यक एव निरर्थक हो जाता है। यदि सहायक विद्याओं का विस्तार से अध्ययन किया जाय, ताकि पूर्ण अभ्यास हो जाय और समस्याओं को फैलाया जाय, तो उनमे उलझकर मनुष्य प्रायः मूल-विज्ञान से वचित रह जायगा, हालाँ कि उनका महत्त्व बहुत अधिक है। मनुष्य को अपने जीवनकाल में दोनों प्रकार के ज्ञान में कुशलता प्राप्त करना कठिन हो जाता है। विवश होकर उसे एक ही वस्तु के अध्ययन में अपना समस्त जीवन लगा देना पडता है, तो फिर ऐसी अवस्था मे मनुष्य सहायक विद्याओं के लिए अपना जीवन क्यों नष्ट करे और अनावश्यक चीज मे अपने प्राण किस कारण खपाये।

आजकल के विद्वान् इसी अनुचित मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। व्याकरण, तर्कशास्त्र एवं फिकह के सिद्धान्तो से वे बात मे बात निकालते चले गये है और इस प्रकार उन्होने बूँद को नदी और राई को पहाड़ बनाकर खडा कर दिया है। वे सिद्धान्तों की शाखाओ में से शाखाएँ निकालते चले गये है और दलीलों का गोरख-धधा उन्होने अलग खड़ा कर दिया है। इस प्रकार वे सहायक विद्याएँ अपना स्थान भूलकर मूल विज्ञान बन गयी है। इन विद्याओ मे कभी-कभी इतने लम्बे-चौड़े वाद-विवाद खड़े कर दिये गये है जिनका न तो मूल विज्ञान से कोई सम्बन्ध है और न आवश्यकता। इस प्रकार यह शिक्षाविधि अनावश्यक एवं विद्यार्थियों के लिए हानिकारक बन गयी है, कारण कि उन्हे मूल विज्ञान की अपेक्षा सहायक विद्याओं को अधिक महत्त्व देना पड़ता है। जब विद्यार्थी सहायक विद्याओं के अध्ययन में ही अपने प्राण खपा देंगे, तो वे जीवन का वास्तविक लक्ष्य मूल ज्ञान कब सीख सकेगे? अतः शिक्षकों के लिए यह परमावश्यक है कि वे सहायक विद्याओं को अधिक विस्तार से न पढायें, अपितु विद्यार्थियों को केवल उसका उद्देश्य भर समझा दे। यदि कोई साहस करके उन्ही के पीछे लग जाय और उन्ही का हो जाय तो फिर यह उसकी इच्छा है कि जितनी चाहे उनमें उन्नति करे।

"प्रत्येक व्यक्ति को उन्ही बातों में सफलता होती है जिनके लिए उनका सर्जन हुआ है।"

(३४) बच्चों की शिक्षा एवं इस्लामी देशों में शिक्षा की विभिन्न विधियाँ

इस्लामी नियमों के अनुसार क़ुरान शरीफ की शिक्षा बच्चों के लिए एक धार्मिक आवश्यकता कही गयी है। सभी नगरों में इसी प्रथा का पालन होता है। इसका उद्देश्य यह है कि इस शिक्षा से बच्चों के हृदय मे धार्मिक विश्वास दृढ़ हो जाते है और कुरान शरीफ की आयतों पर उनका विश्वास जड़ पकड़ जाता है। कुरान शरीफ के साथ-साथ हदीस के कुछ उद्धरणों के पढ़ाने की प्रथा भी पहले से चली आ रही है। सोचा यह गया है कि बच्चा जब प्रारम्भ से क़ुरान शरीफ़ पढ़ना प्रारम्भ करेगा तो उसकी बाद की शिक्षा का आधार भी क़ुरान शरीफ़ ही रहेगा और समस्त ज्ञानों का निर्माण इसी शुभ नीव पर होगा, क्योंकि बाल्यावस्था में पायी हुई शिक्षा बद्धमूल होती है। यह बात स्पष्ट है कि हृदय में जो चीज पहले आरूढ़ होगी वह भविष्य के अभ्यासों की जड़ बनेगी। यह बात भी स्पष्ट है कि जैसी नीव होगी वैसा ही भवन भी बनेगा।

कुरान शरीफ की शिक्षा देने के विभिन्न नियम विभिन्न देशों मे प्रचलित है और जैसे नियम प्रचलित है, वैसे ही परिणाम भी होते है। मग़रिबवाले अपने बच्चो को केवल कुरान शरीफ़ की शिक्षा देते है और इसके साथ-साथ लिखना भी सिखाते है एव कुरान शरीफ़ के विद्वानों के मध्य लिपि-विषयक जो मतभेद है उन्हे भी बताते जाते है। कुरान शरीफ के साथ हदीस, फ़िक़्ह, पद्य एवं अरबों की कविताओ मे से कोई चीज उस समय तक नही पढ़ाते जब तक कि क़ुरान शरीफ़ मे उसे पूरी कुशलता न प्राप्त हो जाय, अथवा वह उसका अध्ययन न त्याग दे, और जब क़ुरान शरीफ़ का अध्ययन त्याग दिया तो मानो सभी विद्याओं से पृथक् हो गया। इस प्रकार मगरिब के नगरों एव उनसे मिले हुए बरबर क़ौम के ग्रामों में बच्चों की शिक्षा की यही विधि प्रचलित है, अपितु यदि कोई युवावस्था के बाद भी शिक्षा प्राप्त करने की रुचि के कारण क़ुरान शरीफ पढ़ना प्रारम्भ करे तो इसी विधि का पालन किया जाता है। यही कारण है कि मगरिब-निवासी कुरान शरीफ़ के हाफिज होते है और क़ुरान की लिपि का भी उन्हें बडा अच्छा ज्ञान होता है।

उन्दुलुस मे यह शिक्षा-विधि प्रचलित है कि क़ुरान शरीफ तथा अन्य पुस्तकों को साथ-साथ पढ़ाते है। क्योकि वे कुरान शरीफ़ को दीन (इस्लाम) एव दीन के ज्ञानों का स्रोत समझते है, अतः उसे विशेष महत्त्व देकर उसके साथ अरबी पद्य और उसके मूल सूत्रो की शिक्षा भी देते है। अरबी भाषा-शास्त्र के नियम भी रटाते है, पत्र-व्यवहार

को भी विशेष महत्त्व देते है, यहाँ तक कि बालक युवावस्था को प्राप्त होते-होते अरबी भाषा एवं पद्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पत्र-व्यवहार एवं सुलेख में तो वह पूर्ण रूप से दक्ष हो जाता है और इस योग्य हो जाता है कि यदि वहाँ उच्च शिक्षा का भी प्रबंध हो तो वह अन्य विषयो मे भी बहुत कुछ कुशलता प्राप्त कर सकता है। पर वहाँ उच्च शिक्षा का कोई प्रबध नही है। अतः उसकी शिक्षा बस वहीं रुक जाती है। फिर भी यदि उसे कोई अच्छा गुरु प्राप्त हो जाय तो शिष्य में अच्छी ख़ासी योग्यता पैदा हो जाती है, जो बाद मे ज्ञान-विज्ञान के द्वार खोल देती है।

इफ़रीकियावालो के यहाँ शिक्षा की यह विधि है कि क़ुरान शरीफ़ की शिक्षा के साथ-साथ अधिकाश हदीस की भी शिक्षा दी जाती है और विज्ञान के सिद्धान्त एव समस्याएँ भी साथ ही साथ याद करायी जाती है। किन्तु क़ुरान शरीफ़ को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कुरान शरीफ को भली-भाँति समझ लेने के उपरान्त उसके विभिन्न उच्चारणों की शिक्षा को बड़ा महत्त्व दिया जाता है और साथ-ही-साथ पत्र-व्यवहार की शिक्षा की भी उपेक्षा नही की जाती। सक्षेप मे उनकी शिक्षा-विधि, उन्दुलुस की शिक्षा-विधि से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, कारण कि इफरीकिया मे शिक्षा उन्दुलुस के विद्वानों द्वारा, जब वे ईसाइयों से पराजित होकर स्वदेश त्यागकर तूनुस पहुँचे और तूनुसवालों ने उनसे शिक्षा प्राप्त करनी प्रारम्भ की, पहुँची है।

पूर्ववालो के विषय मे भी यही सुना जाता है कि वहाँ भी कुरान शरीफ की शिक्षा के साथ अन्य विद्याओ की भी शिक्षा दी जाती है, किन्तु यह पता नही कि वे किस बात पर अधिक जोर देते है। जहाँ तक हमे ज्ञात है, वे युवावस्था मे क़ुरान शरीफ, धार्मिक विद्याओं तथा उनके सिद्धान्तों की शिक्षा देते है और लिखना साथ-साथ नही सिखाते, अपितु उसे सिखाने के लिए उनके यहाँ सुलेखवेत्ता पृथक् होते है, जो अन्य विद्याओं के समान सुलेख की शिक्षा अलग से देते है। सक्षेप मे बच्चो की पाठशालाओ मे इसका कोई उचित प्रबध नही। बच्चों को केवल तख़्तियाँ दे दी जाती है जिन पर वे साधारण रूप से लिखना सीख जाते है। जिसको लिखने की कला मे कुशलता प्राप्त करनी होती है वह अपनी योग्यतानुसार अलग से समय निकालकर इस कला मे जो लोग कुशल होते है, उनके पास जाता है।

क्योकि इफरीकिया तथा मगरिबवाले शिक्षा को कुरान शरीफ तक सीमित रखते है, अत. उन्हे (अरबी) भाषा का कोई ज्ञान नही हो पाता। कारण कि यह बात स्पष्ट है कि कुरान शरीफ मनुष्य की रचना नही, जिसे उदाहरण-स्वरूप अपने समक्ष रखकर उसीके समान लिखने का कोई अभ्यास कर सके। इसी कारण विद्यार्थियो को

रोका जाता है कि वे क़ुरान शरीफ की शैली का अनुकरण न करें, कारण कि मनुष्य ईश्वर की शैली का अनुकरण कर ही कैसे सकता है। उधर उन लोगो को क़ुरान शरीफ की रचनाशैली के अतिरिक्त किसी अन्य रचनाशैली का अभ्यास भी नही कराया जाता, जिनमे उन्हें कुशलता प्राप्त हो। इसी वजह से इफ़रीकिया तथा मगरिबवाले अरबी भाषा-शास्त्र के ज्ञान मे कच्चे होते है और लेखो को आँख बन्द करके रटा करते है। यदि उन्हे किसी विषय पर कई तरीको से कुछ लिखने का आदेश दे दिया जाय तो उनका कोई बस नही चलता। इनमे भी इफरीक़िया वालो को कुछ थोडा-बहुत आता भी है, कारण कि जैसा हम उल्लेख कर चुके है, वे क़ुरान शरीफ के साथ अन्य विद्याओ की भी शिक्षा पाते है। इस प्रकार मग़रिबवालो की अपेक्षा उन्हें अरबी भाषा-शास्त्र का भी कुछ ज्ञान होता है, किन्तु अधिक योग्यता उनको भी नहीं होती। अब रहे उन्दुलुसवाले, तो वे विभिन्न विज्ञानो की प्रारम्भ से ही शिक्षा देते है और अरबी भाषा-शास्त्र एव पद्य मे शुरू से ही अभ्यास कराने लगते है। अत उनको पूर्ण कुशलता प्राप्त हो जाती है और अ़रबी भाषा-शास्त्र मे दक्ष लोग उनमें मिल जाते है। किन्तु यह भी सत्य है कि मूल विज्ञान, क़ुरान शरीफ़ एव हदीस का उनका ज्ञान कच्चा रहता है। उन्दुलुसवालो मे अरबी भाषा-शास्त्र के बड़े-बडे विद्वान् भी मिलते है और साधारण ज्ञाता भी। बाल्यावस्था से ही जैसी शिक्षा लोगो को दी जाती है, वैसी ही उन्हे योग्यता प्राप्त हो जाती है।

काजी अबू बक्र बिन अल अरबी[1] ने "रेहलह" नामक अपने ग्रथ मे शिक्षा-विधि का एक अनोखा नियम लिखा है और उसी पर बार-बार जोर दिया है। उसने उन्दुलुस वालो के समान अरबी भाषा-शास्त्र की शिक्षा को समस्त ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा पर प्राथमिकता प्रदान की है और इसका कारण यह लिखा है कि पद्य अरब के इतिहास एव साहित्य का स्रोत है, अतः अरबी भाषा-शास्त्र की रक्षा हेतु सर्वप्रथम पद्य की ही शिक्षा होनी चाहिए। तदुपरान्त उसने गणित की शिक्षा का महत्त्व बताया है। उसमे पूर्ण अभ्यास प्राप्त हो जाने के उपरान्त कुरान शरीफ की शिक्षा को महत्त्व प्रदान किया है। क़ाजी अबू बक्र का मत है कि इस शिक्षा-विधि से कुरान शरीफ का पढना बड़ा सरल हो जाता है। उसने अपने देश की अशुद्ध शिक्षा-विधि पर खेद प्रकट किया है और लिखा है कि लोग क्यो बच्चो को प्रारम्भ से कुरान शरीफ रटाया करते है। वे एसी वस्तु को पढते है जिसे वे नही समझते और उन बातो के लिए परिश्रम करते है जिनका उनके लिए

१. उसने 'मराक़े अज़् ज़ुल्फ़ा' नामक अपने ग्रन्थ में शिक्षा की समस्याओं पर बड़े विस्तार से लिखा है।

कोई महत्त्व नहीं। उसने बताया है कि सर्वप्रथम धर्म के सिद्धान्त, फिर फ़िक़ह के सिद्धान्त, उसके उपरान्त वाद-विवाद के नियम और फिर हदीस की शिक्षा दी जाय। काजी अबू बक्र ने भी दो विद्याओ को एक साथ पढ़ाने का विरोध किया है और इसकी अनुमति उसी अवस्था मे दी है जब कि विद्यार्थी मे असाधारण उत्तम बुद्धि एव विवेक पाया जाता हो।

इसमे सन्देह नही कि यह शिक्षा-विधि अत्यन्त समीचीन है। किन्तु प्रचलित प्रथा इसके विरुद्ध है। प्रथाएँ बड़ी प्रबल होती है। कुरान को सर्वप्रथम पढाने की प्रथा इसी प्रकार चली कि इसका उद्देश्य पुण्य तथा आशीर्वाद प्राप्त करना होता था। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य उस खतरे से बचना होता था जो किसी दुर्घटनावश बाल्यावस्था मे ही शिक्षा की समाप्ति के कारण उत्पन्न हो सकता है, क्योकि उस हालत मे बालक कुरान शरीफ की शिक्षा से भी वचित रह जाता है। फिर यह भी है कि बच्चा जब तक अबोध होता है तब तक वह हर प्रकार से अधिकार मे रहता है। उसको जो चाहिए सिखाइए। पर जब वयस्क होकर वह अधिकार से बाहर हुआ तो न जाने किस मार्ग पर निकल जाय। इसी कारण कुरान शरीफ बाल्यावस्था मे ही पढा देते है कि आगे चलकर क़ुरान शरीफ़ से तो वह अनभिज्ञ न रहे। यदि किसी प्रकार विश्वास हो जाय कि शिक्षा बन्द न हो जायगी, अपितु चलती रहेगी, तो फिर काजी अबू बक्र की विधि ही उचित है। वह पूर्व एव पश्चिम की शिक्षा-पद्धतियो से उत्तम है।

"ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय मे परिवर्तन नही कर सकता।"

(३५) विद्यार्थियों के प्रति कठोरता उनके लिए हानिकारक होती है

शिक्षा में कठोरता का प्रदर्शन बडा हानिकारक है। छोटे-छोटे बच्चो पर उसका विशेपत बुरा प्रभाव होता है, कारण कि यह अयोग्यता का प्रमाण है। केवल शिष्यो के ही प्रति कठोरता से हानि नही होती, अपितु दासों तथा सेवको के प्रति भी यदि कठोरता का व्यवहार किया जाय तो वे हताश हो जाते है। उनके हृदय मे कोई उमग, उल्लास एव सतोप नही रह जाता है। वे शिथिल हो जाते है और झूठ, धूर्तता एव चालबाजी से काम लेने लगते है। कुछ दिन इसी प्रकार रहने से, ये सब दोष आदत एव स्वभाव के रूप मे उनके हृदय मे बैठ जाते है। यह सब कुछ दड एव कठोरता के भय से होता है। उससे विद्यार्थी के हृदय का स्वाभिमान एव मर्यादा-पालन तथा अपनी और अपने घरवालों की प्रतिरक्षा की क्षमता समाप्त हो जाती है। वह अन्य लोगों पर बोझ बन जाता है। न उसमे किसी योग्य बनने की रुचि रहती है और न नैतिक

आचरण की इच्छा। संक्षेप में वह मानवता के गुणों को भूल जाता है और अपावन बातों का आदी होकर अपमान के निम्नतम गर्त में गिर जाता है। केवल व्यक्तिगत जीवन की ही यह कहानी नही है, अपितु कौमों की भी यही दशा है। जब वे आतंक एव कोप के बंधनों मे जकड़ी रहती है, अत्याचार एवं जुल्म के वातावरण मे पलती है, तो उनमे से मानवता निकल जाती है। यहूदियों की क़ौम को देख लीजिए कि उनके हृदय में दुष्टता कितनी आरूढ़ हो गयी है। प्रत्येक देश में वे दुष्टता, छल एवं धूर्तता के लिए कुप्रसिद्ध है। इसका भी वही कारण है जिसका हमने उल्लेख किया।

इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए शिक्षक को अपने शिष्य के तथा पिता को अपने पुत्र के प्रति अधिक कठोरता एवं दड का प्रयोग न करना चाहिए। मुहम्मद बिन जैद ने शिक्षकों एव विद्यार्थियो से सम्बन्धित आदेशो के विषय मे जिस ग्रन्थ की रचना की है, उसमे लिखा है कि यदि बालकों को दड देने की आवश्यकता ही पड जाय, तो तीन कोडो से अधिक न मारना चाहिए। हजरत उमर का कथन है कि "जिन्हे शरा द्वारा शिक्षा नही प्राप्त हो सकती उन्हे ईश्वर शिक्षा नही प्रदान करता।" उनका उद्देश्य यह था कि वे आत्मा को अनुशासन सम्बन्धी दंड के अपमान से सुरक्षित रखना चाहते थे और उन्हें इस बात का विश्वास था कि अनुशासन सम्बन्धी जो दड शरा मे बताये गये है, वे मनुष्य को नियत्रण मे रखने के लिए पर्याप्त है, कारण कि शरा मे मनुष्य के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

इसी प्रकार रशीद ने जब अपने पुत्र मुहम्मद अल अमीन को उसके गुरु खलफ[१] बिन अहमर के सुपुर्द किया तो शिक्षा सम्बन्धी बड़े बहुमूल्य आदेश दिये। उसने कहा—"अहमर ! तुम जानते हो कि मैंने अपनी जान तथा अपने दिल के टुकड़े को तुम्हारे नियंत्रण में दिया है। उस पर अपना पूरा अधिकार रखो। उसे अपना आज्ञाकारी बनाओ। उसके सम्मुख तुम अपना वही स्थान रखो जो मैंने तुम्हें प्रदान किया है। उसको कुरान पढाओ। इतिहास सुनाओ। पद्य एव कविता की शिक्षा दो। मुहम्मद साहब की सुन्नत की भी शिक्षा दो। उसको यह सिखाओ कि किस अवसर पर बात करे और किस प्रकार अपनी बात प्रारम्भ करे। विशेष अवसरों के अतिरिक्त उसको हँसने से रोको। इसकी आदत डालो कि जब बनी हाशिम[२] के गण्य-मान्य लोग आये

१. ख़लफ़ बिन अहमर की मृत्यु ७९६ ई० तथा ८०५ ई० के मध्य में हुई।
२. ख़लीफ़ा के अब्बासी रिश्तेदार।

तो वह उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया करे। इसी प्रकार जब सेनापति आया करे तो भी वह उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया करे। सक्षेप में कोई क्षण ऐसा व्यतीत न हो जिसमे तुम उसे कोई न कोई शिक्षा न दो। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखो कि वह उकता न जाय। उसका उत्साह समाप्त न हो जाय और उसमें शिथिलता उत्पन्न न होने पाये। उसको अधिक छूट भी न दो कि वह स्वतंत्र ही हो जाय और इसी का आदी बन जाय। सर्वप्रथम उसे नरमी एव कृपापूर्वक ठीक करो। यदि इस प्रकार वह ठीक न हो तो कठोरता एव दंड से काम लो।"

(३६) ज्ञान हेतु स्वदेश त्यागने एवं समकालीन विद्वानों के साक्षात्कार से ज्ञान की वृद्धि होती है

इसका कारण यह है कि मनुष्य विज्ञान, नैतिकता, धर्म एव गुणो की शिक्षा या तो दीक्षा द्वारा प्राप्त करता है, या साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा। किन्तु जो बात साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा प्राप्त होती है, वह हृदयगम हो जाती है। शिक्षको की सख्या जितनी अधिक होगी उतना ही अभ्यास अधिक एव दृढ होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा के पारिभाषिक शब्द अलग-अलग तथा भिन्न-भिन्न होते है, यहाँ तक कि विद्यार्थी को इस बात का भ्रम हो जाता है कि ये पारिभाषिक शब्द उसी विज्ञान के अग हैं या नही। जब वह विभिन्न विद्वानो से भेट करता है और उनकी नाना प्रकार की शिक्षा-विधियों से परिचित होता है तो उसकी आँखे खुल जाती है और वह पारिभाषिक शब्दो का विवेचन करने योग्य होता है और उन्हे वास्तविक विज्ञान से पृथक् समझने लगता है। उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि पारिभाषिक शब्द केवल शिक्षा के ऐसे साधन है जिनका विद्वान् लोग सुविधा के लिए प्रयोग करते है। इसके अतिरिक्त उनका कोई मूल्य नही। अत: मौलिक ज्ञान एव परिभाषाओ का अन्तर समझ लेने की योग्यता के कारण विद्यार्थी को दक्षता प्राप्त करने मे सुगमता हो जाती है और विद्वत्ता के द्वार उसके लिए खुल जाते है। इन्ही कारणो से विद्यार्थियों का विद्वानों की गोष्ठी मे उपस्थित रहना परमावश्यक बताया गया है और इसी कारण यात्रा करना भी उपादेय कहा गया है।

"ईश्वर ही जिसे चाहता है, सन्मार्ग हेतु उसका पथ-प्रदर्शन करता है।"

(३७) विद्वान् लोग राजनीति से अपरिचित एवं अनभिज्ञ होते है[1]

१. इसका अनुवाद नहीं किया गया।

(३८) इस्लाम के अधिकांश विद्वान् अजमी हैं

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि शरा तथा बुद्धि सम्बन्धी दोनो प्रकार के ज्ञानों में अजमियों को अरबो से अधिक श्रेष्ठता प्राप्त है, हालाँ कि इस्लाम धर्म अरब से निकला और स्वयं हजरत मुहम्मद अरबों में सर्वश्रेष्ठ थे, इसके विरुद्ध बिरला ही कोई उदाहरण मिलेगा। इसका कारण यह है कि अरब प्रारम्भ मे बदवी एव सरल स्वभाव के होने के कारण ज्ञान-विज्ञान से अपरिचित तथा कला-कौशल से अनभिज्ञ थे। लोग शरा सम्बन्धी आदेशो को उचित तथा अनुचित कार्यों के रूप मे एक-दूसरे तक पहुँचाते थे और मुहम्मद साहब एव उनके मित्रो की शिक्षा के आशीर्वाद से इन आदेशों के स्रोत क़ुरान तथा सुन्नत का उचित ज्ञान उन्हे हो चुका था। सभ्यता की इस अवस्था को "अरब" अवस्था कहा जाता है। उस युग मे वैज्ञानिक ढग से पठन-पाठन तथा ग्रथ रचना की चर्चा न थी और न उस समय तक उनको इनकी आवश्यकता ही पड़ी थी। मुहम्मद साहब के मित्रों तथा उनके बाद के लोगो मे ज्ञान-विज्ञान एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति तक पहुँचते रहे और लिखित शब्दों एव पृष्ठो के बन्धन की उन्हें आवश्यकता नही हुई।

उस युग के विद्वान् क़ुर्रा की उपाधि द्वारा सम्बोधित किये जाते थे, कारण कि वे पुस्तके पढ़ सकते थे, पर उनकी गणना उम्मियो में न होती थी। मुहम्मद साहब के मित्र क्योंकि अरब (बदवी) थे, अत. उनमे साधारण रूप से यह गुण पाया जाता था। इसी कारण कुर्रा की उपाधि द्वारा अल्लाह की किताब को पढनेवालो को सम्मानित किया जाता था। इस प्रकार वे अल्लाह की किताब एव मुहम्मद साहब की सुन्नत को पढनेवाले ही होते थे और उन्ही से शरा सम्बन्धी आदेश निकलते थे। हदीस को कुरान शरीफ की टीका के समान सम्मानित समझा जाता था। मुहम्मद साहब ने स्वय कहा है—"मै तुम मे दो चीजे छोड़े जा रहा हूँ। जब तक तुम उनको थामे रहोगे, कभी न बहकोगे। वे दोनों चीजें है अल्लाह की किताब तथा मेरी सुन्नत।"

रवायतो का क्रम जब व्यक्तिश: मौखिक संवाद द्वारा चलते-चलते हारूनुर्रशीद के राज्य काल के प्रारम्भ तक मद पड़ा, तो इस बात की आवश्यकता हुई कि कुरान की टीका एव हदीस के ज्ञान को ग्रथो का रूप दिया जाय, ताकि ये ज्ञान कही इसी प्रकार नष्ट न हो जायँ। फिर साथ-साथ इस बात की आवश्यकता हुई कि ठीक-ठीक प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त किया जाय। रवायतो की चर्चा करनेवालो की सत्यता एव असत्यता की जाँच की जाय, ताकि ठीक हदीस को गलत हदीस से पृथक् किया जा सके। सके उपरान्त जब साधारण से साधारण घटना का कुरान शरीफ तथा सुन्नत से प्रमाण

ढूंढ़ा जाने लगा तो अजम के मेल-जोल से अरबी भाषा में दोष आ गये। जब यह दशा हुई तो व्याकरण के नियम बनाये गये। शरा सम्बन्धी विषयों के लिए अन्य सहायक विद्याओं की भी आवश्यकता पड़ी, जिनसे अरबी भाषा-शास्त्र के नियमों का उद्भव हुआ और तुलनात्मक युक्तियों एव तर्क के सिद्धान्तों का भी प्रचार हुआ। क्योंकि इस्लाम मे अधर्म भी प्रचलित हो गया था, अत: इस बात की भी आवश्यकता होने लगी कि तर्क पर आधारित दलीलो द्वारा इस्लामी सिद्धान्तों एवं नियमों की पुष्टि की जाय। उनके प्रति जो सन्देह किया जाता है तथा जो आलोचनाएँ होती है, उनका निराकरण किया जाय। अत: इस ज्ञान-भण्डार ने कला का रूप धारण कर लिया और उसकी शिक्षा दी जाने लगी।

पिछले अध्यायो मे हम यह सिद्ध कर चुके है कि कला का जन्म नगर के जीवन एव सभ्यता की उन्नति के कारण होता है, और यह भी उल्लेख हो चुका है कि अरब-वाले नगर की सभ्यता से अपरिचित थे, अत. वे इस ज्ञान से भी अनभिज्ञ रहे। किन्तु अजम, मवाली तथा नगर-सभ्यता से परिचित अन्य कौमे, जो कला-कौशल मे अजम के समान थी, नगर-सस्कृति एवं सभ्यता मे दक्ष हो गयी। उनकी अतीत से यही दशा चली आ रही थी, अत: यह नया ज्ञान उन्ही के यहाँ अधिक प्रचलित हुआ। व्याकरण मे सीबावै को और उसके बाद फ़ारिसी तथा जज्जाज को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। वे सबके-सब कुल-क्रमानुसार अजमवशी थे। किन्तु उन्होने अरबी भाषा-भाषियो के मध्य आँखे खोली थी और अरबो की गोष्ठियो मे पले-बढे थे, अत: उन्होने व्याकरण के नियमो को विज्ञान का रूप देकर भावी सतानों के लिए उन्हें सरल बना दिया।

इसी प्रकार हदीस के विद्वान् एवं हाफिज भी अजम ही थे, जिनकी भाषा अरबी थी। इसी तरह फ़िकह एवं कलाम के सिद्धान्तो के विद्वान् भी सबके-सब अजमी थे। कुरान शरीफ़ के टीकाकार भी अजमी ही हुए है। सक्षेप मे इस्लाम के धार्मिक ज्ञान की रक्षा एव सकलन का ठेका इन्ही अजमवालो ने ले रखा था। मुहम्मद साहब ने सत्य ही कहा है कि "यदि विद्वत्ता आकाश के किसी कोने मे अटक जायगी तो भी अजमवाले उसे प्राप्त कर लेगे।"

इसके बाद वह युग आया जब अरबो का भी नगर की सभ्यता से परिचय हो गया और उन्होने बदवियत की पोशाक उतार फेकी, किन्तु वे शासन एव राजनीति के झगडो मे ऐसे फँस गये कि उनको किसी अन्य कार्य के लिए अवकाश ही न मिल सका। ऐसी अवस्था मे भला वे ज्ञान-विज्ञान की चिन्ता किस प्रकार करते? इसके

अतिरिक्त उस काल मे विद्वत्ता की गणना कला मे की जाती थी और अरब लोग राज्य के स्वामी होने के कारण कला की उपेक्षा करते रहे थे। अतः ये लोग ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ रहे और उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व अजम एवं अजम की सतान को सौप दिया गया। अरब लोग विद्वानो का बड़ा आदर-सम्मान करते थे, कारण कि वे अरब के ही धर्म एव ज्ञान का बोझ अपने कंधों पर लिये हुए थे। फिर जब राज्यसत्ता अरबों के हाथ से निकलकर अजम के अधीन हुई तो ज्ञान-विज्ञान का कोई आश्रयदाता न रहा। अजमवाले भी उसी देश के निवासी हो गये। उन्होने ज्ञान-विज्ञान से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। अब रहे अन्य विद्वान् तो उनका सम्मान समाप्त हो गया और उनके विषय में समझा जाने लगा कि वे ऐसे कार्यों में व्यस्त हैं जिनसे शासन अथवा राजनीति को कोई लाभ नही। इन्ही कारणो से शरा सम्बन्धी विषयो के विद्वान् प्राय. अजम लोग ही हुए।

शरा सम्बन्धी ज्ञान की यह दशा थी। अब रहा बुद्धिवादी ज्ञान सो वह इस्लाम मे उस समय आया जब विद्वानो एव लेखकों का एक पृथक् वर्ग बन चुका और ज्ञान-विज्ञान ने कला-कौशल का रूप धारण कर लिया। अत. यह ज्ञान भी विशेष रूप से अजमवालो तक ही सीमित रहा और अरब उससे दूर ही रहे। उन्होंने उसकी ओर ध्यान न दिया। इस प्रकार इराक, खुरासान तथा मावराउन्नहर जो नगर की सभ्यता एव सस्कृति के केन्द्र थे, ज्ञान-विज्ञान के भी केन्द्र रहे। जब उनका पतन हुआ और सभ्यता मिटी तो उसके साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का भी वहाँ अन्त हो गया और वह वहाँ जा पहुँचा जहाँ सभ्यता एव सस्कृति का राज्य था। आजकल मिस्र देश नागर सस्कृति का सबसे बडा केन्द्र, इस्लाम का घर तथा ज्ञान-विज्ञान एव कला-कौशल का स्रोत समझा जाता है।

मावराउन्नहर मे अभी नागर सभ्यता के कुछ चिह्न पाये जाते है। इसी अनुपात से वहाँ ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल की चर्चा भी है। इसका प्रमाण हमें वहाँ के एक बहुत बड़े विद्वान् सादुद्दीन तफताज़ानी[1] के महान् व्यक्तित्व एव उनकी उन रचनाओं से जो हमे प्राप्त हो सकी, मिलता है। अजम के शेष देशो में हमें इमाम इब्नुल खतीब एव नसीरुद्दीन तूसी के अतिरिक्त ऐसा कोई अन्य प्रसिद्ध विद्वान् नहीं मिल सका जो विद्वत्ता मे अद्वितीय हो।

(३९) अरबी भाषा-सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान।

(४०) भाषा एक वैज्ञानिक अभ्यास है।

१. मसऊद बिन उमर ७२२–७९२ हि० (१३२२ ई०–१३९०)।

(४१) सामयिक अरबी भाषा एक पृथक् भाषा है और मुज़र तथा हिमयार की भाषा से भिन्न है

(४२) नगर-वासियों तथा एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास करने-वालों की भाषा मुज़र की भाषा से पृथक् है

(४३) मुज़र की भाषा की शिक्षा

(४४) मुज़र की भाषा के अभ्यास का अरबी भाषा-शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं

(४५) साहित्यिक समालोचकों के अनुसार 'रुचि' का विवेचन और इसका प्रमाण कि जो अजमी, अरबों की नक़ल ही करते हैं उनकी 'रुचि' वे उत्पन्न नहीं कर पाते

(४६) जब स्वयं नगरवासी ही साधारण शिक्षा के बल पर अरबी भाषा-शास्त्र का वास्तविक अभ्यास नहीं पैदा कर पाते, तब ऐसे लोगों के लिए जिनकी मातृ-भाषा अरबी नहीं उसमें दक्षता प्राप्त करना कष्टसाध्य होता है

इसका कारण यह है कि जब नगर का विद्यार्थी जिसका वैयक्तिक स्वभाव मूल अरबी जीवन और स्वभाव से भिन्न और अजमी स्वभाव से प्रभावित होता है, मूल अरबी भाषा[1] सीखने का प्रयत्न करता है तो उसका स्वभाव ही उसके उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होता है। उसे अरबी भाषा-शास्त्र का अभ्यास नहीं हो पाता। इसी विचार से दूरदर्शी शिक्षक बच्चों को सर्वप्रथम भाषा की शिक्षा देते हैं और व्याकरण के विद्वान्, व्याकरण के नियमों को सिखाते हैं, किन्तु भाषा के शिक्षक ही ठीक मार्ग पर होते हैं कारण कि उपर्युक्त अभ्यास भाषा की शिक्षा में ही व्यस्त रहकर प्राप्त हो सकता है यद्यपि व्याकरण से भी मनुष्य को थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त हो जाती है।

जिन नगरवासियों की भाषा अजम से अधिक प्रभावित है और मुजरी भाषा से बहुत दूर है वे मुजरी भाषा सीखने एवं उसमे कुशलता प्राप्त करने मे असमर्थ रहेंगे, कारण कि जो विरोधाभासी बातें उनकी तथा मुज़र की भाषा मे है वे उनके लिए बाधक बनेंगी। नगरों की दशा पर दृष्टि डालकर आप हमारे कथन पर विश्वास कर लीजिए। इसका उदाहरण भी सामने है। इफ़रीक़िया तथा मग़रिबवालों पर

१. मुज़र।

अजमियों की छाप पडी थी और वे मुजरी भाषा से अनभिज्ञ थे, अत: वे शिक्षा द्वारा मुजरी भापा मे अभ्यास न पैदा कर सके। इब्नुर्रफीक़ ने क़ैरवान के किसी सचिव का पत्र उद्‌धृत किया है जो वास्तव में विचारणीय[1] है।

उन्दुलुसवालो को नि.सन्देह भाषा पर बड़ा अधिकार है। इसका कारण यह है कि उन्होने इस दिशा में घोर प्रयत्न किये है। उन्हे गद्य तथा पद्य, हर प्रकार की रचनाओं के उद्धरणों पर अधिकार प्राप्त है। इतिहासकार इब्ने हय्यान उन्हीं लोगो मे हुआ है। वह अरबी भाषा-शास्त्र का अद्वितीय विद्वान् था और उसने अपनी योग्यता के झडे गाड़ रखे थे। इब्ने अब्द रब्बेह अल-क़स्तल्ली तथा अन्य कवियों ने मुलूकुत्तवाएफ के राज्य तक मे बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। उस समय उन्दुलुस में भापा एवं साहित्य को बड़ी उन्नति प्राप्त थी और सैकड़ों वर्षों तक वहाँ यही दशा रही। फिर ईसाइयों के प्रभुत्व के कारण जब लोगों ने स्वदेश त्यागना प्रारम्भ कर दिया तो ज्ञान-विज्ञान की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया और सभ्यता का पतन होने लगा। इस प्रकार समस्त कला-कौशल का ह्रास होने लगा। उन्दुलुसवालो की विद्वता की काष्ठा ऐसी घटी कि उसकी दशा अवनततम हो गयी। अन्त में सालेह बिन शरीफ तथा मालिक बिन अल मुरह्‌हल, जो अशबीलिया के साहित्य-कारों का शिष्य था, के बाद उन्दुलुसवालों की विद्वत्ता एवं अरबी भाषा-शास्त्र ज्ञान का अन्त हो गया। स्वदेश त्यागते समय उन्दुलुस ने अपने विद्वान् अशबीलिया एवं सिब्ता के समुद्रीय तट की ओर भेजे और उन्हें उन्दुलुस के पूर्व इफरीक़िया की ओर रवाना किया, किन्तु वहाँ उनको प्रसिद्धि न प्राप्त हो सकी, कारण कि उनकी भाषा अजमी भापा से अत्यधिक प्रभावित हो गयी थी और उसमे एवं उन्दुलुसवालो की भाषा में बड़ा अन्तर था।

युग के परिवर्तन के कारण जब उन्दुलुस मे पुन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई तो इब्ने शिबरीन, इब्ने जाबिर, इब्ने अल-जय्याब तथा उनके समान अन्य विद्वान् पैदा हुए। उनके पश्चात् इबराहीम अस्साहिली अत्तुवैजिन सरीखे विद्वान् हुए। तदुपरान्त इब्नुल खतीब का युग आया, किन्तु वह शत्रुओं की चुगली के कारण शहीद कर दिया गया। अरबी भापा-शास्त्र मे उसकी योग्यता अपार थी। उसके शिष्यों ने उसका अनुकरण करके उसकी ख्याति को अमर बना दिया। सक्षेप मे इस समय उन्दुलुस मे अरबी भाषा एवं साहित्य बड़ी उन्नति पर है। उस देश की शिक्षा-विधि भी सरल है। ऊपर हम

१ पत्र का, जो अशुद्धियों से परिपूर्ण है, अनुवाद नहीं किया गया।

बता चुके है कि उन्दुलुसवालों ने साहित्य के विस्तार तथा प्रचार और उसकी रक्षा के प्रयत्न मे बड़े कष्ट भोगे है। उन्होंने अरबी साहित्य के विज्ञानो की भली-भाँति रक्षा की है। जिन अजमियों की भाषा वहाँ बिगड़ी हुई दृष्टिगत होती है, वे केवल वहाँ के अस्थायी निवासी है। अतः उन्दुलुस में अजमी प्रभाव को स्थायित्व प्राप्त नही होता। इसके विपरीत मगरिब एवं इफरीक़िया के बरबर निवासी अजम से बुरी तरह प्रभावित थे, इसी कारण वे अरबी भाषा का पूर्ण ज्ञान न प्राप्त कर सके।

बनी उमय्या एव बनी अब्बास के राज्यकाल मे पूर्वीय देशों की भी यही दशा थी। उनके यहाँ भी उन्दुलुस के समान अरबी भाषा का ज्ञान पूर्णरूप से वर्त्तमान था, कारण कि वे बहुत बड़ी सीमा तक अजमियों से दूर रहते थे। यही कारण है कि वहाँ बड़ी उच्चकोटि के गद्य एवं पद्य लिखनेवाले हुए। वहाँ खरे और ठेठ अरब मिलते थे। वे क्यों अपना रंग बदलते। इसका खुला हुआ दृष्टान्त हमारे सामने "किताबुल अगानी" है जो अरब के उच्चकोटि के शुद्ध गद्य एव पद्य का अनुपम रत्न है। इसमे सब कुछ है और यह वास्तव मे अरब की पूर्ण उन्नत एव श्रेष्ठ दशा का द्योतक है। इस ग्रथ मे हमें अरबी भाषा, अरब के इतिहास और अरब के रसूल का जीवन वृत्त सभी कुछ मिलता है। उसमे अरबों के धार्मिक सगठन का भी वर्णन है और उनकी ख़िलाफ़त एव सल्तनत का इतिहास भी। इससे अरबों की कविता एवं सगीत का भी ज्ञान प्राप्त होता है। सक्षेप मे अरब के विषय मे सविस्तर जानकारी का केवल एक यही ग्रन्थ है। इस प्रकार दोनों सल्तनतो के युग मे अरबी भाषा-शास्त्र का अभ्यास दृढतापूर्वक होता रहा।

इसके उपरान्त फिर वह युग आया जब अरब की भाषा बिगड़ी ही नही, मिट भी गयी। अरबो के राज्य एव शासन का युग समाप्त हुआ। प्रभुत्व अजमियो को प्राप्त हुआ और उनके राज्य भी स्थापित हो गये। यह समय वह था जब दैलम एवं सलजूक वंशों का राज्य प्रारम्भ हुआ। उनका सम्पर्क नगर की बहुसंख्यक जनता से था। ज़मीन उनकी भाषा बोलनेवालों से भर गयी थी और अजमी भाषाभाषियो को नगर की जनसंख्या एवं सभ्यता पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया। इस प्रकार लोग अरबी भाषा तथा उसके अभ्यास से दूर हो गये। जो लोग इसका अध्ययन करते थे इस पर अधिकार न प्राप्त कर पाते थे। उनकी भाषा की आज भी यही दशा है। इससे उनका गद्य एवं पद्य दोनों ही प्रभावित है, यद्यपि दोनों में ही रचनाएँ पर्याप्त हो रही है।

"ईश्वर, जिस वस्तु का सर्जन करना चाहता है, करता है। सब कुछ उसी की इच्छा से होता है।"

(४७) भाषा के दो भाग—गद्य तथा पद्य।
(४८) गद्य तथा पद्य दोनों में एक साथ कुशलता बिरले ही किसी व्यक्ति को प्राप्त होती है।
(४९) पद्य एवं उसकी शिक्षा-विधि।
(५०) गद्य तथा पद्य शब्दों पर आधारित होते हैं, न कि विचारों पर।
(५१) भाषा में अभ्यास अरबों की रचनाओं को अधिक से अधिक संख्या याद करने से प्राप्त होता है।
(५२) उच्च श्रेणी के लोगों को कविता में रुचि नहीं होती।
(५३) समकालीन अरबो एवं नगर-वासियों की कविताएँ।

अब हम प्रथम पुस्तक को यही समाप्त करते है, कारण कि यदि हमने अधिक कुछ लिखा तो हम अपने विषय के क्षेत्र से बाहर निकल जायेंगे। हमने इस पुस्तक का विषय सभ्यता एव तत्सम्बन्धी समस्याएँ रखा था। हम समझते है कि इस विषय के अन्तर्गत सभी बातो का विवरण हमने दे दिया है। कोई बात छोड़ी नही है, किन्तु फिर भी सम्भव है कि हमारे बाद कोई बहुत बडा विद्वान् एव बुद्धिमान ऐसा पैदा हो जाय जो इन समस्याओ का हमसे अधिक विस्तार मे उल्लेख कर सके। वास्तव मे एक विज्ञान के आविष्कारक के लिए यह आवश्यक भी नही है कि वह उस विज्ञान की समस्त समस्याओ का उल्लेख कर दे। उसका कर्त्तव्य यह है कि वह अपने विज्ञान के विषयो को निश्चित कर दे, उनकी परिभापा बता दे तथा उनकी विभिन्न शाखाओं का उल्लेख कर दे। फिर बाद मे आनेवाले लोग उन समस्याओ मे थोडी-बहुत वृद्धि करके उस विज्ञान को पूर्ण कर देते है।

"ईश्वर जानता है और तुम नही जानते।"

पुस्तक का लेखक (ईश्वर उसे मुक्ति दे) कहता है, "मैने इस प्रथम पुस्तक की रचना एव सकलन सशोधन एव सुधार को छोड़कर, पाँच मास मे ७७९ हि० के मध्य (नवम्बर १३७७ ई०) मे समाप्त कर लिया था। तदुपरान्त मैंने पुस्तक में सुधार एव संशोधन किये। साथ ही साथ मैने विभिन्न कौमों के इतिहास भी जिनकी योजना मै प्रारम्भ मे बना चुका था और जिसका उल्लेख मै ऊपर कर चुका हूँ, जोड़ दिये।"

"ज्ञान ईश्वर की ओर से, जो शक्तिशाली एवं बुद्धिमान् है, प्राप्त होता है।"

परिशिष्ट

(१) .कुरैश की वंशावली

- क़ुरेश
  - ⋮
    - क़ुसैय
      - अब्द मनाफ
        - अब्द शम्स
          - उमय्या
        - हाशिम
          - अब्दुल मुत्तलिब
            - अब्बास
            - अब्दुल्लाह
              - मुहम्मद
            - अबू तालिब
              - अली

हज़रत मुहम्मद के प्रथम चार ख़लीफ़ा

हज़रत अबू बक्र	६३२-६३४ ई०
हज़रत उमर	६३४-६४४ ई०
हज़रत उस्मान	६४४-६५६ ई०
हज़रत अली	६५६-६६१ ई०

(२) बनी उमय्या की वंशावली

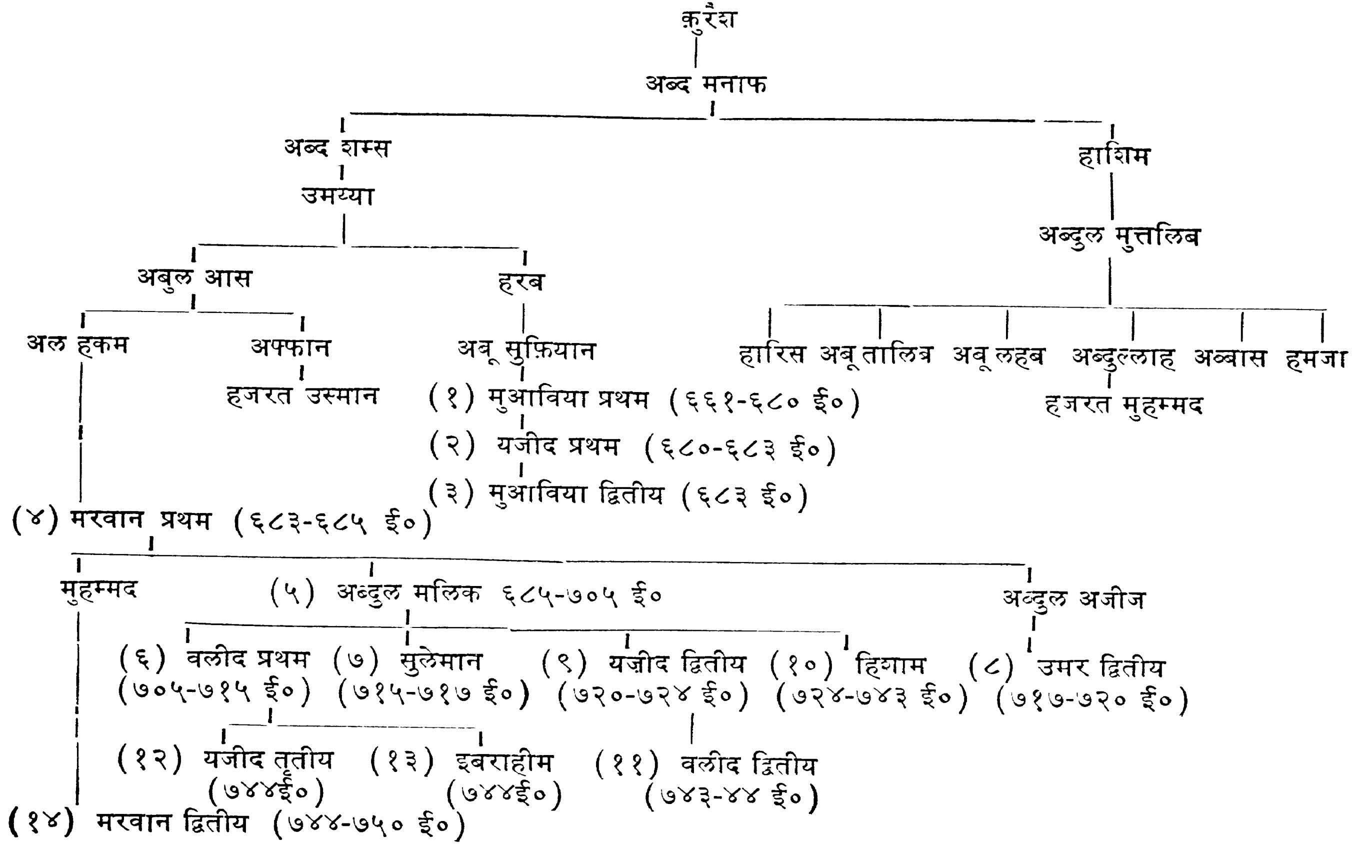

(३) बनी अब्बास की वंशावली

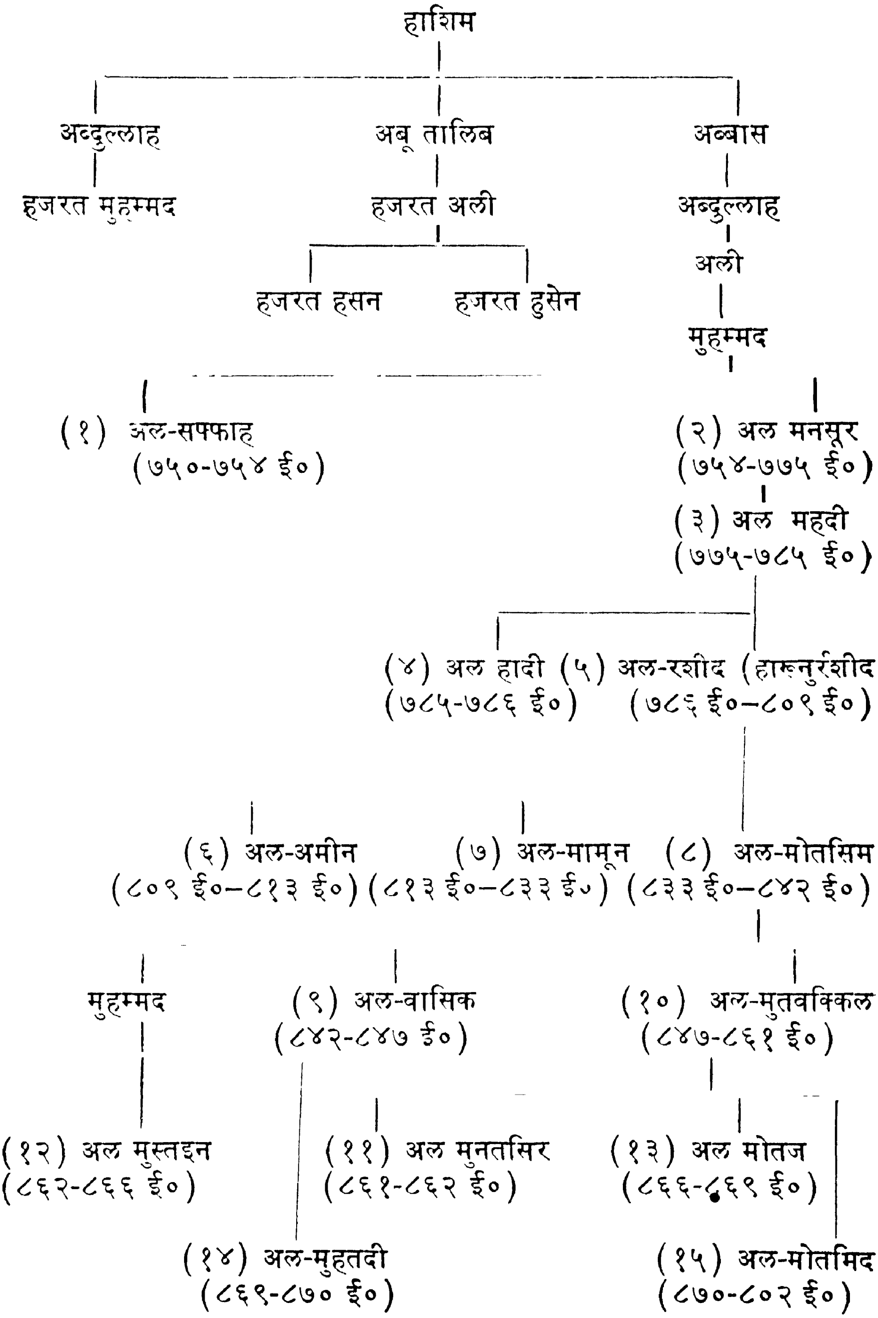

(४) बुवहिद प्रभुत्व काल के अब्बासी ख़लीफ़ा

(१६) अल मोतजिद
(८९२ हि०-९०२ ई०)

(१७) अल मुकतफी
(९०२ ई०-९०८ ई०)

(१८) अल-मुकतदिर
(९०८ ई०-९३२ ई०)

(१९) अल-काहिर
(९३२ ई०-९३४ ई०)

(२२) अल मुस्तकफी
(९४४-९४६ई०)

(२०) अल-राजी
(९३४ई०-९४०ई०)

(२१) अल-मुत्तकी
(९४०ई०-९४४ई०)

(२३) अल-मोती
(९४६-९७४ई०)

(२४) अल ताई
(९७४-९९१ ई०)

(२५) अल-कादिर (९९१-१०३१ ई०)

(५) सलजूक़ प्रभुत्व काल के अब्बासी ख़लीफ़ा

(२६) अल-काएम (१०३१-१०७५ ई०)
|
मुहम्मद
|
(२७) अल-मुक़तदी (१०७५-१०९४ ई०)
|
(२८) अल-मुस्तजहिर (१०९४ ई०—१११८ ई०)
|
(२९) अल-मुस्तरशिद (१११८-११३५ ई०)
|
(३०) अल-राशिद (११३५-११३६ ई०)

(३१) अल-मुक़तफ़ी (११३६-११६० ई०)
|
(३२) अल-मुस्तनजिद (११६०-११७० ई०)
|
(३३) अल-मुस्तदी (११७०-११८० ई०)
|
(३४) अल-नासिर (११८०-१२२५ ई०)

(६) अन्तिम अब्बासी ख़लीफ़ा

(३४) अल-नासिर (११८०-१२२५ ई०)
|
(३५) अल-जाहिर (१२२५-१२२६ ई०)
|
(३६) अल-मुस्तनसिर (१२२६-१२४२ ई०)
|
(३७) अल-मुस्तासिम (१२४२-१२५८ ई०)

(७) हज़रत अली के वंशज एवं १२ इमाम

- (१) हजरत अली (६६१ ई०)
  - (२) अल-हसन (६६९ ई०)
    - अल-हसन
      - अब्दुल्लाह
        - इबराहिम (७६३ ई०)
        - मुहम्मद (७६२ ई०)
  - (३) अल हुसैन (६८० ई०)
    - (४) अली जैनुल आबेदीन (७१२ ई० लगभग)
      - जैद
      - (५) मुहम्मद अल-बाकिर (७३१ ई०)
        - (६) जाफ़र अल-सादिक़ (७६५ ई०)
          - इस्माईल (७६० ई०)
          - (७) मूसा अल-काजिम (७९९ ई०)
            - (८) अली-अल-रिज़ा (८१८ ई०)
              - (९) मुहम्मद अल-जवाद (८३५ ई०)
                - (१०) अली अल-हादी (८६८ ई०)
                  - (११) अल-हसन अल अस्करी (८७४ ई०)
                    - (१२) मुहम्मद अल मुनतजर (अल-महदी) ८७८ ई०

नोट—कोष्ठ में मृत्यु तिथि दी गयी है।

(८) क़ुरतेबा (कारडोवा) के उमय्या अमीर

(१) अब्दुर्रहमान प्रथम (७५६-७८८ ई०)
|
(२) हिशाम प्रथम (७८८-७९६ ई०)
|
(३) अल-हकक प्रथम (७९६-८२२ ई०)
|
(४) अब्दुर्रहमान द्वितीय (८२२-८५२ ई०)
|
(५) मुहम्मद प्रथम (८५२-८८६ ई०)
|
(६) अल-मुनजिर (८८६-८८८ई०) — (७) अब्दुल्लाह (८८८-९१२ ई०)

(७) अब्दुल्लाह
|
मुहम्मद
|
(८) अब्दुर्रहमान तृतीय (९१२-९२९ ई०)
खलीफा (९२९-८६१ ई०)

(९) कारडोवा के उमय्या ख़लीफ़ा

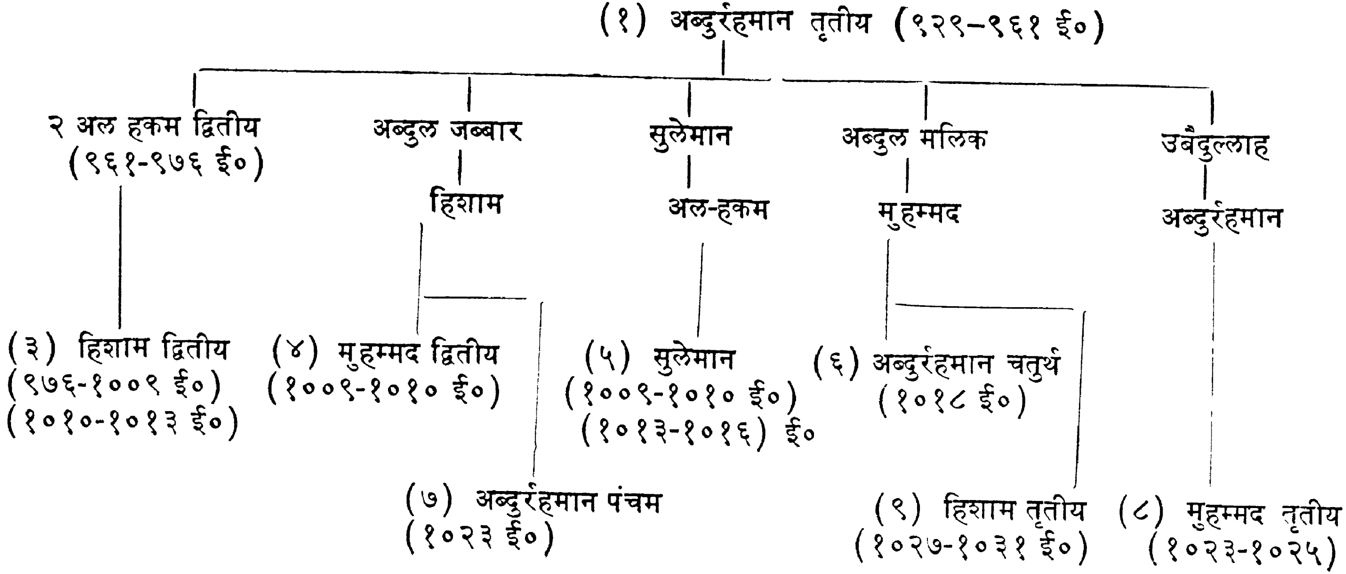

(१०) मिस्र के फ़ातेमी ख़लीफ़ा

(१) अल-महदी (९०९-९३४ ई०)

(२) अल-काएम (९३४-९४६ ई०)

(३) अल-मनसूर (९४६-९५२ ई०)

(४) अल-मुइज़्ज (९५२-९७५ ई०)

(५) अल-अजीज (९७५-९९६ ई०)

(६) अल-हाकिम (९९६-१०२१ ई०)

(७) अल-जाहिर (१०२१-१०३५ ई०)

(८) अल-मुस्तनसिर (१०३५-१०९४ ई०)

(९) अल-मुस्ताली १०९४-११०१ ई० — मुहम्मद

(१०) अल-आमिर (११०१-११३० ई०) — (११) अह हाफिज (११३०-११४९ ई०)

यूसुफ — (१२) अल जाफ़िर (११४९-११५४ ई०)

(१३) अल-आजिद (११६०-११७१ ई०) — (१३) अल फ़ाएज (११५४-११६० ई०)

(११) मिस्र के बहरी ममलूक

(अल-सालेह अय्यूब)

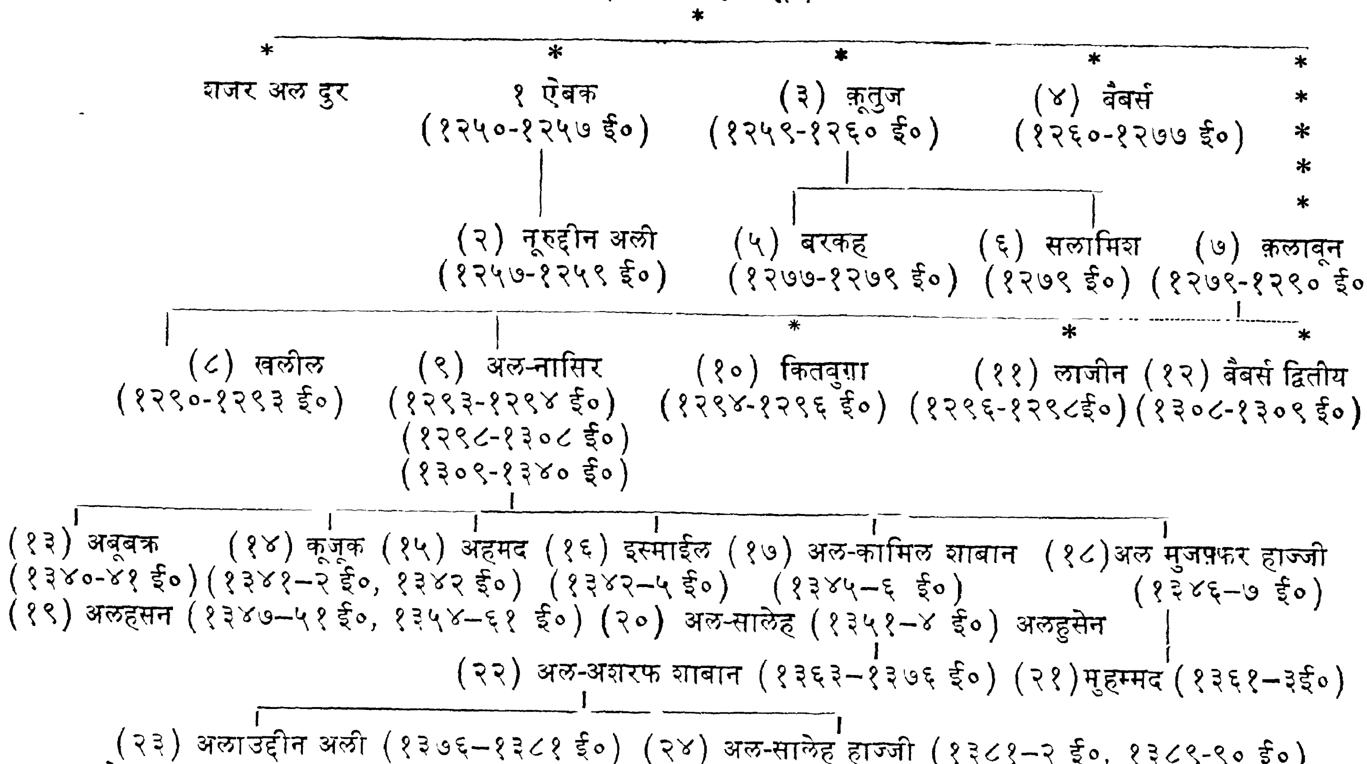

नोट—तारांकित लाइन स्वामी तथा दास के सम्बन्ध हेतु है।

(१२) मिस्र के बजरी ममलूक

(१) अल–जाहिर सैफुद्दीन बरकूक १३८२ ई०
(बहरी हाज्जी द्वारा राज्य पर अधिकार १३८९-९० ई०)
(२) अल नासिर नासिरुद्दीन फरज १३९८ ई०
(३) अल मनसूर इज्जुद्दीन अब्दुल अजीज १४०५ ई०
अल-नासिर फरज (पुनः) १४०६ ई०
(४) अल-आदिल अल मुस्तइन १४१२ ई०

× ×

(२३) अल-अशरफ तूमान बाय १५१६-१५१७ ई०

सहायक-ग्रंथ-सूची

(केवल मुकद्दमे से सम्बन्धित)

अरबी

अली अब्दुल वाहिद वाफी	**मुक़द्दमा इब्ने ख़लदून** (काहेरा १९५७-५८ ई०)
इब्ने खलदून	**किताब-अल-इब्र, व-दीवान अल-मुब्तदा व-अल ख़बर** (बूलाक़ १८६७-६८ ई०), ७ भागो में
	अत्तारीफ़ बे इब्ने ख़लदून व रहलतहू ग़रबन व शरक़न (काहेरा १९५१ ई०)
	Prolégoménes d'Ebn-Khaldoun सकलनकर्ता E. Quatremere

उर्दू

अब्दुरहमान	**मुक़द्दमये तारीख़े इब्ने ख़लदून** (लाहौर)
अहमद हुसेन इलाहाबादी	**तरजुमये तारीख़े अल्लामा इब्ने ख़लदून** (इलाहाबाद)
साद हसन खा यूसुफी	**मुक़द्दमये इब्ने ख़लदून**

फ़ारसी

सईद नफीसो	**इब्ने ख़दूलन फ़रहंग नामये पारसी** (तेहरान १९५० ई०)

अंग्रेज़ी

वाल्टर जे फ़िशेल की सूची पर आधारित

Alatas, Husein:—"Objectivity and the Writing of History; The Conceptions of History by Al-Ghazali, Ibn Khaldun. ....," *The Islamic Review* (Woking) XLII (1954)

Arendonk, Cornelis Van:—"Ibn Khaldun" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.) Cf. *Supplement.*

Arnold, Sir Thomas Walker:—*The Caliphate.* Oxford, 1924.

Barnes, Harry Elmer:—"Sociology before Comte," *American journal of Sociology* (Chicago), XXIII, No. 2 (Sept. 1917).

Do *A History of Historical Writing.* Norman (Okla.) 1937.

Barnes, Harry Elmer and Becker, Howard:—*Social Thought from Lore to Science.* 2d ed. Washington, 1952. 2 vols.

Bel, Alfred:—"Ibn Khaldun" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.).

Boer, Tjitze J. De:—*The History of Philosophy in Islam.* London, 1903.

Bosch, Kheirallah G.:—"Ibn Khaldun on Evolution," *The Islamic Review* (Woking), XXXVIII (1950).

Brockelmann, Carl:—*History of the Islamic Peoples.* New York, 1947.

Browne, Edward Granville:—*A Literary Hisory of Persia.* London and Cambridge, 1902-1924. 4 vols.

Bukhsh, Salahuddin Khuda:—"Ibn Khaldun and his History of Islamic Civilization," *Islamic Culture* (Hyderabad), 1. (1927).

Do tr. *Contributions to the History of Islamic Civilization* Calcutta, 1929-1930. 2 vols.

Cook, Stanley Arthur:—"The Semites: The Writing of History" in *The Cambridge Ancient History*. Cambridge University Press: New York, 1923-1951. 12 vols.

Darbishire, Robert S.:—"The Philosophical Rapprochement of Christendom and Islam in Accordance with Ibn Khaldun's Scientific Criticism," *The Moslem World* (Hartford), XXX (1940),

Donaldson, Dwight M.:—"The Shiah Doctrine of the Imamate," *The Moslem World* (Hartford), XXI (1931).

Enan, Muhammad Abdullah:—*Ibn Khaldun: His Life and Work*. Lahore, 1941; reprinted 1944; 2d ed., 1946.

Farrukh, Umar:—*The Arab Genius in Science and Philosophy*. The American Council of Learned Societies: Near East Translation Program, Publication 10. Tr. John B. Hardie. Washington, 1954.

Fischel, Walter Joseph:—*Ibn Khaldun and Tamerlane: Their Historic Meeting in Damascus*, A.D. 1401 (803 A.H.), A study based on Arabic Manuscripts of Ibn Khaldun's "Autobiography," with a translation into English, and a commentary, Berkeley and Los Angeles, 1952.

Do "The Biography of Ibn Khaldun" in *Year Book: The American Philosophical Society*: 1953. Philadelphia, 1954.

Do "Ibn Khaldun's Use of Jewish and Christian Sources" in *Proceedings of the 23rd International Congress of Orientalists*. Cambridge, 1954.

Do "Ibn Khaldun and Josippon" in *Homenaje a Millas-Vallicrosa*. Barcelona, 1954-1956. 2 vols.

Fischel, Walter Joseph:—"Ibn Khaldun's 'Autobiography' in the Light of External Arabic Sources" in *Studi Orientalistici in onore di Giorgio Levi Della Vida*. Rome, 1956. 2 vols.

Do "Ibn Khaldun's Sources for the History of Jenghiz Khan and the Tatars," *Journal of the American Oriental Society* (Baltimore), XXVI (1956).

Do "Ibn Khaldun: On the Bible, Judaism and Jews' in *Ignace Goldziher Memorial Volume*. Budapest, 1948; Jerusalem, 1956.

Do "A New Latin Source on Tamerlane's Conquest of Damascus (1400-1401):B. de Mignanelli's *Vita Tamerlani* (1416), Translated into English with an Introduction and a Commentary," Oriens (Leiden), IX (1956).

Do "Ibn Khaldun's Contribution to Comparative Religion" in *University of California publications in Semitic Philology* (Berkeley and Los Angeles).

Flint, Robert:—*History of the Philosophy of History in France, Belgium, and Switzerland.* Edinburgh, 1893.

Gibb, Hamilton Alexander Rosskeen:–*Arabic Literature.* Oxford, 1926.

Do "The Islamic Background of Ibn Khaldun's Political Theory," *Bulletin of the School of Oriental Studies* (London), VII (1933-1935).

Do "Tarikh" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.) 4. Supplement, pp. 233–45.

Do *Modern Trends in Islam.* Chicago 1947.

Goitein, Solomon Dob Fritz, "An Arab on Arabs: Ibn Khaldun's Views on the Arab Nation," *The New East, Quarterly of the Israel Oriental Society* (Jerusalem), 1 (1950).

Graberg Af Hemso, Jakob Grefve:—"An Account of the Great Historical Work of the African Philosopher Ibn Khaldun," *Transactions of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland* (London), III (1835).

Guillaume, Alfred:—"Arabian Views on Prophecy (Ibn Khaldun)" in *Prophecy and Divination among the Hebrews and Othor Semites.* The Bampton Lectures. New York, 1938.

Do and Arnold, Sir Thomas Walker, eds:—*The Legacy of Islam.* Oxford, 1931.

Hitti, Philip Khuri:—*History of the Arabs,* London and New York, 1951.

• Iqbal, Sir Mohammad:—*The Reconstruction of Religious Thought in Islam.* Oxford, 1934.

Issawi, Charles:—tr. *An Arab Philosophy of History: Selections from the Prolegomena of Ibn Khaldun of Tunis* (1332-1406). The Wisdom of the East Series. London 1950.

Do "Arab Geography and the Circumnavigation of Africa," *Osiris* (Bruges), X (1952).

Levy, Reuben.:—*An Introduction to the Sociology of Islam.* London, 1931-1933. 2 vols.

Do *The Social Structure of Islam.* Cambridge University Press, 1957.

Lewis, Bernard:—*The Arabs in History.* London, 1950.

Macdonald, Duncan Black:—*Ibn Khaldun: A Selection from the Prolegomena of Ibn Khaldun. With Notes and an English-German Glossary.* Semitic Study Series, iv. Leiden, 1905; reprinted 1948.

Do *Aspects of Islam.* New York, 1911.

Do *The Religious Attitude and Life in Islam.* 2d ed. Chicago, 1912.

Do "Kalam" and "al-Mahdi" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.)

Mahdi, Muhsin:—*Ibn Khaldun's Philosophy of History:—A Study in the Philosophic Foundation of the Science of Culture.* London, 1957.

Maqqari, Ahmad B. Muhammad Al:—*The History of the Mohammedan Dynasties in Spain*......Tr. Pascual de Gayangos. London, 1840-1843. 2 vols.

Margoliouth, David Samuel:—*Lectures on Arabic Historians.* Calcutta. 1930.

Nashaat, Mohammad Ali:—"Ibn Khaldun, Pioneer Economist," *L'Egypte contemporaine* (Cairo), XXXV (1945).

Do *The Economic Ideas in the Prolegomena of Ibn Khaldun.* Cairo, 1944.

Nicholson, Reynold Alleyne:—*Translations of Eastern Poetry and Prose.* Cambridge, 1922.

Do *A Literary History of the Arabs.* London, 1923.

Prakash, Buddha:-"Ibn Khaldun's Philosophy of History," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXVIII (1954), XXIX (1955).

Qadir, Abd Al:—"The Social and Political Ideas of Ibn Khaldun," *The Indian Journal of Political Science* (Allahabad), III (1941).

Do "The Economic Ideas of Ibn Khaldun," *Ibid.*, XXII (1942).

Ritter, Hellmut:—"Irrational Solidarity Groups: A Socio-Psychological Study in connection with Ibn Khaldun," *Oriens* (Leiden), I (1948).

Riza Hamid:—"Ibn Khaldun, the Philosopher of History," *Islamic Review* (Woking), XXVI (1938).

Rosenthal, Erwin Isak Jakob:—"Ibn Khaldun: A North African Muslim Thinker of the 14th Century," *Bulletin of the John Rylands Library* (Manchester), XXIV (1940).

Do "Some Aspects of Islamic Political Thought," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXII (1948)

Rosenthal, Franz:—*The Technique and Approach of Muslim Scholarship*. Analecta Orientalia, 24, Rome, 1947.

Do *A History of Muslim Historiography*. Leiden. 1952.

Do *Ibn Khaldun: The Muqaddimah; An Introduction to History*. New York (Bollingen Series XLIII) London, 1958. 3 vols.

•Sarton, George Alfred Leon:—*Introduction to the History of Science*. Carnegie Institution of Washington. Baltimore, 1927-1948. 3 vols.

Schmidt, Nathaniel:—"The Manuscripts of Ibn Khaldun," *Journal of the American Oriental Society* (Baltimore), XLVI (1926).

Do "Ibn Khaldun" in *The New International Encyclopaedia*. 2d. ed. New York, 1925. 25 vols.

Do *Ibn Khaldun: Historian, Sociologist and Philosopher*. New York, 1930.

Do "Ibn Khaldun and His Prolegomena," *The Moslem World* (Hartford), XXII (1932).

Sherwani, Haroon Khan:—"*Political Theories of Certain Early Islamic Writers*," The Indian Journal of Political Science (Allahabad), III (1942).

Do *Studies in Muslim Political Thought and Administration* Lahore, 1945.

Do "The Genesis and Progress of Muslim Socio-Political Thought," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXVII (1953)

Syrier, Miya:—"Ibn Khaldun and Islamic Mysticism," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXI (1947).

Toynbee, Arnold Joseph:—"The Relativity of Ibn Khaldun's Historical Thought" in *A Study of History*. London, 1934-1954. 10 vols.

नामानुक्रमणिका

अंसार ८३, १७३, २१३
अकरीतिश २७१, २७२
अक़ली ज्ञान ४५३, ४५४, ४५५, ४६३
अकसम २२५
अकसा ११८
अकीक १९३
अक्का २७२
अग़ालबा १३५, ३३१, ३७१, ३९७
अजम १३, १८, ५३, ६५, ९९, १०४, १०५, १६०, १६१, १७४, १९३, २३५, २३६, २४६, २५९, २६३, २८१, २८७, २९१, २९२, ३३३, ३६८, ३७३, ३७९, ३९१, ४४४, ४४५, ४५५, ४८०, ४८१, ४८२, ४८४
अजरा २१०
अजवा ८९, ४४५
अजीज निजार २८०
अज्‌जुबैर २८९
अज़्ज़ुहरी २५६
अज्द ६७, २१३
अज्दुद्दौला २३६
अता १८१
अतीया ६९
अत्तबरानी ३६२
अनस २१६
अनाक १४१, १४२
अन्नवाई १७१
अन्नासिर २३५
अन्नासिर मुहम्मद १४६
अपितुन बी १७८
अफराग २९४
अफ़्रीका १०६
अबी अमर ४५४
अबी आमिर १५७, १५९, २४९
अबी जैद ६०
अबी तालिब २५५
अबी बुरदा १५२
अबी मूसा अशअरी १५२
अबी वक्कास १५२, १९३, २३३
अबी सईद खुजरी २१६
अबी सुफ़यान १५२, १६३, २७०
अबी सुफरा १५२
अबी हफ़्स २३८, २५०, २५१, २९७
अबुद्दलफा ३०३
अबुल अब्बास २५१
अबुल कासिम २३४, ४५३
अबुल कासिम शीई २७२
अबुल वलीद ७१
अबुल हसन १४७, २७५, २८०

अबुल हसन अल मलीली ४३७
अबू अब्दुल्लाह ४५३
अबू अब्दुल्लाह शीई १८७
अबू अली नासिरुद्दीन अलम शद्दाली अल लखमी ४६४
अबू इदरीस खालानी २२५
अबू इस्हाक १७१
अबू इस्हाक अल इसफ़रायिनी १७०
अबू उबैद ३०७
अबू जकरिया यहया २९७, ३३२
अबू जाफ़र १९७
अबू जाफर अब्दुल्लाह १८४
अबू जाफर अल मसूर १९७
अबू तालिब १०८
अबू ताशफीन १४७
अबू दरदा कजा २२३
अबू दाऊद ३६२
अबू नुवास १३४
अबू बक्र १४७, १९५, २१७
अबू मुस्लिम २७७
अबू मुस्लिम सुलेमान १८४
अबू मुहम्मद ६०
अबू मूसा १९३
अबू मूसा अस्करी २२३
अबू यला अल मौसिली ३६२
अबू याकूब मसूर २९६
अबू सईद खुजरी २१०
अबू सलेमा खल्लाल १८४
अबू हय्यान ३
अबू हातिम सहल ११३
अबू हाशिम १८४
अबू हुजैफा १७४
अबूज्जिनादे २८३
अब्द अल कैस २१३
अब्दुर्रहमान ८३, १४५, १५९, १९३, २०३, २५६
अब्दुर्रहमान प्रथम अद्दाखिल ३३१
अब्दुर्रहमान द्वितीय २३५
अब्दुर्रहमान तृतीय २३५
अब्दुर्रहमान, अन्नासिर १७०
अब्दुर्रहमान नासिर २७१
अब्दुल अजीज १९५, १९६, ३३६
अब्दुल अजीज अल यशकूरी ३०३
अब्दुल करीम २७४
अब्दुल करीम शैजर २७४
अब्दुल जब्बार १५९
अब्दुल मलिक ९५, १९६, १९७, २००, २०४, २१०, २१७, २१८, २२१, २४४, २५६, २७०, २८३, २८४, २८६, २९३, ३२९, ३३६, ३९७, ४०६
अब्दुल मुत्तलिब ६९, १३७, १४३
अब्दुल मोमिन २३८, २३९, २७३, २७४, ४१०
अब्दुल वाद २९७
अब्दुल हक २९७
अब्दुल हमीद १४३, २५६, २६१
अब्दुल्लाह १८४, १८५, १९८, १९९, २०४, २०६, २१०, २११, २१६, २३३, २८३, ३४९

अब्दुल्लाह अल कसरी १५२
अब्दुल्लाह बिन अरबी २३७
अब्दुल्लाह शीई ३४४
अब्दुस्सलाम ४५३
अब्दुस्सलाम रूमी २५०
अब्दे मनाफ २१५, ३३१, ३३७
अब्बास ६९, ११५, १३७, १८४, २१५
अब्बासी १३५, १६०, १६१, १८४, १९७, २०५, २२१, २८०, २८२, २९०, ३१३, ३१८, ३३१, ३३२
अब्बासी खलीफा १२१, १२२, १३७
अमर १५२, १६३, २११, २६९, २८९, २९६
अमर बिन आस १७९, २४४
अमालका (अमालेका) ८१, ८९, ९९, १२१, १४१, १४२, ३७१, ३८१, ३९६, ४४५
अमीन २२४, ३५८
अमीर १०६, ११२, ११५, १३५, १४६, १७३, १७७, २०१, २१०, २३६, २३७, २४६, २४७, २५९, २९४, ३१३, ३१६, ३३७, ३८४, ३९४, ४१०, ४२४, ४५९
अमीर मक्का २३३
अमीर महमूद १४७
अमीर हिजाज २३३
अमीरुल उमरा २४६
अमीरुल मोमिनीन ६७, १६३, १७०, १९१, २३२, २३३, २३४, २३७, २३८, २३९, २७५, ३५४, ३५९, ३७३, ४०९
अमूरिया १३६
अय्यूब २७४, ३१३, ४५८
अरकम २१६
अरकश १११
अरफजा ६६, ६७, २६९
अरब ५, ७, १५, १८, ४२, ४४, ५२, ५३, ६४, ६५, ६६, ६९, ८७, ८८, ८९, ९३, ९४, ९५, ९७, ९८, १२९, १३५, १५२, १५३, १७५, १७६, १९१, २००, २१२, २१३, २२६, २२७, २३३, २३५, २४३, २४४, २६३, २७०, २९५, ३०३, ३०४, ३०८, ३३१, ३३६, ३८०, ३९६, ४०४, ४०६, ४४४, ४४५, ४६०, ४७९, ४८१, ४८४
अरबी मालिकी २१७
अरमीनिया १४५
अरस्तू ३०, ३१, २७८
अरीका २८१
अरीस २८७
अरैयान १४५
अर्खयान १४४
अल अगलब २७०
अल अफजल १४६
अल अमीर अब्दुल्लाह २३५
अल अरबी ४७५
अल कवासिम वल अगमिम २१७
अल कासिम १८५

अल कुशैरी २२९
अल खूनजी ४६५
अल फ़ुरात २७०
अल बकरी ३७४
अल बज़्जार ३६२
अल बव्वाक १४७
अल मसऊदी सकफ़ी ३०७
अल महदी ११३, ११४, २०५
अल मुरह्हल ४८३
अल मुसय्यब २५६, २८३
अल हकम १९६
अल हकीम १४७
अल हनफिया १८१, १८३
अल हाकिम ३६२
अल हाजिब ४५४
अल हारिसिया १८४
अलजायर ३८४, ३८५
अलयान वन्नहसील ४६४
अलवी ६९, ७९, २८०, ३३२, ३४३
अली ११३, १८०, १८४, १८६, २०५, २४४
अली रिजा १८७
अली हादी १८८
अल्लामा तरतूशी १०६
अवरबह ३३१
अवरबा १०८
अवरास ३३२
अवलाद रबाब ६९
अवासिम ६५ .
अशबीलिया २३७, ४८३
अश अरिया २३८
अशअस २५६
अशरये १५
अशरये मुबश्शेरा २०२
अशीर ३३२
अश्शहरह १९३
असकलान २७२
असद २७०
असदुद्दीन २३६
असना अशरी १८३, १८६
असबियत १५, १६, १७, ४०, ६०, ६१, ६२, ६३, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०—७५, ७७—८२, ८४—८६, ८८—९०, ९२, ९७, ९९, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७—१०९, १११, ११२, ११४, ११५, ११६, ११७, ११९, १२०—१२८, १३०, १३२, १३६, १३८, १५०, १५१, १५४, १५८, १६०, १६२, १६४, १६९, १७२, १७४, १७५, १७६, १७७, १८८—१९०, १९२, १९४, १९५, २००, २०४, २०६, २०७, २०८, २०९, २१२, २१५, २२४, २२६, २२७, २२८, २३५, २३६, २३८, २४५, २६१, २७६, २९४ २९८, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१६, ३१७, ३१९, ३२८, ३३१, ३३४, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४१, ३४३, ३४९, ३६९, ३७७, ३९४, ३९८, ४०८, ४०९, ४१०

असबी ८६, २४५
असम १६८
असहाबे कहफ १८३
अस्सुल्तान अबी इस्हाक इबराहीम ३३२
अहमद १४३, २७३, २७४
अहमद सिकिल्ली २७३
अहमर ४७७
अहले कलम २४०
अहले बैत ३६१
अहले सैफ २४०, २७७
अहवान १४४
आएशा २१०, २१३, २१४
.आजरबाई जान (अजरबैजान) १४५
आद ८९, ९९, १२९, १४०, १४१, ३७१, ३८१, ४४५
आदम १८८
आमलक १४४
आमिल २७९, २८१, २९५, ३१३, ३३८, ३४०, ३४१, ३५८, ३६०, ३६१
आयत ४२७
आरमीनी १२१
आलिम २२८, ४२६, ४२९, ४५२
आस १६३, २११, २१३, २३३, २६९, २९६
इकलीम ४१, ४२, ४३, ८८, ११८, ४५७
इखशीदी १३५, ३३२
इजतेहाद १९४, २०७, २११, २१४, २१७
इजतेहादी १७२, २०९, २१०
इजमा १६७, १६९, १७०, १७१, १७५, २०२, २०३, २१०, २८५
इजहार २२५
इदरीस २३४, ३३१, ३९७
इदरीस असगर १८५
इदरीसियों ६९, १०८, २३४
इनशा ४०९
इनामो १२६, १२७, १३५, १४३, २५४, २७४, ३१२
इन्दुलुम ३७९, दे० 'उन्दुलुम'
इफरीकिया ४, ४४, ९६, १०५, १०८, ११७, ११८, १२०, १२२, १२९, १३५, १४३, १४५, १४७, २३४, २३५, २४८, २५०, २५७, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७३, ३१३, ३३१, ३३२, ३३३, ३३७, ३४४, ३७१, ३७४, ३७६, ३७७, ३७९, ३९२, ३९६, ३९७, ३९८, ४०९, ४२२, ४२४, ४५३, ४७४, ४७५, ४८२, ४८३, ४८४
इबराहीम ११३, ११४, २०५, २३४, २७०
इबराहीम अस्साहिली अत्तवैजिन ४८३
इब्नुज्जुबैर २१०, २११, २१५, २१७, २१८
इब्नुर्रकीक ४
इब्नुर्रफीक १४३, ४८३
इब्नुल अहमर १२१, १२२
इब्नुल इमाम ४५३

इब्नुल कलबी २
इब्नुल कसी १११
इब्नुल खतीब १७७, ४५३, ४८१, ४८३
इब्नुल हाजिब ४५३, ४६४, ४६५
इब्ने अतीया २५०
इब्ने अबीआमिर १८
इब्ने अबी दाऊद २२५
इब्ने अबी हफस १२२
इब्ने अब्द रब्बेह अल-कस्तल्ली ४८३
इब्ने अब्बास २१७, २९६
इब्ने अल अहमर २९२
इब्ने अल जय्याब ४८३
इब्ने अली जैद १२०
इब्ने आमिर १०६
इब्ने इस्हाक़ १७६
इब्ने उमर २१७
इब्ने कसी शेखुस्सूफीया खल उन नालैन १११
इब्ने ख़लेकान १४६
इब्ने जाबिर ४८३
इब्ने जिन्नी ४६४
इब्ने जीयजान १४३
इब्ने बत्तूता १४८, १४९
इब्ने बशीर ४६४
इब्ने बस्साम १३४
इब्ने मर्दनीश १२२
इब्ने माजह ३६२
इब्ने मालिक ४६४, ४६५
इब्ने मुकफ़्फ़ा ३१
इब्ने यूनुस ४६४
इब्ने रशीक ४. १२
इब्ने रूमाहिस २७१
इब्ने रूशुद ७२
इब्ने शरफ १०५, २३६
इब्ने शिबरीन ४८३
इब्ने सरह १२०
इब्ने हजम २८७
इब्ने हम्माद २८४, ४४३
इब्ने हय्यान ४८३
इब्ने हय्याम १३४
इब्ने हिशाम ४६४
इब्ने हुदैर २४९
इब्ने हुबैरा १५२, २८३
इब्ने हूद १०६, १२२
इमरान ३७
इमरान अल मशद्दाली ४५४
इमलाक २२९
इमाम ११४, ११५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७६, १७७, १७८, १८१, १८२, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, २०३, २१०, २१९, २२०, २२१, २२२, २३४, २३८, २५८, ४३१, ४३२, ४५३, ४८२
इमाम अल मज़ारी १७१
इमाम इदरीस १८५
इमाम जैनल आबेदीन १८४
इमाम बुखारी २८६, ४३२
इमाम महदी १८३, ३६२

इमाम मालिक १९६, २०१
इमाम हसन १८४
इमाम हुसेन ११३, २१०
इमामत १६४, १६६, १६७, १६८, १६९, १७१, १७२, १७३, १७५, १७६, १७७, १७८, १८०, १८१, १८४, १८५, १८६, २०२, २०८, २२१, २३३, २९६
इमामते कुबरा १६६, २२०
इमामिया १७९, १८०, १८१, १८३, १८६, २०८
इमामुल हरमैन १७०, १७१
इमामे आदिल २१७
इमामे बातिन १८७
इमारत ११२, २३२
इमारह १७०
इरदब १४६
इराक़ ११, ६५, ७७, ८७, ८८, ९६, ११२, ११७, १२०, १३५, १४३, १४८, १६३, १८३, १८७, १९३, २१६, २३४, २५६, २८३, ३०७, ३४४, ३६८, ३७६, ३७९, ३९१, ३९६, ४१२, ४४२, ४५९, ४८१
इसराईल १९५
इस्कन्दरिया २४, १९३, २६९, २७४, ३४४, ३७७, ३७८
इस्तिख़ारा ३५१, ३५८
इस्फ़हान ३४४, ४०४
इस्माईल १८६, २३४
इस्माईलिया १८७
इस्हाक २
ईरान २७, ६६
ईसा १८५
उकबा २१३
उतामिश १५३
उत्वीयह ४६४
उन्दुलुस ३, १६, ४३, ४४, ६५, ८८, ९१, ९३, १०३, १०५, १०६, १११, ११७, ११८, ११९, १२१, १२२, १३५, १४५, १५७, १७०, २००, २२५, २३१, २३५, २३६, २४७, २४८, २४९, २५७, २६७, २६९, २७०, २७१, २७२, २७५, २८०, २८१, २८४, २९२, २९६, ३०१, ३०२, ३१३, ३१८, ३१९, ३३१, ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३७९, ३८९, ३९६, ३९७, ३९८, ४१२, ४४२, ४४३, ४५२, ४५५, ४६४, ४७३, ४७५, ४८३, ४८४
उबादह १७३
उबैद १८२, २१०
उबैदीई ३१३
उबैदीईन ६९, १०८, ११८, ११९, १३५, १४३, १४६, १४८, १६१, २००, २२१, २२५, २३१, २३४, २३६, २३७, २५०, २७१, २७२, २७३, २७९, २८०, २८२, २९१, २९२, २९५, ३३१ ३४४, ३७१
उबैदुल्लाह १५२
उबैदुल्लाह अल महदी १८७, २३४

उमय्या २२१, २२५, २३१
उमय्या खलीफ़ा १७०, २००
उमर ९८, १८५, १८६, १९५, १९६, १९९, २०४, २१०, २१२, २१५, २३३, २८३
उमर अल असदी २, ११
उमर अल वाकेदी २
उमर अस्सकसीवी ११५
उमान ४४५
उम्मत ९, ४१, १६७, १७५, २०२, २१०, २१८
उम्मियों ४७९
उम्मुल मोमिनीन आएशा २११
उरवन २५६
उलूहियत १८२
उसामा २१०, २१३
उस्ताजुद्दार २५८
ऊकिया २८७
ऊदे हिन्दी १४४
एमाद अल इस्फहानी २७४
एमारह् २९
एहकामे सुल्तानिया २२१, २२४, २४१, २५७, २८६
एहतेमाब २२०, २३०, २३२
एहराम १४१, ३७०, ३७३, ४२४
ऐमानुल बैअह् २०१
ओकिया २८५
औज १४१, १४२
औफ १९३, २०३
क़जा २२०, २२२, २२३, २२४, २२५, २२७, २२९
कजावो ३०३
कनआन १२१
कनासा १८४
कफसा ४०९
कबा २९१
कयानी ८९
कयामत ३६१, ४३३, ४६१
करतबा १४१, ३३६, ३६८
करताजना १४१, २६९, ३७२
करताजा ३७३
करतेबा ४५२, ४५४, ४५८, ४६४
करन १२९, १३०, १३१
करामेता २८०
कलआ (कलअह्) १०५, ११९, २९६, ३३२, ३९७
कलदानी २७, ३९६
कलमा १८९
कलाउन १४६, १४७
कलात ४४३
कल्ाम ४५२, ४६२, ४७१, ४८०
कल्ब ३०१
कवरस २७१
कश्फ ३६२
कसाम २२६, २६७
कसीदे ४२३
कसीर १८४
कस्कर १४४
कहतान ११८, १३६
कहानत ४७

क़ाजिउल कुज्जात ४३७
क़ाजी १६, १७, १४९, २१६, २१७, २२०, २२३, २२४, २२५, २२६, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३७, ३८४, ३८५, ४३१' ४३२, ४५३
काजी अबुल हसन अल मावर्दी २४१
काजी अबू बक्र २३७, ४७५, ४७६
काजी अबू बक्र तुरतुशी ३१
काजी अबू बक्र बाकिल्लानी १७४
काजी अब्दुल हक २८७
क़ाजी शुरैह ६०
न्ातिब २१४, २४२, २५०, २५५, २५६, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, ३१७, ३१८, ३४४, ४२९, ४४४
कातिबुस्सिर २४८
कादस २७३
कादि सिया ११, ५८, ११०, २३३, ३०२, ३०३
कान्सटैन्टाइन ३३२, ३८५
काफूर अल इखशीदी १५७
काफूर इखशीदी १८
काब २१०
काबा ३७८
काबिस २७३, ३७४, ३७५
कारडोवा ४५८
कार्थेज ३७०
कासिम १९५
काहृन २३९
काहिरा (काहेरा) २३५, ३४४, ३६९, ३८५, ३८६, ४४१, ४५५, ४५८
किताब मआलिमुम्सुनन २८६
किताबत २५१, २५६, २६०, २६१, २६२, २६३, ४४६, ४४७
किताबुज्जखीरा १३४
किताबुल इब्र व दीवानिल मुब्तेदा वल खबर फी अय्यामिल अरब वल अजम वल बरबर व मन आसर हुम मिन जाईस्सुल्तानिल अकबर ७
किताबुल इरशाद १७०
किताबुल अगानी ४८४
किताबुल खिताबत ७२
किताबुल मिलल वन् नहल १८८
किताबुम्सियर १७६
किताबेसियासत २७८
किनान ६५
किनाना २१३
किन्तार १४६, १४७
किन्दह २१३
किन्नसरीन ६५, १४५
किब्ती ६, १३, २७, ८१, ८२, २६३, २८१, ३९६, ४२२, ४२४, ४२५, ४४५
किमु आविया २०३
कियानी ३९६
किरअत ४६०
किरमान १४४
किलआ २५७
किसरवी ३९६

किसरा १३२, १४०, १९०, १९१, २४३, २५४, २८२, ३७०, ३७१
कीमिया ४२३, ४६३
कीरवान १४३
कीरवानी अगालेबा १६०
कीरात २८४
कुतामह ३३२
कुतामा ७९, ८९, १०८, ११८, १३५, १८७, ३३१, ३४४, ३९७
कुदामह २१०
कुरा १९३
कुरान १५, ६०, ६२, ८२, ११३, १४०, १७१, २२२, २४०, २८८, २९९, ३२५, ३५०, ३५१, ३७८, ४१५, ४६०, ४६१, ४६२, ४६५, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७९, ४८०
क़ुरेशी १४३
क़ुरैश ६५, १५९, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १९२, २०४, २०६, २१३, २१५, २३८, २५५
कुर्द ५४, ८७
कुर्रा ४७९
क़ुल ३७७
कुस्तुन्तुनिया ११७
क़ूत ११८, ३९६, ३९७, ४४२
कूफा १४२, १८४, १९३, २१२, २१३, २१४, २१५, २२३, २८९, ३६८, ३७६, ३८०, ३८२, ४०४, ४५५, ४५८, ४६४
कूमिस १४४
कूस २८१
कूसरा २७१
केसान १८१, १८४
केसानिया १८१
कैरवान ४, १८७, २००, २४८, २९६, ३३२, ३६८, ३७१, ३७६, ३८२, ३९२, ३९७, ४४३, ४५२, ४५४, ४५८, ४६४, ४८३
कस २१३
कैसर २४३, २८२, २८७
कैस्पियन सागर ११
कोत २६८, ३०२
क्रीट २७२
खतम्तुल उम्र २८८
खतम्तुल कुरान २८८
खतीफ़ बगदादी ३६८
खतीब २९७, ४३१
खत्ताब २६९
खत्ताबी २८६
खराज ११५, १२७, १३८, १५०, १६०, २३२, २४१, २४३, २४७, २५६, २५८, २६३, २६४, २७७, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२३, ३२७, ३३९, ३४२, ३४३, ३४६, ३५४, ३५७, ३९२, ३९७, ३९८, ४१८
खलफ ४७७
खलीफ़ा ३९, ९९, १०५, १०८, ११३,

१३६, १४६, १५९, १६५, १६६, १६७, १७०, १७५, १८०, १८६, १९२, १९६, २००, २०१, २०३, २०४, २०५, २०६, २०८, २१०, २११, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २३०, २३२, २३३, २३४, २३६, २३७, २३८, २४४, २४६, २४७, २७०, २७४, २७९, २८४, २८५, २९६, २९७, ३२९, ३३२, ३४४
खलीफा मुस्तेमिर २९७, २९८
खातम २८८, २८९
•खातम आसिफी २८९
खातम काजी २८९
खातम सुल्तान २८९
खातमुन्नबीईन २८८
खातमुल उम्र २८८
खातमे खलीफा २८९
खार्ज्जी १६८, १७५, २९५, ३०३
खालिद ७३, १५२, २५५, ३७३
खालिद अल कमरी २८३
खालिद दरयूश ११२, ११३
खालिद बरमकी १४१
खिताम २८८
खितामुह मिस्कुन २८८
खिव ४११
खिलअत १४५, २९१
खिलाफत ३३, ९८, ९९, १०१, १०८, १२२, १४३, १५३, १५९, १६०, १६४, १६५, १६६, १६८, १७४, १७६, १७७, १७९, १८०, १८१, १८४, १८८, १९१, १९२, १९५, १९६, १९८, १९९, २००, २०३, २०५, २०६, २०७, २०९, २१९, २२०, २२२, २२६, २२७, २३१, २३२, २३३, २३५, २३६, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २५५, २५६, २६२, २८७, २९५, ३४३, ३४८, ३६१, ३९४, ४८४
खिलाफते राशिदा २०९
खुत्बा १२१, २९६, २९७, २९८
खुरासान ११, ११३, १४४, १८४, २०५, ३३२, ३४३, ३४४, ४१२, ४५५, ४८१
खैबरी ३०३
गरनाता २५७
गस्सान ६५
गाली १८४
गिर्गशाई १२१
गुनाहे कबीरा ३००
गुमारा ४३, ११५
गुलात १८२
गेब्र ४०९
चीन ३९१, ४२४, ४४५
जगी (हब्शी) १८५
जकात २८४, २८५, २८६, ३१०, ४३३
जखीरतुल मुल्क २३६
जजीरा १४५, ४४५
जज्जाज ४८०

जनाता ५४, ७९, ८३, ८७, ८९, १०६, ११०, १११, ११८, १२२, १२९, १३५, १४३, १६१, २००, २३५, २३९, २५१, २७५, २७८, २८०, ३३१, ३४४, ४११

जफर ३६३

जबले रिजवा १८३

जमल २१२

जय्यान २९७

जरबा द्वीप २७३

जरीद ३१३, ३३३, ४१०

जरीर ६७

जलालक़ा ९१, ९३, २७५, २८१

जलूला २६९

जवावह ४५४

जहश २३३

जह्हाक खारजी ३०३, ४०९

जागीरों का प्रवध २५४

ज़ादान फ़र्रुख़ २५६

जाफ़र ७३, १९९, २४६, २६०, २८९

जाफ़र अल मुसद्दिफ़ १८७

जाफर अस्सादिक २०५

जाफरे सादिफ़ १८६, १८७

जाव ३३३, ४०९

जाबिर २१६

जारिबुल मन्दल ३६४

जार्डन १४५

जालीनूस ३८, ,५८

जाहिद १८०

जाहिलियत २८५

जिजया ८३, २५३, २७३, ३१०

जिन्दीक लोग १८७

जिन्नात २५

जिन्नून १३४

जिम्मी २४५, २८२, २९३

जियाद १५२, १६३, २८९, २९०

जियादतुल्लाह प्रथम २७०

जिराबुद्दौला १४३

जिहाद (जेहाद) १०४, १७२, १७६, १८९, १९०, १९१, २०९, २१५, २१८, २२०, २२४, २२५, २३२, २७०, २७५, ३४५

जीलान १४५

जुगाबा ६९

जुज़ाम ६५

जुबैर १९३, १९९, २०४, २०६, २१०, २११, २१३, २१४, २५५

जुरजान १४४

जुरहुम ३७८

जुहरा ५८

जुहरी ११

जूजजान १८४

जूल विजारतैन २४९, २५०

जेनोवा २७२

जैतून ४५३

जैद १७९, १८०, १८१, १८४, १८६, १९३, २१०, २१३, २१६, ४७७

जैदिया १८०, १८४, १८५, १८६

जैनुल आबेदीन १८१, १८६

जौहर ३४४

जौहर अल कातिब सकलबी १४३, ३९२
टोलेडो १३४
ट्यूनिस २९७, ४४२, ४४३, ४५३
तकलीद १७२
तकलीदी १७२
तमीम २३८
तनजा १४८, २६९
तफसीर ४६०
तबरिस्तान १४४, १८६, २८०, ३३२
तबरी २, १२, १३३, २१२, २८५, २८६, २९८, २९०
तबरी तिरहम २८४
तबाबेआ १३, ८९, ९९, १४३, ३८१, ३९६, ४४५
तमीम २१३
तरके ४१६, ४६२
तरतूशी १०७
तराबलस २७२, २७३, ३७७, ३७८, ४०९
तलमसान (तलेमसान) १४७, २९७, ३३२, ३८४, ३८५, ४५३, ४५४
तलहा २१३, २१४
तलही १९३, १९८, २१०
तलीतला १३४
तशहुद ३५०
तसव्वुफ ४६३
ताजू गायेत २७९
ताबेआ ३०१, ३०२, ३०३
ताबेईन १९७, १९६, २०९, २१०, २१८, २२९, २८५
तालिकान १८५
ताशफीन २३७, ३१३
ताहिर ११३, ३४९
तित्तेरी पर्वत ३३२
तिरमिजी १८३. ३६२
तिराज २९१, २९२
तुगरा २९१
तुब्बा ८८
तुरतूशी ३०८
तुर्किस्तान ४४५
तुवैंजिरी ११४
तूजीन ६९
तूनुस २७३, २९७, ३३२, ३७३, ४४२, ४४३, ४५३, ४५५
तूलून १५३
तूलूनी ३३२
तै ६५, ७७
तोजर ४०९
तौकी २६०
तौरीत ४६२
दजला १३४, १४४
दज्जाल ३६१, ३६२
दमिश्क ६५, १४१, १४५, ३३६, ४०५
दरवन्द ८३
दरूद २८५, २८६, २९६
दवादार २४८
दॉग २८४, २८५, २८६
दाई १८६

दानियाल ३१
दारूत्तराज २९१
दावत ६२
दिरहम १३३, १४४, १४५, १४७, १९३, २३१, २८२—२८६
दीनार १३३, १४५, १४६, १४७, १९३, १९४, २३१, २६०, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७
दीवान २५४, २५५, २५६, २५७, २९०
दीवानी १५१, २४१, २४५, २५०, ४०९
दीवाने आमाल व खराज २५३
दीवाने किताबत २९०
दीवाने महासिल २५६
दीवाने रसायल एवं मकातेबात २५९
देलम (दैलम) १०४, १०५, १३५, १८६, ३३२, ४११, ४८४
देवानेह् २५४
देहली १४९
नकली ज्ञान ४५३, ४५४, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२
नक्कारा २७९, २८०, २८१
नजरानी १४४
नजाशी २४३
नफता ४०९
नफसे जकिया १८२
नबत ६, १३, १२१
नबियों ९, २८, ४०
नबीज २१६
नबूऊत (नबूवत) ४५, ९६,१६७, २४०
नब्ती ६५, ३८१, ३९६, ४४५
नवबख्त १८, २५७
नसर १५२
नसीरुद्दीन तूसी ४८१
नसीरुद्दौला २३६, २३७
नस्स १८४, १८६, १८७
नागर सभ्यता ४८१
नाजिर इस्ताजुद्दार २५९
नाजिरुल खास २५९
नाजिरुल जैश २५८
नायब १६६, २२४, २३७, २४६, २४७, २४९, २५३
नासिर १५९, २३६
नासिर तरूश १८६
नासिरुद्दीन सुबुक्तिगीन ३४४
निजामुल मुल्क २३६
निहावद १४४
नुबूव्वत ६२
नुसैर १२०, १५२, ३३६
नूरुद्दीन २३६
नोबा १९८
नोमान २१०, २११, २७०
नौफल २५५
नौशीरवाँ २९, ३०, १३५, २५४, ४०६
पापा २३९
फकीह २८, ११२, २२९, २४१, ३५५, ४२६, ४३७

फ़जल २८९

फ़तवा २०१, २२०, २२२, २२७, २२८, ४६४

फतहुल कुदसी २७५

फ़रमान २३७, २४०, २४४, २४५, २४७, २५१, २५२, २५६, २६०, २६१, २८३, २८७, २८९

फर्जे किफाया १६९

फ़ाजिल बेसानी २७४

फ़ातेमी ११४, ११५

फारस ६, १०, ११, २७, ३१, ७४, ९२, ११०, ११६, ११८, १२०, १२१, १३२, १३३, १३५, १४०, १४३, १४४, १६१, १६४, १९१, १९२, २१२, २७७, २८३, ३०२, ३०६, ३०७, ३१५, ३२२, ३२३, ३३२, ३४४, ३४५, ३४८, ३७१, ३८०, ३८१, ३९६, ४०६, ४१२, ४२२, ४२४, ४४५

फारिस १४९

फार्स १८५, ३४७, ३६८, ३६९, ३७५, ३८४, ३८५, ४०५, ४३७, ४५४

फिक़्ह २८, १६३, १७७, २१८, २२१, २२४, २२९, ३५१, ४५२, ४५५, ४६०, ४६१, ४६४, ४६५, ४७१, ४७२, ४७३, ४७६, ४८०

फिरग ६, १३, ११८, २६९, २७१, २७२, ३९६

फिरगिस्तान ४४५

फिर औन ४२३

फिलिस्तीन १२१, १४५

फुजालह २१०

फुय्यूम ३४४

फुरात १४५, २७०, ३०३

फेज ४४, ३६८

फौजदारी २४१

बकरी का युग १८

बक्र २१२

बस्त नस्र १०

बगदाद १०४, ११२, ११३, ११९, १२१, १८६, २०५, २३७, ३३२, ३४४, ३६८, ४०४, ४०५, ४५५, ४५८, ४६४

बगली २८५, २८६

बगली दिरहम २८४

बजाया १०५, २७१, ३३२, ३६८, ३७७, ३८८

बजीलह ६७

बजीलह कुल ६६

बजील्ला २६९

बतरक २३९

बदवियत ५४, ५५, ८०, ९०, ९७, ९९, ११०, १३२, १९२, १९४, २२७, २३५, २३७, २३९, २४८, २५०, २५६, २७०, २८१, २८३, २९७, २९८, ३०४, ३१०, ३१२, ३२८, ३३८, ३६७, ३७९, ३९५, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०३, ४४५, ४५३, ४८०

बदवी ७, २१, ३३, ४२, ४४, ४९, ५१, ५२, ५६, ५७, ६०, ६१, ६६, ७६, ८३, १००, १२०, १२७, १२८, १३०, १३७, २७५, ३०३, ३६८, ३७९, ३९०, ३९९, ४११, ४१९, ४४४, ४५७, ४७९
बदवी पन १९२, दे० 'बदवियत'
बद्दू ५३, ५४, ७७
बद्र अल जमाली १४६
बनी अगलब ३३७, ३४४
बनी अब्द मनाफ १०८, ३३६
बनी अब्दुल वाद ११८, २५२
बनी अब्बास ३, ४, १७, ९९, १०४, १०८, ११३, ११९, १३५, १४८, १५२, १७६, १९७, २००, २०५, २३४, २४८, २५९, ३०१, ३३१, ३४०, ४०५, ४०६, ४८४
बनी इसराईल ६, १०, ११, ८१, १२१, १३०, १४२, १८३, ४४५
बनी इस्व १२१
बनी उमय्या ३, ९९, १०५, १०६, १०८, ११९, १३५, १४१, १४८, १६१, १७६, १९५, १९६, १९७, २००, २०३, २०४, २०६, २१५, २१७, २३५, २४७, २४८, २४९, २५७, २६७, २७१, २७२, २९१, २९२, ३०१, ३१८, ३१९, ३२९, ३३१, ३३६, ३३७, ३४०, ३९६, ४०६, ४९४
बनी नव बख्त ७३, १५३
बनी बरमक ७३, ७४, २५७, ३१८
बनी बरामिका १५३
बनी बोया १५३, १५६
बनी मरीन २५८, ३४४, ४०५
बनी मिदयान १२१
बनी लूत १२१
बनी सहल १५३
बनी हफ्स २३९, २५२
बनी हमदान ७९
बनी हाशिम १०८, ११३, १७७
बनू अबिल हुसेन २५७, २७२
बनू अबी अबयह ३१८
बनू अबी हफस २५७, ३३२
बनू अब्दुल क़बी ६९
बनू अल अहमर २८०
बनू असद ६५, २१७
बनू आमिर ६९, ७७
बनू इदरीस १०८, ३३७
बनू इसराईल १३, १४१
बनू उकैल जजीरा ३३२
बनू कहतबा ३१८
बनू खजरून २७३
बनू ताहिर ३१८
बनू तुगश १३५, ३३२, ३४४
बनू तूलून ३४०
बनू बादीस २९६
बनू बुर्द ३१८
बनू मरवान १५९
बनू मुजर ७७
बनू मुहल्लब १८

बनू मैमून २७३

बनू यफरान २००

बनू शुहैद ३१८

बनू सईद २५७

बनू सहल १८, २५७, ३१८

बनू सामान ३४०

बनू सुलैम ६९, ७७, ९६

बनू हमदान ३४०

बनू हम्माद २९६, ३६८, ३७१

बनू हिलाल ९६

बनू हुदैर ३१८

बरका १४५, ३७७, ३९२

बरबर ५, ६, ७, ४२, ४३, ४४, ५३, ५४, ८९, १०६, १०८, ११८, १२०, १६०, २६९, २८०, २९९, ३०४, ३३१, ३३७, ३८०, ३८९, ३९२, ३९६, ३९७, ४११, ४४५, ४८४

बरबरी १९, ११५

बराज ८३

बरामेका १८, १४३

बराअह सूरा १७९

बशीर २१०, २११

बसरा १४५, १८५, १९३, २१२, २१४, २२३, २९६, ३७६, ३८२, ४०४, ४५५, ४५८, ४६४

बहराम २९, ३२२, ३२३

बहरैन २५५, ४४५

बहाउद्दौल्ला २३६

बाकियाक १५३

बातिनिया १८७

बादिस ११५, ३३२

बिजाया ४५४

बिदअत १७२, ३५३

बिबलोनिया २७

बिलाल १५२

बिसकरा ३८५, ४०९

बुगा १५३

बुजुर्चमेहर ३१

बुलुग्गीन बिन जेरी २७३

बूरान १३३

बैअत ८७, ११३, १५९, १६७, १७०, १७३, १७९, १९९, २०१, २०२, २०३, २०५, २१०, २११, २१८, २३२, २३७, ३९७

बैअतुल खुल्फा २०१

बैतुल माल १४५, १४९, २३२, २५७, ३५९

बैतुल मुकद्दस ११, १२१, १४२, २७२, २७४, ३७८

बैतुल हराम ३७८

बैबर १४६

बोगी ११९

बोना ३७७

भूमध्य-सागर ९६, ११४, २७३, २७४, २७५

मसूर ७७, १५७, १५९, १८४, १८५, १९९, २०४, २३४, २३६, २४९, २७५, २७७, २८४, ३३२

मअद्द अल मुइज़्जत ११९

मआश ४१८

मकसूरह २९५

मकसूहा २९६

मकसूरे २९६

मक्का ३७८

मखरमा २५५

मखलद २१०

मगरावह ८९, २३७

मगरावा २००, ३४४

मगरिब ५, ६, १६, १९, २०, ४२, ४३, ४४, ५४, ६९, ८३, ८८, ९६, ९९, १०५, ११०, १११, ११७, ११८, १२०, १२२, १४१, १४३, १४९, १७०, १८५, १८७, २००, २२५, २३१, २३४, २३६, २३७, २३८, २३९, २४२, २५०, २५१, २६८, २६९, २७०, २७३, २७४, २७५, २७६, २७८, २८०, २८५, २९०, २९१, २९२, २९४, ३०४, ३३१, ३३२, ३३७, ३४४, ३४७, ३६८, ३७७, ३७९, ३८५, ३९१, ३९२, ३९६, ३९७, ३९८, ४०५, ४१०, ४१२, ४२२, ४२३, ४२४, ४४५, ४५२, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५९, ४६२, ४६४, ४७३, ४७४, ४७५, ४८२, ४८४

मगरिबे अकसा १०८

मगीलह ३३१

मजउन २१०

मजबूदह ३०३

मजालिम २२४

मजूसी ४०, ५५, १६७

मदाएनी २८३

मदायन (मदाएन) ९२, ११६, ४०४

मदीनए फाजेला ३४८

मदीना ३७, १९३, १९४, २१०, २११ २१४, २१५, २२०, २२३, २३३, ३४४, ३७८

मनूरका २७१

ममलूको १२९, ३१९

मरवान १९६, १९८, २००, २१४, २१८, २५६, ३०३, ४०६

मराकश १२१, २७४, ३४४, ३४५, ४०५, ४४३, ४५३

मराबेतीन १०६, २३७, २३८, ३४४

मरिया २७१

मरीन ११८

मरीनी १४७, २६८

मलाहेदा १८७

मलिक १२७, ४०९

मलिक अज् जाहिर अबू सईद बरकूक १४७

मलगा ३७०

मवाली ४८०

मशायख २३७

मसऊदी २, ३, १०, १८, १९, २०, २४, २९, ११३, १३७, १९७

मसलमा २१३

मसामेदा ११०

मममूदह ४३, ८९
ममीलह् ३३२
मस्मा ११५
महदिया १०५, २७२, २७३, ३६८, ३९७
मह्दी ११०, १११, ११५, १८३, १८५, १८७, २०५, २३४, २३८, २८४, २८५, ३६१, ३९२
महदी आखिरुज्जमाँ ११४
महाजिर २१३
मामून २७, ११३, १३३, १३४, १३७, १४३, १८७, २०५, २२५, २८०, ३४९, ३६१, ३६८, ३७३
मामूनुर्रशीद ४३२
मारिब ३७२
मालिक २१०, २१६, ४८३
मालिकी २१६
मालिकी फिकह ४६४
मालिकी मजहब १४९
मालता २७१, २७२
मालवीया नदी ३३२
मावराउन्नहर ११, ३३२, ३४०, ३४४, ४१२, ४५५, ४८१
मावर्दी २२१, २८६
मामव जान १४५
मिकदाद १९४
मिजवार २५२
मिम्बर २८१, २८२, २९६
मिलन वन्नहल १८७
मिल्लत २३५
मिस्काल १४६, २८३, २८४, २८५,
मिस्र १०, ४४, ८२, १०८, ११७, ११८, १२१, १३५, १४१, १४३, १४५, १४६, १४७, १८७, १९३, २१२, २१४, २२५, २३१, २३४, २४७, २४९, २६७, २७३, २९२, २९६, ३३२, ३४०, ३४४, ३४७, ३४९, ३७०, ३७९, ३८५, ३८६, ३९१, ३९२, ३९६, ३९८, ४१२, ४२३, ४२४, ४२५, ४४१, ४४२, ४४३, ४५३, ४५८, ४६४, ४९१
मीजानुल अमल ४
मुतजिर १८३
मुअज्जिन ४३१, ४३२
मुअय्यद १५९
मुआजिरत २४२
मुआविया १९१, १९४, १९५, १९६, १९९, २००, २०४, २०५, २१०, २११, २१७, २४४, २७०, २८१, २८९, २९०, २९५, ३२९
मुइज्जले दीनिल्लाह ३४८
मुइज्जुद्दौला २३६, २३७
मुकद्दमा ८, ६, ९, ३०१
मुकरान १४८
मुकौकस २८२
मुख्तार १८२
मुगीरह १९९
मुगीरा २१०, २३३
मुगीला १०८
मुजतहिद २०९, २१०, २१६, २१८

मुजतहिद इमाम २२९
मुजफ्फ़र २३६
मुजफ्फर सराकूसी १०६
मुजर ६५, ७७, ९०, ९९, १०८, ११८, १३६, १७६, १९२, २१३, २१५, २३३, ३३१, ४८२
मुजरया १३
मुजरी भाषा ४८२, ४८३
मुजार २०७
मुजाहिद २२५, ३८९, ३९२
मुजाहिद आमरी २७२
मुतइम २५५
मुदव्वनह ४६४
मुनकिज २७४
मुनजर २२५
मुनजिर ६६
मुनयह १९४
मुनाफेउल-आजा ३८
मुन्देल १४४
मुफ़्ती २२२, २७०, ४३१
मुबच्चेजह २८०
मुबश्शेरा १५
मुरनाक २६९
मुराबेतीन ३१३
मुराबेतून १११
मुरूजुज्जहब १८
मुर्तद (मुर्तिद) १२०, १९१, २०९
मुलूक १६०
मुलूकुतवाएफ़ १३५, २३६, २४८, २४९, २५७, २७२, २९२, ३१८, ३१९, ३३३, ४४२, ४८३
मुबह्हिद १४७
मुवह्हेदीन ११०, १११, ११८, ११९, १२१, १२२, १२९, १३५, १७०, २३८, २४८, २५०, २५१, २५८, २६८, २७३, २७४, २७५, २८०, २८४, २९२, २९४, २९६, ३३२, ३४४, ३४५, ३७१, ३९२, ३९७, ४४२, ४५३
मुसतजहिर बिल्लाह अब्बासी २३७
मुसमूदा ११५, ११८
मुसव्वेदह २८०
मुसेलमा ९०
मुस्लिम १७०
मुहतदी अब्बासी २२५
मुहतसिब २३०, २३१
मुहम्मद २, १४३, १४७, १५९, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १९५, २११, २१३, २३५, ४५३, ४७७
मुहम्मद अल अमीन ४७७
मुहम्मद अल मकतूम १८६, १८७
मुहम्मद अल हबीब १८७
मुहम्मद अस्सब्बाह १८७
मुहम्मद तकी १८७
मुहम्मद तूमर्त अल महदी २९२
मुहम्मद बाक़िर १८१, १८६
मुहम्मद महदी मुंतजिर १८८
मुहम्मद साहब १४, १५, ७०, ८३, ११२, ११३, ११४, ११८,–१२९,

१३६, १६३, १६५, १६७, १७३, १७४, १७५, १७६, १७९, १८४, १८५, १८६· १८९. १९१, २०४, २०७, २०८, २०९. २११, २१२, २१८, २२०, २२७, २२८, २३३, २४३, २५६, २५९, २७९, २८७, २९१, २९६, ३०७, ३०८, ३४५, ३५०, ३५१ ,३५३, ३६०, ३९४, ४१६, ४२५, ४६०, ४७७, ४७९, ४८०
मुहम्मद हसन अस्करी १८८
मुहल्लब १५२
मूसल १२१, १४५
मूसा १०, १२०, १५२, २०५, ३३६, ४६२
मूसा काजिम १८६, १८७
मूसा नबी १८६
मूसी रिजा ११३
मेसोपोटामिया १४४
मेहराब ३७२, ३७३
मैंमना ३०१
मैंसरा ३०१
मोतजिद १०५, २३६
मोतजेला १६८, १६९, १८१, २१२, ४१६
मोतमिद २३६
मोतसिम १०४, १०५, १३६, १३७, १८५, २२५, २३६
मोता १९६
मोबद ७४
मोबेज बहराम २९
मोबेजान ३२२
मोबेजों ३०, ३१
मोमिन २९९, ३००, ३०६, ३५७
मोराको १४७
मोसल ३३२, ३४०
यगमरासिन २९७
यजीद १९६, २०३. २०४, २०६, २१०, २१४, २१५, २१६, २१७
यज्दजर्द ११६
यमन ४२, ८८, ९६, ११८, १४३, १४५, १४८, १९२, २१२, ३९६, ४४५
यमनी २८४
यरमूक ११०
यशजुव ३७२
यहया ७३, १८४, १८५, २२५, २४६, २५६, ३७३
यहया हारूनुर्रशीद २६०
याकूत १३३, १३४
याकूब २९७, २९८
याकूब अल मसूर २७४, २७५
यानी मुग़ूरका २७१
याबसा २७१
याला १९४
यूनान ६, २७, ८९, १२१, ३९६, ४२४, ४४५
यूरोप ४२४
यूसुफ १५, ६२, १५२, २३७, २३८, २७४, २८३, ३०१, ३१३

रऊना १२२
रक्का ३४९
रतल १४४, १४५
रवातुल फ़तह ३७१
रबीआ (रबीअह) ८३, १९२, २१३
रमल ३६३
रवायत १४
रशीद १४६, १९७, २००, २०५, २३४, ३७३, ४०६, ४७७
रसूल १५, १७०, २३२, २३३
राफजी २३४
राफिजा १८१
रिजा २०५
रुकू ३५०
रुक्नुद्दौला २३६
रुमानिया २७२
रुशुद ७१
रुस्तम ११, ९८, ३०३
रूम ६, ११८, १२०, १२१, १३२, १३३, १९२, २१३, २२५, २६९, २७१, ३०२, ३४५, ३८१, ३९६, ४०६, ४१२, ४२२, ४४५
रूम सागर २६९, २७२
रूमी १३
रेहलह ४७५
रै १४४
रौह २९३
लखम ६५
लम्तूना १०६, १०८, १११, १२१, १३५, २३७, २३९, ३४४
लैलतुल अकबा व शजरा २०१
वकील २५२
वक्फ ४५९, ४६२
वजीर १७, १०७, १४७-५०, १५६, १५७, १५८, २२०, २२५, २४०-५३, २५७, २५८, २६०, २६८, २७७, २८९, २९०, ३१७
वदरार १४९
वर्राकी ४४७
वलीद १४१, २१२, २५५
वलीमा १३४
वसीफ़ १५३
वसीयत १८४, १८६, २०७, २२४
वहरान ३८४, ३८५
वही ६०, २१५
वाइल २१३
वाकिफया १८२, १८३
वाकेदी (वाकदी) ३, ११०
वाली २८१, २८३, ३३७-४०, ३९२
वासिक बिल्लाह १०४
वासिल १८१
विजारत १५०-५३, २३२, २४१-४९
विजारते तनफीजे एह्काम २४६
विजारते तफ़वीज २४६
विलायत ९६
शरफुद्दौला २३६
शरशाल १४१, २६९, ३७०
शरह १८४
शरा २६, २८, २९, ९८, १६५, १६६, १६८, १७२, १७६, १८८, १८९,

२०३, २०९, २२० ,२२९, २८६, ३२५, ४२०, ४२८, ४७७–८१
शरीअत २९, ४०, ४१, ५९, ७१, ८५, १६३–६९, १७१, १७५, १८९, १९०, १९८, २००, २०२, २१२, २१६, २२७, २३८, २४१, २४४, २८५, ३००, ३२५, ३४७–४९, ३६०, ४२०, ४३६, ४६१
शरीद ६९
शरीफ ८६, ४८३
शहरजर १४५
शहरस्तानी १८७, १८८
शाफई २१६
शाम १०, ६५, ८१, ८२, ९६, १०८, ११७, ११८, १२०, १२१, १४१, १४२, १९०, २१२, २१६, २३४, २५५, २६९, २७०, २७२–७४, २८०, २९२, ३३१, ३३२, ३४०, ३७९, ३९१, ३९६, ४१२, ४२४
शाम सागर २६९
शारे १९०, २०४, २०८, २१९
शालिश २८१
शावीया ५३
शिहाबुद्दीन अब कराफी ४५४
शुयेब अद्दक्काली ४५३
शुरैह २२३
शुर्ता २२५, २४०,–कुबरा २६७–६८
शेख अबू अब्दुल्लाह अल अबीली ४३७
शेखुल मुवह्हेदीन ४१०
शेख़ेन १७९, १८०, १८१, २०३
शैतान २४
शैबान ३०३
शोबा २१०, २३३
सईद २१०, २११, २१३, २५६, २८३
सकलिया २७०, २७१, २७२, ४२४
सकालिबा ५३
सकालिया २६९
सकीफ १५, ६५, २१३
सकीफा १७३, १७८
सदगियान २७३
सदवीकिश २७३
सनजक २८१
सफाकिस २७३
सफ्फाह १८४, २००, २०४, २३४
सबा ३७२
सबीतला २६९
समा २०६
समूद ३७१, २८१, ४४५
सरदीनिया २७१, २७२
सरहून २५६
सरीर २८१
सलजूक १०४, १०५, १३५, ३३२, ३४४, ४०४, ४११, ४८८
सलामती ३७७
सलामह अमारी ११३
सलाहुद्दीन २३६, ३१३, ४५८
सलाहुद्दीन यूसूफ २७४
सलीत ३०७
सल्लाम २१०
सल्लार १४६

सव्ततह ३७७
सहल ११४, १३३, २१६
सहाबा १६७, १७३, १९१, १९३, १९४, १९७, २०२, २०३, २०६, २०८, २०९, २१०, २११, २१७, २१८, २२०, २२५, २८६, २९६
सहाबा साद २३३
सहाबी १५, ५९, १७४, १७८, १७९, २०२, २११, २१२, २१३, २१४, २१६, २४३, २४४, २५९, ३०७
सहीह १७०, १८८
सहीह बुखारी १७३
सहीहैन २८७
साकह २८०
साका २९३, ३०१
साद ५८, १५२, १७३, १९३, २१० २११, २१६, २५६
सादा २८०
सादुद्दीन तफ़ताजानी ४८१
साबित १९३, २१०
सामानी ३४४
सालेह बिन अब्दुर्रहमान २५६
सालेह बिन शरीफ ४८३
सासेया ७७
साहिबुत्तरांज २९१
साहिबुद्दिरहमुल मुरब्बा २८५
साहिबुल अशगाल २५०, २५७
साहिबुल मदीना २६७
साहिबुल माल २४३
साहिबुश्शर्ता २२५, २२६, २६७
साहिबुस्सैफ़ २५८
सिजिल मासह १८७
सिजिस्तान १४४
सिज्दा ३५०
सिनहाजा ४२, ७९, ८७, ८८, ८९, १०५, १०८, ११८, ११९, १४३, १६१, २००, २३५–३७, २८०, २८४, २९६, ३३१ –३३, ३७१ ३९२, ३९७, ४१०, ४४२
सिन्ध ११७, १४४, ४१२
सिफ्फीन २१२, ३०५
सिब्ता ३८४, ४१०, ४८३
सियासये मदनीयह ३४८
सिरजा ३२३
सिराजुलमुलूक ३१, १०६
सिसली २७०
सीबावै ४६४
सीराफ २९०
सुन्नत ११३, २३८, ३५०, ३५२, ३५३, ३५६, ४११, ४१२, ४६०
सुमूद ८९, ९९, १२९, १४०
सुयानी ६, १३
सुरयानी २७
सुलेमान १६९, २०४, २५६
सुल्तान अबू इनान १४९
सुल्तान अबू सईद १४७, ४३७
सुल्तान अब्दुल वादिद १४७
सुल्तान मुहम्मद १४९
सूडान ४२, ८८, ९६, ३९१–९२, ४३६
सूफी ४५

सूर २७२

सूरमाही १४५

सूस ४३, ११४

सैफ २, ११

सैफुद्दौल्ला २३७

सैयार १५२

सैरफी ३०७

स्पेन ४३

हकम ३०३

हजम १८८

हजरत अकील २५५

हजरत अबूबक्र १६७, १७९, १९१, २०२, २०५, २०७, २०८, २३२, २३४, २४३, २८७

हजरत अबू हुरैरा २५५

हजरत अब्बास ६९, २०७

हजरत अली १७८-८६, १९२, १९४, १९५, १९९, २०३, २०५, २०७, २१०-१४, २१७, २३३, २३४, २३८, २४३, २९६, ३०५, ४४३

हजरत आएशा ११

हजरत आदम ४१९

हजरत इदरीस ४१९

हजरत इबराहीम ७१, ३७८

हजरत इमाम हुसेन २०६, २१६

हजरत इस्माइल ३७८

हजरत इस्हाक ३७८

हजरत ईसा १८२, ३६२

हजरत उमर २७, ५८, ५९, ६६, ६७, ८७, १२०, १७४, १७९, १९०, १९१, १९२, २०२, २०५, २०७, २०९, २२२, २२५, २३२, २३३, २४३, २४४, २५५, २६९, २७०, २८४, २८७, २९६, ३०७, ३८०, ४११, ४६२, ४७७

हजरत उमर फारुक १६३, २८३

हजरत उसामा १७९

हजरत उस्मान १९२, १९३, १९९, २०३, २१०-१४, २४३, २८७

हजरत खिज्र १८३

हजरत जाफर १८६

हजरत जाफर सादिक १८२, १८५

हजरत नूह १२९

हजरत फातेमा १८०

हजरत महदी ३६२

हजरत मुआविया १९०

हजरत मुहम्मद ५५, ६०, ६३, ७३, १६८, १७८, १९२, २८६, ३७८, ४३२, ४३३, ४६०-६२, ४७९

हजरत मूसा ८१, २४०

हजरत यूसुफ ६२

हजरत साद ९२

हजरत सुलेमान १९०, १९५, २८१, ३७८

हजरत हसन १९३, २८९

हजरत हाजेरा ३७८

हजरत हुसेन १८४, १९९, २१६, २१५

हजरियत ५४

हजरी ५१, ५२, ४११

हजाज १५, १६, ९५, ९६, १३५, १५२,

२५६, २८३, २९३, २९४, ३०१
हदीस १५, १११, १२९, १७०, १७१, १७८, १८०, १८३, १८८, २०१, २२२, २९९, ३४२. ३५१, ३६२, ३७१, ३७८, ४३३, ४६०-६२, ४७१, ४७३-७६, ४७९, ४८०
हनफिया १८२, १८४, २१५, २१६
हफसिया २६०, ४०९
हब्श ११७
हमदान १४५
हमदानी ३३२
हमीर ६५, ७७, ८८, ९९
हमीरी ४४५
हम्माद ३३२
हम्माम ४०७
हयाकिल ३७८
हरक़ुल ११०, ४०६
हरमुजान २५५
हरसमा ६६
हरसमा अल अजदी २६९
हरीरी ४१९
हरीसा ४४१
हवीया ५८
हव्वारा १०८
हसन १३३, १८१, १८४-८७
हसन अस्करी १८३
हस्सान २१०, २७०
हस्सून १४७
हाजिब १७, २२१, २४०, २४३, २४४, २४७-५३, २५८, २६०, २६८, ३१७, ३१८, ३२९
हादी २३४
हारूनी ७१
हारुन् नबी १८६
हारूनुर्रशीद ७३, १४०, १४१, २४६, २८९, ३७३, ४७९
हाशिमिया १८४
हासिब ३६४
हिजरत १८९, ३७८
हिजाज ४२, ८७, ९५, १०८, १४५, १८३, १८५, १९२, २१३, २१६, २३४, २३५, २८३, ३३१, ३४४,
हिज़ाबत २४८, २४९, २६०, ३३०
हिन्द ८८, १४३, ३९१, ४१२, ४४५
हिन्दुस्तान १४८, १४९, ४२४
हिमयार ४८२
हिलाली ३९७
हिल्ला १८३
हिशाम १५९, ३९७
हिस्बा २३०
हुजैल ६५, २१३
हुदूद २८५, २८६
हुदैज २११
हुनैन १९३
हुरमुज ३१
हुलवान १४४
हुसेन १८६, ३४९
हुसेन शहीद १८१